तुलसी-साहित्य-रत्नाकर

अथवा

महाकवि तुलसीदास

'न कुतूहलि कस्यमनश्चरितं महात्मनां श्रोतुम्'

ॐ परमात्मने नमः

तुलसी-साहित्य-रत्नाकर

अथवा

महाकवि तुलसीदास

रचयिता—

बलिया जिलान्तर्गत अगरौली ग्रामनिवासी

हिन्दी साहित्य-रत्न

पं० रामचन्द्र द्विवेदी

गति कीरति भूति को संगमरूप, प्रयाग पुरी जग में बिलसी की।
सरदातप ताप तिहूँ हरिबे हित, है सुखदा बर रस्मि ससी की॥
भवसागर की बरनी तरनी, बहु कर्म-उपासन-ज्ञान गसी की।
अति मोह तमी-तम की हरनी, सविता कर सी कविता तुलसी की॥

प्रथम संस्करण
२००० प्रतियाँ

विक्रम संवत् १९८६
तुलसी संवत् ३०६

मूल्य ४) प्रति

सर्वोदय साहित्य मन्दिर
हुसेनीअलम रोड, हैदराबाद (दक्षिण).

तुलसी-साहित्य-रत्नाकर

अथवा

महाकवि तुलसीदास

'न कुतूहलि कस्यमनश्चरितं महात्मनां श्रोतुम्'

ॐ परमात्मने नमः

तुलसी-साहित्य-रत्नाकर

अथवा

महाकवि तुलसीदास

रचयिता

बलिया जिलान्तर्गत अगरौली ग्रामनिवासी

हिन्दी साहित्य-रत्न

पं० रामचन्द्र द्विवेदी

गति कीरति भूति को संगमरूप, प्रयाग पुरी जग में बिलसी की।
सरदातप ताप तिहूँ हरिबे हित, है सुखदा बर रश्मि ससी की॥
भवसागर की बरनी तरनी, बहु कर्म-उपासन-ज्ञान गसी की।
अति मोह तमी-तम की हरनी, सविता कर सी कविता तुलसी की॥

प्रकाशक—
पं० रामचन्द्र द्विवेदी,
सत् साहित्य-प्रकाशक-मण्डल,
नया टोला, पटना।
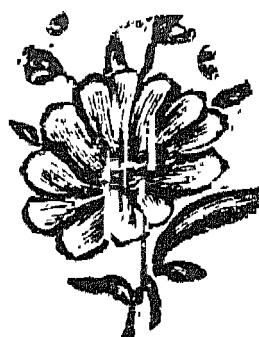
मुद्रक—
माधव विष्णु पराड़कर,
ज्ञानमण्डल यन्त्रालय,
काशी।

ईश-विनय

दोहा

मंगल सदन कदन दुरित, दमन अमित दुख द्वन्द ।
अज अभिमत आनन्द प्रद, पूरण परमानन्द ॥ १ ॥

उतपति थिति लय ते परे, अजर अमर अखिलेश ।
सर्ववन्द्य संसृति शमन, शंकर रुद्र महेश ॥ २ ॥

सहस चेतनन ते परे, प्रभु पूरण चैतन्य ।
सिरजनहार महान जग, अति धवलित यश धन्य ॥ ३ ॥

कहत शास्त्र उपनिषद् श्रुति, नहिं तहँ भानु प्रकास ।
पहुँच न पावक प्रबल गति, नहिं विद्युत आभास ॥ ४ ॥

चटक चाँदनी चन्द अति, होति मन्द गतिमान ।
जिमि जग जुगनू जोति जित, होति मलिन मध्यान ॥ ५ ॥

हरि हेरे हिय हहरि हठि, होत उदोत न ज्ञान ।
वृजिन विपति बाधक बली, प्रभु सर्वत्र समान ॥ ६ ॥

माँगत बिनय समेत प्रभु, दीजे यह बरदान ।
बिमल होय साहित्य अति, भारत को उत्थान ॥ ७ ॥

कविता कामिनि धर्म पति, पथ गामिनि गथ पीन ।
अथ अश्लील कुशील गति, त्यागे बसन मलीन ॥ ८ ॥

रुचिर नीति साहित्य कर, बिमल विशद पट धारि ।
नव रसरँग राची रची, साँची स्वकिया नारि ॥ ९ ॥

बिलसै चहुँदिसि नागरी, जग मंगल को रूप ।
पुनः आर्य-साहित्य कर, प्रगटे आदि स्वरूप ॥१०॥

षट्पदी

पति को उरधारि, करी जिन अर्चा श्री की ।
नु सरस्वति के, सरोज-पद में इतिश्री की ॥
हिं प्रयाग कछु, निज-निमित्त मति भूलिहुँ कीन्हीं ।
कज वारि समान, द्वैत-अद्वैतहिं चीन्हीं ॥
गा स्पर्शी जिनको नहीं, आँधी प्रबल प्रलोभ की ।
र्मी न जिनके हृदय में, जगी जगत बिच क्षोभ की ॥

हा महिम, मतिमान, मूर्त्ति-मर्य्याद मनोहर ।
या दान दम दान्ति, शान्ति-प्रतिमा विद्याधर ॥
भ्र शील सौहार्द्र, देव-द्युति प्रतिभा धारी ।
ह विगत, रत ज्ञान, देशहित सर्वस वारी ॥
म हिन्दुन के ही भाग्यवश, आयो शिवा-प्रताप जनु ।
नु धर्म नीति संगति करन, तनुधारे ब्रह्मर्षि मनु ॥

या ब्रह्म स्वरूप उभय, कर-बदरि समाना ।
है अमित जग मान, तपोधन नीति-निधाना ॥
र भार भव भव्य धारि, करि केहरि-गर्जन ।
त्र तत्र करि भ्रमण, कियो रिपु-प्राण-विसर्जन ॥
नित सदैव आचार धृति, मद न मोह नहि हिय लियो ।
हिन्दु हिन्दी हिन्द हित, मदन मोहन हिं विधि दियो ॥

सुग्रन्थ, तुलसी-कृति पावन ।
राम चरित रसपूर, अमिय घट मनहुँ सुहावन ॥
राम परिश्रम सफल करिय, हिय आशिष देई ।
पढ़िहिं सुजन सादर सप्रेम, निज निज कर लेई ॥
प्रकटे नव्य विचार बहु, सकल हृदय उद्गार शुचि ।
आलोचक जन लखिहिं तहि, निज निज उर अनुरूप रुचि ॥

अनुगृहीत

दीप दीप दीपत सुजस, केसव तुलसी सूर।
जे साहित्य सुधारहीं, ते त्रिभुवन के सूर॥

आर्थिक सहायक महानुभावों को धन्यवाद

'तुलसी-साहित्य-रत्नाकर' का मुद्रण और प्रकाशन निम्न लिखित महानुभावों की अर्थ-सहायता से हुआ है, तदर्थ ग्रन्थकार उन्हें कृतज्ञता पूर्वक धन्यवाद देता है :—

(१) श्री पूज्यपाद महामना पं० मदनमोहन मालवीय जी महाराज, कुलपति, हिन्दू-विश्व-विद्यालय काशी के द्वारा कतिपय सज्जनोंसे १५००)

(२) श्रीमान् बाबू महेश्वर प्रसाद नारायण सिंह जी महोदय ज़मींदार वीर सिंहपुर ड्यौढ़ी, चेयर मैन डिस्ट्रिक्ट बोर्ड दरभंगा ... ... २००)

(३) श्रीमान् बाबू रामनन्दन प्रसाद नारायण सिंह जी महोदय जमींदार समयागढ़, मोकामा, पटना ... ... २००)

(४) श्रीमान् बाबू बदरी नारायण सिंह जी महोदय ज़मींदार कर्मा भगवान, औरंगाबाद, गया ... ... १५०)

(५) श्रीमान बाबू हरिप्रसाद लाल जी महोदय, ज़मींदार नगर नौसा, पटना ... ... १००)

(६) श्रीमान् बाबू चन्द्रेश्वर प्रसाद नारायण सिंह जी महोदय चेयरमैन डि. बोर्ड, मुज़फ़्फ़रपुर, ज़मींदार सुरसण्ड स्टेट ... ... १००)

(७) श्रीमान् सेठ छाजूराम जी चौधुरी महोदय कलकत्ता ... ... १००)

(८) श्रीमान् बाबू सूर्य प्रसाद जी महाजन ज़मींदार, संस्थापक श्री मन्नूलाल पुस्तकालय—गया ... ... १००)

(९) श्रीमान बाबू जितलाल दास जी महोदय ठेकेदार, नरगदा, दानापुर ५०)

सर्वयोग— २५००)

भूमिका

[लेखक—साहित्याचार्य पण्डित चन्द्रशेखर शास्त्री]

'तुलसी साहित्य-रत्नाकर' नाम की बहुत ही सुन्दर और उपादेय पुस्तक पण्डित श्री रामचन्द्र जी द्विवेदी महोदय ने बनायी है। द्विवेदी जी बिहार-प्रान्त में आर्य समाज और हिन्दू सभा के स्तम्भ हैं। आर्य समाज के जो कार्य इन्होंने किये हैं उनमें प्रचार तथा शिक्षा-विस्तार में इनका उद्योग आदर की दृष्टि से देखा जाता है। वैद्यनाथ धाम का गुरुकुल महाविद्यालय इनके अविरल उद्योग साहस, शिक्षा-प्रेम एवं अदम्य उत्साह का समुज्ज्वल प्रमाण है। हिन्दू सभाओं के संगठन और शताब्दियों की सुषुप्त हिन्दू जाति को जागृत करने में बिहार प्रान्त के अन्दर द्विवेदी जी के सिंहनाद ने अद्भुत प्रभाव डाला है। आपने शुद्धि और दलितोद्धार का समय समय पर सम्यक समर्थन कर कट्टर से कट्टर हिन्दुओं को इस पवित्र कार्य में प्रवृत्त कराया है। इन सब कामों को करते रहने पर भी द्विवेदी जी को पर्याप्त समय था। आप बिहार में चक्कर लगाते थे, हिन्दुओं को उनके कर्त्तव्य का स्मरण कराते थे, आर्य समाज को आगे बढ़ने का आदेश देते थे और स्वयं पढ़ते तथा ग्रंथ लिखा करते थे। एक ओर काश-श्वास के दीर्घ कालीन रोग से शारीरिक दुर्बलता, दूसरी ओर पारिवारिक कतिपय आपत्तियाँ, तीसरी ओर अधिकारियों की वक्र दृष्टि और चौथी ओर आवश्यक कर्त्तव्यों के प्रतिपालन की कठिनाइयाँ, इन सब संकटों को सहन करते हुए भी आपने इस अनुपम ग्रंथ को लिख कर हिन्दी साहित्य की अद्भुत सेवा की है। आप विद्यार्थी काल से ही तुलसी साहित्य के अनन्य भक्त रहे हैं जिसके प्रतिफल स्वरूप में 'तुलसी साहित्य-रत्नाकर' का जन्म हुआ है। सहृदय पाठक स्थल स्थल के प्रमाणों और उद्धरणों से इनके स्वाध्याय तथा अनुशीलन का पता पा सकेंगे।

यह पुस्तक हमारी देखी है, पढ़ी है। हम तो द्विवेदी जी को ऐसी सुन्दर पुस्तक लिखने के लिये धन्यवाद देते हैं और इसके लिये उनसे ईर्ष्या भी करते हैं। 'तुलसी साहित्य-रत्नाकर' में द्विवेदी जी ने महात्मा तुलसी दास जी के विचारों और उनके साहित्य की समालोचना की है। आपकी आलोचना विस्तृत है और अध्ययन शील विद्यार्थियों के लिये बड़े ही काम की है। इस पुस्तक के निर्माण में द्विवेदी जी ने बड़ा परिश्रम किया है। इसमें तुलसी दास के साहित्य शरीर का चित्र खींचा है। चित्र सुन्दर और सर्वाङ्ग पूर्ण है। इसमें कई प्रकार के रङ्ग हैं। रंग कहीं कम है कहीं अधिक। जहां जितने की आवश्यकता थी वहां उतना ही रंग दिया गया है। इस कारण गोस्वामी जी का मनोहर साहित्य-शरीर और मनोहर, आकर्षक एवं स्पृहनीय हो गया है। द्विवेदी जी की निपुण

लेखनी ने इस चित्र-निर्माण में अच्छी योग्यता दिखायी है। इसमें उसे अच्छी सफलता मिली है इससे वह धन्य हुई है। हिन्दी साहित्य में तुलसी दास जी का एक विशेष महत्व पूर्ण स्थान है। इनके ग्रन्थों का, मुख्यतः रामायण का जनता में जो आदर है, उसके प्रति लोगों का जितना अधिक प्रेम है उससे तुलसी दास जी की महत्ता प्रकट होती है। रामायण के महत्व का कारण क्या है इस ओर जब दृष्टि जाती है तब मनुष्य सहसा कोई बात निश्चित नहीं कर पाता। कुछ लोगों का विश्वास है कि राम-चरित्र का इसमें वर्णन है इसी कारण यह ग्रन्थ इतना अधिक लोकप्रिय है। पर इस बात को कोई सर्वांश में सत्य कैसे मान लें, जब कि राम-चरित्र के और भी अनेक ग्रन्थ विद्यमान हैं और जिनकी कविता भी बुरी नहीं है। कुछ लोगों का कथन है कि तुलसी दास की प्राञ्जल कविता के कारण रामायण का इतना महत्व है। पर क्या इनकी बनायी यही एक पुस्तक है? और भी तो कई पुस्तके इन्होंने बनायी हैं। उन पुस्तकों का तो इतना आदर नहीं है, उनका तो लोगों में इतना प्रचार नही है और न वे ग्रन्थ रामायण के सदृश लोक प्रिय ही हैं। यदि तुलसी दास की मधुर कविता के कारण रामयण सर्वप्रिय होता तो इनके अन्य ग्रन्थ भी इसी प्रकार सर्व प्रिय होते। फिर बात क्या है? कुछ तो उत्तर देना ही चाहिये। जब लिखने बैठा हूँ तो कुछ लिखना ही चाहिये। तुलसी दास के तथा उनकी रामायण के महत्व का कारण जो मैं बतलाऊंगा वह सत्य ही होगा ऐसा कौन कह सकता है, कम से कम मेरा भी तो इस बात पर विश्वास नहीं है। बात इतनी ही है कि जो मैं समझता हूँ वह लिख देता हूँ। औरों ने भी ऐसा ही किया है। अपनी अपनी बुद्धि और निज विचार के अनुसार सभी लेखकों ने कुछ न कुछ लिखा है। जब उनकी बातें सर्वमान्य न हुईं तो मेरी बात सर्व मान्य कैसे होगी? हां सर्वमान्य न होने पर सब बातें बिल्कुल अमान्य भी नहीं हो जायँगी। मेरी भी बात कुछ लोगों को अच्छी लगेगी और वे इसे पसन्द करेंगे, इसीलिये लिखता हूँ।

मनुष्य आत्म भक्त है, आत्ममय है। वह चाहता है संसार में सर्वत्र अपने को फैला हुआ देखना, उसकी इच्छा रहती है कि मेरा ही सम्बन्ध सब से हो, मेरी ही बात सब लोग मानें और करें और सब जगह मेरे सम्बन्ध की ही चीजें हों। पर संसार में ऐसे भाग्यवान बहुत ही कम हुए हैं, जिन्हें अपनी ही चीजों के सब जगह, जिधर वे आँख उठावें उधर ही, देखने का सौभाग्य हो। इसका फल यह होता है कि वह अपना सम्बन्ध देखने के लिये व्याकुल रहता है, अपनी बात इधर उधर सुनने के लिये उत्सुक रहा करता है और जहाँ कहीं अपनी अथवा अपनी सी वस्तु दीख पड़ती है किंवा अपनी सी बात सुन पड़ती है वहाँ वह गद् २ हो उठता है। वह वहीं भौंरे के समान मँड़राया करता है।

दैवात् मनुष्य कहीं ऐसी जगह चला जाय जहाँ उसकी भाषा बोलने वाले न हों, जहाँ उसके देश के लोग न हों और जो उसका अपना देश न हो तो

उस समय वह बड़ा ही दुखी होता है। उस समय उसके कान अपनी भाषा सुनने के लिये आकुल रहते हैं, उसका मन अपनी भाषा का अर्थ समझने के लिये उत्कंठित रहता है, उसकी आंखें अपना देश और वेश देखना चाहती हैं एवं उसकी समस्त इन्द्रियां अपना सा अनुभव करना चाहती हैं। ऐसी विकट परिस्थिति में पड़ा हुआ मनुष्य यदि अपनी बात सुन ले, और अपनो सा वेश देखले तो वह आनन्द में निमग्न और विह्वल हो उठता है। इसका अनुभव वही कर सकता है जो इस दशा में रह चुका हो अथवा इस घात प्रतिघात से हो कर निकला हो।

हम भारतवासी तुलसी दास की रामायण में अपनी बात, अपना स्वरूप और अपना आदर्श देखते हैं, इसी से वह प्रिय है। तुलसी दास की भाषा हम लोगों के लिये दुर्गम और दुर्बोध नहीं है। उसका अभिप्राय समझने में हम भले ही भूल करें। और मैं जानता हूँ कि ऐसी भूलें होती हैं, पर भाषा का भाव तो सभी समझ लेते हैं। किसी विषय तक पहुँचने का भाषा ही द्वार है, उसी से हो कर ग्रन्थ—प्रतिपादित विषय तक मनुष्य पहुँचता है। यदि भाषा अपरिचित अथवा क्लिष्ट हुई तो मनुष्य वहीं से लौट आता है। वह समझ जाता है कि इस फाटक के भीतर घुसना हमारी शक्ति के बाहर की बात है। वाल्मीकि ऋषि का वर्णन कितना सुन्दर और स्वाभाविक है, उन्होंने राम-चरित का कैसा मनोरम चित्र चित्रित किया है, पर उसका फाटक सर्व साधारण के लिये अपरिचित है। सभी भारत वासी संस्कृत नहीं जानते। इसी अपरिचित और भाषा की क्लष्टिता के कारण उधर कम लोग जाते हैं। वहां जाने के लिये टिकट चाहिये। वह ठहरा राजा का बाग। उसमें वेही लोग जा सकते हैं अथवा जाने पाते हैं जो राजा के से हों, राजा के हों, राजा के परिचित हों और राजा के कृपा पात्र हों। हम जैसे साधारण मनुष्यों का वहां प्रवेश नहीं हो सकता। इसी से जाते भी नहीं। लोहे के फाटक पर शिर टकराने से लाभ ही क्या? दरबान की कुछ ऊंची नीची बातें सुन कर तो तृप्ति हो नहीं सकती, ऐसी दशा में फाटक का दर्शन भी व्यर्थ ही है। यही कारण है कि हम वहां तक जाते भी नहीं।

महाकवि केशव दास ने भी 'राम चन्द्रिका' में राम चरित का वर्णन किया है। पर यह चन्द्रिका शरद ऋतु की आह्लादमयी चन्द्रिका नहीं है। वह वसन्त की हुलसाने वाली चन्द्रिका भी नहीं है। वह है शिशिर की चन्द्रिका। इसका प्रकाश तुषार के कारण धीमा है और सर्दी के कारण कँपाने वाला भी है। फिर इसके समीप कौन जाय? इस चन्द्रिका से आनन्द उठाने के लिये बड़ी सामग्री की आवश्यकता है। जिनके पास सर्दी से बचने के लिये साधन हैं वेही वहां जा सकते हैं और उन्हीं को जाना भी चाहिये। सभी वहां पर नहीं जा सकते।

तुलसीदास जी की रामायण सबकी अपनी चीज है। वहाँ किसी के लिये रोक टोक नहीं। वहाँ तक पहुँचने अथवा अन्दर घुसने के लिये किसी

टिकट की भी आवश्यकता नहीं। वह नगर का बाग है, अतएव सबका है। यही कारण है कि वहाँ सभी जाते आते हैं। गोसाईं जी की रामायण तो गंगा की धारा है। यह धारा बे रोक टोक बह रही है। अतः वहाँ तक पहुँचने के लिये किसी प्रकार की रोक टोक नहीं है। यह धारा किसी व्यक्ति विशेष की नहीं, सबकी है। वहाँ तक पहुँचने के लिये मार्ग भी सुगम है। आप दर्शन करें अथवा स्नान, स्पर्श करें अथवा पान, आप को सब कुछ अधिकार प्राप्त है। यह अधिकार ईश्वर प्रदत्त है। जब आप मनुष्य हैं, गंगा को पहचानते हैं, उसके प्रति आप के हृदय में प्रेम है इसलिये आपको सब कुछ अधिकार प्राप्त है। आप का जैसा बर्तन हो उतना जल भी ले जाइये। आप का बर्तन यदि छोटा हो तो थोड़ा ही जल ले सकेंगे और यदि बर्तन बड़ा है तो खूब भर लीजिये, रोकता कौन है?

जिस प्रकार गंगा सभी की प्रिय और अपनी वस्तु है और उसे छोटे बड़े, अमीर, गरीब सभी चाहते हैं। आवश्यकता है केवल गंगा के ज्ञान की। उसी प्रकार जिसे हिन्दी का कुछ भी ज्ञान है वह तुलसीकृत रामायण से लाभ उठा सकता है। हिन्दी भाषा का ज्ञान हिन्दुस्तान में रहने वाले प्रायः मनुष्यों को कुछ न कुछ अवश्य है। अब तो हिन्दी अपना नाम सार्थक कर रही है। अब तो यह समस्त हिन्द की भाषा होने जा रही है। कांग्रेस के मंच से इसकी गुञ्ज सुनायी पड़ रही है।

देखो, बुद्धि की आँखों से देखो, भविष्य के उज्ज्वल पर्दे पर स्वर्णाक्षरों में लिखा है--'**राष्ट्र भाषा हिन्दी**'।

जबसे हिन्दी भाषा का गुण विकसित होने लगा है और भारतवासी जबसे अपने स्वरूप को पहचानने लगे हैं तबसे क्रमशः तुलसीदास की रामायण के गुणों का विशेष प्रचार और विस्तार होने लगा है। इसकी चमक दिनों दिन फैलती ही जाती है। इसके भक्तों की संख्या बहुतायत से बढ़ रही है। 'राम चरित मानस' आज सर्वप्रिय हो रहा है। सभी लोग इसे अपनी चीज समझने लगे हैं। भक्त और साहित्य-रसिक दोनों ही इससे समान लाभ उठा सकते हैं और उठाते भी हैं। अध्यापक और विद्यार्थी दोनों ही के लिये यह ग्रन्थ समान लाभप्रद है। अध्यापक इससे आनन्द उठाते हैं और विद्यार्थी इससे सीखते हैं। रामचरित के इस मानस तक जाने का सभी को अधिकार है। यहाँ जाने के लिये तो उत्तराखण्ड की हाड़ कँपाने वाली सर्दी का सामना नहीं करना पड़ता। यहाँ तो ऊँची, नीची, और पथरीली राह तय करनी नहीं है। आगे चलिये तो आपको ऋष्यमूक पर्वत मिलेगा, जिसकी तराई में ब्राह्मण वेशधारी एक वीर का दर्शन होगा। उसे आप अपना परिचय बताइये तो वह आपके लिये आप ही के समान एक साथी ढूँढ़ देगा। आप अपने साथी को पाकर प्रसन्न होंगे, क्योंकि यदि आप उसे संकट से बचा लें तो वह आपकी पूरी सहायता करने के लिये तैयार है। जिस विपत्ति में वह फँसा है उससे उसे उबार लें। आप दोनों ही अत्याचारियों के द्वारा सताए गये हैं। आप दोनों

भी दुर्बल हैं, सताने वाले को दण्ड देना तो अलग रहा उसका सामना भी नहीं कर सकते। पर आज आप दोनों एक एक ग्यारह हो गये। आज आपकी शक्ति अजेय है। बड़े २ किले तोड़ सकते हैं, लंका गढ़ को उजाड़ सकते हैं।

जो लोग रामचरित्र की घटनाओं पर विश्वास नहीं करते और रामचन्द्र को औपन्यासिक नायक समझते हैं, समझें। हम उनसे विवाद करना नहीं चाहते, पर 'राम चरित्र मानस' की सड़क से चलकर वे जहाँ पहुँचते हैं और उन्हें जो शिक्षा मिलती है उसे वे कदापि अस्वीकार नहीं कर सकते। उसकी सत्यता को मानने के लिये वे विवश हैं। 'राम चरित्र मानस' की प्रत्येक कथा, आख्यायिका और इतिहास से हम कुछ न कुछ अवश्य सीख सकते हैं।

अब ज़रा दूसरी सड़क की ओर देखिये। यह सड़क पहली से पीछे है। राजा और रानी अर्थात् दशरथ और कैकेयी का कैसा मेल था इसका अनुभव कीजिये और विरोध भी कैसा हुआ, यह भी देखिये। जो कैकेयी राजा को देख कर ही जीती थी वही एक दिन उनके प्राणों की गाहक बन जायगी, यह कौन जानता था? पर तुलसीदास के मार्ग पर चलकर आप इसे ठीक पावेंगे। इस घटना में मानो व्यापक स्वभाव की परिवर्त्तनशीलता का वर्णन है।

एक तीसरी सड़क से भी चलिये। रावण दिग्विजयी था और बाली तो उससे भी बड़ा वीर था क्योंकि उसने रावण को भी पछाड़ा था। सुग्रीव बाली से हारा हुआ था। उसकी भुजाओं से शक्ति निकल गयी थी। इधर रामचन्द्र भी रावण से दुखी थे क्योंकि उसने सीता का अपहरण किया था। रामचन्द्र अनुभवशून्य हो रहे थे क्योंकि अपरिचित देश में थे।

वहाँ उनका सहायक लक्ष्मण के अतिरिक्त दूसरा नहीं था। जिस रावण से उन्हें सामना करना था उसके ज्ञान, बल, विवेक और संगठन इत्यादि के सम्बन्ध में रामचन्द्र को कुछ भी विशेष ज्ञान नहीं था। उनके आधे अंग पर अत्याचार हुआ था जिससे उनका समस्त शरीर व्याकुल था। ऐसी दशा में सुग्रीव और राम दोनों को ही सहायक की आवश्यकता थी। हनुमान ने दोनों को मिला दिया। हनुमान स्वयं वीर और बुद्धिमान थे। ज्ञान, बल और इनके उपयोग के साधन इन तीनों का ही एकत्री करण हो गया जिससे राम का भी दुख टला और सुग्रीव का भी। इस इतिहास में संगठन की विशेषता दिखलाते हुए तुलसीदास ने दोनों मित्रों को विजयी बनाया और दोनों के शत्रुओं का नाश करा दिया।

इस प्रकार की कई सड़कें महाकवि तुलसीदास जीने अपनी रामायण में निकाली हैं जिन पर चल कर हम अपना कल्याण कर सकते हैं।

महात्मा तुलसीदास ने जिस अवस्था का शब्द-चित्र समाज के सम्मुख रखा है वह हमारे ही समाज का अपना रूप है। जिस समय रामायण की रचना का भाव कवि के हृदय में उत्पन्न हुआ होगा, उन्होंने समाज की जिस अवस्था में विकल होकर अपने अशान्त हृदय को शान्त करने का आदर्श

निश्चित किया होगा, आज भी हमारे समाज की वैसी ही अवस्था बनी हुई है। महात्मा तुलसीदास ने समाज के जिस रूप का दर्शन किया था हम भी आज उसी रूप का दर्शन कर रहे हैं। अतएव उन्होंने अपने लिये जो नुसखा ढूढ़ा था वह हमारे काम भी आ सकता है और आता भी है।

तुलसी दास ने अपने समाज की निर्जीव रुढ़ियों पर हृदय की वृत्तियों को न्योछावर करने की क्रूरता को देखा था। उसका पूरा अनुभव किया था। 'मूल' में उत्पन्न होने के कारण वे पिता माता के द्वारा त्याग दिये गये थे। दम्पति ने अपनी प्रेम-ग्रन्थि को तोड़ दिया था और तुलसीदास को जन्मते ही बाहर फेंक कर अपनी हार्दिक क्रूरता का परिचय दिया था। क्यों, इस लिये कि ज्योतिष की यही आज्ञा है। वह कहता है कि आठ वर्षों तक मूल में उत्पन्न लड़के का मुँह न देखो। यदि देखे तो पिता, माता और लड़का इन तीनों में किसी का नाश अनिवार्य्य है। कारण कौन पूछे ? स्वार्थी समाज, निर्जीव समाज अपने अकल्याण का नाम सुनते ही सुध बुध खो बैठता है। विवेक से बहुत दूर चला जाता है। उसकी आंखें अन्धी हो जाती हैं। सामने की वस्तु को तो वह देख ही नहीं सकता, तब उसके द्वारा परिणाम तक पहुँचने की आशा कैसे की जा सकती है। तुलसीदास के पिता माता के द्वारा भी यही बात हुई है। विना कुछ सोचे विचारे बालक को बाहर फेंक दिया। ऐसे बालकों की क्या अवस्था होती है, उनका समाज में कौन स्थान होता है, इत्यादि बातों का आज जैसा रूप है पहले भी वैसा ही था। हम जैसा भोग रहे हैं तुलसी दास ने भी उसे इसी रूप में भोगा था। उनके उद्योग निष्फल थे। निर्जीव समाज तो किसी का तर्क नहीं सुनता। उसके तो हृदय नहीं होते जो वह किसी के कष्टों का अनुभव करे और उनके दूर करने का उपाय सोंचे अथवा कम से कम उन दुखियों से साहानुभूति ही प्रकट करे। तुलसीदास को समाज के इन्हीं अन्तर्द्वन्द्वों के बीच से होकर निकलना पड़ा था। वे असहाय और अनाथ हो गये थे। वे सहायता के लिये, मुट्ठी भर चने के लिये घर २ भटके। समाज के अग्रगण्य और धर्मात्मा कहलाने वालों के सामने उन्होंने हाथ फैलाये। पर समाज के निरादरभाजन बनने के अतिरिक्त और कोई उन्हें लाभ न हुआ।

हताश हृदय क्या करता है। उसे तो आश्वासन की आवश्यकता होती है। उसे एक ऐसा सहारा चाहिये जो सुदृढ़ हो। वह हारा हुआ हृदय और ठुकराया हुआ मनुष्य ऐसे स्थान पर पहुँचना चाहता है जहाँ पहुँच कर वह अपने को विजयी सिद्ध कर सके। अपने समाज वालों को बतला सके कि तुम लोगों ने तो मेरा निरादर किया पर मुझे ऐसा पद मिल गया जो तुम लोगों के लिये स्वप्न है। तुलसीदास उसी पद को ढूंढ़ने चले। 'सूकर खेत' के गुरु ने उन्हें उस पद का पता बतलाया। गोस्वामी जी ने गुरु के उपदेश पर विश्वास किया। तुलसी दास को जिस सहारे की आवश्यकता थी वह

'नाम राम रावरो सयानो किधौं बावरो ,
जो करत गिरी ते गुरू तृण ते तनक को ।

सहारा उन्हें मिल गया और वे सुखी हो गये । 'राम चरित-मानस' में गोस्वामी जी ने अपने उसी सहारा देने वाले का और उसके कार्यों का हृदय खोल कर वर्णन किया है अतएव उस ग्रन्थ के सर्वप्रिय होने का यह भी एक मुख्य कारण है ।

तुलसीदास के समय में हमारा समाज जैसा था आज भी वह वैसा ही है । भेद है तो इतना ही कि उस समय के बहुत से अवैध कार्य्य आज कानूनन जायज हो गये हैं । क्या आज हमारे समाज में रावण और बाली नहीं हैं ? हैं, और उनकी संख्या भी बड़ी ही है । पहले के रावण और वाली का नाश अनिवार्य्य था पर आज इनकी रक्षा कानून के द्वारा हो सकती है । आज हमारे घरों में कैकेयी की भी कमी नहीं है और हम इनके दुष्परिणामों को भोग रहे हैं । रामायण में हम जब इस कथा को पढ़ते हैं तब मालूम होता है कि ये बातें तो हमारे घरों की हैं, गोस्वामी जी ने कैसे जान लीं ? उस समय तुलसीदास और उनकी कृति के विषय में जो भाव उत्पन्न होता है वह उन्हीं के लिये हो सकता है ।

'राम चरितमानस' में समाज-विरोधियों और समाज की मर्य्यादा तोड़ने वालों की कथा जब हम पढ़ते हैं तो सहसा आदर्श मर्य्यादा के प्रतिपालक राम, भरत और हनुमान का स्मरण हो आता है । इन महापुरुषों ने कठिन से कठिन समय में भी अपने कर्त्तव्य का प्रतिपालन करके संसार के सम्मुख आदर्श मर्य्याद की स्थापना की है । तुलसी दास की रामायण में इन्हीं महापुरुषों की कथाएँ लिखी गयी हैं जो उसकी सर्वप्रियता के निमित्त पर्याप्त हैं । इसके अतिरिक्त और भी कारण बतलाये जा सकते हैं, पर मैं तो भूमिका लिखने बैठा हूँ । अतएव मुझे इतने ही कारणों पर सन्तोष करना पड़ेगा ।

उस व्यक्ति को नितान्त भाग्यवान समझना चाहिये जो तुलसीदास के साहित्य को प्रेम की दृष्टि से देखता है और उससे कुछ सीखता है । जो भाग्यवान महोदय इनके ग्रन्थों की व्याख्या करते अथवा इनके अध्ययन से उपलब्ध ज्ञान को जनता के सम्मुख रखते हैं वे भी सुजन-समाज में समादरणीय हैं । यही कारण है कि हम आज द्विवेदी जी को विशेष भाग्यवान समझ रहे हैं । द्विवेदी जी ने इसके संकलन में जो परिश्रम किया है वह सराहनीय और आदरणीय है । पुस्तक पढ़ने वाले अध्ययनशील सज्जन इसकी विशेषताओं को समझ सकेंगे । फिर भी हमें उसके सम्बन्ध में दो एक बातों का बतला देना आवश्यक है ।

इस पुस्तक का संकलन शास्त्रीय रीति पर किया गया है । पुस्तक तीन खण्डों में विभक्त है । पहले खण्ड में महात्मा तुलसीदास की जीवनी और उनकी जीवन-घटनाओं का विवेचन है । उन पर लेखक की सम्मति है । सम्मति अपनी अपनी होती है । अतएव यह आवश्यक नहीं कि हम उनकी सम्मतियों

से सहमतही हों। हां; हमें यह देखना चाहिये कि लेखक की सम्मतियाँ पुष्ट हैं अथवा नहीं और अपने मत का प्रतिपादन ठीक रीति से किया है अथवा नहीं। इस कसौटी से जब हम देखते हैं तब लेखक का पक्षपाती बनना पड़ता है। लेखक की युक्तियाँ पुष्ट और प्रामाणिक हैं। ग्रन्थ के मध्य खण्ड में गोस्वामी तुलसीदास जी के मुख्य चौदह ग्रन्थोंके चुने हुए उत्तमोत्तम पद्य लिखे गये हैं, जो साहित्य प्रेमियों और परीक्षार्थियों के लिये विशेष उपयोगी हैं। ग्रन्थ का अवसान खण्ड विशेष महत्व रखता है। उसके पढ़ने से हमें समालोच्य और समालोचक दोनों ही की विशेष जानकारी का पता लगता है। इस खण्ड में किन किन बातों का संग्रह है और लेखक ने किन किन विषयों पर किस योग्यता के साथ प्रकाश डाला है इस बात का लिखना मैं अपने लिये आवश्यक नहीं समझता। क्योंकि पुस्तक आपके सम्मुख प्रस्तुत है। इसके पन्ने उलटिये और पढ़ डालिये तब इसकी जानकारियां और खूबियाँ आपको स्वयं मालूम हो जायँगी।

अन्त में पुनरपि लेखक को धन्यवाद दे कर आशा करता हूँ कि ग्रन्थकार की इसी प्रकार की दूसरी पुस्तक भी हम लोग शीघ्र देखें।

भूमिका लेखक

चन्द्र शेखर

विद्वज्जन किंकर अपर, लघुता सीम समान।
ग्रन्थकार अनुदास लघु, सतसाहित्य महान॥

निवेदन

महामहिम महेश्वर की महती अनुकम्पा का आश्रय उपलब्ध कर अनेक विघ्न-बाधाओं का उल्लङ्घन करते हुए आज हम इस ग्रन्थ को समाप्त कर अपने सहृदय पाठकों के कमल करों में दे सके, इसका हमें अपार हर्ष है। विश्वम्भर सबकी सदिच्छाओं की पूर्त्ति करता है। उसी महाप्रभु की प्रेरणा एवं प्रोत्साहन को पाकर इस अस्वस्थ विग्रह से किञ्चित साहित्य-सेवा करने में हम समर्थ हो सके हैं। महात्मा तुलसीदास जी अपने समय के महाकवि ही नहीं अपितु एक महापुरुष हो गये हैं। उनकी लेखनी से निःसृत साहित्य अत्यन्त सुविस्तृत और सम्यक् प्रकारेण आदरणीय, स्पृहनीय तथा सुपाठ्य है। यद्यपि हमने अपने विद्यार्थी काल से ही उसका पाठ अति श्रद्धा और भक्तिपूर्वक किया है, तथापि नहीं कह सकते कि हमने उसके सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है वह ठीक ही है। इस ग्रंथ में तुलसी-कृति और तुलसी-साहित्य का जो स्वरूप दिखलाया गया है वह अधिकांश में सर्व सम्मत होते हुए भी अनेक स्थलों पर ऐसा है जिसका उत्तरदाता वैयक्तिक रूप से 'तुलसी साहित्य-रत्नाकर' का रचयिता ही हो सकता है। तुलसी-साहित्य के सम्बन्ध में अनेकों ग्रंथों के होते हुए भी इस ग्रन्थ के लिखने का हमारा कुछ न कुछ

प्रयोजन

अवश्य है। 'प्रयोजन मनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्त्तते' अर्थात् बिना किसी प्रयोजन के मूर्ख भी किसी कार्य में प्रवृत्त नहीं होता। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रस्तुत ग्रन्थ के लिखने का कार्य भी कारणशून्य नहीं है।

गोस्वामी तुलसीदास जी के ग्रन्थों के पढ़ने वालों की संख्या करोड़ों में है। लगभग १५ करोड़ हिन्दी भाषा-भाषी भारत-निवासी तुलसी-साहित्य का पाठ, श्रवण और किञ्चित् मनन भी करते हैं। परन्तु सबका दृष्टि-कोण भिन्न भिन्न है। बहुतेरे हिन्दू तुलसी-साहित्य को वेद-वाक्य समझते और इसके केवल पाठ में ही माहात्म्य माने बैठे हैं। कोई मुकद्दमें जीतने के लिये पाठ करते, कोई दूसरी स्वार्थ-सिद्धि के निमित्त पुरश्चरण कराते हैं। तद्विपरीत देश में ऐसे लोग भी थोड़ी संख्या में विद्यमान हैं जो कहीं कहीं के लेखों से सहमत न होने के कारण समस्त तुलसी-साहित्य से ही उपरत हो गये हैं। ऐसी दशा में हमारा काम तुलसी-साहित्य के पाठकों के दृष्टि-कोण में एकता उत्पन्न करने का है। हमने 'तुलसी साहित्य-रत्नाकर' में स्वतन्त्रता पूर्वक अपने विचारों को अभिव्यक्त किया है, जिसका हमारे सहृदय पाठक प्रत्येक प्रकरण में अनुभव करेंगे। तुलसी-साहित्य के वास्तविक गुण-दोषों को हमने निष्पक्ष भाव से निर्भीकता के साथ जनता के समक्ष रखा है, यही हमारे ग्रन्थ की विशेषता है।

हमारा दृढ़ विश्वास है कि यदि हिन्दू जाति ने इसे सहृदयता के साथ अपनाया तो इस ग्रन्थ के द्वारा उसे अपनी दशा सुधारने में बहुत कुछ सहायता मिलेगी। उक्त विशेषता के साथ ही साथ हमारा 'रत्नाकर' विद्यार्थियों के लिये भी उपयुक्त उतारा है। हम इसके संवन्ध में स्वयं अधिक लिखना पसन्द नहीं करते, क्योंकि महाकवि की उक्ति

'निज कवित्त केहि लाग न नीका। सरस होइ अथवा अति फीका' ॥

के अनुसार अपनी रचना तो सब को प्यारी जँचती है, पर वास्तव में रचना वही है जिसकी बुधजन सराहना करें। कतिपय महाशयों को

धन्यवाद

दिये विना हमारा काम अधूरा रह जायगा, अतः लगे हाथ ही इसकी पूर्ति कर डालना भी आवश्यक है। 'रत्नाकर' के प्रकाशनार्थ जिन महानुभावों ने हमें आर्थिक सहायता दी है, हम उनकी कृतज्ञता पीछे प्रकट कर चुके हैं। जिन ग्रन्थकार महानुभावों के ग्रन्थों से हमने सहायता प्राप्त की है, उनकी सेवा में हम वद्धाञ्जलि धन्यवाद समर्पित करते हैं। इसके अतिरिक्त जिस किसी महानुभावने किसी प्रकार की सहायता इस ग्रन्थ के लेखन और प्रकाशन में की हो हम उनके भी ऋणी हैं। अन्त में गया निवासी श्रीयुत बाबू सूर्यप्रसाद जी महाजन को अनेकशः धन्यवाद देते हैं जिनके संस्थापित **'श्री मन्नूलाल पुस्तकालय'** के अलभ्य ग्रन्थों से हमने पूर्ण लाभ उठाया है। बहुतेरा प्रयत्न करने पर भी

पुस्तक का मुद्रण

सर्वथा निर्दोष नहीं उतरा। प्रूफ़-संशोधन में असावधानी अवश्य हुई है। इस में विशेष दोष हमारा ही है, क्योंकि अस्वस्थ रहने के कारण समय समय पर यह कार्य हमने औरों के हाथ सौंप रखा था। आशा है कि हमारे सहृदय पाठक ऐसी असमर्थता के कारण ग्रन्थस्थ अशुद्धियों को सुधार कर पढ़ेंगे। ऐसी २ छोटी मोटी अशुद्धियों—जिन्हें देखने से ही पता चल जाता है कि प्रूफ़-संशोधक के प्रमाद वशात् आविर्भूत हुई हैं—का 'शुद्धि-पत्र' देना आवश्यक नहीं जान पड़ा। पुस्तक में अन्यान्य दोषों का होना भी सम्भव है। आशा है कि

'सन्त हंस गुन गहिहिं पय, परिहरि बारि विकार'।

शमित्योम्

कार्यालय
सत् साहित्य-प्रकाशक मण्डल
नयाटोला, पटना
चैत्र शुक्ल १९८६

विद्वज्जन-किङ्कर
ग्रन्थकार

तुलसी साहित्य-रत्नाकर

की

विषय-सूची

आदि-खण्ड

जीवन-चरित्र]

विषय पृष्ठ संख्या

मध्य-खण्ड

[विरचित ग्रन्थ]

अवसान-खण्ड

[ग्रन्थालोचन]

प्रस्तावना

आख्याननामरचनाचतुरस्रसन्धि
सद्वागलङ्कृतिगुणं सरसं सुवृत्तम्।
आलेदुपामपिदिवं कविपुङ्गवानां
तिष्ठत्यखण्डमिहकाव्यमयं शरीरम्॥

भारतवर्ष ही क्या, अपितु भूमण्डल के कुछ इने गिने बिरले ही साहित्य-रसिक होंगे जिन्होंने कविता-नागरस-तमारि तुलसीदासजी का नाम भी न सुना हो। हमारे कवि-सम्राट साहित्य-गगन-मण्डल के मार्तण्ड हैं। गोस्वामीजी निस्सन्देह काव्य-सरोवर के सरोज और साहित्य-सागर के देदीप्यमान रत्न हैं। भक्त-प्रवर की प्रतिभा के सम्मुख आज सारे संसार ने सिर झुका लिया है। जिस प्रकार भुवन-भास्कर भगवान की सुखदायिनी किरणें शरद एवं शिशिरादि ऋतुओं में शीत से सताये हुए प्राणियों की रक्षा करती हुई ग्रीष्म काल में सारे भूमण्डल को इस प्रकार सन्तप्त कर देती हैं कि जीवधारियों की कौन कहे—स्वयं छाया भी छाया का आश्रय ग्रहण करना चाहती है, आगे बढ़ कर उसी ग्रहपति की महिमा से पावस ऋतु में सारी वसुन्धरा जलाप्लावित और शस्यपूर्ण होकर सुन्दर सुहावने हरित वस्त्र धारण कर लेती है। उसी प्रकार इस धुरन्धर कवि की शक्तिशालिनी रवि-रश्मि-रचना ने कवि-समाज के अन्तःकरणरूपी कमलवन को विकसित और साधारण जनसमुदाय को भी अकथनीय आनन्द पहुँचा कर सामान्यतया समस्त संसार और विशेषतः आर्यजाति के अभ्यन्तर आये हुए दम्भ, पाखण्ड एवं कुरीतियों के प्रबल खण्डन द्वारा समाज-संशोधन के निरन्तर यत्न करते हुए राम-भक्ति की मूसलधार वृष्टि से भगवद्भक्तों के हृदय-ह्रद को भक्ति-सुधा से परिपूर्ण और ओतप्रोत कर दिया। जिन सज्जनों को अनल्पकाल से गोस्वामीजी की कविता-रूप निर्मल-मन्दाकिनी में निमज्जन करने का सुअवसर प्राप्त हो चुका है अथवा जिन भद्र जनों ने भलीभाँति उसका श्रवण और मनन किया है ऐसे ऐसे महापुरुष भी इन प्रौढ़ कवि की रचना को देखकर चकित और स्तम्भित रह जाते हैं। मैं समझता हूँ कि मुझे गोस्वामी तुलसीदासजी अथवा उनकी कविता के सम्बन्ध में विशेष विचार प्रकट करने का वास्तविक अधिकार प्राप्त नहीं है। इस महदुपयोगी कार्य के लिए निश्चित-एकान्त जीवन, विशेष स्वाध्याय और प्रौढ़ लेखन-शक्ति की आवश्यकता है, इन तीनों का ही अपने पास अभाव सा है। इतना होते हुए भी जो कुछ लिखा गया है, इस अनधिकार चेष्टा के लिये साहित्य-रसिक-समाज क्षमा प्रदान करेगा। जिस प्रकार हरिगुण-गान से रसना की पवित्रता और हृदय की शुद्धि होती है, तदनुसार ही महापुरुषों के जीवन पर कुछ लिखने से लेखनी की सफलता और विवेचन से मेधा की महती महत्ता होती है। इस छोटी प्रस्तावना अथवा समस्त पुस्तक में ही गोस्वामी तुलसीदासजी की कविता की प्रशंसा करना अथवा

जनसाधारण को उनके गुणों का परिचय दिलाना लोटे में समुद्र भरने की शुष्क चेष्टा के समान विफलप्रयास होना है। अथवा यों कहिये कि जिसकी गुणावली बड़े बड़े विद्या-दिग्गजों द्वारा गान की जा चुकी है वहाँ यह मेरा क्षुद्र लेख, सूर्य्य को दीपक दिखलाना मात्र है। महापुरुष सब के होते हैं, उनके ऊपर किसी विशेष जाति वा सम्प्रदाय का ही स्वत्व नहीं हुआ करता, इसी सम्बन्ध से गोस्वामीजी की जीवनी और कविता के सम्बन्ध में भी सब को सम्मति प्रकट करने का अधिकार अपनी विद्या और बुद्धि के अनुसार था, है और रहेगा। अतएव दृढ़ भरोसा है कि मेरा यह साहस बुधजनों के बीच हास्यास्पद न होगा। यहाँ पर कविता सम्बन्धी वर्णन और विवेचन के पूर्व पाठकों के मनोविनोदार्थ गोसाईं जी की जीवन-सम्बन्धी कुछ बातों का उल्लेख कर देना नितान्त आवश्यक प्रतीत होता है। नियम है, जब कोई मनुष्य किसी कवि की कविता के सम्बन्ध में कोई लेख वा आलोचना पढ़ना प्रारम्भ करता है तब सबके पूर्व उसके हृदय में उस कवि के जीवन-सम्बन्ध में ही जानकारी का कुतूहल उत्पन्न होता है। सौभाग्यवशात् गोस्वामी तुलसीदासजी एक ऐसे कवि थे, जिनकी जीवन-सम्बन्धी बातें बहुतेरे लोग बहुत कुछ जानते और सुनते सुनाते आ रहे हैं। आप जिस 'रामचरित-मानस' को उठा कर देखिये उसीके आरम्भ में गोसाईं जी का जीवनचरित कुछ न कुछ अवश्य लिखा हुआ मिलेगा, परन्तु जैसी इनकी काव्य-कीर्ति सूर्य-प्रतिभा के समान संसार की आँखों में देदीप्यमान है वैसी इन महाकवि की जीवनी निर्विवाद नहीं है।

यद्यपि गोस्वामी जी और उनकी कविता के सम्बन्ध में आज तक बहुत कुछ कहा जा चुका है, तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि अब कुछ भी लिखना नहीं है। सहृदय पाठक साद्यन्त इस ग्रन्थ को पढ़कर यह स्वीकार करेंगे कि इस सम्बन्ध में अन्यान्य शतशः ग्रन्थों की विद्यमानता में भी प्रस्तुत पुस्तक की आवश्यकता थी। सुविधा के विचार से समस्त ग्रन्थ तीन खण्डों में विभक्त कर दिया गया है। **आदि-खण्ड** में गोस्वामी तुलसीदासजी का वैयक्तिक जीवनचरित और तत्सम्बन्ध में अन्यान्य कतिपय ग्रन्थकारों के लेखों तथा सम्मतियों का समावेश है। **मध्य-खण्ड** में महाकवि-रचित ग्रन्थों की नामावली, उनमें निगदित विषयों का क्रम लिखते हुए साहित्यिक दृष्ट्या उपादेय पद्यों के उद्धरण भी किये गये हैं। **अवसान-खण्ड** में समय और स्थानानुसार उक्त ग्रन्थों में वर्णित कवि-सम्राट के विचारों एवं सिद्धान्तों की संक्षिप्त समालोचना की गयी है। इस खण्ड में मैंने गतानुगतिक का अनुसरण नहीं किया है। आशा है, सुहृदय पाठक इस प्रकरण का पाठ करते समय कदापि सहृदयता का परित्याग न करेंगे। अन्त में उपसंहार लिखकर ग्रन्थ समाप्त किया गया है। शम्

—लेखक

तुलसी साहित्य-रत्नाकर

आदि-खण्ड

[जीवन-चरित्र]

'प्रियप्रायावृत्तिर्विनयमधुरो वाचि नियमः ,
प्रकृत्या कल्याणी मतिरनवगीतः परिचयः ।
पुरो वा पश्चाद्वा तदिदमविपर्यासितरसं ,
रहस्यं साधूनामनुपधिविशुद्धं विजयते'' ॥

अवतरणिका

भारतीय ग्रन्थकारों की यह एक प्राचीन प्रथा चली आ रही है कि वे उत्तम से उत्तम ग्रन्थ तो लिखेंगे, परन्तु उसमें अपने जीवन-चरित अथवा अपने वैयक्तिक वर्णन का लेश भी नहीं आने देंगे। हिन्दी-भाषा के आधुनिक कवि तो प्रायः कवित्तों में अपने उपनाम दिया भी करते हैं। आप संस्कृत कवियों के काव्यों में इतना भी नहीं पावेंगे। कई प्राचीन ग्रन्थों के विषय में तो आज अन्वेषण करना पड़ता है कि उनके रचयिता कौन थे, कहाँ के निवासी थे और कब हुए इत्यादि। इसका एक मुख्य कारण यह प्रतीत होता है कि वे लोग लोकहित को दृष्टि-पथ में रख कर ग्रन्थ-निर्माण करते थे। उनमें आत्म-ख्याति का लेशमात्र भी विद्यमान न था। कई कवियों ने अपने ग्रन्थ के सिद्धान्तों की सर्वमान्यता के निमित्त स्व-रचित ग्रन्थ को अन्यप्रसिद्ध पुरुष के नाम प्रख्यात किया है। प्रायः पुराणों की रचना को इसी कोटि में रख सकते हैं। हिन्दी-भाषा के कतिपय कवियों ने अर्थ-लोभ-वश अथवा प्रख्याति के प्रलोभनवशात् अपना और अपने आश्रयदाता का सुयश गान किया है। हमारे चरित-नायक तो प्राकृत पुरुषों के यशोगान करने के स्वभावतः विरोधी थे। आप इसमें सरस्वती का अपमान और दुरुपयोग समझते थे। कहीं २ अपनी दीनता और हीनता दिखलाने के लिये आत्म-चरित वर्णन कर दिया है, उसीके सहारे इनकी जीवनी के लेखकों को बहुत कुछ सामग्री मिल जाती है। 'बिहारी-बिहार' में जिस प्रकार स्वर्गीय पण्डित अम्बिकादत्त जी व्यास साहित्याचार्य ने अपने जीवनचरित की चहल पहल कर दी है, उसी प्रकार यदि गोस्वामी जी ने की

होती तो आज उनकी जीवन-सम्बन्धी बातों की जाँच-पड़ताल में इतना नहीं झँखना पड़ता। गोस्वामी तुलसीदासजी की जीवन-सम्बन्धी सभी बातें आज विवाद-ग्रस्त हो रही हैं। विशेष कर केसरिया (चम्पारन) निवासी श्रीयुत बाबू इन्द्रदेव नारायण जी ने जब से गोसाईं जी के शिष्य म० रघुवरदास जी द्वारा लिखित पद्य-मय "तुलसी-चरित" की चर्चा की है, तब से हिन्दी-जगत् में एक खलबली सी मच गई है। उसका जो अंश 'मर्यादा' में प्रकाशित हुआ था उसने तो पुराने सभी अन्वेषणों पर पानी फेर दिया है।

कहा जाता है कि म० वेणीमाधव दास जी ने—जो गोसाईंजी के सम-कालीन थे—'गोसाईं-चरित्र' नामक एक ग्रन्थ लिखा था, परन्तु दुःख की बात है कि वह ग्रन्थ आज अप्राप्य है। शिवसिंह सरोजकार ने अपने सरोज में उक्त ग्रन्थ का उल्लेख मात्र किया है; परन्तु उससे कुछ काम नहीं चल सकता। 'भक्तमाल' के रचयिता महात्मा नाभा जी भी गोसाईं जी के सम-सामयिक बतलाये जाते हैं; परन्तु आपने भी उनके जीवनचरित सम्बन्धी और कुछ वर्णन न लिख कर निम्न पद्य में केवल प्रशंसा के पुल बाँधे हैं:—

छप्पय

त्रेता काव्य निबन्ध करी सत कोटि रमायन।
इक अच्छर उद्धरैं ब्रह्म हत्यादि परायन॥
अब भक्तन सुख दैन बहुरि लीला विस्तारी।
राम-चरन-रसमत्त रहत अह निसि व्रतधारी॥
संसार अपार के पार को सुगम रूप नौका लयो।*
कलि कुटिल जीव निस्तार हित वालमीकि तुलसी भयो॥

भक्तमाल के कर्त्ता ने गोस्वामी तुलसीदासजी को महर्षि वाल्मीकि का अव-तार माना है और टीकाकार ने इस सम्बन्ध में भविष्यपुराण के निम्न लेख का प्रमाण दिया है:—

वाल्मीकिस्तुलसीदासः कलौ देवि भविष्यति।
रामचन्द्रकथां साध्वीं भाषारूपां करिष्यति॥

'भक्तमाल' पर प्रियादासजी की टीका है—जो संवत् १७६९ में लिखी गई थी। गोस्वामीजी के जीवन में जो कुछ असम्भव, अनर्गल और अनैसर्गिक बातें और घटनायें पायी जाती हैं, उन सबों के मूल में भक्त-प्रवर प्रियादास जी की टीका काम कर रही है। भक्तराज ने गोसाईं जी और उनके साहित्य के सम्बन्ध

---

* इस पद में एक मात्रा की विशेषता है। मात्राधिक्य से पाठ करने में असुविधा होती है, परन्तु अर्थसंगत है।

में काम की बातें तो कम ही लिखी हैं, अधिकतर ऐसे उल्लेख किये हैं जो विज्ञान, इतिहास और साहित्य से भी मेल नहीं खाते। हमारे देश की यह एक आधुनिक परिपाटी है कि लोग जिसको महात्मा सिद्ध करना चाहते हैं, उसके जीवन के साथ बहुतेरी असम्भव अथ च अनर्गल कथाएँ, सृष्टि-नियम-विरुद्ध करामातें, मोजज़े तथा अनेक आश्चर्यजननी घटनाएँ जोड़ देते हैं। इससे बड़ी भारी क्षति यह होती है कि उस महापुरुष का यथार्थ इति-वृत्त प्राप्त न होकर जनता के सम्मुख एक दूसरी ही जीवनी प्रस्तुत हो जाती है। ऐसी प्रथा पुराणों से चली है, जिसका अनुसरण विदेशी लेखकों ने भी किया है। हजरत ईसा, मूसा और मुहम्मद साहेब के जीवन ऐसी ही करामातों से भरे पड़े हैं। तदनुसार ही गोसाईं जी के कुछ भक्तों ने भी इनकी जीवनी के साथ कई आपत्तिजननी बातें लगा रखी हैं, जिनकी जड़ में प्रियादासजी की टीका घुसी हुई है। नीचे कतिपय घटनाओं का उल्लेख किया जाता है :—

[१] गोसाईंजी जब शौच जाते थे तो उससे बचा हुआ जल एक बेर के पेड़ में डाल दिया करते थे। पेड़ पर एक प्रेत रहता था जो शेष शौच-जल को पीकर परितृप्त हुआ करता था। एक दिन उक्त प्रेत ने सन्तुष्ट होकर प्रकट हो गोसाईंजी से कहा कि तुम वरदान माँगो। गोसाईं जी ने वरदान में राम का दर्शन माँगा। प्रेत ने कहा कि यह बात तो मेरे वश की नहीं है, परन्तु अमुक स्थान पर काशी में रामायण की कथा होती है उसको सुनने के लिये हनुमान जी परम कुरूप कुष्टरोगी का वेश धारण कर आया करते हैं, तुम उन्हींका चरण पकड़ो तब उनके द्वारा श्री रामचन्द्र के दर्शन हो सकते हैं। गोसाईं जी ने वैसा ही किया और वरदान पाकर परम प्रसन्न हुए। प्रियादास जी लिखते हैं :—

कवित्त

शौच जल शेष पाय, भूतहू विशेष कोऊ, बोल्यो सुख मानि, हनुमान जी बताये हैं।
रामायन कथा, सो रसायन है काननि को, आवत प्रथम, पाछे जात, घृणा छाये हैं॥
जाय पहिचानि, संग चले पुर आनि, आये, बन मधि, जानि, धाय, पाँय लपटाये हैं।
करैं तिरसकार, कहीं "सकोगे न टारि, मैं तो जाने रससार" रूप धर्यौ जैसे गाये हैं॥

[२] उक्त वरदान के अनुसार कहा जाता है कि श्रीरामचन्द्र ने गोसाईं जी को कई बार दर्शन दिये। पहला दर्शन चित्रकूट में हुआ। एक हिरन के पीछे दो राजकुमार (एक श्याम और एक गौर वर्ण के) दौड़े जा रहे थे। तुलसीदासजी ने यह घटना स्वयमेव देखी, परन्तु उन राजकुमारों को वे पहचान नहीं सके। इतनी देर में हनुमान जी ने आकर गोसाईं जी से पूछा 'कुछ देखा ?' गोसाईंजी ने जो देखा था वह बतला दिया। इस पर हनुमान जी ने कहा 'वे दोनों राजकुमार राम और

लक्ष्मण थे, कलियुग में साक्षात् दर्शन बड़ा ही कठिन है, तुम इसीको अहोभाग्य समझो' गोसाईंजी ने उन्हीं मनोमोहिनी युगल मूर्तियों को अपने अन्तःकरण में रख लिया। भक्तमाल की टीका में प्रियादासजी ने तो रामदर्शन इसी ढंग से लिखा है, परन्तु डाक्टर ग्रियर्सन साहब ने दूसरा ही रंग चढ़ाया है। आप लिखते हैं कि गोसाईंजी चित्रकूट में घूम रहे थे कि अकस्मात् देखा कि मार्ग में अनुपम छटा से रामलीला हो रही है। लङ्का-विजय, विभीषण का राज्याभिषेक और दलबल के साथ श्री रामचन्द्र के अयोध्या-प्रत्यावर्त्तन का प्रसंग था। लीला समाप्त होनेपर गोसाई जी आगे चले तो मार्ग में ब्राह्मण के रूप में हनुमान जी मिले। ब्राह्मण से गोसाईंजी ने कहा कि अहा! बड़ी ही अच्छी रामलीला हो रही थी !!! विप्ररूपधारी हनुमान ने कहा कि तुम पागल हो गये हो, रामलीला आजकल कहाँ होती है? आश्विन-कार्तिक उसका समय है। यह कह कर ब्राह्मण अन्तर्धान हो गया। तुलसीदास-जी विस्मित होकर कुटी पर लौट आये और भगवान की उपासना में लीन हुए।

कवित्त

"मांगि लीजै बर" कहीं "दीजै राम भूप, अतिही अनूप, नित नैन अभिलाखिये।"
कियो लै संकेत, वाही दिन ही सो लाग्यो हेत, आई सोई समै चेत "कब छबि" चाखिये॥
आये रघुनाथ, साथ लछिमन, चढ़े घोरे, पट रङ्ग बोरे हरे, कैसे मन राखिये।
पीछे हनुमान आय बोले देखे प्राण प्यारे? "नेकुन निहारे मैं तो भले! फेरि भाखिये॥'

[३] तीसरी कथा है कि एक ब्राह्मण ब्रह्महत्या करके प्रायश्चित्तार्थ तीर्थाटन करता हुआ तुलसीदासजी के समीप पहुँचा। गोसाईंजी ने उसके मुख से राम-नाम उच्चारण कराकर शुद्ध कर लिया। यह बात सर्वत्र फैली और इसका घोर आन्दोलन हुआ। ब्राह्मणों की सभा बैठायी गयी, जिसमें तुलसीदासजी भी बुलाये गये। पूछने पर गोसाई जी ने कहा कि समस्त धर्म-ग्रन्थों में राम-नाम की अनन्त महिमा गायी गयी है। उसी पवित्र नाम का उच्चारण करा कर मैंने इसके साथ खान-पान किया है। इस पर समस्त सभा बोल उठी कि यदि शिव जी का नादिया इसके हाथ का दिया हुआ भोजन पालेगा तो हम लोगों को विश्वास होगा कि यह हत्यारा निर्दोष हो गया है। निदान उसके दिये सारे पकवानों को नन्दीश्वर पागये।" इस पर समस्त समाज ने राम-नाम की जय और श्री तुलसीदास की जय-जयकार करते हुए सभा का विसर्जन किया। देखिये प्रियादासजी का लेखः—

कवित्त

"हत्या करि बिप्र एक, तीरथ करन आयो, कहै मुख राम, भिक्षा डारिये हत्यारेको।
सुनि अभिराम नाम धाम मैं बुलाय लियो, दियो लै प्रसाद कियो शुद्ध गायो प्यारेको॥
भई द्विज सभा कहि बोलि कै पठाये आप, "कैसे गयो पाप, संग लैके जेंये न्यारे को।
पोथी तुम बाँचो, हिये सार नहीं साँचो, अजू ताते मत काँचो दूर करें न अँध्यारे को॥

देखी पोथी बाँच, नाम महिमाहूँ कही साँच, ऐ पै हत्या करै कैसे तरै कहि दीजिये।
आवै जो प्रतीति कहो कही याके हाथ जेंवै, शिवजूको बैल तब पंगति में लीजिये ॥
थार मै प्रसाद दियो चले जहाँ पन कियो बोले आप नाम कै प्रताप मति भीजिये।
जैसी तुम जानो तैसी कैसेकै बखानो अहो, सुनिकै प्रसन्न पायो, जैजै धुनि रीझिये ॥

[४] गोसाँई जी की कुटी पर रात को कई दिन चोर आये, परन्तु एक श्याम मूर्त्ति धनुषबाणधारी पुरुष को वे सदा पहरा देते देखते थे। जब चोरों ने एक दिन गोसाईं जी से पूछा कि आप कुटी पर धनुष बाण लेकर रात के समय जो दिव्य पुरुष रखवारी किया करता है, वह कौन है? गोसाईं जी सारी व्यवस्था समझ गये और सभी सामग्रियों को लुटा कर पाणि-पात्र बन बैठे। इस घटना का प्रियादासजी इस प्रकार वर्णन करते हैं:—

कवित्त

आए निशि चोर, चोरी करन हरन धन, देखे श्याम घन, हाथ चाप सर लिए हैं।
जब जब आवैं, बाण साधि डरपावैं, ये तो अति मडरावैं, ऐसे वली दूरि किए हैं ॥
भोर आय पूछें "अजू साँवरो किशोर कौन?" सुनि करि मौन रहे, आँसू डारि दिए हैं।
दै सबै लुटाय, जानी चौकी राम राय दई, लई उन्हौं दिक्षा शिक्षा शुद्ध भए हिए हैं ॥

[५] एक दिन गोसाईं जी कहीं जा रहे थे। मार्ग में एक स्त्री मिली, जो अपने मृतपति के अन्त्येष्टि संस्कारार्थ जा रही थी। उसने तुलसीदासजी को देख कर चरण छूकर प्रणाम किये। गोसाईं जी ने आशीर्वाद दिया कि 'सौभाग्यवती रहो।' इस पर उस स्त्री ने रोकर कहा कि महात्मन्! मेरे स्वामी तो स्वर्ग सिधारे, जिनके संस्कार के लिये मैं जा रही हूँ। गोसाईंजी बड़े ही असमञ्जस में पड़े। अन्त में आपने राम-नाम के प्रताप से शव को जीवित कर अपने वचन को सार्थक किया। इस कथा को प्रियादास जी ने यों लिखा है:—

कवित्त

कियो तन विप्र त्याग तिया चली संग लागि, दूरहींते देखि, कियो चरण प्रणाम है।
बोले यों सुहागवती मर्यौपति होऊँ सती, अब तो निकसि गई ज्याऊँ सेवो राम है ॥
बोलि कै कुटुम्ब कही जो पै भक्ति करो सही, गही तब बात जीव दियो अभिराम है।
भये सब साधु व्याधि मेटी लै बिमुखता की, जाकी वास रहै हौ न सूझै श्यामधाम है ॥

[६] ऊपर की घटना को सुन कर दिल्लीश्वर जहांगीर को बड़ा ही आश्चर्य हुआ। उसने अपने दरबार में गोसाईंजी को बुला कर कहा कि आपकी बहुत ही ख्याति सुनी जाती है, आप इस समय हमलोगों को कुछ करामात दिखलाइये। गोसाईंजी ने कहा कि मेरे पास कोई करामात नहीं है। मैं केवल राम-नाम को जानता हूं। गोसाईंजी के इस उपेक्षा-भाव से बादशाह ने रुष्ट होकर उन्हें कारा-

वास दे दिया। बन्दी-गृह में गोसाईं जी ने हनुमानजी की स्तुति की। थोड़ी देर में राजकोट के ऊपर कोटि कोटि बानर फैल कर अत्याचार करने लगे। इस घटना को देख कर जहांगीर की आखें खुलीं और उसने शीघ्र ही गोसाईं जी को मुक्त कर दिया। कहते हैं कि बानरों के उपद्रव से बादशाह को वह गढ़ छोड़ देना पड़ा, जो आजतक वीरान पड़ा है। प्रियादास जी लिखते हैं:—

कवित्त।

दिल्लीपति बादशाह अहदी पठाये लैन, ताको सो सुनायो सूबै विप्र ज्यायो जानिये।
देखिवेकों चाहैनीकै सुखसों निवाहै आय, कही बहु विनै गही चले मन आनिये॥
पहुँचे नृपति पास, आदर प्रकास कियो, दियो उच्च आसन ले, बोल्यो मृदु बानिये।
दीजै करामात जगख्यात सब मात किये, कही झूठ बात एकराम पहिचानिये॥
देखे राम कैसो कहि, कैदकिये किये हिये हूजिये कृपाल हनुमानजू दयाल हो।
ताही समय फैलि गये, कोटिकोटि कपिन यों, लोचै तन खोचै चीर भयो यों विहालहो॥
फोरैं कोट, मारैं चोट, किये डारैं लोटपोट, लीजै कौन ओट जाय, मान्य प्रलयकालहो।
भई तब आँखैं, दुखसागर कों चाखैं, अब वेई हमें राखैं भाखैं, वारो धन मालहो॥२॥

[७] दिल्ली से चलकर गोसाईं जी वृन्दावन आये। वहाँ एक मन्दिर में कृष्ण महाराज की अनुपम छवियुक्त मूर्ति का अवलोकन कर परम प्रसन्न हुए और नीचे लिखा दोहा उन्होंने पढ़ा:—

कहा कहौ छबि आज की, भले बने हौ नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवै, धरो धनुष सर हाथ॥

कहते हैं कि इस बचन को सुन कर

"मुरली लकुट दुराय कै नाथ भये रघुनाथ।
तब तुलसी कर जोरिकै, प्रमुदित नायो माथ॥"

इसी उपास्य देव की मूर्त्तिको तुलसीदास ने सप्रेम प्रणाम किया।

[८] गोसाईं जी एक दिन काशी में अन्धेरी रात के समय बाहर से अपने स्थान (हनुमान फाटक) पर लौट रहे थे। मार्ग में चोरों ने उन पर आक्रमण किया। गोसाईंजी ने कुअवसर देख कर हनुमान जी की स्तुति की और यह दोहा कहा :—

"बासर दासनिकै ढका, रजनी चहुंदिसि चोर।
दलन दयानिधि देखिये, कपि-केसरी-किसोर॥

इसके अनन्तर ही सब चोर विह्वल हो भूमि पर गिर पड़े और गोसाईं जी स्वस्थान पहुँच गये।

[९] कहा जाता है कि गोसाईं जी ने चित्रकूट जाते समय मार्ग में एक राजा की कन्या को चरणामृत देकर पुरुष बना दिया था। इसके प्रमाण में दोहा-वली के ये दोहे दिये जाते हैं।

कबहुँक दरसन संत के, पारसमनी अतीत।
नारि पलट सो नर भयो लेत प्रसादी सीत ॥१॥
तुलसी रघुबर सेवतहि, मिटिगो कालो काल।
नारिपलट सो नर भयो, ऐसे दीनदयाल ॥२॥

उक्त घटनाओं पर सामान्य दृष्टि

स्वतन्त्र समालोचना एक दुष्प्राप्य गुण है। कई समालोचक तो अन्धविश्वासी होकर किसी प्राचीन साम्प्रदायिक प्रथा पर विचार तक नहीं करना चाहते और कितने ऐसे समालोचक हैं जो ईर्ष्या, द्वेष अथवा आवेशवश सच्ची कहानियों की भी छीछालेदर कर बैठते हैं। समालोचना करते समय सत्य को सामने रख कर जो कुछ कहा जाय वह सचाई के प्रेमियों को सह्य होगा। मेरी धारणा है कि तुलसी-दासजी के जीवनचरित्र के साथ उक्त वर्णन उनकी महिमा बढ़ाने के लिये ही जोड़ गये हैं। आज दिन भी अमुक महात्मा ने सखुए के पेड़ में आम फला दिये, अमुक महात्मा ने सरयू नदी में से पानी भरवा मँगाया और वह घी हो गया, अमुक महात्मा स्कूल के डिप्टी इन्स्पेक्टर थे जिनकी अनुपस्थिति में भगवान स्वयम् ही डाइरे-क्टर आफ पब्लिक इन्स्ट्रक्शन के साथ उक्त भक्तराज डिपुटी इन्स्पेक्टर के स्थाना-पन्न हो अमुक स्कूल में निरीक्षणार्थ गये थे—इत्यादि ऐसी ऐसी बहुतेरी बातें और जटिल काफिये सुने सुनाये जाते हैं, जो विचारशीलों के समक्ष हास्य के अतिरिक्त प्रभावोत्पादक नहीं हो सकते। समय समीक्षा और विचार का है। लोग अब अन्ध-विश्वासों से उदासीन हो रहे हैं। आरा-निवासी वयोवृद्ध हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक लाला शिवनन्दन सहाय जी को लगभग पचीसों वर्ष से मैं जानता हूँ। आप गोसाईंजी के साहित्य के हार्दिक भक्त हैं। सुप्रसिद्ध मासिक पत्रिका **'माधुरी'** के वर्ष २ खंड १ संख्या १ पृष्ठ २४ पर 'गोस्वामी तुलसीदासजी' शीर्षक लेख में आप भी गोसाईं जी के जीवन सम्बन्धी ऊटपटाँग लेखों से बहुत कुछ ऊबे प्रतीत होते हैं। आपने अपनी अनुभवपूर्ण मीठी लेखनी से इस सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है उसे पाठकों के मनोविनोदार्थ उद्धृत किये देता हूँ :—

"भारत के प्रायः सभी प्रान्तों के लोग आ-बाल-वृद्ध, पठित-अपठित गोस्वा-मी तुलसीदास से कुछ न कुछ अवश्य परिचित हैं, और उनका नाम सादर स्मरण करते हैं। आपका जीवन वृत्तान्त (गद्य या पद्य-बद्ध) रामायण के प्रायः सभी संस्करणों में, किसी न किसी रूप में, प्रकाशित देखा जाता है। भिन्न भिन्न भक्त-मालों में भी उसका वर्णन हुआ है। पर उन सब में लेखकों की श्रद्धा-भक्ति का विशेष प्रभाव देख पड़ता है। इसका कारण कुछ तो सांप्रदायिक गौरव जतलाना और कुछ इस महान् महात्मा की महिमा दिखलाना है। इसीसे इनकी जीवन-गाथा में बहुत सी ऐसी अनैसर्गिक घटनाओं का समावेश हुआ है, जिन्हें स्वीकार करने के

लिये सब लोग तैयार नहीं देखे जाते। कुछ ऐसे वर्णन भी आए हैं, जिन्हें मानने में इतिहास हम लोगों की सहायता नहीं करता। कुछ वर्णन स्वाभाविक होने पर भी, केवल वर्णनशैली की विचित्रता के कारण, हास्यास्पद हो गये हैं। सभी महात्माओं के जीवन-चरित्रों में निश्चय ही कुछ न कुछ आश्चर्यजनक घटनाएँ पाई जाती हैं। इसी देश में नहीं, सभी देशों में। चरित्रलेखक लोग प्रचलित गाथाओं और सुनी सुनाई बातों को भी अपने ग्रन्थों में स्थान देते हैं। परन्तु उनका बाहुल्य, विषय को बेमजे कर देता है। हमारी समझ में महापुरुषगण अपनी सच्चरित्रता तथा सद्गुणों ही से सदा देदीप्यमान रहते हैं, अनैसर्गिक और आश्चर्यजनक घटनाएँ उनकी महिमा को नहीं बढ़ातीं। कुछ देशी और विदेशी महात्माओं का ठीक इतिवृत्त भी प्राप्त नहीं होता। ऐसी अवस्था में अनुमान ही से काम लिया जाता है। गोसाईंजी के विषय में भी यही बात समझिये। आपके जीवन की जितनी बातें आज तक सर्वसाधारण को ज्ञात हैं, उनसे निश्चय-पूर्वक केवल इतना ही कहा जा सकता है कि आपने भारत में जन्म लेकर अपनी ललित लेखनी के बल से देश का असाधारण उपकार किया है। नहीं तो, हमारी राय में, इनके जन्मकाल, जन्मस्थान, कुल-परिवार तथा शिक्षा आदि, किसी भी बात का कुछ ठीक पता नहीं लगता। जिन बातों का कुछ पता भी लगता है, उनपर अपूर्व रंग चढ़ाया गया है, यों तो कहने को सभी कुछ लिखा हुआ है।"

ऊपर के लेख में लालाजी की लेखनी ने भी माना है कि कतिपय लेखकों ने गोस्वामी जी की जीवनी पर अपूर्व रंग चढ़ा दिया है। अब मैं उपर्युक्त घटनाओं और वर्णनों पर कुछ विचार करना चाहता हूँ।

प्रेत की कथा—वेदादि सत्य ग्रन्थों में कहीं भूत प्रेतादि का वर्णन नहीं आता। इन शब्दों के व्यवहार भी प्रचलित आधुनिक अर्थों में नहीं देखे जाते। सामयिक दार्शनिक एवं वैज्ञानिक दल भी इनके अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता। 'भूत' शब्द पञ्चतत्त्व, प्राणी और अतीत काल का वाचक है। इसी प्रकार प्रेत शब्द मृतक शरीर का पर्यायवाची समझा गया है, जैसा मनुस्मृति अ० ५ श्लो० ६५ में आया है:—

> गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेधं समाचरन्।
> प्रेतहारैः समं तत्र दशरात्रेण शुध्यति॥

न्याय-दर्शन, प्रथमाह्निक, सूत्र १९ में लिखा है "पुनरुत्पत्तिः प्रेत्यभावः" अर्थात् पुनर्जन्म ही प्रेत्य-भाव कहलाता है।

सब से बड़ी बात तो यह है कि गोसाईं जी ने अपने काव्यों में कहीं भी इस प्रेत-कथा की ओर इशारा नहीं किया है। मेरी धारणा है कि जीवनचरित्र के लेखकों ने अपने लेखों में मिथ्या विश्वास-वश सुनी सुनाई इस दन्तकथा का समावेश किया है।

हनुमानदर्शन—इसमें कोई सन्देह नहीं कि अपने उपास्य-देव श्रीराम का अनन्यभक्त समझ कर गोसाईं जी ने हनुमान जी की धाराप्रवाह स्तुति की है, परन्तु उनमें दर्शन पाने की बात कहीं दिखायी नहीं देती। हनुमानबाहुक की विकल प्रार्थनाएँ सिद्ध करती हैं कि गोसाईंजी का सारा शरीर कठिन पीड़ा से जर्जरीभूत हो रहा था, वैसे संकट समय में भी हनुमान जी ने दर्शन नहीं दिये थे। जीवन-चरित्र के लेखकों ने तो हनुमान जी को तुलसीदास का प्राइवेट सेक्रेटरी बना रखा है! गोसाईंजी के स्मरणमात्र से ही हनुमान जी को आना पड़ता था और वह (तुलसी-दास) जो कुछ कहते थे उन्हें (हनुमान जी को) मानना पड़ता था। कुछ रामा-यणी तो यहाँ तक कहते हैं कि रामचरित-मानस बनाने में गोसाईं जी को जहाँ कहीं अड़चन आ पड़ती थी वहाँ झटपट हनुमान जी आकर सम्मति दे जाया करते थे, इतना ही नहीं अपितु कहीं स्वयं रचना भी कर देते थे। जैसे बालकाण्ड के सीता-स्वयम्बर में एक सोरठे के तीन चरण

"शंकर चाप जहाज, सागर रघुबरबाहुबल।
बूड़े सकलसमाज"

जब गोसाईं जी बना चुके तब स्वयं चिन्तासागर में डूबने लगे कि सकल समाज में तो राम-लक्ष्मण भी सम्मिलित थे, क्या वे भी डूबने लगे? ऐसा अस-मञ्जस देखकर हनुमान जी ने चौथा चरण स्वयं रच दिया :—

"चढ़े जे प्रथमहिं मोह बस"।

ऐसी ऐसी शङ्काएँ उठा कर समाधान करनेवालों की बुद्धि की बलिहारी है। जब काव्य में **"सागर रघुबरबाहुबल"** पद पड़ा हुआ है अर्थात् रामचन्द्र का बाहुबल ही गम्भीर सागर है, तब उस समुद्र में स्वयं रामचन्द्र के डूबने की आशङ्का उठाना क्या भाव रखता है? जिन जिन को डुबोना था, उन्हें तो कवि स्वयं जहाज पर बैठा चुके हैं—

सब कर संशय अरु अज्ञानू। मन्दमहीपन कर अभिमानू॥
भृगुपति केरि गर्ब गरुआई। सुर मुनिवरन केरि कदराई॥
सियकर सोच जनक पछितावा। रानिन कर दारुण दुखदावा॥
शम्भुचाप बड़ बोहित पाई। चढ़े जाइ सब संग बनाई॥
राम बाहुबल सिन्धु अपारा। चहत पार नहिं कोउ कनहारा॥

× × × ×

× × × ×

शंकर चाप जहाज, सागर रघुबरबाहुबल।
बूड़े सकल समाज, चढ़े जे प्रथमहिं मोह बस॥

मैं समझता हूँ कि पाठक अब भलीभाँति समझ गये होंगे कि **"बूड़े सकल समाज"** से कवि का भाव उपर्युक्त समाज से था जो **"चढ़े जाइ सब**

संग बनाई" से निकलता है। ये सब मिल कर शंकर चापरूप जहाज पर चढ़ कर राम के बाहुबलरूप अथाह समुद्र का थाह लेने चले, पर जहाज समेत सब डूब गये।

चोरों के सामान्य आक्रमण करने पर तो हनुमान जी ने उन्हें भूमि-शायी बना दिया, पर, गोसाईं जी की असह्य बाहुवेदना का निवारण नहीं किया, यह भी आश्चर्य ही है।

रामदर्शन—भूत की सत्यता पर हनुमानदर्शन और हनुमान-दर्शन पर ही राम-दर्शन अवलम्बित है। "छिन्ने मूले नैव पत्रं न पुष्पम्" मूल के नष्ट हो जाने पर पत्र और पुष्प स्वयमेव नष्ट हो जाते हैं। मेरी धारणा है कि हिरन के पीछे राम और लक्ष्मण का दौड़ना, रामलीला का होना और श्याममूर्त्तिधारी राम का तुलसीदास की कुटिया पर पहरा देना सब मनगढ़न्त लीला है। इसी प्रकार वृन्दावन में कृष्ण-मूर्त्ति का राम-मूर्त्ति हो जाना भी लेखकों की लेखनी की करामात है। गोसाईंजी जहाँ पिशाच, यक्ष, राक्षस, सुर, असुर, नाग, गन्धर्व, मनुष्य और "सियाराम मय सब जग जानी। करौं प्रणाम जोरि जुग पानी" में प्राणिमात्र की वन्दना करते हैं, वहाँ कृष्ण को सिर झुकाने में उनकी कौन सी प्रतिष्ठा घटी जाती थी? गोसाईंजी अवतारवादी थे, स्मार्त्त वैष्णव थे, सभी अवतारों में विश्वास करने वाले थे, तब कृष्ण की वन्दना से सम्भव नहीं कि इन्कार कर सकें। इसके अतिरिक्त काशी में जहाँ अस्सीघाट पर गोसाईंजी अपने प्रबन्ध से रामलीला कराते थे वहाँ उनका कृष्णलीला कराने में भी योग देना सिद्ध है। अब तक उनके घाट पर कार्त्तिक कृष्ण ५ को प्रतिवर्ष "काली-दमन लीला" बहुत धूम धाम से मनायी जाती है। 'कृष्ण-गीतावली' के लेखक गोसाईंजी वृन्दावन जाकर इतने कट्टर हो गये कि कृष्ण-मूर्त्ति को सिर भी झुकाना उचित नहीं समझा? बहुत लोग हनुमान बाहुक की इस रचना **"बालपने सूधो मन राम सन्मुख भयो"** से यह मनमानी खैंच तान करते हैं कि इस पद्य में तुलसीदास जी ने राम का दर्शन पाना स्वीकार किया है, परन्तु वहाँ तो स्पष्ट भाव यह है कि बालपन में मन शुद्ध था, विषयवासनाओं का आविर्भाव नहीं हुआ था अतः राम की ओर उसकी प्रवृत्ति हुई। कितने ही भक्तजन नीचे लिखा दोहा भी दर्शन सम्बन्धी प्रमाण में पेश करते हैं:—

चित्रकूट के घाट पर, भइ सन्तन की भीर।
तुलसिदास प्रभु चन्दन रगरैं, तिलक देत रघुबीर॥

परन्तु विद्वज्जनों के समक्ष यह दोहा सुग्गा फुसलाने के अतिरिक्त अन्य किसी प्रयोजन का नहीं। भक्तजन तो यहाँ तक कहते हैं कि गोसाईंजी की विनय-पत्रिका पर श्रीरामचन्द्र जी ने हस्ताक्षर तक कर दिया था। भजनसंख्या २७७, २७८ और २७९ प्रमाण में दिये जाते हैं—

[२७७]

रामराय बिन रावरे मेरे को हितू साँचो।
स्वामी सहित सब सों कहौं सुनि गुणि विशेषि कोउ रेख दूसरी खाँचो ॥ १ ॥
देह जीव योग के सखा मृषा टाचन टाँचो।
किये विचार सार कदलि ज्यों मणि कनक संग लघु लसत बीच बिच काँचो॥२॥
विनयपत्रिका दीन की बापु आपु ही बाँचो।
हिये हेरि तुलसी लिखी सो स्वभाव सही करि बहुरि पूछियेहि पाँचो ॥ ३ ॥

[२७८]

पवनसुवन रिपुदवन भरतलाल लषण दीन की।
निज निज अवसर सुधि किये बलि जाउँ दास आस पूजि हैं खास खीन की।
राजद्वार भली सब कहैं साधु समीचीन की।
सुकृत सुयश साहब कृपा स्वारथ परमारथ गति भये गतिविहीन की।
समय सँभारि सुधारिबी तुलसी मलीन की।
प्रीति रीति समुझाइबी नतपाल कृपालुहि परमिति पराधीन की।

[२७९]

मारुति मनरुचि भरत की लखि लषण कही है।
कलिकालहूँ नाथ नाम सों प्रतीति प्रीति एक किङ्कर की निबही है।
सकल सभा सुनि लै उठी जानी रीति रही है।
कृपा गरीब-निवाज की देखत गरीब को साहब बाँह गही है।
बिहँसि राम कह्यो सत्य है सुधि मैं हूँ लही है।
मुदित माथ नावत बनी तुलसी अनाथ की परी रघुनाथ हाथ सही है ॥

ऊपर के भजन संख्या २७७ के अनुसार पता चलता है कि गोसाईंजी के हृदय का भाव यह है कि विनय-पत्रिका स्वीकृत्यर्थ श्रीरामचन्द्र की सेवा में प्रविष्ट की गई। भजन संख्या २७८ में हनुमान, शत्रुघ्न, भरत और लक्ष्मण से सिफारिश करने का इशारा किया गया है।

भजन संख्या २७९ में जो कुछ लिखा है उसका निष्कर्ष यह है कि हनुमान जी के मन की रुचि भरत जी पहचान गये, और भरत जी को उसमें सहमत समझ कर लक्ष्मण जी ने तुलसीदास जी की सिपारिश श्रीरामचन्द्र जी से की है। सारी सभा ने तुलसीदास जी की भक्ति की प्रशंसा की इस पर श्रीरामचन्द्र जी ने हँस कर कहा कि मैं भी (सीता के द्वारा) तुलसी की सुधि पा चुका हूँ। अब तुलसी को भजन बनाने की आवश्यकता नहीं। समय समय पर जब मेरा स्मरण हो तब प्रसन्न होकर सिर झुका देने में ही उसकी बन जायगी। ऐसा कह कर विनय-पत्रिका पर हस्ताक्षर बना दिया।

मैं समझता हूँ कि कवियों की यह वर्णनशैलीमात्र है। रामचन्द्र जी का सभा में बैठना, उसमें तुलसीदासजी की विनयपत्रिका का पेश होना क्या अर्थ रखता है, कुछ समझ में नहीं आता। तुलसीदास जी ने संसार को धोखे में डाला है, ऐसा मानने का भी जी नहीं चाहता। जैसी कवियों की और कल्पनायें होती हैं वैसी ही यह भी मन की एक कल्पनामात्र है। "सही करना" यह स्वीकार अर्थ में आता है। गोसाईंजी ने जब बहुत विनय की और उनका हृदय शुद्ध हो गया तब उन्हें ऐसा भासित हो सकता है कि राम ने मेरी विनय-पत्रिका स्वीकार कर ली। महाराज रघुराज सिंह ने तो स्वरचित भक्तमाल में लिखा है कि "विनय-पत्रिका बनाकर गोसाईंजी ने काशी के विश्वनाथ-मन्दिर में रख दिया। विश्वनाथ जी ने उस पर हस्ताक्षर बना दिये"। अधिकतर सम्भव है कि पण्डा जी की करामात हो। हिन्दीभाषा के सुदृढ़ मर्मज्ञ, रामचरित-मानस के टीकाकार श्रीयुत बाबू श्याम-सुन्दर दासजी बी० ए० स्वरचित टीका की भूमिका के पृष्ठ ६९ पर इस प्रकार लिखते हैं:—

"हमने इस निबन्ध के लिखने में यही सिद्धान्त रक्खा है कि जो जो बातें तुलसीदास जी के विषयमें प्रसिद्ध हैं उनका उल्लेख मात्र कर दें। उन पर अपना दृढ़ मत देने या उनकी पूरी पूरी छान बीन करने का हमने उद्योग नहीं किया; क्योंकि इससे कोई फल नहीं निकलता। पहले सिद्ध महात्मा यों ही अद्भुत जीव होते हैं फिर उनके भक्त अनुयायी उनकी अद्भुतता की मात्रा को इतना बढ़ा देते हैं कि सत्या-सत्य का निर्णय करना कठिन हो जाता है।"

कारावास कहानी—दिल्ली के बादशाह जहाँगीर ने गोसाईंजी को कैद किया था जिसका वर्णन पहले हो चुका है। इस घटना पर मैं अपनी कोई सम्मति न लिख कर उक्त श्यामसुन्दर बाबू की सम्मति को ही उद्धृत किये देता हूँ:—

"प्रियादास जी ने भी इस कथा को लिखा है और लिखा है कि अब तक भी उसमें कोई नहीं रहता। परन्तु जान पड़ता है कि दिल्ली के नये किले के बननेपर पुराने किले में बानरों के अधिक निवास करने और कोट को तहस नहस कर देने से ही यह बात प्रसिद्ध हो गई है। यह भी सम्भव है कि जहाँगीर ने इन्हें बुलाया हो और कुछ दिनों कैद रखा हो। तुलसीदास जी की मृत्यु संवत् १६८० में हुई और बादशाह शाहजहाँ संवत् १६८५ में गद्दी पर बैठा और इसीने नई दिल्ली (शाह-जहाँनाबाद) बसाई और किला बनवाया। बैजनाथदास ने लिखा है कि जहाँगीर ने अपने बेटे शाहजहाँ के नाम से नगर बसाया; परन्तु ऐसा नहीं है, नई दिल्ली को शाहजहाँ ने ही बनवाया था।

मृतक को जीवित करना—यह कथा भी मनगढ़न्त प्रतीत होती है। यदि उस शरीर से आत्मा पृथक् हो गई थी तो पुनः उस आत्मा का आह्वान किस

प्रकार हुआ ? यदि आत्मा पृथक् नहीं हुई थी तो उसकी मृतक संज्ञा कैसे हुई ? हाँ; बेसुध मनुष्य, जो मृतप्राय कहा जाता है, किसी युक्ति अथवा औषधि से होश में लाया गया होगा।

नन्दी का भोजन करना—विश्वनाथ जी का नन्दी जो वहाँ पत्थर की मूर्त्ति स्वरूप में था वह उस ब्रह्महत्यारे का दिया हुआ भोजन किस प्रकार खा गया ? जड़ पदार्थ भोजन नहीं किया करते यह बच्चे भी जानते हैं। हाँ, गोस्वामी जी ने राम-नाम का उच्चारण करा कर उस हत्यारे को शुद्ध कर लिया होगा, यह ठीक जँचता है।

लड़की से लड़का—यह बात सृष्टि-क्रम के एक दम विरुद्ध प्रतीत होती है। अनुमान है कि इन कथाओं की सृजना गोसाईं जी की महिमा बढ़ाने के लिए उनके भक्तों ने भ्रमवश की है। ऐसी ऐसी कथाओं से किसी गुणहीन व्यक्ति की महिमा अल्पकाल के लिए भले ही बढ़ जाय, हमारे चरित्र-नायक तो स्वनामधन्य थे। उनकी काव्यकीर्त्ति-कौमुदी ही पर्याप्त रूप से उनकी सच्ची महिमा का विस्तार कर रही है। विद्वज्जनों से प्रार्थना है कि वे ऐसे ऐसे कल्पित कथानकों को इनकी जीवनी से निकाल कर उसपर पर्याप्त प्रकाश डालने का प्रबन्ध करें। तुलसीदास जी की एक कृति जीती जागती कीर्ति है, उस पर कोई शान फेरने की आवश्यकता नहीं। ऊपर की कल्पित कथाएँ उनकी कीर्त्ति-कौमुदी पर कोई प्रकाश नहीं डाल सकतीं, प्रत्युत अविश्वास के मेघ से उसे आच्छादित कर संसार में निबिड़ अन्धकार-रूप भ्रम फैला सकती हैं। मुर्दा जिलाने, प्रेत का दर्शन होने और हनुमान जी से वार्त्तालाप करने की कहानी को सुनकर कोई सम्प्रदायविशेष भले ही गोस्वामी तुलसीदास जी को महात्मा समझ ले, परन्तु मैं तो समझता हूँ कि अपनी अमूल्य कविता और भक्ति के कारण ही वे जगद्वन्द्य थे, हैं और रहेंगे। उनकी जीवनी में कोई नमक मिर्च मिलाने की आवश्यकता नहीं।

सत्य बात तो यों है:—

भूत प्रेत नाहीं कोऊ प्राणी हैं विशेष जग,
तुलसी गोसाईं जी ने जाकी अरचा करी।
हनुमान राम दिव्य लोक में विराजैं आज,
तिनको बुलाइ बहु बुद्धि खरचा करी॥
मृतक न जीवे, कहूँ सुता सुत ह्वै न सके,
पाहन न खात, बात योंही परचा करी।
प्रियादासजी ने भक्ति विबस गोसाईं जीकी,
महिमा बढ़ाइबे के हेतु चरचा करी॥

(जन्मकाल)

पीछे की अवतरणिका में यह स्पष्ट लिखा जा चुका है कि कविसम्राट गोस्वामी तुलसीदास जी की जीवनसम्बन्धी प्रायः सभी बातें विवादग्रस्त हैं। प्रियादास जी के लेखों के बाद मिरजापुर निवासी पण्डित रामगुलाम द्विवेदी, काशी निवासी विद्वद्वर मयंककार पण्डित शिवलाल जी पाठक, महाराज रघुराज सिंह, डाक्टर ग्रियर्सन, साहित्यमर्मज्ञ माननीय मिश्रबन्धु, तथा लाला शिवनन्दन सहाय जी प्रभृति विद्वानों के लेख गोसाईं जी के जीवन सम्बन्ध में प्रायः प्रामाणिक समझे जाते हैं। पण्डित रामगुलाम द्विवेदी के कथनानुसार गोसाईं जी का जन्म, संवत १५८९ में हुआ था। इस लेख से डाक्टर ग्रियर्सन और माननीय मिश्रबन्धु भी सहमत हैं। 'शिवसिंहसरोज' में इनका जन्म-संवत् १५८३ माना गया है। पाठक जी ने तो गोसाईं जी को दीर्घायु प्रदान की है। उनके मतानुसार तुलसीदास जी का जन्म-संवत् १५५४ ही है। गोसाईं जीका स्वर्गवास संवत् १६८० है, इसमें सभी विद्वान् सहमत हैं। ऊपर के लेखों से इनकी आयु कम से कम ९१ और अधिक से अधिक १२६ वर्षों की सिद्ध होती है। इस सम्बन्ध में विद्या-भूषण बाबू श्यामसुन्दर दास जी रामचरित-मानस की टीका की भूमिका के पृष्ठ १५ पर यों लिखते हैं:—

"इस अवस्था में यह बात बड़ी ही संदिग्ध हो जाती है और निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। इस समय जो कुछ हम दृढ़तापूर्वक कहने में समर्थ हैं वह इतना ही कि स्वामी जी का जन्म १६ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुआ और वे बड़ी आयु भोग कर परमधाम को सिधारे।"

प्रियादास जी ने भक्तमाल की टीका पर जन्म-मरण-संवत्-चक्र इस प्रकार दिये हैं:—

संवत्	जन्म	परलोकवास	जीवन
कलि	४६३३	४७२४	९१ वर्ष
विक्रम	१५८९	१६८०	"
ईस्वी	१५३२	१६२३	"
शाका	१४५४	१५४५	"

(जन्म-स्थान)

इस सम्बन्ध में भी पूर्व लेखकों के लेखों में मतैक्य नहीं है। कोई हस्तिनापुर, कोई चित्रकूट के निकटस्थ हाजीपुर नामक ग्राम को और कोई बाँदा जिलान्तर्गत राजापुर नामक स्थान को गोसाईं जी का जन्मस्थान बतलाते हैं। बहुत से

लोग कहते हैं कि "तारी" इनकी जन्मभूमि है। अभी तक जितनी खोज हुई है उसमें राजापुर की ओर ही अधिक सम्मति पायी जाती है। म० बेणीमाधव दास, पण्डित रामगुलाम द्विवेदी, बाबू शिवसिंह सेंगर, महात्मा रघुबरदास जी एवं बाबू श्यामसुन्दर दास जी राजापुर जन्मभूमि बतलाते हैं। कहा जाता है कि राजापुर में गोसाईंजी की कुटी अब तक विद्यमान है और कई विशाल मन्दिर भी उनके बनावाये अद्यावधि स्थित हैं। मेरे मन में केवल खटका इस बात का है कि यदि राजापुर ही तुलसीदास जी का जन्म-स्थान होता तो इतने विरक्त और माता-पिता से परित्यक्त होते हुए भी अपनी जन्मभूमि पर जाकर ही कुटिया न बनाते। सम्भव है—

"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी"

का स्मरण हो आया हो।

जन्म-वर्णन

लोक में प्रसिद्ध है कि गोसाईंजी के पिता का नाम आत्माराम दुबे तथा माता का नाम श्रीमती हुलसी देवी था। गोसाईंजी ने अपने किसी भी ग्रन्थ में अपने माता-पिता के नाम नहीं दिये हैं। कुछ एक स्थलों पर 'हुलसी' शब्द आया है जिससे अनुमान किया जाता है कि उनकी माता का नाम 'हुलसी' ही है। अकबर बादशाह के प्रसिद्ध वजीर नवाब खानखाना रहीम के साथ गोसाईंजी का बड़ा ही स्नेह था। खानखाना भी हिन्दी-भाषा के अच्छे कवि थे। एक दिन तुलसीदास जी के पास एक दीन ब्राह्मण आया और अपनी कन्या के विवाहार्थ उसने कुछ धन की याञ्चा की। गोस्वामीजी ने एक पुर्जे पर अधोलिखित दोहार्द्ध लिख कर उस ब्राह्मण को देकर कहा कि तुम इसे ले जाकर खानखाना के हाथ में दोः—

सुर तिय नर तिय नाग तिय, अस चाहत सब कोय।

ब्राह्मण ने वैसा ही किया। इस पर खानखाना ने उस ब्राह्मण को बहुत कुछ धन देकर विदा किया और कहा कि इस कागज को तुम पुनः गोसाईंजी के हाथ में जाकर दे दो। खानखाना ने उसी पद के नीचे यह लिख दियाः—

गोद लिये हुलसी फिरै, तुलसी से सुत होय॥

इसी 'हुलसी' से लोगों की यह धारणा है कि खानखाना ने इस शब्द को श्लेषार्थ में प्रयुक्त किया है। हुलसी का अर्थ 'प्रसन्न होकर' और 'तुलसीदास की माता' का भी वाचक है। गोसाईंजी स्वयं हुलसी शब्द को प्रसन्नता वा प्रकाश अर्थ में प्रयुक्त करते हैं, जैसा निम्न पदों से प्रकट है :—

किसीने तुलसीदास से सूरदास की प्रशंसा की, उसपर इन्होंने कहा :—

"कृष्णचन्द्र के सूर उपासी। ताते इनकी बुद्धि हुलासी।
रामचन्द्र हमरे रखवारा। तिनहिं छाँड़ि नहिं कोउ संसारा॥"

इसके अतिरिक्त मानस-रामायण में आया है :—

शम्भु-प्रसाद सुमति हिय हुलसी। राम-चरित-मानस कवि तुलसी॥

ऊपर के दोनों ही पद्यों में 'हुलसी' शब्द प्रकाशित अर्थ में व्यवहृत हुआ है। अब एक अन्य स्थल पर इस शब्द को कवि ने प्रयुक्त किया है :—

"रामहिं प्रिय पावनि तुलसी सी। तुलसिदास हित हिय हुलसी सी॥"

इस चौपाई में जो 'हुलसी' शब्द आया है वह 'माता' का द्योतक यदि न समझा जाय तो अन्यार्थ वहाँ संगत नहीं प्रतीत होता। यदि 'माता' का ही सूचक समझें तो आपत्ति आती है कि इनकी माता ने तो इन्हें जन्म लेते ही परित्याग कर दिया, तब गोसाईंजी कैसे कहेंगे कि राम की कथा हुलसी के समान हृदय में हित करनेवाली है !!! हो सकता है कि गोसाईंजी के हृदय में उस समय माता द्वारा किया दुर्व्यवहार भूल गया हो और स्वाभाविक मातृस्नेह का स्रोत उमड़ आया हो।

हिन्दी भाषा के कई कवियों ने 'हुलसी' शब्द को प्रकाशित और प्रसन्नता अर्थ में प्रयुक्त किया है, जैसा नीचे के पद्यों से प्रकट होता है :—

सवैया

तुलसी कविता सविता तमहारि, खरारि सिया छविता हुलसी।
हुलसी नवधा दशधा सुलसी, मदमोह महानद को पुलसी॥
पुलसी सब टूट गई जम की, सुनि जीव तजें कुमति कुलसी।
कुलसी यह संतन के गुण की, गहु "रामसरणि" कविता तुलसी॥१॥
शिवकी शिवता कविता हनुमन्त, सुसन्तन की समता हुलसी।
रसता सियराम स्वरूपहिं की, नमता सुभुशुण्डी की आयवसी॥
ससि सीतलता सुभ कोमलता, प्रदता कल कल्पलता किलसी।
रसरंगमणी अस जानि हिये, गहु रामकथा कविता तुलसी॥२॥

वंश-वर्णन

इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं कि तुलसीदास जी ब्राह्मण के बालक थे। "दियो सुकुल जन्म शरीर सुन्दर हेतु जो फल चारि को" और "जायो कुल मंगन" इत्यादि पद्यों से गोस्वामी जी ने स्वयं अपने ब्राह्मणवंशज होने की सूचना दी है। इस विषय में किसी भी ग्रन्थकार के बीच मत-द्वैत नहीं देखते। हाँ, कोई इन्हें कान्यकुब्ज और कोई सरयूपारीण बतलाते हैं। पण्डित रामगुलाम द्विवेदी इन्हें सरयूपारी ब्राह्मण तथा पतिऔजा के दुबे मानते हैं। गोत्र पराशर बतलाया जाता है। कहा भी है "तुलसी पराशर गोत्र दुबे पतिऔजा के"।

(अभुक्तमूल)

'नत्र भवति यन्न भाव्यं
यद्भाव्यं तद्भवति विनैव यत्नात्।
करतलगतमपि नश्यति
यदि भवितव्यता नास्ति' ॥

भवितव्यता बड़ी ही प्रबल होती है। जो भावी है वह होकर रहेगी, उसे कोई रोक नहीं सकता।

गणकचक्रचूड़ामणि स्वर्गीय पण्डित सुधाकर द्विवेदी के मतानुसार गोसाईं-जी का जन्म अभुक्तमूल में हुआ था, अतः इनके माता-पिता ने पौराणिक प्रथानुसार इनका परित्याग कर दिया। मुहूर्त्तचिन्तामणि नामक आधुनिक ज्योतिष-ग्रन्थ में लिखा है :—

ज्येष्ठान्त्यस्य प्रथमाष्टनाड्यो मूलस्य शाकान्तिमपञ्चनाड्यः।
जातं शिशुं तत्र परित्यजेद्वा मुखं पितास्याष्टसमा न पश्येत् ॥

अर्थात् मूल के आरम्भ की आठ तथा ज्येष्ठा के अन्त की तेरह घटिकाएँ अभुक्तमूल कहलाती हैं। इनमें जो बालक पैदा हो उसका परित्याग कर दे अथवा पिता आठ वर्ष तक उसका मुख न देखे। इस घटना के ऊपर विचार करते हुए खड्ग-विलास प्रेस से निकलने वाली हरिश्चन्द्रकला के सम्पादक महाशय लिखते हैं :—

"आजकल तो ऐसे बालक को कोई नहीं त्याग सकता, क्योंकि ऐसा करने वाले को ताजीरात हिन्द I. P. C. की ३१७ धारा (दफा) के अनुसार कारागार की विपत्ति अवश्य झेलनी पड़ेगी। कदाचित् मुसलमानी शासनकाल में ऐसा किया जाता हो। क्या उस समय भी माता-पिता का ऐसा वज्र हृदय होता था कि ऐसे पुत्र को जन्म लेते ही वे परित्याग कर देते थे ! यह बात माता-पिता के स्वाभाविक पवित्र अनिर्वचनीय स्नेह के विरुद्ध प्रतीत होती है। प्रति दिन देखा जाता है कि सन्तान के सुख के लिए माता-पिता कैसा कैसा कष्ट उठाने पर सदा तत्पर रहते हैं। कहीं कहीं तो ऐसी घटना देखने में आती है जिससे मन मुग्ध हो जाता है और बुद्धि चकित हो जाती है......"। मैं भी सम्पादक महाशय की सम्मति से सहमत हूँ, परन्तु विचारना यह है कि गोसाईंजी के माता-पिता बेचारे पौराणिक विचारों में बद्ध थे ही, ऐसी दशा में बालक का परित्याग कर देना कोई आश्चर्यजनक नहीं। हाँ अलबत्ता, मुहूर्त्तचिन्तामणि के रचयिता का वज्रहृदय तो अवश्य था जिसने "जातं शिशुं तत्र परित्यजेद्वा" की व्यवस्था दे दी और तनिक दया न आयी। आजकल तो राज्य-नियमानुसार ऐसा कोई नहीं कर सकता। हाँ, "मुखं पिता-स्याष्टसमा न पश्येत्" का भले ही पालन करे !!! जो हो, गोस्वामी जी का अपने

माता-पिता द्वारा परित्यक्त होना ठीक है। कवित्तरामायण उत्तरकाण्ड के ५६ वें छन्द में कवि ने स्वयं लिखा है :—

मातु पिता जग जाय तज्यौ, विधिहू न लिखी कछु भाल भलाई।
नीच निरादर भाजन कादर, कूकुर टूकन लागि ललाई॥
राम स्वभाव सुन्यौ तुलसी, प्रभु सों कह्यो बारक पेट खलाई।
स्वारथ को परमारथ को, रघुनाथ सों साहब खोरि न लाई॥

ऊपर के पद्य का प्रथम चरण भलीभाँति सिद्ध करता है कि माता-पिता ने जन्म होने के अनन्तर ही गोसाईंजी को त्याग दिया था। इसी आशय की पुष्टि विनय-पत्रिका का अधोलिखित भजन भी करता है, जिसका तृतीय चरण विशेष विचारणीय है:—

नाम राम रावरो हित मेरे।
स्वारथ परमारथ साथिन सों भुज उठाय कहौं टेरे।
जनक जननि तज्यो जनमि करम बिनु बिधि सिरज्यो अवडेरे॥
मोहि सो कोउ कोउ कहत राम को सो प्रसंग केहि केरे॥
किधौं ललात बिन नाम उदर लगि दुखहु दुखित मोहि हेरे।
नाम प्रसाद लहत रसाल फल अब हौं बबुर बहेरे॥
साधत साधु लोक परलोकहिं सुनि सुनि जनत घनेरे।
तुलसी के अवलम्ब नाम ही की एक गांठि केइ फेरे॥

अब आप इस भाव की पुष्टि के लिये कविवरविरचित कवित्त-रामायण, उत्तरकाण्ड, कवित्त ७३ को पढ़िये:—

जायो कुल मंगन बधायो न बजायो सुनि, भयो परिताप पाप जननी जनको।
बारे ते ललात बिललात द्वार द्वार दीन, जानत हौं चारि फल चारिही चनकको।
तुलसी सो साहिबसमर्थ को सुसेवकहि, सुनत सिहात सोच बिधिहू गनकको।
नाम राम रावरो सयानो किधौं बावरो, जो करत गिरीते गुरु तृणते तनकको।

उपर्युक्त कविता में "जायो कुलमंगन" से दरिद्र ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होना भी सिद्ध होता है। जन्म के समय बधावे न बजने का कवि को शोक हुआ, परन्तु परम पिता परमात्मा की ऐसी कृपा हुई कि इनके नाम की जगत में दुन्दुभी बज गई और नगर-नगर, ग्राम-ग्राम इनके ग्रन्थों को पढ़कर लोग बधावे बजाया करते हैं। इनके नाम पर जितने बधावे बजे और बज रहे हैं स्यात् ही जगत् में अन्य किसी महाभाग को ऐसा सौभाग्य प्राप्त हो। "करत गिरी ते गुरु तृण ते तनक को" की सच्ची घटना इन्हीं के जीवन में संघटित हुई। कुछ लोगों की ऐसी धारणा है कि तुलसीदास को उनके मात-पिता ने जीते ही जी छोड़ नहीं दिया था प्रत्युत उनके (गोसाईंजी के) बचपन ही वे (माता-पिता) स्वर्गवासी हो गये। इसी भाव को लेकर तुलसीदास ने भी "मातु पिता जग जाय तज्यो" इत्यादि लिखा है। बाबू श्यामसुन्दर दास जी

के मतानुसार तो माता-पिता का परित्याग करना अथवा स्वर्गवासी होना दोनों में कोई ठीक नहीं। आप लिखते हैं :—

"पण्डित सुधाकर द्विवेदी के आधार पर डाक्टर ग्रियर्सन अनुमान करते हैं कि अभुक्तमूल में जन्म होने के कारण इनके माता-पिता ने इन्हें त्याग दिया था। मूल में जन्मे लड़कों की मूल-शान्ति और गोमुख-प्रसव-शान्ति भी शास्त्र के लेखानुसार होती है, प्राय: लड़के अनाथ की तरह नहीं छोड़ दिये जाते। इसलिये यह भी अनुमान किया जाता है कि या तो माता-पिता ने इन्हें कबीर जी की तरह फेंक दिया हो, या इनके जन्म के पीछे ही उनकी मृत्यु हो गई हो। परन्तु यह बात ठीक नहीं जान पड़ती। क्योंकि इनके जन्म लेते ही यदि माता-पिता मर जाते या उन्होंने उन्हें फेंक दिया होता तो तुलसीदास जी के कुल, वंश आदि का पता लगाना कठिन होता।"

इसी सम्बन्ध में श्रीयुत लाला शिवनन्दन सहाय जी इस प्रकार अपनी सम्मति प्रकाशित करते हैं :—

"जब इनके माता-पिता ने इन्हें त्याग कर कहीं फेंक दिया और इन्हें साधु उठाकर ले गये, तो इन्हें या अन्य लोगों को यह कैसे ज्ञात हुआ कि ये अमुक कुल के शिशु या अमुक व्यक्ति की सन्तान थे? कारण, यदि ग्रह-भय से इन्हें दूर कर दिया होगा, तो शैशवावस्था में ही। सयाने होने पर न इससे कुछ लाभ होता, और न उनसे प्रेम-वश विलग ही करते बनता। अनुमान यह कहता है कि 'जननि जनक तज्यो' से तात्पर्य्य यह है कि यह बचपन ही में माता-पिता से हीन हो गये थे और साधु-मण्डली में रहने लगे।"

आगे की कुछ पंक्तियों में केवल इसी प्रश्न पर कुछ विचार किया जायगा कि तुलसीदास का माता-पिता द्वारा परित्यक्त होना सम्भव है वा नहीं।

[१] हरिश्चन्द्र-कला के सम्पादक महोदय कहते हैं कि यह घटना, माता-पिता के प्राकृतिक-प्रेम और स्वाभाविक-स्नेह के विरुद्ध प्रतीत होती है। वास्तव में बात तो ऐसी ही है। अपने सद्योजात बच्चे को त्याग देना कोई साधारण निष्ठुरता नहीं है, यह मैं भी मानता हूँ। कहना केवल यही है कि धर्मान्धता सब कुछ करा सकती है। जिस हिन्दू जाति के अन्दर मुहूर्त्तचिन्तामणि के रचयिता जैसे व्यवस्थापक प्रस्तुत हैं जो बालक को पैदा होते साथ ही त्याग देने की व्यवस्था देते हैं, उस जाति में क्या क्या अनर्थ उपस्थित नहीं हो सकता? कोई समय था जब कि धार्मिक मिथ्या विश्वासों में पड़कर माताएँ अपने लाड़िले बच्चों को गंगामैया को समर्पण कर अपनी गोद सूनी कर बैठती थीं। समय दूर नहीं गया है कि सहस्रों क्षत्राणियाँ अपनी नवजाता कन्याओं को पैदा होते साथ केवल इस मूर्खतावश मार डालती थीं कि उस समय के क्षत्रिय लोग किसी के शाला-श्वशुर बनना पसन्द नहीं

करते थे । हिन्दू जाति में सती की प्रथा प्रचलित थी जिसे अंगरेजी सरकार ने हाल में उठाया है । इस देश के अतिरिक्त अन्य देशों में भी प्रायः ऐसी प्रथाएँ प्रचलित पायी जाती हैं, जिन्हें समय समय पर सुधारकजन रोकते आये हैं । मुहम्मद साहेब के कुछ ही पहले अरब में यह प्रथा थी कि प्रायः स्त्रियाँ लज्जा के मारे लड़कियों को उत्पन्न होने के साथ जीवित ही जमीन में गाड़ देती थीं, जिसका वर्णन शमशुल उलमा मौलाना अलताफ़ हुसैन-हाली इस प्रकार करते हैं :—

"गर होती थी पैदा किसी घर में दुख़्तर । तो खौफ़े शमातत से वेरहम मादर ॥
फिरे देखती जब थी शौहर के तेवर । कहीं ज़िन्दा गाड़ आती थी उसको जाकर ॥
वह गोद ऐसी नफ़रत से करती थी खाली ।
जने साँप जैसे कोई जनने वाली ॥"

इन सब घटनाओं पर विचार करने से मन में यह बात आती है कि गोसाईं-जी के माता-पिता ने भी मुहूर्तचिन्तामणि को माननीय ग्रन्थ समझ कर त्याग दिया हो तो कुछ अधिक आश्चर्य की बात नहीं है ।

[२] माननीय श्यामसुन्दरदास जी तथा लाला शिवनन्दन सहाय जी का यह कथन कि यदि गोसाईंजी के माता-पिता जन्मते ही इन्हें त्याग देते अथवा कहीं फेंक आते तब तो गोसाईं जी के जन्मस्थान, वर्ण वा माता-पिता के नामादि का पता नहीं चल सकता, इत्यादि । इस सम्बन्ध में केवल दो बातों पर विचार करना है । पहली बात तो यह है कि तुलसीदास जी की जीवन-सम्बन्धी प्रायः सारी बातें अभी तक अनिश्चित एवं सन्दिग्धावस्था में पड़ी हैं इसीसे तो अनुमान होता है कि माता-पिता द्वारा परित्यक्त होना ठीक है । दूसरी बात यह है कि मान लीजिये कि राजापुर में आत्माराम दुबे नामक कोई एक मनुष्य रहता था , जिसकी स्त्री का नाम हुलसी था । इसी दम्पति के तुलसी नामक पुत्र पैदा हुआ । यतः यह बालक अभुक्त-मूल में उत्पन्न हुआ अतः माता-पिता ने घर से कहीं बाहर फेंक दिया । यह बात टोल-पड़ोस में फैलते फैलते समस्त राजापुर में फैल गयी । निदान यह सूचना सनसनी के साथ समीप के साधुओं ने सुनी और स्वाभाविक दयालुतावश उस बालक को उठा लाये और पालन-पोषण प्रारम्भ किया । काल पाकर आत्माराम दुबे और हुलसी का स्वर्गवास हो गया । तुलसी ने सयाने होने पर अपना सारा वृत्तान्त सन्तों से सुना और अपने ग्रन्थों में जहाँ तहाँ हीनता निदर्शनार्थ सबों का उल्लेख किया हो तो इसमें आश्चर्य अथवा असम्भव क्या है ?

उल्लिखित तीनों पद्यों में—जिनके प्रमाण ऊपर दिये गये हैं—कवि ने अपना वर्णन करते हुए माता-पिता द्वारा निज परित्याग दिखलाया है । अब आगे एक दृढ़ प्रमाण देता हूँ । देखिये विनयपत्रिका का भजन, संख्या २७५ :—

"द्वार द्वार दीनता कही काढ़ि रद परिपाहूँ।
है दयालु दुनि दश दिशा दुख दोष दलन क्षम कियो न संभाषण काहूँ ॥१॥
तनु जन्यौ कुटिल कीट ज्यों तज्यौ मातु पिताहूँ।
काहे को रोष दोष काहि धौं मेरे ही अभाग, मोसों सकुचत सब छुइ छाहूँ ॥२॥
दुखित देखि सन्तन कह्यौ शोचै जनि मन माहूँ।
तोसे पशु पाँवर पातकी परिहरे न शरण गये रघुबर ओर निबाहूँ ॥३॥
तुलसी तिहारो भये भयो सुखी प्रीति प्रतीति बिनाहूँ।
नाम की महिमा शील नाथ को मेरो भलो बिलोकि अबते सकुचाहुँ सिहाहूँ ॥४॥

अर्थ—(तुलसीदास कहते हैं कि) हे प्रभो! मैं द्वार द्वार अपनी दीनता कहता फिरा, दाँत निकाल कर लोगों के पाँव पड़ता रहा। संसार में ऐसे ऐसे दयालु विद्यमान हैं कि सब दोषों और दुःखों को दूर करने में समर्थ हैं, पर किसी ने मुझे पूछा तक नहीं ॥ १ ॥ और किसको कहूँ माता-पिता ने भी मुझे इस प्रकार छोड़ दिया जैसे कुटिल कीट (सर्प) अपनी तनु जन्यौ (शरीर से उत्पन्न) केंचुली को छोड़ देते हैं। मैं किस पर क्रोध करूँ अथवा किसका दोष दूँ, सब कुछ मेरा ही अभाग्य है कि सब लोग मेरी छाया तक छूने में संकोच करते हैं ॥ २ ॥ सन्तों ने मुझे दुखी देख कर कहा कि तुम मन में सोच मत करो। तुम से भी पशु और पातकी को शरण में आया जान कर श्रीराम ने नहीं त्यागा है, निर्बाह किया ॥३॥ जब से तुलसी ने ऐसा सुना तब से प्रीति-प्रतीति-हीन होकर भी तुम्हारा बना और सुखी है। हे नाथ! आप के नाम की महिमा, आप का शील अपनी भलाई जो आप के द्वारा हुई है उन सबों पर विचार कर संकोच में भी पड़ा हूँ और आश्चर्य भी करता हूँ ॥ ४ ॥

उल्लिखित पद्य का तीसरा चरण स्पष्ट बतलाता है कि गोसाईंजी के माता-पिता ने इन्हें शरीर-जनित होते हुए भी सर्प की केंचुली के समान त्याग दिया और पाँचवे चरण से सिद्ध होता है कि इन्हें साधुओं ने बचपन में पाला था। इस सम्बन्ध के सभी पद्यों में अपने परित्याग का वर्णन करते हुए कवि ने पहले माता शब्द का ही व्यवहार किया है। वास्तव में सन्तान के साथ पिता की अपेक्षा माता का ही स्नेह विशेष होता है। कविराज ने दर्शाया है कि पिता का परित्याग करना तो एक ओर रहा, दयामयी माता ने भी छोड़ दिया !!! वास्तव में अत्यन्त करुण-पूर्ण घटना है !!!

जो लोग "मातु पिता जग जाय तज्यौ" इस पद से यह अनुमान करते हैं कि गोसाईंजी के बचपन में ही उनके माता-पिता स्वर्गवास कर गये थे। पर यदि ऐसी बात होती तो इसी पद्य में "सुनत सिहात शोच विधिहू गनक को" ऐसा पक गोसाईंजी कदापि नहीं लिखते। गनक शब्द से गोसाईंजी उस गणक (ज्योतिषी)

को स्मरण करते हैं जिसने इन्हें अभुक्तमूल में जन्मा बतलाया था। साथ ही यह भी कहते हैं कि उसकी इस दुर्बुद्धि और निष्ठुरता पर ब्रह्मा भी शोच और आश्चर्य करते हैं। गोसाईंजी को माता और पिता ने बचपन में ही परित्याग कर दिया था, इसका पर्याप्त विश्वसनीय प्रमाण उन्हीं के ग्रन्थों से ऊपर दिया जा चुका है। मानस-मयङ्क के रचयिता पण्डित शिवलाल पाठक के लेखानुसार भी यही सिद्ध होता है कि गोसाईंजी ने पाँच वर्ष की अवस्था में ही संतों के बीच में रह कर रामायण की कथा सुनी थी:—

मन[४] ऊपर शर[५] जानिये, शर[५] पर दीन्हें एक[१]।
तुलसी प्रगटे रामवत, रामजन्म की टेक॥
सुने गुरू ने बीच शर[५], सन्त बीच मन[४०] गान।
प्रगटे सतहत्तर परे, ताते कहे चिरान॥

पाठक जी कहते हैं कि गोसाईंजी संवत् १५५४ में प्रकट हुए। ५ वर्ष की आयु में गुरु से रामायण की कथा सुनी, ४० वर्ष की आयु में पुनः सन्तों से वही कथा सुनी। सतहत्तर वर्ष की आयु के अनन्तर ग्रन्थ-रचना आरम्भ की। इस लेख से गोस्वामी जी का बचपन में बैरागियों के साथ रहना सिद्ध होता है।

वने रणे शत्रु जलाग्नि मध्ये
महार्णवे पर्वतमस्तके वा।
सुप्तं प्रमत्तं विषमस्थितं वा
रक्षन्ति पुण्यानि पुराकृतानि॥

महामहिम महेश्वर जिसकी रक्षा करता है उसे मनुष्य क्यों कर मार सकता है? जगत्पिता को इस अभुक्तमूलोत्पन्न बालक से जगत् की विलक्षण सेवा करानी थी, अतः उसकी संरक्षा का भार उसीके ऊपर एकमात्र अवलम्बित था। यदि सांसारिक माता-पिता ने छोड़ दिया तो क्या हुआ? जगज्जननी को उसे छोड़ना अभीष्ट न था और न उसके यहाँ "जातं शिशुं तत्र परित्यजेद्वा" की व्यवस्था ही मान्य थी।

भावी बड़ी प्रबल होती है, उसका प्रभाव अमिट है। उस अभुक्तमूलोत्पन्न माता-पिता द्वारा परित्यक्त बालक को महात्मा नरहरिदास नामक साधु ने अपने यहाँ रखकर पाला। इसी महात्मा ने अपने यहाँ रामायण की कथा सुनायी और विद्या सम्बन्धी नाना प्रकार की शिक्षाएँ यहीं पर इन्हें मिलीं जिसका प्रमाण राम-चरित-मानस के बालकाण्डस्थ एक दोहे से मिलता है:—

मैं पुनि निज गुरु सन सुनी, कथा सुसूकर खेत।
समुझी नहिं तस बालपन, तब अति रह्यों अचेत॥

गोसाईंजी ने

बन्दौं गुरु-पद-कञ्ज, कृपासिन्धु नररूप हरि।
महामोह तम पुञ्ज, जासु बचन रविकर निकर॥

इस सोरठे के "नररूप हरि" पद में अपने गुरु का "नरहरि" नाम अभिव्यक्त किया है। बाबू श्यामसुन्दर दास जी ने राम-चरित-मानस की टीका की भूमिका के पृष्ठ १९ पर इस सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है:—

"नरहरि रामानन्द जी के बारह शिष्यों में से थे, परन्तु इनकी गुरु-परम्परा की एक सूची डाक्टर ग्रिअर्सन को मिली है जो नीचे दी जाती है। उक्त डाक्टर साहब को एक सूची पटने से भी मिली है जो लगभग इसीसे मिलती है। केवल इतना ही अन्तर है कि रामानुज स्वामी तक परम्परा नहीं दी है और कहीं कहीं नामों में कुछ अन्तर है तथा कोई कोई नाम नहीं भी हैं; जैसे नं० १३, १४ शठकोपाचार्य और कूरेशाचार्य का नाम नहीं है, नं० १७ श्री वाकाचार्य के स्थान पर श्रीमद्यतीन्द्राचार्य है, नं० २३ श्री रामेश्वरानन्द के स्थान पर श्री राममिश्र, नं० ३१ श्री अग्यानन्द का नाम नहीं है, नं० ३७ श्री गरीबानन्द के स्थान पर श्री गरीबदास है।

१ श्रीमन्नारायण।
२ श्री लक्ष्मी।
३ श्रीधर मुनि।
४ श्री सेनापति मुनि।
५ श्री कारिसूनि मुनि।
६ श्री सैन्यनाथ मुनि।
७ श्रीनाथ मुनि।
८ श्री पुण्डरीक।
९ श्री राम मिश्र।
१० श्री पाराङ्कुश।
११ श्री यामुनाचार्य।
१२ श्री रामानुज स्वामी।
१३ श्री शठकोपाचार्य।
१४ श्री कूरेशाचार्य।
१५ श्री लोकाचार्य।
१६ श्री पराशराचार्य।
१७ श्री वाकाचार्य।
१८ श्री लोकार्यलोकाचार्य।
१९ श्री देवाधियाचार्य।
२० श्री शैलेशाचार्य।
२१ श्री पुरुषोत्तमाचार्य।
२२ श्री गङ्गाधरानन्द।
२३ श्री रामेश्वरानन्द।
२४ श्री द्वारानन्द।
२५ श्री देवानन्द।
२६ श्री श्यामानन्द।
२७ श्री श्रुतानन्द।
२८ श्री नित्यानन्द।
२९ श्री पूर्णानन्द।
३० श्री हर्यानन्द।
३१ श्री अग्यानन्द।
३२ श्री हरिवर्यानन्द।
३३ श्री राघवानन्द।
३४ श्री रामानन्द।
३५ श्री सुरसुरानन्द।
३६ श्री राघवानन्द।
३७ श्री गरीबानन्द।
३८ श्री लक्ष्मीदास जी।
३९ श्री गोपालदास जी।
४० श्री नरहरि दास जी।
४१ श्री तुलसीदास जी।

स्वामी रामानन्द जी का समय संवत् १४५० के लगभग माना जाता है। इस हिसाब से नरहरि दास जी का सोलहवीं शताब्दी में होना सम्भव है।"

शठकोपाचार्य के सम्बन्ध में टिप्पणी देते हुए श्यामसुन्दर बाबू लिखते हैं कि "रामानुज सम्प्रदाय के ग्रन्थों से स्पष्ट है कि शठकोपाचार्य रामानुज से पहले हुए हैं और यहाँ पीछे लिखा है, इसलिये यह सूची ठीक नहीं"।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि रामानुज सम्प्रदाय के अनुसार शठकोपाचार्य का नाम ९वीं पीढ़ी में होना चाहता था। 'मुनिवाहन' शठकोपाचार्य के शिष्य थे और मुनिवाहन के शिष्य का नाम यावनाचार्य और यावनाचार्य के शिष्य का नाम रामानुज स्वामी था। सम्भव है कि नामों के क्रम में काल पाकर कुछ परिवर्तन हो गया हो। तुलसीदास जी श्री स्वामी रामानन्द के मतावलम्बी स्मार्त वैष्णव थे। गोसाईंजी के गुरु ये ही नरहरिदास थे।

भक्तमाल की टीका पर जो टिप्पणी दी हुई है उससे तो सिद्ध होता है कि श्री रामानन्दजी स्वामी के शिष्य श्री अनन्तानन्द जी थे। जिनके शिष्य का नाम श्री नरहरि दासजी था और जो गोसाईंजी के गुरु हुए। अनुमान है कि इन्हीं नरहरि दास ने इस बालक का नाम रामबोला रक्खा होगा। कवितारामायण के उत्तर-काण्ड के ९४ वें छन्द से पता मिलता है कि तुलसीदास का पूर्व नाम 'राम-बोला' था।

"साहिब सुजान जिन स्वानहूको पच्छ कियो रामबोला नाम हौं गुलाम रामसाहिको"।

पुनश्च विनयपत्रिका के निम्न पद से भी उपर्युक्त कथन की पुष्टि हो जाती है:—

"राम को गुलाम नाम रामबोला राम राख्यौ काम इहै नाम द्वयहू कबहू कहत हौं"।

ऊपर विनयपत्रिका वाले भजन के "नाम रामबोला राम राख्यौ" इस पद का अर्थ बाबू श्यामसुन्दर दास जी यह लिखते हैं कि 'रामबोला' नाम राम के द्वारा रखा गया है। परन्तु बात ऐसी नहीं है जिसका कुछ पता नहीं चले वह ईश्वर की ओर से कहा जाता है, यह एक कथन की शैली मात्र है। तुलसीदास को नहीं पता लगा कि रामबोला नाम किसने रखा था। यही कारण है कि उन्होंने "नाम राम-बोला राम राख्यौ" इस पद की रचना की है। अधिकतर सम्भव है कि यह नाम उनके गुरु ने ही रखा होगा। प्रसिद्ध टीकाकार पण्डित रामेश्वर भट्ट जी इस भजन की टीका करते हुए इस प्रकार लिखते हैं:—

"मैं राम का गुलाम हूँ और (गुरु ने) मेरा रामबोला नाम रखा है"।

जो हो; रामबोला ने गुरु की सेवा में ही रहकर विद्या पढ़ी और वहीं राम-भक्ति की शिक्षा और दीक्षा ली। जब इनकी युवावस्था हुई तब पता लगने पर इनके मामा अपने घर ले गये और इनका विवाह दीनबन्धु पाठक की कन्या 'रत्नावली' के साथ करा दिया और कहते हैं कि इस देवी से "तारक" नाम का एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ था जो बचपन में ही मर गया। प्रवाद है कि रामबोला बड़े ही स्त्रैण थे। शिशुपन की सारी शिक्षाएँ ये स्त्री के प्रेमपाश में बद्ध होकर भूल बैठे और विषय में अनुरक्त हो गए। गोसाईंजी के अन्धभक्तों ने इनकी अपनी स्त्री के प्रति प्रेमासक्ति का वर्णन करते हुए इस प्रकार प्रलाप से काम लिया है कि इन्हें पुरा

पागल बना कर छोड़ा है। वर्षाऋतु की गंगा को तैर कर ससुराल जाना, छप्पर पर चढ़ सर्प पकड़ कर आँगन में कूदना इत्यादि लिखकर इनकी महिमा को धूल में मिलाया है। क्या फाटक खोल कर जाते तो इनके ससुराल वाले लाठी मारते ? पुनः उसी सर्प को पकड़ कर आँगन से छप्पर पर चढ़ कर बाहर आये !!! सर्प ने काटा नहीं, नीचे गिरा नहीं; कई बातें आश्चर्य की हैं।

अधिकतर सम्भव है कि विशेष अनुरक्ति देख कर इनकी धर्म-पत्नी ने कुछ उपदेशात्मक वाक्यों के साथ कोई चुभने वाली बात भी कह दी हो। कहा जाता है कि उनकी स्त्री ने उन्हें लज्जित करने के लिये ये दोहे कहे थे :—

"काम वाम की प्रीति जग, नित नित होति पुरान।
राम प्रीति नित ही नई, वेद पुरान प्रमान॥
लाज न लागत आपु को, दौरे आयहु साथ।
धिक धिक ऐसे प्रेम को, कहा कहहुं मैं नाथ॥
अस्थि-चरम-मय देह मम, तामें जैसी प्रीति।
तैसी जौं श्रीराम महँ, होत न तौ भवभीति॥" ❀

रत्नावली की इन अक्षर-रत्नावली ने रामबोला को अक्षर की ओर फेर उनके जीवन में पूर्व और पश्चिम सा अन्तर डाल दिया। ये वचन वास्तव में भारतवर्ष के मुख समुज्ज्वल करने के कारण हुए और रामबोला गृह त्याग कर

तुलसी

के वेश में परिवर्त्तित हो गये। इस प्रकार स्त्री द्वारा अपमानित होकर गोभक्त रामबोला गोस्वामी तुलसीदास के जीवन में परिवर्त्तित होकर काशी में आये और ईश्वराराधन में तत्पर हुए।

'संस्कारो नान्यथा भवेत्'

मनुष्य के अन्तःपट पर शिशुपन में जो संस्कार डाले जाते हैं वे अन्यथा नहीं होते। तुलसीदास सौभाग्यवशात् बचपन से ही साधु-समाज में पले थे, अतः उनके अन्तःकरण पर राम-भक्ति की अमिट छाप पड़ गयी थी जो जीवनान्त तक न मिटी, अपितु उत्तरोत्तर वृद्धि पाती गयी। इस प्रकार तुलसीदासजी कुछ दिनों तक काशी में रह कर भजन और कविता भी रचने लगे थे। उस समय हिन्दू-जाति के अन्दर साम्प्रदायिक मतभेदों की प्रबलता थी; शैवों और वैष्णवों के विरोध की तो कथा ही दूर रहे, वैष्णवों में भी नाना प्रकार की उपसम्प्रदायें हो रही थीं। 'रामानुजीय' 'वल्लभीय' 'राधावल्लभीय' और 'राधारमणी' आदि सम्प्रदाय वाले परस्पर

❀ अधिक सम्भव है कि तुलसीदास की स्त्री ने पद्य के भाव को अपनी बोल चाल के गद्य में ही कहा हो और पीछे किसी कवि ने उस भाव को दोहों में अनुवादित कर दिया हो।

वितण्डा एवं कलह मचाये हुए थे, उसी काल में गोस्वामी जी ने इन विरोधों को मिटाने की बड़ी चेष्टा की और इसमें कोई भी सन्देह नहीं कि इस पवित्र कार्य में इन्हें सफलता भी हुई, तथापि बहुतेरे दुष्ट इनका कई प्रकार उपहास करने लगे। कोई इन्हें धूर्त, कोई नीच जाति का बतला कर नीचा दिखलाना चाहते थे; पर वे महात्मा अपनी उद्देश्य-सिद्धि में इस प्रकार पक्के थे कि मानापमान का विचार छोड़ उसी में व्यस्त रहते और प्रायः यह छन्द पढ़ा करते थे:—

धूत कहै अवधूत कहै, रजपूत कहै जोलहा कहै कोऊ।
काहु कि बेटी सो बेटा न ब्याहन, काहु कि जाति बिगारन सोऊ॥
तुलसी सर नाम गुलाम है राम को, जाको रुचै सो कहै कछु ओऊ।
माँगि कै खैबो मजीत को सोइबो, न लेबे को एक न देबे को दोऊ॥

यद्यपि गोसाईं जी श्री रामजी के अनन्य भक्त थे तथापि किसी सम्प्रदाय को भला बुरा कहने के अभ्यासी न थे, प्रत्युत मतमतान्तरों के फैले हुए पारस्परिक भेदभावों को मिटाने की चिन्ता में ही चूर रहते थे। साधारण धूर्तों एवं लण्ठों के अतिरिक्त साम्प्रदायिक प्रबल मतभेद के कारण शैवों ने इन्हें अधिक सताया, जिसका पुष्ट प्रमाण नीचे लिखे, विनयपत्रिका के पद्य से मिलता है:—

देव बड़े दाता बड़े शङ्कर बड़े भोरे।
किए दूरि दुख सबनि के जिन्ह जिन्ह कर जोरे॥ १॥
सेवा सुमिरन पूजिबो पात आखत थोरे।
दई जग जहँ लगि सम्पदा सुख गज रथ घोरे॥ २॥
गाउँ बसत बामदेव मैं कबहूँ न निहोरे।
अधिभौतिक बाधा भई ते किङ्कर तोरे॥ ३॥
बेगि बोलि बलि बर जिये करतूति कठोरे।
तुलसी दलि रूंध्यौ चहै सठ साक सिहोरे॥ ४॥

धीरे धीरे इनकी शान्ति और सहनशीलता का प्रभाव जनसमुदाय के ऊपर पड़ने लगा और इनके प्रति लोगों के हृदयों में श्रद्धा और भक्ति बढ़ने लगी। ठीक है:—

यह रहीम सब सङ्ग लै, जनमत जगत न कोय।
बैर प्रीति अभ्यास यश, होत होत पै होय॥

कुछ ही दिनों के अनन्तर इनकी कीर्ति-कौमुदी चतुर्दिक् विस्तृत हो गयी। जो कुछ इने गिने कोक के समान कामियों तथा कट्टर प्रतिष्ठा-प्रेमियों को असह्य प्रतीत हुई वे नाना प्रकार की दुष्टता और असभ्यता का मार्ग अवलम्बन कर गोसाईं-जी को कष्ट देने लगे। दुष्ट लोगों के दुर्व्यवहार से तङ्ग आकर ही आपने सतसई के सातवें सर्ग के ३६ वें दोहे में लिखा है:—

माँगि मधुकरी खात जे, सोवत पाँव पसारि।
पाप प्रतिष्ठा बढ़ि परी, तुलसी बाढ़ी रारि॥

दुष्टों ने इनके साथ इतना बैर बढ़ाया कि निरुपाय होकर तुलसीदास जी को कुछ दिनों के लिये काशी छोड़ देना पड़ा और चलते समय नीचे लिखा कवित्त विश्वनाथ जी के मन्दिर के बाहर लिखकर साट दिया और आप चित्रकूट चल बसे:-

देवसरि सेवौं बामदेव गाँव रावरे ही, नाम रामही के माँगि उदर भरत हौं।
दीवे योग तुलसी न लेत काहू को कछुक, लिखी न भलाई भाल पोचन करत हौं॥
येते पर हूं कोऊ जो रावरे ह्वै जोर करै, ताको जोर देव दीन द्वारे गुदरत हौं।
पाइ कै उराहनो उराहनो न दीजै मोहि, कलिकदा काशीनाथ काहे निवरत हौं॥

कुछ दिनों तक चित्रकूट में भ्रमण करने के उपरान्त आप श्री अयोध्या में आये और वहीं पर संवत १६३१ में "रामचरित-मानस" की रचना आरम्भ की जिसका प्रमाण बालकाण्ड की इन चौपाइयों से मिलता है:—

संवत सोरह सौ इकतीसा। करौं कथा हरिपद धरि सीसा॥
नौमी भौमवार मधु मासा। अवध पुरी यह चरित प्रकासा॥

'मानसरामायण' के आरम्भ में जहाँ पर गोसाईंजी ने अन्य देवताओं और सज्जनों की वन्दना की है वहाँ खलों की व्याज निन्दा द्वारा इस बात का स्पष्ट उल्लेख कर दिया है कि दुष्टजनों ने इनकी प्रतिष्ठा से ईर्षा और द्वेष रखते हुए इन्हें नाना-प्रकार के कष्ट भी दिये थे, परन्तु शास्त्र का सिद्धान्त है कि:—

सत्यमेव जयते नानृतम्

सत्य की सर्वथा और सर्वदा जय होती है, तदनुसार ही इन्हें दुख देने वाले दुष्टों की वही दशा हुई जैसे कवि की उक्ति में ही होनी चाहिये थी:—

तुलसी निज कीरति चहहिं, पर कीरति कहँ खोय॥
तिनके मुह मसि लागि हैं, मिटहिं न मरिहैं धोय॥

यदि सूर्य के प्रकाश को सहस्रों चिमगादड़ पर फैला कर रोक लेना चाहें तो सम्भव नहीं कि उन्हें सफलता हो। कुछ संकुचित हृदय के मनुष्यों ने इनकी कीर्ति-कला पर धूल डालना चाहा, जिसका परिणाम यह हुआ कि यह धूल उन्हींके मुहँ पर आ पड़ी और गोस्वामी जी की प्रतिष्ठा भलीभाँति सर्वसाधारण के बीच फैल गयी, जिसका प्रमाण कवित्तरामायण के उत्तरकाण्ड ७१वें छन्द के निम्नलिखित तीसरे चरण से स्पष्ट मिलता है:—

"राम नाम को प्रभाव पाइ महिमा प्रताप,
तुलसी को जग मानियत महा मुनि सो"।

इस प्रकार लब्ध-प्रतिष्ठ और परममान्य गोस्वामी तुलसीदास जी अयोध्या, चित्रकूट और काशी इत्यादि पवित्र स्थानों में भ्रमण करते हुए नाना प्रकार के उप-

योगी ग्रन्थों की रचना करते रहे। हनुमानबाहुक के कतिपय छन्दों से पता चलता है कि जीवन के अवसान काल में गोस्वामी जी की भुजा में पीड़ा उत्पन्न हुई जिसने इस धर्म-प्राण महाकवि के कलेवर का अन्त ही कर डाला। जो हो;

मरणान्न विभेति धार्मिकः

महापुरुषों के अन्तःकरण पर यमदूतों का कुछ प्रभाव नहीं पड़ता, वे हँसते हँसते मृत्यु का सामना करते हैं। अन्ततः संवत् १६८० में भक्त-प्रवर तुलसीदास जी ने स्वर्ग-लोक की यात्रा की, जो निम्न पद्य से प्रगट है:—

संवत सोरह सौ असी, असी गंग के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यौ शरीर॥

गोस्वामी जी

मुधानकालः खलु यापनीयः

के अक्षरशः अनुयायी थे। परमात्मा की उपासना और भक्ति-पथ का अनुसरण करते हुए भी हमारे लिए अमित अमूल्य अनुपम साहित्यभण्डार भर कर चिरकाल के लिए अमरत्व में अनुलीन हो गये। शरीर-त्याग-काल में महात्मा ने निम्न पद्य पढ़े थे:—

राम नाम जस बरनि के, भयो चहत अब मौन।
तुलसी के मुख दीजिये, अबही तुलसी सौन॥

'अक्षितमसि अच्युतमसि प्राणशंसितमसीति'
शमित्योऽम्॥

गोस्वामी जी की जीवनी में विचित्र परिवर्त्तन (संख्या-१)

अब तक जो कुछ जीवनचरित्र गोस्वामी तुलसीदासजी का प्राप्त हो चुका था उसी के आधार पर ऊपर यथासम्भव कुछ लिखा गया है। अब गोसाईं जी की एक विचित्र ही जीवनी का पता लगा है, जिसका वर्णन लाला शिवनन्दन सहाय जी 'माधुरी' के वर्ष २ खण्ड १ संख्या १ के पृष्ठ २५ पर इस प्रकार करते हैं:—

"हमें ज्ञात हुआ है कि केसरिया (चंपारन)–निवासी बाबू इन्द्रदेव नारायण को गोसाईं जी के किसी चेले की, एक लाख दोहे–चौपाइयों में लिखी हुई गोसाईं जी की जीवनी प्राप्त हुई है। सुनते हैं, गोसाईं जी ने पहले उसका प्रचार न होने का शाप दिया था; किन्तु लोगों के अनुनय–विनय से शाप-मोचन का समय संवत् १९६७ निर्धारित कर दिया। तब उसकी रक्षा का भार उसी प्रेत को सौंपा गया जिसने गोसाईं जी को श्री हनुमान् जी से मिलने का उपाय बता कर श्री रामचन्द्रजी के दर्शन की राह दिखाई थी। वह पुस्तक भूटान के किसी ब्राह्मण के घर पड़ी रही।

एक मुन्शी जी उसके बालकों के शिक्षक थे। बालकों से उस पुस्तक का पता पाकर उन्होंने उसकी पूरी नकल कर डाली। इस गुरुतर अपराध से क्रोधित हो वह ब्राह्मण उनके बध के निमित्त उद्यत हुआ, तो मुन्शी जी वहाँ से चंपत हो गए। वही पुस्तक किसी प्रकार अलवर पहुँची, और फिर पूर्वोक्त बाबू साहब के हाथ लगी। क्या हम अपने स्वजातीय इन मुन्शी जी की चतुराई और बहादुरी की प्रशंसा नहीं करेंगे? उन्होंने सारी पुस्तक की नकल कर ली, तब तक ब्राह्मण-देवता के कानों तक खबर न पहुँची, और जब भागे तो अपने बोरिए-बस्ते के साथ उस दीर्घ-काय ग्रंथ को भी लेते हुए! इसके साथ ही क्या अपने दूसरे भाई को यह अश्रुत-पूर्व और अलभ्य पुस्तक हस्त-गत करने पर बधाई न देनी चाहिये? पर प्रेत ने उसकी कैसे रक्षा की, और वह उस ब्राह्मण के घर कैसे पहुँची? यह कुछ हमारे संवाद-दाता ने हमें नहीं बताया। जो हो, जिस प्रेत की बदौलत सब कुछ हुआ, उसके साथ गोसाईं जी ने यथोचित प्रत्युपकार नहीं किया। बनखंडी तथा केशवदास के समान उसके उद्धार का उद्योग तो भला करते। उलटे उसके माथे ३०० वर्ष तक अपनी जीवनी की रक्षा का भार डाल दिया"!

इस सम्बन्ध में माननीय बाबू श्यामसुन्दर दासजी ने 'मर्यादा' से जो कुछ उल्लेख राम-चरित-मानस की टीका की भूमिका के पृष्ठ ९ से पृष्ठ १४ तक किये हैं उसे पाठकों की जानकारी के लिये अविकल उद्धृत किया जाता है:—

"मर्यादा पत्रिका की ज्येष्ठ १९६९ की संख्या में श्रीयुत इन्द्रदेव नारायण जी ने हिन्दी-नवरत्न पर अपने विचार प्रगट करते हुए गोस्वामी तुलसीदासजी के जीवन-सम्बन्ध में अनेक बातें ऐसी कही हैं जो अब तक की निर्धारित बातों में बहुत उलट-फेर कर देती हैं। इस लेख में गोस्वामी तुलसीदासजी के एक नवीन 'चरित्र' का वृत्तान्त लिखा है और उससे उद्धरण भी किये गये हैं। इस लेख में लिखा है:—

"गोस्वामी जी का जीवन-चरित्र उनके शिष्य महानुभाव रघुवर दासजी ने लिखा है। इस ग्रन्थ का नाम "तुलसी-चरित" है। यह बड़ा ही बृहद्ग्रन्थ है। इसके मुख्य चार खंड हैं-(१) अवध, (२) काशी, (३) नर्मदा और (४) मथुरा; इनमें भी अनेक उपखण्ड हैं। इस ग्रन्थ की छन्द-संख्या इस प्रकार लिखी हुई है— "चौ० एक लाख तैंतीस हजारा, नौ से बासठ छन्द उदारा"। यह ग्रन्थ महाभारत से कम नहीं है। इसमें गोस्वामी जी के जीवन-चरित्र-विषयक नित्य प्रति के मुख्य-मुख्य वृत्तान्त लिखे हुए हैं। इनकी कविता अत्यन्त मधुर, सरल और मनोरंजक है।

यह कहने में अत्युक्ति नहीं होगी कि गोस्वामी जी के प्रिय शिष्य महात्मा रघुबर दासजी-विरचित इस आदरणीय ग्रन्थ की कविता श्रीराम-चरित-मानस के टक्कर की है और यह "तुलसी-चरित" बड़े महत्त्व का ग्रन्थ है। इससे प्राचीन समय की सभी बातों का विशेष परिज्ञान होता है। इस माननीय बृहद्ग्रन्थ के 'अवधखण्ड'

में लिखा है कि जब श्री गोस्वामीजी घर से विरक्त होकर निकले तो रास्ते में रघुनाथ नामक एक पण्डित से भेंट हुई और गोस्वामी जी ने उनसे अपना सब वृत्तान्त कहा :—

गोस्वामी जी का वचन

(चौपाई)

काल अतीत यमुन तरनी के। रोदन करत चलेहुँ मुप फीके॥
हिय विराग तिय अपमित बचना। कण्ठ मोद बैठो निज रचना॥
खींचत त्याग बिराग बटोही। मोह गेह दिसि कर सन सोही॥
भिरे जुगल बल बरनि न जाही। स्पन्दन वपू खेत बन माही॥
तिनिहुँ दिशा अपथ महि काटी। आठ कोस मिसिरिन की पाटी॥
पहुँचि ग्राम तट सुतरु रसाला। बैठेहुँ देखि भूमि सुविसाला॥
पण्डित नाम एक रघुनाथा। सकल शास्त्र पाठी गुण गाथा॥
पूजा करत डरत मैं जाई। दण्ड प्रनाम कीन्ह सकुचाई॥
सो मोहि कर चेष्टा सनमाना। बैठि गयउँ महितल भय माना॥
बुध पूजा करि मोहि बुलावा। गृह वृत्तान्त पूछब मन भावा॥

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

जुवा गौर शुचि बढ़नि बिचारी। जनु विधि निज कर आपु सँवारी॥
तुम विसोक आतुर गति धारी। धर्म शील नहिं चित्त विकारी॥
देखत तुम्हहिं दूर लगि प्रानी। अद्भुत सकल परस्पर मानी॥
तात मात तिय भ्रात तुम्हारे। किमि न तात तुम प्रान पियारे॥
कुटुम परोस मित्र कोउ नाही। किधौं मूढ़ पुर वास सदाहीं॥
सन्यपात पकरे सब ग्रामा। चले भागि तुम तजि वह ठामा॥
तब यात्रा विदेश कर जानी। विदरि हृदय किमि मरे अयानी॥
चित्तवृत्ति तुव दुष मह ताता। सुनत न जगत व्यक्त सब बाता॥
मोते अधिक कहत सब लोगा। अजहुँ जुरे देखत तरु योगा॥
कहाँ तात ससुरारि तुम्हारी। तुम्हहिं धाय नहिं गये अनारी॥
जाति पाँति गृह ग्राम तुम्हारा। पिता पीठि का नाम अचारा॥

दोहा—कहहु तात दस कोस लगि, विप्रन को व्यवहार।
मैं जानत भलिभाँति सब, सत अरु असत विचार॥
चले अश्रु गद्‌गद् हृदय, सात्विक भयो महान।
भुवि नष रेष लग्यों करन, मैं जिमि जड़ अज्ञान॥

॥ चौपाई ॥

दयाशील बुधवर रघुराई। तुरत लीन्ह मोहि हृदय लगाई॥
अश्रु पोंछि बहु तोष देवाई। बिसे बीस सुत मम समुदाई॥

लखौं चिह्न मिश्रन सम तोरा। बिसुचि मंजु मम गोत्र किशोरा॥
जनि रोवसि प्रिय बाल मतीशा। मेटहिं सकल दुसह दुख ईशा॥
धीरज धरि मैं कथन विचारा। पुनि बुध कीन विविध सतकारा॥
परशुराम पर पिता हमारे। राजापुर सुख भवन सुधारे॥
प्रथम तीर्थ यात्रा महँ आए। चित्रकूट लखि अति सुख पाए॥
कोटि तीर्थ आदिक मुनि वासा। फिरे सकल प्रमुदित गत आसा॥
वीर मरुतसुत आश्रम आई। रहे रैनि तहँ अति सुख पाई॥
परशुराम सोये सुख पाई। तहँ मारुतसुत स्वप्न देखाई॥
बसहु जाय राजापुर ग्रामा। उत्तर भाग सुभूमि ललामा॥
तुम्हरे चौथ पीठिका एका। तप समूह मुनि जन्म विवेका॥
दंपति तीरथ भ्रमे अनेका। जानि चरित अद्भुत गहि टेका॥
दंपति रहे पक्ष एक तहँवाँ। गये कामदा शृङ्ग सु जहँवाँ॥
नाना चमतकार तिन्ह पाई। सीतापुर नृप के ढिग आई॥
राजापुर निवास हित भाषा। कहे चरित कुछ गुप्त न राखा॥
तरिवनपुर तेहि की नृपधानी। मिश्र परशुरामहिं नृप आनी॥

दोहा—अति महान विद्वान लखि, पठन शास्त्र षट् जासु।
बहु सन्माने भूप तहँ, कहि द्विज मूल निवासु॥
सरयू के उत्तर बसत, मंजु देश सरवार।
राज मझवली जानिये, कसया ग्राम उदार॥
राजधानि ते जानिये, क्रोश विंश त्रय भूप।
जन्मभूमि मम और पुनि, प्रगट्यौ बौध स्वरूप॥

चौपाई

बौध स्वरूप पेंड ते भारी। उपल रूप महि दीन वलारी॥
जैना भास चल्यो मत भारी। रक्षा जीव पूर्ण परिचारी॥
हेम कुसल तेहि कुल के पण्डित। क्षत्री धर्म सकल गुण मण्डित॥
मैं पुन गाना मिश्र कहावा। गणपति भाग यज्ञ महँ पावा॥
मम विनु महा वंश नहिं कोई। मैं पुनि बिन सन्तान जो सोई॥
तिरसठि अब्द देह मम राजा। तिमिसम पलि जानि मति भ्राजा॥
खचित स्वप्नवत लखि मरलोका। तीरथ करन चलेहुँ तजि सोका॥
चित्रकूट प्रभु आज्ञा पावा। प्रगट स्वप्न बहु विधि दरसावा॥
भूप मानि मैं चलेहुँ रजाई। राजापुर निवास की ताई॥
निर्धन बसब राजपुर जाई। वृक्ष कलिन्दि तीर सचुपाई॥
नगर गेह सुख मिलै कदापी। बसब न होंहि जहाँ परितापी॥
अति आदर करि भूप बसावा। बाममार्ग पथ शुद्ध चलावा॥

स्वाद त्यागि शिव शक्ति उपासी। जिनके प्रगट शम्भु गिरिवासी॥
परशुराम काशी तन त्यागे। राम मन्त्र अति प्रिय अनुरागे॥
शम्भु कर्णगत दीन सुनाई। चढ़ि विमान सुरधाम सिधाई॥
तिनके शङ्कर मिश्र उदारा। लघु पण्डित प्रसिद्ध संसारा॥

दोहा—परशुराम जू भूप को, दान भूमि नहिं लीन।
शिष्य मारवाड़ी अमित, धन गृह दीन्ह प्रवीन॥
वचन सिद्धि शङ्कर मिसिर, नृपति भूमि बहु दीन।
भूप रानि अरु राज नर, भये शिष्य मति लीन॥
शङ्कर प्रथम विवाह ते, वसु सुत करि उत्पन्न।
द्वै कन्या द्वै सुत सुबुध, निसि दिन ज्ञान प्रसन्न॥

चौपाई

जोषित मृतक कीन अनु ब्याहा। ताते मोरि सास बुध नाहा॥
तिनके संत मिश्र द्वै भ्राता। रुद्रनाथ एक नाम जो ख्याता॥
सोउ लघु बुध शिष्यन्ह महँ जाई। लाय द्रव्य पुनि भूमि कमाई॥
रुद्रनाथ के सुत भे चारी। प्रथम पुत्र को नाम मुरारी॥
सो मम पिता सुनिय बुध त्राता। मैं पुनि चार सहोदर भ्राता॥
ज्येष्ठ भ्रात मम गणपति नामा। ताते लघु महेस गुण धामा॥
कर्मकाण्ड पण्डित पुनि दोऊ। अति कनिष्ठ मङ्गल कहि सोऊ॥
तुलसी तुलाराम मम नामा। तुला अन्न धरि तौलि स्वधामा॥
तुलसिराम कुल गुरू हमारे। जन्म पत्र मम देखि विचारे॥
हस्त प्रास पण्डित मतिधारी। कह्यो बाल होइहिं व्रतधारी॥
धन विद्या तप होय महाना। तेजरासि बालक मति माना॥
भरत खण्ड एहि सम एहि काला। नहिं महान कोउ परमतिशाला॥
करिहिं खचित नृपगन गुरुवाई। वचन सिद्धि खलु रहहिं सदाई॥
अति सुन्दर सरूप सित देहा। बुध मङ्गल भाग्यस्थल गेहा॥
ताते यह विदेह सम जाई। अति महान पदवी पुनि पाई॥
पञ्चम केतु रुद्र गृह राहू। जतन सहस्र वंश नहिं लाहू॥

दोहा—राज योग दोउ सुख सुएहि, होंहि अनेक प्रकार।
अब्दै दया मुनीस कोउ, लियो जन्म वर वार॥

चौपाई

प्रेमहि तुलसी नाम मम राखी। तुला रोह तिय कहि अभिलाषी॥
मातु भगिनि लघु रही कुमारी। कीन ब्याह सुन्दरी विचारी॥
चारि भ्रात द्वै भगिनि हमारे। पिता मातु मम सहित निसारे॥

भ्रात पुत्र कन्या मिलि नाथा। षोडस मनुज रहे एक साथा॥

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

बानी विद्या भगिनी हमारी। धर्मशील उत्तम गुण धारी॥

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

दोहा—अति उत्तम कुल भगिनि सब, ब्याही अति कुशलात।
हस्त ग्राम पण्डितन्ह गृह, ब्याहे सब मम भ्रात॥

चौपाई।

मोर ब्याह द्वै प्रथम जो भयऊ। हस्त ग्राम भार्गव गृह ठयऊ॥
भई स्वर्गवासी दोउ नारी। कुल गुरु तुलसि कहेउ व्रतधारी॥
तृतिय ब्याह कञ्चनपुर माही। सोइ तिय बच विदेश अवगाही॥
अहो नाथ तिन्ह कीन्ह खोटाई। मात भ्रात परिवार छोड़ाई॥
कुल गुरु कथन भई सब साँची। सुख धन गिरा अवर सब काँची॥
सुनहु नाथ कञ्चनपुर ग्रामा। उपाध्याय लछिमन अस नामा॥
तिनकी सुता बुद्धिमति एका। धर्मशील गुन पुञ्ज विवेका॥
कथा-पुराण-श्रवण बल भारी। अति कन्या सुन्दरि मतिधारी॥

दोहा—मोह विप्र बहु द्रव्य ले, पितु मिलि करि उत्साह।
यदपि मातु पितु सो विमुख, भयो तृतिय मम ब्याह॥

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

चौपाई

निज विवाह प्रथमहिं करि जहवाँ। तीन सहस्र मुद्रा लिय तहवाँ॥
षट् सहस्र लै मोहि विवाहे। उपाध्याय कुल पावन चाहे॥

ऊपर लिखे हुए पदों का सारार्थ यह है कि सरयू नदी के उत्तर भागस्थ सरवार देश में मधौली से तेईस कोस पर कसेयां ग्राम में गोस्वामीजी के प्रपितामह परशुराम मिश्रका जन्मस्थान था और यहीं के वे निवासी थे। एक बार वे तीर्थ-यात्रा के लिये घर से निकले और भ्रमण करते हुए चित्रकूट में पहुँचे। वहाँ हनुमान जी ने स्वप्न में आदेश दिया कि तुम राजापुर में निवास करो, तुम्हारी चौथी पीढ़ी में एक तपोनिधि मुनि का जन्म होगा। इस आदेश को पाकर वे परशुराम मिश्र सीतापुर में उस प्रान्त के राजा के यहाँ गये और उन्होंने हनुमानजी की आज्ञा को यथातथ्य राजा से कह कर राजापुर में निवास करने की इच्छा प्रकट की। राजा इनको अत्यन्त श्रेष्ठ विद्वान् जान कर अपने साथ अपनी राजधानी तीखन-पुर में ले आये और बहुत सम्मान पूर्वक उन्होंने राजापुर में निवास कराया। उनके तिरसठ वर्ष की अवस्था तक कोई सन्तान नहीं हुई; इससे वह बहुत खिन्न होकर तीर्थयात्रा को गये तो पुनः चित्रकूट में स्वप्न हुआ और वे राजापुर लौट

आये। उस समय राजा उनसे मिलने आया। तदनन्तर उन्होंने राजापुर में शिव-शक्ति के उपासकों की आचरण-भ्रष्टता से दुःखित हो राजापुर में रहने की अनिच्छा प्रकट की; परन्तु राजाने उनके मत का अनुयायी होकर बड़े सम्मान पूर्वक उनको रक्खा और भूमिदान दिया; परन्तु उन्होंने ग्रहण नहीं किया।

उनके शिष्यों में मारवाड़ी बहुत थे; उन्हीं लोगों के द्वारा इनको धन, गृह और भूमि का लाभ हुआ। अन्तकाल में काशी जाकर इन्होंने शरीर त्याग किया। ये गाना के मिश्र थे और यज्ञ में गणेश जी का भाग पाते थे। इनके पुत्र शङ्कर मिश्र हुए; जिनको वाक्‌सिद्धि प्राप्त थी। राजा और रानी तथा अन्यान्य राज्यवर्ग इनके शिष्य हुए और राजा से इन्हें बहुत भूमि मिली। इन्होंने दो विवाह किये। प्रथम से आठ पुत्र और दो कन्याएँ हुईं; दूसरे विवाह से दो पुत्र हुए—(१) सन्त मिश्र, (२) रुद्रनाथ मिश्र। रुद्रनाथ मिश्र के चार पुत्र हुए। सबसे बड़ा मुरारी मिश्र थे। इन्हीं महाभाग्यशाली महापुरुष के पुत्र गोस्वामी जी हुए।

गोस्वामी जी चार भाई थे—(१) गणपति, (२) महेश, (३) तुलाराम, (४) मङ्गल। यही तुलाराम तत्वाचार्यवर्य भक्तचूड़ामणि गोस्वामी जी हैं। इनके कुलगुरु तुलसीराम ने इनका नाम तुलाराम रक्खा था। गोस्वामी जी के दो बहिनें भी थीं। एक का नाम वाणी और दूसरी का विद्या था।

गोस्वामी जी के तीन विवाह हुए थे। प्रथम स्त्री के मरने पर दूसरा विवाह हुआ और दूसरी स्त्री के मरने पर तीसरा। यह तीसरा ब्याह कञ्चनपुर के लक्ष्मण उपाध्याय की पुत्री बुद्धिमती से हुआ। इस विवाह में इनके पिता ने छः हजार मुद्रा ली थी। इसी स्त्री के उपदेश से गोस्वामी जी विरक्त हुए थे।

इस ग्रन्थ में दी हुई घटनाएँ और किसी ग्रन्थ में नहीं मिलतीं। इसमें संदेह नहीं कि यदि यह चरित्र गोस्वामी तुलसीदास जी के शिष्य महात्मा रघुबरदास जी का लिखा है तो इसमें दी हुई घटनाएँ अवश्य प्रामाणिक मानी जायँगी। परन्तु इस ग्रंथ का पहला उल्लेख मर्यादा पत्रिका में ही हुआ है तथा अन्य किसी महाशय को इस ग्रंथ को देखने, पढ़ने या जाँचने का अब तक सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ है। मैंने इस ग्रंथ को देखने का उद्योग किया था। उसमें अभी तक मुझे सफलता नहीं प्राप्त हुई है। इस अवस्था में जो जो बातें उक्त लेख से विदित होती हैं उनका उल्लेख कर देना ही पर्याप्त होगा। उनके विषय में निश्चित रूप से अभी कोई सम्मति नहीं दी जा सकती।

ऊपर के उद्धरण से आपको स्पष्ट झलक जायगा कि गोस्वामी जी की जो जीवनी आज तक प्रचलित है उसके साथ इस नवीन अन्वेषित जीवनी का कोई मेल नहीं खाता, यहाँ तक कि तुलसीदास जी की स्वलेखनी भी यत्र-तत्र इस लेख का साथ नहीं देती। यदि यह जीवनी यथार्थ प्रमाणित हुई तो कवि जी की बहुतेरी उक्तियों को प्रक्षिप्त मानना पड़ेगा जिससे कई ग्रन्थों का तो क्रम ही बिगड़ जायगा।

गोस्वामी जी की जीवनी में विचित्र परिवर्तन (संख्या—२)

जीवन-चरित्र की अवतरणिका में काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित रामचरित-मानस के आधार पर श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदास जी के समसामयिक महात्मा वेणीमाधवदास जी द्वारा विरचित "गोसाईं-चरित्र" की चर्चा करते हुए लिखा गया है कि उक्त ग्रन्थ अप्राप्त है। हर्ष का विषय है कि श्री नवल किशोर यन्त्रालय लखनऊ से अभी जो रामचरित-मानस का विशुद्ध संस्करण प्रकाशित हुआ है उसके प्रारम्भ में बाबा वेणीमाधवदास जी विरचित "गोसाईं-चरित्र" का केवल अन्तिम अध्याय "मूल गोसाईं-चरित" नाम से प्रकाशित हुआ है। इस ग्रन्थ के पाठ करने पर पूर्व प्रकाशित चरित्र के निम्न स्थलों पर भेद पाया जाता है:—

(१) गोस्वामी जी का जन्म सम्वत् १५५४ में श्रावण शुक्ला सप्तमी शनिवार को सन्ध्या समय, जब कर्क के बृहस्पति और चन्द्रमा, सप्तम मंगल और अष्टम शनैश्चर पड़े थे, हुआ था। जन्मभूमि राजापुर ही मानी गयी है। पिता का नाम आत्माराम दुबे और माता का हुलसी लिखा है।

(२) हुलसी के बारह मास गर्भ धारण के उपरान्त बालक की उत्पत्ति हुई। लिखा गया है कि जन्म के समय बालक के मुख में बतीसों दांत जमे हुए थे, वह जन्मते ही अन्य बालकों की भाँति रोया नहीं अपितु रामनाम का उच्चारण करते हुए जन्मा। उसके जन्म समय में आकाश में शंखध्वनि हो रही थी। जन्मकाल ही में बालक ऐसा हृष्ट-पुष्ट था जैसा पाँच वर्ष का बालक।

(३) बालक के इन अलौकिक कुलक्षणों को देखकर उनके माता-पिता बहुत घबराये और अपनी दासी को बुलाकर श्रावण शुक्ला एकादशी को उसके सुपुर्द कर दिया और कहा कि तुम इस बच्चे को ले जाकर अभी अपनी सास के पास हरीपुर नामक ग्राम में चली जा और उसे सौंपकर कह देना कि वह भलीमाँति उसका प्रतिपालन करे। उसकी सास ने पाँच वर्ष तक बालक का लालन-पालन किया। इसके अनन्तर वह बुढ़िया भी इस संसार से सिधार गई। बालक रामबोला की माता का देहान्त तो पुत्र-वियोग की तिथि (श्रा० शु० ११) को ही हो चुका था। दयाहीन वज्र-हृदय पिता ने पाँच वर्ष की आयु के अनन्तर बुढ़िया के मरने का समाचार पाकर भी इस बालक का पालन-पोषण स्वीकार नहीं किया। तब बाबा नरहरिदास नामक महात्मा ने अपनी कुटी में ले जा इसका प्रतिपालन प्रारम्भ किया। सम्वत् १५६१ में बालक का उपनयन संस्कार उक्त महात्मा के द्वारा किया गया। गोस्वामी जी उसी समय से महात्मा शेष सनातन जी से विद्याध्ययन करने लगे। १५ वर्ष अध्ययन करने के उपरान्त विद्यागुरु के शरीरपात होने के अनन्तर गोसाईंजी राजापुर वापस आये।

(४) इसके अनन्तर विवाह, पुत्रोत्पत्ति और पत्नि-स्नेह इत्यादि की कथायें पूर्ववत् हैं।

अन्यान्य बातें

गोस्वामी जी की जीवन-सम्बन्धी जितनी बातें खोज-ढूँढ़ अथवा जाँच-पड़ताल से सम्बन्ध रखती हैं उनका वर्णन पीछे किया गया है। अब कुछ बातें ऐसी हैं जो परम्परया चली आ रही हैं, जिनका वर्णन श्रीयुत बाबू श्यामसुन्दरदास जी के लेख से उद्धृत किया जाता है:—

अयोध्या और काशी में तो गोसाईंजी प्रायः रहा ही करते थे, परन्तु मथुरा, वृन्दावन, कुरुक्षेत्र, प्रयाग, चित्रकूट पुरुषोत्तमपुरी (जगन्नाथ जी), सोरों (शूकर-क्षेत्र) आदि तीर्थस्थानों में भी वे प्रायः घूमा करते थे।

घर छोड़ने के पीछे एक बेर स्त्री ने यह दोहा गोसाईं जी को लिख भेजा—

कटि की खीनी कनक सी, रहति सखिन सँग सोइ।
मोहि फटे की डर नहीं, अनत कटे डर होइ॥

इसके उत्तर में गोसाईं जी ने लिखा—

कटे एक रघुनाथ सँग, बाँधि जटा सिर केस।
हम तो चाखा प्रेमरस, पत्नी के उपदेश॥

बहुत दिनों के पीछे वृद्धावस्था में एक दिन तुलसीदास जी चित्रकूट से लौटते समय अन-जानते अपने ससुर के घर आकर टिके। उनकी स्त्री भी बूढ़ी हो गयी थी। वह बिना पहचाने हुए ही उनके आतिथ्य-सत्कार में लगी और उसने चौका आदि लगा दिया। दो चार बात होने पर उसने पहचाना कि ये तो मेरे पति हैं। उसने इस बात को गुप्त रक्खा और उनका चरण धोना चाहा; पर उन्होंने धोने न दिया। पूजा के लिये उसने कपूर आदि ला देने को कहा; परन्तु गोसाईंजी ने कहा कि यह सब मेरे झोले में साथ है। स्त्री की इच्छा हुई कि मैं भी इनके साथ रहती तो श्री रामचन्द्र जी और अपने पति की सेवा करके जन्म सुधारती। रात भर बहुत कुछ आगा-पीछा सोच-विचार कर उसने सवेरे अपने को गोसाईंजी के सामने प्रकट किया, और अपनी इच्छा कह सुनाई। गोसाईंजी ने उसको साथ लेना स्वीकार न किया। तब उसने कहा—

*खरिया खरी कपूर लौं, उचित न पिय तिय त्याग।
कै खरिया मोहि मेलिकै, अचल करहु अनुराग॥

---

* यह दोहा दोहावली में इस प्रकार है—

खरिया खरी कपूर सब, उचित न पिय तिय त्याग।
कै खरिया मोहि मेलि के, बिमल विवेक बिराग॥२५५॥

यह सुनते ही गोसाईंजी ने अपने झोले की वस्तुएँ ब्राह्मणों को बाँट दीं। कुछ लोग यह भी अनुमान करते हैं कि तुलसीदास जी का विवाह ही नहीं हुआ था। क्योंकि उन्होंने विनयपत्रिका में लिखा है—"ब्याह न बरेखी जाति पाँति न चाहत हौं।" परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि उनका विवाह हुआ ही नहीं था। यह कथन तो संसार की माया छोड़ कर वैरागी होने के पीछे का है। विवाह की कथा पहले पहल प्रियादासी जी ने "भक्तमाल" की टीका में लिखी है। तभी से गोस्वामी जी के प्रत्येक जीवन-चरित्र में इनका उल्लेख होता आया है।

भृगु-आश्रम ब्रह्मपुर-यात्रा

कहते हैं कि एक समय गोसाईंजी भृगु-आश्रम, हंसनगर और परसिया होते. गायघाट के राजा गम्भीरदेव का आतिथ्य-सत्कार स्वीकार करके कांत नाम के गाँव में आये। वहाँ उन्हें भोजन का कोई पदार्थ न मिला और वहाँ के लोगों को राक्षसी भाव में लिप्त देख कर वे आगे बढ़े। थोड़ा आगे जाकर उन्हें उसी गाँव का रहने वाला साँवरू अहीर का लड़का मँगरू अहीर मिला। उसने वहाँ एक गोशाला बना रक्खी थी जिसमें वह साधु-महात्माओं का आतिथ्य-सत्कार करता था। उसने बड़े आदर के साथ गोसाईंजी को बुलाया और थोड़ा दूध दिया, जिसका खोआ बना कर गोसाईंजी ने खाया। गोसाईंजी ने मँगरू से कहा कि कुछ वर माँगो। मँगरू ने प्रार्थना की कि "महाराज, एक तो मेरा दृढ़ विश्वास प्रभु के चरणारविन्द में हो और दूसरे मेरा वंश बढ़े।" गोसाईंजी ने कहा कि "जो तुम और तुम्हारे वंश वाले चोरी न करेंगे और किसी को दुःख न देंगे तो ऐसा ही होगा।" कहते हैं कि यह आशीर्वाद फलीभूत हुआ। यह बात बलिया और शाहाबाद जिले में अब तक प्रसिद्ध है और उसके वंशवाले अबतक वर्त्तमान हैं, जिनका आतिथ्य-सत्कार प्रसिद्ध है और जिनके वंश में अबतक कोई चोरी नहीं करता, यद्यपि उस जिले के अहीर चोरी में प्रसिद्ध हैं।

वहाँ से गोसाईंजी बेलापतौत में आये। वहाँ गोविन्द मिश्र नामक एक शाकद्वीपी ब्राह्मण और रघुनाथ सिंह नामक क्षत्रिय से भेंट हुई। इन लोगों ने बड़े आदर से गोसाईंजी को अपने यहाँ ठहराया। गोसाईंजी ने उस स्थान का नाम बेलापतौत से बदल कर रघुनाथपुर रक्खा, जिसमें एक तो रघुनाथ सिंह का यह स्मारक हो, दूसरे इसी बहाने से लाखों मनुष्य भगवान का नाम लें। यह स्थान रघुनाथपुर के नाम से अबतक प्रसिद्ध है और ब्रह्मपुर से एक कोस पर है। यहाँ पर गोसाईंजी का चौरा अबतक है। इसी के पास एक गाँव कैथी है। कहते हैं कि यहाँ के प्रधान जोरावर सिंह ने भी गोसाईंजी का आतिथ्य किया था, और वे इनके शिष्य हुए थे।

गोसाईंजी के वासस्थान

यद्यपि पहले गोसाईंजी अयोध्या में आकर रहे थे, और उनकी कविता से चित्रकूट में भी प्रायः रहना पाया जाता है, परन्तु अधिक निवास उनका काशी ही में होता था। और अन्त में यहीं उनकी मृत्यु हुई। काशी में गोसाईं जी के नीचे लिखे हुए चार स्थान प्रसिद्ध हैं—

१. अस्सी पर—तुलसीदासजी का घाट प्रसिद्ध है। इस स्थान पर गोसाईं-जी के स्थापित हनुमान जी हैं और उनके मन्दिर के बाहर बीसा यन्त्र लिखा है जो पढ़ा नहीं जाता। यहाँ गोसाईंजी की गुफा है। यहाँ पर गोसाईंजी विशेष करके रहते थे, और अन्त समय में भी यहीं थे।

२. गोपालमन्दिर में—यहाँ श्री मुकुन्दराय जी के बाग के पश्चिम-दक्षिण के कोने में एक कोठरी है, जो तुलसीदास जी की बैठक है। यह सदा बन्द रहती है, झरोखे में से लोग दर्शन करते हैं, केवल श्रावण सु० ७ को खुलती है और लोग जाकर पूजा आदि करते हैं। यहाँ बैठ कर यदि सब "विनयपत्रिका" नहीं तो उसका कुछ अंश उन्होंने अवश्य लिखा है, क्योंकि यह स्थान बिन्दुमाधव जी के निकट है और पञ्चगङ्गा, बिन्दुमाधव का वर्णन गोसाईंजी ने विनयपत्रिका में पूरा-पूरा किया है। बिन्दुमाधव जी के अङ्ग के चिन्हों का जो वर्णन गोसाईंजी ने किया है वह पुराने बिन्दुमाधव जी से, जो अब एक गृहस्थ के यहाँ हैं, अविकल मिलता है।

३. प्रह्लादघाट पर।

४. सङ्कटमोचन हनुमान्—यह हनुमान् जी नगवा के पास अस्सी के नाले पर गोसाईंजी के स्थापित हैं। कहते हैं कि प्रह्लादघाट के ज्यो० गङ्गाराम जी ने जो राजा के यहाँ से द्रव्य पाया था उसमें से बहुत आग्रह करके १२ हजार गोसाईंजी को भेंट किया। गुसाईंजी ने उससे १२ मूर्तियाँ श्री हनुमानजी की स्थापित की थीं, जिनमें से एक यह भी है।

१—हनुमान् फाटक, २—गोपालमन्दिर, ३—अस्सी। पहला निवासस्थान हनुमान-फाटक है। मुसलमानों के उपद्रव से वहाँ से उठकर वे गोपालमन्दिर आये। वहाँ से भी वल्लभ-कुलवाले गोसाइयों से विरोध हो जाने के कारण उठ कर अस्सी आये और मरण पर्य्यन्त वहीं रहे। अस्सी पर आपने अपनी रामायण के अनुसार रामलीला आरम्भ की। सबसे पुरानी रामलीला अस्सी ही की है। अस्सी की दक्षिण और कुछ दूर पर जहाँ तुलसीदास जी की रामलीला की लङ्का थी, उस स्थान का अब तक लङ्का नाम है।

टोडर के साथ स्नेह

टोडर नाम के एक बड़े जमींदार काशी में थे, इन्हें गोसाइयों ने तलवार से काट डाला था। इनके पास पाँच गाँव थे जो काशी के एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैले हैं। इनका नाम भदैनी, नदेसर, शिवपुर, छीतूपूर और लहरतारा है। भदैनी अब काशिराज के पास है और इसीमें अस्सीघाट है। नदेसर में अबतक सरकारी दीवानी कचहरी थी। शिवपुर पञ्चकोश में है, यहाँ पाँचो पाण्डवों का मन्दिर और द्रौपदीकुण्ड है। इस द्रौपदी कुण्ड का जीर्णोद्धार राजा टोडरमल ने कराया था। छीतूपुर भदैनी से और पश्चिम है। लहरतारा काशी के कंटूनमेंट स्टेशन के पास है। इसी लहरतारा के झील में "नीमा" ने कबीर जी को बहते हुए पाया था। यहां कबीर जी की एक मढ़ी बनी है। टोडर के मरने पर उनके पौत्र कँधई और बेटे आनन्दराम में झगड़ा हुआ था। उसमें गोसाईंजी पंच हुए थे। जो पंचायती फैसला उन्होंने लिखा था, वह ११ पीढ़ी तक टोडर के वंश में रहा; ११ वीं पीढ़ी में पृथ्वीपालसिंह ने उसको महाराज काशिराज को दे दिया जो अब काशिराज के यहाँ है। टोडर के वंशज अबतक अस्सी पर हैं। कहते हैं कि इन टोडर के मरने पर गोसाईंजी ने ये दोहे कहे थे—

> चार गाँव को ठाकुरो, मन को महा महीप।
> तुलसी या कलिकाल में, अथए टोडर दीप॥
> तुलसी राम सनेह को, सिर पर भारी भार।
> टोडर काँधा ना दियो, सब कहि रहे उतार॥
> तुलसी उर थाला विमल, टोडर गुनगन बाग।
> ये दोउ नयनन सींचि हौं, समुझि २ अनुराग॥
> राम धाम टोडर गये, तुलसी भये असोच।
> जियबो मीत पुनीत बिनु, यही जानि संकोच॥

डाक्तर ग्रिअर्सन अनुमान करते हैं कि यह अकबर के प्रसिद्ध मन्त्री महाराज टोडरमल थे, और उनके जन्मस्थान लाहरपुर (अवध) को वे लहरतारा अनुमान करते हैं। परन्तु ऐसा नहीं है। टोडरमल टण्डन खत्री थे, जिसके प्रमाण में शिवपुर के द्रौपदीकुण्ड का शिलालेख वर्त्तमान है। टोडर के वंशज क्षत्रिय हैं. दूसरे यह कभी सम्भव नहीं है कि महाराज टोडरमल ऐसे भारी मन्त्री का नाम एक नगर का काजी ऐसी साधारण रीति पर लिखे कि "आनन्दराम विन टोडर विन देवराय व कंधई विन रामभद्र बिन टोडर मजकूर दर हुजूर आमद:" इत्यादि। तीसरे महाराज टोडरमल का कोई चिन्ह काशी में वर्त्तमान नहीं है। सम्भव है कि बंगाल पर चढ़ाई के समय महाराज ने द्रौपदीकुण्ड का जीर्णोद्धार कराया हो। निदान यह निश्चय है कि महाराज टोडरमल और यह टोडर दो व्यक्ति थे।

राजा टोडरमल के दो लड़कों का नाम धरू टण्डन और गोवर्धनधारी टण्डन था और इस टोडरमल के लड़कों का नाम आनन्दराम और रामभद्र था। तथा रामभद्र संवत् १६५९ के पहले मर चुका था। परन्तु राजा टोडरमल के दोनों लड़के उनके पीछे तक जीते रहे। इससे भी यही सिद्ध होता है कि ये दोनों टोडर दो भिन्न पुरुष थे।

महाराज मानसिंह से स्नेह

कहते हैं कि आमेर के महाराज मानसिंह और उनके भाई जगतसिंह प्रायः गोसाईंजी के पास आया करते थे। एक मनुष्य ने एक दिन गोसाईंजी से पूछा कि "महाराज, पहिले तो आपके पास कोई भी नहीं आता था और अब ऐसे ऐसे बड़े लोग आपके यहाँ आते हैं, इसमें क्या भेद है?" गोसाईं जी ने कहा—

"लहै न फूटी कौड़िहू, को चाहै केहि काज।
सो तुलसी महँगी कियो, राम गरीब निवाज॥
घर घर माँगे टूक पुनि, भूपति पूजे पाय।
ते तुलसी तब राम बिन, ते अब राम सहाय॥"

मधुसूदन सरस्वती से मित्रता

बैजनाथदास ने लिखा है कि शङ्कर मतानुयायी श्री मधुसूदन सरस्वती ने बाद में प्रसन्न होकर यह श्लोक इनकी प्रशंसा में बनाया—

"आनन्दकानने कश्चिज्जङ्गमस्तुलसीतरुः।
कविता मञ्जरी यस्य राम-भ्रमर-भूषिता॥"

पण्डित महादेव प्रसाद ने भी भक्तिविलास में लिखा है कि एक पण्डित दिग्विजय की इच्छा से काशी में आया था, परन्तु गोसाईंजी का प्रताप देखकर उसने हार मान ली और यह श्लोक बनाया—

"आनन्दकानने ह्यस्मिन् जङ्गमस्तुलसीतरुः।
कविता मञ्जरी यस्य राम--भ्रमर-भूषिता॥"

गोपालदासजी ने भी यही पाठ "रामायण-माहात्म्य" में दिया है और लिखा है कि रामायण का आदर काशी के पण्डितों ने नहीं किया। उन्होंने कहा कि यदि इसको आनन्द-कानन ब्रह्मचारी मानें तो हमलोग भी मानेंगे। ब्रह्मचारी ने रामायण की बड़ी प्रशंसा की और यह ऊपर का श्लोक लिख दिया। काशिराज महाराज ईश्वरीप्रसाद नारायण सिंह ने इस श्लोक का अनुवाद इस प्रकार किया है—

"तुलसी जंगम तरु लसै, आनँद कानन खेत।
कविता जाकी मंजरी, राम-भ्रमर-रस लेत॥"

नन्ददासजी

यह बात प्रसिद्ध है कि व्रज के प्रसिद्ध कवि "रास-पञ्चाध्यायी" के कर्ता नन्ददासजी इनके भाई थे, परन्तु इसका कुछ प्रमाण नहीं मिलता। बैजनाथदासजी ने नन्ददासजी को इनका गुरुभाई लिखा है। नन्ददासजी गोकुलस्थ गोस्वामी श्री विट्ठलदासजी के शिष्य थे और गोसाईंजी के गुरु दूसरे थे। इससे यह भी ठीक नहीं ठहरता। यह सम्भव है कि दोनों के विद्यागुरु कोई एक हों।

नन्ददासजी के सम्बन्ध में यह कहावत प्रसिद्ध है कि "और सब गढ़िया, नन्ददास जड़िया"।

"दो सौ बावन वैष्णव की वार्त्ता" में इनको तुलसीदासजी का सगा भाई लिखा है। परन्तु ये दूसरे तुलसीदास सनाढ्य ब्राह्मण थे जैसा कि नन्ददास के जीवन-चरित्र से स्पष्ट है। वल्लभसम्प्रदाय में नन्ददास का जीवन-चरित्र प्रसिद्ध है।

नाभाजी से भेंट

"भक्तमाल" के कर्त्ता नाभाजी इनसे मिलने काशी में आये थे, परन्तु उस समय गोसाईंजी ध्यान में थे, नाभाजी से कुछ बात न कर सके। नाभाजी उसी दिन वृन्दावन चले गये। गोसाईंजी ने जब यह सुना तो वे बहुत पछताये और नाभाजी से मिलने वृन्दावन गये। नाभाजी के यहाँ वैष्णवों का भंडारा था, विना बुलाये गोसाईंजी उसमें गये। नाभाजी ने जान बूझ कर इनका कुछ आदर नहीं किया। परोसने के समय खीर के लिए कोई बर्तन न था। गोसाईंजी ने तुरन्त एक साधु का जूता लेकर कहा कि इससे बढ़कर कौन उत्तम बर्तन है। इस पर नाभाजी ने उन्हें गले से लगा लिया और कहा कि आज मुझे भक्तमाल का सुमेरु मिल गया।

ऐसा न हो कि ये मुझे अभिमानी समझें और मेरी कथा भक्तमाल में बिगाड़ कर लिखें, इसीलिये तुलसीदास भंडारे में बैरागियों की पंक्ति के अन्त में बैठे और उन्होंने कढ़ी या खीर लेने के लिए एक बैरागी की जूती ले ली। बहुत से लोग आज तक कहते हैं कि नाभाजी का बनाया पद जो पहले उद्धृत किया जा चुका है, उसके पहले चरण का ठीक पाठ यह है—

"कलि कुटिल जीव तुलसी भये बालमीकि अवतार धरि"। इस पाठ से बालमीकिजी के साथ तुलसीदासजी की पूर्णोपमा हो जाती है, क्योंकि बालमीकिजी पहले कुटिल थे और तुलसीदासजी ने भी पहले नाभाजी से कुटिलता की।

मीराबाई का पत्र

मेवार के राजकुमार भोजराज की वधू मीराबाई बड़ी ही भगवद्भक्त थीं। साधु-समागम में उनका समय बीतता था, इससे संसार के उपहास के कारण

राणाजी को बहुत बुरा लगता था। उन्होंने बहुत कुछ समझाया बुझाया, पर मीराजी ने एक न मानी; तब मीरा को मारने के बहुत उपाय किये गये, परन्तु भगवत्कृपा से सब व्यर्थ हो गये। अन्त में कुटुम्ब वालों की ताड़ना सहते सहते मीराबाई का चित्त बड़ा दुखी हुआ। उन्होंने गोसाईं तुलसीदासजी का यश सुना था, इससे उनको नीचे लिखा पत्र भेजा और पूछा कि मुझको क्या करना चाहिये—

"स्वस्ति श्री तुलसी गुण दूषण हरण गुसाईं।
बारहिं बार प्रणाम करहुँ अब हरहु सोक समुदाई॥
घर के स्वजन हमारे जेते सबन उपाधि बढ़ाई।
साधुसंग अरु भजन करत मोहिं देत कलेस महाई॥
बालपने ते मीरा कीन्हीं गिरधर लाल मिताई।
सो तो अब छूटत नहिं क्यों हूँ लगी लगन बरियाई॥
मेरे मात पिता के सम हो हरिभक्तन सुखदाई।
हमको कहा उचित करिबो है सो लिखिये समुझाई॥

गोसाईं जी ने उत्तर में यह पद लिख भेजा—

"जिनके प्रिय न राम बैदेही।
तजिये तिन्हें कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही।
*तात मात भ्राता सुत पति हित इन समान कोउ नाहीं।
*रघुपति विमुख जानि लघु तृण इव तजत न सुकृत डेराहीं॥
तज्यो पिता प्रह्लाद बिभीषण बन्धु भरत महतारी।
गुरु बलि तज्यो कंत ब्रज बनितन भे सब मङ्गलकारी॥
नातो नेह राम को मानिय सुहृद सुसेव्य जहाँ लों।
अँजन कौन आँखि जो फूटै बहुतै कहों कहाँ लों॥
तुलसी सोइ सब भाँति आपनो पूज्य प्राण ते प्यारो।
जाते होइ सनेह राम सों सोइ मतो हमारो॥"

इसको पाकर मीराजी ने घर छोड़ दिया और वे तीर्थाटन को निकल गईं।

यह आख्यायिका बहुत प्रसिद्ध है परन्तु मीराजी के समय में और इनके समय में बड़ा अन्तर है। मीराबाई की मृत्यु संवत् १६०३ में हुई इससे तुलसीदास-जी की आयु हम कितनी बड़ी मानें? उनका मीराजी के समकालीन होना असम्भव है। जान पड़ता है कि तुलसीदास जी और मीराबाई के पत्रव्यवहार की बात बिलकुल मनगढ़न्त है।

स्फुट

१. कहते हैं कि रामायण बनने के पीछे एक दिन गोसाईं जी मणिकर्णिका घाट पर नहा रहे थे। एक पण्डित ने, जिन्हें अपने पाण्डित्य का बड़ा घमण्ड था, इनसे

* बहुत पुस्तकों में ये दो चरण नहीं हैं।

पूछा कि "महाराज, आपने संस्कृत के पण्डित होकर अपने ग्रन्थ को गँवारी भाषा में क्यों बनाया ?" गोसाईंजी ने कहा "इसमें सन्देह नहीं कि मेरी गँवारी भाषा अभावपूर्ण है, पर आपके संस्कृत के नायिका-वर्णन से अच्छी ही है।" उसने पूछा "यह कैसे ?" गोसाईंजी ने कहा—

"मनि भाजन विष पारई, पूरन अमी निहार।
का छाड़िय का संग्रहिय, कहहु विवेक विचार॥"

(यह दोहावली का ३५१ वाँ दोहा है पर उसमें और इसमें कुछ पाठान्तर है।)

२. घनश्यामदास शुक्ल संस्कृत के अच्छे कवि थे, पर भाषा-कविता करना उन्हें अधिक रुचता था। उन्होंने धर्मशास्त्र के कुछ ग्रन्थ भाषा में बनाये। इसपर एक पण्डित ने उनसे कहा कि "इस विषय को देववाणी संस्कृत में न लिखने से ईश्वर अप्रसन्न होते हैं, आगे से आप संस्कृत में लिखा कीजिये।" उन्होंने तुलसीदास से सलाह पूछी। गोसाईंजी ने कहा—

"का भाषा का संसक्रित, प्रेम चाहिये साँच।
काम जो आवइ कामरी, का लै करै कमाँच॥

(यह दोहावली का ५७१ वाँ दोहा है और सतसई में भी है।)

३. एक दिन एक अलखिया फकीर ने आकर "अलख, अलख" पुकारा। इसपर तुलसीदास जी ने कहा—

"हम लख हमैं हमार लख, हम हमार के बीच।
तुलसी अलखै का लखै, राम नाम जप नीच॥"

४. जिला सारन के मैखा गाँव में हरीराम ब्रह्म का ब्रह्मस्थान है। कहते हैं कि कनकशाही बिसेन के अत्याचार से आत्महत्या करके हरीराम ब्रह्म बने थे। यहाँ रामनवमी के दिन बड़ा मेला लगता है। कहते हैं कि इन हरीराम के यज्ञोपवीत के समय तुलसीदासजी भी उपस्थित थे।

५. बैजनाथ जी के ग्रन्थ से नीचे लिखे स्फुट वृत्तान्त लिखे जाते हैं :—

(१) गोसाईंजी के दर्शन और उपदेश से एक वेश्या को ज्ञान हुआ और वह सब तज हरिभजन करने लगी।

(२) एक जीविकाहीन पण्डित बड़े दुखित थे, उनके लिये श्री गङ्गाजी ने गोसाईंजी की बिनती पर काशी के उस पार बहुत सी भूमि छोड़ दी।

(३) मुर्दा जिलाने पर लोगों की भीड़ गोसाईंजी के दर्शन को आया करती थी। गोसाईंजी गुफा में रहते थे। एक बेर बाहर निकल कर सब को दर्शन दे देते थे। तीन लड़के दर्शन के नेमी थे। एक दिन वे तीनों नहीं आये, इससे गोसाईंजी ने उस दिन किसी को दर्शन न दिये। लोगों को बहुत बुरा लगा। दूसरे दिन

लड़के भी आये, परन्तु उनकी परीक्षा के लिए उस दिन गोसाईंजी ने किसी को दर्शन न दिये। लड़कों से वियोग न सहा गया, तड़प कर मर गये। तब गोसाईंजी ने चरणामृत देकर उनको जिलाया। लोग उनका प्रेम देखकर धन्य धन्य कहने लगे।

(४) एक तान्त्रिक दण्डी की स्त्री को कोई बैरागी भगा ले गया था। दण्डी को यक्षिणी सिद्ध थी। उसके द्वारा उसने बादशाह को पकड़ मँगाया और हुक्म जारी करा दिया कि सब की माला उतार ली जाय और तिलक मिटा दिये जायँ। जब काशी में गोसाईंजी के पास राजदूत आये तो भयंकर काल का रूप दिखाई दिया। सब भागे और गोसाईंजी के प्रताप से जिन लोगों की कण्ठी माला उतरी थी, वह सब आप से आप उनके पास पहुँच गईं।

(५) अयोध्या का एक भङ्गी काशी में आकर रहा था। उसके मुँह से अवध का नाम सुनकर वे प्रेम-विह्वल हो गये। उन्होंने उसका बड़ा सत्कार किया और बहुत कुछ देकर उसे बिदा किया।

(६) एक समय वे जनकपुर गये थे। वहाँ के ब्राह्मणों को श्रीरामचन्द्रजी के समय से बारह गाँव माफी दान मिले थे, जिनको पटने के सूबेदार ने छीन लिया था। गोसाईंजी ने श्री हनुमान्‌जी की सहायता से उनके पट्टे फिर ब्राह्मणों को लौटवा दिये।

(७) काशी में वनखण्डी में एक प्रेत इनके दर्शन से प्रेतयोनि से मुक्त हो गया।

(८) चित्रकूट-यात्रा के समय रास्ते में एक राजा की कन्या को चरणामृत देकर इन्होंने पुरुष बना दिया। इसके प्रमाण में दोहावली के ये दो दोहे हैं:—

दोहा—"कबहुँक दरसन संत के, पारसमनी अतीत।
नारि पलट सो नर भयो, लेत प्रसादी सीत॥
तुलसी रघुबर सेवतहिं, मिटि गो कालोकाल।
नारि पलट सो नर भयो, ऐसे दीनदयाल॥"

(९) प्रयाग में वे गोसाईं मुरारीदेव जी से मिले थे।

(१०) मलूकदास और स्वामी दरियानन्द से इनकी भेंट हुई थी।

(११) चित्रकूट मन्दाकिनी में एक ब्राह्मण की दरिद्रता छुड़ाने के लिये दरिद्रमोचनशिला आप से आप निकल आई जो अबतक है।

(१२) दिल्ली से लौटते हुए एक ग्वाले को उपदेश देकर इन्होंने मुक्त कर दिया। उसका स्थान अबतक है।

(१३) वृन्दावन में किसी ने कहा कि श्रीकृष्ण पूर्णावतार हैं और श्रीराम अंशावतार हैं, सो आप श्रीकृष्णका ध्यान क्यों नहीं करते? गोसाईंजी ने कहा कि मेरा मन तो दशरथ-नन्दन के सुन्दर श्यामस्वरूप पर ही लुभा गया था। अब

विदित हुआ कि वे ईश्वर के अंशावतार हैं। यह और भी अच्छा हुआ। वृन्दावन में उन्होंने कई चमत्कार दिखाये।

(१४) संडीले के स्वामी नन्दलाल गोसाईंजी से चित्रकूट में आकर मिले। गोसाईंजी ने उन्हें अपने हाथ से रामकवच लिखकर दिया था।

(१५) मुक्तामणिदासजी नाम के एक महात्मा अवध में थे, उनके बनाये पदों पर गोसाईं जी बहुत ही रीझे थे।

(१६) अवध से वे नैमिषारण्य आये। सूकरक्षेत्र का दर्शन किया, पसका में कुछ दिन रहे। सिवार गाँव में कुछ दिन रहे। यहाँ सीताकूप है। यह स्थान श्रीसीताजी का है। कुछ दिन वे लक्ष्मणपुर (लखनऊ ?) में रहे। वहाँ के एक निरक्षर दीन जाट को अच्छा कवि बना दिया और अच्छी जीविका करा दी। वहाँ से थोड़ी दूर मड़िआऊँ गाँव में भीष्म नामक एक भक्त रहते थे। उनके बनाये नखसिख को सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुए। वहाँ उनसे मिलने के लिये आये। चनहट गाँव होते, एक कूएँ का जल पीते और उस जल की बड़ाई करते मलिहाबाद में आकर उन्होंने डेरा किया। वहाँ एक भाट भक्त थे, उनको अपनी रामायण दी।* वहाँ से प्रभाती में स्नान करके वाल्मीकिजी के आश्रम से होते, रसूलाबाद के पास कोटरा गाँव में वे आये। यहाँ वे अनन्यमाधव से मिले। ये बड़े भक्त और कवि थे।

यहाँ गोसाईं जी ने "मैं हरि पतित पावन सुने" यह पद बनाया। अनन्यमाधवदास ने उत्तर में यह पद बनाया—

"तब तें कहाँ पतित नर रह्यो।
जब तें गुरु उपदेश दीन्यो नाम नौका गह्यो॥
लोह जैसे परसि पारस नाम कंचन लह्यो।
कस न कसि कसि लेहु स्वामी अजन चाहन चह्यो॥
उभरि आयो बिरह बानी बोल महँगे कह्यो।
खीर नीर ते भयो न्यारो नरकते निर्वह्यो॥
मूल माखन हाथ आयो त्यागि सखर मह्यो।
अनन्य माधवदास तुलसी भवजलधि निर्वह्यो॥

वहाँ कुछ दिन रह कर वे ब्रह्मावर्त्त (बिठूर) में गङ्गातट पर आ रहे। वहाँ से वाल्मीकि जी के स्थान से होते संडीले आये। रास्ते में ठहरते ठहराते नैमिषारण्य होते फिर वे अवध में आगये।

* कहते हैं कि रामायण की वह प्रति अब भी वर्तमान है। हमें भी इसके दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हो चुका है। यह जिनके अधिकार में है वे उसकी परीक्षा नहीं करने देते। साथ ही लोग यह भी कहते हैं कि इसमें कई स्थान पर क्षेपक हैं। इससे इस प्रति के तुलसीदासजी द्वारा लिखित होने में संदेह है।

(१७) संडीले में एक ब्राह्मण को वे कह आये थे कि तुम्हें बड़ा कृष्णभक्त बेटा होने वाला है, ऐसा ही हुआ। उनके पुत्र मिश्र वंशीधर बड़े भक्त और कवि हुए।

(१८) नैमिषारण्य में एक महात्मा रहते थे, उनसे वे मिले।

(१९) मिसिरिष के पास एक जैरामपुर गाँव है, वहाँ आकर उन्होंने एक [illegible] डाली गाड़ दी, वह पेड़ हो गई, उसका नाम उन्होंने वंशीवट रक्खा और आज्ञा की कि श्रीराम-विवाहोत्सव के दिन अगहन सु० ५ को यहाँ रामलीला कराया करें। वह प्रति वर्ष अबतक होती है।

(२०) रामपुर में जकात के लिये इनकी नाव रोक दी गई थी। तब उन्होंने सब कुछ वहीं लुटा दिया। जमींदार ने जब सुना तो वह आ पैरों पर गिरा और बड़े आग्रह से उन्हें घर लाया। प्रसन्न होकर उसको उन्होंने एक प्रति रामायण की दी।

(२१) कवि गङ्ग गोसाईं जी से मिलने काशी आये थे।

(२२) जहाँगीर उनसे मिलने आया था और उसने बहुत कुछ देना चाहा, पर गोसाईंजी ने कुछ ग्रहण न किया।

पंडित महादेव प्रसाद त्रिपाठी ने "भक्ति-विलास" नामक ग्रन्थ गोसाईं जी के चरित्र-वर्णन में लिखा है, उससे जो विशेष बातें विदित हुईं वे यहाँ लिखी जाती हैं—

(१) गोसाईंजी के माता-पिता का स्थान पत्योजा में था। गर्भस्थिति अन्तर्वेद के तरी गाँव में हुई, वहाँ से आकर राजापुर में गोसाईंजी का जन्म हुआ।

(२) वे लोग मालवा की ओर चले; रास्ते में सूकर खेत (सोरों) में नरहरिदास से तुलसीदास जी ने रामचरित्र की कथा सुनी।

(३) माता-पिता ने इनका जनेऊ किया, और विद्या पढ़ाई। बचपन में नरहरिदास ने उपदेश किया। जब माँ-बाप मर गये, गुरु ने आज्ञा देकर इन्हें राजापुर भेजा, वहाँ इन्होंने विवाह किया। फिर स्त्री का उपदेश हुआ।

(४) * ब्रज में सूरदास से इनकी भेंट हुई।

(५) ओड़छे में केशवदास को इन्होंने प्रेतयोनि से छोड़ाया।

(६) टोडरमल काशी में इनकी सेवा करते थे।

६. महाराज रघुराज सिंह ने अपने भक्तमाल में जो चरित्र लिखा है, उसमें जो विशेष बातें हैं वे लिखी जाती हैं—

(१) स्त्री के उपदेश के पीछे गुरु ने सूकर खेत में रामायण का उपदेश दिया।

---

* किसी ने तुलसीदास से सूरदास की प्रशंसा की, उस पर तुलसीदास ने कहा—

कृष्णचन्द्र के सूर उपासी। तातें इनकी बुद्धि हुलासी॥
रामचन्द्र हमरे रखवारा। तिन्हि छाँड़ि नहिं कोउ संसारा॥

(२) एक ब्राह्मण के लड़के को उन्होंने हनुमान् जी के द्वारा यमपुरी से लौटा मँगाया ।

(३) दिल्ली में एक मतवाला हाथी इन पर टूटा, श्री रामचन्द्र जी ने तीर से उसको मार गिराया ।

(४) काशी में विनयपत्रिका बनाकर विश्वनाथ जी के मन्दिर में इन्होंने रख दी थी । विश्वनाथ जी ने उस पर सही कर दी ।

उपसंहार

ऊपर जो कुछ लिखा गया है उन कथानकों को मैंने श्रीयुत बाबू श्यामसुंदर-दास जी बी० ए० द्वारा लिखित जीवनी से उद्धृत किया है । बाबू साहेब ने जिन जिन ग्रन्थों से उद्धरण किये हैं, स्थान स्थान पर आपने भी उन उन लेखकों के शुभ नाम दिये हैं । समालोचना का दृष्टि-कोण प्रत्येक समालोचक का भिन्न-भिन्न होता है । मैंने सब कथाओं अथवा वार्त्ताओं को इस ग्रन्थ में इस कारण स्थान दिया है कि जनता को इस बात की जानकारी हो कि गोसाईजी की जीवनी के सम्बन्ध में इतनी बातें प्रसिद्ध हैं । इन घटनाओं में से कितनी सच्ची, कितनी साहित्यिक शैलीपर लिखी हुई, कितनी अत्युक्त और कितनी असम्भव हैं । इसका विवेचन भिन्न-भिन्न दृष्टि-पथ से भिन्न-भिन्न प्रकार का हो सकता है । मेरी निजी धारणा पूर्ववत् है । मैं समझता हूँ कि गोसाईजी के वैष्णवभक्तों ने उनकी महिमा बढ़ाने के लिये उनकी वास्तविक जीवनी पर बहुत कुछ पालिस चढ़ाई है । मैं गोसाईजी को असाधारण पुरुष अवश्य मानता हूँ, पर साथ ही उनकी महत्ता को अनुचित और अनर्गल ढंग से बढ़ा कर अथवा उलट-पुलट कर लिखने का भी कट्टर विरोधी हूँ । ऐसा होने से एक बड़ी भारी हानि यह होती है कि जनता ऐसे लोगों को जब अलौकिक समझ लेती है तो परिणाम यह होता है कि वह उस महापुरुष के सच्चे गुणों तक पहुँचने में असमर्थ रह जाती है । महात्मा गाँधी ने जिस समय भारतवर्ष में अपना असहयोग आन्दोलन उठाया उस समय उनके विषय में दैवी शक्ति का ऐसा पुच्छड़ लोगों ने लगाया जिसका पारावार नहीं । कोई कहता था कि इनको लाट साहब ने कलकत्ते में कैद किया तो देखा गया कि उसी समय बम्बई में महात्मा जी विराजमान हैं, किसी ने हल्ला उठाया कि अमुक स्थान पर एक पेड़ सूखा कटा पड़ा था, जो महात्मा गाँधी की जयजयकार सुन कर हरा होकर उठ खड़ा हो गया, अथ च अमुक स्थान के सूखे कूप में महात्मा गाँधी का नाम लेने से पानी भर आया, इत्यादि । इसमें सन्देह नहीं कि थोड़े काल के लिये महात्मा गाँधी की प्रभुता का देश में समुद्र उमड़ पड़ा । लोग समझ गये कि स्वराज्य की प्राप्ति के लिये हमें कुछ करना-धरना नहीं है, महात्मा जी की दिव्य शक्ति से स्वयमेव अँगरेज भारत छोड़ कर

भाग जायँगे और देश को स्वराज्य अनायास उपलब्ध हो जायगा। इस मिथ्या विश्वास ने देश को तैयार होने में बड़ी ही बाधा दी, लोग महात्मा जी के सच्चे त्याग, सच्चरित्रता, सदाचार, धैर्य और देश-प्रेम तक पहुँच नहीं सके। लगभग ऐसी ही बातें गोसाईंजी के सम्बन्ध में भी लागू हैं। गोसाईंजी की कवित्व-शक्ति, ईश्वर-प्रेम, निस्वार्थसेवा और सदाचार-संगठन को वास्तव में हिन्दुओं के बहुपक्ष ने नहीं पहचाना, पर लोग हनुमानबाहुक और रामायण का पाठ करने, सम्पुट पढ़ने और धूप-दीप-नैवेद्य चढ़ाने में लग गये। हिन्दू जनता में इन सब मिथ्या विश्वासों की इतनी अभिवृद्धि हुई कि भागलपुर में एक कायस्थ मुंसिफ साहेब के विषय में यहाँ तक सुना कि वे "रामाज्ञा" के दोहों से शकुन विचार कर तदनुसार ही अभियोग-निर्णय किया करते थे !! इसमें कोई भी सन्देह नहीं कि अपने समय में गोसाईंजी ने हिन्दू जनता में फैले हुए बहुतेरे धार्मिक अन्ध विश्वासों की जड़ काटी, साम्प्रदायिक भेद-भावों एवं दुरावों को दूर करने में अकथ श्रम किया, अपने ग्रन्थों में भी बहुतेरे पाखण्डों, अन्ध-परम्पराओं के प्रबल खण्डन किये और हिन्दू जाति को एक पथ पर चलाने के निरंतर यत्न किये, परन्तु उनका प्रदर्शित-पथ स्वयमेव साम्प्रदायिकता से समाविष्ट था, अतः वह सर्वमान्य नहीं हो सका। लाला शिवनन्दन सहाय जी "माधुरी" वर्ष २ खंड १ संख्या १ के पृष्ठ २६ पर लिखते हैं कि:—

"हम यहाँ गोसाईंजी के उन गुणों का थोड़ा-सा वर्णन करेंगे, जिसके कारण यह जगद्विख्यात, सर्वप्रिय तथा सबके सम्मान-भाजन हुए हैं। उन गुणों को जानने के लिये इन्हें कवि और धर्म-प्रचारक इन दो रूपों में देखना होगा। संसार में गोसाईंजी के आविर्भाव के पूर्व से ही हिन्दू समाज में शिथिलता आ गई थी, और बहुत से मतों के अनुयायी धर्म के नाम पर कुत्सित कर्म एवं अत्याचार और कुव्यवहार का प्रचार करने लगे थे। अनेक धर्म-संशोधक धर्म-रक्षा में लगे हुए थे। श्रीरामानंदजी वैष्णव-धर्म के रक्षक और संशोधक हो चुके थे; परन्तु रामनाम में प्रेम तथा विश्वास उत्पन्न करने वाला गोसाईंजी से बढ़कर कोई नहीं हुआ। इन्होंने इसे पूर्व से पश्चिम तक फैला दिया। इन्होंने कोई नया सम्प्रदाय नहीं स्थापित किया। पंडित रामगुलाम तथा पंडित शेषदत्त आदि की गणना जो इनकी शिष्य-परंपरा में होती है, सो केवल रामायण-शिक्षा के सम्बन्ध से; क्योंकि कबीर-पंथी, दादू-पंथी, नानकशाही, रयदासी, आर्य-समाजी और ब्रह्म-समाजी आदि की तरह किसी को अपने तईं तुलसी-दासी या तुलसी-पंथी कहते नहीं सुना। इन्होंने लम्बी-लम्बी वक्तृताओं और उपदेशों का भी आश्रय नहीं लिया, न जहाँ-तहाँ दौड़-धूप कर शास्त्रार्थ में उलझते फिरे, और न भिन्न-भिन्न प्रान्तों में भ्रमण कर दिग्विजय का डंका पीटते या पिटवाते रहे। इन्होंने स्वदेशियों के दुःख से दुःखित होकर और ही उपाय का अवलम्बन किया।"

मैं समझता हूँ कि इस लेख में लाला जी कुछ भूलते हैं। तुलसीदास जी तो स्वयं श्री रामानन्द जी की सम्प्रदाय के अवलम्बी थे, अतः नवीन सम्प्रदाय क्यों चलाते अथवा उनके प्रेमी अपने को तुलसी-पंथी क्यों कहते ? यदि तुलसीदास जी शास्त्रार्थ वा दिग्विजय करने निकलते तो क्या परिणाम होता ? जैसी इनकी एक सम्प्रदाय थी वैसी भारत में अनेकों सम्प्रदायें प्रचलित हो चुकी थीं। 'को बड़ छोट कहत अपराधू' के अनुसार सभी तो एक से एक सराहनीय थीं। गोसाईंजी किस-का खण्डन और किसका मंडन करते ? हाँ; वैदिक धर्म की ओर लोगों को गोसाईंजी लाना चाहते थे पर उसका स्वरूप उनके समक्ष जाज्वल्यमान नहीं था, अन्धकार का प्राचुर्य था, अतः उसके पथ-प्रदर्शन में गोसाईं जी भी कहीं कहीं भ्रमित हो जाया करते थे। लाला जी इन्हें कवि और धर्म-प्रचारक दो रूपों में देखते हैं, पर मैं इन्हें जनता के सम्मुख धार्मिक महाकवि के स्वरूप में समुपस्थित कर इनकी कविता की ओर ही उसे आकर्षित करूँगा। धर्म-प्रचारक के स्वरूप में तो साम्प्रदायिकता का संमिश्रण प्रलक्षित होता है। हाँ, अलबत्ता; यदि गोसाईंजी एक कवीश्वर की स्थिति में दिग्विजिय के लिये निकलते तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि विजयश्री इनका चरण चूमती, क्योंकि इनकी समकक्षता का उस समय न तो कोई कवि था और न अब है। भविष्य का भगवान जाने।

अन्य मतावलम्बियों के मुकाबिले में गोस्वामी जी का आसन सर्व प्रकार से उच्च था। इनके सदाचार, देश-प्रेम, धर्म-प्रेम, ईश्वर-भक्ति, कवित्व-शक्ति, समाज-सङ्गठन और सदाशय को हम आदर्श मानकर चलें तो बहुलांश में हमारा कल्याण हो सकता है। महात्मा की अमोघ और अमृतवर्षिणी लेखनी ने जनता की जो कुछ सेवा की है, वह स्तुत्य है, वन्दनीय है और परमादरणीय है।

तुलसी साहित्य-रत्नाकर

मध्य-खण्ड

[गोस्वामी जी के विरचित ग्रन्थ]

'मातृभाषासमुद्धारः कर्तव्यो मानवैः सदा'

गोस्वामी जी ने कितने ग्रन्थों की रचना की है, इस विषय में भी भिन्न-भिन्न लेखकों की सूची भिन्न-भिन्न है, किसी में मतैक्य नहीं। मेरा अनुमान है कि स्फुट काव्यों की बातें यदि छोड़ दी जायँ तो सबसे प्रथम पुस्तक रामचरितमानस और अन्तिम विनयपत्रिका ही ठहरेगी। प्रथम उन ग्रन्थों की सूची दी जाती है, जिनके तुलसीकृत होने में सभी लेखक सहमत हैं।

१—रामचरितमानस अथवा रामायण, २—कवित्तरामायण, ३—गीतावली, ४—दोहावली, ५—कृष्णगीतावली, ६—रामललानहछू, ७—बरवै-रामायण, ८—वैराग्य-संदीपिनी, ९—पार्वतीमङ्गल, १०—जानकीमङ्गल, ११—रामशकुनावली वा ध्रुवप्रश्नावली वा रामाज्ञा और १२—विनयपत्रिका। भक्तप्रवर प्रियादास जी ने भी भक्तमाल की टीका करते हुए उक्त बारह ग्रन्थों को ही गोस्वामी जी द्वारा विरचित माना है, जैसा निम्न पद्य से प्रगट है:—

कवित्त

"रामललानहछू, त्यों विराग संदीपिनी हूँ, बरवै बनाइ बिरमाई मतिसांई की।
पार्वती जानकी मंङ्गल ललित गाय, रम्य राम आज्ञा रची कामधेनु नांई की ॥
दोहा, औ कवित्त, गीत बन्धु, कृष्ण कथा कही, रामायन, विनै माँह बात सबठांई की।
जग में सोहानी, जगदीश हूँ के मनमानी, सन्त सुखदानी, बानी तुलसी गोसाईं की ॥

निम्नलिखित ग्रन्थों को शिवसिंह सरोजकार, माननीय मिश्रबन्धु तथा अन्यान्य कई ग्रन्थकार महानुभाव गोस्वामीकृत मानते हैं और किसी ग्रन्थ के विषय में कोई कोई लेखक महाशय तुलसीकृत होने में असहमत हैं:—

१—राम-सतसई वा तुलसी-सतसई, २—छन्दावली रामायण, ३—सङ्कटमोचन, ४—हनुमानबाहुक, ५—रामशलाका, ६—कुण्डलियारामायण, ७—कड़खारामायण, ८—रोलारामायण, ९—झूलनारामायण और १०—छप्पयरामायण।

मिश्रबन्धु-विनोद में निम्नलिखित ग्रन्थ भी तुलसीकृत बताये जाते हैं जो अति अप्रसिद्ध हैं। मैंने इन ग्रंथों में से किसी को भी नहीं देखा तथा बहुतेरे ग्रंथकारों ने तो इनके नाम भी नहीं दिये हैं:—

१—अङ्कावली, २—पदावली-रामायण, ३—तुलसीबानी, ४—कलिधर्माधर्म-निरूपण, ५—ज्ञान-परिकरण, ६—मङ्गलरामायण, ७—गीताभाषा, ८—सूर्यपुराण, ९—राममुक्तावली और १०—ज्ञानदीपिका। मैं तो समझता हूँ कि गोसाईंजी की महिमा इसलिये महती नहीं है कि उनने बहुतेरे ग्रन्थ बनाये। इनकी कीर्त्ति-कौमुदी के विस्तार के लिये केवल रामचरित-मानस की कृत्ति ही पर्याप्त हो सकती थी। गोसाईंजी के ऊपर बहुतेरे ग्रन्थों के कर्तृत्व का उत्तरदायित्व देना उनके साथ अन्याय करना है। रचना-बाहुल्य गोसाईंजी की सुख्याति का कारण नहीं हो सकता।

मेरी धारणा है कि भूमण्डल पर यावत् रामचरितमानस और विनयपत्रिका का अस्तित्व रहेगा तावत् तुलसीदास और उनकी कीर्त्ति का लोप सम्भव नहीं। आगे गोस्वामी जी द्वारा विरचित प्रसिद्ध ग्रन्थों के क्रम, विभाग और वर्णित विषयों के संक्षिप्त उल्लेख और साहित्यिक दृष्ट्या उपादेय पद्यों के उद्धरण किये जायेंगे।

[१] रामचरितमानस

पूर्व लिखा जा चुका है कि गोस्वामी जी बहुत दिनों तक गोभक्त रहे। मेरी समझ में ४० वर्ष की आयु तक इनका वास्तविक युवाकाल सांसारिक विषयवासनाओं में व्यतीत हुआ। आप जानते हैं कि हीरा जैसा बहुमूल्य मनोहर पदार्थ, जिसे बड़े बड़े भाग्यवान अपने मुकुट में जड़वाते हैं, कोयला जैसे कुत्सित पदार्थ से निकलता है; ठीक उसी प्रकार गोभक्त रामबोला के जीवन से गोस्वामी तुलसीदासजी का आविर्भाव कोई भी आश्चर्योत्पादक नहीं कहला सकता।

जिस प्रकार एक अहोरात्र का पहला भाग 'रात्रि-काल' तो ऐसा घनघोर अन्धकारमय रहता है कि अपना हाथ भी फैलाने से स्वयं नहीं सूझता, परन्तु उसी का पिछला भाग 'द्यौस-काल' ठीक उसके विरुद्ध ऐसा प्रकाशमय होता है कि सात कोठरी के भीतर रखी हुई सूई सूझने लगती है, तदनुसार ही संसार में ऐसे बहुतेरे पुरुष हो गये हैं जिनके जीवन का पूर्वकाल निरा अन्धकारमय था परन्तु साधारण से साधारण घटना ने उसे प्रचण्ड-प्रकाश के रूप में परिवर्त्तित कर दिया। सूर, तुलसी एवं बुद्धदेव के जीवन इसके लिये प्रज्वलित प्रमाण हैं। रामबोला के जीवन को देख कर यह किसे भरोसा हो सकता था कि इनसे हिन्दी-भाषा और हिन्दू-जाति की आशातीत सेवा होने वाली है। यह कौन जानता था कि इसके हृदय में आतशी शीशे की आग छिपी हुई है, जो तनिक प्रकाश पाने से जल उठेगी। क्यों न हो?

समुद्र के अन्दर बड़वानल के और अत्यन्त सुशीत बसुन्धरा के उदर में ज्वालामुखी की भयाविनी ज्वाला के अस्तित्व को कोई कोई बिरले ही जन जानते हैं।

सुतराम् इन महाकवि के हृदय-रूपी मानस से पवित्र और निर्मल कविता-रूपी भगवती-भागीरथी का राम-यश-रूप मधुर जल से भरा हुआ ऐसा निःश्रोत चला जो लोक और वेद की मर्यादा-रूप दोनों कूलों की रक्षा करते; असुरों और अनाचारियों के कथानक-रूप नाना प्रकार के मकरादि जलचरों को साथ लेते; समाज की विविध कुरीति-रूप मार्ग की मैल और अशुद्धियों को धोते; धूर्त्त, दुष्ट और वञ्चकों की कुटिल नीति-एवं पाखण्ड के प्रबल खण्डन-रूप चकोह चक्र के साथ वेदादि सच्छास्त्रों के मनोहर उपदेशों और उपाख्यानों के वर्णन-रूप नाना देश, प्रदेश, पुर, ग्राम, व्रज, खेट, खर्वट, वाटी और वनोपवनों से होते पौराणिक उपकथानक-रूप गंगोद तथा शाखा नदों को छोड़ते, महान पुरुषों के जीवन-विषयक वर्णन और आख्यायिका-रूप सहायक नदों और नदियों को लेते, अगणित जिज्ञासु-रूप पथिकों को परितृप्त करते हुए; राम-भक्ति-रूप अथाह अमृत-समुद्र में पहुँच कर आनन्द की लहरों में विराम पा गया। रामचरित-मानस वास्तव में तुलसी-मानस है। इसमें सचमुच गोसाईंजी ने अपना अन्तःकरण निकाल कर रख दिया है। भारतरत्न साहित्याचार्य पण्डित अम्बिकादत्तजी व्यास (स्वर्गवासी) ने इनकी रामायण के विषय में इस प्रकार लिखा है:—

डगर डगर अरु नगर नगर माँहीं,
कहनि पसारी रामचरित अवलिकी।
कहै कवि 'अंबादत्त' राम ही की लीलन सो,
भरि दीनी भीर सबै चहलि पहलि की॥
सूद्रन तें ब्राह्मन लों मूरख ते पंडित लों,
रसना डुलाई सबै जै जै बलि बलि की।
जम को भगाय पाप-पुंज को नसाय आज,
तुलसी गुसाइँ नाक काट लीनी कलिकी॥

इस महाकाव्य में सात काण्ड हैं जिसका विवरण निम्न भाँति है:—

बालकाण्ड—काण्डों का विभाग गोसाईंजी ने वाल्मीकि और अध्यात्म रामायण के अनुसार ही रखा है, केवल उत्तरकाण्ड स्वतन्त्र है।

आरम्भ में सात श्लोक दिये हैं जिनमें पूर्व के छः श्लोकों के द्वारा मङ्गलाचरण करते हुए कवि ने सरस्वती, विनायक, शिव-पार्वती, गुरु, वाल्मीकि, हनुमान, सीता और राम की स्तुति की है। सातवाँ श्लोक यह है:—

नानापुराणनिगमागमसम्मतंयद्रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथाभाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति॥

इस श्लोक से कवि ने इस बात का निदर्शन कराया है कि इस रामायण में जो कुछ वर्णन किया गया है उसका सार अनेक पुराण, वेद और शास्त्रों से सम्मत है। यहाँ तक कि "क्वचिदन्योतोऽपि" पद देकर कवि ने यह इङ्गित किया है कि रामायण की कुछ गाथाएँ किम्वदन्ती और जनश्रुति तथा दन्तकथाओं के आधार पर लिखी गई हैं। इस पद्य में 'भाषा' शब्द को स्वामीजी ने हिन्दी-भाषा के अर्थ में प्रयुक्त किया है। इसके बाद भाषा-काव्य में गणेश, विष्णु, शिव, गुरु, ब्राह्मण और सज्जनों की वन्दना की है। प्रायः सभी देवताओं की वन्दना अपने ढंग की निराली है। सन्त-समाज-महिमा, सत्संग-माहात्म्य, खल-वन्दना और साधु-असाधु-तुलना के सम्बन्ध की कविता, कविवर की कवित्व-शक्ति की अद्भुत छटा और लावण्य प्रदर्शित करती है। आगे चलकर आपने चौरासीलक्ष योनि को सीताराममय जान कर सप्रेम प्रणाम किया है, जिससे गोस्वामी जी का बहुत ही उच्च भाव प्रदर्शित होता है। आगे अपनी दीनता और हीनता तथा राम-कथा की उत्कृष्टता का वर्णन किया है। तदनन्तर व्यास-बाल्मीकि आदि श्रेष्ठ कवियों एवं प्राकृत भाषा तथा हिन्दी भाषा के भूत, वर्त्तमान और भावी हरिचरित्रगायक कवियों की वन्दना की है. पुनः चतुर्वेद, ब्रह्मा, देवता, ब्राह्मण, पण्डित, ग्रह, सरस्वती, गङ्गा, शिव-पार्वती, अवधपुरी, अवधनिवासी, कौशल्या, दशरथ, जनक, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, महाबीर, सुग्रीव, जामवन्त, अङ्गद, रामोपासक, शुकदेव, सनकादि, नारद तथा सीता और राम की वन्दना करते हुए रामनाम की महिमा का वर्णन किया है। रामनाम का प्रभाव तथा अक्षर-द्वय की महिमा का वर्णन करते हुए गोस्वामी जी ने साकार और निराकार दोनों ही की अपेक्षा नाम के माहात्म्य को ऊँचा ठहराया है। निम्नलिखित दोहों में अत्यन्त बालपन में अपने गुरु द्वारा राम-कथा का सुनना लिखा है:—

दोहा—मैं पुनि निज गुरु सन सुनी, कथा सो सूकर खेत।
समुझी नहिं तस बालपन, तब अति रह्यों अचेत ॥५८॥
स्रोता वकता ज्ञान निधि, कथा राम की गूढ़।
किमि समझूं मैं जीव जड़, कलि मल ग्रसित विमूढ़ ॥[illegible]॥

आगे चलकर राम-कथा का वर्णन करते हुए आपने रूपकालंकार का साङ्गोपाङ्ग स्वरूप समुपस्थित कर दिया है, जिसे अति रोचक जान कर नीचे उद्धृत किया जाता है:—

निज सन्देह–मोह–भ्रम–हरनी । करउँ कथा भव-सरिता तरनी ॥
बुध–विश्राम सकल–जनरंजनि । राम-कथा कलि-कलुष-विभंजनि ॥
राम-कथा कलि पन्नग–भरनी । पुनि बिबेक-पावक कहँ अरनी ॥
राम-कथा कलि कामद गाई । सुजन-सजीवनि मूरि सुहाई ॥

सोइ बसुधा तल सुधा तरंगिनि। भयभंजनि भ्रम-भेक-भुअंगिनि ॥
असुर-सेन-सम नरक निकंदिनि। साधु-बिबुध-कुल-हित गिरि-नंदिनी ॥
संत-समाज-पयोधि-रमा सी। बिस्व-भार-भर अचल छमा सी ॥
जम-गन-मुह-मसि जग जमुना सी। जीवन-मुकुति-हेतु जनु कासी ॥
रामहि प्रिय पावनि तुलसी सी। तुलसीदास-हित हिय हुलसी सी ॥
सिव प्रिय मेकल-सैल सुता सी। सकल-सिद्धि-सुख-संपति-रासी ॥
सद-गुन-सुर-गन-अंब अदिति सी। रघुबर-भगति-प्रेम परिमितिसी ॥

दोहा—राम कथा मंदाकिनी, चित्रकूट चित चारु।
तुलसी सुभग सनेह बन, सिय-रघुबीर-बिहारु ॥ ५१ ॥

राम-चरित-चिंतामनि चारू। संत-सुमति-तिय सुभग सिंगारू ॥
जगमंगल गुन-ग्राम राम के। दानि मुकुति धन धरम धाम के ॥
सदगुरु ज्ञान बिराग जोग के। बिबुधबैद भव भीम रोग के ॥
जननि-जनक सिय-राम-प्रेम के। बीज सकल ब्रत-धरम-नेम के ॥
समन पाप-सन्ताप-सोक के। प्रिय पालक पर-लोक लोक के ॥
सचिव सुभट भूपति बिचार के। कुम्भज लोभ-उदधि अपार के ॥
काम-कोह-कलि-मल-करि-गन के। केहरि-सावक जन-मन-बन के ॥
अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के। कामद घन दारिद दवारि के ॥
मंत्र महा-मनि बिषय ब्याल के। मेटत कठिन कुअंक भाल के ॥
हरन मोह तम दिनकर-कर से। सेवक-सालि-पाल जलधर से ॥
अभिमत-दानि देव तरु बर से। सेवत सुलभ सुखद हरिहर से ॥
सुकबि सरद नभ मन उडुगन से। राम भगत जन जीवन धन से ॥
सकल सुकृत फल भूरि भोग से। जग हित निरुपधि साधु लोग से ॥
सेवक मन मानस मराल से। पावन गंग तरंग माल से ॥

दोहा—कुपथ कुतर्क कुचालि कलि, कपट दम्भ पाखंड।
दहन राम गुन ग्राम जिमि, इंधन अनल प्रचंड ॥ ५२ ॥
राम चरित राकेस कर, सरिस सुखद सब काहु।
सज्जन कुमुद चकोर चित, हित बिसेषि बड लाहु ॥ ५३ ॥

* * * * *

आगे के कुछ पद्यों में कवि ने यह दर्शाया है कि इस ग्रन्थ का नाम रामचरित-मानस क्यों पड़ा:—

राम-चरित-मानस मुनि भावन। बिरचेउ सम्भु सुहावन पावन ॥
त्रिविध दोष दुख दारिद दावन। कलि कुचाल कुलि कलुष नसावन ॥
रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमउ सिवा सन भाखा ॥
ताते रामचरित मानस बर। धरेउ नाम हिय हेरि हरसि हर ॥

नीचे की चौपाइयों में कवि ने यह उल्लेख किया है कि रामचरितमानस की रचना अयोध्यापुरी में संवत् १६३१ चैत्र शुक्ल ९ मङ्गलवार को आरम्भ हुई थी :—

संवत सोरह सै इकतीसा। करउँ कथा हरिपद धरि सीसा॥
नौमी भौमवार मधुमासा। अवधपुरी यह चरित प्रकासा॥

इसके अनन्तर रामचरितमानस का कवि-सम्राट ने अत्युत्तमरीत्या आलंकारिक वर्णन किया है जो विद्यार्थियों और साहित्यानुरागियों के मनोविनोदार्थ नीचे उद्धृत किया जाता है :—

संभु प्रसाद सुमति हिय हुलसी। रामचरित-मानस कवि तुलसी॥
करइ मनोहर मति अनुहारी। सुजन सुचित सुनि लेहु सुधारी॥
सुमति भूमि थल हृदय अगाधू। वेद पुरान उदधि घन साधू॥
बरषहिं राम सुजस बर बारी। मधुर मनोहर मङ्गलकारी॥
लीला सगुन जो कहहिं बखानी। सोइ स्वच्छता करै मल-हानी॥
प्रेम भगति जो बरनि न जाई। सोइ मधुरता सुसीतलताई॥
सो जल सुकृत सालि हित होई। राम भगत-जन-जीवन सोई॥
मेधा-महिगत सो जल पावन। सकिलि स्रवन-मगु चलेउ सुहावन॥
भरेउ सुमानस सुथल थिराना। सुखद सीत रुचि चारु चिराना॥

दोहा—सुठि सुन्दर सम्बाद बर, बिरचे बुद्धि बिचारि।
तेहि एहि पावन सुभग सर, घाट मनोहर चारि॥५७॥

सप्त प्रबन्ध सुभग सोपाना। ज्ञान नयन निरखत मनमाना॥
रघुपति-महिमा अगुन अबाधा। बरनब सोइ बरबारि अगाधा॥
राम-सीय-जस सलिल सुधासम। उपमा बीचि-बिलास मनोरम॥
पुरइनि सघन चारु चौपाई। जुगुति मंजु मनि सीप सोहाई॥
छन्द सोरठा सुन्दर दोहा। सोइ बहु रंग कमल कुल सोहा॥
अरथ अनूप सुभाव सुभासा। सोइ पराग मकरंद सुबासा॥
सुकृत-पुंज मंजुल अलिमाला। ज्ञान बिराग बिचार मराला॥
धुनि अवरेब कबित गुन जाती। मीन मनोहर ते बहुभाँती॥
अरथ धरम कामादिक चारी। कहब ज्ञान बिज्ञान बिचारी॥
नव रस जप तप जोग बिरागा। ते सब जलचर चारु तड़ागा॥
सुकृती साधु नाम गुनगाना। ते बिचित्र जल बिहँग समाना॥
संत सभा चहुँ दिसि अँबराई। स्रद्धा रितु बसंत सम गाई॥
भगति निरूपन बिबिध बिधाना। छमा-दया द्रुम-लता-बिताना॥
सम जम नियम फूल फल ज्ञाना। हरि पद रस बर बेद बखाना॥
औरे कथा अनेक प्रसंगा। ते सुक पिक बहु बरन बिहंगा॥

दोहा—पुलक बाटिका बाग बन, सुख सुबिहंग बिहारु।
माली सुमन सनेह जल, सींचत लोचन चारु॥५८॥

जे गावहिं यह चरित सँभारे। तेइ एहि ताल चतुर रखवारे॥
सदा सुनहिं सादर नर नारी। तेह सुरबर मानस अधिकारी॥
अति खल जे बिषई बक कागा। एहि सर निकट न जाहिं अभागा॥
संबुक भेक सिवार समाना। इहाँ न विषय कथा रस नाना॥
तेहि कारन आवत हिय हारे। कामी काक बलाक बिचारे॥
आवत एहि सर अति कठिनाई। राम-कृपा बिनु आइ न जाई॥
कठिन कुसंग कुपंथ कराला। तिन्ह के बचन व्याघ्र हरि ब्याला॥
गृह कारज नाना जंजाला। ते अति दुर्गम सैल बिसाला॥
बन बहु बिषम मोह मद माना। नदी कुतर्क भयंकर नाना॥

दोहा—जे स्रद्धा संबल रहित, नहिं संतन्ह कर साथ।
तिनकहुँ मानस अगम अति, जिनहिं न प्रिय रघुनाथ॥५८॥

जौं करि कष्ट जाइ पुनि कोई। जातहिं नींद जुड़ाई होई॥
जड़ता जाड़ विषम उर लागा। गयहु न मज्जन पाव अभागा॥
कहि न जाइ सर मज्जन पाना। फिरि आवे समेत अभिमाना॥
जौं बहोरि कोउ पूछन आवा। सर-निंदा करि ताहि बुझावा॥
सकल बिघ्न ब्यापहिं नहिं तेही। राम सुकृपा बिलोकहिं जेही॥
सोइ सादर सर मज्जन करई। महाघोर त्रयताप न जरई॥
ते नर यह सर तजहिं न काऊ। जिन्ह के राम चरन भल भाऊ॥
जौं नहाइ चह एहि सर भाई। सो सतसंग करहु मन लाई॥
अस मानस मानस चष चाही। भइ कबि बुद्धि बिमल अवगाही॥
भयउ हृदय आनंद उछाहू। उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रबाहू॥
चली सुभग कविता सरिता सी। राम बिमल जस जल भरिता सी॥
सरजू नाम सुमंगल-मूला। लोक-बेद-मत मंजुल कूला॥
नदी पुनीत सुमानस-नंदिनि। कलि-मल–तृन-तरु-मूलनिकंदिनि॥

दोहा—स्रोता त्रिबिध समाज पुर, ग्राम नगर दुहुँ कूल।
संतसभा अनुपम अवध, सकल सुमंगल मूल॥६०॥

राम भगति सुर सरितहि जाई। मिली सुकीरति सरजु सुहाई॥
सानुज राम-समर-जस पावन। मिलेउ महानद सो न सुहावन॥
जुग बिच भगति देव धुनि धारा। सोहति सहित सु बिरति बिचारा॥
त्रिबिध-ताप-त्रासक तिमुहानी। राम सरूप-सिंधु समुहानी॥
मानस मूल मिली सुर सरिही। सुनत सुजन-मन पावन करिही॥
बिच बिच कथा बिचित्र बिभागा। जनु सरि-तीर तीर बन बागा॥
उमा महेस बिवाह बराती। ते जलचर अगनित बहु भाँती॥
रघुबर जनम अनन्द बधाई। भवँर तरंग मनोहर ताई॥

दो०—बाल चरित चहुँ बंधु के, बनज बिपुल बहुरंग।
नृप रानी परिजन सुकृत, मधुकर बारि बिहंग॥६१॥

सीय स्वयम्बर कथा सुहाई । सरित सुहावनि सो छवि छाई ॥
नदी नाव पटु प्रश्न अनेका । केवट कुसल उतर सविवेका ॥
सुनि अनुकथन परस्पर होई । पथिक समाज सोह सरि सोई ॥
घोर धार भृगुनाथ रिसानी । घाट सुबद्ध राम बर बानी ॥
सानुज राम बिबाह उछाहू । सो सुभ उमग सुखद सब काहू ॥
कहत सुनत हरषहिं पुलकाहीं । ते सुकृती मन मुदित नहाहीं ॥
रामतिलक हित मंगल साजा । परब योग जनु जुरे समाजा ॥
काई कुमति केकई केरी । परी जासु फल बिपति घनेरी ॥

दो०—समन अमित उतपात सब, भरत चरित जप जाग ।
काल अघ खल अवगुन कथन, ते जल मल बक काग ॥६२॥

कीरति सहित छहूँ रितु रूरी । समय सुहावनि पावनि भूरी ॥
हिम हिम सैल सुता सिव ब्याहू । सिसिर सुखद प्रभु जनम उछाहू ॥
बरनव राम बिबाह समाजू । सो मुद मंगल मय रितु राजू ॥
ग्रीषम दुसह राम बन गवनू । पंथ कथा खर आतप पवनू ॥
बरषा घोर निशाचर रारी । सुरकुल सालि सुमंगल कारी ॥
राम राज सुख बिनय बड़ाई । बिसद सुखद सोइ सरद सुहाई ॥
सती सिरोमनि सिय गुन गाथा । सोइ गुन अमल अनूपम पाथा ॥
भरत सुभाउ सुसीतलताई । सदा एक रस बरनि न जाई ॥

दो०—अवलोकनि बोलनि मिलनि, प्रीति परस्पर हास ।
भायप भनि चहुँ बंधु की, जल माधुरी सुबास ॥६३॥

आरति बिनय दीनता मोरी । लघुता ललित सुबारि न थोरी ॥
अदभुत सलिल सुनत सुखकारी । आस पिआस मनो मलहारी ॥
राम सुप्रेमहिं पोषत पानी । हरत सकल कलि कलुष गलानी ॥
भव श्रम सोषक तोषक तोषा । समन दुरित दुख दारिद दोषा ॥
काम कोह मद मोह नसावन । बिमल बिबेक बिराग बढ़ावन ॥
सादर मज्जन पान किये ते । मिटहिं पाप परिताप हिये ते ॥
जिन्ह एहि बारि न मानस धोए । ते कायर कलिकाल बिगोए ॥
त्रिषित निरखि रबि कर भव बारी । फिरिहहिं मृगा जिमि जीव दुखारी ॥

दो०—मति अनुहारि सुबारि वर, गुन गनि मन अन्हवाइ ।
सुमिरि भवानी शंकरहि, कह कवि कथा सुहाइ ॥६४॥

× × × × ×

इसके अनन्तर कवि ने माघ-मकर, भरद्वाज आश्रम का वर्णन, याज्ञवल्क्य-भरद्वाज-संवाद, उमा-शिव-संवाद, उमा-भ्रम-निवारण, संक्षिप्त राम-कथा, दक्ष-यज्ञ, सती का अपमान तथा शरीर-त्याग, पार्वती का जन्म, नारद का वचन, पार्वती की

तपस्या, शिव की तपस्या, तारक राक्षस की उत्पत्ति, देवताओं द्वारा प्रेरित कामदेव का प्रताप-विस्तार, काम-प्रभाव से संसार की परिपूर्णता, शिव द्वारा कामदेव का भस्मीभूत होना, रति का शिव के पास जाना और वर प्राप्त करना, शिव-पार्वती के विवाहार्थ सप्तर्षियों का प्रयत्न, शिव की बरात की सजावट तथा हिमाचल के यहाँ गमन, बरात का अद्भुत और हास्य वर्णन, नारद का सबको समझाना, शिव-पार्वती का विवाह, पार्वती का शिवगृह-गमन, तारकासुर के विनाशार्थ कार्त्तिकेय की उत्पत्ति, शिव के द्वारा पार्वती को राम की सर्वव्यापकता के विषय में उपदेश, राम-जन्म का कारण, अवतारों का कारण, जय-विजय का हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष तथा रावण-कुम्भकरण के रूप में जन्म लेना, जलन्धर-वध, नारद की तपस्या का वर्णन और इन्द्र का कामदेव द्वारा तपोभंग की चेष्टा, नारद का अभिमान, विष्णु द्वारा मानमर्दन, नारद द्वारा विष्णु को शाप देने की कथा, मनु-सतरूपा का तपस्या द्वारा वरदान पाना, भानुप्रताप की कथा, ब्राह्मणों के शाप से रावण, कुम्भकरण और विभीषण का राक्षस होना तथा तपस्या द्वारा वरप्राप्ति, रावण का यक्षों से युद्ध कर लङ्का पर विजय और उसको राजधानी बनाना, मेघनाद-जन्म, रावण का अत्याचार, पृथिवी की पुकार, देवताओं का आर्त्त-नाद, आकाशवाणी द्वारा विष्णु की अवतार लेकर रक्षा की प्रतिज्ञा, राजा दशरथ का पुत्रेष्टि यज्ञ कराना, रामादि चारों भ्राताओं का जन्म-वर्णन, अयोध्या का आनन्दोत्सव, चारों भाइयों का नामकरणसंस्कार, उनकी बाल-लीला का विस्तार, यज्ञ-रक्षार्थ विश्वामित्र का राजा दशरथ से राम-लक्ष्मण को माँग कर ले जाना, मार्ग में ताड़का-वध, यज्ञ-रक्षा, सुबाहु का प्राणान्त करना, तथा मारीच को बाण के साथ लङ्का भेजना, विश्वामित्र के साथ धनुष-यज्ञ का संवाद सुनकर जनकपुर-प्रस्थान, मार्ग में अहल्या शाप-मोचन, गङ्गा-स्नान, जनकपुर का वर्णन, जनक की नगरी और वाटिका में भ्रमण, सीता और राम का वाटिका में साक्षात्कार होना, उभय पक्ष का अनुपम लावण्य वर्णन, सीता द्वारा भवानी-पूजन, तथा रामचन्द्र के पति होने का वरदान पाकर सीता के आनन्दित होने का वर्णन किया है। जनक की पुष्पवाटिका से राम और लक्ष्मण विश्वामित्र के पास पुष्प लेकर वापस आये। राम के चित्त में सीता के सौन्दर्य का चित्र चित्रित हो गया था। गोस्वामी जी ने राम के मुख से सायंकाल के चन्द्रमा के वर्णन के व्याज से सीता की सुन्दरता का वर्णन इस प्रकार करवाया है:—

> बिगत दिवस गुरु आयसु पाई। संध्या करन चले दोउ भाई॥
> प्राची दिसि ससि उगेउ सुहावा। सिय-मुख-सरिस देखि सुख पावा॥
> बहुरि बिचार कीन्ह मन माहीं। सीय-बदन-सम हिम कर नाहीं॥
>
> दोहा—जनम सिंधु पुनि बन्धु बिष, दिन मलीन सकलंक।
> सिय-मुख समता पाव किमि, चंद बापुरो रंक॥२३०॥

घटै बढ़ै बिरहिनि दुख दाई। ग्रसै राहु निज संधिहि पाई॥
कोक-सोक-प्रद पंकज द्रोही। अवगुन बहुत चन्द्रमा तोही॥
बैदेही-मुख पटतर दीन्हें। होइ दोष बड़ अनुचित कीन्हें॥
सिय-मुख-छबि बिधु ब्याज बखानी। गुरु पहिं चले निसा बड़ि जानी॥

❀　　❀　　❀　　❀

इसके आगे गोस्वामीजी ने सूर्योदय के ब्याज से राम का प्रताप लक्ष्मण के द्वारा इस प्रकार कथन कराया है :—

बिगत निसा रघुनायक जागे। बंधु बिलोकि कहन अस लागे॥
उयेउ अरुन अवलोकहु ताता। पंकज लोक कोक सुखदाता॥
बोले लषन जोरि जुग पानी। प्रभु-प्रभाव-सूचक मृदु बानी॥

दोहा—अरुन उदय सकुचे कुमुद, उड़गन जोति मलीन।
तिमि तुम्हार आगमन सुनि, भये नृपति बलहीन॥२३८॥

नृप सब नखत करहिं उँजियारी। टारि न सकहिं चाप तम भारी॥
कमल कोक मधुकर खग नाना। हरषे सकल निसा अवसाना॥
ऐसेहि प्रभु सब भगत तुम्हारे। होइहहिं टूटे धनुष सुखारे॥
उयेउ भानु बिनु स्रम तम नासा। दुरे नखत जग तेज प्रकासा॥
रवि निज उदय ब्याज रघुराया। प्रभु प्रताप सब नृपन्ह दिखाया॥
तव भुज बल महिमा उद्घाटी। प्रगटी धनु बिघटन परिपाटी॥
बंधु बचन सुनि प्रभु मुसकाने। होइ सुचि सहज पुनीत नहाने॥

❀　　❀　　❀　　❀　　❀

जिस समय महाराज जनक की यज्ञशाला में युगल-बंधु पधारे हैं उस समय का वर्णन गोस्वामीजी ने अत्यन्त अनुपम किया है :—

रंग भूमि आये दोउ भाई। अस सुधि सब पुरबासिन पाई॥
चले सकल गृह काज बिसारी। बालक जुवा जरठ नर नारी॥
देखी जनक भीर भइ भारी। सुचि सेवक सब लिये हँकारी॥
तुरत सकल लोगन पहिं जाहू। आसन उचित देहु सब काहू॥

दोहा—कहि मृदु बचन बिनीत तिन्ह, बैठारे नर नारि।
उत्तम मध्यम नीच लघु, निज निज थल अनुहारि॥२४०॥

राज कुँवर तेहि अवसर आये। मनहुँ मनोहरता तन छाये॥
गुन सागर नागर वर वीरा। सुन्दर स्यामल गौर सरीरा॥
राज समाज बिराजत रूरे। उड़गन महँ जनु जुग बिधु पूरे॥
जाकी रही भावना जैसी। प्रभु मूरति देखी तिन तैसी॥
देखहिं भूप महा रनधीरा। मनहुँ वीर रस धरे सरीरा॥
डरे कुटिल नृप प्रभुहिं निहारी। मनहुँ भयानक मूरति भारी॥

रहे असुर छल छोनिप बेखा। तिन प्रभु प्रगट काल सम देखा॥
पुर बासिन देखे दोउ भाई। नर भूषन लोचन सुखदाई॥

दोहा—नारि बिलोकहिं हरषि हिय, निज निज रुचि अनूरूप।
जनु सोहत सिंगार धरि, मूरति परम अनूप॥ २७४॥

बिदुषन प्रभु बिराट मय दीसा। बहु मुख कर पग लोचन सीसा॥
जनक जाति अवलोकहिं कैसे। सजन सगे प्रिय लागहिं जैसे॥
सहित बिदेह बिलोकहिं रानी। सिसु सम प्रीति न जाइ बखानी॥
जोगिन्ह परम तत्व मय भासा। सांत सुद्ध सम सहज प्रकासा॥
हरि भगतन देखे दोउ भ्राता। इष्टदेव इव सब सुख दाता॥
रामहिं चितव भाव जेहि सीया। सो सनेहु सुख नहिं कथनीया॥
उर अनुभवति न कहि सक सोऊ। कवन प्रकार कहै कबि कोऊ॥
जेहि बिधि रहा जाहि जस भाऊ। तेहि तस देखेउ कोसलराऊ॥

दोहा—राजत राजसमाज महँ, कोसल राज किसोर।
सुंदर स्यामल गौर तनु, बिस्व बिलोचन चोर॥ २७५॥

सहज मनोहर मूरति दोऊ। कोटि काम उपमा लघु सोऊ॥
सरद चंद निंदक मुख नीके। नीरजनयन भावते जी के॥
चितवनि चारु मार मद हरनी। भावत हृदय जात नहिं बरनी॥
कलकपोल स्रुति कुंडल लोला। चिबुक अधर सुंदर मृदु बोला॥
कुमुद बंधु कर निंदक हासा। भृकुटी बिकट मनोहर नासा॥
भाल बिसाल तिलक झलकाहीं। कच बिलोकि अलि अवलि लजाहीं॥
पीत चौतनी सिरन्ह सुहाई। कुसुमकली बिच बीच बनाई॥
रेखा रुचिर कंबु कल ग्रीवाँ। जनु त्रिभुवन सोभा की सीवाँ॥

दोहा—कुंजर मनि कंठा कलित, उरन तुलसिका माल।
बृषभकंध केहरि ठवनि, बलनिधि बाहु बिसाल॥ २७६॥

कटि तूनीर पीत पट बाँधे। कर सर धनुष बाम बर काँधे॥
पीत जग्य उपबीत सोहाये। नखसिख मंजु महाछबि छाये॥
देखि लोग सब भये सुखारे। इकटक लोचन टरत न टारे॥
हरषे जनक देखि दोउ भाई। मुनि पद कमल गहे तब जाई॥
करि बिनती निज कथा सुनाई। रंग अवनि सब मुनिहिं देखाई॥
जहँ जहँ जाहिं कुअँर बर दोऊ। तहँ तहँ चकित चितव सब कोऊ॥
निज निज रुख रामहिं सब देखा। कोउन जान कछु मरम बिसेखा॥
भलि रचना मुनि नृप सन कहेऊ। राजा मुदित महा सुख लहेऊ॥

दोहा—सब मंचन तें मंच इक, सुंदर बिसद बिसाल।
मुनि समेत दोउ बंधु तहँ, बैठारे महिपाल॥ २७७॥

राम के सौन्दर्य और वीररूप के वर्णन के अनन्तर गोस्वामी जी ने यज्ञशाला में सीता का जनक की आज्ञा से आह्वान कराया और सीता के स्वरूप का इस प्रकार वर्णन किया:—

सिय शोभा नहिँ जाय बखानी। जगदंबिका रूप गुन खानी॥
उपमा सकल मोहि लघु लागी। प्राकृति नारि अंग अनुरागी॥
सीय बरनि तेहि उपमा देई। कुकवि कहाइ अजस को लेई॥
जौं पटतरिय तीय महँ सीया। जग अस जुवति कहाँ कमनीया॥
गिरा मुखर तनु अरध भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी॥
विष वारुनी बन्धु प्रिय जेही। कहिय रमासम किमि वैदेही॥
जौं छवि सुधा पयोनिधि होई। परम रूप मय कच्छप सोई॥
सोभा रजु मंदरु सिंगारू। मथै पानि पंकज निज मारू॥

दोहा—एहि विधि उपजे लच्छि जब, सुन्दरता सुख मूल।
तदपि सकोच समेत कवि, कहहिं सीय सम तूल॥२८०॥

चली संग लै सखी सयानी। गावति गीत मनोहर बानी॥
सोइ नवल तनु सुन्दर सारी। जगत जननि अतुलित छवि भारी॥
भूषन सकल सुदेह सुहाये। अंग अंग रचि सखिन बनाये॥
रंग भूमि जब सिय पगुधारी। देखि रूप मोहे नर नारी॥
हरषि सुरन दुंदुभी बजाई। बरषि प्रसून अपछुरा गाई॥
पानि सरोज सोह जयमाला। अवचट चितये सकल भुआला॥
सीय चकित सिय रामही चाहा। भये मोह बस सब नरनाहा॥
मुनि समीप देखे दोउ भाई। लगे ललकि लोचन निधि पाई॥

दोहा—गुरु जन लाज समाज बड़, देखि सीय अकुलानि।
लागि विलोकन सखिन तन, रघुबीरहिं उर आनि॥२८१॥

सीता के यज्ञशाला में आने के अनन्तर बन्दीजनों ने समस्त सभा में महाराज जनक की प्रतिज्ञा को उच्च स्वर से आघोषित किया। उस घोषणा को सुनकर उपस्थित सभी राजा धनुष को उठाने के लिए दौड़े, परन्तु उठाने और तोड़ने की बात तो किनारे रही उसे टस से मस भी नहीं कर सके। गोसाईं जी लिखते हैं:—

भूप सहस दश एकहि बारा। लगे उठावन टरै न टारा॥
डिगै न संभु सरासन कैसे। कामी बचन सती मन जैसे॥

यहाँ शिव-धनु से सतियों के मन की तुलना कर के कवि ने भारतीय ललनाओं को पातिव्रत धर्म का अच्छा आदर्श स्थापित किया है। राजाओं की ऐसी दशा देखकर राजा जनक निराश होकर इस प्रकार बचन बोले:—

नृपन बिलोकि जनक अकुलाने। बोले बचन रोष जनु साने॥
दीप दीप के भूपति नाना। आये सुनि जो हम प्रन ठाना॥
देव दनुज धरि मनुज सरीरा। विपुल बीर आये रनधीरा॥

दोहा—कुअँरि मनोहर विजय बड़ि, कीरति अति कमनीय।
पावनिहार विरंचि जनु, रचेउ न धनु दमनीय॥

कहहु काहि यह लाभ न भावा। काहु न शंकर चाप चढ़ावा॥
रहे चढ़ाउब तोरब भाई। तिल भर भूमि न सकेउ छुड़ाई॥
अब जनि कोइ माखे भट मानी। वीर विहीन मही मैं जानी॥
तजहु आस निज निज गृह जाहू। लिखा न बिधि वैदेहि बिवाहू॥
सुकृत जाइ जौं पन परिहरऊँ। कुअँरि कुआँरि रहै का करऊँ॥
जो जनतेउँ विनु भट भुविभाई। तो पनकरि होतेउँ न हँसाई॥

महाराज जनक के इस नैराश्यपूर्ण वचन को वीराग्रगण्य लक्ष्मण ने राम के प्रति अपमानजनक समझ कर क्रुद्ध हो अपने हृदय का उद्गार निम्न वीर-रस के वाक्यों में प्रगट किया:—

माखे लषन कुटिल भइँ भौंहें। रदपट फरकत नयन रिसौहैं।

दोहा—कहि न सकत रघुवीर डर, लगे बचन जनु बान।
नाइ राम पद कमल सिर, बोले गिरा प्रमान॥ ८५॥

रघुबंसिन महँ जहँ कोउ होई। तेहि समाज अस कहे न कोई॥
कही जनक जस अनुचित बानी। विद्यमान रघुकुल मनि जानी॥
सुनहु भानु कुल पंकज भानू। कहउँ सुभाव न कछु अभिमानू॥
जो राउर अनुसासन पाऊँ। कंदुक इव ब्रह्माण्ड उठाऊँ॥
काँचे घट जिमि डारौं फोरी। सकौं मेरु मूलक इव तोरी॥
तव प्रताप महिमा भगवाना। का बापुरो पिनाक पुराना॥
नाथ जानि अस आयसु होई। कौतुक करउँ विलोकिय सोई॥
कमल नाल इव चाप चढ़ावों। सत योजन प्रमान लै धावौं॥

दोहा—तोरौं छत्रक दंड जिमि, तव प्रताप बल नाथ।
जो न करौं प्रभु पद शपथ, पुनि न धरौं धनुहाथ॥ २८६॥

लषन सकोप वचन जब बोले। डगमगानि महि दिग्गज डोले॥
सकल लोक सब भूप डेराने। सिय हिय हरष जनक सकुचाने॥

लक्ष्मण को, रामचन्द्र ने अपने मृदु वाक्यों से सराहना करते हुए शान्त किया और आप धनुष तोड़ने के लिये सभा में अग्रसर हुए। रामचन्द्र को खड़ा होते देख कर सीता के मन में कितनी उतावली और व्यग्रता थी इसका वर्णन कवि जी की लेखनी से ही ठीक ठीक हो सका है। जान पड़ता है कि गोस्वामीजी को उस समय सीता का ही हृदय प्राप्त हो गया था:—

तब रामहिं विलोकि वैदेही। सभय हृदय विनवति जेहि तेही॥
मन ही मन मनाव अकुलानी। होउ प्रसन्न महेस भवानी॥
करहु सफल आपनि सेवकाई। करि हित हरहु चाप गरुआई॥

गननायक बरदायक देवा । आजुहि लगि कीन्ही तव सेवा ॥
बार बार सुनि बिनती मोरी । करहु चाप गुरुता अति थोरी ॥

दोहा—देखि देखि रघुबीर तन, सुर मनाव धरि धीर ।
भरे बिलोचन प्रेम जल, पुलकावली सरीर ॥ २६० ॥

नीके निरखि नयन भरि सोभा । पितु पन सुमिरि बहुरि मन छोभा ॥
अहह तात दारुन हठ ठानी । समुझत नहिं कछु लाभ न हानी ॥
सचिव सभय सिख देइ न कोई । बुध समाज बड़ अनुचित होई ॥
कहँ धनु कुलिसहु चाहि कठोरा । कहँ स्यामल मृदु गात किसोरा ॥
बिधि केहि भाँति धरउँ उर धीरा । सिरिस सुमन कहुँ बेधिय हीरा ॥
सकल सभा की मति भइ भोरी । अब मोहि संभु-चाप गति तोरी ॥
निज जड़ता लोगन पर डारी । होहु हरुअ रघुपतिहिं निहारी ॥
अति परिताप सीय मन माहीं । लवनिमेष जुग सय सम जाहीं ॥

दोहा—प्रभुहि चितइ पुनि चितइ महि, राजत लोचन लोल ।
खेलत मनसिज मीन जुग, जनु बिधु मंडल डोल ॥ २६१ ॥

गिरा अलिनि मुख पंकज रोकी । प्रगट न लाज निसा अवलोकी ॥
लोचन जल रह लोचन कोना । जैसे परम कृपन कर सोना ॥
सकुची व्याकुलता बड़ि जानी । धरि धीरज प्रतीति उर आनी ॥
तन मन बचन मोर पन साँचा । रघुपति पद सरोज चित राँचा ॥
तौ भगवान सकल उर बासी । करिहहिँ मोहि रघुबर कर दासी ॥
जेहिके जेहि पर सत्य सनेहू । सो तेहि मिलै न कछु संदेहू ॥
प्रभु तन चितै प्रेम पन ठाना । कृपा निधान राम सब जाना ॥
सियहिँ बिलोकि तकेउ धनु कैसे । चितव गरुड़ लघु व्यालहि जैसे ॥

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

इसके अनन्तर मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र के द्वारा धनुष का भङ्ग करना, देवताओं का आनन्दित होना और रामके गले में सीता के जयमाल पहिनाने का वर्णन किया गया है। ईर्ष्या वश अन्य राजाओं ने बहुत कोलाहल मचाया, परन्तु राम और लक्ष्मण की प्रभुता देख कर कुछ बोल नहीं सके। इसके अनन्तर शिव-धनु-भङ्ग का समाचार सुनकर भृगु-कुल-कमल-पतंगा परशुराम सभा में सकोप पधारे। इस प्रसंग में परशुराम और राम के संवाद को तुलसीदासजी ने बड़ी ही कुशलता के साथ आद्योपान्त निबाहा है जो पाठकों के मनोविनोदार्थ और विद्यार्थियों के लाभार्थ अविकल उद्धृत किया जाता है:—

तेहि अवसर सुनि सिवधनु भंगा । आये भृगु-कुल-कमल-पतंगा ॥
देखि महीप सकल सकुचाने । बाज झपट जनु लवा लुकाने ॥
गौर सरीर भूति भलि भ्राजा । भाल बिसाल त्रिपुंड बिराजा ॥

सीस जटा ससि बदन सुहावा। रिस बस कछुक अरुन होइ आवा॥
भृकुटी कुटिल नयन रिस राते। सहजहुँ चितवत मनहुँ रिसाते॥
वृषभ कंध उर बाहु बिसाला। चारु जनेउ माल मृगछाला॥
कटि मुनि बसन तून दुइ बाँधे। धनु सर कर कुठार कल काँधे॥

दोहा—संत बेष करनी कठिन, बरनि न जाइ सरूप।
धरि मुनि तनु जनु बीररस, आयउ जहँ सब भूप॥३०१॥

देखत भृगुपति बेष कराला। उठे सकल भय बिकल भुआला॥
पितु समेत कहि कहि निज नामा। लगे करन सब दंड प्रनामा॥
जेहि सुभाय चितवहिं हित जानी। सो जानै जनु आयु खुटानी॥
जनक बहोरि आइ सिर नावा। सीय बोलाइ प्रनाम करावा॥
आसिष दीन्ह सखी हरषानी। निज समाज लै गयी सयानी॥
बिस्वामित्र मिले पुनि आई। पद सरोज मेले दोउ भाई॥
राम लखन दसरथ के ढोटा। देखि असीस दीन्ह भलि जोटा॥
रामहिं चितइ रहे भरि लोचन। रूप अपार मार मद मोचन॥

दोहा—बहुरि बिलोकि बिदेह सन, कहहु काह अति भीर।
पूछत जानि अजान जिमि, ब्यापेउ कोप सरीर॥३०२॥

समाचार कहि जनक सुनाये। जेहि कारन महीप सब आये॥
सुनत बचन तब अनत निहारे। देखे चाप खंड महि डारे॥
अति रिस बोले बचन कठोरा। कहु जड़ जनक धनुष केइ तोरा॥
बेगि देखाउ मूढ़ न तु आजू। उलटउँ महि जहँ लगि तव राजू॥
अति डर उतर देत नृप नाहीं। कुटिल भूप हरषे मन माहीं॥
सुर मुनि नाग नगर नर नारी। सोचहिं सकल त्रास उर भारी॥
मन पछिताति सीय महतारी। बिधि अब सँवरी बात बिगारी॥
भृगुपति कर सुभाव सुनि सीता। अरध निमेष कलप सम बीता॥

दोहा—सभय बिलोके लोग सब, जानि जानकी भीरु।
हृदय न हरष बिषाद कछु, बोले श्री रघुबीरु॥३०३॥

नाथ संभु धनु भंजनिहारा। होइहिं कोई इक दास तुम्हारा॥
आयसु काह कहिय किन मोही। सुनि रिसाइ बोले मुनि कोही॥
सेवक सो जो करै सेवकाई। अरि करनी करि करिय लराई॥
सुनहु राम जेहि सिव धनु तोरा। सहसबाहु सम सो रिपु मोरा॥
सो बिलगाउ बिहाइ समाजा। न तु मारे जैहैं सब राजा॥
सुनि मुनि बचन लखन मुसुकाने। बोले परसु धरहि अपमाने॥
बहु धनुहीं तोरीं लरिकाईं। कबहुँ न अस रिस कीन्ह गोसाईं॥
एहि धनु पर ममता केहि हेतू। सुनि रिसाइ कह भृगु-कुल-केतू॥

दोहा—रे नृप बालक काल बस, बोलत तोहि न सँभार।
धनुहीं सम त्रिपुरारि धनु, बिदित सकल संसार ॥३०४॥

लषन कहा हँसि हमरे जाना। सुनहु देव सब धनुष समाना।
का छति लाभ जीर्ण धनु तोरे। देखा राम नये के भोरे ॥
छुवत टूट रघुपतिहि न दोषू। मुनि बिनु काज करिय कत रोषू ॥
बोले चितै परसु की ओरा। रे सठ सुनेहि सुभाउ न मोरा ॥
बालक बोलि बधहुँ नहिं तोही। केवल मुनि जड़ जानइ मोही ॥
बाल ब्रह्मचारी अति कोही। बिस्व बिदित छत्रिय कुल द्रोही ॥
भुज बल भूमि भूप बिन कीहीं। बिपुल बार महि देवन्ह दीहीं ॥
सहस बाहु भुज छेदन हारा। परसु बिलोकु महीप कुमारा ॥

दोहा—मातु पितहिं जनि सोच बस, करसि महीप किसोर।
गरभिन के अरभक दलन, परसु मोर अति घोर ॥३०५॥

बिहँसि लषन बोले मृदु बानी। अहो मुनीस महाभट मानी ॥
पुनि पुनि मोहि देखाव कुठारू। चहत उड़ावन फूँकि पहारू ॥
इहाँ कोंहड़ बतिया कोउ नाहीं। जे तरजनी देखि मरजाहीं ॥
देखि कुठार सरासन बाना। मैं कछु कहेउँ सहित अभिमाना ॥
भृगुकुल समुझि जनेउ बिलोकी। जो कछु कहेउँ सहेउँ रिस रोकी ॥
सुर महिसुर हरिजन अरु गाई। हमरे कुल इन्ह पर न सुराई ॥
बधे पाप अपकीरति हारे। मारत हू पा परिय तुम्हारे ॥
कोटि कुलिस सम बचन तुम्हारा। व्यर्थ धरहु धनु बान कुठारा ॥

दोहा—जो बिलोकि अनुचित कहेउँ, छमहु महामुनि धीर।
सुनि सरोष भृगुबंस मनि, बोले गिरा गँभीर ॥३०६॥

कौसिक सुनहु मंद यह बालक। कुटिल काल बस निज कुल घालक ॥
भानु बंस राकेस कलंकू। निपट निरंकुस अबुध असंकू ॥
काल कवलु होइहि छनमाँही। कहउँ पुकारि खोरि मोहि नाहीं ॥
तुम्ह हटकहु जौं चहहु उबारा। कहि प्रताप बल रोष हमारा ॥
लषन कहेउ मुनि सुजस तुम्हारा। तुम्हहिं अछत को बरनै पारा ॥
अपने मुहँ तुम आपनि करनी। बार अनेक भाँति बहु बरनी ॥
नहिं सन्तोष तो पुनि कछु कहहू। जनि रिस रोकि दुसह दुख सहहू ॥
बीर वृत्ति तुम धीर अछोभा। गारी देत न पावहु सोभा ॥

दोहा—सूर समर करनी करहिं, कहि न जनावहिं आप।
विद्यमान रिपु पाइ रन, कायर करहिं प्रलाप ॥३०७॥

तुम तौ काल हाँक जनु लावा। बार बार मोहि लागि बोलावा ॥
सुनत लषन के बचन कठोरा। परसु सुधारि धरेउ कर घोरा ॥
अब जनि दोष देइ मोहि लोगू। कटुवादी बालक बध जोगू ॥
बाल बिलोकि बहुत मैं बाँचा। अब यह मरन हार भा साँचा ॥

कौसिक कहा छमिय अपराधू। बाल दोष गुन गनहिं न साधू॥
कर कुठार मैं अकरुन कोही। आगे अपराधी गुरुद्रोही॥
उतर देत छोड़उँ बिनु मारे। केवल कौसिक सील तुम्हारे॥
न त एहि काटि कुठार कठोरे। गुरुहिं उरिन होत्यउ श्रम थोरे॥

दोहा—गाधि सूनु कह हृदय हँसि, मुनिहि हरिअरइ सूझ।
अजगव खंड्यौ ऊख जिमि, अजहुँ न बूझ अबूझ॥ ३०८॥

कहेउ लखन मुनि सील तुम्हारा। को नहिं जान बिदित संसारा॥
मातहिं पितहिं उरिन भये नीके। गुरु रिनु रहा सोच बड़ जी के॥
सो जनु हमरे माथे काढ़ा। दिन चलि गयउ ब्याज बहु बाढ़ा॥
अब आनिय ब्यवहरिया बोली। तुरत देउँ मैं थैली खोली॥
सुनि कटु बचन कुठार सुधारा। हाय हाय सब सभा पुकारा॥
भृगुवर परसु देखावहु मोही। बिप्र बिचारि बचेउँ नृपद्रोही॥
मिले न कबहुँ सुभट रन गाढ़े। द्विज देवता घरहिं के बाढ़े॥
अनुचित कहि सब लोग पुकारे। रघुपति सैनहिं लखन निवारे॥

दोहा—लखन उतर आहुति सरिस, भृगुवर कोप कृसानु।
बढ़त देखि जल सम बचन, बोले रघुकुल भानु॥ ३०९॥

नाथ करहु बालक पर छोहू। सूध दूध मुख करिय न कोहू॥
जौं पै प्रभु प्रभाउ कछु जाना। तव कि बराबरि करत अयाना॥
जौं लरिका कछु अचगरि करहीं। गुरु पितु मातु मोद मन भरहीं॥
करिय कृपा सिसु सेवक जानी। तुम सम सील धीर मुनि ज्ञानी॥
राम बचन सुनि कछुक जुड़ाने। कहि कछु लखन बहुरि मुसकाने॥
हँसत देखि नखसिख रिस व्यापी। राम तोर भ्राता बड़ पापी॥
गौर शरीर श्याम मनमाहीं। काल कूट मुख पय मुख नाहीं॥
सहज टेढ़ अनुहरै न तोही। नीच मीच सम लखत न मोही॥

दोहा—लखन कहेउ हँसि सुनहु मुनि, क्रोध पाप कर मूल।
जेहि बस जन अनुचित करहिं, चरहिं विश्व प्रतिकूल॥ ३१०॥

मैं तुम्हार अनुचर मुनि राया। परिहरि कोप करिय अब दाया॥
टूट चाप नहिं जुड़िहि रिसाने। बैठिय होइहहिं पाय पिराने॥
जौं अति प्रिय तौ करिय उपाई। जोरिय कोउ बड़ गुनी बोलाई॥
बोलत लखनहिं जनक डेराहीं। मष्ट करहु अनुचित भल नाहीं॥
थर थर काँपहिं पुर-नर-नारी। छोट कुमार खोट अति भारी॥
भृगुपति सुनि सुनि निरभय बानी। रिस तनु जरै होइ बल हानी॥
बोले रामहिं देइ निहोरा। बचौं बिचारि बंधु लघु तोरा॥
मन मलीन तनु सुन्दर कैसे। बिष रस भरा कनक घट जैसे॥

दोहा—सुनि लछिमन बिहँसे बहुरि, नयन तरेरे राम।
गुरु समीप गमने सकुचि, परिहरि बानी बाम ॥३११॥

अति बिनीत मृदु सीतल बानी। बोले राम जोरि जुग पानी ॥
सुनहु नाथ तुम सहज सुजाना। बालक बचन करिय नहिं काना ॥
बररे बालक एक सुभाऊ। इनहिं न संत बिदूषहिं काऊ ॥
तेहि नाहीं कछु काज बिगारा। अपराधी मैं नाथ तुम्हारा ॥
कृपा कोप बध बन्ध गोसाईं। मोपर करिय दास की नाईं ॥
कहिय बेगि जेहि बिधि रिस जाई। मुनि नायक सोइ करौं उपाई ॥
कह मुनि राम जाइ रिस कैसे। अजहुँ अनुज तव चितव अनैसे ॥
एहि के कंठ कुठार न दीन्हा। तो मैं काह कोप करि कीन्हा ॥

दोहा—गर्भ स्रवहिं अवनिप रवनि, सुनि कुठार गति घोर।
परसु अछत देखउँ जियत, बैरी भूप किसोर ॥३१२॥

बहै न हाथ दहै रिसि छाती। भा कुठार कुंठित नृपघाती ॥
भयेउ बाम बिधि फिरेउ सुभाऊ। मोरे हृदय कृपा कसि काऊ ॥
आज दैव दुख दुसह सहावा। सुनि सौमित्र बिहँसि सिर नावा ॥
बायु कृपा मूरति अनुकूला। बोलत बचन झरत जनु फूला ॥
जौं पै कृपा जरहिं मुनि गाता। क्रोध भये तन राखु बिधाता ॥
देखु जनक हठि बालक एहू। कीन्ह चहत जड़ जमपुर गेहू ॥
बेगि करहु किन आँखिन ओटा। देखत छोट खोट नृप ढोटा ॥
बिहँसे लषन कहा मुनि पाहीं। मूँदे आँख कतहुँ कोउ नाहीं ॥

दोहा—परसुराम तब राम प्रति, बोले उर अति क्रोध।
संभु सरासन तोरि सठ, करसि हमार प्रबोध ॥३१३॥

बंधु कहै कटु सम्मत तोरे। तू छल विनय करसि कर जोरे ॥
करु परितोष मोर संग्रामा। नाहिं त छाड़ु कहाउब रामा ॥
छल तजि समर करहु सिवद्रोही। बन्धु सहित नतु मारब तोही ॥
भृगुपति बकहिं कुठार उठाये। मन मुसकाहिं राम सिर नाये ॥
गुनहु लषन कर हम पर रोषू। कतहुँ सुधाइहुँ तें बड़ दोषू ॥
टेढ़ जानि शङ्का सब काहू। बक्र चन्द्रमहिं ग्रसै न राहू ॥
राम कहेउ रिस तजहु मुनीसा। कर कुठार आगे यह सीसा ॥
जेहि रिस जाइ करिय सोइ स्वामी। मोहि जानि आपन अनुगामी ॥

दोहा—प्रभुहिं सेवक ह समर कस, तजहु विप्रवर रोस।
वेष बिलोकि कहेसि कछु, बालक हूँ नहिं दोस ॥३१४॥

देखि कुठार बान धनुधारी। भइ लरिकहिं रिसि बीर बिचारी ॥
नाम जान पै तुमहिं न चीन्हाँ। बंस सुभाव उतर तिन दीन्हाँ ॥
जो तुम अवतेहु मुनि की नाईं। पद-रज सिर सिसु धरत गोसाईं ॥
छमहु चूकि अनजानत केरी। चहिय विप्र उर कृपा घनेरी ॥

हमहिं तुमहिं सरिबरि कस नाथा। कहहु तो कहाँ चरन कहँ माथा॥
राममात्र लघु नाम हमारा। परसु सहित बड़ नाम तुम्हारा॥
देव एक गुण धनुष हमारे। नव गुण परम पुनीत तुम्हारे॥
सब प्रकार हम तुम सन हारे। छमहु विप्र अपराध हमारे।

दोहा—बार बार मुनि बिप्रबर, कहा राम सन राम।
बोले भृगुपति सरुष होइ, तुहूँ बंधु सम बाम॥२१५॥

निपटहिं द्विज कर जानसि मोही। मैं जस विप्र सुनावउँ तोही॥
चाप स्रुवा सर आहुति जानू। कोप मोर अति घोर कृसानू॥
समिध सेन चतुरंग सुहाई। महा महीप भये पसु आई॥
मैं एहि परसु काटि बलि दीन्हें। समर जग्य जग कोटिक कीन्हें॥
मोर प्रभाव बिदित नहिं तोरे। बोलसि निदरि विप्र के भोरे॥
भंजेउ चाप दाप बड़ बाढ़ा। अहमिति मनहुँ जीत जग ठाढ़ा॥
राम कहा मुनि कहहु बिचारी। रिसि अति बड़ि लघु चूक हमारी॥
छुवतहिं टूट पिनाक पुराना। मैं केहि हेतु करब अभिमाना॥

दोहा—जौं हम निदरहिं विप्र बदि, सत्य सुनहु भृगुनाथ।
तौ अस को जग सुभट जेहि भय बस नाउब माथ॥२१६॥

देव दनुज भूपति भट नाना। समबल होउ अधिक बलवाना॥
जौं रन हमहिं प्रचारइ कोऊ। लरहिं सुखेन काल किन होऊ॥
छत्रिय तनु धरि समर सकाना। कुल कलंक तेहि पामर जाना॥
कहउँ सुभाव न कुलहिं प्रसंसी। कालहु डरहिं न रन रघुबंसी॥
विप्र बंस कै असि प्रभुताई। अभय होइ जो तुम्हहिं डेराई॥
सुनि मृदु बचन गूढ़ रघुपति के। उघरे पटल परसुधर मति के॥
राम रमापति कर धनु लेहू। खैंचहु मिटै मोर संदेहू॥
देत चाप आपुहि चढ़ि गयऊ। परसुराम मन बिसमय भयऊ॥

दोहा—जाना राम प्रभाव तब, पुलक प्रफुल्लित गात।
जोरि पानि बोले बचन, हृदय न प्रेम समात॥ २१७॥

जय रघुबंस बनज बन भानू। गहन दनुज कुल दहन कृसानू॥
जय सुर धेनु विप्र हितकारी। जय मद मोह कोह भ्रमहारी॥
बिनय सील करुना गुनसागर। जयति बचन रचना अति नागर॥
सेवक सुखद सुभग सब अंगा। जय सरीर छबि कोटि अनंगा॥
करउँ काह मुख एक प्रसंसा। जय महेस मन मानस हंसा॥
अनुचित बचन कहेउँ अज्ञाता। छमहु छमा मंदिर दोउ भ्राता॥
कहि जय जय जय रघु-कुल-केतू। भृगुपति गये बनहिं तप हेतू॥

* * * * *

परशुराम के गमन के अनन्तर जनक महाराज की आज्ञा से जनकपुर का सजाना, महाराज दशरथ के पास दूतों के द्वारा पत्र भेजना, सकल समाज के सङ्ग पूर्ण दल, बल तथा समारोह के साथ बारात सज धज कर महाराज दशरथ का जनकपुर पधारना और राम-भरत-लक्ष्मण-शत्रुघ्न का सीता-माण्डवी-उर्मिला और श्रुतिकीर्त्ति के साथ विवाह लिखा गया है। इन प्रकरणों को रोचक तथा ओज-पूर्ण बनाने में गोसाईंजी की लेखनी ने कोई कसर उठा नहीं रखी है। किसी किसी स्थल पर तो अनुपम कौशल दिखलाया है। विवाहोपरान्त पूर्ण सत्कार के साथ समस्त बारात को विदा किया है। राजा दशरथ ने प्रत्यावर्त्तन के पश्चात् अयोध्या में बृहदानन्दोत्सव मनाया और विश्वामित्र को सानुनय विदा कर नाना प्रकारके पारिवारिक सुखों का उपभोग करने लगे। काण्ड की समाप्ति पर कविराज ने यह सोरठा लिखा है:—

सिय रघुबीर बिबाह, जे सप्रेम गावहिं सुनहिं।
तिन कहँ सदा उछाह, मंगलायतन रामजस॥

अयोध्याकाण्ड—इस काण्ड को गोसाईंजी ने बड़े ही मनोयोग के साथ लिखा है और उसे मनोहर तथा मनोरम बनाने में कोई कसर उठा न रखी है। इस काण्ड में प्राय: आठ चौपाइयों पर एक दोहा और प्रत्येक पच्चीस दोहों पर एक एक हरिगीतिका छन्द तथा एक एक सोरठा दिये हैं। इस काण्ड की कथाएँ बड़ी ही हृदय-ग्राहिणी और मनोहारिणी हैं। इस काण्ड का नाम तुलसीदास जी ने 'अवध-काण्ड' रखा था जो काल पाकर पर्यायवाचक शब्दों में 'अयोध्याकाण्ड' हो गया। काण्ड के आरम्भ में तीन श्लोकों में शिव और राम की स्तुति कर के आगे के एक दोहे में गुरु-पद-पद्म की वन्दना की है। इसके अनन्तर अयोध्या की विभूति का वर्णन, राम को युवराज पद देने के लिये वसिष्ठ से दशरथ का इच्छा प्रगट करना, समय निश्चित होने पर तिलक की तैयारी, देवताओं का सरस्वती से विनय करना, सरस्वती का मन्थरा को प्रेरित करना, मन्थरा का कैकेयी की मति फेर कर उसे कोपभवन में भेजना, कोपभवन में राजा दशरथ का प्रवेश, कैकेयी का वर माँगना और राजा दशरथ का विलाप करना, सुमन्त का राजा दशरथ के पास कोपभवन में जाना, रामचन्द्र का बुलाया जाना, कैकेयी और राम का वार्त्तालाप, वनगमन हित राम की प्रतिज्ञा और रामचन्द्र का वन जाने के लिये माता कौशल्या से आज्ञा लेने का वर्णन किया गया है। माता कौशल्या ने सारी घटना को बड़े ही दु:ख के साथ सुन कर आदर्श उदारता भरे शब्दों में अपने सुयोग्य पुत्र राम को वन जाने की इस प्रकार आज्ञा दी है:—

जो केवल पितु आयसु ताता। तो जनि जाहु जानि बड़ि माता॥
जो पितु मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना॥

रामचंद्र के वन जाने का समाचार सुनकर सतीसाध्वी सीता व्याकुल हो उठीं और जहाँ कौशल्या और राम का वार्त्तालाप हो रहा था वहाँ पहुँचीं। इस स्थल के वर्णन को पाठकों और विद्यार्थियों के लिये शिक्षाप्रद समझ कर नीचे अविकल उद्धृत किया जाता है:—

दोहा—समाचार तेहि समय सुनि सीय उठी अकुलाइ।
जाइ सासु पद-कमल-जुग बंदि बैठि सिरु नाइ॥५८॥

दीन्हि असीस सासु मृदुबानी। अति सुकुमारि देखि अकुलानी॥
बैठि नमित मुख सोचति सीता। रूप रासि पति-प्रेम पुनीता॥
चलन चहत बन जीवन नाथू। केहि सुकृती सन होइहि साथू॥
की तनु प्रान कि केवल प्राना। बिधि करतब कछु जाइ न जाना॥
चारु चरन नख लेखति धरनी। नूपुर मुखर मधुर कवि बरनी॥
मनहुँ प्रेमवस बिनती करहीं। हमहिं सीयपद जनि परिहरहीं॥
मंजु बिलोचन मोचति बारी। बोली देखि राम महतारी॥
तात सुनहु सिय अति सुकुमारी। सासु-ससुर-परिजनहिँ पियारी॥

दोहा—पिता जनक भूपाल मनि, ससुर भानु-कुल-भानु।
पति रबि-कुलकैरव बिपिन, बिधु गुन-रूप निधानु॥५९॥

मैं पुनि पुत्रवधू प्रिय पाई। रूप रासि गुन सील सुहाई॥
नयन पुतरि करि प्रीति बढ़ाई। राखउँ प्रान जानकिहिँ लाई॥
कलप बेलि जिमि बहु बिधि लाली। सींचि सनेह सलिल प्रतिपाली॥
फूलत फलत भयउ बिधि बामा। जानि न जाय काह परिनामा॥
पलँगपीठ तजि गोद हिंडोरा। सिय न दीन्ह पग अवनि कठोरा॥
जिअनमूरि जिमि जोगवत रहऊँ। दीप बाति नहिँ टारन कहऊँ॥
सोइ सिय चलन चहति बन साथा। आयसु काह होइ रघुनाथा॥
चंद-किरिन-रस-रसिक-चकोरी। रबि रुख नयन सकै किमि जोरी॥

दोहा—करि केहरि निसिचर चरहिँ, दुष्ट जन्तु बन भूरि।
बिष बाटिका कि सोह सुत, सुभग सजीवनि मूरि॥६०॥

बन हित कोल किरात किसोरी। रची बिरंचि बिषय-सुख-भोरी॥
पाहन कृमि जिमि कठिन सुभाऊ। तिन्हहिँ कलेसु न कानन काऊ॥
कै तापस तिय कानन जोगू। जिन्ह तपहेतु तजा सब भोगू॥
सिय बन बसिहिँ तात केहि भाँती। चित्रलिखित कपि देखि डराती॥
सुरसरि-सुभग बनज-बन-चारी। डाबर जोग कि हंसकुमारी॥
अस बिचारि जस आयसु होई। मैं सिख देउँ जानकिहि सोई॥

जौं सिय भवन रहै कह अंबा । मोहि कहँ होइ बहुत अवलम्बा ॥
सुनि रघुबीर मातु-प्रिय-बानी । सील सनेह सुधा जनु सानी ॥

दोहा—कहि प्रिय बचन बिबेकमय, कीन्ह मातु परितोष ।
लगे प्रबोधन जानकिहि, प्रगटि बिपिन गुन दोष ॥६१॥

मातु समीप कहत सकुचाहीं । बोले समय समुझि मनमाहीं ॥
राज-कुमारि सिखावन सुनहू । आन भाँति जिय जनि कछु गुनहू ॥
आपन मोर नीक जौं चहहू । बचन हमार मानि गृह रहहू ॥
आयसु मोर सासु सेवकाई । सब बिधि भामिनि भवन भलाई ॥
एहि तें अधिक धरमु नहिं दूजा । सादर सासु-ससुर-पद-पूजा ॥
जब जब मातु करिहिं सुधि मोरी । होइहिं प्रेम बिकल मति भोरी ॥
तब तब तुम कहि कथा पुरानी । सुंदरि समुझायेहु मृदुबानी ॥
कहउँ सुभाय सपथ सत मोही । सुमुखि मातुहित राखउँ तोही ॥

दोहा—गुरु-स्रुति-संमत धरमफल, पाइय बिनहिं कलेस ।
हठबस सब संकट सहे, गालव नहुष नरेस ॥६२॥

मैं पुनि करि प्रमान पितुबानी । बेगि फिरब सुनि सुमुखि सयानी ॥
दिवस जात नहिं लागिहि बारा । सुंदरि सिखवन सुनहु हमारा ॥
जौं हठ करहु प्रेमबस बामा । तौ तुम्ह दुख पाउब परिनामा ॥
कानन कठिन भयंकर भारी । घोर घाम हिम बारि बयारी ॥
कुस कंटक मग काँकर नाना । चलब पयादेहि बिनु पदत्राना ॥
चरन कमल मृदु मंजु तुम्हारे । मारग अगम भूमिधर भारे ॥
कंदर खोह नदी नद नारे । अगम अगाध न जाहिं निहारे ॥
भालु बाघ बृक केहरि नागा । करहिं नाद सुनि धीरज भागा ॥

दोहा—भूमि सयन बलकल बसन, असन कंद-फल-मूल ।
ते कि सदा सब दिन मिलहिं, समय समय अनुकूल ॥६३॥

नर अहार रजनीचर करहीं । कपट बेष बिधि कोटिक चरहीं ॥
लागै अति पहार कर पानी । बिपिन बिपति नहिं जाइ बखानी ॥
ब्याल कराल बिहंग बन घोरा । निसिचर-निकर नारि-नर-चोरा ॥
डरपहिं धीर गहन सुधि आये । मृगलोचनि तुम्ह भीरु सुभाये ॥
हंस गवनि तुम नहिं बन जोगू । सुनि अपजसु मोहि देइहिं लोगू ॥
मानस-सलिल-सुधा प्रतिपाली । जिअइ कि लवन पयोधि मराली ॥
नव-रसाल-बन बिहरन सीला । सोह कि कोकिल बिपिन करीला ॥
रहहु भवन अस हृदय बिचारी । चंद बदनि दुख कानन भारी ॥

दोहा—सहज सुहृद-गुरु-स्वामि-सिख, जो न करै सिर मानि ।
सो पछिताइ अघाइ उर, अवस होइ हित हानि ॥६४॥

सुनि मृदु बचन मनोहर पिय के। लोचन ललित भरे जल सिय के ॥
सीतल सिख दाहक भइ कैसे। चकइहि सरद चंद निसि जैसे ॥
उतरु न आव बिकल बैदेही। तजन चहत सुचि स्वामि सनेही ॥
बरबस रोकि बिलोचन बारी। धरि धीरज उर अवनि कुमारी ॥
लागि सासु-पग कह करजोरी। छमबि देबि बड़ि अविनय मोरी ॥
दीन्ह प्रानपति मोहि सिख सोइ। जेहि विधि मोर परम हित होई ॥
मैं पुनि समुझि दीख मनमाहीं। पिय-बियोग-सम दुख जग नाहीं ॥

दोहा—प्राननाथ करुनायतन, सुंदर सुखद सुजान।
तुम बिन रघु-कुल-कुमुद-बिधु, सुरपुर नरक समान ॥६५॥

मातु पिता भगिनी प्रिय भाई। प्रिय परिवार सुहृद समुदाई ॥
सास ससुर गुरु सुजन सुहाई। सुत सुन्दर सुसील सुखदाई ॥
जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहिं तरनि ते ताते ॥
तन धन धाम धरनि पुरराजू। पति विहीन सब सोक समाजू ॥
भोग रोग सब भूषन भारू। जम-जातना सरिस संसारू ॥
प्राननाथ तुम बिनु जगमाहीं। मो कहँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं ॥
जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसहि नाथ पुरुष बिनु नारी ॥
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे। शरद-बिमल-बिधु बदन निहारे ॥

दोहा—खग मृग परिजन नगर बन, बलकल विमल दुकूल।
नाथ साथ सुर-सदन-सम, परनसाल सुखमूल ॥६६॥

बन देवी बन देव उदारा। करिहहिं सासु-ससुर-सम-सारा ॥
कुस-किसलय-साथरी सुहाई। प्रभु संग मंजु मनोज तुराई ॥
कन्द मूल फल अमिय अहारू। अवध-सौध-सत सरिस पहारू ॥
छिनु छिनु प्रभु पद कमल बिलोकी। रहिहउँ मुदित दिवस जिमि कोकी ॥
बन दुख नाथ कहे बहुतेरे। भय बिषाद परिताप घनेरे ॥
प्रभु-वियोग-लव-लेस-समाना। सब मिलि होहि न कृपानिधाना ॥
अस जिय जानि सुजान सिरोमनि। लेइय संग मोहि छाड़िय जनि ॥
विनती बहुत करउँ का स्वामी। करुनामय उर-अन्तर-जामी ॥

दोहा—राखिय अवध जो अवधि लगि, रहत जानिये प्रान।
दीनबंधु सुंदर सुखद, सील-सनेह-निधान ॥६७॥

मोहि मग चलत न होइहि हारी। छिनुछिनु चरन सरोज निहारी ॥
सबहि भाँति पिय सेवा करिहौं। मारगजनित सकल स्रम हरिहौं ॥
पाय पखारि बैठि तरुछाहीं। करिहउँ बायु मुदित मनमाहीं ॥
स्रम कन सहित स्याम तनु देखे। कहँ दुख समय प्रानपति पेखे ॥
सम महि तृन-तरु पल्लव डासी। पाय पलोटिहि सब निसि दासी ॥
बार बार मृदु मूरति जोही। लागिहिं ताति बयारि न मोही ॥

को प्रभु संग मोहि चितवनहारा। सिंहबधुहिं जिमि ससक सियारा॥
मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू। तुम्हहि उचित तपु मो कहँ भोगू॥

दोहा—ऐसेउ बचन कठोर सुनि, जौं न हृदय बिलगान।
तौ प्रभु-विषम-बियोग-दुख, सहिहहिं पाँवर प्रान॥ ६८॥

अस कहि सीय बिकल भइ भारी। बचन बियोग न सकी सँभारी॥
देखि दसा रघुपति जिय जाना। हठि राखे नहिं राखिहि प्राना॥
कहेउ कृपाल भानु-कुल-नाथा। परिहरि सोच चलहु बन साथा॥
नहिं बिषाद कर अवसर आजू। बेगि करहु बन-गमन-समाजू॥

महारानी सीता अपने पति की आज्ञा पाकर सहर्ष वनयात्रा के निमित्त तैयार हुईं। आगे मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्र अपनी सहधर्मिणी को साथ लेकर माता-कौशिल्या के पास प्रणाम करने के लिये गये:—

कहि प्रिय बचन प्रिया समुझाई। लगे मातु पद आसिष पाई॥
बेगि प्रजा दुख मेटब आई। जननी निठुर बिसरि जनि जाई॥
फिरिहि दसा बिधि बहुरि कि मोरी। देखिहउँ नयन मनोहर जोरी॥
सुदिन सुघरी तात कब होइहिं। जननी जिअत बदन बिधु जोइहिं॥

दोहा—बहुरि बच्छ कहि लालु कहि, रघुपति रघुबर तात।
कबहिं बोलाइ लगाइ हिय, हरषि निरखि हौं गात॥ ६९॥

लखि सनेह कातरि महतारी। बचन न आव बिकल भइ भारी॥
राम प्रबोध कीन्ह बिधि नाना। समय सनेह न जाइ बखाना॥
तब जानकी सासुपग लागी। सुनिय मातु मैं परम अभागी॥
सेवा समय दैव बन दीन्हा। मोर मनोरथ सफल न कीन्हा॥
तजब छोभ जनि छाड़िअ छोहू। करम कठिन कछु दोष न मोहू॥
सुनि सिय बचन सासु अकुलानी। दसा कवनि बिधि कहउँ बखानी॥
बारहिं बार लाइ उर लीन्हीं। धरि धीरज सिख आसिष दीन्हीं॥
अचल होउ अहिवात तुम्हारा। जब लगि गङ्ग-जमुन-जल-धारा॥

दोहा—सीतहिं सासु असीस सिख, दीन्हि अनेक प्रकार।
चली नाइ पद पदुम सिरु, अतिहित बारहिं बार॥७०॥

× × × × ×

वीराग्रगण्य लक्ष्मण की अपने पूज्य भ्राता के चरणों में अगाध भक्ति थी। वह राम के विना सारे सांसारिक सुखों को तुच्छ समझते थे। राम-वन-गमन के दुःखद समाचार को सुनकर व्याकुल होकर श्री रामचन्द्रजी के समीप पहुँचे। गोस्वामी तुलसीदास जी ने इस प्रकार वर्णन किया है:—

समाचार जब लछिमन पाये। व्याकुल बिलख बदन उठि धाये॥
कम्प पुलक तन नयन सनीरा। गहे चरन अति प्रेम अधीरा॥

कहि न सकत कछु चितवत ठाढ़े। मीन दीन जनु जल ते काढ़े ॥
सोच हृदय बिधि का होनिहारा। सब सुख सुकृत सिरा न हमारा ॥
मो कहँ काह कहब रघुनाथा। रखिहहिं भवन कि लेइहिं साथा ॥
राम बिलोकि बन्धु कर जोरे। देह गेह सब सन तृन तोरे ॥
बोले बचन राम नयनागर। सील-सनेह-सरल-सुख-सागर ॥
तात प्रेम बस जनि कदराहू। समुझि हृदय परिनाम उछाहू ॥

दोहा—मातु-पिता-गुरु-स्वामि-सिख, सिर धरि करहिं सुभाय।
लहेउ लाभ तिन्ह जनम कर, न तरु जनम जग जाय ॥७१॥

अस जिय जानि सुनहु सिख भाई। करहु मातु-पितु-पद-सेवकाई ॥
भवन भरत रिपु सूदन नाहीं। राउ बृद्ध मम दुख मन माहीं ॥
मैं बन जाउँ तुम्हहिं लेइ साथा। होइ सबहि बिधि अवध अनाथा ॥
गुरु पितु मातु प्रजा परिवारू। सब कहँ परै दुसह दुख भारू ॥
रहहु करहु सबकर परितोषू। न तरु तात होइहि बड़ दोषू ॥
जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी ॥
रहहु तात असि नीति बिचारी। सुनत लषन भये व्याकुल भारी ॥
सिअरे बचन सूखि गये कैसे। परसत तुहिन तामरस जैसे ॥

दोहा—उतर न आवत प्रेमबस, गहे चरन अकुलाइ।
नाथ दास मैं स्वामि तुम्ह, तजहु तो कहा बसाइ ॥७२॥

दीन्हि मोहि सिख नीक गोसाईं। लागि अगम अपनी कदराईं ॥
नरवर धीर–धरम–धुर–धारी। निगम नीति कहँ ते अधिकारी ॥
मैं सिसु प्रभु–सनेह–प्रतिपाला। मंदरु मेरु कि लेहिं मराला ॥
गुरु पितु मातु न जानउँ काहू। कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू ॥
जहँ लगि जगत सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निज गाई ॥
मोरे सबै एक तुम्ह स्वामी। दीनबन्धु उर–अंतर–जामी ॥
धरम नीति उपदेसिय ताही। कीरति-भूति-सुगति–प्रिय जाही ॥
मन क्रम–बचन–चरनरत होई। कृपासिंधु परिहरिय कि सोई ॥

दोहा—करुनासिन्धु सुबंधु के, सुनि मृदु बचन बिनीत।
समुझाये उर लाइ प्रभु, जानि सनेह सभीत ॥ ७३ ॥

माँगहु बिदा मातु सन जाई। आवहु बेगि चलहु बन भाई ॥
मुदित भये सुनि रघुबर बानी। भयउ लाभ बड़ मिटी गलानी ॥
हरषित हृदय मातु पहँ आये। मनहुँ अंध फिरि लोचन पाये ॥
जाइ जननि पग नायउ माथा। मन रघुनंदन–जानकि साथा ॥
पूछे मातु मलिन मन देखी। लषन कहा सब कथा विशेखी ॥
गई सहमि सुनि बचन कठोरा। मृगी देखि दव जनु चहुँ ओरा ॥

लखन लखेउ भा अनरथ आजू। एहि सनेह बस करब अकाजू॥
माँगत बिदा समय सकुचाहीं। जाइ संग बिधि कहिहि कि नाहीं॥

दोहा—समुझि सुमित्रा राम सिय, रूप सुसील सुभाउ।
नृप सनेहु लखि धुनेउ सिर, पापिनि दीन्ह कुदाउ॥७४॥

धीरज धरेउ कुअवसर जानी। सहज सुहृद बोली मृदु बानी॥
तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता राम सब भाँति सनेही॥
अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहँइ दिवस जहँ भानु प्रकासू॥
जौं पै सीय राम बन जाहीं। अवध तुम्हार काज कछु नाहीं॥
गुरु पितु मातु बंधु सुर साईं। सेइअहि सकल प्रान की नाईं॥
राम प्रान प्रिय जीवन जी के। स्वारथ रहित सखा सब ही के॥
पूजनीय प्रिय परम जहाँ ते। सब मानिअहिं राम के नाते॥
अस जिय जानि संग बन जाहू। लेहु तात जग जीवन लाहू॥

दोहा—भूरि भाग भाजन भयहु, मोहि समेत बलि जाउँ।
जौं तुम्हरे मन छाड़ि छल, कीन्ह रामपद ठाउँ॥७५॥

पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुपति-भगत जासु-सुत होई॥
नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी। राम बिमुख सुत तें हित हानी॥
तुम्हरेहि भाग राम बन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं॥
सकल सुकृत कर बड़ फल एहू। राम सीय पद सहज सनेहू॥
राग रोषु इरिषा मद मोहू। जनि सपनेहुँ इन्ह के बस होहू॥
सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई॥
तुम्ह कहँ बन सब भाँति सुपासू। संग पितु मातु राम सिय जासू॥
जेहि न राम बन लहहिं कलेसू। सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू॥

छन्द—उपदेसु यह जेहि तात तुम्हते राम सिय सुख पावहीं।
पितु मातु प्रिय परिवारु पुर सुख सुरति बन बिसरावहीं॥
तुलसी सुतहिं सिख देइ आयसु दीन्ह पुनि आसिष दई।
रति होउ अबिरल अमल सिय-रघु-बीर पद नित नित नई॥

सोरठा—मातु चरन सिर नाइ, चले तुरत संकित हृदय।
बागुर बिषम तोराइ, मनहुँ भाग मृग भाग बस॥७६॥

गृह से माता की आज्ञा लेकर लक्ष्मण रामचन्द्र के निकट बन जाने के लिये तैयार हो कर गये। राम लक्ष्मण और सीता का दशरथ के पास जाकर आज्ञा ले सुमन्त के साथ रथ पर सवार होना, दशरथ का सुमन्त से सीता को लौटाने के लिये कहना, पुरवासियों का साथ होना, रात्रि में विश्राम, पश्चात नगरनिवासियों को सोये हुये छोड़कर राम का प्रस्थान, प्रातःकाल अयोध्यानिवासियों का पछता कर लौट आना, राम-लक्ष्मण-सीता का गंगा-तट पहुँचना, निषाद का

अपूर्व अतिथि-सत्कार-वर्णन, प्रातःकाल गङ्गा पार करना, सुमन्त का वनवासि-त्रय को लौटाने का यत्न करना, केवल सीता को लौटाने के लिये विशेष हठ करना, सुमन्त का निराश होकर रथ के साथ अयोध्या लौटना और राम का प्रयाग की ओर यात्रा करने का वर्णन लिखा है। प्रयाग से चल कर तीनों यात्री, महर्षि भारद्वाज के आश्रम में पहुँचे, जहाँ पर ऋषिराज ने अपने आदर्श-अतिथियों का अपूर्व सत्कार किया।

मुनिराज के आश्रम के चार ब्रह्मचारी मार्ग दिखलाने के लिये चले। जिन विद्यार्थियों ने यमुना-तट तक पहुँचा दिया, इसके अनन्तर एक तपस्वी साथ हुआ और निषाद को महाराज ने बिदा कर दिया। मार्ग में स्थान स्थान का निरीक्षण करते हुए पुरवासियों को अपूर्व आनन्द देते उनका आदरभाव स्वीकार करते हुए वाल्मीकि के आश्रम में आये। वहाँ पर नाना प्रकार के पारस्परिक सत्संग हुए। चलते समय महाराज ने महर्षि से पूछा कि हम लोग कुछ दिनों तक इसी वन में विश्राम करना चाहते हैं। आप कोई स्थान बतलाइये। ऋषिराज ने आवास-व्याज से चतुर्दश उपदेशप्रद स्थान बतलाये, जिनका वर्णन उपयोगी समझ कर नीचे दिया जाता है:—

सुनहु राम अब कहँ निकेता। जहाँ बसहु सिय लषन समेता॥
(१) जिन्ह के स्रवन समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना॥
भरहिं निरन्तर होहिं न पूरे। तिन्ह के हृदय सदन तव रूरे॥
(२) लोचन चातक जिन्ह कर राखे। रहहिं दरस जलधर अभिलाषे॥
निदरहिं सरित सिंधु सर भारी। रूप बिंदु जल होंहि सुखारी॥
तिन्ह के हृदय सदन सुखदायक। बसहु बंधु-सिय-सह-रघुनायक॥

(३) दोहा—जस तुम्हार मानस बिमल, हंसिनि जीहा जासु।
मुकता हल गुन गन चुनै, राम बसहु मन तासु॥१२९॥

(४) प्रभु प्रसाद सुचि सुभग सुबासा। सादर जासु लहै नित नासा॥
तुम्हहिं निवेदित भोजन करहीं। प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं॥
सीस नवहिं सुर गुरु द्विज देखी। प्रीति सहित करि बिनय बिसेखी॥
कर नित करहिं राम पद पूजा। राम भरोस हृदय नहिं दूजा॥
चरन रामतीरथ चलि जाहीं। राम बसहु तिनके मनमाहीं॥
(५) मन्त्रराज नित जपहिं तुम्हारा। पूजहिं तुम्हहिं सहित परिवारा॥
तरपन होम करहिं विधि नाना। विप्र जेवाँइ देहिँ बहु दाना॥
तुम्ह तें अधिक गुरहिं जिय जानी। सकल भाव सेवहिँ सनमानी॥

दोहा—सब करि माँगहिं एक फल, राम-चरन-रति होउ।
तिन्ह के मन मंदिर बसहु, सिय रघुनन्दन दोउ॥१३०॥

(६) काम कोह मद मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा॥
जिन्ह के कपट दम्भ नहिं माया। तिन्ह के हृदय बसहु रघुराया॥

(७) सबके प्रिय सबके हितकारी। दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी॥
कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी। जागत सोवत सरन तुम्हारी॥
तुम्हहिं छाँड़ि गति दूसरि नाहीं। राम बसहु तिन्ह के मन माहीं॥
(८) जननी सम जानहिं परनारी। धनु पराव विष तें विष भारी॥
जे हरषहिं परसंपति देखी। दुखित होहिं पर बिपति बिसेखी॥
जिन्हहिं राम तुम्ह प्रान पियारे। तिन्ह के मन सुभ सदन तुम्हारे॥

(९) दोहा—स्वामि सखा पितु मातु गुरु, जिनके सब तुम्ह तात।
मन मन्दिर तिन्हके बसहु, सीय सहित दोउ भ्रात॥ ३१॥

(१०) अवगुन तजि सबके गुन गहहीं। बिप्र-धेनु-हित सङ्कट सहहीं॥
नीति निपुन जिन्ह कइ जग लीका। घर तुम्हार तिन्ह कर मन नीका॥
(११) गुन तुम्हार समुझइ निज दोसा। जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा॥
राम भगत प्रिय लागहिं जेही। तेहि उर बसहु सहित बैदेही॥
(१२) जाति पाँति धन धरम बड़ाई। प्रिय परिवार सदन सुखदाई॥
सब तजि तुम्हहिं रहै लव लाई। तेहि के हृदय रहहु रघुराई॥
(१३) सरग नरक अपबरग समाना। जहँ तहँ दीख धरे धनु बाना॥
करम-बचन-मन राउर चेरा। राम करहु तेहि के उर डेरा॥

(१४) दोहा०—जाहि न चाहिय कबहुँ कछु, तुम्ह सन सहज सनेहु।
बसहु निरन्तर तासु मन, सो राउर निज गेहु॥१३२॥

इन सब व्याज-वार्त्ताओं के अनन्तर महर्षि वाल्मीकि ने चित्रकूट का सुहावना उपयुक्त स्थान निवास के लिये बतलाया। चित्रकूट में कुछ दिनों तक मर्यादापुरुषोत्तम ने पर्णकुटी बनाकर निवास किया और बनवासियों ने अपने सुयोग्य अतिथियों की अपूर्व सेवा की। इसके अनन्तर तुलसीदास जी की लेखनी अयोध्या की ओर फिरी है। राम से बिदा होकर सुमन्त का अयोध्या-प्रत्यावर्तन घोड़ों की उदासी का वर्णन, सुमन्त का पश्चात्ताप, राजा की दुरवस्था देखकर शोक करना, राम लक्ष्मण और सीता का उनसे सन्देश कहना, और नाना प्रकार का विलाप करते हुए राजा दशरथ का स्वर्गवास लिखा गया है। महाराज दशरथ के स्वर्गवास से सारी अयोध्या में शोक छा गया, रानियाँ विलाप करने लगीं, वसिष्ठ ने सबका यथोचित समाधान किया, और दूत भेजकर भरत-शत्रुघ्न को ननिहाल से अयोध्या बुला पठाया। इसके अनन्तर भरत के आने पर कैकेयी का हर्षित होकर समस्त संवाद सुनाना, पिता का स्वर्गवास तथा राम-लक्ष्मण-सीता का वन-गमन सुनकर भरत का अत्यन्त दुखी होना, माता कौशल्या के पास जाना और नाना प्रकार से अपने को निर्दोष सिद्ध करना लिखा गया है। जिस समय भरत माता कौशल्या के पास गये हैं, उस समय का वर्णन तुलसीदास जी इस प्रकार करते हैं:—

भरतहिं देखि मातु उठि धाई। मुरछित अवनि परी झइँ आई ॥
देखत भरत बिकल भये भारी। परे चरन तनु दसा बिसारी ॥
मात तात कहँ देहु देखाई। कहँ सिय-राम-लषन दोउ भाई ॥
केकई कत जनमी जग माँझा। जौं जनमित भई किन बाँझा ॥
कुल कलंक जेहि जनमिय मोही। अपजस भाजन प्रिय जनद्रोही ॥
पितु सुरपुर बन रघुबर केतू। मैं केवल सब अनरथ हेतू ॥
धिक मोहि भयँउ बेनु-बन आगी। दुसह-दाह-दुख-दूषन-भागी ॥

दोहा—मातु भरत के बचन मृदु, सुनि पुनि उठी सँभारि।
लिये उठाइ लगाइ उर, लोचन मोचति बारि ॥१६५॥

सरल सुभाय माय हिय लाये। अति हित मनहुँ राम फिरि आये ॥
भेटेउ बहुरि लषन-लघु-भाई। सोक सनेह न हृदय समाई ॥
देखि सुभाउ कहत सब कोई। राम मातु अस काहे न होई ॥
माता भरत गोद बैठारे। आँसु पोंछि मृदु बचन उचारे ॥
अजहुँ बच्छ बलि धीरज धरहू। कुसमउ समुझि सोक परिहरहू ॥
जनि मानहु हिय हानि गलानी। काल-करम-गति अघटित जानी ॥
काहुहि दोस देहु जनि ताता। भा मोहि सब बिधि बाम बिधाता ॥
जो एतेहु दुख मोहि जियावा। अजहुँ को जानै का तेहि भावा ॥

दोहा—पितु आयसु भूषन बसन, तात तजे रघुबीर।
बिसमय हरष न हृदय कछु, पहिरे बलकल चीर ॥१६६॥

मुख प्रसन्न मन राग न रोषू। सब कर सब बिधि करि परितोषू ॥
चले बिपिन सुनि सिय संग लागी। रही न राम-चरन-अनुरागी ॥
सुनतहि लषन चले उठि साथा। रहहिं न जतन किये रघुनाथा ॥
तब रघुपति सब ही सिरु नाई। चले संग सिय अरु लघु भाई ॥
राम लषन सिय बनहिं सिधाये। गइउँ न संग न प्रान पठाये ॥
यह सब भा इन्ह आँखिन्ह आगे। तउ न तजा तनु प्रान अभागे ॥
मोहि न लाज निज नेह निहारी। राम सरिस सुत मैं महतारी ॥
जिअइ मरइ भल भूपति जाना। मोर हृदय सत-कुलिस-समाना ॥

दोहा—कौसल्या के बचन सुनि, भरत सहित रनिवास।
व्याकुल विलपत राजगृह, मानहुँ सोक निवास ॥१६७॥

विलपहिं बिकल भरत दोउ भाई। कौसल्या लिये हृदय लगाई ॥
भाँति अनेक भरत समुझाये। कहि विवेकमय बचन सुनाये ॥
भरतहु मातु सकल समुझाई। कहि पुरान स्रुति कथा सुहाई ॥
छल बिहीन सुचि सरल सुबानी। बोले भरत जोरि जुग पानी ॥
जे अघ मातु-पिता-सुत मारे। गाइ गोठ महि सुर-पुर जारे ॥

जे अघ तिय-बालक-बध कीन्हे। मीत महीपति माहुर दीन्हे॥
जे पातक उपपातक अहहीं। करम-बचन-मन भव कवि कहहीं॥
ते पातक मोहि होहु बिधाता। जौं यहु होइ मोर मत माता॥

दोहा—जे परिहरि हरि-हर-चरन, भजहिं भूत गन घोर।
तिन्ह कै गति मोहि देउ बिधि, जौं जननी मत मोर॥१६८॥

बेचहिं बेद धरम दुहि लेहीं। पिसुन पराय पाप कहि देहीं॥
कपटी कुटिल कलह प्रिय क्रोधी। बेद बिदूषक बिस्व बिरोधी॥
लोभी लंपट लोलुप चारा। जे ताकहि परधनु परदारा॥
पावउँ मैं तिन्ह की गति घोरा। जौं जननी एहु संमत मोरा॥
जे नहिं साधु संग अनुरागे। परमारथ पथ बिमुख अभागे॥
जे न भजहिं हरि नरतनु पाई। जिन्हहिं न हरि-हर-सुजसु सुहाई॥
तजि स्रुति पंथ नाम पथ चलहीं। बंचक बिरचि बेष जग छलहीं॥
तिन्ह की गति मोहि शंकर देऊ। जननी जौं एहु जानउँ भेऊ॥

दोहा—मातु भरत के बचन सुनि, साँचे सरल सुभाय।
कहति राम प्रिय तात तुम, सदा बचन मन काय॥१६९॥

राम प्रान ते प्रान तुम्हारे। तुम्ह रघुपतिहिं प्रान ते प्यारे॥
बिधु बिष चुवै स्रवै हिम आगी। होइ बारिचर बारि बिरागी॥
भये ज्ञान बरु मिटै न मोहू। तुम रामहिं प्रतिकूल न होहू॥
मत तुम्हार एह जो जग कहहीं। सो सपनेहु सुख सुगति न लहहीं॥

× × × × ×

ऊपर के वचनों से माता कौशल्या ने भरत को पूर्ण निर्दोष सिद्ध करते हुए आश्वासन दिलाया। इसके अनन्तर भरत ने महाराज दशरथ के प्रेत की अन्त्येष्टि क्रिया की। महर्षि वसिष्ठ ने अयोध्या के मुख्य मुख्य महाजनों को एकत्रित कर एक सभा का संगठन किया। और उसमें भरत और शत्रुघ्न को बुला कर इस बात के समझाने की चेष्टा की कि भरत राज-गद्दी लेने में सहमत हो जायँ। परन्तु इस कार्य्य में मुनिराज निष्फल हुए। भरत ने रामचन्द्र को वापस लाने की पूरी ठान ली और चित्रकूट जाने की तैयारी की। भरत के साथ सभी रानियाँ, वसिष्ठादि ऋषि और नगर के गण्यमान्य पुरुष भी चले। पहले दिन तमसा, दूसरे दिन गोमती और तीसरे दिन सई के तट पर निवास कर सारा समाज शृङ्गवेरपुर पहुँचा। भरत का ससैन्य आगमन सुन कर राम के भक्त निषादराज के हृदय में कुतर्क उत्पन्न हुआ। उसने समझा कि भरत राम से युद्ध करने जा रहे हैं और उसने झट युद्ध की तैयारी कर दी। उसीके दल के एक वृद्ध पुरुष ने कहा कि पहले भरत का पता लगा लो कि किस नीयत से रामचन्द्र के पास जा रहे हैं। पता लगाने पर निषाद को अपने कुतर्क पर ग्लानि हुई। भरत सप्रेम निषाद से मिले और उसके

साथ महाराज रामचन्द्र के उन स्थानों का निरीक्षण किया जहाँ कुछ काल तक ठहरे थे। इसके अनन्तर निषाद के साथ पैदल चल कर गंगा पार हो त्रिवेणी स्नान करना, भरद्वाज के आश्रम में निवास कर भरत का चित्रकूट के लिये प्रस्थान का वर्णन है। राम ने जब भरत के आगमन का समाचार सुना तो चिन्तित होकर इस सम्बन्ध में लक्ष्मण से कुछ बातें करने लगे। लक्ष्मण इस रहस्य को समझ न सके और भरत के विचार पर नाना प्रकार के कुतर्क करने लगे। इस प्रकरण से लेकर समस्त अयोध्याकाण्ड में भरत का अलौकिक भ्रातृ-स्नेह, राम का भरत पर अद्भुत प्रेम और नाना प्रकार की धर्म-नीति, समाज-नीति, राज-नीति अथच अद्भुत साहित्यिक मर्मपूर्ण रचना परिपूर्ण है। पाठकों और विद्यार्थियों के लाभार्थ अविकल उद्धृत किया जाता है:—

बहुरि सोच बस भे सिय रमनू। कारण कवन भरत आगमनू॥
एक आय अस कहा बहोरी। सेन संग चतुरंग न थोरी॥
सो सुनि रामहिं भा अति सोचू। उत पितु बच इत बंधु सँकोचू॥
भरत सुभाय समझि मनमाँही। प्रभु चित हित थिति पावत नाहीं॥
समाधान तब भा यह जाने। भरत कहे महँ साधु सयाने॥
लखन लखेउ प्रभु हृदय खभारू। कहत समय सम नीति विचारू॥
बिनु पूछे कछु कहउँ गोसाँई। सेवक समय न ढीठ ढिठाई॥
तुम सर्वज्ञ सिरोमनि स्वामी। आपनि समुझि कहउँ अनुगामी॥

दोहा—नाथ सुहृद सुठि सरल चित, सील सनेह निधान।
सब पर प्रीति प्रतीति जिय, जानिय आपु समान॥२२८॥

बिषई जीव पाइ प्रभुताई। मूढ़ मोहबस होंहि जनाई॥
भरत नीतिरत साधु सुजाना। प्रभु पद प्रेम सकल जग जाना॥
तेऊ आजु राजपद पाई। चले धरम मरजाद मिटाई॥
कुटिल कुबंधु कुअवसर ताकी। जानि राम बनवास एकाकी॥
करि कुमंत्र मन साजि समाजू। आये करन अकंटक राजू॥
कोटि प्रकार कलपि कुटिलाई। आये दल बटोरि दोउ भाई॥
जौं जिय होत न कपट कुचाली। केहि सुहाति रथ बाजि गजाली॥
भरतहिं दोष देइ को जाये। जग बौराइ राजपद पाये॥

दोहा—ससि गुरु तिय गामी नहुष, चढ़ेउ भूमि सुरजान।
लोक बेद नें बिमुख भा, अधम न बेनु समान॥२२९॥

सहसबाहु सुरनाथ त्रिशंकू। केहि न राजमद कीन्ह कलंकू॥
भरत कीन्ह यह उचित उपाऊ। रिपु रिन रंच न राखब काऊ॥
एक कीन्हि नहिं भरत भलाई। निदरे राम जान असहाई॥
समुझि परिहि सोउ आजु बिसेखी। समर सरोष राम मुख पेखी॥

एतना कहत नीति रस भूला। रन रस बिटप पुलक मिस फूला ॥
प्रभु पद बंदि सीस रज राखी। बोले सत्य सहज बल भाखी ॥
अनुचित नाथ न मानब मोरा। भरत हमहिं उपचार न थोरा ॥
कहँ लगि सहिय रहिय मनमारे। नाथ साथ धनु हाथ हमारे ॥

दोहा—छत्रि जाति रघुकुल जनमु, राम अनुज जग जानु।
लातहुँ मारे चढ़ति सिर, नीच को धूरि समान ॥२३०॥

उठि कर जोरि रजायसु माँगा। मनहुँ बीररस सोवत जागा ॥
बाँधि जटा सिर कसि कटि भाथा। साजि सरासन सायक हाथा ॥
आजु राम सेवक जस लेऊँ। भरतहिं समर सिखावन देऊँ ॥
राम निरादर कर फल पाई। सोवहु समर सेज दोउ भाई ॥
आइ बना भल सकल समाजू। प्रगट करौं रिस पाछिल आजू ॥
जिमि करि निकर दलइ मृगराजू। लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू ॥
तैसे भरतहिं सेन समेता। सानुज निदरि निपातौं खेता ॥
जौं सहाय कर शंकर आई। तौ मारउँ रन राम दोहाई ॥

दोहा—अति सरोष माखे लखन, लखि सुनि सपथ प्रमान।
सभय लोक सब लोकपति, चाहत भभरि भगान ॥२३१॥

जग भय मगन गगन भइ बानी। लखन बाहु बल बिपुल बखानी ॥
तात प्रताप प्रभाउ तुम्हारा। को कहि सकै को जाननि हारा ॥
अनुचित उचित काज कछु होऊ। समुझि करिय भल कह सब कोऊ ॥
सहसा करि पाछे पछिताहीं। कहहिं वेद बुध ते बुध नाहीं ॥
सुनि सुर बचन लखन सकुचाने। राम सीय सादर सनमाने ॥
कही तात तुम्ह नीति सुहाई। सब तें कठिन राजमद भाई ॥
जो अँचवत माँतहि नृप तेई। नाहिं न साधु सभा जेहि लेई ॥
सुनहु लखन भल भरत सरीखा। विधि प्रपंच महँ सुना न दीखा ॥

दोहा—भरतहिं होइ न राजमद, बिधि हरि हर पद पाइ।
कबहुँ कि कांजी सीकरनि, छीर सिंधु बिनसाइ ॥२३२॥

तिमिर तरुन तरनिहि सकु गिलई। गगन मगन मकु मेघहि मिलई ॥
गोपद जल बूड़हिं घटजोनी। सहज छमा बरु छाडइ छोनी ॥
मसक फूँक मकु मेरु उड़ाई। होइ न नृपमद भरतहिं भाई ॥
लखन तुम्हार सपथ पितु आना। सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना ॥
सगुन छीर अवगुन जल ताता। मिले रचे परपंच बिधाता ॥
भरत हंस रबि-बंस-तड़ागा। जनमि कीन्ह गुन-दोष-बिभागा ॥
गहि गुन पय तजि अवगुन बारी। निज जस जगत कीन्हि उँजियारी ॥
कहत भरत-गुन-सील-सुभाऊ। प्रेम पयोधि मगन रघुराऊ ॥

दोहा—सुनि रघु-बर-बानी बिबुध, देखि भरत पर हेतु।
सकल सराहत राम सों, प्रभु को कृपानिकेतु ॥२३३॥

जौं न होत जग जनम भरत को। सकल-धरम-धुर धरनि धरत को ॥
कवि-कुल-अगम भरत-गुन गाथा। को जाने तुम्ह बिनु रघुनाथा ॥
लषन राम सिय सुनि सुर बानी। अति सुख लहेउ न जाइ बखानी ॥
इहाँ भरत सब सहित सहाये। मंदाकिनी पुनीत नहाये ॥
सरित समीप राखि सब लोगा। माँगि मातु-गुरु-सचिव नियोगा ॥
चले भरत जहँ सिय रघुराई। साथ निषाद नाथ लघु भाई ॥
समुझि मातु करतब सकुचाहीं। करत कुतरक कोटि मनमाहीं ॥
राम-लषन-सिय सुनि मम नाऊँ। उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊँ ॥

दोहा—मातु मते महँ मानि मोहि, जो कछु कहहिं सो थोर।
अघ अवगुन छमि आदरहिं, समुझि आपनी ओर ॥२३४॥

जौं परिहरहिं मलिन मन जानी। जौं सनमानिहिं सेवक मानी ॥
मोरे सरन राम की पनहीं। राम सुस्वामि दोष सब जनहीं ॥
जग जस भाजन चातक मीना। नेम प्रेम निज निपुन नवीना ॥
अस मन गुनत चले मग जाता। सकुच सनेह सिथिल सब गाता ॥
फेरति मनहिं मातुकृत खोरी। चलत भगतिबल धीरज धोरी ॥
जब समुझत रघुनाथ सुभाऊ। तब पथ परत उताइल पाऊ ॥
भरत दशा तेहि अवसर कैसी। जल प्रवाह जल-अलि-गति जैसी ॥
देखि भरत कर सोच सनेहू। भा निषाद तेहि समय विदेहू ॥

दोहा—लगे होन मंगल सगुन, सुनि गुनि कहत निषादु।
मिटिहि सोच होइहि हरषु, पुनि परिनाम विषादु ॥२३५॥

सेवक बचन सत्य सब जाने। आस्रम निकट जाइ नियराने ॥
भरत दीख बन-सैल-समाजू। मुदित छुधित जनु पाइ सुनाजू ॥
ईति भीति जनु प्रजा दुखारी। त्रिबिध ताप पीडित ग्रह भारी ॥
जाइ सुराज सुदेस सुखारी। होहिं भरत गति तेहि अनुहारी ॥
राम वास बन संपति भ्राजा। सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा ॥
सचिव बिरागु विवेकु नरेसू। विपिन सुहावन पावन देसू ॥
भट जम नियम सैल रजधानी। सांति सुमति सुचि सुन्दर रानी ॥
सकल अंग सम्पन्न सुराऊ। रामचरन आस्रित चित चाऊ ॥

दोहा—जीति मोह-महि-पालु दल, सहित बिवेक भुआल।
कहत अकंटक राज्य पुर, सुख संपदा सुकालु ॥२३६॥

बन प्रदेस मुनि बास घनेरे। जनु पुर नगर गाउँ गन खेरे ॥
बिपुल बिचित्र बिहंग मृग नाना। प्रजा समाज न जाइ बखाना ॥
खगहा करि हरि बाघ बराहा। देखि महिष वृक साजु सराहा ॥

बयरु बिहाय चरहिं एक संगा। जहँ तहँ मनहुँ सेन चतुरंगा॥
झरना झरहिं मत्त गज गाजहिं। मनहुँ निसान बिबिध बिधि बाजहिं॥
चक चकोर चातक सुक पिकगन। कूजत मंजु मराल मुदित मन॥
अलिगन गावत नाचत मोरा। जनु सुराज मंगल चहुँ ओरा॥
बेलि बिटप तृन सफल सफूला। सब समाज मुद-मंगल-मूला॥

दोहा—राम सैल सोभा निरखि, भरत हृदय अति प्रेम।
तापस तप फल पाइ जिमि, सुखी सिराने नेम॥२३७॥

तब केवट ऊँचे चढ़ि धाई। कहेउ भरत सन भुजा उठाई॥
नाथ देखियहि बिटप विशाला। पाकरि जंबु रसाल तमाला॥
तिन्ह तरुवरन्ह मध्य वट सोहा। मंजु विसाल देखि मनमोहा॥
नील सघन पल्लव फल लाला। अविचल छाँह सुखद सब काला॥
मानहुँ तिमिर अरुन-मय रासी। बिरची विधि सकेलि सुखमासी॥
तेहि तरु सरित समीप गोसाँई। रघुवर परनकुटी जहँ छाई॥
तुलसी तरुवर विविध सुहाये। कहुँ कहुँ सिय कहुँ लषन लगाये॥
वट छाया वेदिका वनाई। सिय निज पानि-सरोज सुहाई॥

दोहा—जहाँ बैठि मुनि-गन-सहित, नित सिय राम सुजान।
सुनहिं कथा इतिहास सब, आगम निगम पुरान॥२३८॥

सखा बचन सुनि बिटप निहारी। उमगे भरत बिलोचन बारी॥
करत प्रनाम चले दोउ भाई। कहत प्रीति सारद सकुचाई॥
हरषहिं निरखि राम पद अंका। मानहुँ पारस पायेउ रंका॥
रज सिर धरि हिय नयनन्हि लावहिं। रघु-वर-मिलन-सरिस सुख पावहिं॥
देखि भरत गति अकथ अतीवा। प्रेम मगन मृग खग जड़ जीवा॥
सखहिं सनेह बिबश मग भूला। कहि सुपंथ सुर बरषहिं फूला॥
निरखि सिद्धि साधक अनुरागे। सहज सनेह सराहन लागे॥
होत न भूतल भाउ भरत को। अचर सचर चर अचर करत को॥

दोहा—प्रेम अमिय मंदरु बिरह, भरत पयोधि गँभीर।
मथि प्रगटे सुर-साधु-हित, कृपासिन्धु रघुबीर॥२३९॥

सखा समेत मनोहर जोटा। लखेउ न लषन सघन बन ओटा॥
भरत दीख प्रभु आश्रम पावन। सकल-सुमंगल-सदन सुहावन॥
करत प्रवेस मिटे दुखदावा। जनु जोगी परमारथ पावा॥
देखे भरत लषन प्रभु आगे। पूछे बचन कहत अनुरागे॥
सीस जटा कटि मुनिपट बाँधे। तून कसे कर सर धनु काँधे॥
वेदी पर मुनि-साधु-समाजू। सीय सहित राजत रघुराजू॥
बलकल बसन जटिल तनु स्यामा। जनु मुनि बेष कीन्ह रतिकामा॥
कर कमलनि धनु सायक फेरत। जिय की जरनि हरत हँसि हेरत॥

दोहा—लसत मंजु मुनि-मंडली, मध्य सीय रघुचन्द।
ज्ञान सभा जनु तनु धरे, भगति सच्चिदानन्द ॥२४०॥

सानुज सखा समेत मगन मन। बिसरे हरष-सोक-सुख दुख गन ॥
पाहि नाथ कहि पाहि गोसाईं। भूतल परे लकुट की नाईं ॥
बचन सप्रेम लखन पहिचाने। करत प्रनाम भरत जिय जाने ॥
बंधु सनेह सरस एहि ओरा। इत साहिब सेवा बरजोरा ॥
मिलि न जाइ नहिं गुदरत बनई। सुकवि लपन मन की गति भनई ॥
रहे राखि सेवा पर भारू। चढ़ी चंग जनु खैंच खेलारू ॥
कहत सप्रेम नाइ महि माथा। भरत प्रनाम करत रघुनाथा ॥
उठे राम सुनि प्रेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा ॥

दोहा—बरबस लिए उठाइ उर, लाये कृपानिधान।
भरत राम की मिलनि लखि, बिसरे सबहिं अपान ॥२४१॥

मिलनि प्रीति किमि जाइ बखानी। कवि कुल अगम करम मन बानी ॥
परम प्रेम पूरण दोउ भाई। मन बुधि चित अहमिति बिसराई ॥
कहहु सुप्रेम प्रगट को करई। केहि छाया कवि मति अनुसरई ॥
कविहिं अरथ आखर बलु साँचा। अनुहरि ताल गतिहिं नट नाचा ॥
अगम सनेह भरत रघुबर को। जहँ न जाइ मन बिधि हरिहर को ॥
सो मैं कुमति कहेउँ केहि भाँती। बाजु सुराग कि गाडर ताँती ॥
मिलनि बिलोकि भरत रघुबर की। सुरगन सभय धकधकी धर की ॥
समुझाये सुर गुरु जड़ जागे। बरषि प्रसून प्रसंसन लागे ॥

दोहा—मिलि सप्रेम रिपु सूदनहिं, केवट भेंटेउ राम।
भूरि भाय भेंटे भरत, लछिमन करत प्रनाम ॥२४२॥

भेंटेउ लखन ललकि लघु भाई। बहुरि निषाद लीन उर लाई ॥
पुनि मुनि गन दुहु भाइन्ह बन्दे। अभिमत आसिष पाइ अनंदे ॥
सानुज भरत उमगि अनुरागा। धरि सिर सिय पद पदुम परागा ॥
पुनि पुनि करत प्रनाम उठाये। सिर कर कमल परसि बैठाये ॥
सीय असीस दीन्हि मनमाहीं। मगन सनेह देह सुधि नाहीं ॥
सब बिधि सानुकूल लखि सीता। भे निसोच उर अप डर बीता ॥
कोउ कछु कहै न कोउ कछु पूछा। प्रेम भरा मन निज गति छूछा ॥
तेहि अवसर केवट धीरज धरि। जोरि पानि बिनवत प्रनाम करि ॥

दोहा—नाथ साथ मुनिनाथ के, मातु सकल पुर लोग।
सेवक सेनप सचिव सब, आये बिकल बियोग ॥२४३॥

सील सिन्धु सुनि गुरु आगवनू। सीय समीप राखि रिपु दवनू ॥
चले सबेग राम तेहि काला। धीर धरमधुर दीनदयाला ॥

गुरुहि देखि सानुज अनुरागे। दण्ड प्रनाम करन प्रभु लागे ॥
मुनिवर धाइ लिये उर लाई। प्रेम उमगि भेंटे दोउ भाई ॥
प्रेम पुलकि केवट कहि नामू। कीन्ह दूरि ते दण्ड प्रनामू ॥
राम सखा रिषि बरबस भेटा। जनु महि लुठन सनेह समेटा ॥
रघुपति भगति सुमङ्गल मूला। नभ सराहिं सुर बरसहिं फूला ॥
एहि सम निपट नीच कोउ नाहीं। बड वसिष्ठ सम को जगमाहीं ॥

दोहा—जेहि लखि लखनहुँ ते अधिक, मिले मुदित मुनि राउ।
सो सीतापति भजन को, प्रगट प्रताप प्रभाउ ॥२४४॥

आरत लोग राम सब जाना। करुनाकर सुजान भगवाना ॥
जो जेहि भाव रहा अभिलाखी। तेहि तेहि की तसि तसि रुख राखी॥
सानुज मिलि पलमहँ सब काहू। कीन्ह दूरि दुख दारुण दाहू ॥
यह बडि बात राम की नाहीं। जिमि घट कोटि एक रवि छाहीं ॥
मिलि केवटहि उमगि अनुरागा। पुरजन सकल सराहहिं भागा ॥
देखत राम दुखित महतारी। जनु सुबेलि अवली उर मारी ॥
प्रथम राम भेंटी कैकेई। सरल सुभाय भगति मति भेई ॥
पगपरि कीन्ह प्रबोधु बहोरी। काल करम बिधि सिर धरि खोरी ॥

दोहा—भेंटे रघुवर मातु सब, करि प्रबोध परितोष।
अंब ईस आधीन जग, काहु न देइय दोष ॥२४५॥

गुरु-तिय पद बंदे दुहुँ भाई। सहित विप्र तिय जे सँग आई ॥
गंग गौरि सम सब सनमानी। देहिं असीस मुदित मृदुबानी ॥
गहि पद लगे सुमित्रा अंका। जनु भेंटी संपति अतिरंका।
पुनि जननी चरनन दोउ भ्राता। परे प्रेम व्याकुल सब गाता ॥
अति अनुराग अंब उर लाये। नयन सनेह सलिल अन्हवाये ॥
तेहि अवसर कर हरस बिषादू। किमि कवि कहै मूक जिमि स्वादू ॥
मिलि जननिहि सानुज रघुराऊ। गुरु सन कहेउ कि धारिय पाऊ ॥
तुरजन पाइ मुनीस नियोगू। जल थल तकि तकि उतरे लोगू ॥

दोहा—महिसुर मंत्री मातु गुरु, गने लोग लिये साथ।
पावन आस्रम गमन किय, भरत लषन रघुनाथ ॥२४६॥

सीय आय मुनिवर पग लागी। उचित असीस लही मनमाँगी ॥
गुर पतिनिहिं मुनि तियन्ह समेता। मिली प्रेम कहि जाय न जेता ॥
बंदि बंदि पग सिय सबही के। आसिर वचन लहे प्रिय जी के ॥
सासु सकल जब सीय निहारी। मूंदे नैन सहमि सुकुमारी ॥
परी बधिक बस मनहुँ मराली। काह कीन्ह करतार कुचाली ॥
तिन्ह सिय निरखि निपट दुख पावा। सो सब सहिय जो दैव सहावा ॥

जनक सुता तब उर धरि धीरा। नील नलिन लोचन भरि नीरा ॥
मिली सकल सासुन्ह सिय जाई। तेहि अवसर करुना महि छाई ॥

दोहा—लागि लागि पग सबनि सिय, भेंटति अति अनुराग।
हृदय असीसहिं प्रेम बस, रहिहहु भरी सोहाग ॥२४७॥

विकल सनेह सीय सब रानी। बैठन सबहि कहेउ गुरु ज्ञानी ॥
कहि जगगति मायिक मुनि नाथा। कहे कछुक परमारथ गाथा ॥
नृप कर सुरपुर गवनु सुनावा। सुनि रघुनाथ दुसह दुख पावा ॥
मरन हेतु निजनेह बिचारी। भे अति विकल धीर धुर धारी ॥
कुलिश कठोर सुनत कटु बानी। बिलपत लषन सीय सब रानी ॥
सोक विकल अति सकल समाजू। मानहुँ राजु अकाजेउ आजू ॥
मुनिवर बहुरि राम समुझाये। सहित समाज सुसरित नहाये ॥
व्रत निरंबु तेहि दिन प्रभु कीन्हा। मुनिहु कहे जल काहु न लीन्हा ॥

दोहा—भोर भये रघुनन्दनहिं, जो मुनि आयुसु दीन्ह।
स्रद्धा भगत समेत प्रभु, सो सब सादर कीन्ह ॥२४८॥

करि पितु क्रिया वेद जसि बरनी। भे पुनीत पातक तम तरनी ॥
जासु नाम पावक अघतूला। सुमिरत सकल सुमङ्गल मूला ॥
सुद्ध सो भये साधु संमत अस। तीरथ आवाहन सुरसरि जस ॥
सुद्ध भये दुइ बासर बीते। बोले गुरुसन राम पिरीते ॥
नाथ लोग सब निपट दुखारी। कन्द मूल फल अम्बु अहारी ॥
सानुज भरत सचिव सब माता। देखि मोहि पल जिमि जुग जाता ॥
सब समेत पुर धारिय पाऊ। आपु इहाँ अमरावति राऊ ॥
वहुत कहेउँ सब कियउँ ढिठाई। उचित होइ तस करिय गोसाँई ॥

दोहा—धर्म सेतु करुनायतन, कस न कहउ अस राम।
लोग दुखित दिन दुई सरिस, देखि लहेउ विश्राम ॥२४९॥

राम बचन सुनि सभय समाजू। जनु जल निधि महँ विकल जहाजू ॥
सुनि गुरु गिरा सुमङ्गल मूला। भयउ मनहुँ मारुत अनुकूला ॥
पावन पय तिहुँ काल नहाहीं। जो विलोकि अघ ओघ नसाहीं ॥
मङ्गल मूरति लोचन भरि भरि। निरखहिं हरषि दण्डवत करि करि ॥
राम सैलवन देखन जाहीं। जहँ सुख सकल सकल दुख नाहीं ॥
झरना झरहिं सुधा सम बारी। त्रिविध ताप हर त्रिविध बयारी ॥
बिटप बेलि तृण अगनति जाती। फल प्रसून पल्लव बहु भाँती ॥
सुन्दर सिला सुखद तरु छाहीं। जाइ बरनि वन छवि केहि पाहीं ॥

दोहा—सरनि सरोरुह जल बिहँग, कूजत गुंजत भृङ्ग।
बैर बिगत विहरत विपिन, मृग बिहङ्ग बहुरङ्ग ॥२५०॥

कोल किरात भिल्ल बनबासी। मधु सुचि सुन्दर स्वादु सुधा सी ॥
भरि भरि परन पुटी रचि रूरी। कन्द मूल फल अंकुर जूरी ॥
सबहिं देहिं करि बिनय प्रनामा। कहि कहि स्वादु भेद गुन नामा ॥
देहिं लोग बहु मोल न लेहीं। फेरत राम दोहाई देहीं ॥
कहहिं सनेह मगन मृदुबानी। मानत साधु प्रेम पहिचानी ॥
तुम्ह सुकृती हम नीच निषादा। पावा दरसन रामप्रसादा ॥
हमहिं अगम अति दरस तुम्हारा। जस मरु धरनि देव-धुनि-धारा ॥
राम कृपाल निषाद नेवाजा। परिजन प्रजा चहिय जस राजा ॥

दोहा—यह जिय जानि सँकोच तजि, करिय छोहु लखि नेहु ।
हमहिं कृतारथ करन लगि, फल तृन अंकुर लेहु ॥२५१॥

तुम प्रिय पाहुन बन पग धारे। सेवा जोग न भाग हमारे ॥
देव काह हम तुम्हहिं गोसाँई। ईंधन पात किरात मिताई ॥
यह हमारि अति बड़ि सेवकाई। लेहिं न बासन बसन चोराई ॥
हम जड़ जीव जीव-गन-घाती। कुटिल कुचाली कुमति कुजाती ॥
पाप करत निसि बासर जाहीं। नहिं पट कटि नहिं पेट अघाहीं ॥
सपनेहुँ धरम बुद्धि कस काऊ। यह रघु-नन्दन-दरस प्रभाऊ ॥
जब तें प्रभु-पद-पदुम निहारे। मिटे दुसह-दुख-दोष हमारे ॥
बचन सुनत पुरजन अनुरागे। तिन्ह के भाग सराहन लागे ॥

छन्द—लागे सराहन भाग सब अनुराग बचन सुनावहीं ।
बोलनि मिलनि सिय-राम चरन सनेहु लखि सुख पावहीं ॥
नरनारि निदरहिं नेह निज सुनि कोल भिल्लनि की गिरा ।
तुलसी कृपा रघु-बंस-मनि की लोह लै नौका तिरा ॥

सोरठा—बिहरहिं बन चहुँ ओर, प्रतिदिन प्रमुदित लोग सब ।
जल ज्यों दादुर मोर, भये पीन पावस प्रथम ॥२५२॥

पुर-नर-नारि मगन अति प्रीती। बासर जाहिं पलक सम बीती ॥
सीय सासु प्रति बेष बनाई। सादर करइ सरिस सेवकाई ॥
लखा न मरम राम बिनु काहू। माया सब सिय माया नाहू ॥
सीय सासु सेवा बस कीन्ही। तिन्ह लहि सुख सिख आसिष दीन्ही ॥
लखि सीय सहित सरल दोउ भाई। कुटिल रानि पछितानि अघाई ॥
अब जिय महँ जाँचति कैकेयी। महि न बीच बिधि मीच न देई ॥
लोकहु बेद बिदित कबि कहहीं। राम बिमुख थल नरक न लहहीं ॥
यह संसय सबके मनमाहीं। राम गवन बिधि अवध कि नाहीं ॥

दोहा—निसि न नींद नहिं भूख दिन, भरत बिकल सुठि सोच ।
नीच कीच बिच मगन जस, मीनहिं सलिल सँकोच ॥२५३॥

कीन्ह मातु मिस काल कुचाली। ईति भीति जस पाकत साली॥
केहि विधि होइ राम अभिषेकू। मोहि अव कलत उपाय न एकू॥
अवसि फिरहिं गुरु आयस मानी। मुनि पुनि कहव राम रुचि जानी॥
मातु कहेउ बहुरहिं रघुराऊ। राम जननि हठ करवि कि काऊ॥
मोहि अनुचर कर केतिक बाता। तेहि मह कुसमउ वाम विधाता॥
जौं हठ करउँ तो निपट कुकरमू। हरि गिरि ते गुरु सेवक धरमू॥
एकै जुगुति न मन ठहरानी। सोचत भरतहि रैनि सिरानी॥
प्रात नहाइ प्रभुहिं सिरु नाई। बैठत पठये रिषय बोलाई॥

दोहा—गुरु पद कमल प्रणाम करि, बैठे आयसु पाय।
विप्र महाजन सचिव सव, जुरे सभासद आय॥२५४॥

बोले मुनिवर समय समाना। सुनहु सभासद भरत सुजाना॥
धरम धुरीन भानु कुल भानू। राजा राम स्ववस भगवानू॥
सत्य संध पालक श्रुति सेतू। राम जनम जग मंगल हेतू॥
गुरु पितु मातु बचन अनुसारी। खल दल दलन देव हितकारी॥
नीति प्रीति परमारथ स्वारथ। कोउ न राम सम जान जथारथ॥
विधि हरिहर ससि रबि दिसि पाला। माया जीव करम कलि काला॥
महिप अहिप जहँ लगि प्रभुताई। जोग सिद्धि निगमागम गाई॥
करि विचार जिय देखहु नीके। राम रजाइ सीस सबहीके॥

दोहा—राखे राम रजाइ रुख, हम सब कर हित होय।
समुझि सयाने करहु अब, सब मिलि संमत सोय॥२५५॥

सब कहँ सुखद राम अभिषेकू। मङ्गल मोद मूल मग एकू॥
केहि विधि अवध चलहिं रघुराऊ। कहहु समुझि सोइ करिय उपाऊ॥
सब सादर सुनि मुनिवर बानी। नय परमारथ स्वारथ सानी॥
उतर न आव लोग भये भोरे। तब सिर नाइ भरत कर जोरे॥
भानु वंश भये भूप घनेरे। अधिक एक तें एक बडेरे॥
जनम हेतु सब कहँ पितु माता। करम सुभासुभ देइ विधाता॥
दलि दुख सजै सकल कल्याणा। अस असीस राउरि जग जाना॥
सोइ गोसाँइ बिधिगति जेहि छेकी। सकै को टार टेक जो टेकी॥

दोहा—बूझिय मोहि उपाउ अब, सो सब मोर अभाग।
सुनि सनेहमय बचन गुरु, उर उमगा अनुराग॥२५६॥

तात बात फुरि राम कृपाहीं। राम बिमुख सिधि सपनेहु नाहीं॥
सकुचउँ तात कहत एक बाता। अर्द्ध तजहिं बुध सरबस जाता॥
तुम्ह कानन गवनहु दोउ भाई। फेरियहि लखन सीय रघुराई॥
सुनि सुबचन हरषे दोउ भ्राता। भे प्रमोद परि पूरन गाता॥
मन प्रसन्न तनु तेज बिराजा। जनु जिय राउ राम भये राजा॥

बहुत लाभ लोगन्ह लघु हानी। सम दुख सुख सब रोवहिं रानी ॥
कहहिं भरत मुनि कहा सो कीन्हे। फल जग जीवन्ह अभिमत दीन्हे ॥
कानन करउँ जनम भरि बासू। एहिं ते अधिक न मोर सुपासू ॥

दोहा—अन्तर जामी राम सिय, तुम्ह सरवज्ञ सुजान।
जौं फुर कहहु त नाथ निज, कीजिय बचन प्रमाण ॥२५७॥

भरत बचन सुनि देखि सनेहू। सभा सहित मुनि भयउ विदेहू ॥
भरत महा महिमा जल रासी। मुनि मति ठाढ़ि तीर अबलासी ॥
गा चह पार जतन हिय हेरा। पावति नाव न बोहित बेरा ॥
और करै को भरत बड़ाई। सरसी सीप कि सिन्धु समाई ॥
भरत मुनिहिं मन भीतर भाये। सहित समाज राम पहिं आये ॥
प्रभु प्रणाम करि दीन्ह सुआसन। बैठे सब सुनि मुनि अनुसासन ॥
बोले मुनिवर बचन बिचारी। देस काल अवसर अनुहारी ॥

दोहा—सबके उर अन्तर बसहु, जानहु भाउ कुभाउ।
पुरजन जननी भरत हित, होइ सो कहिय उपाउ ॥२५८॥

आरत कहहिं बिचारि न काऊ। सूझ जुआरिहि आपन दाऊ ॥
सुनि मुनि बचन कहत रघुराऊ। नाथ तुम्हारेहि हाथ उपाऊ ॥
सबकर हित रुख राउरि राखे। आयसु किये मुदित फुर भाखे ॥
प्रथम जो आयसु मोकहँ होई। माथे मानि करउँ सिख सोई ॥
पुनि जेहि कहँ जस कहब गोसाँई। सो सब भाँति घटिहि सेवकाई ॥
कह मुनिराम सत्य तुम्ह भाखा। भरत सनेह बिचारु न राखा ॥
तेहिते कहउँ वहोरि बहोरी। भरत भगति बस भइ मति भोरी ॥
मोरे जान भरत रुचि राखी। जो कीजिय सो सुभ सिव साखी ॥

दोहा—भरत विनय सादर सुनिय, करिय विचारु बहोरि।
करब साधु मत लोक मत, नृप नय निगम निचोरि ॥२५६॥

गुरु अनुरागि भरत पर देखी। राम हृदय आनंद बिशेखी ॥
भरतहिं धरम धुरंधर जानी। निज सेवक तन मानस बानी ॥
बोले गुरु आयसु अनुकूला। बचन मंजु मृदु मंगल मूला ॥
नाथ सपथ पितु चरन दोहाई। भयउ न भुवन भरत सम भाई ॥
जे गुरु पद अंवुज अनुरागी। ते लोकहुँ बेदहुँ बड़ भागी ॥
राउर जापर अस अनुरागू। को कहि सकै भरत कर भागू ॥
लखि लघु वंधु बुद्धि सकुचाई। करत बदन पर भरत बड़ाई ॥
भरत कहहिं सोइ किये भलाई। अस कहि राम रहे अरगाई ॥

दोहा—तब मुनि बोले भरत सन, सब सँकोच तजि तात।
कृपासिंधु प्रियबंधु सन, कहहु हृदय की बात ॥२६०॥

सुनि मुनि बचन राम रुख पाई। गुरु साहिब अनुकूल अघाई॥
लखि अपने सिर सबछरु भारू। कहि न सकहिं कछु करहिं बिचारू॥
पुलकि सरीर सभा भये ठाढ़े। नीरज नयन नेह जल बाढ़े॥
कहब मोर मुनिनाथ निबाहा। एहि ते अधिक कहौं मैं काहा॥
मैं जानउँ निज नाथ सुभाऊ। अपराधिहु पर कोह न काऊ॥
मोपर कृपा सनेह बिसेखी। खेलत खुनस न कबहूँ देखी॥
सिसुपन तें परिहरेउ न संगू। कबहुँ न कीन्ह मोर मन भंगू॥
मैं प्रभु कृपा रीति जिय जोही। हारेहु खेल जितावहिं मोही॥

दोहा—महूँ सनेह सकोच बस, सनमुख कहै न बैन।
दरसन तृपित न आजु लगि, प्रेम पियासे नैन॥२६१॥

बिधि न सकेउ सहि मोर दुलारा। नीच बीच जननी मिस पारा॥
यहउ कहत मोहि आज न सोभा। अपनी समुझि साधु सुचि कोभा॥
मातु मंद मैं साधु सुचाली। उर अस आनत कोटि कुचाली॥
फरै कि कोदव बालि सुसाली। मुकता प्रसव की संबुक ताली॥
सपनेहु दोष कलेसु न काहू। मोर अभाग उदधि अवगाहू॥
बिनु समझे निज अघ परिपाकू। जारिउँ जाय जननि कहि काकू॥
हृदय हेरि हारेउँ सब ओरा। एकहि भाँति भलेहि भल मोरा॥
गुरु गोसाइँ साहिब सिय रामू। लागत मोहि नीक परिनामू॥

दोहा—साधु सभा गुरु प्रभु निकट, कहउँ सुथल सतिभाउ।
प्रेम प्रपंच कि झूठ फुर, जानहिं मुनि रघुराउ॥२६२॥

भूपति मरनु प्रेमपनु राखी। जननी कुमति जगत सब साखी॥
देखि न जाहिं बिकल महतारी। जरहिं दुसह जर पुन नर नारी॥
महीं सकल अनरथ कर मूला। सो सुनि समुझि सहेउँ सब सूला॥
सुनि बनगमन कीन्ह रघुनाथा। करिमुनि बेष लषन सिय साथा॥
बिनु पानहिन्ह पयादेहि पाये। शङ्कर साखि रहेउँ एहि घाये॥
बहुरि निहारि निषाद सनेहू। कुलिस कठिन उर भयउ न बेहू॥
अब सब आँखिन्ह देखेउँ आई। जिअत जीव जड़ सबै सहाई॥
जिन्हहिं निरखि मगु साँपिनि बीछी। तजहिं बिषमबिष तामस तीछी॥

दोहा—तेइ रघुनन्दन लषन सिय, अनहित लागे जाहि।
तासु तनय तजि दुसह दुख, दैव सहावहि काहि॥२६३॥

सुनि अति बिकल भरत बर बानी। आरति प्रीति बिनय नय सानी॥
सोक मगन सब सभा खभारू। मनहुँ कमल वन परेउ तुपारू॥
कहि अनेक बिधि कथा पुरानी। भरत प्रबोध कीन्ह मुनि ज्ञानी॥
बोले उचित बचन रघुनन्दू। दिन कर कुल कैरव बन चन्दू॥
तात जाय जनि करहु गलानी। ईस अधीन जीव गति जानी॥

तीनि काल त्रिभुवन मत मोरे। पुन्य सिलोक तात तर तोरे॥
उर आनत तुम्ह पर कुटिलाई। जाइ लोकु-परलोकु नसाई॥
दोस देहिं जननिहिं जड तेई। जिन्ह गुरु-साधु-सभा नहिं सेई॥

दोहा—मिटिहहिं पाप प्रपञ्च सब, अखिल अमङ्गल भार।
लोक सुजस परलोक सुख, सुमिरत नाम तुम्हार॥२६४॥

कहउँ सुभाउ सत्य शिव साखी। भरत भूमि रह राउरि राखी॥
तात कुतरक करहु जनि जाये। बैर प्रेम नहिं दुरै दुराये॥
मुनि जन निकट विहँग मृग जाहीं। बालक बधिक बिलोकि पराहीं॥
हित अनहित पसु पच्छिउ जाना। मानुष तनु गुन ज्ञान निधाना॥
तात तुम्हहिं मैं जानउँ नीके। करउँ काह असमंजस जीके॥
राखेउ राय सत्य मोहि त्यागी। तन परिहरेउ प्रेम पन लागी॥
तासु बचन मेटत मन सोचू। तेहि तें अधिक तुम्हार सँकोचू॥
ता पर गुरु मोहि आयसु दीन्हा। अवसि जो कहहु चहौं सोइ कीन्हा॥

दोहा—मन प्रसन्न करि सकुच तजि, कहहु करौं सोइ आजु।
सत्य संध रघुबर बचन, सुनि भा सुखी समाजु॥२६५॥

सुर गन सहित सभय सुर राजू। सोचहिं चाहत होन अकाजू॥
करत उपाउ बनत कछु नाहीं। राम सरन सब गे मनमाहीं॥
बहुरि बिचारि परसपर कहहीं। रघुपति भगत भगतिबस अहहीं॥
सुधि करि अम्बरीष दुरबासा। भे सुर सुरपति निपट निरासा॥
सहे सुरन्ह बहुकाल विषादा। नरहरि किये प्रगट प्रहलादा॥
लगि लगि कान कहहिं धुनि माथा। अब सुरकाज भरत के हाथा॥
आन उपाय न देखिय देवा। मानत राम सुसेवक सेवा॥
हिय सप्रेम सुमिरहु सब भरतहिं। निज गुण शील राम बस करतहिं॥

दोहा—सुनि सुरमत सुरु गुरु कहेउ, भल तुम्हार बड़ भाग।
सकल सुमंगल मूल जग, भरत बचन अनुराग॥२६६॥

सीतापति सेवक सेवकाई। काम धेनु सत सरिस सुहाई॥
भरत भगति तुम्हरे मन आई। तजहु सोच बिधि बात बनाई॥
देखि देवपति भरत प्रभाऊ। सहज सुभाउ विबस रघुराऊ॥
मन थिर करहु देव डर नाहीं। भरतहिं जानि राम परिछाहीं॥
सुनि सुर गुरु सुरसंमत सोचू। अंतरजामी प्रभुहिं सँकोचू॥
निज सिर भार भरत जिय जाना। करत कोटि बिधि उर अनुमाना॥
करि बिचार मन दीन्ही टीका। राम रजायसु आपन नीका॥
निज पत तजि राखेउ पन मोरा। छोह सनेह कीन्ह नहिं थोरा॥

दोहा—कीन्ह अनुग्रह अमित अति, सब बिधि सीतानाथ।
करि प्रणाम बोले भरत, जोरि जलज जुग हाथ॥२६७॥

कहउँ कहावउँ का अब स्वामी। कृपा अंबु निधि अन्तरयामी ॥
गुरु प्रसन्न साहिब अनुकूला। मिटी मलिन मन कलपित सूला ॥
अपडर डरेउँ न सोच समूले। रविहि न दोष देव दिसि भूले ॥
मोर अभाग मात कुटिलाई। विधि गति विषम काल कठिनाई ॥
पाउँ रोपि सब मिलि मोहि घाला। प्रनत पाल पन आपन पाला ॥
यह नइ रीति न राउरि होई। लोकहु वेद विदित नहिं गोई ॥
जग अनभल भल एक गोसाँई। कहिय होइ भल कासु भलाई ॥
देव देव तरु सरिस सुभाऊ। सन्मुख विमुख न काहुहि काऊ ॥

दोहा—जानि निकट पहिचान तरु, छाँह शमनि सब सोच।
मॉँगत अभिमत पाव जग, राउ रंकु भल पोच ॥२६८॥

लखि सब बिधि गुरु स्वामि सनेहू। मिटेउ छोभ नहिं मन संदेहू ॥
अब करुणा कर कीजिय सोई। जन हित प्रभु चित छोभ न होई ॥
जो सेवक साहिबहिं सँकोची। निज हित चहै तासु मति पोची ॥
सेवक हित साहिब सेवकाई। करै सकल सुख लोभ बिहाई ॥
स्वारथ नाथ फिरे सबही का। किये रजाइ कोटि विधि नीका ॥
यह स्वारथ परमारथ सारू। सकल सुकृति फल सुगति सिंगारू ॥
देव एक बिनती सुनि मोरी। उचित होय तस करब बहोरी ॥
तिलक समाज साज सब आना। करिय सुफल प्रभु जो मनमाना ॥

दोहा—सानुज पठइय मोहिं बन, कीजिय सबहिं सनाथ।
न तरु फेरियहि बंधु दोउ, नाथ चलउँ मैं साथ ॥२६९॥

नतरु जाहिं बन तीनिउ भाई। बहुरिय सीय सहित रघुराई ॥
जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई। करुणा सागर कीजिय सोई ॥
देव दीन्ह सब मोहि सिर भारू। मोरे नीति न धरम बिचारू ॥
कहउँ बचन सब स्वारथ हेतू। रहत न आरत के चित चेतू ॥
उतर देई सुनि स्वामि रजाई। सो सेवक लखि लाज लजाई ॥
अस मैं अवगुण उदधि अगाधू। स्वामि सनेह सराहत साधू ॥
अब कृपाल मुहि सो मत भावा। सकुच स्वामि मन जाइ न पावा ॥
प्रभुपद सपथ कहेउँ सतिभाऊ। जग मङ्गल हित एक उपाऊ ॥

दोहा—प्रभु प्रसन्न मन सकुच तजि, जो जेहि आयसु देव।
सो सिर धरि धरि करिहि सब, मिटिहि अनट अवरेव ॥२७०॥

भरत बचन सुनि सुनि सुर हरषे। साधु सराहि सुमन सुर बरषे ॥
असमञ्जस बस अवध निवासी। प्रमुदित मन तापस बन बासी ॥
चुपहि रहे रघुनाथ सँकोची। प्रभुगति देख सभा सब सोची ॥
जनक दूत तेहि अवसर आये। मुनि वशिष्ठ सुनि बेगि बोलाये ॥
करि प्रनाम तिन्ह राम निहारे। बेष देखि भये निपट दुखारे ॥

दूतन्ह मुनिवर बूझी बाता। कहहु बिदेह भूप कुसलाता॥
सुनि सकुचाइ नाइ महि माथा। बोले चरबर जोरे हाथा॥
बूझब राउर सादर सांई। कुसल हेत सो भयउ गोसांई॥

दोहा—नाहिंत कोसल नाथ के, साथ कुसल गइ नाथ।
मिथिला अवध विसेषतें, जग सब भयउ अनाथ॥२७१॥

कोसल पति गति सुनि जन कोरा। भे सब लोक सोक नस बौरा॥
जेहि देखे तेहि समय बिदेहू। नाम सत्य अस लाग न केहू॥
रानि कुचाल सुनत नर पालहिं। सूझन कछु जस मनि बिनु व्यालहिं॥
भरत राज रघुबर वन बासू। भा मिथिलेशहिं हृदय हरासू॥
नृप बूझे बुध सचिव समाजू। कहहु बिचारि उचित का आजू॥
समुझि अवध अस मअस दोऊ। चलिय कि रहिय न कह कछु कोऊ॥
नृपहिं धीर धरि हृदय बिचारी। पठये अवध चतुर चर चारी॥
बूझि भरत सति भाउ कुभाऊ। आयहु वेगि न होइ लखाऊ॥

दोहा—गये अवध चर भरत गति, बूझि देखि करतूत।
चले चित्रकूटहिं भरत, चार चले तिरहूत॥२७२॥

दूतन्ह आइ भरत की करनी। जनक समाज जथामति बरनी॥
सुनि गुरु पुरुजन सचिव महीपति। भे सब सोच सनेह बिकल अति॥
धरि धीरज करि भरत बड़ाई। लिये सुभट साहनी बोलाई॥
दुघरी साधि चले ततकाला। किय विश्राम न मग महिपाला॥
भोरहिं आजु नहाइ प्रयागा। चले जमुन उतरन सब लागा॥
खबरि लेन हम पठये नाथा। तिन्ह कहि अस महि नायउ माथा॥
साथ किरात छसातक दीन्हें। मुनिवर तुरत बिदा चर कीन्हें॥

दोहा—सुनत जनक आगमन सब, हरषेउ अवध समाज।
रघुनन्दनहिं सँकोच बड़, सोच बिबस सुरराज॥२७३॥

गरइ गलानि कुटिल कैकेई। काहि कहइ केहि दूषन देई॥
अस मन आनि मुदित नरनारी। भयउ बहोरि रहव दिन चारी॥
एहि प्रकार गत बासर सोऊ। प्रात नहान लाग सब कोऊ॥
करि मज्जन पूजहिं नरनारी। गणपति गौरि पुरारि तमारी॥
रमा रमन पद बंदि बहोरी। बिनवहिं अंजलि अंजल जोरी॥
राजा राम जानकी रानी। आनँद अवधि अवध रजधानी॥
सुबस बसेउ फिरि सहित समाजा। भरतहिं राम करहु युवराजा॥
एहि सुख सुधा सींच सब काहू। देव देहु जग जीवन लाहू॥

दोहा—गुरु समाज भाइन्ह सहित, राम राज पुर होउ।
अछत राम राजा अवध, मरिय माँग सब कोउ॥२७४॥

सुनि सनेह मय पुरजन बानी। निंदहिं जोग बिरति मुनि ज्ञानी ॥
एहि बिधि नित्य करम करि पुरजन। रामहिं करहिं प्रनाम पुलकि तन ॥
ऊंच नीच मध्यम नर नारी। लहहिं दरस निज निज अनुसारी ॥
सावधान सबहीं सनमानहिं। सकल सराहत कृपानिधानहिं ॥
लरिकाइहि ते रघुबर बानी। पालत नीति प्रीति पहिचानी ॥
सील सँकोच सिंधु रघुराऊ। सुमुख सुलोचन सरल सुभाऊ ॥
कहत राम गुन गन अनुरागे। सब निज भाग सराहन लागे ॥
हम सब पुण्य पुंज जग थोरे। जिन्हहिं राम जानत करि मोरे ॥

दोहा—प्रेम मगन तेहि समय सब, सुनि आवत मिथिलेस।
सहित सभा संभ्रम उठेउ, रवि कुल कमल दिनेस ॥२७५॥

भाइ सचिव गुरु पुरुजन साथा। आगे गमन कीन्ह रघुनाथा ॥
गिरिवरु दीख जनक पति जबही। करि प्रणाम रथ त्यागेउ तबही ॥
राम दरस लालसा उछाहू। पथश्रम लेश कलेश न काहू ॥
मन तहँ जँह रघुबर बैदेही। बिन मन तन दुख सुख सुधि केही ॥
आवत जनक चले यहि भाँती। सहित समाज प्रेम मति माती ॥
आये निकट देख अनुरागे। सादर मिलन परस्पर लागे ॥
लगे जनक मुनि जन पद बन्दन। रिषिन्ह प्रणाम कीन्ह रघुनन्दन ॥
भाई सहित राम मिल राजहिं। चले लेवाई समेत समाजहिं ॥

दोहा—आश्रम सागर सांत रस, पूरन पावन पाथ।
सेन मनहु करुणासरित, लिये जात रघुनाथ ॥२७६॥

बोरति ज्ञान बिराग करारे। बचन ससोक मिलत नद नारे ॥
सोच उसास समीरतरङ्गा। धीरज तट तटवर कर अङ्गा ॥
विषम विषाद तोरावति धारा। भय भ्रम भवर अवर्त अपारा ॥
केवट वुध विद्या बड़ि नावा। सकहिं न खेइ ऐक नहिं पावा ॥
बनचर कोल किरात बिचारे। थके बिलोकि पथिक हिय हारे ॥
आश्रम उदधि मिली जब जाई। मनहुँ उठेउ अंबुधि अकुलाई ॥
सोक बिकल दोउ राज समाजा। रहा न ज्ञान न धीरज लाजा ॥
भूप रूप गुण सील सराही। रोवहिं शोक सिंधु अवगाही ॥

छंद—अवगाहि शोक समुद्र सोचहिं नारिनर व्याकुल महा।
दै दोष सकल सरोष बोलहिं बाम बिधि कीन्हों कहा ॥
सुर सिद्ध तापस जोगि जन मुनि देखि दसा बिदेह की।
तुलसी न समरथ कोउ जो तरि सकइ सरित सनेह की ॥

सो०—किये अमित उपदेश, जहँ तहँ लोगन मुनि वरन।
धीरज धरिय नरेश, कहेउ वसिष्ठ बिदेह सन ॥२७७॥

जासु ज्ञान रबि भव निसि नासा । बचन किरन मुनि कमल बिकासा ॥
तेहि कि मोह ममता नियराई । यह सिय राम सनेह बड़ाई ॥
विषयी साधक सिद्ध सयाने । त्रिविध जीव जग बेद बखाने ॥
राम सनेह सरस मन जासू । साधु सभा बड़ आदर तासू ॥
सोह न राम प्रेम बिनु ज्ञानू । करत धार बिनु जिमि जल जानू ॥
मुनि बहु बिधि बिदेह समुझाये । रामघाट सब लोग नहाये ॥
सकल सोक संकुल नरनारी । सो बासर बीतेउ बिनु बारी ॥
पशु खग मृगन न कीन्ह अहारू । प्रिय परिजन कर कवन बिचारू ॥

दोहा—दोउ समाज निमिराज रघु, राजु नहाने प्रात ।
बैठे सब बट बिटप तर, मन मलीन कृसगात ॥२७८॥

जे महिसुर दसरथ पुर बासी । जे मिथिलापति नगर निवासी ॥
हंस वंश गुरु जनक पुरोधा । जिन जग मग परमारथ सोधा ॥
लगे कहन उपदेश अनेका । सहित धरम नय बिरति बिबेका ॥
कौसिक कहि कहि कथा पुरानी । समुझाई सब सभा सुबानी ॥
तब रघुनाथ कौसिकहिं कहेऊ । नाथ कालि जल बिनु सब रहेऊ ॥
मुनि कह उचित कहत रघुराई । गयउ बीति दिन पहर अढ़ाई ॥
रिषि रुख लखि कह तिरहुत राजू । इहाँ उचित नहिं असन अनाजू ॥
कहा भूप भल सबहिं सोहाना । पाइ रजायसु चले नहाना ॥

दोहा—तेहि अवसर फल फूल दल, मूल अनेक प्रकार ।
लेइ आये बनचर बिपुल, भरि भरि काँवरि भार ॥२७९॥

कामद भो गिरि राम प्रसादा । अवलोकत अपहरत बिषादा ॥
सर सरिता बन भूमि बिभागा । जनु उमगत आनद अनुरागा ॥
बेलि बिपट सब सफल सफूला । बोलत खग मृग अलि अनुकूला ॥
तेहि अवसर बन अधिक उछाहू । त्रिविध समीर सुखद सब काहू ॥
जाइ न बरनि मनोहरताई । जनु महि करति जनक पहुनाई ॥
तब सब लोग नहाइ नहाई । राम जनक मुनि आयसु पाई ॥
देखि देखि तरुवर अनुरागे । जहँ तहँ पुरजन उतरन लागे ॥
दल फल मूल कन्द बिधि नाना । पावन सुन्दर सुधा समाना ॥

दोहा—सादर सब कहँ राम गुरु, पठये भरि भरि भार ।
पूजि पितर सुर अथिति गुरु, लगे करन फलहार ॥२८०॥

एहि बिधि बासर बीते चारी । राम निरखि नर नारि सुखारी ॥
दुहुँ समाज असि रुचि मनमाहीं । बिनु सियराम फिरब भल नाहीं ॥
सीता राम संग बनबासू । कोटि अमरपुर सरिस सुपासू ॥
परिहरि लषन राम बैदेही । जेहि घर भाव बाम बिधि तेही ॥
दाहिन दैव होइ जब सबहीं । राम समीप बसिय बन तबहीं ॥

मंदाकिनि मज्जन तिहुँ काला। राम दरस मुद मंगल माला ॥
आन राम गिरि बन तापस थल। असन अमिय सम कंद मूल फल ॥
सुख समेत संबत दुइ साता। पल सम होहिं न जनियहिं जाता ॥

दोहा—एहि सुख जोग न लोग सब, कहहिं कहाँ अस भाग।
सहज सुभाय समाज दुहुँ, राम चरन अनुराग ॥२८१॥

एहि बिधि सकल मनोरथ करहीं। बचन सप्रेम सुनत मन हरहीं ॥
सीय मातु तेहि समय पठाई। दासी देखि सुअवसरु आई ॥
सावकास सुनि सब सिय सासू। आयउ जनक राज रनिवासू ॥
कौसल्या सादर सनमानी। आसन दिये समय सन आनी ॥
सीलु सनेहु सकल दुहुँ ओरा। द्रवहिं देखि सुनि कुलिस कठोरा ॥
पुलक सिथिल तनु बारि बिलोचन। महि नख लिखन लगीं सब सोचन॥
सब सिय राम प्रीति की मूरति। जनु करुना बहु बेष बिसूरति ॥
सीय मातु कह बिधि बुधि बाँकी। जो पयफेनु फोर पबि टाँकी ॥

दोहा—सुनिय सुधा देखिय गरल, सब करतूत कराल।
जहँ तहँ काक उलूक बक, मानस सकृत मराल ॥२८२॥

सुनि ससोच कह देवि सुमित्रा। बिधि गति अति बिपरीत बिचित्रा॥
जो सृजि पालइ हरइ बहोरी। बाल केलि सम बिधि मति भोरी ॥
कौसल्या कह दोसु न काहू। करम बिबस दुख सुख छति लाहू ॥
कठिन करम गति जान बिधाता। जो शुभ अशुभ सकल फलदाता ॥
ईस रजाइ सीस सबही के। उतपति थिति लय बिषहु अमी के ॥
भूपति जियब मरब उर आनी। सोचिय सखि लखि निज हित हानी॥
सीय मातु कह सत्य सुबानी। सुकृती अवधि अवध पति रानी ॥

दोहा—लखन राम सिय जाहु बन, भल परिनाम न पोचु।
गह बरि हिय कह कौसिला, मोहि भरत कर सोचु ॥२८३॥

ईस प्रसाद असीस तुम्हारी। सुत सुत बधू देव सरिबारी ॥
राम सपथ मैं कीन्ह न काऊ। सो करि कहउँ सखी सति भाऊ ॥
भरत सील गुन बिनय बड़ाई। भायप भगति भरोस भलाई ॥
कहत सारदहु कर मति हीचे। सागर सीप कि जाहिं उलीचे ॥
जानउँ सदा भरत कुलदीपा। बार बार मोहि कहेउ महीपा ॥
कसे कनक मनि पारिखि पाये। पुरुष परिखियहि समय सुभाये ॥
अनुचित आजु कहब अस मोरा। सोक सनेह सयानप थोरा ॥
सुनि सुर सरि सम पावनि बानी। भई सनेह बिकल सब रानी ॥

दोहा—कौसिल्या कह धीर धरि, सुनहु देवि मिथिलेसि।
को बिबेक निधि बल्लभहि, तुम्हहिं सकै उपदेसि ॥२८४॥

रानि राय सन अवसरु पाई। अपनी भाँति कहब समुझाई ॥
रखियहिं लषन भरत गवनहिं बन। जौं यह मत मानइ महीपमन ॥
तौ भल जतनु करब सुबिचारी। मोरे सोच भरत कर भारी ॥
गूढ़ सनेह भरत मन माहीं। रहे नीक मोहि लागत नाहीं ॥
लखि सुभाउ सुनि सकल सुबानी। सब भइँ मगन करुन रस रानी ॥
नभ प्रसून झरि धन्य धन्य धुनि। सिथिल सनेह सिद्ध जोगी मुनि ॥
सब रनिवास बिथकि लखि रहेऊ। तब धरि धीर सुमित्रा कहेऊ ॥
देवि दण्ड जुग जामिनि बीती। राम मातु सुनि उठी सप्रीती ॥

दोहा—बेगि पाय धारिय थलहिं, कह सनेह सतिभाय।
हमरे तौ अब ईस गति, कै मिथिलेसु सहाय ॥२८५॥

लखि सनेह सुनि बचन बिनीता। जनकप्रिया गहि पाय पुनीता ॥
देवि उचित अस बिनय तुम्हारी। दसरथ घरनि राम महतारी ॥
प्रभु अपने नीचहु आदरहीं। अगिनि धूम लिरि सिर तृन धरहीं ॥
सेवकु राउ करम मन बानी। सदा सहाय महेस भवानी ॥
रउरे अङ्ग जोग जग को है। दीप सहाय कि दिनकर सोहै ॥
राम जाइ बन करि सुरकाजू। अचल अवधपुर करिहहिं राजू ॥
अमर नाग नर राम बाहु बल। सुख बसिहहिं अपने अपने थल ॥
यह सब जागबलिक कहि राखा। देबि न होइ मुधा मुनि भाखा ॥

दोहा—अस कहि पग परि प्रेम अति, सियहित बिनय सुनाइ।
सिय समेत सियमातु तब, चली सुआयसु पाइ ॥२८६॥

प्रिय परि जनहिं मिली बैदेही। जो जेहि जोगु भाँति तेहि तेही ॥
तापसबेष जानकी देखी। भा सब बिकल बिषाद बिसेखी ॥
जनक राम गुरु आयसु पाई। चले थलहिं सिय देखी आई ॥
लीन्हि लाइ उर जनक जानकी। पाहुनि पावन प्रेम प्राण की ॥
उर उमगेउ अंबुधि अनुरागू। भयउ भूपमन मनहु प्रयागू ॥
सिय सनेह बट बाढ़त जोहा। तापर राम प्रेम सिसु सोहा ॥
चिरजीवी मुनि ज्ञान बिकल जनु। बूडत लहेउ बाल अवलंबनु ॥
मोह मगनमति नहिं बिदेह की। महिमा सिय रघुबर सनेह की ॥

दोहा—सिय पितु मातु सनेह बस, बिकल न सकी सँभारि।
धरनि सुता धीरज धरेउ, समय सुधरमु बिचारि ॥२८७॥

तापसबेष जनक सिय देखी। भयउ प्रेम परितोष बिसेषी ॥
पुत्रि पवित्र किये कुल दोऊ। सुजस धवल जग कह सब कोऊ ॥
जिति सुरसरि की रतिसरि तोरी। गबन कीन्ह बिधि अंड करोरी ॥
गंग अवनिथल तीनि बडेरे। एहि किय साधु समाज घनेरे ॥
पितु कह सत्य सनेह सुबानी। सीय सकुचि महि मनहुँ समानी ॥

पुनि पितु मातु लीन्ह उरलाई। सिख आसिष हित दीन्हि सुहाई॥
कहति न सीय सकुचि मनमाहीं। इहाँ बसब रजनी भल नाहीं॥
लखि रुख रानि जनायेउ राऊ। हृदय सराहत सीलु सुभाऊ॥

दोहा—बारबार मिलि भेंटि सिय, बिदा कीन्हि सनमानि।
कही समय सिर भरत गति, रानि सुबानि सयानि॥२८८॥

सुनि भूपाल भरत व्यवहारू। सोन सुगंध सुधा ससिसारू॥
मूँदे सजल नयन पुलके तन। सुजस सराहन लगे मुदित मन॥
सावधान सुनु सुमुखि सुलोचनि। भरत कथा भव बंध विमोचनि॥
धरम राजनय ब्रह्म विचारू। इहाँ जथामति मोर प्रचारू॥
सो मति मोरि भरत महिमाहीं। कहै काह छलि छुअति न छाहीं॥
बिधि गनपति अहिपति सिव सारद। कवि कोविद बुध बुद्धिविसारद॥
भरत चरित कीरति करतूती। धरम सील गुन विमल विभूती॥
समझत सुनत सुखद सबकाहू। सुचि सुरसरि रुचि निदर सुधाहू॥

दोहा—निरबधि गुन निरुपम पुरुष, भरत भरतसम जानि।
कहिय सुमेरु कि सेर सम, कबि कुल मति सकुचानि॥२८९॥

अगम सबहिं बरनत बर बरनी। जिमि जलहीन मीन गमु धरनी॥
भरत अमित महिमा सुनु रानी। जानहिं राम न सकहिं बखानी॥
बरनि सप्रेम भरत अनुभाऊ। तिय जिय की रुचि लखि कहराऊ॥
बहुरहिं लषन भरत बन जाहीं। सब कर भल सबके मनमाहीं॥
देबि परंतु भरत रघुबर की। प्रीति प्रतीति जाइ नहिं तरकी॥
भरत अवधि सनेह ममता की। जदपि रामु सींव समता की॥
साधन सिद्धि राम पग नेहू। मोहि लखि परत भरत मत एहू॥
परमारथ स्वारथ सुख सारे। भरत न सपनेहुँ मनहुँ निहारे॥

दोहा—भोरेहुँ भरत न पेलिहहिं, मन सहुँ राम रजाइ।
करिय न सोचु सनेह बस, कहेउ भूप बिलखाइ॥२९०॥

राम भरत गुन गनंत सप्रीती। निसि दम्पतिहिं पलक सम बीती॥
राज समाज प्रात जुग जागे। न्हाइ न्हाइ सुर पूजन लागे॥
गे नहाइ गुरु पहिं रघुराई। बंदि चरन बोले रुख पाई॥
नाथ भरत पुरजन महतारी। सोक विकल बनवास दुखारी॥
सहित समाज राउ मिथिलेसू। बहुत दिवस भये सहत कलेसू॥
उचित होइ सोइ कीजिय नाथा। हित सबही कर रउरे हाथा॥
अस कहि अति सकुचे रघुराऊ। मुनि पुलके लखि सील सुभाऊ॥
तुम्ह बिनु राम सकल सुख साजा। नरक सरिस दुहुँ राज समाजा॥

दोहा—प्रान प्रान के जीव के, जिव सुख के सुख राम।
तुम्ह तजि तात सुहात गृह, जिन्हहिं तिन्हहिं बिधिवाम॥२९१॥

सो सुख धरम करम जरि-जाऊ। जहँ न रामपद पङ्कज भाऊ॥
जोग कुजोग ज्ञान अज्ञानू। जहँ नहिं राम प्रेम परधानू॥
तुम्ह बिनु दुखी सुखी तुम्ह तेही। तुम्ह जानहु जिय जो जेहि केही॥
राउर आयसु सिर सबही के। बिदित कृपालहिं गति सब नीके॥
आपु आश्रमहिं धारिय पाऊ। भयउ सनेह सिथिल मुनि राऊ॥
करि प्रनाम तब राम सिधाये। रिषि धरि धीर जनक पहिं आये॥
राम बचन गुरु नृपहिं सुनाये। सील सनेह सुभाय सुहाये॥
महाराज अब कीजिय सोई। सब कर धरम सहित हित होई॥

दोहा—ज्ञान निधान सुजान सुचि, धरम धीर नरपाल।
तुम्ह बिनु असमञ्जस समन, को समरथ एहि काल॥२९२॥

सुनि मुनि बचन जनक अनुरागे। लखि गति ज्ञान बिराग बिरागे॥
सिथिल सनेह गुनत मनमाहीं। आये इहाँ कीन्हि भलि नाहीं॥
रामहिं राय कहेउ बन जाना। कीन्ह आपु प्रिय प्रेम प्रवाना॥
हम अब बन तें बनहिं पठाई। प्रमुदित फिरब बिबेक बढ़ाई॥
तापस मुनि महिसुर सुनि देखी। भये प्रेमबस बिकल बिसेखी॥
समउ समुझि धरि धीरज राजा। चले भरत पहिं सहित समाजा॥
भरत आइ आगे भइ लीन्हे। अब सर सरिस सुआसन दीन्हे॥
तात भरत कह तिरहुति राऊ। तुम्हहिं बिदित रघुबीर सुभाऊ॥

दोहा—राम सत्यब्रत धरम रत, सब कर सील सनेहु।
सङ्कट सहत सङ्कोचवस, कहिय जो आयसु देहु॥२९३॥

सुनि तन पुलकि नयन भरि बारी। बोले भरत धीर धरि भारी॥
प्रभु प्रिय पूज्य पिता सम आपू। कुल-गुरु-समहित माय न बापू॥
कौसिकादि मुनि सचिव समाजू। ज्ञान-अंबु-निधि आपुन आजू॥
सिसु सेवक आयसु अनुगामी। जानि मोहि सिख देइय स्वामी॥
एहि समाज थल बूझब राउर। मन मलीन मैं बोलत बाउर॥
छोटे बदन कहउँ बड़ि बाता। छमब तात लखि बाम बिधाता॥
आगम निगम प्रसिद्ध पुराना। सेवा धरम कठिन जग जाना॥
स्वामि धरम स्वारथहिं बिरोधू। बधिर अंध प्रेमहि न प्रबोधू॥

दोहा—राखि राम रुख धरम ब्रत, पराधीन मोहि जानि।
सब के संमत सर्बहित, करिय प्रेम पहिचानि॥२९४॥

भरत बचन सुनि देखि सुभाऊ। सहित समाज सराहत राऊ॥
सुगम अगम मृदु मंजु कठोरे। अरथ अमित अति आखर थोरे॥
ज्यों मुख मुकुर मुकुर निज पानी। गहि न जाय अस अदभुत बानी॥
भूप भरत मुनि साधु समाजू। गे जहँ बिबुध-कुमुद-द्विज-राजू॥
सुनि सुधि सोच बिकल सब लोगा। मनहु मीन गन नवजल जोगा॥

देव प्रथम कुल-गुरु-गति-देखी। निरखि विदेह सनेह विसेखी॥
राम-भगति-मय भरत निहारे। सुर स्वारथी हहरि हिय हारे॥
सब कोउ राम प्रेम मय पेखा। भये अलेख सोचवस लेखा॥

दोहा—राम सनेह-सकोच-वस, कह ससोच सुरराज।
रचहु प्रपंचहि पंच मिलि, नाहित भयउ अकाज॥२९५॥

सुरन्ह सुमिरि सारदा सराही। देवि देव सरनागत पाही॥
फेरि भरत मति करि निज माया। पालु विबुधु कुल करि छल छाया॥
विबुधि विनय सुनि देवि सयानी। बोली सुर स्वारथ जड़ जानी॥
मो सन कहहु भरत मति फेरू। लोचन सहस न सूझ सुमेरू॥
बिधि-हरि-हर माया बड़ि भारी। सोउ न भरत मत सकै निहारी॥
सो मति मोहि कहत करु भोरी। चाँदिनि कर कि चंद की चोरी॥
भरत हृदय सिय-राम-निवासू। तहँ कि तिमिर जहँ तरनि प्रकासू॥
अस कहि सारद गइ विधिलोका। बिबुध विकल निसि मानहुँ कोका॥

दोहा—सुर स्वारथी मलीन मन, कीन्ह कुमंत्र कुठाटु।
रचि प्रपंचु माया प्रबल, भय भ्रम अरति उचाटु॥२९६॥

करि कुचालि सोचत सुरराजू। भरत हाथ सब काज अकाजू॥
गये जनक रघुनाथ समीपा। सनमाने सब रवि-कुल-दीपा॥
समय समाज धरम अविरोधा। बोले तव रघुवंस-पुरोधा॥
जनक भरत संबाद सुनाई। भरत कहा उति कही सुहाई॥
तात राम जस आयसु देहू। सो सब करे मोर मत एहू॥
सुनि रघुनाथ जोरि जुगपानी। बोले सत्य सरल मृदुबानी॥
विद्मान आपुन मिथिलेसू। मोर कहब सब भाँति भदेसू॥
राउर राय रजायसु होई। राउरि सपथ सही सिर सोई॥

दोहा—राम सपथ सुनि मुनि जनक, सकुचे सभा समेत।
सकल बिलोकत भरत मुख, बनै न उत्तर देत॥२९७॥

सभा सकुच बस भरत निहारी। राम बंधु धरि धीरज भारी॥
कुसमय देखि सनेह सँभारा। बढ़त बिन्ध्य जिमि घटज निवारा॥
सोक कनक लोचन मति छोनी। हरी विमल गुन-गन-जग जोनी॥
भरत विवेक बराह विसाला। अनायास उघरे तेहि काला॥
करि प्रनाम सब कहँ कर जोरे। राम राउ गुरु साधु निहोरे॥
छमब आजु अति अनुचित मोरा। कहउँ बदन मृदु वचन कठोरा॥
हिय सुमिरी सारदा सुहाई। मानस तें मुख पंकज आई॥
विमल विवेक धरम नय साली। भरत भारती मंजु मराली॥

दोहा—निरखि विवेक विलोचनन्हि, सिथिल सनेह समाज।
करि प्रनाम बोले भरत, सुमिरि सीय रघुराज॥२९८॥

प्रभु पितु मातु सुहृद गुरु स्वामी। पूज्य परम हित अंतर जामी॥
सरल सुसाहिब सील निधानू। प्रनतपाल सर्वज्ञ सुजानू॥
समरथ सरनागत हितकारी। गुन गाहकु अव-गुन-अघहारी॥
स्वामि गोसाइँहिं सरिस गोसाँई। मोहि समान मैं साइँ दोहाई॥
प्रभु-पितु-बचन मोह बस पेली। आयेउँ इहाँ समाजु सकेली॥
जग भल पोच ऊँच अरु नीचू। अमिय अमरपद माहुर मीचू॥
राम रजाइ मेट मन माहीं। देखा सुना कतहुँ कोउ नाहीं॥
सो मैं सब बिधि कीन्ह ढिठाई। प्रभु मानी सनेह सेवकाई॥

दोहा—कृपा भलाई आपनी, नाथ कीन्ह भल मोर।
दूषन भे भूषन सरिस, सुजस चारु चहुँओर॥२९९॥

राउर रीति सुबानि बड़ाई। जगत बिदित निगमागम गाई॥
कूर कुटिल खल कुमति कलंकी। नीच निसील निरीस निसंकी॥
तेउ सुनि सरन सामुहे आये। सुकृत प्रनाम किये अपनाये॥
देखि दोष कबहुँ न उर आने। सुनि गुन साधु समाज बखाने॥
को साहिब सेवकहि नेवाजी। आपु समान साज सब साजी॥
निज करतूति न समुझिय सपने। सेवक सकुच सोच उर अपने॥
सो गोसाइँ नहिं दूसर कोपी। भुजा उठाइ कहौं पन रोपी॥
पसु नाचत सुक पाठ प्रवीना। गुन गति नट पाठक आधीना॥

दोहा—यौं सुधारि सनमानि जन, किये साधु सिर मोर।
को कृपाल बिनु पालिहैं, बिरदावलि बरजोर॥३००॥

सोक सनेह कि बाल सुभाये। आयउँ लाइ रजायसु बाये॥
तबहुँ कृपालु हेरि निज ओरा। सबहिं भाँति भल मानेउ मोरा॥
देखेउँ पाय सु-मंगल मूला। जानेउँ स्वामि सहज अनुकूला॥
बड़े समाज बिलोकेउँ भागू। बड़ी चूक साहिब अनुरागू॥
कृपा अनुग्रह अंग अघाई। कीन्ह कृपानिधि सब अधिकाई॥
राखा मोर दुलार गोसाँई। अपने सील सुभाय भलाई॥
नाथ निपट मैं कीन्हि ढिठाई। स्वामि समाज सकोच बिहाई॥
अबिनय बिनय जथा रुचि बानी। छमहिं देव अति आरति जानी॥

दोहा—सुहृद सुजान सुसाहिबहि, बहुत कहब बड़ि खोरि।
आयसु देइय देव अब, सबै सुधारिय मोरि॥३०१॥

प्रभु-पद-पदुम-पराग दोहाई। सत्य सुकृत सुख सीव सुहाई॥
सो करि कहउँ हिये अपने की। रुचि जागत सोवत सपने की॥
सहज सनेह स्वामि सेवकाई। स्वारथ छल फल चारि बिहाई॥
आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा। सो प्रसाद जनु पावइ देवा॥
अस कहि प्रेम बिबस भये भारी। पुलक सरीर बिलोचन बारी॥

प्रभु-पद-कमल गहे अकुलाई। समउ सनेह न सो कहि जाई॥
कृपासिंध सनमानि सुबानी। बैठाये समीप गहि पांनी॥
भरत बिनय सुनि देखि सुभाऊ। सिथिल सनेह सभा रघुराऊ॥

छन्द—रघुराउ सिथिल सनेह साधु समाजु मुनि मिथिलाधनी।
मन महँ सराहत भरत भायप भगति की महिमा बनी॥
भरतहिं प्रसंसत बिबुध बरषत सुमन मानस मलिन से।
तुलसी बिकल सब लोग सुनि सकुचे निसागम नलिन से॥

सो०—देखि दुखारी दीन, दुहुँ समाज नर नारि सब।
मघवा महा मलीन, मुये मारि मङ्गल चहत॥३०२॥

कपट-कु-चालि सीवँ सुरराजू। पर-अकाज-प्रिय आपन काजू॥
काक समान पाक-रिपु-रीती। छली मलीन कतहुँ न प्रतीती॥
प्रथम कुमत करि कपटु सँकेला। सो उचाट सबके सिर मेला॥
सुरमाया सब लोग बिमोहे। राम प्रेम अतिसय न बिछोहे॥
भये उचाट बस थिर मन नाहीं। छन बन रुचि छन सदन सुहाहीं॥
दुबिध मनोगति प्रजा दुखारी। सरित सिंधु सङ्गम जनु बारी॥
दुचित कतहुँ परितोषु न लहहीं। एक एक सन मरम न कहहीं॥
लखि हिय हँसि कह कृपा निधानू। सरिस स्वान मघवान जुबानू॥

दोहा—भरत जनक मुनि जन सचिव, साधु सचेत बिहाइ।
लागि देव माया सबहिं, जथाजोग जन पाइ॥३०३॥

कृपासिंधु लखि लोग दुखारे। निज सनेह सुर-पति-छल भारे॥
सभा राउ गुरु महिसुर मन्त्री। भरत भगति सब कै मति जन्त्री॥
रामहिं चितवत चित्र लिखे से। सकुचत बोलत बचन सिखे से॥
भरत-प्रीति-नति-बिनय-बड़ाई। सुनत सुखद बरनत कठिनाई॥
जासु बिलोकि भगति लवलेसू। प्रेम मगन मुनिगन मिथिलेसू॥
महिमा तासु कहइ किमि तुलसी। भगति सुभाय सुमति हिय हुलसी॥
आपु छोटि महिमा बड़ि जानी। कबि कुल कानि मानि सकुचानी॥
कहि न सकति गुन रुचि अधिकाई। मतिगति बालबचन की नाई॥

दोहा—भरत-बिमल-जस बिमल बिधु, सुमति चकोर कुमारि।
उदित बिमल जन हृदय नभ, एक टक रही निहारि॥३०४॥

भरत सुभाउ न सुगम निगमहूँ। लघु मति चापलता कवि छमहूँ॥
कहत सुनत सति भाउ भरत को। सीय-राम-पद होइ न रत को॥
सुमिरत भरतहिं प्रेम राम को। जेहि न सुलभ तेहि सरिस बामको॥
देखि दयाल दसा सब ही की। राम सुजान जानि जन जी की॥
धरम धुरीन धीर नय नागर। सत्य सनेह सील सुख सागर॥
देस काल लखि समउ समाजू। नीति-प्रीति पालक रघुराजू॥

बोले बचन बानि सरबस से। हित परिनाम सुनत ससि रस से॥
तात भरत तुम्ह धरम धुरीना। लोक बेद बिद प्रेम प्रबीना॥

दोहा—करम बचन मानस बिमल, तुम्ह समान तुम्ह तात।
गुरु समाज लघु-बंधु-गुन, कुसमय कहि किमि जात॥३०५॥

जानहु तात तरनि-कुल-रीती। सत्य संध पितु कीरति प्रीती॥
समउ समाज लाज गुरु जन की। उदासीन हित अनहित मन की॥
तुम्हहिं बिदित सबही कर करमू। आपन मोर परम हित धरमू॥
मोहि सब भाँति भरोस तुम्हारा। तदपि कहउँ अवसर अनुसारा॥
तात तात बिनु बात हमारी। केवल गुरु-कुल कृपा सँभारी॥
न तरु प्रजा पुर बन परिवारू। हमहिं सहित सब होत खुआरू॥
जौं बिनु अवसर अथव दिनेसू। जग केहि कहहु न होइ कलेसू॥
तस उतपात तात बिधि कीन्हा। मुनि मिथिलेस राखि सब लीन्हा॥

दोहा—राज काज सब लाज पति, धरम धरनि धन धाम।
गुरु प्रभाउ पालहिं सबहिं, भल होइहि परिनाम॥३०६॥

सहित समाज तुम्हार हमारा। घर बन गुरु प्रसाद रखवारा॥
मातु-पिता-गुरु स्वामि निदेसू। सकल धरम धरनी धरु सेसू॥
सो तुम्ह करहु करावहु मोहू। तात तरनि-कुल-पावक होहू॥
साधक एक सकल सिधि देनी। कीरति सुगति भूति मय बेनी॥
सो बिचारि सहि संकट भारी। करहु प्रजा परिवार सुखारी॥
बाढ़ी बिपति सबही मोहि भाई। तुम्हहिं अवधि भरि बड़ि कठिनाई॥
जानु तुम्हहिं मृदु कहहुँ कठोरा। कुसमय तात न अनुचित मोरा॥
होहिं कुठाय सुबंधु सहाये। ओड़ियहि हाथ असनि के घाये॥

दोहा—सेवक कर पद नयन से, मुख सो साहिब होइ।
तुलसी प्रीति कि रीति सुनि, सुकबि सराहहिं सोइ॥३०७॥

सभा सकल सुनि रघुबर बानी। प्रेम-पयोधि अमिय जनु सानी॥
सिथिल समाज सनेह समाधी। देखि दसा चुप सारद साधी॥
भरतहिं भयउ परम संतोषू। सनमुख स्वामि बिमुख दुख दोषू॥
मुख प्रसन्न मन मिटा बिषादू। भा जनु गूँगेहि गिरा प्रसादू॥
कीन्ह सप्रेम प्रनाम बहोरी। बोले पानि पंक रुह जोरी॥
नाथ भयउ सुख साथ गये को। लहेउँ लाहु जग जनम भये को॥
अब कृपाल जस आयसु होई। करउँ सीस धरि सादर सोई॥
सो अवलंब देव मोहिं देई। अवधि पारु पावहिं जेहि सेई॥

दोहा—देव देव अभिषेक हित, गुरु अनुसासन पाइ।
आनेउँ सब तीरथ सलिल, तेहि कहँ काह रजाइ॥३०८॥

एक मनोरथ बड़ मन माहीं । सभय सकोच जात कहि नाहीं ॥
कहहु तात प्रभु आयसु पाई । बोले बानि सनेह सुहाई ॥
चित्रकूट मुनि थल तीरथ बन । खग मृग सरि सर निर्झर गिरिगन ॥
प्रभु-पद-अंकित अवनि बिसेखी । आयसु होइत आवउँ देखी ॥
अवसि अत्रि आयसु सिर धरहू । तात बिगत भय कानन चरहू ॥
मुनि प्रसाद बन मंगल दाता । पावन परम सुहावन भ्राता ॥
रिषि नायक जहँ आयसु देही । राखेउ तीरथ जल थल तेही ॥
सुनि प्रभु वचन भरत सुख पावा । मुनि-पद-कमल मुदित सिर नावा ॥

दोहा—भरत-राम संवाद सुनि, सकल सुमंगल मूल ।
सुर स्वारथी सराहि कुल, बरषत सुर तरु फूल ॥३०९॥

धन्य भरत जय राम गोसाईं । कहत देव हरषत बरिआईं ॥
मुनि मिथिलेस सभा सब काहू । भरत वचन सुनि भयउ उछाहू ॥
भरत-राम-गुन-ग्राम-सनेहू । पुलकि प्रसंसत राउ बिदेहू ॥
सेवक स्वामि सुभाउ सुहावन । नेम प्रेम अति पावन पावन ॥
मति अनुसार सराहन लागे । सचिव सभासद सब अनुरागे ॥
सुनि सुनि राम भरत संबादू । दुहुँ समाज हिय हरषु बिषादू ॥
राम मातु दुखु-सुख-सम जानी । कहि गुन राम प्रबोधीं रानी ॥
एक कहहिं रघुबीर बड़ाई । एक सराहत भरत भलाई ॥

दोहा—अत्रि कहेउ तब भरत सन, सैल समीप सुकूप ।
राखिय तीरथ तोय तहँ, पावन अमिय अनूप ॥३१०॥

भरत अत्रि अनुसासन पाई । जल भाजन सब दिये चलाई ॥
सानुज आपु अत्रि मुनि साधू । सहित गये जहँ कूप अगाधू ॥
पावन पाथ पुन्य थल राखा । प्रमुदित प्रेम अत्रि अस भाखा ॥
तात अनादि सिद्ध थल एहू । लोपेउ काल बिदित नहिं केहू ॥
तब सेवकन्ह सरस थल देखा । कीन्ह सुजल हित कूप बिसेखा ॥
बिधि बस भयउ बिश्व उपकारू । सुगम अगम अति धरम बिचारू ॥
भरत कूप अब कहिहहिं लोगा । अति पावन तीरथ जल जोगा ॥
प्रेम सनेम निमज्जत प्रानी । होइहहिं बिमल करम मन बानी ॥

दोहा—कहत कूप महिमा सकल, गये जहाँ रघुराउ ।
अत्रि सुनायउ रघुबरहिं, तीरथ-पुन्य-प्रभाउ ॥३११॥

कहत धरम इतिहास सप्रीती । भयउ भोर निसि सो सुख बीती ॥
नित्य निबाहि भरत दोउ भाई । राम-अत्रि-गुरु-आयसु पाई ॥
सहित समाज साज सब सादे । चले राम बन अटन पयादे ॥
कोमल चरन चलत बिनु पनहीं । भई मृदु भूमि सकुचि मन मनहीं ॥
कुस कंटक काँकरी कुराई । कटुक कठोर कुवस्तु दुराई ॥

सुनि दारुन दुख दुहूँ समाजा। लगे चलन के साजन साजा॥
प्रभु पद पदुम बंदि दोउ भाई। चले सीस धरि रामरजाई॥
मुनि तापस बन देव निहोरी। सब सनमानि बहोरि बहोरी॥

दोहा—लषनहिँ भेंट प्रनामु करि, सिर धरि सिय पद धूरि।
चले सप्रेम असीस सुनि, सकल सुमंगल मूरि॥३१९॥

सानुज राम नृपहिं सिरनाई। कीन्हि बहुत विधि बिनय बड़ाई॥
देव दया बस बड़ दुख पायेउ। सहित समाज काननहिँ आयेउ॥
पुर पगु धारिय देइ असीसा। कीन्ह धीर धरि गवनु महीसा॥
मुनि महिदेव साधु सनमाने। बिदा किये हरिहर समजाने॥
सासु समीप गये दोउ भाई। फिरे बंदि पग आसिष पाई॥
कौसिक बामदेव जाबाली। परिजन पुरजन सचिव सुचाली॥
जथाजोगु करि बिनय प्रनामा। बिदा किये सब सानुज रामा॥
नारि पुरुष लघु मध्य बडेरे। सब सनमानि कृपानिधि फेरे॥

दोहा—भरत मातु पद बंदि प्रभु, सुचि सनेह मिलि भेंटि।
बिदा कीन्ह सजि पालकी, सकुच सोच सब मेटि॥३२०॥

परिजन मातु पितहिं मिलि सीता। फिरी प्रान प्रिय प्रेम पुनीता॥
करि प्रनाम भेंटी सब सासू। प्रीति कहत कवि हिय न हुलासू॥
सुनि सिख अभिमत आसिष पाई। रही सीय दुहुँ प्रीति समाई॥
रघुपति पटु पालकी मँगाई। करि प्रबोध सब मातु चढ़ाई॥
बार बार हिल मिलि दुहुँ भाई। सम सनेह जननी पहुँचाई॥
साजि बाजि गज बाहन नाना। भूप भरत दल कीन्ह पयाना॥
हृदय राम सिय लखन समेता। चले जाँहि सब लोग अचेता॥
बसह बाजि गज पसु हिय हारे। चले जाँहि परबस मन मारे॥

दोहा—गुरु गुरुतिय पद बंदि प्रभु, सीता लषन समेत।
फिरे हरष बिसमय सहित, आये परननिकेत॥३२१॥

बिदा कीन्ह सनमानि निषादू। चलेउ हृदय बड़ बिरह बिषादू॥
कोल किरात भिल्ल बनचारी। फेरे फिरे जोहारि जोहारी॥
प्रभु सिय लषन बैठि बट छांहीं। प्रिय परिजन बियोग बिलखाहीं॥
भरत सनेह सुभाव सुबानी। प्रिया अनुज सन कहत बखानी॥
प्रीति प्रतीति बचन मन करनी। श्री मुख राम प्रेम बस बरनी॥
तेहि अवसर खग मग जल मीना। चित्रकूट चर अचर मलीना॥
बिबुध बिलोकि दसा रघुबर की। बरषि सुमन कहि गति घर घर की॥
प्रभु पनाम करि दीन्ह भरोसो। चले मुदित मन डरन खरोसो॥

दोहा—सानुज सीय समेत प्रभु, राजत परन कुटीर।
भगति ज्ञान वैराग्य सनु, सोहत धरे सरीर॥३२२॥

मुनि महिसुर गुरु भरत भुआलू। राम बिरह सब साजु बिहालू॥
प्रभु गुन ग्राम गुनत मनमाहीं। सब चुप चाप चले मग जाहीं॥
जमुना उतरि पार सब भयऊ। सो बासर बिनु भोजन गयऊ॥
उतरि देव सरि दूसर बासू। राम सखा सब कीन्ह सुपासू॥
सई उतरि गोमती नहाये। चौथे दिवस अवधपुर आये॥
जनक रहे पुर बासर चारी। राज काज सब साज सँभारी॥
सौंपि सचिव गुरु भरतहिं राजू। तिरहुति चले साजि सब साजू॥
नगर नारि नर गुरु सिख मानी। बसे सुखेन राम रजधानी॥

दोहा—राम दरस लगि लोग सब, करत नेम उपवास।
तजि तजि भूषन भोग सुख, जियत अवध की आस॥३२३॥

सचिव सुसेवक भरत प्रबोधे। निज निज काज पाइ सिख सोधे॥
पुनि सिख दीन्हि बोलि लघु भाई। सौंपी सकल मातु सेवकाई॥
भूसुर बोलि भरत कर जोरे। करि प्रनाम वर बिनय निहोरे॥
ऊँच नीच कारज भल पोचू। आयसु देव न करब संकोचू॥
परिजन पुरजन प्रजा बोलाये। समाधान करि सुबस बसाये॥
सानुज गे गुरु गेह बहोरी। करि दंडवत कहत कर जोरी॥
आयसु होइ त रहउँ सनेमा। बोले मुनि तन पुलकि सप्रेमा॥
समुझब कहब करब तुम्ह जोई। धरम सार जग होइहि सोई॥

दोहा—सुनि सिख पाइ असीस बड़ि, गनक बोलि दिन साधि।
सिंहासन प्रभु पादुका, बैठारी निरुपाधि॥३२४॥

राम मातु गुरु पद सिर नाई। प्रभु पद पीठ रजायसु पाई॥
नंदिगाँव करि परन कुटीरा। कीन्ह निवास धरम धुर धीरा॥
जटाजूट सिर मुनिपट धारी। महि खनि कुस साथरी सवाँरी॥
असन बसन बास ब्रत नेमा। करत कठिन रिषि धरम सप्रेमा॥
भूषन वसन भोग सुख भूरी। मन तन बचन तजे तृन तूरी॥
अवधराजु सुरराजु सिहाई। दसरथ धन सुनि धनद लजाई॥
तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा। चंचरीक जिमि चंपक बागा॥
रमा बिलास राम अनुरागी। तजत बमन जिमि जन बड़भागी॥

दोहा—राम प्रेम भाजन भरत, बड़े न यहि करतूति।
चातक हंस सराहियत, टेक बिबेक बिभूति॥३२५॥

देह दिनहुँ दिन दूबरि होई। घटै न तेज बल मुख छबि सोई॥
नित नव राम प्रेम पन पीना। बढ़त धरम दल मन न मलीना॥
जिमि जल निघटत सरद प्रकासे। बिलसत बेतसु बनज बिकासे॥
सम दम संजम नियम उपासा। नखत भरत हिय बिमल अकासा॥
ध्रुव बिस्वासु अवध राका सी। स्वामि सुरति सुरबीथि बिकासी॥

राम प्रेम बिधु अचल अदोखा। सहित समाज सोह नित चोखा॥
भरत रहनि समुझनि करतूती। भगति बिरति गुन बिमल बिभूती॥

दोहा—नित पूजत प्रभु पावँरी, प्रीति न हृदय समाति।
माँगि माँगि आयसु करत, राजकाज बहु भाँति॥३२६॥

पुलक गात हिय सिय रघुबीरू। जीह नाम जपु लोचन नीरू॥
लषन राम सिय कानन बसहीं। भरत भवन बसि तप तनु कसहीं॥
दोउ दिसि समुझि कहत सबलोगू। सब बिधि भरत सराहन जोगू॥
सुनि ब्रत नेम साधु सकुचाहीं। देखि दसा मुनिराज लजाहीं॥
परम पुनीत भरत आचरनू। मधुर मंजु मुद मंगल करनू॥
हरत कठिन कलि कलुष कलेषू। महा मोह निसि दलन दिनेषू॥
पाप पुंज कुंजर मृगराजू। समन सकल संताप समाजू॥
जन रंजन भंजन भव भारू। राम सनेह सुधाकर सारू॥

छन्द—सिय राम प्रेम पियूष पूरन होत जनम न भरत को।
मुनि मन अगम जम नियम सम दम विषम व्रत आचरत को॥
दुखदाह दारिद दंभ दूषन सुजस मिस अपहरत को।
कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि राम सनमुख करत को॥

सो०—भरत चरित करि नेम, तुलसी जो सादर सुनहिं।
सीय राम पद प्रेम, अवसि होइ भव रस बिरति॥३२७॥

इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने
विमलविज्ञानवैराग्यसम्पादनो नाम
द्वितीयः सोपानः समाप्तः।

अरण्यकाण्ड—यह लघु काण्ड समस्त साठ दोहों में समाप्त हुआ है। आरम्भ में एक श्लोक द्वारा शिव की और दूसरे में सीता लक्ष्मण संयुत बन-पथिक राम की वन्दना की है। इसके अनन्तर भाषा-काव्य का प्रारम्भ किया है। चित्रकूट के बन में जयन्त का काक-वेश में आकर जानकी के चरणों में चोंच मारना पुनः राम का शर-सन्धान और जयन्त का शरणागत होना लिखा गया है। चित्रकूट से रामचन्द्र ने प्रस्थान कर अत्रि के आश्रम में पदार्पण किया, जहाँ मुनि ने नाना प्रकार से उनका पूजन और सत्कार किया। अत्रि की धर्मपत्नी अनुसूया ने सीताजी से संक्षिप्त स्त्री-धर्म का संवाद किया है।

कह रिषिबधू सरस मृदुबानी। नारि धरम कछु ब्याज बखानी॥
मातु-पिता-भ्राता-हित-कारी। मित प्रद सब सुनु राजकुमारी॥
अमित दानि भर्त्ता बैदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही॥

धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपद काल परखियहि चारी ॥
वृद्ध रोग बस जड़ धन हीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना ॥
ऐसेहु पति कर किये अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना ॥
एकइ धरम एक ब्रत नेमा। काय बचन मन पति पद प्रेमा ॥
जग पतिब्रता चारि बिधि अहहीं। वेद पुरान संत सब कहहीं ॥

दोहा—उत्तम मध्यम नीच लघु, सकल कहउँ समुझाइ।
आगे सुनहिं ते भव तरहिं, सुनहु सीय चितलाइ ॥ ७ ॥

उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं ॥
मध्यम परपति देखइ कैसे। भ्राता पिता पुत्र निज जैसे ॥
धरम विचारि समुझि कुल रहई। सो निकृष्ट तिय स्रुति अस कहई ॥
बिनु अवसर भय तें रह जोई। जानहु अधम नारि जग सोई ॥
पति बंचक पर-पति-रति करई। रौरव नरक कलप सत परई ॥
छन सुख लागि जनम सत कोटी। दुखन समुझ तेहि सम को खोटी ॥
बिनु स्रम नारि परम गति लहई। पति-व्रत-धरम छाड़ि छल गहई ॥
पति अनुकूल जनम जहँ जाई। विधवा होइ पाइ तरुनाई ॥

सो०—सहज अपावनि नारि, पति सेवत सुभ गति लहई।
जस गावत स्रुति चारि, अजहुँ तुलसि का हरिहिं प्रिय ॥८॥
सुनु सीता तव नाम, सुमिरि नारि पतिव्रत करहिं।
तोहि प्रान प्रिय राम, कहेउँ कथा संसार हित ॥९॥

इसके आगे अत्रि से बिदा हो कर मार्ग में विराध का वध कर रामचन्द्र का शरभंग ऋषि के आश्रम में पहुँचना और ऋषि का शरीर-त्याग, सुतीक्ष्ण-मिलाप, अगस्त्य ऋषि-मिलाप और दण्डक-बन-निवास की कथा लिखी गयी है। रामचन्द्र ने लक्ष्मण को बहुत प्रकार के भक्ति और ज्ञान के उपदेश किये हैं, जिनको उपयोगी समझ कर नीचे उद्धृत किया जाता है:—

एक बार प्रभु सुख आसीना। लछिमन बचन कहे छल हीना ॥
सुर नर मुनि सचराचर साईं। मैं पूछउँ निज प्रभु की नाईं ॥
मोहि समुझाइ कहहु सोइ देवा। सब तजि करउँ चरन-रज-सेवा ॥
कहहु ज्ञान विराग अरु माया। कहहु सो भगति करहु जेहि दाया ॥

दोहा—ईस्वर जीवहिं भेद प्रभु, कहहु सकल समुझाय।
जातें होइ चरनरति, सोक मोह भ्रम जाय ॥ १६ ॥

थोरेहि महँ सब कहउँ बुझाई। सुनहु तात मति मन चित लाई ॥
मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहि बस कीन्हे जीवनि काया ॥
गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई ॥
तेहि कर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ। विद्या अपर अविद्या दोऊ ॥

एक दुष्ट अतिसय दुख रूपा। जा बस जीव पराभव कूपा॥
एक रचै जग गुन बस जाके। प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताके॥
ज्ञान मान जहँ एको नाहीं। देख ब्रह्म समान सब माहीं॥
कहिय तात सो परम बिरागी। तृन सम सिद्धि तीनि गुन त्यागी॥

दोहा—माया ईस न आपु कहँ, जान कहिय सो जीव।
बन्ध मोक्षप्रद सर्व पर, माया प्रेरक सीव॥ २०॥

इसके अनन्तर शूर्पनखा का रामचन्द्र के पास आना, रामचन्द्र का लक्ष्मण के द्वारा शूर्पनखा का नाक-कान कटवाना, पुनः उसका खर-दूषण के पास जाकर समाचार कहना, खर-दूषण की चढ़ाई और १४ सहस्र सेना के साथ मारा जाना, शूर्पनखा का रावण के पास जाकर समाचार कहना और रावण का मारीच के पास जाना लिखा गया है। इसके अनन्तर राम का सीता को पावक में रखना, पावक में रख कर माया की सीता को साथ में लेना, स्वर्ण-मय-कपट-मृग-रूप-धारी मारीच का पञ्चवटी में आना, सीता के द्वारा उत्तेजित होकर रामचन्द्र का उसके पीछे बध करने के लिये दौड़ना, लक्ष्मण का राम के सहायतार्थ सीता की प्रेरणा पर जाना, आश्रम को सूना पाकर रावण का ब्राह्मण-वेष में आकर सीता का हरण करना, जानकी का बिलाप, मार्ग में जटायु और रावण से युद्ध और बन्दरों को देख कर मार्ग में सीता का पट और आभूषण गिराना एवं अशोकवाटिका में ले जाकर सीता को रखने का वर्णन किया गया है। सीता-हरण का वृत्तान्त जानकर रामचन्द्र का दुःखी होना, आहत जटायु से सारा वृत्तान्त पाना, मार्ग में कबन्ध-वध करते हुए शबरी के आश्रम में प्रवेश, पुनः शबरी से सुग्रीवादि की मित्रता की सम्मति पाना, और पम्पासुर का प्रस्थान लिखा गया है। मार्ग में जाते हुए वसन्त ऋतु की वन की शोभा का इस प्रकार वर्णन किया गया है:—

बिटप बिसाल लता अरुझानी। बिबिध बितान दिये जनु तानी॥
कदलि ताल बर ध्वजा पताका। देखि न मोह धीर मन जाका॥
बिबिध भाँति फूले तरु नाना। जनु बानैत बने बहु बाना॥
कहुँ कहुँ सुन्दर बिटप सुहाये। जनु भट बिलग बिलग अति छाये॥
कूजत पिक मानहुँ गज माते। टेक महोख ऊँट बिसराते॥
मोर चकोर कीर बर बाजी। पारावत मराल सब ताजी॥
तीतर लावक पद-चर-जूथा। बरनि न जाइ मनो जब रूथा॥
रथ गिरिसिला दुंदुभी झरना। चातक बंदी गुन गन बरना॥
मधु-कर-मुखर भेरि सहनाई। त्रिविध बयारि बसीठी आई॥
चतुरंगिनि सेना सँग लीन्हे। बिचरत सबहिं चुनौती दीन्हे॥

इसके बाद पंपासर का वर्णन इस प्रकार किया है:—

पुनि प्रभु गये सरोबर तीरा। पंपा नाम सुभग गंभीरा॥
जहँ तहँ पियहिं बिबिध मृग नीरा। जनु उदार गृह जाचक भीरा॥

दोहा—पुरइनि सघन ओट जल, बेगि न पाइय मर्म।
मायाछन्न न देखिये, जैसे निर्गुन ब्रह्म॥ ५०॥
सुखी मीन सब एकरस, अति अगाध जल माहिं।
जथा धर्मसीलन्ह के, दिन सुख संजुत जाहिं॥ ५१॥

बिकसे सरसिज नाना रंगा। मधुर मुखर गुंजत बहु भृंगा॥
बोलत जल कुक्कुट कलहंसा। प्रभु बिलोकि जनु करत प्रसंसा॥
चक्रवाक बक-खग-समुदाई। देखत बनै बरनि नहिं जाई॥
सुन्दर खग-गन-गिरा सुहाई। जात पथिक जनु लेत बोलाई॥
ताल समीप मुनिन गृह छाये। चहुँदिसि कानन बिटप सुहाये॥
चंपक बकुल कदंब तमाला। पाटल पनस परास रसाला॥
नवपल्लव कुसुमित तरु नाना। चंचरीक पटली कर गाना।
सीतल मंद सुगंध सुभाऊ। संतत बहै मनोहर बाऊ॥
कुहू कुहू कोकिल धुनि करहीं। सुनि रव सरस ध्यान मुनि टरहीं॥

दोहा—फल भर नम्र बिटप सब, रहे भूमि नियराइ।
पर उपकारी पुरुष जिमि, नवहिं सुसंपति पाइ॥ ५२॥

इसके अनन्तर पंपासर पर रामचन्द्र का विश्राम, नारद-आगमन और नारद रामचन्द्र का सत्संग लिखा गया है। अन्त में स्तुति द्वारा इस कारड की समाप्ति की है।

किष्किन्धाकाण्ड—यह काण्ड अरण्यकाण्ड से भी छोटा अर्थात् समस्त ३३ दोहों पर समाप्त हुआ है। ३४ वाँ छन्द "सोरठा" है। अरण्य तक की रचना अयोध्यापुरी में की गयी है, परन्तु किष्किन्धाकाण्ड को कवि जी ने काशी में प्रारम्भ किया है, क्योंकि आदि में काशी की ही भूरि भूरि प्रार्थना, प्रशंसा और बन्दना दीख पड़ती हैं।

सोरठा—मुक्ति जन्म महि जानि, ज्ञान खानि अघ हानि कर।
जहँ बस शंभु भवानि, सो कासी सेइय कस न॥

काण्ड के प्रारम्भ के प्रथम श्लोक में सीतान्वेषण-तत्पर राम-लक्ष्मण की एवं द्वितीय में कृतिशील भगवद्भक्तों की स्तुति कर के गोस्वामी जी की कुशल लेखनी राम की ललित लीला लिखने में लीन हुई है।

राम का ऋष्यमूक पर्वत के निकट जाना। सुग्रीव-प्रेषित हनुमान का रामचन्द्र के सन्निकट आना और वार्त्तालाप, हनुमान द्वारा राम का सुग्रीव से मैत्रीकरण, वालि-बध, तारा-विलाप, लक्ष्मण के द्वारा सुग्रीव को राज एवं अंगद को युवराज-पद दिलाना और राम-लक्ष्मण का प्रवर्षणपर्वत पर निवास कथन करते हुए कवि-सम्राट ने राम को वक्ता अथ च लक्ष्मण को श्रोता बनाकर वर्षा और शरद ऋतुओं का अत्यन्त मनोहर, मनोरम एवं शिक्षाप्रद वर्णन किया है:—

सुंदर बन कुसमित अति सोभा। गुंजत मधुपनि कर मधु लोभा॥
कंद मूल फल पत्र सुहाये। भये बहुत जब तें प्रभु आये॥
देखि मनोहर सैल अनूपा। रहे तहँ अनुज सहित सुरभूपा॥
मधु कर खग मृग तनु धरि देवा। करहिं सिद्ध मुनि प्रभु कै सेवा॥
मंगल रूप भयउ बन तब तें। कीन्ह निवास रमापति जब तें॥
फटिक सिला अति सुभ्र सुहाई। सुख आसीन तहाँ दोउ भाई॥
कहत अनुज सन कथा अनेका। भगति बिरति नृपरीति बिबेका॥
बरषा काल मेघ नभ छाये। गर्जत लागत परम सुहाये॥

दोहा—लछिमन देखहु मोर गन, नाचत बारिद पेखि।
गृही बिरतिरत हरष जस, बिष्णु भगत कहुँ देखि॥

घन घमण्ड नभ गरजत घोरा। प्रियाहीन डरपत मन मोरा॥
दामिन दमकि रही घन माहीं। खल की प्रीति यथा थिरु नाहीं॥
बरषहिं जलद भूमि नियराये। जथा नवहिं बुध बिद्या पाये॥
बुंद अघात सहहिं गिरि कैसे। खल के बचन संत सह जैसे॥
छुद्र नदी भरि चली तोराई। जस थोरेउ धन खल इतराई॥
भूमि परत भा ढाबर पानी। जनु जीवहिं माया लपटानी॥
सिमिटि सिमिटि जल भरहिं तलावा। जिमि सद्गुण सज्जन पहिंआवा॥
सरिता जल जलनिधि महँ जाई। होइ अचल जिमि जिव हरि पाई॥

दोहा—हरित भूमि तृन संकुल, समुझि परहिं नहिं पन्थ।
जिमि पाखण्ड बिबाद तें, गुप्त होहिं सद ग्रन्थ॥१६॥

दादुर धुनि चहुँ दिसा सुहाई। बेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई॥
नव पल्लव भये बिटप अनेका। साधक मन जस मिले बिबेका॥
अर्क जवास पात बिनु भयऊ। जस सुराज खल उद्यम गयऊ॥
खोजत कतहुँ मिलै नहिं धूरी। करै क्रोध जिमि धर्महिं दूरी॥
सस संपन्न सोह महि कैसी। उपकारी की संपति जैसी॥
निसितम घन खद्योत बिराजा। जनु दंभिन कर मिला समाजा॥
महावृष्टि चलि फूटि कियारी। जिमि सुतंत्र भये बिगरहिं नारी॥
कृषी निरावहिं चतुर किसाना। जिमि बुध तजहिं मोह मदमाना॥

देखियत चक्रवाक खग नाहीं। कलिहिं पाइ जिमि धर्म पराहीं॥
ऊसर बरषै अन्न न जामा। जिमि हरिजन हिय उपज न कामा॥
बिबिध जंतु संकुल महिभ्राजा। प्रजा बाढ जिमि पाइ सुराजा॥
जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना। जिमि इंद्रियगन उपजे ज्ञाना॥

दोहा—कबहु प्रबलचल मारुत, जहँ तहँ मेघ बिलाहिं।
जिमि कपूत के ऊपजे, कुल सद्धर्म नसाहिं॥१७॥
कबहुँ दिवस मह निबिडतम, कबहुँक प्रगट पतंग।
बिनसै उपजै ज्ञान जिमि, पाइ कुसंग सुसंग॥१८॥

बरषा बिगत सरद्‌रितु आई। लछिमन देखहु परम सुहाई॥
फूले कास सकल महि छाई। जनु बरषारितु प्रगट बुढ़ाई॥
उदित अगस्त पंथ जल सोखा। जिमि लोभहि सोखइ संतोषा॥
सरिता सर निर्मल जल सोहा। संत हृदय जस गत मद मोहा॥
रस रस सूख सरित सर पानी। ममता त्याग करहिं जिमि ज्ञानी॥
जानि सरद्‌रितु खंजन आये। पाइ समय जिमि सुकृत सुहाये॥
पंक न रेनु सोह असि धरनी। नीति निपुन नृप की जसि करनी॥
जल संकोच बिकल भये मीना। अबुध कुटुम्बी जिमि धनहीना॥
बिनु घन निर्मल सोह अकासा। जिमि हरिजन परिहरि सब आसा॥
कहुँ कहुँ बृष्टि सारदी थोरी। कोउ एक पाव भगति जसि मोरी॥

दोहा—चले हरषि तजि नगर नृप, तापस बनिक भिखारि।
जिमि हरिभगति पाइ जन, तजहिं आश्रमहिं चारि॥१९॥

सुखी मीन जे नीर अगाधा। जिमि हरि सरन न एकउ बाधा॥
फूले कमल सोह सर कैसे। निर्गुन ब्रह्म सगुन भये जैसे॥
गुंजत मधुकर मुखर अनूपा। सुंदर खगरव नाना रूपा॥
चक्रवाक मन दुख निसि पेखी। जिमि दुरजन परसंपति देखी॥
चातक रटत तृषा अति ओही। जिमि सुख लहै न शंकर द्रोही॥
सरदातप निसि ससि अपहरई। संत दरस जिमि पातक टरई॥
देखि इन्दु चकोर समुदाई। चितवहिं जिमि हरिजन हरि पाई॥
मसकदंस बीते हिमत्रासा। जिमि द्विज द्रोह किये कुलनासा॥

दोहा—भूमि जीव संकुल रहे, गये सरद्‌रितु पाइ।
सद्‌गुरु मिले जाहिं जिमि, संसय भ्रम समुदाइ॥२०॥

शरदवर्णन के अनन्तर ही विरही राम को सीता का स्मरण हो आया। राम ने सुग्रीव की असावधानी पर क्रोध प्रकट करते हुए लक्ष्मण को उसके पास भेजा। सुग्रीव का भयभीत होके राम के पास आना, सीता की खोज के लिये जहाँ तहाँ बानरों को भेजना, बानरों का एक तपस्विनी की सहायता से सीता का पता पाना और बानरों का समुद्रतट पर एकत्रित होना लिखा गया है।

सुन्दरकाण्ड—यह काण्ड समस्त ६३ दोहों में समाप्त हुआ है। इसमें हनुमान जी का समुद्र लाँघ कर लङ्का में जाना, सुरसा से हनुमान जी की भेंट, लङ्का की शोभा का वर्णन, पुनः हनुमान का बिभीषण से मिलना और उनसे सीता का पता पूछना अथच निम्न कथाओं के वर्णन हैं:—

तब हनुमंत कहा सुनु भ्राता। देखा चहउँ जानकी माता॥
जुगुति विभीषन सकल सुनाई। चलेउ पवन-सुत बिदा कराई॥
धरि सोइ रूप गयउ पुनि तहवाँ। बन असोक सीता रह जहँवा॥
देखि मनहिं मन कीन्ह प्रनामा। बैठेहिं बीति जात निसि जामा॥
कृस तन सीस जटा एक बेनी। जपति हृदय रघुपति-गुन-स्रेनी॥

दोहा—निज पद नयन दिये मन, राम चरन महँ लीन।
परम दुखी भा पवन-सुत, देखि जानकी दीन॥

तरु पल्लव महँ रहा लुकाई। करै विचार करउँ का भाई॥
तेहि अवसर रावन तहँ आवा। संग नारि बहु किये बनावा॥
बहु विधि खल सीतहिं समुझावा। साम दाम भय भेद दिखावा॥
कह रावन सुनु सुमुखि सयानी। मंदोदरी आदि सब रानी॥
तब अनुचरी करउँ पन मोरा। एक बार, बिलोकु मम ओरा॥
तृन धरि ओट कहति वैदेही। सुमिरि अवधपति परम सनेही॥
सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा। कबहुँ कि नलिनी करइ विकासा॥
अस मन समुझु कहति जानकी। खल सुधि नहिं रघुबीर बानकी॥
सठ सूने हरि आनेहि मोही। अधम निलज्ज लाज नहिं तोही॥

दोहा—आपुहिं सुनि खद्योत सम, रामहिं भानु समान।
परुष बचन सुनि काढ़ि असि, बोला अति खिसियान॥

सीता तैं मम कृत अपमाना। कटिहउँ तव सिर कठिन कृपाना॥
नाहित सपदि मानु मम बानी। सुमुखि होत नत जीवन-हानी॥
स्याम-सरोज-दाम-सम सुन्दर। प्रभु भुज करि-कर सम-दसकंधर॥
सो भुज कंठ कि तव असि घोरा। सुनु सठ अस प्रमान पन मोरा॥
चन्द्रहास हर मम परितापं। रघुपति-बिरह अनल संजातं॥
सीतल निसि तव असि बर धारा। कह सीता हरु मम दुख-भारा॥
सुनत बचन पुनि मारन धावा। मय-तनया कहि नीति बुझावा॥
कहेसि सकल निसिचरिन्ह बोलाई। सीतहिं त्रास दिखावहु जाई॥
मास दिवस महँ कहा न माना। तौ मैं मारब काढ़ि कृपाना॥

दोहा—भवन गयउ दसकन्धर, इहाँ निसाचरि बृन्द।
सीतहिं त्रास देखावहिं, धरहिं रूप बहु मन्द॥

त्रिजटा नाम राच्छसी एका। राम-चरन-रति-निपुन बिवेका॥
सबन्हौ बोलि सुनायेसि सपना। सीतहिं सेइ करहु हित अपना॥
सपने बानर लंका जारी। जातुधान-सेना सब मारी॥
खर-आरूढ़ नगन दससीसा। मुंडित सिर खंडित भुजबीसा॥
एहि बिधि सो दच्छिन दिसि जाई। लंका मनहुँ बिभीषन पाई॥
नगर फिरी रघुबीर दोहाई। तब प्रभु सीता बोलि पठाई॥
यह सपना मैं कहउँ पुकारी। होइहि सत्य गये दिन चारी।
तासु बचन सुनते सब डरीं। जनक-सुता के चरनन्हि परीं॥

दोहा—जहँ तहँ गईं सकल तब, सीता कर मन सोच।
मास दिवस बीते मोहि, मारिहि निसिचर पोच॥

त्रिजटा सन बोली कर जोरी। मातु बिपति-संगिनि तैं मोरी॥
तजउँ देह करु बेगि उपाई। दुसह बिरह अब नहिं सहि जाई॥
आनि काठ रचु चिता बनाई। मातु अनल पुनि देहि लगाई॥
सत्य करहि मम प्रीति सयानी। सुनइ को स्रवनसूल-सम बानी॥
सुनत बचन पद गहि समुझायेसि। प्रभु-प्रताप-बल-सुजस सुनायेसि॥
निसिन अनल मिल सुनु सुकुमारी। असकहि सो निज भवन सिधारी॥
कह सीता बिधि भा प्रतिकूला। मिलिहि न पावक मिटिहि न सूला॥
देखियत प्रगट गगन अंगारा। अवनि न आवत एकउ तारा॥
पावक मय ससि स्रवत न आगी। मानहुँ मोहि जानि हतभागी॥
सुनहि बिनय मम बिटप असोका। सत्यनाम करु हरु मम सोका॥
नूतन किसलय अनल-समाना। देहि अगिनि तन करहि निदाना॥
देखि परम बिरहाकुल सीता। सो छन कपिहिं कलप-सम बीता॥

सो०—कपि करि हृदय बिचार, दीन्हि मुद्रिका डारि तब।
जनु असोक अंगार, लीन्ह हरषि उठि कर गहेउ॥

तब देखी मुद्रिका मनोहर। रामनाम-अंकित अति सुन्दर॥
चकित चितव मुदरी पहिचानी। हरष बिषाद हृदय अकुलानी॥
जीति को सकइ अजय रघुराई। माया ते अस रचि नहिं जाई॥
सीता मन बिचार कर नाना। मधुर बचन बोलेउ हनुमाना॥
रामचन्द्र-गुन बरनइ लागा। सुनतहिं सीता कर दुख भागा॥
लागी सुनइ स्रवन मन लाई। आदिहु ते सब कथा सुनाई॥
स्रवनामृत जेहि कथा सुनाई। कहि सो प्रगट होत किन भाई॥
तब हनुमन्त निकट चलि गयऊ। फिर बैठी मन बिसमय भयऊ॥
राम-दूत मैं मातु जानकी। सत्य सपथ करुना निधान की॥
यह मुद्रिका मातु मैं आनी। दीन्हि राम तुम कहँ सहिदानी॥
नर बानरहिं सङ्ग कहु कैसे। कही कथा भइ संगति जैसे॥

दोहा—कपि के बचन सप्रेम सुनि, उपजा मन बिस्वास।
जाना मन क्रम बचन यह, कृपा सिन्धु कर दास॥

हरिजन जानि प्रीति अति बाढ़ी। सजल नयन पुलकावलि ठाढ़ी॥
बूडत बिरह-जलधि हनुमाना। भयउ तात मो कहँ जलजाना॥
अब कहु कुशल जाउँ बलिहारी। अनुज सहित सुखभवन खरारी॥
कोमल चित कृपाल रघुराई। कपि केहि हेतु धरी निठुराई॥
सहज बानि सेवक-सुखदायक। कबहुँ क सुरति करत रघुनायक॥
कबहुँ नयन मम सीतल ताता। होइहिं निरखि स्याममृदु गाता॥
बचन न आव नयन भरि बारी। अहह नाथ मोहि निपट बिसारी॥
देखि परम बिरहाकुल सीता। बोला कपि मृदु बचन बिनीता॥
मातु कुशल-प्रभु अनुज समेता। तव-दुख-दुखी सुकृपा-निकेता॥
जनि जननी मानहु जिय ऊना। तुम्ह तें प्रेम राम के दूना॥

दोहा—रघुपति कर सन्देस अब, सुनु जननी धरि धीर।
अस कहि कपि गद्गद भयउ, भरे बिलोचन नीर॥

कहेउ राम बियोग तव सीता। मोकहँ सकल भयउ बिपरीता॥
नवतरु किसलय मनहुँ कृसानू। काल निसासम निसि ससिभानू॥
कुबलय बिपिन कुन्त बन सरिसा। बारिद तप्त तेल जनु बरिसा॥
जेहि तरु रहिय करत तेइ पीरा। उरग स्वाससम त्रिबिध समीरी॥
कहेहू ते कछु दुख घटि होई। काहि कहौं यह जान न कोई॥
तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एक मन मोरा॥
सो मन रहत सदा तोहि पाहीं। जानु प्रीति रस इतनहि माहीं॥
प्रभु संदेश सुनत बैदेही। मगन प्रेम तन सुधि नहिं तेही॥
कहि कपि हृदय धीर धरु माता। सुमिरु राम सेवक सुख दाता॥
उर आनहु रघुपति प्रभुताई। सुनि मम बचन तजहु कदराई॥

दोहा—निसिचर निकर पतंग सम, रघुपति बान कृसानु।
जननी हृदय धीर धरु, जरे निसाचर जानु॥

इसके अनन्तर महाकवि ने सीता-हनुमान का कुछ वार्तालाप लिख कर सीता जी से आदेश प्राप्त कर हनुमान जी का फल खाने के मिस रावण की वाटिका में जाना, फलों का तोड़ना, वृक्षों का उखाड़ना और रक्षकों के मारने की कथा का वर्णन किया है। पुनः अक्षय-कुमार-बध, मेघनाद द्वारा हनुमान का पकड़ा जाकर रावण की सभा में आना हनुमान-रावण सम्वाद, लङ्कादहन, हनुमान का सीता से बिदा हेकर राम के पास आना, सीता की दुःखमयी दशाका वर्णन करना और श्री भगवान की युद्ध के लिये लङ्का-यात्रा का वर्णन लिखा गया है। इसके उपरान्त रावण को मन्दोदरी ने बहुत समझाया है कि श्री रामचन्द्र को तेज पुरुष समझकर

सीता को वापस कर दो। रावण ने हठ किया, बिभीषण ने भी समझाया पर उस दुर्मति ने किसी की न सुनी। बिभीषण निरुपाय होकर मर्यादापुरुषोत्तम भगवान के पास आया और सत्यसन्ध ने आते ही समुद्र के जल से तिलक करके लंकेश शब्द से सम्बोधन किया। इसके अनन्तर

रामचन्द्र जी का समुद्र-किनारे आना, रावण के दूत का आकर रावण से रामगुण बखानना, मन्त्री का रावण को समझाना, रावण का अनादर करना, मन्त्री का रामचन्द्रजी के पास आना, समुद्र पर रामचन्द्रजी का क्रोध करना, समुद्र का आकर बिनती करना और पुल बाँधने का उपाय कहा गया है।

लङ्काकाण्ड—यह काण्ड पूर्ववर्त्ती तीनों काण्डों की अपेक्षा बहुत बड़ा है और कुल १५८ दोहों में समाप्त हुआ है। आरम्भ में एक श्लोक से रामचन्द्र की और दूसरे से शङ्कर की वन्दना की गई है! तीसरे श्लोक से अपने कल्याण के लिये शङ्कर से प्रार्थना की है। इसके बाद नल-नील का पुल बाँधना, रामचन्द्रजी का शिवलिङ्ग स्थापित करना, समुद्र पार उतर कर डेरा डालना, मन्दोदरी का फिर समझाना, मन्त्रियों का समझाना, सुवेलपहाड़ पर लेटे हुए श्री रामचन्द्रजी का चन्द्रमा को देख कर शोभा वर्णन करना, मन्दोदरी का फिर रावण को समझाना, रावण का न मानना और रावण की सभा में राम की ओर से अंगद के पधारने का वर्णन किया गया है। अंगद और रावण के मध्य में जो वार्त्तालाप हुआ उसे उपदेश-प्रद जानकर नीचे उद्धृत किया जाता है:—

तुरत निसाचर एक पठावा। समाचार रावनहिं जनावा॥
सुनत बिहँसि बोला दससीसा। आनहु बोलि कहाँ कर कीसा॥
आयसु पाइ दूत बहु धाये। कपि कुंजरहिं बोलि लै आये॥
अंगद दीख दसानन वैसा। सहित प्रान कज्जलगिरि जैसा॥
भुजा बिटप सिर सृंग समाना। रोमावली लता जनु नाना॥
मुख नासिका नयन अरु काना। गिरि कंदरा खोह अनुमाना॥
गयउ सभा मन नेकु न मुरा। बालि तनय अति बल बाँकुरा॥
उठे सभासद कपि कहँ देखी। रावन उर भा क्रोध बिसेखी॥

दोहा—जथा मत्त गज जूथ महँ, पंचानन चलि जाइ।
राम प्रताप सँभारि उर, बैठ सभा सिर नाइ॥२८॥

कह दसकण्ठ कवन तैं बन्दर। मैं रघुबीर दूत दसकन्धर॥
मम जनकहिं तोहि रही मिताई। तव हित कारन आयउँ भाई॥
उत्तम कुल पुलस्त कर नाती। सिव बिरंचि पूजेहु बहु भाँती॥
बर पायहु कीन्हेहु सब काजा। जीतेहु लोकपाल सुर राजा॥
नृप अभिमान मोहबस किम्बा। हरि आनेहु सीता जगदम्बा॥

अब सुभ कहा सुनहु तुम्ह मोरा। सब अपराध छमिहिं प्रभु तोरा॥
सादर जनक सुता करि आगे। एहि विधि चलहु सकल भय त्यागे॥

दोहा—प्रणपताल रघुवंश मणि, त्राहि त्राहि अब मोहि।
सुनतहिं आरत बचन प्रभु, अभय करहिंगे तोहि॥२९॥

रे कपि पोच न बोल संभारी। मूढ़ न जानेहि मोहि सुरारी॥
कहु निज नाम जनक कर भाई। केहि नाते मानिये मिताई॥
अंगद नाम बालि कर बेटा। तासों कबहुँ भइ रहि भेंटा॥
अंगद बचन सुनत सकुचाना। रहा बालि बानर मैं जाना॥
अंगद तुहीं बालि कर बालक। उपजेहु वंश अनल कुल घालक॥
गर्भ न गयउ व्यर्थ तुम जायेहु। निज मुख तापस दूत कहायेउ॥
अब कहु बालि कुसल कहँ अहई। बिहँसि बचन तब अंगद कहई॥
दिन दस गये बालि पहँ जाई। बूझेहु कुसल सखा उर लाई॥
राम बिरोध कुसल जसि होई। सो सब तोहि सुनाइहिं सोई॥
सुनु सठ भेद होइ मन ताके। श्री रघुबीर हृदय नहिं जाके॥

दोहा—हम कुलघालक सत्य तुम, कुलपालक दससीस।
अंधउ बहिर न अस कहहिं, नयन कान तब बीस॥३०॥

सिव बिरंचि सुर मुनि समुदाई। चाहत जासु चरन सेवकाई॥
तासु दूत होइ हम कुल बोरा। ऐसिहु मति उर विहर न तोरा॥
सुनि कठोर बानी कपि केरी। कहत दसानन नयन तरेरी॥
खल तब कठिन बचन सब सहऊँ। नीति धर्म मैं जानत अहऊँ॥
कह कपि धर्म शीलता तोरी। हमहुँ सुनी कृत पर त्रिय चोरी॥
देखी नयन दूत रखवारी। बूड़ि न मरहु धर्मव्रत धारी॥
कान नाक बिनु भगिनि निहारी। छमा कीन्ह तुम्ह धर्म बिचारी॥
धर्म शीलता तब जग जागी। पावा दरश हमहुँ बड़ भागी॥

दोहा—जनि जल्पसि जड़ जन्तु कपि, सठ बिलोकु मम बाहु।
लोक पाल बल बिपुल ससि, ग्रसन हेतु सब राहु॥३१॥
पुनि नभ सर मम कर निकर, कमलहिं पर करि बास।
सोभत भयउ मराल इव, सम्भु सहित कैलास॥

तुमरे कटक माँझ सुनि अंगद। मो सन भिरहि कवन जोधा बद॥
तब प्रभु नारि विरह बल हीना। अनुज तासु दुख दुखी मलीना॥
तुम सुग्रीव कूलद्रुम दोऊ। अनुज हमार भीरु अति सोऊ॥
जामवंत मंत्री अति बूढ़ा। सो कि होइ अब समर अरूढ़ा॥
सिल्प कर्म जानहिं नल नीला। है कपि एक महा बल शीला॥
आवा प्रथम नगर जेहि जारा। सुनि हँसि बोलेउ बालि कुमारा॥
सत्य बचन कहु निसिचर नाहा। साँचेउ कीस कीन्ह पुर दाहा॥

रावन नगर अलप कपि दहई। सुनि अस बचन सत्य को कहई॥
जो अति सुभट सराहेहु रावन। सो सुग्रीव केर लघु धावन॥

दोहा—अब जाना पुर दहेउ कपि, बिनु प्रभु आयसु पाइ।
गयउ न फिरि निजनाथ पहिं, तेहि भय रहा लुकाइ॥३३॥
सत्य कहेउ दसकंठ सब, मोहि न सुनि कछु कोह।
कोउ न हमारे कटक अस, तो सन लरत जो सोह॥३४॥
प्रीति बिरोध समान सन, करिय नीति असि आहि।
जौं मृगपति बध मेडुकहिं, भलकि कहै कोउ ताहि॥३५॥
यद्यपि लघुता राम कहुँ, तोहि बधे बड़ दोस।
तदपि कठिन दसकंठ सुनु, छत्रि जाति कर रोष॥३६॥
बक्र उक्ति धनु बचन सर, हृदय दहेउ रिपु कीस।
प्रति उत्तर संड़सिन्हमनहु, काढ़त भट दससीस॥३७॥
हँसि बोलेउ दस मौलि तब, कपि कर बड़ गुन एक।
जो प्रति पालै तासु हित, करै उपाइ अनेक॥३८॥

धन्य कीस जो निज प्रभु काजा। जहँ तहँ नाचइ परिहरि लाजा॥
नाचि कूदि करि लोग रिझाई। पति हित करै धर्म निपुनाई॥
अंगद स्वामि भक्त तव जाती। प्रभु गुण कस न कहसि एहि भाँती॥
मैं गुन गाहक परम सुजाना। तव कटु रटनि करौं नहिं काना॥
कह कपि तव गुण गाहकताई। सत्य पवन सुत मोहि सुनाई॥
वन बिधंसि सुत बधि पुर जारा। तदपि न तेहि कछु कृत अपकारा॥
सोइ विचारि तब प्रकृति सुहाई। दस कंधर मैं कीन्हि ढ़िठाई॥
देखेउं आइ जो कछु कपि भाषा। तुम्हरे लाज न रोष न माषा॥
जौं असि मति पितु खायहु कीसा। कहि अस वचन हँसा दससीसा॥
पितहिं खाइ खातेउं पुनि तोही। अबहीं समुझि परा कछु मोहीं॥
बालि विमल जस भाजन जानी। हतउँ न तोहि अधम अभिमानी॥
कहु रावन रावन जग केते। मैं निज स्रवन सुने सुनु जेते॥
बलिहि जितन एक गयउ पताला। राखा बाँधि सिसुन्ह हयसाला॥
खेलहिं बालक मारहिं जाई। दया लागि बलि दीन्ह छोड़ाई॥
एक बहोरि सहस भुज देखा। धाइ धरा जिमि जंतु बिसेखा॥
कौतुक लागि भवन ले आवा। सो पुलस्ति मुनि जाइ छोरावा॥

दोहा—एक कहत मोहि सकुच अति, रहा बालि की काँख।
तिन्ह महु रावन तै कवन, सत्य बदहिं तजि माँख॥३९॥

सुनु सठ सोई रावन बल सीला। हरगिरि जान जासु भुज लीला॥
जान उमा पति जासु सुराई। पूजेउं जेहि सिर सुमन चढ़ाई॥

सिर सरोज निज करहिं उतारी। अमित बार पूजेंउ त्रिपुरारी॥
भुज विक्रम जानहिं दिग पाला। सठ अजहूँ जिनके उर साला॥
जानहिं दिग्गज उर कठिनाई। जब जब भिरेंउ जाइ बरि आई॥
जिन के दसन कराल न फूटे। उर लागत मूलक इव टूटे॥
जासु चलत डोलत इमि धरनी। चढ़त मत्त गज जिमि लघु तरनी॥
सोइ रावन जग विदित प्रतापी। सुनेहि न स्रवन अलीक प्रलापी॥

दोहा—तेहि रावन कहुँ लघु कहसि, नर कर करसि बखान।
रे कपि बर्बर खर्व खल, अब जाना तव ज्ञान॥४०॥

सुनि अङ्गद सकोप कह बानी। बोलु संभारि अधम अभिमानी॥
सहस बाहु भुज गहन अपारा। दहन अनल सम जासु कुठारा॥
जासु परसु सागर खर धारा। बूड़े नृप अगनित बहु बारा॥
तासु गर्व जेहि देखत भागा। सो नर क्यों दस सीस अभागा॥
रामु मनुज कसरे सठ बङ्गा। धन्वी काम नदी सति गङ्गा॥
पसु सुर धेनुकलप तरु रूखा। अन्न दान अरु रस पीयूखा॥
बैनतेय खग आहि सहसानन। चिंतामनि पुनि उपल दसानन॥
सुनु मतिमंद लोक बैकुंठा। लाभ कि रघुपति भगति अकुंठा।

दोहा—सेनसहित तव मान मथि, बन उजारि पुर जारि।
कस रे सठ हनुमान कपि, गयउ जो तव सुत मारि॥४१॥

सुनु रावन परिहरि चतुराई। भजसि न कृपासिंधु रघुराई॥
जौं खल भयेसि राम कर द्रोही। ब्रह्म रुद्र सक राखि न तोही॥
मूढ़ मुधा जनि मारसि गाला। राम बैर होइहिं अस हाला॥
तव सिर निकर कपिन्ह के आगे। परिहहिं धरनि रामसर लागे॥
ते तव सिर कन्दुक इव नाना। खेलिहहिं भालु कीस चौगाना॥
जबहिं समर कोपिहिं रघुनायक। छुटिहहिं अति कराल बहु सायक॥
तबकि चलहिं अस गाल तुम्हारा। अस बिचारी भजु राम उदारा॥
सुनत बचन रावन पर जरा। जरत महानल जनु घृत परा॥

दोहा—कुंभ करन अस बन्धु मम, सुत प्रसिद्ध सक्रारि।
मोर पराक्रम नहिं सुनेहि, जितेउँ चराचर झारि॥४२॥

सठ साखा मृग जोरि सहाई। बाँधा सिन्धु इहै प्रभुताई॥
नाघहिं खग अनेक बारीसा। सूर न होंहिं ते सुनु जड़ कीसा॥
मम भुज सागर बल जल पूरा। जहँ बूड़े बहु सुर नर सूरा॥
बीस पयोधि अगाध अपारा। को अस बीर जो पाइहिं पारा॥
दिगपालन्ह मैं नीर भरावा। भूप सुजसु खल मोहि सुनावा॥
जौं पै समर सुभट तव नाथा। पुनि पुनि कहसि जासु गुन गाथा॥

तौ बसीठ पठवत केहि काजा। रिपु सन प्रीति करत नहिं लाजा॥
हर गिरि मथन निरखु मम बाहू। पुनि सठ कपि निज प्रभुहिं सराहू॥

दोहा—सूर कवन रावन सरिस, स्वकर काटि जेहि सीस।
हुने अनल महँ बार बहु, हरषि साखि गौरीस॥४३॥

जरत बिलोकेउँ जबहिं कपाला। बिधि के लिखे अंक निज भाला॥
नर के कर आपन बध बाँची। हसेउँ जानि बिधि गिरा असाँची॥
सोउ मन समुझि त्रास नहिं मोरे। लिखा बिरंचि जरठ मति भोरे॥
आन बीरबल सठ मम आगे। पुनि पुनि कहसि लाज परित्यागे॥
कह अंगद सलज्ज जगमाहीं। रावन तोहि समान कोउ नाहीं॥
लाजवंत तव सहज सुभाऊ। निज मुख निज गुन कहसि न काऊ॥
सिर अरु सैल कथा चित रही। तातें बार बीस तैं कही॥
सो भुज बल राखेउ उर घाली। जीतेहु सहसबाहु बलि बाली॥
सुनु मतिमंद देहि अब पूरा। काटे सीस कि होइय सूरा॥
बाजीगर कहँ कहिय न बीरा। काटै निज कर सकल सरीरा॥

दोहा—जरहि पतंग बिमोह बस, भार बहहिं खरबृंद।
ते नहिं सूर कहावहीं, समुझि देखु मतिमंद॥४४॥

अब जनि बत बढ़ाव खल करही। सुनु मन बचन मान परिहरही॥
दस मुख मैं न बसीठी आयउँ। अस बिचारि रघुबीर पठायेउँ॥
बार बार अस कहइ कृपाला। नहिं गजारि जस बधे मृगाला॥
मन महँ समुझि बचन प्रभु केरे। सहेउँ कठोर बचन सठ तेरे॥
नाहिं त करि मुख भंजन तोरा। लै जातेउँ सीतहिं बर जोरा॥
जानेउँ तव बल अधम सुरारी। सूने हरि आनेसि पर नारी॥
तैं निसिचर पति गर्ब बहूता। मैं रघुपति सेवक कर दूता॥
जौं न राम अपमानेहिं डरऊँ। तोहि देखत अस कौतुक करऊँ॥

दोहा—तोहि पटक महिसेन हति, चौपट करि तव गाउँ।
मंदोदरी समेत सठ, जनक सुतहिं लेइ जाउँ॥४५॥

जौं अस करउँ तदपि न बड़ाई। मुयेहि बधे कछु नहिं मनुसाई॥
कौल काम बस कृपिन बिमूढ़ा। अति दरिद्र अजसी अति बूढ़ा॥
सदा रोग बस संतत क्रोधी। बिष्णु बिमुख स्रुति संत बिरोधी॥
तनु पोषक निंदक अघखानी। जीवत सव सम चौदह प्रानी॥
अस बिचारि खल बधउँ न तोही। अब जनि रिस उपजावसि मोही॥
सुनि सकोप कह निसिचर नाथा। अधर दसन दस मींजत हाथा॥
रे कपि अधम मरन अब चहसी। छोटे बदन बात बड़ि कहसी॥
कह जल्पसि जड़ कपि बल जाके। बल प्रताप बुधि तेज न ताके॥

दोहा—अगुन अमान बिचारि तेहि, दीन्ह पिता बनवास ।
सो दुख अरु जुबती बिरहु, पुनि अनुदिन मम त्रास ॥४६॥
जिन्ह केवल कर गर्व तोहि, ऐसे मनुज अनेक ।
खाहिं निसाचर दिवस निसि, मूढ़ समुझु तजि टेक ॥४७॥

जब तेहि कीन्ह राम की निंदा । क्रोधवंत अति भयउ कपिन्दा ॥
हरिहर निंदा सुने जो काना । होइ पाप गोघात समाना ॥
कटकटान कपि कुंजर भारी । दुहुँ भुज दंड तमकि महि मारी ॥
डोलत धरनि सभासद खसे । चले भागि भय मारुत ग्रसे ॥
गिरत सँभारि उठा दसकंधर । भूतल परे मुकुट अति सुन्दर ॥
कछु तेहि लै निज सिरन्हि सँवारे । कछु अंगद प्रभु पास पवारे ॥
आवत मुकुट देखि कपि भागे । दिनहीं लूक परन बिधि लागे ॥
की रावन करि कोप चलाये । कुलिस चारि आवत अति धाये ॥
प्रभु कह हँसि जनि हृदय डराहू । लूक न असनि केतु नहिं राहू ॥
ए किरीट दसकंधर केरे । आवत बालि तनय के प्रेरे ॥

दोहा—कूदि गहे कर पवन सुत, आनि धरे प्रभु पास ।
कौतुक देखहिं भालु कपि, दिन कर सरिस प्रकास ॥४८॥
उहाँ सकोप दसानन, सब सन कहत रिसाइ ।
धरहु कपिहिं धरि मारहु, सुनु अंगद मुसुकाइ ॥४९॥

एहि बिधि बेग सुभट सब धावहु । खाहु भालु कपि जहँ तहँ पावहु ॥
मरकट हीन करहु महि जाई । जियत धरहु तापस दोउ भाई ॥
पुनि सकोप बोलेउ जुवराजा । गाल बजावत तोहि न लाजा ॥
मरुगर कोटि निलज कुलघाती । बल बिलोकि बिहरति नहिं छाती ॥
रे त्रियचोर कुमारग गामी । खल मल रासि मंदमति कामी ॥
सन्निपाति जल्पसि दुर्बादा । भयेसि काल बस खल मनुजादा ॥
याको फल पावहुगे आगे । बानर भालु चपेटन्हि लागे ॥
राम मनुज बोलत असिबानी । गिरहिं न तव रसना अभिमानी ॥
गिरिहहिं रसना संसय नाहीं । सिरन्हि समेत समर महि माहीं ॥

सोरठा—सो नर क्यों दसकंध, बालि बध्यो जेहि एक सर ।
बीसहु लोचन अंध, धिक तव जन्म कुजाति जड़ ॥५०॥
तव सोनित की प्यास, तृषित राम सायक निकर ।
तजेउँ तोहि तेहि त्रास, कटु जल्पत निसिचर अधम ॥५१॥

मैं तव दसन तोरिवे लायक । आयसु मोहि न दीन्ह रघुनायक ॥
अस रिसि होत दसउ मुख तोरउँ । लङ्का गहि समुद्र महँ बोरउँ ॥
गूलर-फल समान तव लङ्का । बसहु मध्य तुम्ह जन्तु असंका ॥
मैं बानर फल खात न बारा । आयसु दीन्ह न राम उदारा ॥

जुगुति सुनत रावन मुसुकाई। मूढ़ सीखि कहँ बहुत झुठाई॥
बालि न कबहु गाल अस मारा। मिलि तपसिन्ह तैं भयसि लबारा॥
साँचेहु मैं लबार भुजबीसा। जौं न उपारउँ तव दस जीसा॥
रामप्रताप समझि कपि कोपा। सभा माँझ पन करि पद रोपा॥
जौं मम चरन सकसि सठ टारी। फिरहिं राम सीता मैं हारी॥
सुनहु सुभट सब कह दससीसा। पद गहि धरनि पछारहु कीसा॥
इन्द्रजीत आदिक बलवाना। हरषि उठे जहँ तहँ भट नाना॥
झपटहिं करि बल बिपुल उपाई। पद न टरै बैठहिं सिर नाई॥
पुनि उठि झपटहिं सुर आराती। टरै न कीस चरन एहि भाँती॥
पुरुष कुजोगी जिमि उरगारी। मोह बिटप नहिं सकहिं उपारी॥

दोहा—भूमि न छाड़त कपि चरन, देखत रिपु मद भाग।
कोटि विघ्न तें सन्त कर, मन जिमि नीति न त्याग॥ ५२॥

कपिबल देखि सकल हिय हारे। उठा आप जुबराज प्रचारे॥
गहत चरन कह बालि कुमारा। मम पद गहे न तोर उबारा॥
गहसि न रामचरन सठ जाई। सुनत फिरा मन अति सकुचाई॥
भयउ तेज हत श्री सब गई। मध्यदिवस जिमि ससि सोहई॥
सिंहासन बैठेउ सिर नाई। मानहुँ संपति सकल गवाँई॥
जगदातमा प्रान पति रामा। तासु बिमुख किमि लह बिस्रामा॥
उमा राम की भृकुटि बिलासा। होइ बिस्व पुनि पावै नासा॥
तृन तें कुलिस कुलिस तृन करई। तासु दूत पन कहु किमि टरई॥
पुनि कपि कही नीति बिधि नाना। मान न तासु काल नियराना॥
रिपु मद मथि प्रभु-सु-जस सुनायो। यह कह चलेउ बालि-नृप-जायो॥
हतउँ न खेत खेलाइ खेलाई। तोहि अबहिं का करउँ बड़ाई॥
प्रथमहि तासु तनय कपि मारा। सो सुनि रावन भयउ दुखारा॥
जातुधान अङ्गद पन देखी। भय व्याकुल सब भये बिसेखी॥

दोहा—रिपु बल धरषि हरषि कपि, बालि तनय बल पुञ्ज।
पुलक सरीर नयन जल, गहे राम पद-कञ्ज॥ ५३॥

× × × ×

अङ्गद के चले जाने के अनन्तर मन्दोदरी का पुनः रावण को समझाना, युद्धारम्भ, घोर युद्ध, माल्यवान का रावण को समझाना, युद्ध, लक्ष्मण-मेघनाद-युद्ध, लक्ष्मण-शक्ति, हनुमान का ओषधि लाने को जाना, भरत-हनुमान-सम्वाद, राम-विलाप, लक्ष्मण का अच्छा होना, कुम्भकरण-रावण-सम्वाद, कुम्भकरण-युद्ध, कुम्भकरण का मारा जाना, मेघनाद-युद्ध, मेघनाद-वध, रावण-युद्ध, रावण-यज्ञ-विध्वंस और पुनः घोर युद्ध प्रारम्भ की कथा लिखी है। जिस समय राम और

रावण का बिकट युद्ध छिड़ा उस समय राम को सामान्य वेश में देखकर बिभीषण को राम की विजय में कुछ सन्देह उत्पन्न हुआ जिसका समाधान बड़े ही धर्मोचित ढंग से गोस्वामी जी ने मर्यादापुरुषोत्तम के मुख से कराया है:—

रावण रथी बिरथ रघुबीरा। देखि बिभीषन भयेउ अधीरा ॥
अधिक प्रीति मन भा संदेहा। बंदि चरन कह सहित सनेहा ॥
नाथ न रथ नहिं पग पदत्राना। किहि बिधि जितब बीर बलवाना ॥
सुनहु सखा कह कृपानिधाना। जेहि जय होय सो स्यंदन आना ॥
सौरज धीरज जेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका ॥
बल बिबेक दम परहित घोरे। छमा दया समता रजु जोरे ॥
ईस भजन सारथी सुजाना। बिरति चर्म संतोष कृपाना ॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। बर बिज्ञान कठिन को दंडा ॥
अमल अचल मन त्रोन समाना। सम जम नियम सिलीमुख नाना ॥
कवच अभेद बिप्र-गुरु-पूजा। एहि सम बिजय उपाय न दूजा ॥
सखा धर्ममय अस रथ जाके। जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताके ॥

दोहा—महा अजय संसार रिपु, जीति सकै सो बीर।
जाके अस रथ होइ दृढ़, सुनहु सखा मतिधीर ॥१०३॥
सुनत बिभीषन प्रभु बचन, हरषि गहे पद कंज।
एहि मिस मोहि उपदेस दिय, रामकृपा सुखपुंज ॥१०४॥

× × × × ×

इसके अनन्तर पुनः घमासान युद्ध प्रारम्भ हुआ। रावण की मृत्यु, मन्दोदरी-विलाप, रावण-क्रिया, बिभीषण का राज्याभिषेक, हनुमान का सीता को लाना, सीता की अग्नि-परीक्षा, देवताओं की स्तुति और पुष्पक विमान पर चढ़ कर रामचन्द्रादि का अयोध्या-प्रत्यावर्त्तन लिखा गया है। यतः गोस्वामी जी वीररस के उद्भट कवि नहीं थे और रावण के विभव को राम की भक्ति-वश विशेष वर्णन नहीं करना चाहते थे अतः युद्ध का वर्णन फीका सा हो गया है।

उत्तरकाण्ड—यह काण्ड कुल २११ दोहों में समाप्त हुआ है। आरम्भ के दो श्लोकों में श्री रामचन्द्र जी की और तीसरे में शङ्कर की स्तुति की गई है। तदनन्तर रामचन्द्र के अयोध्या लौटने का समाचार न पाकर भरत का विलाप, हनुमान का संवाद देना, रामचन्द्र जी को लेने के लिये धूम-धाम से भरत का आगे जाना, भरत-मिलाप, अयोध्या-प्रवेश, राम-राज्याभिषेक, वेद-स्तुति, और बानरों की बिदाई का वृत्तान्त लिख गोस्वामी जी ने रामचन्द्र के राज्य का अच्छा उपदेशप्रद वर्णन किया है, जिसका कुछ अंश नीचे उद्धृत किया जाता है:—

राम राज बैठे त्रैलोका। हरषित भये गये सब सोका ॥
बैर न कर काहू सन कोई। राम प्रताप विषमता खोई ॥

दोहा—बरनाश्रम निज निज धरम, निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं, नहिं भय सोक न रोग ॥ ४३ ॥

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहिँ ब्यापा ॥
सब नर करहिं परसपर प्रीती। चलहिँ स्वधर्म निरत स्रुति रीती ॥
चारिहु चरन धरम जग माहीँ। पूरि रहा सपनेहु अघ नाहीँ ॥
राम-भक्ति-रत सब नर नारी। सकल परम गति के अधिकारी ॥
अल्प मृत्यु नहिं कवनिउँ पीरा। सब सुंदर सब बिरुज सरीरा ॥
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोइ अबुध न लच्छन हीना ॥
सब निर्दंभ धर्मरत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी ॥
सब गुनज्ञ पंडित सब ज्ञानी। सब कृतज्ञ नहिं कपट सयानी ॥

दोहा—राम राज नभगेस सुनु, सचराचर जगमाहिं।
काल कर्म सुभाउ गुन, कृत दुख काहुहि नाहिं ॥ ४४ ॥

भूमि सप्त सागर मेखला। एक भूप रघुपति कोसला ॥
भुवन अनेक रोम प्रति जासू। यह प्रभुता कछु बहुत न तासू ॥
सो महिमा समुझत प्रभु केरी। यह बरनत हीनता घनेरी ॥
सो महिमा खगेस जिन जानी। फिर एहि चरित तिन्हहुँ रति मानी ॥
सोउ जाने कर फल यह लीला। कहहिं महा मुनिवर दम सीला ॥
राम राज कर सुख संपदा। बरनि न सकै फनीस सारदा ॥
सब उदार सब पर उपकारी। बिप्र चरन सेवक नरनारी ॥
एक-नारि-ब्रत-रत सब झारी। ते मन-बच क्रम पित-हित-कारी ॥

दोहा—दंड जतिन्ह कर भेद जहँ, नर्तक नृत्य समाज।
जितहु मनहिं अस सुनिय जग, रामचन्द्र के राज ॥ ४५ ॥

फूलहिं फलहिं सदा तरु कानन। रहहिं एक संग गज पंचानन ॥
खग मृग सहज बैर बिसराई। सबन्हि परसपर प्रीति बढ़ाई ॥
कूजहिं खग मृग नाना बृंदा। अभय चरहिं बन करहिं अनंदा ॥
सीतल सुरभि पवन बह मंदा। गुंजत अलि लेइ चलि मकरंदा ॥
लता बिटप माँगे मधु चवहीं। मन भावतो धेनु पय स्रवहीं ॥
सस संपन्न सदा रह धरनी। त्रेता भइ कृत जुग कै करनी ॥
प्रगटी गिरिन्ह बिबिध मनिखानी। जगदातमा भूप जग जानी ॥
सरिता सकल बहहिं बर बारी। सीतल अमल स्वादु सुखकारी ॥
सागर निज मरजादा रहहीं। डारहिं रतन तटन्हि नर लहहीं ॥
सरसिज-संकुल सकल तड़ागा। अति प्रसन्न दस-दिसा-बिभागा ॥

दोहा—बिधु महि पूर मयूखन्हि, रबि तप जेतनेहिं काज।
माँगे बारिद देहिं जल, रामचन्द्र के राज ॥ ४६ ॥

इसके अनन्तर ही कविराज ने श्री रामचन्द्र जी के पारिवारिक प्रेम और पारस्परिक स्नेह तथा सहानुभूति का वर्णन किया है, जो उपदेशप्रद जान कर नीचे उद्धृत किया जाता है:—

कोटिन्ह बाजिमेध प्रभु कीन्हे। दान अनेक द्विजन्ह कहँ दीन्हे॥
स्रुति पथ पालक धरम धुरंधर। गुनातीत अरु भोग पुरंदर॥
पति अनकूल सदा रह सीता। सोभाखानि सुसील बिनीता॥
जानति कृपा सिंधु प्रभुताई। सेवति चरण कमल मनलाई॥
जद्यपि गृह सेवक सेवकिनी। बिपुल सकल सेवाबिधि गुनी॥
निज कर गृह परिचरजा करई। रामचन्द्र आयसु अनुसरई॥
जेहि बिधि कृपासिन्धु सुखमानइ। सोइ कर श्रीसेवाबिधि जानइ॥
कौसल्यादि सासु गृह माँहीं। सेवक सबनि मान मद नाहीं॥
उमा रमा ब्रह्मादि बंदिता। जगदम्बा संतत मनिन्दिता॥

दोहा—जासु कृपा कटाच्छसुर चाहत चितवन सोइ।
राम पदारबिन्द रति करति सुभावहिं खोइ॥४७॥

सेवहिं सानुकूल सब भाई। रामचरन रति अति अधिकाई॥
प्रभु मुख कमल बिलोकत रहहीं। कबहु कृपाल हमहिं कछु कहहीं॥
राम करहिं भ्रातन्ह पर प्रीती। नाना भाँति सिखावहिं नीती॥
हरषित रहहिं नगर के लोगा। करहिं सकल सुरदुर्लभ भोगा॥
अह निशि बिधिहि मनावत रहहीं। श्री रघुबीर चरन रति चहहीं॥
दुइ सुत सुन्दर सीता जाये। लवकुस वेद पुरानन्हि गाये॥
दोउ विजइ बिनई गुनमन्दिर। हरि प्रतिबिम्ब मनहुँ अति सुन्दर॥
दुइ दुइ सुत सब भ्रातन केरे। भये रूप गुन सील घनेरे॥

× + × × ×

राम-राज्यकाल में अयोध्या की विभूति और शोभा का इस प्रकार वर्णन किया है:—

जातरूप मनि रचित अटारी। नाना रंग रुचिर गच ढारी॥
पुर चहु पास कोर अति सुन्दर। रचे कँगूरा रंग रंग बर॥
नव ग्रह निकट अनीक बनाई। जनु घेरी अमरावति आई॥
महि बहु रंग रचित गच काँचा। जो बिलोकि मुनिवर मनु नाँचा॥
धवल धाम ऊपर नभ चुम्बत। कलस मनहुँ रविससि दुति निंदत॥
बहु मनि रचित झरोखा भ्राजहिं। गृह गृहप्रति मनिदीप बिराजहिं॥

छन्द—मनिदीप राजहिं भवन भ्राजहिं देहरी विद्रुम रची।
मनि खम्भ भीति बिरंचि विरची कनकमनि मरकत खची॥
सुन्दर मनोहर मंदिरायत अजिर रुचिर फटिक रचे।
प्रति द्वार द्वार कपाट पुरट बनाइ बहु बज्रहिं खचे॥

दोहा—चारु चित्रसाला गृह गृह प्रति लिखे बनाइ।
रामचरित जे निरखत मुनि मन लेहिं चुराइ ॥ ५० ॥

सुमन बाटिका सबहिं लगाई। बिबिध भाँति करि जतन बनाई ॥
लता ललित बहु जाति सुहाईं। फूलहिं सदा बसन्त की नाईं ॥
गुञ्जत मधुकर मुखर मनोहर। मारुत त्रिबिध सदा बहु सुन्दर ॥
नाना खग बालकन्हि जिआये। बोलत मधुर उडात सुहाये ॥
मोर हंस सारस पारावत। भवनन्हि पर शोभा अति पावन ॥
जहँ तहँ निरखहिं निज परछाहीं। बहुबिधि कूजहिं नृत्य कराहीं ॥
सुक सारिका पढ़ावहिं बालक। कहहु राम रघुपति जन पालक ॥
राजदुआर सकल बिधि चारू। बीथी चौहट रुचिर बजारू ॥

छन्द—बाजार चारु न बनइ बरनत बस्तु बिनु गथ पाइये।
जहँ भूप रमानिवास तहँ की संपदा किमि गाइये ॥
बैठे बजाज सराफ बनिक अनेक मनहुँ कुबेर ते।
सब सुखी सब सच्चरित सुंदर नारि नर सिसु जरठ जे ॥

दोहा—उत्तर दिसि सरजू बह, निर्मल जल गंभीर।
बाँधे घाट मनोहर, स्वल्प पंक नहिं तीर ॥ ५१ ॥

दूरि फराक रुचिर सो घाटा। जहँ जल पिअहिं बाजि गज ठाटा ॥
पनिघट परम मनोहर नाना। तहाँ न पुरुष करहिं अस्नाना ॥
राजघाट सब बिधि सुन्दर बर। मज्जहिं तहाँ बरन चारिउ नर ॥
तीर तीर देवन्ह के मंदिर। चहुँदिसि जिन्ह के उपवन सुन्दर ॥
कहुँ कहुँ सरिता तीर उदासी। बसहिं ज्ञानरत मुनि सन्यासी ॥
तीर तीर तुलसिका सुहाई। बृन्द बृन्द बहु मुनिन्ह लगाई ॥
पुर सोभा कछु बरनि न जाई। बाहिर नगर परम रुचिराई ॥
देखत पुरी अखिल अघ भागा। बन उपबन बापिका तड़ागा ॥

छन्द—बापी तड़ाग अनूप कूप मनोहरायत सोहहीं।
सोपान सुन्दर नीर निर्मल देखि सुर मुनि मोहहीं ॥
बहुरंग कंज अनेक खग कूजहिं मधुप गुंजारहीं।
आराम रम्य पिकादि खग रव जनु पथिक हंकारहीं ॥

दोहा—रमानाथ जहँ राजा, सो पुर बरनि कि जाइ।
अनिमादिक सुख संपदा, रही अवध सब छाइ ॥ ५२ ॥

× × × × ×

जब ते राम प्रताप खगेसा। उदित भयउ अति प्रबल दिनेसा ॥
पूरि प्रकास रहेउ तिहुँ लोका। बहुतेन्ह सुख बहुतेन्ह मन सोका ॥
जिन्हहिं सोक ते कहउँ बखानी। प्रथम अविद्या निसा नसानी ॥
अघ उलूक जहँ तहाँ लुकाने। काम क्रोध कैरव सकुचाने ॥

विविध कर्म गुन काल सुभाऊ। ए चकोर सुख लहहिं न काऊ॥
मत्सर मान मोह मद चोरा। इन्ह कर हुनर न कवनिहुँ ओरा॥
धरम तड़ाग ज्ञान बिज्ञाना। ए पंकज बिकसे बिधि नाना॥
सुख संतोष बिराग बिबेका। बिगत सोक ए कोक अनेका॥

दोहा—यह प्रताप रवि जाके उर जब करइ प्रकास।
पछिले बाढहिं प्रथम जे कहे ते पावहिं नास॥ ५४॥

× × × × × ×

इसके अनन्तर सनक सनन्दन-सम्वाद, भरत के प्रश्न पर रामचन्द्र का उपदेश, भक्त-महिमा-कथन, वसिष्ठकृत स्तुति, नारदकृत स्तुति, काकभुसुंडि और गरुड़ की कथा तथा रामचरित्र वर्णन का वृत्तान्त पार्वती को सुनाना, संक्षिप्त रामचरित्र वर्णन और भक्ति तथा ज्ञान का निरूपण किया गया है। अन्त में कविराज ने आलङ्कारिक रीति पर मनुष्य के मानसिक रोगों का वर्णन करके समस्त निदान लिख कर ईश्वर-भक्ति की अमोघ औषधि का सेवन करना ही श्रेयस्कार बतलाया है:—

मानस रोग कहहु समुझाई। तुम्ह सर्वज्ञ कृपा अधिकाई॥
तात सुनहु सादर अति प्रीती। मैं संछेप कहउँ यह नीती॥
नर तन सम नहिं कवनिउ देही। जीव चराचर जाचत जेही॥
नरक सर्ग अपवर्ग निसेनी। ज्ञान बिराग भगति सुख देनी॥
सो तनु धरि हरि भजहिं न जे नर। होहिं विषयरत मन्द मन्दतर॥
काँच किरिच बदले जिमि लेहीं। करतें डारि परसमनि देहीं॥
नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं। सन्त मिलन सम सुख कहुँ नाहीं॥
पर उपकार बचन मन काया। सन्त सहज सुभाव खगराया॥
सन्त सहहिं दुख परहित लागी। पर दुख हेतु असन्त अभागी॥
भू रज तरु सम सन्त कृपाला। परहित नित सह बिरति बिसाला॥
सन इव खल पर बन्धन करई। खाल कढाइ बिरति सहि मरई॥
खल बिनु स्वारथ पर अपकारी। अहि मूषक इव सुनु उरगारी॥
पर संपदा बिनासि नसाहीं। जिमि ससि हति हिम उपल बिलाहीं॥
दुष्ट उदय जग आरत हेतू। जथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतू॥
सन्त उदय सन्तत सुखकारी। बिस्वसुखद जिमि इन्दु तमारी॥
परम धरम स्रुतिबिदित अहींसा। पर निंदा सम अघ न गिरीसा॥
हरि गुरु निंदक दादुर होई। जनम सहस्र पाव तन सोई॥
द्विज निंदक बहु नरक भोग करि। जग जन मइ बायस सरीर धरि॥
सुर स्रुति निंदक जे अभिमानी। रौरव नरक परहिं ते प्रानी॥
होहिं उलूक सन्त निंदा रत। मोह निसा प्रिय ज्ञान भानु मत॥
सबकै निंदा जे जड करहीं। ते चमगादुर होइ अवतरहीं॥
सुनहु तात अब मानसरोगा। जेहि तें दुख पावहिँ सब लोगा॥

मोह सकल व्याधिन कर मूला। तेहि तें पुनि उपजइ बहु सूला ॥
काम बात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा ॥
प्रीति करहिं जौ तीनिउ भाई। उपजइ सन्निपात दुखदाई ॥
विषय मनोरथ दुर्गम नाना। ते सब सूल नाम को जाना ॥
ममता दादु कंडु इरषाई। हरष विषाद गरह बहुताई ॥
पर सुख देखि जरनि सो छई। कुष्ट दुष्टता मन कुटिलई ॥
अहंकार अति दुखद डबँरुआ। दंभ कपट मद मान नहरुआ ॥
तृस्ना उदरबृद्धि अति भारी। त्रिबिधि ईषना तरुन तिजारी ॥
जुगबिधि ज्वर मत्सर अविवेका। कहँ लगि कहउँ कुरोग अनेका ॥

दोहा—एक ब्याधि वस नर मरहिं ए असाध्य बहु व्याधि।
पीडहिं संतत जीव कहँ सो किमि लहइ समाधि ॥२०८॥
नेम धर्म आचार तप ज्ञान जज्ञ जप दान।
भेषज पुनि कोटिक नहीं रोग जाहिं हरिजान ॥२०९॥

एहि बिधि सकल जीव जड रोगी। सोक हरष भय प्रीति वियोगी ॥
मानस रोग कछुक मैं गाये। होहिं सब के लखि बिरलइ पाये ॥
जाने तें छीजहिं कछु पापी। नास न पावहिं जन परितापी ॥
विषय कुपथ्य पाइ अंकुरे। मुनिहु हृदय का नर बापुरे ॥
रामकृपा नासहिं सब रोगा। वे एहि भाँति बनइ संयोगा ॥
सद् गुरु वेद बचन बिस्वासा। संजम यह न बिषय कै आसा ॥
रघुपति भगति सजीवन भूरी। अनूपान स्रद्धा मति पूरी ॥
एहि बिधि भलेहि सो रोग नसाहीं। नाहिं त जतन कोटि नहिं जाहीं ॥
जानिय तब मन बिरुज गोसाईं। जब उरबल विराग अधिकाई ॥
सुमति छुधा बाढइ नित नई। विषय आस दुर्बलता गई ॥
विमल ज्ञान जल जब सो नहाई। तब रह राम भगति उर छाई ॥
सिव अज सुक सनकादिक नारद। जे मुनि ब्रह्म विचार विसारद ॥
सब कर मत खग नायक एहा। करिय राम पद पंकज नेहा ॥
स्रुति पुरान सब ग्रंथ कहाहीं। रघुपति भगति बिना सुख नाहीं ॥
कमल पीठि जामहिं बरु बारा। बंध्यासुत बरु काहुहि मारा ॥
फूलहिं नभ बरु बहुविधि फूला। जीवन लह सुख हरि प्रतिकूला ॥
तृषा जाइ बरु मृगजल पाना। बरु जामहिं सससीस विखाना ॥
अंधकार बरु रसहिं नसावइ। राम बिमुख न जीव सुख पावइ ॥
हिम तें अनल प्रगट बरु होई। विमुख राम सुख पाव न कोई ॥

दोहा—बारि मथे घृत होई बरु सिकतातें बरु तेल।
विनु हरि भजन न भव तरहिं यह सिद्धांत अपेल ॥२१०॥

इसके अनन्तर रामायण-माहात्म्य, फलस्तुति लिख कर कवि-कुल-तिलक ने सप्त सोपान की समाप्ति की है।

रामचरितमानस के सदुपदेशात्मक पद्य

यों तो इस अद्भुत ग्रन्थ में स्थल-स्थल पर पावन उपदेशरत्न भरे पड़े हैं, परन्तु नीचे कुछ शिक्षात्मक काव्यों का उद्धरण किया जाता है जो समस्त ग्रन्थ से चुने हुए हैं:—

बिनु सतसंग विवेक न होई। राम कृपा बिनु सुलभ न सोई॥
बायस पालिय अति अनुरागा। होहिं निरामिष कबहुँ कि कागा॥
उपजहिं एक संग जल माहीं। जलज जोंक जिमि गुन बिलगाहीं॥
भल अनभल निज निज करतूती। लहत सुयश अपलोक विभूती॥
गुण अवगुण जानत सब कोई। जो जेहि भाव नीक तेहि सोई॥

दोहा—भलै भलाई पै लहहिं, लहहिं निचाई नीच।
सुधा सराहिय अमरता, गरल सराहिय मीच॥
जड़ चेतन गुण दोष मय, बिस्व कीन्ह करतार।
सन्त हंस गुण गहहिं पय, परिहरि वारि विकार॥

खलहु करहिं भल पाय सुसंगू। मिटै न मलिन सुभाव अभंगू॥
उघरहिं अन्त न होय निबाहू। कालनेमि जिमि रावन राहू॥
हानि कुसंग सुसंगति लाहू। लोकहुँ वेद विदित सब काहू॥
गगन चढ़े रज पवन प्रसंगा। कीचहिं मिलइ नीच जल संगा॥
मति अति नीच ऊंच रुचि आछी। चहिय अमिय जग जुरै न छाछी॥
निज कवित्त केहि लागि न नीका। सरस होइ अथवा अति फीका॥
सज्जन सकृत-सिन्धु सम कोई। देखि पूर बिधु बाढ़इ जोई॥

दोहा—अति अपार जे सरित वर, जो नृप सेतु कराहिं।
चढ़ि पिपीलिका परम लघु, बिनु श्रम पारहिं जाहिं॥

राखइ गुरु जो कोप बिधाता। गुरु विरोध नहिं कोउ जग त्राता॥
वड़े सनेह लघुन पर करहीं। गिरि निजि सिरन्हि सदा तृन धरहीं॥

दोहा—भरद्वाज सुनु जाहि जब, होइ बिधाता बाम।
धूरि मेरु सम जनक यम, ताहि व्याल सम दाम॥
तुलसी जसि भवितव्यता, तैसी मिले सहाय।
आपु न आवै ताहि पै, ताहि तहाँ लै जाय॥

जिन्हकै लहहिं न रिपु रन पीठी। नहिं लावहिं परतिय मन डीठी॥
मंगन लहहिं न जिन्ह कै नाहीं। ते नर वर थोरे जगमाहीं॥
चतुर सखी बोली मृदुबानी। तेजवन्त लघु गनिय न रानी॥
कहँ कुम्भज कहँ सिन्धु अपारा। सोखेउ सुजस सकल संसारा॥
रवि मंडल देखत लघु लागा। उदय तासु त्रिभुवन तम भागा॥
का वरषा जब कृषी सुखाने। समय चूकि पुनि का पछताने॥

दोहा—शूर समर करनी करहिं, कहि न जनावहिं आपु।
विद्यमान रन पाय रिपु, कायर कथहिं प्रलापु॥

जो लरिका कछु अचगरि करहीं। गुरु पितु मातु मोद मन भरहीं॥
बररे बालक एक स्वभाऊ। इनहिं न सन्त विदूषहि काऊ॥
टेढ़ जानि शंका सब काहू। बक्र चन्द्रमहिं ग्रसै न राहू॥
क्षत्रिय तनु धरि समर सकाना। कुल कलंक तेहि पामर जाना॥
विप्र वंश की असि प्रभुताई। अभय होइ जो तुमहिं डेराई॥
जे गुरु चरण रेणु शिर धरहीं। ते जनु सकल विभव बस करहीं॥
सेवक सदन स्वामि आगमनू। मंगल मूल अमंगल दमनू॥
ऊँच निवास नीच करतूती। देखि न सकहिं पराइ विभूती॥

दोहा—काने खोरे कूबरे, कुटिल कुचाली जान।
तिय विशेष पुनि चेरि कहि, भरत मातु मुसुकान॥

रहा प्रथम अब ते दिन बीते। समउ फिरे रिपु होहिं पिरीते॥

दोहा—अपने चलत न आजु लगि, अनभल काहुक कीन्ह।
केहि अघ एकहिं बार मोहिं, दैव दुसह दुख दीन्ह॥

अरिवश दैव जियावत जाही। मरन नीक तेहि जीव न चाही॥
को न कुसंगति पाइ नसाई। रहै न नीच मते चतुराई॥
शिवि दधीचि बलि जो कछु भाषा। तन धन तजेहु वचन प्रण राखा॥
जासु स्वभाव असिहु अनुकूला। सो किमि करहिं मातु प्रति कूला॥
दुइकि होइ इक संग भुआलू। हसब ठठाइ फुलाइब गालू॥
पुनि पछितैहसि अन्त अभागी। मारसि गाय नाहरू लागी॥
सुनु जननी सोइ सुत बड़ भागी। जो पितु मातु वचन अनुरागी॥
तनय मातु पितु पोषन हारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा॥
धन्य जनम जगतीतल तासू। पितहिं प्रमोद चरित सुनि जासू॥

दोहा—का नहिं पावक जरि सकै, का न समुद्र समाय।
का न करै अबला प्रबल, केहि जग काल न खाय॥
गुरु श्रुति सम्मत धर्म फल, पाइय बिनहिं कलेस।
हठ बस सब सङ्कट सहे, गालव नहुष नरेस॥

मानस सलिल सुधा प्रति पाली। जिअइ कि लवण पयोधि मराली॥
तनु धनुधाम धरनि पुर राजू। पति विहीन सब शोक समाजू॥
जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसेहि नाथ पुरुष बिनु नारी॥

दोहा—मातु पिता गुरु स्वामि सिख, सिर धरि करहिं सुभाय।
लहेहु लाभ तिन्ह जन्म के, नतरु जन्म जग जाय॥

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी । सो नृप अवसि नरक अधिकारी ॥
धर्मनीति उपदेशिय ताही । कीरति भूति सुगति प्रिय जाही ॥
पुत्रवती युवती जग सोई । रघुपति भक्त जासु सुत होई ॥

दोहा—और करै अपराध कोउ, और पाव फल भोग ।
अति विचित्र भगवन्त गति, को जग जानै जोग ॥
सपने होइ भिखारि नृप, रंक नाकपति होइ ।
जागे लाभ न हानि कछु, तिमि प्रपञ्च जग जोइ ॥

शिवि दधीचि हरिचन्द नरेशा । सहे धर्म हित कोटि कलेशा ॥
धर्म न दूसर सत्य समाना । आगम निगम पुरान बखाना ॥
नहिं असत्य सम पातक पुंजा । गिरिसम होहिं कि कोटिक गुञ्जा ॥
सम्भावित कहँ अपयस लाहू । मरण कोटि सम दारुण दाहू ॥

दोहा—सुनहु भरत भावी प्रबल, बिलखि कहेउ मुनि नाथ ।
हानि लाभ जीवन मरन, यश अपयश विधि हाथ ॥

सोचिय विप्र जो वेद विहीना । तजि निज धर्म विषय लवलीना ॥

दोहा—अनुचित उचित बिचार तजि, ते पालहिं पितु बैन ।
ते भाजन सुख सुयश के, बसहिं अमरपति ऐन ॥

गुरु पितु मातु स्वामि हित बानी । सुनि मन मुदित करिय भल जानी ॥
सरुज शरीर बादि बहु भोगा । बिनु हरि भगति जाय जपयोगा ॥

दोहा—कारन ते कारज कठिन, होइ दोष नहिं मोर ।
कुलिश अस्थि ते उपलते, लोह कराल कठोर ॥
ग्रह ग्रहीत पुनि वात वश, तापर बीछी मार ।
ताहि पिलाइय वारुणी, कहो कौन उपचार ॥

माँगउ भीख त्यागि निज धरमू । आरत काह न करहिं कुकरमू ॥
लोक वेद सम्मत सब कहई । जेहि पितु देइ राज सो लहई ॥
मुनिहिं सोच पाहुन बड़ नेवता । तसि पूजा चहिये जस देवता ॥
कर्म प्रधान विश्व कर राखा । जो जस करै सो तस फल चाखा ॥
सहसा करि पाछे पछिताहीं । कहहिं वेद बुध ते बुध नाहीं ॥
हमहिं अगम अति दरस तुम्हारा । जस मरु धरनि देव धुनि धारा ॥
आरत कहहिं विचारिन काऊ । सूझ जुआरिहिं आपनि दाऊ ॥
हित अनहित निज पशु पहिचाना । मानुष तन गुन ज्ञान निधाना ॥
कहेउ बचन सब स्वारथ हेतू । रहत न आरत के चित चेतू ॥
कसे कनक मनि पारिख पाये । पुरुष परखिये समय सुभाये ॥
प्रभु अपने नीचहुँ आदरहीं । अग्नि धूम गिरि तृण सिर धरहीं ॥
उदधि अगाध मौलि वह फेनू । सन्तत धरणि धरत सिर रेनू ॥

स्वामि धरम स्वारथहिं बिरोधू। बधिरु अन्ध प्रेमहिं न प्रबोधू॥
पशु नाचत सुक पाठ प्रवीना। गुण गति नट पाठक आधीना॥
होहिं कुठाय सुबन्धु सहाये। ओड़ियहि हाथ असनि के घाये॥

दोहा—सेवक कर पद नयन से, मुख से साहिब होय।
तुलसी प्रीति कि रीति सुनि, सुकबि सराहहिं सोय॥

गुरु पितु मातु स्वामि सिख पाले। चलेहु कुमग पग परहिं न खाले॥
धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपति काल परखिये चारी॥
पति बंचक पर पति रति करई। रौरव नरक कल्प सत परई॥
परहित बस जिनके मन माहीं। तिन्ह कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥

दोहा—लोभ के इच्छा दम्भ बल, काम के केवल नारि।
क्रोध के परुष बचन बल, मुनिवर कहहिं बिचारि॥

जे न मित्र दुख होंहि दुखारी। तिनहिं बिलोकत पातक भारी॥
सेवक सठ नृप कृपन कुनारी। कपटी मित्र सूल सम चारी॥
अनुज बधू भगिनी सुत नारी। सुनु सठ ये कन्या सम चारी॥
इनहिं कुदृष्टि बिलोकै जोई। ताहि बधे कछु पाप न होई॥
छिति जल पावक गगन समीरा। पञ्च रचित यह अधम शरीरा॥
तब मारीच हृदय अनुमाना। नवहिं बिरोधे नहिं कल्याना॥
शस्त्री मर्मी प्रभु सठधनी। वैद्य बन्दि कबि मानस गुनी॥
सुर नर मुनि सब की यहि रीती। स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती॥
भानु पीठ सेइय उर आगी। स्वामिहिं सर्व भाव छल त्यागी॥

दोहा—तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिय तुला इक अङ्ग।
तुलैं न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सत सङ्ग॥
सचिव वैद्य गुरु तीनि जो, प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तनु तीन कर, होइ बेगि ही नास॥
सरनागत कहँ जे तजहिं, निज अनहित अनुमानि।
ते नर पाँवर पाप मय, तिनहिं बिलोकत हानि॥

वरु भल वास नरक कर ताता। दुष्ट संग जनि देहु बिधाता॥
कादर मन कर एक अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा॥
हरिहर निन्दा सुनहि जे काना। होइ पाप गो घात समाना॥
साम दाम अरु दण्ड विभेदा। नृप उर बसहिं नाथ कह बेदा॥
सुत बित नारि भवन परिवारा। होहिं जाहिं जग बारहिं बारा॥
अस विचारि जिय जागहु ताता। मिलहिं न जगत सहोदर भ्राता॥
छूटै मल कि मलहि के धोये। घृत कि पाव कोउ बारि बिलोये॥
मोह न अन्ध कीन्ह केहि केही। को जग काम नचाव न जेही॥
तृष्णा केहि न कीन्ह बौराहा। केहि कर हृदय क्रोध नहिं दाहा॥

चिन्ता साँपिनि काहि न खाया। को जग जाहि न व्यापी माया॥
जब जेहि दिशि भ्रम होइ खगेसा। सो कह पच्छिम उगहिं दिनेसा॥

सोरठा—गुरु बिनु होइ कि ज्ञान, ज्ञान कि होइ बिराग बिनु।
गावहिं वेद पुरान, सुख कि लहहिं हरि भक्ति बिनु॥
कोउ विश्राम कि पाव, तात सहज सन्तोष बिनु।
चलै कि जल बिनु नाव, कोटि जतन पचि पचि मरै॥

सन्त हृदय नवनीत समाना। कहा कबिन पै कहै न जाना॥
निज परिताप द्रवै नवनीता। पर दुख द्रवै सो संत पुनीता॥

× × × × ×

[२] **कवितावली**—वा कवित्तरामायण 'रामचरित-मानस' की भाँति यह ग्रन्थ भी क्रमबद्ध सात काण्डों में समाप्त हुआ है। कथाएँ भी प्रायः वे ही हैं, परन्तु ग्रन्थ रामायण की अपेक्षा अत्यन्त लघुकाय है। इसमें सवैया, कबित्त, घनाक्षरी, छप्पय और झूलना छन्दों के प्रयोग किये हैं। इस ग्रन्थ का भी 'उत्तर-काण्ड' रामायण की भाँति ही मिश्रित विषयों से परि-पूर्ण है। इस काण्ड के विषय-वर्णन में कोई क्रम नहीं मिलता और न इसकी रचना ही क्रमबद्ध हुई है। स्फुट-काव्य की भाँति इसके छन्द समय समय पर बने हैं। कई छन्द तो 'समस्या-पूर्त्ति' से प्रतीत होते हैं। सम्भव है कि गोस्वामी जी के स्वर्ग-वास के अनन्तर उन स्फुट काव्यों के संग्रह को ग्रन्थ का स्वरूप प्राप्त हुआ हो।

बालकाण्ड—यह काण्ड केवल बाईस कवित्तों में समाप्त हुआ है। आरम्भ के सात सवैया छन्दों में राम के बालपन का वर्णन बड़ी विशद रीति से किया है:—

सवैया-अवधेस के द्वारे सकारे गई, सुत गोद कै भूपति लै निकसे।
अवलोकिहौं सोच बिमोचन को, ठगि सी रही जे न ठगे धिक से॥
तुलसी मनरंजन रंजित अंजन, नैनसु खंजन जातक से।
सजनी ससि में सम सील उभै, नवनील सरोरुह से विकसे॥ १॥
पग नूपुर औ पहुँची कर कंजनि, मंजु बनी मनिमाल हिये।
नवनील कलेवर पीत झँगा, झलकै पुलकै नृप गोद लिये॥
अरबिंद सो आनन रूपमरंद, अनंदित लोचन-भृंग पिये।
मन मों न बस्यो अस बालक जौं, तुलसी जग में फल कौन जिये॥ २॥
तन की दुति स्याम सरोरुह लोचन, कंज की मंजुलताई हरैं।
अति सुंदर सोहत धूरि भरे, छबि भूरि अनंग की दूरि धरैं॥
दमकैं दँतियाँ दुति दामिनि ज्यों, किलकैं कल बाल बिनोद करैं।
अवधेस के बालन चारि सदा, तुलसी-मन मन्दिर में बिहरैं॥ ३॥

कबहूँ ससि माँगत आरि करैं, कबहूँ प्रतिबिंब निहारि डरैं।
कबहूँ करताल बजाइ कै नाचत, मातु सबै मन मोद भरैं॥
कबहूँ रिसिआइ कहैं हठि कै, पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं।
अवधेस के बालक चारि सदा, तुलसी-मन मन्दिर में बिहरैं॥४॥
बर दंत की पंगति कुंदकली, अधराधर पल्लव खोलन की।
चपला चमकै घन बीच जगै, छबि मोतिन माल अमोलन की॥
घुँघुरारि लटैं लटकैं मुख ऊपर, कुंडल लोल कपोलन की।
निवछावरि प्रान करै तुलसी, बलि जाउँ लला इन बोलन की॥५॥
पदकंजनि मंजु बनी पनहीं, धनुहीं सर पंकज पानि लिये।
लरिका सँग खेलत डोलत हैं, सरजू तट चौहट हाट हिये॥
तुलसी अस बालक सों नहिं नेह, कहा जप जोग समाधि किये।
नर ते खर सूकर स्वान समान, कहौ जग में फल कौन जिये॥६॥
सरजू बर तीरहिं तीर फिरैं, रघुबीर, सखा अरु बीर सबै।
धनुहीं कर तीर, निषंग कसे कटि, पीत दुकूल नवीन फबै॥
तुलसी तेहि औसर लावनितादस, चारि, नौ तीनि, इकीस सबै*।
मति-भारति पंगु भई जो निहारि, बिचारि फिरी उपमा न पबै॥७॥

इन सात कवित्तों के बाद ही कवि ने धनुष-यज्ञ का प्रकरण छेड़कर परशुराम और राम का संवाद लिखा है। अन्त में नीचे लिखी सवैया देकर कांड की समाप्ति की है:—

काल कराल नृपालन के, धनुभंग सुने फरसा लिए धाए।
लक्खन राम बिलोकि सप्रेम, महा रिसिते फिरि आँखि दिखाए॥
धीर सिरोमनि बीर बड़े, विनयी, बिजयी रघुनाथ सुहाए।
लायक हे भृगुनायक सो, धनुसायक सौंपि सुभाय सिधाए॥२॥

अयोध्याकाण्ड—कविने इस काण्ड को २८ छन्दों में समाप्त किया है। रामबनवास, गंगापार उतरना और मार्ग की कुछ कथाओं के उल्लेख से काण्ड की समाप्ति की है। उदाहरणार्थ दो छन्द नीचे दिये जाते हैं:—

---

* ७ दस, चारि······सबै = दस गुण माधुर्य के (रूप, लावण्य, सौन्दर्य, माधुर्य, सौकुमार्य, यौवन, सुगन्ध, सुवेश, भाग्य, स्वच्छता, उज्वलता)। चार गुण प्रताप के (ऐश्वर्य्य, वीर्य्य, तेज, बल)। ऐश्वर्य्य के नौ गुण (अदभ्रता, नियतात्मता, वशीकरण, वाग्मित्व, सर्वज्ञता, संहनन, स्थिरता, वदान्यता और सरलता)। प्रकृति के तीन गुण (सौम्यता, रमण, व्यापकता)। यश के २१ गुण (सुशीलता, वात्सल्य, सुलभता, गम्भीरता, क्षमा, दया, करुणा, आर्द्रव, उदारता, आर्जव, शरण्यत्व, सौहार्द, चातुर्य्य, प्रीतिपालन, कृतज्ञता, ज्ञान, नीति, लोकप्रियता, कुलीनता, अनुराग, निबर्हणता)।

घनाक्षरी

जलजनयन, जलजानन, जटा है सिर,
जोबन उमंग अंग उदित उदार हैं।
साँवरे गोरे के बीच भामिनी सुदामिनी सी,
मुनि पट धरे, उर फूलनि के हार हैं॥
करनि सरासन सिलीमुख, निषंग कटि,
अतिही अनूप काहू भूप के कुमार हैं।
तुलसी बिलोकि कै तिलोक को तिलक तीनि,
रहे नर नारि ज्यों चितेरे चित्रसार हैं॥ १४॥
आगे सोहै साँवरो कुवँर, गोरो पाछे पाछे,
आछे मुनि वेष धरे लाजत अनंग हैं।
वान विसिषासन, बसन बन ही के कटि,
कसे हैं बनाइ, नीके राजत निषंग हैं॥
साथ निसिनाथ मुखी पाथ नाथ नंदिनी सी,
तुलसी बिलोके चित लाइ लेत संग हैं।
आनन्द उमंग मन, जोबन उमंग तन,
रूप की उमंग उमगत अंग अंग हैं॥ १५॥

× × + × ×

अरण्यकाण्ड—नीचे लिखी एक सवैया में कवि ने इस काण्ड को समाप्त किया है:—

दोहा—पंचवटी बट पर्नकुटी तर, बैठे हौं राम सुभाय सुहाए।
सोहै प्रिया, प्रियबंधु लसै, तुलसी सब अंग घने छबि छाए॥
देखि मृगा मृगनैनी कहे, प्रियबैन ते प्रीतम के मन भाए।
हेमकुरंग के संग सरासन, सायक लै रघुनायक धाए॥१॥

किष्किन्धाकाण्ड—यह काण्ड भी एक ही कवित्त में इस प्रकार समाप्त हुआ है:—

जब अंगदादिन की मति गति मंद भई,
पवन के पूत को न कूदिबेको पलु गो।
साहसी ह्वै सैल पर सहसा सकेलि आइ,
चितवत चहूँ ओर, औरन को कलु गो॥
तुलसी रसातल को निकसि सलिल आयो,
कोल कलमल्यो, अहि कमठ को बलु गो।
चारहू चरन के चपेट चापे चिपिट गो,
उचके उचकि चारि अंगुल अचलु गो॥

सुन्दरकाण्ड—बत्तीस कवित्तों में यह काण्ड पूर्ण हुआ है। इसमें हनुमान द्वारा लङ्का-दहन की कथा स्थानानुसार विस्तार से लिखी है। उदाहरणार्थ कुछ वर्णन नीचे दिया जाता है:—

× × × ×

माली मेघमाल बनपाल बिकराल भट,
नीके सब काल सींचै सुधासार नीर को।
मेघनाद तें दुलारो प्रान तें पियारो बाग,
अति अनुराग जिय जातुधान धीर को॥
तुलसी सो जानि सुनि, सीय को दरस पाइ,
पैठो बाटिका बजाइ बल रघुबीर को।
विद्यमान देखत दसानन को कानन सो,
तहस-नहस कियो साहसी समीर को॥ २॥

× × × ×

बालधी बिसाल बिकराल ज्वाल-जाल मानौं,
लंक लीलिबे को काल रसना पसारी है।
कैधौं व्योम बीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु,
बीर रस बीर तरबारि सी उघारी है॥
तुलसी सुरेस-चाप, कैधौं दामिनी कलाप,
कैधौं चली मेरु तें कृसानु सरि भारी है।
देखे जातुधान जातुधानी अकुलानी कहैं,
"कानन उजारयौ अब नगर प्रजारी है" ॥ ५॥

× × × ×

'पानी पानी पानी' सब रानी अकुलानी कहैं,
जाति है परानी, गति जानि गज चालि है।
बसन बसारैं मनि भूषन सँभारत न,
आनन सुखाने कहैं "क्योंहू कोऊ पालि है?"
तुलसी मँदोषै मीजि हाथ, धुनि माथ कहै,
"काहू कान कियो न मैं कह्यो केतो कालि है॥"
बापुरो बिभीषन पुकारि बार बार कह्यो,
"बानर बड़ी बलाइ घने घर घालि है" ॥१०॥

× × × ×

हाट, बाट, कोट, ओट, अट्टनि, अगार, पौरि,
खोरि खोरि दौरि दौरि दीन्ही अति आगि हैं।
आरत पुकारत, सँभारत न कोऊ काहू,
ब्याकुल जहाँ सो तहाँ लोग चले भागि हैं॥

बालधी फिरावै बार बार झहरावे, झरैं,
बूँदियासी, लंक पघिलाइ पाग पागि है ॥
तुलसी बिलोकि अकुलानी जातुधानी कहैं,
"चित्रहू के कपि सों निसाचर न लागि है" ॥१४॥

× × × ×

नगर कुबेर को सुमेरु की बराबरी,
बिरंचि बुद्धि को विलास लंक निरमान भो।
ईसहि चढ़ाय सीस बीसबाहु बीर तहाँ,
रावन सो राजा रजतेज को निधान भो ॥
तुलसी त्रिलोक की समृद्धि सौज संपदा,
सकेलि चाकि राखी रासि, जाँगर जहान भो।
तीसरे उपास बनवास सिंधु पास सो,
समाज महराज जू को एक दिन दान भो ॥३२॥

लंकाकाण्ड—कवि ने ५८ छन्दों में इस काण्ड को समाप्त किया है। रामचरितमानस की भाँति ही इसमें राम-रावण के युद्ध का वर्णन किया गया है। उदाहरणार्थ कुछ छन्द नीचे दिये जाते हैं :—

झूलना—सुभुज मारीच खर त्रिसिर दूषन बालि,
दलत जेहि दूसरो सर न साध्यो।
आनि परबाम बिधि बाम तेहि राम सों,
सकत संग्राम दसकंध काँध्यो ॥
समुझि तुलसीस कपि कर्म घर घर घैरु,
बिकल सुनि सकल पाथोधि बाँध्यो।
बसत गढ़ लङ्क लंकेस नायक अछत,
लङ्क नहिं खात कोउ भात राँध्यो ॥ ४ ॥

सवैया-विस्वजयी भृगुनायक से, बिनु हाथ भये हनि हाथ-हजारी।
बातुल मातुल की न सुनी सिख, का तुलसी कपि लङ्क न जारी ? ॥
अजहूँ तौ भलो रघुनाथ मिले, फिरि बूझिहै को गज कौन गजारी।
कीर्त्ति बड़ो, करतूति बड़ो जन, बात बड़ो, सो बड़ोई बजारी ॥ ५ ॥
जब पाहन भे बनवाहन से, उतरे बनरा 'जय राम' रढ़े।
तुलसी लिये सैल-सिला सब सोहत, सागर ज्यों बलबारि बढ़े ॥
करि कोप करैं रघुबीर को आयसु, कौतुक ही गढ़ कूदि चढ़े।
चतुरङ्ग चमू पल में दलि कै, रन रावन राढ़ के हाड़ गढ़े ॥ ६ ॥

× × × ×

अङ्गद और रावण के सम्वाद से निम्नलिखित काव्य उद्धृत किये जाते हैं:—

सवैया—तोसों कहौं दसकन्धर रे, रघुनाथ-बिरोध न कीजिये बौरे।
बालि बली खरदूषन और, अनेक गिरे जे जे भीति में दौरे॥
ऐसिय हाल भई तोहिं धौं, नतु लै मिलु सीय चहै सुख जौरे।
राम के रोष न राखि सकैं, तुलसी बिधि, श्री पति, शंकर सौरे॥१२॥
तू रजनी चर नाथ महा, रघुनाथ के सेवक को जन हौं हौं।
बलवान है स्वान गली अपनी, तोहिं लाज न गाल बजावत सौं हौं॥
बीस भुजा दस सीर हरौं, न डरौं प्रभु आयस भङ्ग तजौं हौं।
खेत में केहरि ज्यों गजराज, दलौं दल बालि को बालक तौं हौं॥१३॥
कोसलराज के काज हौं आज, त्रिकूट उपारि लै बारिधि बोरौं।
महाभुज-दंड द्वै अंडकटाह, चपेट की चोट चटाक दै फोरौं॥
आयसु भङ्ग ते जौं न डरौं, सब मीजि सभासद सोनित खोरौं।
बालि को बालक जौ तुलसी, दसहू मुख के रन में रद तोरौं॥१४॥
अति कोप सों रोप्यो है पाँव सभा, सब लङ्क ससंकित सोर मचा।
तमके घननाद से बीर प्रचारी कै, हारि निसाचर सैन पचा॥
न टरै पग मेरुहु तें गुरु भो, सो मनों महि संग बिरंचि रचा।
तुलसी सब सूर सराहत हैं "जग में बलसालि है बालि-बचा"॥१५॥

× × × ×

राम-रावण युद्ध के कुछ उद्धरण नीचे किये जाते हैं:—

सवैया—तीखे तुरंग कुरंग सुरंगनि, साजि चढ़े छँटि छैल छबीले।
भारी गुमान जिन्हें मन में, कबहूँ न भये रन में तनु ढीले॥
तुलसी गज से-लखि केहरि लौं, झपटे पटके सब सूर सलीले।
भूमि परे भट घूमि कराहत, हाँकि हने हनुमान हठीले॥३२॥
सूर सजोइल साजि सुबाजि, सुसेल धरे बगमेल चले हैं।
भारी भुजा भरी, भारी सरीर, बली बिजयी सब भाँति भले हैं॥
तुलसी जिन्हें धाये धुकै धरनीधर, धौर धकानि सो मेरु हले हैं।
ते रन-तीर्थनि लक्खन लाखन-दानि ज्यों दारिद दाबि दले हैं॥३३॥
गहि मंदर बंदर भालु चले, सो मनो उनये घन सावन के।
तुलसी उत झुंड प्रचण्ड झुके, झपटैं भट जे सुरदावन के॥
बिरुझे बिरुदैत जे खेत अरे, न टरे हठि बैर बढ़ावन के।
रन मारि मची उपरी उपरा, भले बीर रघुप्पति रावन के॥३४॥
सर तोमर सेल समूह पँवारत, मारत बीर निसाचर के।
इत तें तरु ताल तमाल चले, खर खंड प्रचंड महीधर के॥
तुलसी करि केहरि-नाद भिरे, भट खग्ग खगे खपुवा खर के।
नख दंतन सों भुजदंड बिहंडत, मुंड सो मुंड परे झर के॥३५॥
रजनीचर मत्तगयन्द-घटा, बिघटै मृगराज के साज लरै।
झपटै भट कोटि मही पटकै, गरजै रघुबीर की सौंह करै॥

तुलसी उत हाँक दसानन देत, अचेत भे बीर को धीर धरै।
विरुझो रन मारुत को बिरुदैत, जो कालहु कालसो बूझि परै ॥३६॥
जे रजनीचर बीर बिसाल, कराल बिलोकत कालन खाए।
ते रन रौर कपीस-किसोर, बड़े बरजोर परे फँग पाए॥
लूम लपेटि अकास निहारि कै, हाँक हठी हनुमान चलाए।
सूखि गे गात चले नभ जात, परे भ्रम-बातन भूतल आए ॥३७॥
जो दससीस महीधर-ईस को, बीस भुजा खुलि खेलन हारो।
लोकप दिग्गज दानव देव, सबै सहमैं सुनि साहस भारो॥
बीर बड़ो बिरुदैत बली, अजहूँ जग जागत जासु पँवारो।
सो हनुमान हनी मुठिका, गिरि गो गिरिराज ज्यों गाज को मारो ॥३८॥
दुर्गम दुर्ग पहार तें भारे, प्रचण्ड महा भुजदण्ड बने हैं।
लक्ख में पक्खर तिक्खन तेज, जे सूर समाज में गाज गने हैं॥
ते बिरुदैत बली रन बाँकुरे, हाँकि हठी हनुमान हने हैं।
नाम लै राम दिखावत बंधु को, घूमत घायल घाय घने हैं ॥३९॥

घनाक्षरी—हाथिन सों हाथी मारे, घोड़े घोड़े सों सँहारे,
रथनिसों रथ बिदरनि बलवान की।
चंचल चपेट चोट चरन चकोट चाहैं,
हहरानी फौजें भहरानी जातुधान की॥
बार बार सेवक सराहना करत राम,
तुलसी सराहै रीति साहेब सुजान की।
लाँबी लूम लसत लपेटि पटकत भट,
देखौ देखौ, लखन ! लरनि हनुमान की ॥४०॥
दबकि दबोरे एक, बारिधि में बोरे एक,
मगन मही में एक गगन उड़ात हैं।
पकरि पछारे कर चरन उखारे एक,
चीरि फारि डारे, एक मीजि मारे लात हैं॥
तुलसी लखत राम-रावन बिबुध बिधि,
चक्रपानि, चंडीपति, चंडिका सिहात हैं।
बड़े बड़े बानइत बीर बलवान बड़े,
जातुधान जूथप निपाते बात जात हैं ॥४१॥
प्रबल प्रचण्ड बरिबण्ड बाहुदण्ड बीर,
धाये जातुधान हनुमान लियो घेरिकै।
महाबल-पुञ्ज कुंजरारि ज्यों गरजि भट,
जहाँ तहाँ पटके लंगूर फेरि फेरि कै॥
मारे लात, तोरे गात, भागे जात, हाहा खात,
कहैं 'तुलसीस' राखि रामकीसौं टेरिकै।

ठहर ठहर परे कहरि कहरि उठैं,
हहरि हहरि हर सिद्ध हँसे हेरि कै ॥४२॥

जाकी बाँकी बीरता सुनत सहमत सूर,
जाकी आँच अबहूँ लसत लंक लाह सी।
सोई हनुमान बलवान बाँके बानइत,
जोहि जातुधान-सेना चले लेत थाह सी ॥
कम्पत अकंपन, सुखाय अतिकाय काय,
कुम्भऊ करन आइ रह्यो पाइ आह सी।
देखे गजराज मृगराज ज्यों गरजि धायो,
बीर रघुबीर को समीर सूनु साहसी ॥४३॥

झूलना—मत्तभट-मुकुट-दसकंध साहस-सइल-
सृंग-बिद्दरनि जनु बज्र टाँकी।
दसन धरि धरनि चिक्करत दिग्गज कमठ,
सेष संकुचित, संकित पिनाकी ॥
चलित महि मेरु, उच्छलित सायर सकल,
बिकल बिधि बधिर दिसि बिदिसि झाँकी।
रजनिचर-घरनि घर गर्भ-अर्भक स्रवत,
सुनत हनुमान की हाँक बाँकी ॥४४॥

कौन सी हाँक पर चौंक चंडसि बिधि,
चंडकर थकित फिरि तुरंग हाँके।
कौन के तेज बलसीस भट भीम से,
भीमता निरखि कर नयन ढाँके ॥
दास तुलसीस के बिरुद बरनत बिदुष,
बीर बिरुदैत बर बैरि धाँके।
नाक नरलोक पाताल कोउ कहत किन,
कहाँ हनुमान से बीर बाँके ॥४५॥

जातुधानावली-मत्त-कुंजर-घटा ,
निरखि मृगराज जनु गिरि ते टूट्यो।
विकट चटकन चपट, चरन गहि पटक महि,
निघटि गए सुभट, सत सब को छूट्यो ॥
दास तुलसी परत धरनि, धरकत झुकत,
हाट सी उठनि जंबुकनि लूट्यो।
धीर रघुबीर को बीर रन बाँकुरो,
हाँकि हनुमान कुलि कटक कूट्यो ॥४६॥

छप्पय—कतहुँ बिटप भूधर उपारि परसेन बरक्खत।
कतहुँ बाजि सों बाजि, मर्दि गजराज करक्खत॥
चरन चोट चटकन चकोट अरि उर सिर बज्जत,
बिकट कटक बिद्दरत बीर बारिद जिमि गज्जत॥
लँगूर लपेटत पटकि भट,'जयति राम जय' उच्चरत।
तुलसीस पवननंदन अटल जुद्ध क्रुद्ध कौतुक करत॥४७॥

घनाक्षरी-अंग अंगदलित ललित फूले किंसुक से,
हने भट लाखन लषन जातुधान के।
मारि कै पछारि कै उपारि भुजदंड चंड,
खंड खंड डारे ते बिदारे हनुमान के॥
कूदत कबंध के कदंब बंब सी करत,
धावत दिखावत हैं लाघौ राघौ बान के।
तुलसी महेस, बिधि, लोकपाल देवगन,
देखत बिमान चढ़े कौतुक मसान के॥४८॥

लोथिन सों लोहू के प्रबाह चले जहाँ तहाँ,
मानहुँ गिरिन गेरु झरना झरत हैं।
सोनित सहित घोर, कुंजर करारे भारे,
कूल तें समूल बाजि-बिटप परत हैं॥
सुभट सरीर नीरचारी भारी भारी तहाँ,
सूरनि उछाह, कूर कादर डरत हैं।
फेकरि फेकरि फेरु फारि फारि पेट खात,
काक कंक-बालक कोलाहल करत हैं॥४९॥

ओझरी की झोरी काँधे, आँतनि की सेली बाँधे,
मूँड़ के कमंडलु, खपर किये कोरि कै।
जोगिनी झुटुंग झुंड झुंड बनी तापसी सी,
तीर तीर बैठीं सो समर सरि खोरि कै॥
सोनित सों सानि सानि गूदा खात सतुआ से,
प्रेम एक पियत बहोरि घोरि घोरि कै।
तुलसी बैताल भूत साथ लिये भूतनाथ,
हेरि हेरि हँसत हैं हाथ हाथ जोरि कै॥५०॥

सवैया–राम-सरासन तें चले तीर, रहे न सरीर, हड़ावरि फूटी।
रावन धीर न पीन गनी, लखि लै कर खप्पर जोगिनि जूटी॥
सोनित छींटि छटानि जटे तुलसी प्रभु सोहैं, महाछबि छूटी।
मानो मरक्कत-सैल बिसाल में फैलि चली बर बीर बहूटी॥५१॥

× × × ×

सवैया—कानन, बास, दसानन सो रिपु, आनन श्री ससि जीति लियो है।
बालि महाबलसालि दल्यो, कपि पालि, बिभीषन भूप कियो है॥
तीय हरी, रन बंधु पर्यो, पै भर्यो सरनागत-सोच हियो है।
बाँह-पगार उदार कृपालु, कहाँ रघुबीर सो बीर बियो है॥५३॥
लीन्हो उखारि पहार बिसाल, चल्यो तेहि काल, बिलंब न लायो।
मारुत-नंदन मारुत को, मन को, खगराज को बेग लजायो॥
तीखी तुरा तुलसी कहतो, पै हिये उपमा को समाउ न आयो।
मानो प्रतच्छ परब्बत की नभ लीक लसी कपि यों धुकि धायो॥५४॥

उत्तरकाण्ड—इस काण्ड को कवि ने अन्य काण्डों की अपेक्षा अधिक विस्तार से लिखा है। इसमें कुल १८३ छन्द हैं, जिनमें भिन्न भिन्न विषयों का वर्णन करते हुए भी गोस्वामी जी ने परम्परया राम-भक्ति और रामनाम-माहात्म्य को प्रधानता दी है। इस काण्ड के कई छन्दों से गोसाईंजी की जीवन संबन्धी कई बातों का पता लगता है, जिनका उल्लेख पीछे किया जा चुका है। छन्द-संख्या १२८ में कविराज ने मूर्त्तिपूजा संबन्धी एक बड़ी विचित्र बात कही है:—

सवैया—काढ़ि कृपान, कृपा न कहूँ, पितु काल कराल बिलोकि न भागे।
'राम कहाँ' 'सब ठाँउ है' 'खंभ में?' 'हाँ' सुनि हाँक न्ह केहरि जागे॥
बैरी बिदारि भये बिकराल, कहे प्रहलादहि के अनुरागे।
प्रीति प्रतीति बढ़ी तुलसी तब तें सब पाहन पूजन लागे॥१२८॥

छन्द-संख्या १३३, १३४ और १३५ में श्रीकृष्ण और सखियों की कथा है। जान पड़ता है कि इन स्फुट काव्यों को संग्रहकर्त्ता ने भूल से प्रसंगविरुद्ध संग्रह कर दिया है। छन्द-संख्या १४९ से काशीस्थ विश्वनाथ की स्तुति चली है। १७३ वें छन्द के बाद के कई छन्दों से पता चलता है कि उस समय काशी में महामारी (प्लेग) का प्रबल प्रकोप था। अन्त में निम्नलिखित छन्द देकर उत्तरकाण्ड को समाप्त कर दिया है:—

घनाक्षरी—मंगल की रासि, परमारथ की खानि,
जानि, बिरचि बनाई बिधि, केसव बसाई है।
प्रलय हू काल राखी सूलपानि सूल पर,
मीचु बस नीचु सोऊ चहत खसाई है॥
छाँड़ि छितिपाल जो परिछित भये कृपालु,
भलो कियो खल को निकाई सो नसाई है।
पाहि हनुमान! करुणानिधान राम पाहि,
कासी कामधेनु कलि कुहत कसाई है॥१८१॥

बिरचि बिरंचि की बसति बिस्वनाथकी जो,
आनहू ते प्यारी पुरी केसव कृपाल की।
ज्योतिरूप-लिंगमई, अगनित-लिंगमई,
मोक्ष वितरनि, बिदरनि जगजाल की॥
देवी देव देवसरि सिद्धमुनि बर बास,
लोपति बिलोकत कुलिपि भोंड़े भाल की।
हा हा करै तुलसी दयानिधान राम ऐसी
कासी की कदर्थना कराल कलिकाल की॥१८२॥

आश्रम बरन कलि-बिबस बिकल भय,
निज निज मरजाद मोटरी सी डार दी।
संकर सरोष महामारि ही तें जानियत,
साहिब सरोष दुनी दिन दिन दारदी॥
नारि नर आरत पुकारत, सुनै न कोउ,
काहू देवतनि मिलि मोटी मूठि मार दी।
तुलसी सभीत-पाल सुमिरे कृपालु राम,
समय सुकरुना सराहि सनकार दी॥१८३॥

[३] **गीतावली**—यह ग्रन्थ विविध भाँति की राग-रागिनियों के साथ नाना प्रकार के गीतों में लिखा गया है। ग्रन्थ का विषय वही "राम-कथा" है। इस ग्रन्थ के लिखने में भी गोस्वामी जी ने अच्छा पाण्डित्य-प्रदर्शन किया है। यह ग्रन्थ क्रम से लिखा गया है। एक छन्द को दूसरे छन्द से मेल है। कथा-प्रसङ्ग रामायण से मिलता-जुलता है। कविता बड़ी ही सरस और मधुर है। इस काव्य में व्रज के कवियों और कृष्णलीला का बहुत कुछ अनुकरण किया गया है। इसमें भी सात काण्ड है। गीतावली और विनयपत्रिका को गोसाईंजी ने नाना प्रकार की राग-रागिनियों से युक्त कर भक्तों और साहित्यप्रेमियों के अतिरिक्त सङ्गीत के अनुरागियों के लिये भी शुद्ध सुधारस का पान कराया है।

बालकाण्ड—इस काण्ड में कुल १०८ पद्य हैं। रामजन्म से इस काण्ड का प्रारम्भ किया गया है। प्रथम छन्द यह है:—

राग आसावरी

आजु सुदिन सुभ घरी सुहाई।
रूपसील-गुनधाम राम नृप-भवन प्रगट भए आई॥ १॥
अति पुनीत मधुमास, लगन ग्रह बार जोग समुदाई।
हरषवंत चर अचर भूमिसुर तनरुह पुलक जनाई॥ २॥
बरषहिं बिबुध निकर कुसमावलि नभ दुंदुभी बजाई।
कौशिल्यादि मातु मन हरषित, यह सुख बरनि न जाई॥ ३॥

सुनि दसरथ सुत जन्म लिये सब गुरुजन बिप्र बोलाई।
बेद-बिहित करि क्रिया परम सुचि, आनँद उर न समाई ॥ ४ ॥
सदन बेद-धुनि करत मधुर मुनि, बहु बिधि बाज बधाई।
पुरबासिन्ह प्रिय नाथ हेतु निज, निज संपदा लुटाई ॥ ५ ॥
मनि, तोरन, बहु केतु पताकनि, पुरी रुचीर करि छाई।
मागध सूत द्वार बन्दीजन, जहँ तहँ करत बड़ाई ॥ ६ ॥
सहज सिंगार किए बनिता चलीं, मङ्गल विपुल बनाई।
गावहिं देहि असीस मुदित, चिरजिवौ तनय सुखदाई ॥ ७ ॥
बीथिन्ह कुंकुम कीच, अरगजा, अगर अबीर उड़ाई।
नाचहिं पुर-नर-नारि प्रेम भरि, देह दसा बिसराई ॥ ८ ॥
अमित धेनु गज तुरग बसन, मनि जात रूप अधिकाई।
देत भूप अनुरूप जाहि जोइ, सकल सिद्धि गृह आई ॥ ९ ॥
सुखी भए सुर, सन्त, भूमिसुर, खलगन मन मलिनाई।
सबै सुमन बिकसत रबि निकसत, कुमुद-बिपिन बिलखाई ॥१०॥
जो सुख-सिंधु-सकृत[1]-सीकर तें, सिव विरंचि प्रभुताई।
सोइ सुख अवध उमँगि रह्यो दस दिसि, कौन जतन कहौं गाई ॥११॥
जे रघुबीर चरन चिंतक, तिन्ह की गति प्रगट दिखाई।
अबिरल अमल अनूप भगति दृढ़, तुलसिदास तब पाई ॥१२॥

दूसरे भजन में कविराज ने अयोध्या का आनन्दोत्सव, मङ्गलाचार, विविध प्रकार के दान और आमोद-प्रमोद का वर्णन इस प्रकार किया है:—

राग जैतश्री

सहेली सुनु सोहिलो रे!
सोहिलो, सोहिलो, सोहिलो, सोहिलो सब जग आज ॥
पूत सपूत कौसिला जायो, अचल भयो कुल राज ॥ १ ॥
चैत चारु नौमी तिथि सितपख, मध्य-गगन-गत भानु।
नखत जोग ग्रह लगन भले दिन, मङ्गल मोद निधानु ॥ २ ॥
ब्योम पवन पावक जल थल दिसि, दसहु सुमङ्गल-मूल।
सुर दुंदुभी बजावहिं, गावहिं, हरषहिं, बरषहिं, फूल ॥ ३ ॥
भूपति सदन सोहिलो सुनि, बाजैं गहगहे निसान।
जहँ तहँ सजहिं कलस धुज चामर, तोरनकेतु बितान ॥ ४ ॥
सींचि सुगंध रचैं चौके गृह, आँगन गली बजार।
दल फल फूल दूब दधि रोचन, घर घर मङ्गलचार ॥ ५ ॥
सुनि सानन्द उठे दस स्यन्दन, सकल समाज समेत।
लिए बोलि गुरु सचिव भूमिसुर, प्रमुदित चले निकेत ॥ ६ ॥

1 सकृत = एक

जातकर्म करि, पूजि पितर सुर, दिय महिदेवन दान।
तेहि अवसर सुत तीनि प्रगट भये, मंगल, मुद, कल्यान ॥ ७ ॥
आनन्द महँ आनन्द, अवध आनन्द बधावन होइ।
उपमा कहौं चारि फल की, मोहिं भलो न कहै कवि कोई ॥ ८ ॥
सजि आरती बिचित्र थार कर, जूथ जूथ बर नारी।
गावत चलीं बधावन लै लै, निज निज कुल अनुहारी ॥ ९ ॥
असही दुसही[1] मरहु मनहिं मन, बैरिन बढ़हु विषाद।
नृपसुत चारि चारु चिरजीवहु, संकर गौरि प्रसाद ॥१०॥
लै लै ढोव[2] प्रजा प्रमुदित चलि, भाँति भाँति भरि भार।
करहिं गान करि[3]आन राय की, नाचहिं राज दुवार ॥११॥
गज, रथ, बाजि, बाहिनी, वाहन, सबनि सँवारे साज।
जनु रतिपति ऋतुपति कोसलपुर, विहरत सहित समाज ॥१२॥
घंटा घंटि पखाउज आउज[4], झाँझ बेनु डफ तार[5]।
नूपुर धुनि, मंजीर मनोहर, कर कङ्कन-झनकार ॥१३॥
नृत्य करहिं नटनटी, नारि नर, अपने अपने रंग।
मनहुँ मदन रति बिबिध बेष धरि, नटत सुदेश सुढंग ॥१४॥
उघटहिं[6] छंद प्रबन्ध गीत पद, राग तान बन्धान।
सुनि किन्नर गंधर्व सराहत, बिथके बिबुध-बिमान ॥१५॥
कुंकुम अगर अरगजा छिरकहिं, भरहिं गुलाल अबीर।
नभ प्रसून झरि, पुरी कोलाहल, भइ मन भावति भीर ॥१६॥
बड़ी बयस बिधि भयो दाहिनो, सुर गुर आसिरबाद।
दसरथ सुकृत-सुधासागर-सब, उमगे तजि मरजाद ॥१७॥
ब्राह्मण बेद, बन्दि बिरदावलि, जय धुनि मंगलगान।
निकसत पैठत लोग परसपर, बोलत लगि लगि कान ॥१८॥
बारहिं मुकुता रतन राज, महिषी पुर-सुमुखि समान।
बगरे नगर निछावरि मनि गन, जनु जुवारि जवधान ॥१९॥
कीन्हि बेद बिधि लोक रीति नृप, मंदिर परम हुलास।
कौसल्या, कैकयी, सुमित्रा, रहस-बिबस रनिवास ॥२०॥
रानिन दिए बसन मनि भूषन, राजा सहन[7]-भँडार।
मागध सूत भाँट नट जाचक, जहँ तहँ करहिं कबार[8] ॥२१॥
बिप्र बधू सनमानि सुआसिनि, जन पुरजन पहिराइ।
सनमाने अवनीस, असीसत ईस रमेस मनाइ ॥२२॥

---

१ असही दुसही = द्वेषी, बैरी (जिन्हें भलाई असह्य या दुःसह हो)। २ ढोव = भेंट की वस्तु जो मंगल के अवसर पर भार में भर कर भेजते हैं। ३ आनकरि = गीतों में नाम ले लेकर। ४ आउज = तासा। ५ तार = ताल, मंजीरा। ६ उघटहिं = बार बार पद को कहते हैं। ७ सहन-भँडार = बाहरी खजाना। ८ कबार = लेन देन।

अष्टसिद्धि नवनिद्धि भूति सब, भूपति भवन कमाहिं।
समउ समाज राज दसरथ को, लोकप सकल सिहाहिं ॥२३॥
को कहि सकै अवधबासिन को, प्रेम प्रमोद उछाह।
सारद सेस गनेस गिरीसहिं, अगम निगम अवगाह ॥२४॥
सिव बिरंचि मुनि सिद्ध प्रसंसत, बड़े भूप के भाग।
तुलसिदास प्रभु सोहिलो गावत, उमगि उमगि अनुराग ॥२५॥

× × × ×

इसके अनन्तर कवि ने भजनसंख्या १८ तक रामचन्द्र के बालपन, अयोध्या के आनन्द और उत्साह का वर्णन किया है। नीचे के ३ पद्यों में ललित भाषा और भावभरे शब्दों में कविसम्राट ने राम को पलने में झुलाया है:—

राग आसावरी

कनक रतन मय पालनो रच्यो मनहुँ मार सुतहार[1]।
विविध खेलौना किंकिनी लागे मंजुल मुकुता हार॥
रघुकुल-मंडन रामलला ॥ १ ॥
जननि उबटि अन्हवाय कै मनिभूषन सजि लिये गोद।
पौढ़ाए पटु पालने, सिसु निरखि मगन मन मोद॥
दसरथनंदन रामलला ॥ २ ॥
मदन, मोर कै चंद की झलकनि निदरति तनु-जोति।
नील कमल, मनि, जलद की उपमा कहे लघुमति होति॥
मातु-सुकृत-फल रामलला ॥ ३ ॥
लघु लघु लगेहित ललित हैं पद, पानि, अधर एक रंग।
को कवि जो छबि कहि सकै नखसिख सुन्दर सब अंग॥
परिजन-रंजन रामलला ॥ ४ ॥
पग नूपुर, कटि किंकिनी, कर-कंजनि पहुँची मंजु।
हिय हरि नख अद्भुत बन्यो मानो मनसिज मनि-गन-गंजु॥
पुरजन-सिरमनि रामलला ॥ ५ ॥
लोयन नील सरोज से, भ्रूपर मसि-बिंद[2] बिराज।
जनु बिधु-मुख-छबि-अमिय को रच्छक राखे रसराज॥
सोभासागर रामलला ॥ ६ ॥
गभुआरी अलकावली लसै, लटकन ललित ललाट।
जनु उडुगन बिधु मलिन को चले तम बिदारि करिबाट॥
सहज सोहावनो रामलला ॥ ७ ॥

---

1 सुतहार = खाट बीनने वाला, बढ़ई। २ मसिबिंद = डिठौना।

देखि खेलौना किलकहिं पद पानि बिलोचन लोल।
विचित्र विहँग अलि जलज ज्यौं सुखमा-सर करत कलोल ॥
भगत-कल्पतरु रामलला ॥ ८ ॥

बाल बोल बिनु अरथ के सुनि देत पदारथ चारि।
जनु इन्ह बचनन्हि तें भए सुरतरु तापस त्रिपुरारि ॥
नाम-कामधुक[1] रामलला ॥ ९ ॥

सखी सुमित्रा बारहीं मनि भूषन बसन बिभाग।
मधुर झुलाइ मल्हावहीं गावै उमँगि उमँगि अनुराग ॥
जै जग-मंगल रामलला ॥१०॥

मोती जायो सीप में अरु अदिति जन्यो जग भानु।
रघुपति जायो कौसिला गुन-मंगल-रूप-निधानु ॥
भुवन-विभूषन रामलला ॥११॥

राम प्रगट जबतें भये गये सकल अमंगल मूल।
मीत मुदित, हित उदित हैं, नित बैरिन के चित सूल ॥
भव-भय-भंजन रामलला ॥१२॥

अनुज सखा सिसु संग लै खेलन जैहैं चौगान।
लंका खरभर परैगी, सुरपुर बाजि हैं निसान ॥
रिपुगन-गंजन रामलला ॥१३॥

राम अहेरे चलहिंगे जब गजरथ बाजि सँवारि।
दसकंधर उर धकधकी अब जानि धावै धनुधारि ॥
अरि-करि-केहरि रामलला ॥१४॥

गीत सुमित्रा सखिन्ह कै सुनि सुनि सुर मुनि अनुकूल।
दै असीस जय जय कहैं हरषैं बरषैं फूल ॥
सुर-सुखदायक रामलला ॥१५॥

वालचरित-मय चंद्रमा यह सोरह-कला-निधान।
चित चकोर तुलसी कियो कर प्रेम–अमिय–रसपान ॥
तुलसी को जीवन रामलला ॥१६॥

राग कान्हरा

पालने रघुपति झुलावै।
लै लै नाम सप्रेम सरस स्वर कौसल्या कल कीरति गावै ॥
केकीकंठ दुति, श्यामबरन बपु, बाल-विभूषन बिरचि बनाए।
अलकैं कुटिल, ललित लटकन भ्रू, नील नलिन दोउ नयन सुहाए ॥
सिसु सुभाय सोहत जब कर गहि बदन निकट पद पल्लव लाए।
मनहुँ सुभग जुग भुजग जलज भरि लेत सुधा ससि सों सचुपाए ॥

---

1 कामधुक = कामधेनु।

उपर अनूप बिलोकि खिलौना किलकत पुनि पुनि पानि पसारत।
मनहुँ उभय अंभोज अरुन सों बिधु-भय बिनय करत अति आरत॥
तुलसिदास बहु-बास-बिबस अति गुंजत सुछबिन जाति बखानी।
मनहुँ सकल स्रुतिऋचा मधुप ह्वै बिसद सुजस बरनत बरबानी॥२०॥

राग बिलावल

झूलत राम पालने सोहैं।
भूरि-भाग जननी जन जोहैं॥
तनु मृदु मंजुल मेचकताई।
झलकति बाल बिभूषन झाँई॥
अधर पानि पद लोहित लोने।
सर-सिंगार-भव सारस सोने॥
किलकत निरखि बिलोल खिलौना।
मनहुँ बिनोद लरत छबि छौना॥
रंजित अंजन कंज-बिलोचन।
भ्राजत भाल तिलक गोरोचन॥
लस मसि बिंदु बदन-बिधु नीको।
चितवत चित चकोर तुलसी को॥२१॥

× × × ×

भजन-संख्या ३२ तक गोस्वामी जी ने रामचन्द्र के सौंदर्य और शोभा का वर्णन किया है। नीचे के ५ छन्दों में कविराज ने रामचन्द्र के प्रातरुत्थान और आमोद-प्रमोद का इस प्रकार लिखा है:—

राग बिभास

(३३)

भोर भयो जागहु, रघुनंदन!
गत-व्यलीक[1], भगतनि-उर-चंदन॥
ससि कर हीन,छीन दुति तारे।
तमचुर मुखर,सुनहु मेरे प्यारे!॥
बिकसित कंज,कुमुद बिलखाने।
लै पराग रस मधुप उड़ाने॥
अनुज सखा सब बोलनि आए।
बंदिन्ह अति पुनीत गुन गाए॥
मन भावतो कलेऊ कीजै।
तुलसिदास कहँ जूँठनि दीजै॥

१ व्यलीक = कपट

(३४)

प्रात भयो तात, बलि, मातु, बिधु बदन पर
मदन वारौं कोटि, उठौ प्रानप्यारे ! ।
सूत मागध बंदि बदत बिरुदावलि,
द्वार सिसु-अनुज प्रियतम तिहारे ।
कोक गत सोक अवलोकि ससि छीन छबि
अरुनमय गगन राजत रुचि-तारे ।
मनहुँ रबि-बाल मृगराज तमनिकर-करि
दलित, अति ललित मनिगन बिथारे ।
सुनहु तमचुर मुखर, कीरकल हंस पिक,
केकि रव कलित, बोलत बिहंग वारे ॥

(३५)

मनहुँ मुनिबृंद, रघुबंसमनि ! रावरे,
गुनत गुन आस्रमनि सपरिवारे ।
सरनि बिकसित कंजपुंज मकरंद बर,
मंजुतर मधुर मधुकर गुंजारे ।
मनहुँ प्रभु जन्म सुनि चैन अमरावती,
इंदिरानंद मंदिर सँवारे ।
प्रेम संमिलित बर बचन-रचना अकनि,
राम राजीव-लोचन उघारे ।
दास तुलसी मुदित, जननि करै आरती,
सहज सुंदर अजिर पाँव धारे ॥

(३६)

जागिए कृपानिधान जानराय रामचन्द्र !
जननि कहै बार बार भोर भयो प्यारे ।
राजीवलोचन विसाल, प्रीति-बापिका मराल,
ललित कमल-बदन ऊपर मदन कोटि वारे ॥
अरुन उदित, विगत सर्वरी, ससांक किरनिहीन,
दीन दीप जोति, मलिन दुति समूह तारे ।
मनहुँ ज्ञान घन प्रकास, बीते सब भव-बिलास,
आस त्रास-तिमिर तोष-तरनि-तेज जारे ॥
बोलत खग निकर मुखर मधुरकरि प्रतीत,
सुनहु स्रवन, प्रान जीवन धन, मेरे तुम वारे ।
मनहुँ वेद बंदी मुनिबृंद सूत मागधादि बिरुद,
बदत 'जय जय जय जयति कैटभारे' ॥
बिकसित कमलावली, चले प्रपुंज चंचरीक
गुंजत कल कोमल धुनि त्यागि कंज न्यारे ।

जनु बिराग पाइ सकल-सोक-कूप-गृह बिहाइ।
भृत्य प्रेममत्त फिरत गुनत गुन तिहारे॥
सुनत बचन प्रिय रसाल जागे अतिसय दयाल,
भागे जंजाल बिपुल, दुख-कदंब[1] दारे।
तुलसिदास अति अनंद, देखिकै मुखारबिंद,
छूटे भ्रम फंद परम मंद द्वंद भारे॥

(३७)

बोलत अवनिप-कुमार ठाढ़े नृप भवन द्वार,
रूप सील गुन उदार जागहु मेरे प्यारे।
बिलखित कुमुदिनि, चकोर, चक्रवाक हरष भोर,
करत सोर तमचुर खग, गुंजत अलि न्यारे॥
रुचिर मधुर भोजन करि, भूषन सजि सकल अंग,
संग अनुज बालक सब बिबिध बिधि सँवारे॥
करतल गहि ललित चाप भंजन रिपु-निकर-दाप,
कटितट पटपीत, तून सायक अनियारे।
उपबन मृगया-बिहार-कारन गवने कृपाल,
जननी मुख निरखि पुन्य पुंज निज बिचारे।
तुलसिदास संग लीजै, जानि दीन अभय कीजै,
दीजै मति बिमल गावै चरित बर तिहारे।

× × × ×

इसके अनन्तर छन्द-संख्या ४४ तक चारो भाइयों के विविध-विधि के खेलों का वर्णन किया है। तत्पश्चात् ऋषिराज विश्वामित्र महाराज दशरथ के यहाँ यज्ञ-रक्षार्थ राम और लक्ष्मण को माँगने के लिये पधारे हैं। छन्द-संख्या ५८ तक विश्वामित्र के यज्ञ की समाप्ति का वर्णन है। विश्वामित्र के साथ राम और लक्ष्मण का जनकपुर में जाना, धनुष-भंग, सीता के साथ विवाह का निश्चय, दशरथ के पास अयोध्या में संवाद जाना और महाराज दशरथ का बारात सज कर जनकपुर में आने का वर्णन छन्द-संख्या १०१ तक किया गया है। नीचे के कुछ छन्दों में गोसाँई जी ने राम और सीता के सौंदर्य और विवाह का वर्णन इस प्रकार किया है:—

राग केदारा

(१०२)

मन में मंजु मनोरथ हो,[2] री!।
सो हर-गौरि-प्रसाद एक तें, कौसिक कृपा चौगुनो भो, री!॥ १॥

१ कदंब = समूह। २ हो = था।

पन-परिताप, चाप-चिंता-निसि, सोच-सकोच-तिमिर नहिं थोरी।
रबिकुल रबि अवलोकि-सभा-सर हितचित-बारिज बन बिकसोरी ॥ २ ॥
कुँवर कुँवरि सब मंगल मूरति, नृप दोउ धरम धुरंधर धोरी।
राज समाज भूरि भागी जिन लोचन-लाहु लह्यौ एक ठौरी ॥ ३ ॥
ब्याह-उछाह राम सीता को सुकृत सकेलि बिरंचि रच्यौ, री।
तुलसिदास जानै सोइ यह सुख जेहि उर बसति मनोहर जोरी ॥ ४ ॥

(१०३)

राजति राम जानकी जोरी।
स्याम-सरोज जलद-सुन्दर बर, दुलहिनि तड़ित-बरन तनु गोरी ॥ १ ॥
ब्याह समय सोहति बितान तर, उपमा कहुँ न लहति मति मोरी।
मनहुँ मदन-मंजुल-मंडप महँ, छबि सिंगार सोभा इक ठौरी ॥ २ ॥
मंगलमय दोउ, अंग मनोहर, ग्रथित चूनरी पीत पिछौरी।
कनक कलस कहँ देत भाँवरी, निरखि रूप सारद भई भोरी ॥ ३ ॥
इत बसिष्ठ मुनि उतहिं सतानँद, बंस बखान करैं दोउ ओरी।
इत अवधेस उतहिं मिथिलापति, भरत अंक सुख-सिन्धु हिलोरी ॥
मुदित जनक, रनिवास रहस बस, चतुर नारि चितवहिं तृन तोरी।
गान निसान वेद धुनि सुनि सुर, बरषत सुमन, हरष कहै कोरी ? ॥ ४ ॥
नयनन को फल पाइ प्रेम बस, सकल असीसत ईस निहोरी।
तुलसी जेहि आनन्द-मगन मन, क्यों रसना बरनै सुख सोरी ! ॥ ५ ॥

(१०४)

दूलह राम, सीय दुलही री ! ।
घन-दामिन-बर बरन, हरन-मन सुंदरता नखसिख निबही, री ॥ १ ॥
ब्याह-बिभूषन-बसन-विभूषित, सखि-अवली लखि ठगिसी रही, री।
जीवन-जनम-लाहु लोचन-फल है इतनोइ, लह्यो आजु सही, री ॥ २ ॥
सुखमा-सुरभि सिंगार-छीर दुहि मयन अमिय-मय कियो है दही, री।
मथि माखन सियरामसँवारे, सकल-भुवन-छबि मनहुँ मही, री ॥ ३ ॥
तुलसिदास जोरी देखत सुख शोभा अतुल न जाति कही, री।
रूप-रासि बिरची बिरंचिमनो, सिला[1] लवनि[2]-रति काम लही, री ॥ ४ ॥

(१०५)

जैसे ललित लखन लाल लोने।
तैसिये ललित उरमिला, परसपर लखत सुलोचन-कोने ॥ १ ॥
सुखमासार सिंगारसार करि, कनक रचे हैं तिहि सोने।
रूपप्रेम-परमिति न परत कहि, बिथकि रही मति मौने ॥ २ ॥

---

[1] सिला = शिला, जो दाने खेत काटते समय खेत में गिर जाते हैं। [2] लवनी = लवनी, अनाज की फ़सल का वह थोड़ा सा बोझ जो मजदूरों को दिया जाता है।

सोभा सील सनेह सोहावनो, समउ केलि गृह गौने।
देखि तियनि के नयन सफल भए, तुलसीदास हू के होने ॥ ३ ॥

(१०६)

राग बिलावल

जानकी-बर सुन्दर, माई।
इन्द्र नील-मनि-स्याम सुभग अङ्ग, अङ्गमनोजनि बहु छबि छाई ॥ १ ॥
अरुन चरन, अंगुली मनोहर, नख दुतिवन्त कछुक अरुनाई।
कञ्ज दलनि पर मनहुँ भौम दस, बैठे अचल सु-सदसि बनाई ॥ २ ॥
पीन जानु उर चारु जटित मनि, नूपुर पद कल मुखर सोहाई।
पीत पराग भरे अलिगन जनु, जुगल जलज लखि रहे लोभाई ॥ ३ ॥
किंकिनि कनककञ्ज-अवली मृदु, मरकत सिखर मध्य जनु जाई।
गई न उपर सभीत नमित मुख, बिकसि चहूँ दिसि रही लोनाई ॥ ४ ॥
नाभि गँभीर उदर रेखावर, उर भृगु-चरन-चिन्ह सुखदाई।
भुज प्रलंब भूषन अनेक जुत, बसन पीत सोभा अधिकाई ॥ ५ ॥
यज्ञोपवीत बिचित्र हेममय, मुक्तामाल उरसि मोहिँ भाई।
कंद[1]-तड़ितबिचजनुसुरपति-धनु, रुचिर बलाँकपाँति चलिआई ॥ ६ ॥
कंबु कंठ, चिबुकाधर सुंदर, क्यों कहौं दसनन की रुचि राई।
पदुमकोस महँ बसे बज्र मनो, निजसँगतड़ित-अरुन-रुचिलाई ॥ ७ ॥
नासिक चारु, ललित लोचन, भ्रूकुटिल, कचनिअनुपमछबिपाई।
रहे घेरि राजीव उभय मनो, चंचरीक कछु हृदय डेराई ॥ ८ ॥
भाल तिलक, कंचन किरीट सिर, कुंडल लोल कपोलनि झाँई।
निरखहिँ नारि-निकर बिदेह पुर, निमि नृप की मरजाद मिटाई ॥ ९ ॥
सारद सेस संभु निसि बासर, चिंतत रूप न हृदय समाई।
तुलसिदास सठ क्यों करि बरनै, यह छबि, निगम नेति कह गाई ॥ १० ॥

(१०७)

राग कान्हरा

भुजनि पर जननी वारि फेरि डारी।
क्यों तोर्‌यो कोमल कर-कमलनि, संभु-सरासन भारी? ॥ १ ॥
क्यों मारीच सुबाहु महाबल, प्रबल ताड़का मारी?
मुनि-प्रसाद मेरे राम लषन की, बिधि बड़ि करवर[2] टारी ॥ २ ॥
चरन रेनु लै नयननि लावति, क्यों मुनिबधू उधारि।
कहौ धौं तात! क्यों जीति सकल नृप, बरी है बिदेह कुमारी ॥ ३ ॥

---

१ कंद = बादल। २ करवर = संकट, कठिनाई।

दुसह-रोष-मूरति भृगुपति अति, नृपति-निकर-खयकारी ।
क्यों सौंप्यो सारंग हारि हिय, करी है बहुत मनु हारी ॥ ४ ॥
उमँगि उमँगि आनंद बिलोकति, बधुन सहित सुत चारी ।
तुलसिदास आरती उतारति, प्रेम-मगन महतारी ॥ ५ ॥

(१०८)

मुदित-मन आरती करै माता ।
कनक बसन मनि वारि वारि करि, पुलक प्रफुल्लित गाता ॥ १ ॥
पाँलागनि दुलहियन सिखावति, सरिस सासु सत-साता ।
देहिं असीस 'ते बरिस कोटि लगि अचल होउ अहिवाता' ॥ २ ॥
राम-सीय-छबि देखि-जुवतिजन, करहिं परसपर बाता ।
अब जान्यो साँचहु सुनहु, सखि ! कोबिद बड़ो बिधाता ॥ ३ ॥
मंगल-गान निसान नगर नभ, आनन्द कह्यो न जाता ।
चिरजीवहु अवधेस-सुवन सब तुलसिदास-सुखदाता ॥ ४ ॥

अयोध्याकाण्ड—इस काण्ड में ८९ छन्द हैं । कथा प्रायः 'रामचरित-मानस' से मिलती-जुलती है, परन्तु वर्णनशैली समस्त ग्रन्थ की ही हृदयग्राहिणी और साहित्यिक उपयोगिता से युक्त है । काण्ड के आरम्भ में राम के राज्याभिषेक की तैयारी, कैकेयी का विघ्न उपस्थित करना, राम का वन-गमन, लक्ष्मण और सीता का साथ होना, प्रजाओं का विलाप और दशरथ का संताप लिखा गया है । निम्न छन्दों में गोस्वामी जी ने मूर्त्ति-त्रय का सौंदर्य इस प्रकार वर्णन किया है:—

(२४)

राग केदारा

मनोहरता के मानो ऐन ।
स्यामल गौर किसोर पथिक दोउ, सुमुखि ! निरखु भरि नैन ॥ १ ॥
बीच बधू बिधुबदनि बिराजति, उपमाकहुँ कोऊ है न ।
मानहुँ रति ऋतु नाथ सहित, मुनि वेष बनाए है मैन ॥ २ ॥
किधौं सिंगार-सुखमा-सुप्रेम मिलि, चले जग-चितबित लैन ।
अद्भुत त्रयी किधौं पठई है बिधि, मग-लोगन्हि सुख दैन ॥ ३ ॥
सुनि सुचि सरल सनेह सुहावने, ग्राम बधुन के बैन ।
तुलसी प्रभु तरु तर बिलँबे, किए प्रेम कनौडे कैन ? ॥ ४ ॥

(२५)

बय किसोर गोरे साँवरे धनुबान धरे हैं ।
सब अङ्ग सहज सोहावने, राजीब जिते बैननि, बदननि बिधु निदरे हैं ॥ १ ॥
तून सुमुनिपट कटि कसे, जटा मुकुट करे हैं ।
मंजु मधुर मृदु मूरति, पानह्यौं न पायनि, कैसे धौं पथ बिचरे हैं ? ॥ २ ॥

उभय बीच बनिता बनौ लखि मोहि परे हैं।
मदन सप्रिया सप्रिय सखा मुनि-वेष बनाए लिए मन जात हरे हैं ॥ ३ ॥
सुनि जहँ तहँ देखन चले अनुराग भरे हैं।
राम पथिक छबि निरखि कै तुलसी, मग-लोगनि धाम-काम बिसरे हैं ॥ ४ ॥

(२६)

कैसे पितु मातु, कैसे ते प्रिय परिजन हैं?
जगजलधि ललाम, लोने लोने गोरे स्याम,
जिन पठए हैं ऐसे बालकनि बन हैं ॥ १ ॥
रूप के न पारावार, भूप के कुमार मुनि वेष
देखत लोनाई लघु लागत मदन हैं।
सुखमा की मूरति सी, साथ निसिनाथ-मुखी,
नख सिख अंग सब सोभा के सदन हैं ॥ २ ॥
पङ्कज-करनि चाप, तीर तरकस कटि,
सरज-सरोजहु तें सुन्दर चरन हैं।
सीता राम लषन निहारि ग्राम नारि कहैं,
हेरि, हेरि, हेरि! हेली हिय के हरन हैं ॥ ३ ॥
प्रानहूँ के प्रान से, सुजीवन के जीवन से,
प्रेमहू के प्रेम, रङ्क कृपिन के धन हैं।
तुलसी के लोचन-चकोरन के चन्द्रमा से,
आछे मन-मोर चित-चातक के घन हैं ॥ ४ ॥

(३२)

जेहि जेहि मग सिय राम लषन गये
तहँ तहँ नर नारि बिनु छर छरिगे[1]।
निरखि निकाई–अधिकाई विथकित भए
बच, बिय-नैन-सर सोभा-सुधा भरिगे ॥ १ ॥
जोते बिनु, बये बिनु, निफन[2] निराये बिनु,
सुकृत-सुखेत सुख-सालि फूलि फरिगे।
मुनिहुँ मनोरथ को अगम अलभ्य लाभ
सुगम सो राम लघु लोगनि को करिगे ॥ २ ॥
लालची कौड़ी के क्रूर पारस परे हैं पाले,
जानत न को हैं, कहा कीबो सो बिसरिगे।
बुधि न बिचार, न बिगार, न सुधार सुधि,
देह गेह नेह नाते मन से निसरिगे ॥ ३ ॥

---

१ बिनु छर छरिगे = बिना छाँटे हुए छँट कर साफ़ हो गये। २ निफन = अच्छी तरह।

बरषि सुमन सुर हरषि हरषि कहैं,
अनायास भवनिधि नीच नीके तरिगे।
सो सनेह समउ सुमिरि तुलसिहु के से,
भलीभाँति भले पैंत भले पाँसे परिगे ॥ ४ ॥

(३३)

बोले राज देनको, रजायसु भो काननको,
आनन प्रसन्न, मनमोद बड़ो काज भो।
मातु-पिता-बंधुहित आपनो परम हित,
मोको बीसहू[1] कै ईस अनुकूल आजु भो ॥ १ ॥
असन अजीरन को समुझि तिलक तज्यो,
बिपिन-गवनु भले भूखे को सुनाजु भो।
धरम-धुरीन धरि बीर रघुबीरजू को,
कोटि राज सरिस भरतजू को राजु भो ॥ २ ॥
ऐसी बातैं कहत सुनत मग-लोगन की,
चले जात बंधु दोउ मुनिको सोसाज भो।
ध्याइबे को, गाइबे को, सेइबे सुमिरिबे को,
तुलसी को सब भाँति सुखद समाज भो ॥ ३ ॥

(३४)

सिरिस-सुमन-सुकुमारि सुखमा की सींव,
सींय, राम बड़े ही सकोच संग लई है।
भाई के प्रान समान, सिया के प्रान के प्रान,
जानि बानि प्रीति रीति कृपासील मई है ॥ १ ॥
आलबाल-अवध सुकामतरु कामबेलि,
दूरिकरि केकई बिपत्ति-बेलि बई है।
आप, पति, पूत, गुरुजन, प्रिय परिजन,
प्रजाहू को कुटिल दुसह दसा दई है ॥ २ ॥
पंकज से पगनि पानह्यौं न, परुष पंथ,
कैसे निबहे हैं निबहैंगे गति नई है ?।
एही सोच संकट मगन मग-नर-नारि।
सबकी सुमति राम-राग-रंग-रई है ॥ ३ ॥
एक कहैं बाम बिधि दाहिनो हमको भयो,
उत कीन्हीं पीठि, इतको सुडीठि भई है।
तुलसी सहित बनबासी मुनि हमरिऔ,
अनायास अधिक अघाइ बनि गई है ॥ ४ ॥

---

१ बीसहू = बीसो बिस्वे, पूरी तरह से ।

(३५)

राग गौरी

नीके कै मैं न बिलोकन पाए।
सखि ! यहि मग जुग पथिक मनोहर, बधु बिधु-बदनि समेत सिधाए ॥१॥
नयन सरोज, किसोर बयस बर, सीस जटा रचि मुकुट बनाए।
कटि मुनि बसन तून, धनु सरकर, स्यामल गौर सुभाय सोहाए ॥२॥
सुंदर बदन, बिसाल बाहु उर, तनु-छबि कोटि मनोज लजाए।
चितवत मोहिं लगी चौंधी सी, जानौं न कौन कहाँ तें धौं आए ॥३॥
मनु गयो संग, सोच बस लोचन, मोचत बारि, कितौ समुझाए।
तुलसिदास लालसा दरस की, सोइ पुरवै जेहिं आनि देखाए ॥४॥

(३६)

पुनि न फिरे दोउ बीर बटाऊ।
श्यामल गौर सहज सुंदर, सखि ! बारक बहुरि बिलोकिबे काऊ ॥ १ ॥
कर-कमलनि सर सुभग सरासन, कटि मुनि बसन निषङ्ग सोहाए।
भुज प्रलंब, सब अंग मनोहर, धन्य सो जनक जननि जेहि जाए ॥ २ ॥
सरद-बिमल-बिधु-बदन, जटा सिर, मंजुल अरुन-सरोरुह-लोचन।
तुलसिदास मनमय मारग में, राजत कोटि-मदन-मदमोचन ॥ ३ ॥

छन्द-संख्या ४६ में चित्रकूट का वर्णन इस प्रकार किया है—

आइ रहे जब तें दोउ भाई।
तब तें चित्रकूट कानन छबि, दिन दिन अधिक अधिक अधिकाई ॥ १ ॥
सीता-राम-लषन-पद-अंकित, अवनि सोहावनि बरनि न जाई।
मंदाकिनि मज्जत अवलोकत, त्रिबिध पाप त्रय ताप नसाई ॥ २ ॥
उकठेउ हरित भए जल-थल रुह, नित नूतन राजीव सुहाई।
फूलत फलत पल्लवत पलुहत, बिटप बेलि अभिमत सुखदाई ॥ ३ ॥
सरित सरनि सरसीरुह-संकुल, सदन सँवारि रमा जनु छाई।
कूजत बिहंग, मंजु गुंजत अलि, जात पथिक जनु लेत बुलाई ॥ ४ ॥
त्रिबिध समीर नीर झर झरननि, जहँ तहँ रहे ऋषि कुटी बनाई।
सीतल सुभग सिलनि परतापस, करत जोग जप तप मन लाई ॥ ५ ॥
भए सब साधु किरात किरातिनि, राम-दरस मिटि गइ कलुषाई।
खग मृग मुदित एक सँग बिहरत, सहज बिषम बड़ बैर बिहाई ॥ ६ ॥
काम केलि बाटिका बिबुध-बन, लघु उपमा कबि कहत लजाई।
सकल भुवन सोभा सकेलि मनौ, राम बिपिन बिधि आनि बसाई ॥ ७ ॥
बन मिस मुनि, मुनितिय, मुनि-बालक, बरनत रघुबर-बिमल-बड़ाई।
पुलक सिथिल तनु, सजल सुलोचनु, प्रमुदित मन जीवन फलु पाई ॥ ८ ॥

क्यों कहौं चित्रकूट-गिरि संपति, महिमा मोद मनोहरताई।
तुलसी जहँ बसि लखन राम सिय, आनँद-अवधि अवध बिसराई ॥ ६ ॥

इसी प्रकार छन्द सं० ४७ में भी कविराज ने चित्रकूट का ही वर्णन किया है। छन्द सं० ४८ और ४९ को साहित्यिक दृष्टि से उपयोगी समझ कर नीचे उद्धृत किया जाता है:—

(४८)

राग बसंत

आजु बन्यो है बिपिन देखो, राम धीर। मानो खेलत फागु मुद मदन बीर ॥
बट बकुल कदंब पनस रसाल। कुसुमित तरु-निकर कुरव[1] तमाल ॥
मानो बिबिध बेष धरे छैल-जूथ। बिच बीच लता ललना बरूथ ॥ २ ॥
पनवानक निर्झर, अलि उपंग। बोलत पारावत मानो डफ मृदङ्ग ॥
गायक सुक कोकिल, झिल्लि ताल। नाचत बहु भाँति बरहिं मराल ॥ ३ ॥
मलयानिल सीतल सुरभि मन्द। बह सहित सुमन रस रेनु बृन्द ॥
मनु छिरकत फिरत सबनि सुरंग। भ्राजत उदार लीला अनंग ॥ ४ ॥
क्रीड़त जीते सुर असुर नाग। हठि सिद्ध मुनिन के पन्थ लाग ॥
कह तुलसिदास तेहि छाँडु मैन। जेहि राख राम राजीव नैन ॥ ५ ॥

(४९)

ऋतु-पति आए भलो बन्यो बनसमाज। मानो भए हैं मदन महाराज आज ॥ १ ॥
मनो प्रमथ फागु मिसकरि अनीति। होरी मिस अरि पुर जारि जीति ॥
मारुत मिस पत्र-प्रजा उजारि। नय नगर बसाए बिपिन झारि ॥ २ ॥
सिंहासन सैल सिला सुरंग। कानन, छबि, रति परिजन कुरंग ॥
सित छत्र सुमन, बल्ली बितान। चामर समीर, निर्झर निसान ॥ ३ ॥
मनो मधु माधव दोउ अनीप धीर। बर बिपुल बिटप बानैत बीर ॥
मधुकर सुक कोकिल बंदि बृन्द। बरनहिं बिसुद्ध जस बिबिध छन्द ॥ ४ ॥
महि परत सुमन-रस फल पराग। जनु देत इतर नृप कर विभाग ॥
कलि सचिव सहित नय-निपुन मार। कियो बिस्व बिबस चारिहु प्रकार ॥ ५ ॥
बिरहिन पर नित नइ परै मारि। डाँड़ियत सिद्ध साधक प्रचारि ॥
तिनकी न काम सकै चापि छाँह। तुलसी जे बसहिं रघुबीर बाँह ॥ ६ ॥

नीचे के छन्दों में कवि-सम्राट ने राम-बन-गमन के विषय में विचार करती हुई माता कौशल्या का अलौकिक पुत्र-प्रेम-प्रदर्शन किया है, जिसे पढ़ कर मनुष्य के हृदय में एक अपूर्व प्रेम का प्रवाह प्रवाहित हो उठता है:—

---

[1] कुरव = कुरवक, कटसरैया।

(५२)

राग सोरठ

जननी निरखति बान धनुहियाँ।
बार बार उर नैननि लावति, प्रभु जू की ललित पहनियाँ ॥ १ ॥
कबहुँ प्रथम ज्यों जाइ जगावति, कहि प्रिय बचन सवारे।
उठहु तात! बलि मातु बदन पर, अनुज सखा सब द्वारे ॥ २ ॥
कबहुँ कहति यों "बड़ी बार भइ जाहु भूप पहँ, भैया।
बंधु बोलि जेंइय जो भावै, गई निछावरि मैया" ॥ ३ ॥
कबहुँ समुझि बनगवन राम को, रहि चकि चित्र लिखी सी।
तुलसिदास वह समय कहे तें, लागति प्रीति सिखी सी ॥ ४ ॥

(५३)

माई री! मोहिं कोउ न समुझावै।
राम-गवन साँचो किधौं सपनो, मन परतीति न आवै ॥ १ ॥
लगेइ रहत मेरे नैननि आगे, राम लषन अरु सीता।
तदपि न मिटत दाह या उर को, बिधि जो भयो बिपरीता ॥ २ ॥
दुख न रहै रघुपतिहि बिलोकत, तनु न रहै बिनु देखे।
करत न प्रान पयान सुनहु सखि! अरुझि परी यहि लेखे ॥ ३ ॥
कौसल्या के बिरह-बचन सुनि, रोइ उठीं सब रानी।
तुलसिदास रघुबीर-बिरह की, पीर न जाति बखानी ॥ ४ ॥

(५४)

जब जब भवन बिलोकति सूनो।
तब तब बिकल होति कौसल्या, दिन दिन प्रति दुख दूनो ॥ १ ॥
सुमिरत बाल-बिनोद राम के, सुंदर मुनि-मन-हारी।
होत हृदय अति सूल समुझि, पदपङ्कज अजिर-बिहारी ॥ २ ॥
को अब प्रात कलेऊ माँगत, रूठि चलैगो, माई!
स्याम-तामरस-नैन स्रवत जल, काहि लेउँ उरलाई ॥ ३ ॥
जीओं तौ बिपति सहौं निसिबासर, मरौं तौ मन पछितायो।
चलत बिपिन भरि नयन राम को, बदन न देखन पायो ॥ ४ ॥
तुलसिदास यह दुसह दसा अति, दारुन बिरह घनेरो।
दूरि करै को भूरि कृपा बिनु, सोक जनित रुज मेरो? ॥ ५ ॥

(५५)

मेरो यह अभिलाषु बिधाता।
कब पुरवै सखि सानुकूल ह्वै, हरि सेवक सुखदाता ॥ १ ॥
सीता सहित कुसल कोसल पुर, आवत हैं सुत दोऊ।
स्रवन-सुधा-सम बचन सखी, कब आइ कहैगो कोऊ ॥ २ ॥

सुनि संदेस प्रेम-परिपूरन, सम्भ्रम उठि धावौंगी।
बदन बिलोकि रोकि लोचन जल, हरषि हिये लावौंगी॥ ३॥
जनक सुता कब सासु कहैं मोहि, राम लषन कहैं मैया।
बाहु जोरि कब अजिर चलहिंगे, स्याम-गौर दोउ भैया॥ ४॥
तुलसिदास यहि भाँति मनोरथ, करत प्रीति अति बाढ़ी।
थकित भई उर आनि राम-छबि, मनहुँ चित्र लिखि काढ़ी॥ ५॥

इसके अनन्तर सुमन्त का अयोध्या-प्रत्यावर्त्तन, दशरथ-प्राणप्रयाण, भरत और शत्रुघ्न का ननिहाल से अयोध्या आना, पुनः राम को बन से वापस लाने के लिये प्रस्थान, राम की चरण-पादुका लेकर चित्रकूट से अयोध्या आकर नन्दिग्राम में भरत का तप करना और पुरवासियों का राम के प्रति प्रेम प्रदर्शित किया गया है। अन्त के दो छन्दों में पुनः माता कौशल्या की प्रीति दिखलायी गयी है।

(८८)

राग केदारा

काहू सों काहू समाचार ऐसे पाए।
चित्रकूट तें राम लषन सिय, सुनियत अनत सिधाए॥ १॥
सैल, सरित, निर्झर, बन, मुनिथल, देखि देखि सब आए।
कहत सुनत सुमिरत सुखदायक, मानस सुगम सुहाए॥ २॥
बड़ि अवलम्ब बाम-बिधि-बिघटित, विषम बिषाद बढ़ाए।
सिरिस सुमन सुकुमार मनोहर, बालक बिंध्य चढ़ाए॥ ३॥
अवध सकल नरनारि बिकल अति, आँकनि बचन अनभाए।
तुलसी राम-बियोग-सोग-बस, समुझत नहीं समुझाए॥ ४॥

(८९)

सुनी मैं, सखि! मङ्गल चाह सुहाई।
सुभ पत्रिका निषादराज की, आजु भरत पहँ आई॥ १॥
कुँवर सो कुसल-छेम अलि! तेहि पल, कुल गुरु कहँ पहुँचाई।
गुरुकृपालु संभ्रम पुर घर घर, सादर सबहि सुनाई॥ २॥
बधि बिराध, सुर साधु सुखी करि, ऋषि सिख आसिष पाई।
कुंभज सिष्य समेत सङ्ग सिय, मुदित चले दोउ भाई॥ ३॥
बीच बिंध्य रेवा सुपास थल, बसे हैं परन-गृह छाई।
पंथ-कथा रघुनाथ पथिक की, तुलसिदास सुनि गाई॥ ४॥

अरण्यकाण्ड—इस कांड में कुल १७ छन्द हैं। बन में राम-लक्ष्मण गयाका मृ खेलना, कपट-मृग का वध, सीता-हरण, राम का विलाप, गृद्ध-राज से सीता का सम्वाद पाना, जङ्गल में इतस्ततः भ्रमण और शबरी के आश्रम में जाने की कथा लिखी है। केवल एक छन्द नमूने के लिये नीचे दिया जाता है:—

(११)

राग सोरठ

जबहि सिय-सुधि सब सुरनि सुनाई।
भए सुनि सजग-बिरह सरि पैरत, थके थाह सी पाई॥
कसि तूनीर तीर धनु-धर-धुर, धीर बीर दोउ भाई।
पंचवटी गोदहि प्रनाम करि, कुटी दाहिनी लाई॥
चले बूझत बन बेलि बिटप खग, मृग अलि अवलि सुहाई।
प्रभु की दसा सो समौ कहिबे को, कवि उर आह न आई॥
रटनि अकनि पहचानि गीध फिरे, करुनामय रघुराई।
तुलसी रामहिं प्रिया बिसरि गई, सुमिरि सनेह सगाई॥११॥

किष्किंधाकाण्ड—इस काण्ड में केवल दो छन्द हैं जो नीचे दिये जाते हैं :—

(१)

राग केदारा

भूषन बसन बिलोकत सिय के।
प्रेम-बिबस मन, कंप पुलक तनु, नीरज नयन नीर भरे पियके॥
सकुचत कहन, सुमिरि उर उमगत, सील सनेह सुगुन गन तियके।
स्वामि दसा लखि लषन सखा कपि, पिघले हैं आँच माठ मानो घियके॥
सोचत हानि मानि मन, गुनि गुनि, गये निघटि फल सकल सुकियके।
बरने जामवंत तेहि अवसर, बचन बिवेक बीर रस बिय के॥
धीर बीर सुनि समुझि परसपर, बल उपाय उघटत निज हिय के।
तुलसिदास यह समउ कहे तें, कबि लागत निपट निठुर जड़ जिय के॥१॥

(२)

प्रभु कपि-नायक बोलि कह्यो है।
बरषा गई, सरद आई, अबलगि नहिं सिय-सोधु लह्यो है।
जाकारन तजि लोक लाज तनु, राखि बियोग सह्यो है।
ताको तौ कपिराज आज लगि, कछु ना काज निबह्यो है।
सुनि सुग्रीव सभीत नमित-मुख, उतरु न देन चह्यो है।
आइ गए हरि-जूथ देखि उर, पूरि प्रमोद रह्यो है।
पठये बदि बदि अवधि दसहुँ दिसि, चले बलु सबनि गह्यो है।
तुलसी सिय लगि भवदधि-निधि, मनु फिर हरि चहत मह्यो है।

सुन्दरकाण्ड—इस कांड में सीता का पता लगाने के लिये हनुमान का लंका-प्रवेश, सीता से वार्त्तालाप कर रामचन्द्र के पास आना, राम का युद्ध के लिये

प्रस्थान, बिभीषण का राम से मिलना इत्यादि कथन किया गया है। अन्त में सीता और त्रिजटा का सम्वाद है। जिसमें से नमूने के कुछ पद्य नीचे उद्धृत किये जाते हैं:—

(४८)

राग केदारा

कहु कबहुँ देखिहौं आली! आरज सुवन।
सानुज सुभग-तनु जब ते बिछुरे बन, तब तें दव सी लगी तीनहुँ भुवन।
मूरति सूरति किये प्रगट प्रीतम हिये, मनके करन चाहैं चरन छुवन।
चित चढ़िगो बियोग दसा न कहिबे जोग, पुलक गात लागे लोचन चुवन।
तुलसी त्रियजटा जानी सिय अति अकुलानी मृदु बानी कह्यो एहैं दवन-दुवन।
तमीचर-तमहारी सुरकंज सुखकारी, रविकुल रबि अब चाहत उवन ॥४८

(४९)

अबलौं मैं तोसों न कहेरी।
सुन त्रिजटा! प्रिय प्राननाथ बिनु बासर निसि दुख दुसह सहेरी।
बिरह बिषम बिष-बेलि बढ़ी उर, ते सुख सकल सुभाय दहेरी।
सोइ सींचिबे लागि मनसिज के रहँट नयन नित रहत न हेरी।
सर-सरीर सूखे प्रान बारिचर जीवन आस तजि चलनु चहेरी।
तैं प्रभु-सुजस-सुधा सीतल करि राखे तदपि न तृप्ति लहेरी।
रिपु-रिस घोर नदी बिबेक बल, धीर सहित हुते जात बहेरी।
दै मुद्रिका-टेक तेहि औसर, सुचि समीरसुत बैरि गहेरी।
तुलसिदास सब सोच पोच मृग मन कानन भरि पूरि रहेरी।
अब सखि सिय सन्देह परिहरु हिय आइ गए दोउ बीर अहेरी।

(५०)

राग बिलावल

सो दिन सोने को कहु कब ऐहै?
जा दिन बंध्यौ सिंधु त्रिजटा सुनु तू संभ्रम आनि मोहिं सुनैहै।
बिस्वदवन सुर-साधु-सतावन रावन कियो आपनो पैहै॥
कनक-पुरी भयो भूप बिभीषण बिबुध-समाज बिलोकन धैहै।
दिव्य दुंदुभि, प्रसंसि हैं मुनिगन, नभतल बिमल बिमाननि छैहै॥
बरषिहैं कुसुम भानुकुल-मनि पर, तब मोको पवनपूत लै जैहै।
अनुज सहित सोभिहैं कपिन महँ, तनु छबि कोटि मनोज हितैहै॥
इन नयनन्हि यहि भाँति प्रानपति, निरखि हृदय आनँद न समैहै।
बहुरो सदल, सनाथ, सलछिमन कुसल कुसल बिधि अवध देखैहै॥
गुरु, पुर लोग, सास, दोउ देवर, विमल दुसह उर तपनि बुतैहै।

मंगल-कलस, बधावने घर घर, पैहैं माँगने जो जेहि भैहैं।
बिजय राम राजाधिराज को, तुलसिदास पावन जस गैहैं ॥ ५० ॥

(५१)

सिय! धीरज धरिये राघौ अब ऐहैं।
पवनपूत पै पाइ तिहारी सुधि सहज कृपालु बिलंब न लैहैं।
सेन साजि कपि भालु कालसम कौतुक ही पाथोधि बँधैहैं।
घेरोइ पै देखिबो लंक गढ़ बिकल जातु धानी पछितैहैं।
रावन करि परिवार अगमनो जमपुर जात बहुत सकुचैहैं।
तिलक सारि अपनाय बिभीषन अभय-बाँहदै अमर बसैहैं।
जय धुनि मुनि बरषिहैं सुमन सुर, ब्योम बिमान निसान बजैहैं।
बंधु समेत प्रानबल्लभपद परसि सकल परिताप नसैहैं।
राम बाम दिसि देखि तुमहिं सब नयनवंत लोचन फल पैहैं।
तुम अति हित चितइहौ नाथ-तनु, बार बार प्रभु तुमहिं चितैहैं।
यह सोभा सुख समय बिलोकत काहू तो पलकैं नहिं लैहैं।
कपिकुल लखन सुजस जय जानकि सहित कुसल निज नगर सिधैहैं।
प्रेम पुलकि आनंद मुदित मन तुलसिदास कलकीरति गैहैं ॥

लंकाकाण्ड—इस काण्ड में कुल २३ छन्द हैं। अङ्गद का रावण के दरबार में जाना और सन्धि का परामर्श, राम-रावण युद्ध, लक्ष्मण का शक्ति से आघात, रावण का सवंश-विनाश और राम का विजयी हो कर सकुशल अयोध्या-प्रत्यावर्त्तन लिखा गया है। अन्तिम दो पद्य ये हैं:—

(२२)

राग जयश्री

रन जीति राम राउ आए।
सानुज सदल ससीय कुसल आजु अवध आनन्द-बधाए ॥
अरि-पुर जारि, उजारि, मारि रिपु, बिबुध सुवास बसाए।
धरनि धेनु महिदेव साधु सबके सब सोच नसाये ॥
दई लङ्क, थिर-थपे बिभीषन, बचन पियूष पिआए।
सुधा सींचि कपि, कृपा नगर-नर-नारि निहारि जिआए ॥
मिलि गुरु बंधु मातु जन परिजन भए सकल मन भाए।
दरस-हरष दसचारि बरष के दुख पल में बिसराए।
बोलि सचिव सुचि सोधि सुदिन मुनि मङ्गल साज सजाए।
महाराज अभिषेक बरषि सुर सुमन निसान बजाए ॥
लै लै भेंट नृप अहिप लोकपति अति सनेह सिर नाए।
पूजि प्रीति पहिचानि राम आदरे अधिक अपनाए ॥

दान मान सनमानि जानि रुचि जाचक जन पहिराए।
गये सोक-सर सूखि, मोद-सरिता-समुद्र गहिराए॥
प्रभु, प्रताप-रवि अहित-अमङ्गल-अघ-उलूक-तम ताए।
किये बिलोक हित-कोक-कोकनद, लोक सुजस सुभ छाए॥
राम राज कुल काज सुमङ्गल सबनि सबै सुख पाए।
देहिं असीस भूमिसुर प्रमुदित प्रजा प्रमोद बढ़ाए॥
आस्रम-धरम-बिभाग बेद पथ पावन लोग चलाए।
धर्म-निरत सिय-राम-चरन-रत मनहुँ राम-सिय-जाए॥
कामधेनु महि बिटप कामतरु कोउ बिधि बाम न लाये।
ते तब, अब तुलसी तेउ जिन्ह हित-सहित राम-गुन गाये॥

(२३)

राग टोड़ी

आजु अवध आनन्द बधावन रिपु रन जीति राम आए।
सजि सुबिमान निसान बजावत मुदित देव देखन धाए॥
घर घर चारु चौक चंदन मनि मंगल-कलस सबनि साजे।
ध्वज पताक तोरन बितान बर, बिबिध भाँति बाजन बाजे॥
राम-तिलक सुनि दीप दीप के नृप आए उपहार लिये।
सीयसहित आसीन सिंहासन निरखि जोहारत हरष हिये॥
मंगल गान, वेदधुनि, जयधुनि मुनि-असीस-धुनि भुवन भरे।
बरषि सुमन सुर सिद्ध प्रसंसत, सब के सब संताप हरे॥
राम-राज भइ कामधेनु महि सुख सम्पदा लोक छाए।
जनम जनम जानकी नाथ के गुनगन तुलसिदास गाए॥

उत्तरकाण्ड—इस काण्ड में ३८ छन्द हैं। तुलसीदास के अन्यान्य ग्रन्थों की भाँति गीतावली का उत्तरकाण्ड भी विविध विषयों से सन्निविष्ट है। रामसहित समस्त समाज का आमोद-प्रमोद, अयोध्या का विभव, विशेष कर रामचन्द्र का सौंदर्य और पुनः अयोध्या का श्रीवर्णन किया गया है। छन्द-संख्या १२-१३ और १७ नीचे दिये जाते हैं:—

(१२)

राग भैरव

प्रातकाल रघुबीर-बदन-छबि चितै चतुर चित मेरे।
होहिं बिबेक-बिलोचन निर्मल सुफल सुसीतल तेरे।
भाल बिसाल बिकट भ्रकुटी तिलक-रेख रुचि राजै॥
रुचिर पलक-लोचन जुग तारक स्याम, अरुन सित कोए।
जनु अलि नलिन-कोस महँ बंधुक-सुमन सेज सजि सोए॥

बिलुलित ललित कपोलनि पर कच मेचक कुटिल सुहाए।
मनो बिधु महँ बनरुह बिलोकि अलि बिपुल सकौतुक आए॥
सोभित स्रवन कनक-कुंडल कल लंबित बिवि भुजमूले।
मनहुँ केकि तकि गहन चहत जुग उरग इंदु प्रतिकूले॥
अधर अरुनतर, दसन-पाँति वर, मधुर मनोहर हासा।
मनहु सोन-सरसिज महँ कुलिसनि तड़ित सहित कृतवासा॥
चारु चिबुक, सुकतुंड-बिनिंदक सुभग सुउन्नत नासा।
तुलसिदास छबि धाम राम मुख सुखद समन भव त्रासा॥

(१३)

राग केदारा

सुमिरत श्री रघुबीर की बाहैं।
होत सुगम भव उदधि अगम अति, कोउ लाँघत, कोउ उतरत थाहैं॥
सुंदर-स्याम-सरीर-सैल तें, धँसि जनु जुग जमुना अवगाहैं।
अमित अमल जल-बल परिपूरन, जनु जनमी सिंगार-सविता हैं॥
धारैं बान, कूल धनु, भूषन, जलचर भँवर सुभग सब घाहैं[1]।
बिलसति बीचि बिजय-बिरदावलि, कर-सरोज सोहत सुषमा हैं॥
सकल-भुवन-मंगल-मंदिर के, द्वार बिसाल सुहाई साहैं[2]।
जे पूजी कौसिक-मख ऋषयनि, जनक गनप संकर गिरिजाहैं॥
भव धनु दलि जानकी बिवाही, भए बिहाल नृपाल त्रपाहैं[3]।
परसु पानि जिन्ह किए महामुनि, जे चितए कबहूँ न कृपाहैं॥
जातु-धान-तिय जानि बियोगिनि, दुखई सीय सुनाइ कुचाहैं।
जिन्ह रिपु मारि सुरारि-नारि तेह, सीस उघारि दिवाई[4] धाहैं॥
दसमुख-बिबस तिलोक लोकपति, बिकल बिनाए नाक चनाहैं।
सुबस बसे गावत जिन्ह के जस, अमर-नाग-नर-सुमुखि सनाहैं॥
जे भुज बेद पुरान सेष सुक, सारद सहित सनेह सराहैं।
कल्पलताहु की कल्पलता वर, कामदुहहु की कामदुहाहैं॥
सरनागत आरत प्रनतनि को, दै दै अभय पद ओर निबाहैं।
करि आईं, करिहैं, करती हैं, तुलसिदास दासनि पर छाहैं॥

(१७)

राग कान्हरा

देखो रघुपति छबि अतुलित अति।
जनु तिलोक सुखमा सकेलि विधि, राखी रुचिर अंग अंगनि प्रति॥

---

१ घाहैं = दो उँगलियों के बीच की घाई (संधिस्थान)। २ साहैं = द्वार के ढाँचे की दोनों खड़ी लकड़ियाँ। ३ त्रपा = लज्जा। ४ धाहैं दिवाईं = धाड़ मार कर रुलाया।

पदुमराग रुचि मृदु पदतल, धुज, अंकुस कुलिस कमल यहि सूरति।
रही आनि चहुँ बिधि भगतनि की, जनु अनुराग भरी अन्तर गति॥
सकल सुचिह्न सुजन सुखदायक, ऊरधरेख विशेख बिराजति।
मनहुँ भानु मंडलहिं सँवारत, धर्यौ[1] सूत विधि[2] सुत बिचित्र मति॥
सुभग अँगुष्ठ अंगुली अविरल, कछुक अरुन नख जोति जगमगति।
चरन पीठ उन्नत नत-पालक, गूढ़ गुलुफ जंघा कदली[3] जति॥
कामतूनतल सरिस जानु युग, उरु करि कर करमहिं बिलखावति।
रचना रचित रतन चामीकर, पीतबसन कटि कसे सरसावति॥
नाभीसर त्रिवली मिसेनिका, रोम राजि सैवल छबि पावति।
उर मुकुतामनि माल मनोहर, मनहुँ हंस अवली उड़ि आवति॥
हृदयपदिक भृगु चरन चिह्नवर, बाहु बिसाल जानु लगि पहुँचति।
कल केयूर पूर कञ्चन मनि, पहुँची मंजु कञ्ज कर सोहति॥
सुजस सुरेख सुनख अंगुलि जुत, सुन्दर पानि मुद्रिका राजति।
अंगुलित्रान कमान बान छबि, सुरनि सुखद असुरनि उर सालति॥
स्याम सरीर सुचन्दन चर्चित, पीत दुकूल अधिक छबि छाजति।
नील जलद पर निरखि चन्द्रिका, दुरनि त्यागि दामिनि जनु दमकति॥
यज्ञोपवीत पुनीत विराजत, गूढ़ जत्रु[4] बनि पीन अंस[5] तति[6]।
सुगढ़ पुष्ट उन्नत कृकाटिका[7], कम्बु कण्ठ सोभा मन मानति॥
सरद समय सरसीरुह निन्दक, मुख सुखमा कछु कहत न बानति।
निरखत ही नयननि निरुपम सुख, रविसुत, मदन, सोम-दुति निदरति॥
अरुन अधर द्विज पाँति अनूपम, ललित हँसनि जनु मन आकरषति।
बिद्रुम रचित बिमान मध्यजनु, सुर मण्डली सुमन-चय बरखति॥
मंजुल चिबुक मनोरम हनुथल, कल कपोल नासा मन मोहति।
पङ्कज मान बिमोचन लोचन, चितवनि चारु अमृत-जल सींचति॥
केस सुदेस गँभीर बचन बर, स्रुति कुण्डल डोलनि जिय जागति।
लखि नव नील पयोद रवित सुनि, रुचिर मोरी जनु नाचति॥
भौंहें बङ्क मयङ्क अङ्क रुचि, कुंकुम रेख भाल भलि भ्राजति।
सिरसि हेम हीरक मानिकमय, मुकुट-प्रभा सब भुवन प्रकासति॥
बरनत रूप पार नहिं पावत, निगम सेष सुक सङ्कर भारति।
तुलसिदास केहि बिधि बखानि कहै, यह मन बचन अगोचर मूरति॥

इसी क्रम से छन्द-संख्या २३ तक अयोध्या के विभव और अभ्युदय का वर्णन किया गया है। इसके अनन्तर जानकी-परित्याग का वर्णन आया है। 'राम-चरित-मानस' में गोसाईंजी ने इस की चर्चा तक नहीं आने दी। केवल

---

१ सूतधर्यौ = कारीगरों के समान सीध नापने के लिये सूत रखा। २ विधिसुत = विश्वकर्मा। ३ कदली जति = कदलीजित। ४ जत्रु = गले के नीचे की धन्वाकार हड्डी जिसे हँसली कहते हैं। ५ अंस = कन्ध। ६ तति = विस्तीर्ण। ७ कृकाटिका = कन्धे और गले का जोड़।

'सियनिन्दक अघ ओघ नसाये। लोक बिसोक बनाइ बसाये॥'
लिखकर ही छोड़ दिया। परन्तु गीतावली के कई छन्दों में कवि ने मर्मस्पर्शी शब्दों में इस करुण-दृश्य को खचित किया है। मानस-रामायण में तो अयोध्या-वर्णन में ही

'दुइ सुत सीता सुन्दर जाये'

लिख दिया है, परन्तु गीतावली की छन्द-संख्या २६ से सिद्ध होता है कि सीता गुर्विणी थी उसी समय रामचन्द्र ने वाल्मीकि के आश्रम में भेज दिया था। पाठकों के ज्ञातव्य के भाव से यह कथा अविकल उद्धृत की जाती है:—

(२५)

राग सोरठ

संकट सुकृत को सोचत जानि जिय रघुराउ।
सहस द्वादस पंचसत में कछुक है अब आउ॥
भोग पुनि पितु-आयु को*, सोउ किए बनै बनाउ।
परिहरे बिनु जानकी नहिं और अनघ उपाउ॥
पालिबे असिधार-व्रत प्रिय प्रेम-पाल सुभाउ।
होइ हित केहि भाँति, नित सुविचारु नहिं चित चाउ॥
निपट असमंजसहु बिलसति मुख मनोहर ताउ।
परम धीर-धुरीन हृदय कि हरष बिसमय काउ?॥
अनुज सेवक सचिव हैं सब सुमति साधु सखाउ।
जान कोउ न जानकी बिनु अगम अलख लखाउ॥
राम जोगवत सीय-मनुप्रिय मनहि प्रान प्रियाउ।
परम पावन प्रेम-परमिति समुझि तुलसी गाउ॥

(२६)

राम बिचारि कै राखी ठीक दै मन माहिं।
लोक बेद सनेह पालत पल कृपालहि जाहिं॥
प्रियतमा-पति-देवता जिहि उमा रमा सिहाहिं।
गुरुविनी† सुकुमारि सिय तियमनि समुझि सकुचाहिं॥
मेरे ही सुख सुखी सुख अपनो सपनहूँ नाहिं।
गेहिनी गुन-गेहिनी गुन सुमिरि सोच समाहिं॥
राम सीय सनेह बरनत अगम सुकबि सकाहिं।
रामसीय-रहस्य तुलसी कहत राम कृपाहिं॥

---

* भोग पुनि पितु-आयु को = ऐसा प्रसिद्ध है कि राजा दशरथ अपनी आयु पूरी करने के पहले ही मर गये, उनकी शेष आयु को रामचन्द्र जी ने भोगा। अपनी आयु भर तो राम ने जानकी को साथ रखा, पर जब अपने पिता की आयु भोगने चले तब जानकी का परित्याग उन्होंने उचित बिचारा।

† गुरुविनी = गर्विणी, गर्भवती।

(२७)

चरचा चरनि सों चरची जानमनि रघुराइ।
दूत-मुखसुनि लोक-धुनिघर घरनि बूझी आइ॥
प्रिया निज अभिलाष रुचि कहि कहति सिय सकुचाइ।
तीय तनय समेत तापस पूजिहौं बन जाइ।
जानि करुनासिंधु भावी-बिबस सकल सहाइ॥
धीरि धरि रघुबीर भोरहि लिए लषन बोलाइ।
तात तुरतहि साजि स्यंदन सीय लेहु चढ़ाइ॥
बालमीकि मुनीस-आस्रम आइयहु पहुँचाइ।
'भलेहि नाथ' सुहाथ माथे राखि राम-रजाइ॥
चले तुलसी पालि सेवक धरम-अवधि-अघाइ।

(२८)

आए लषन लै सौंपी सिय मुनी सहि आनि।
नाइ सिर रहे पाइ आसिष जोरि पंकज पानि॥
बालमीकि बिलोकि व्याकुल, लषन गरत गलानि।
सर्व विद् बूझत न बिधि की बामता पहिचानि॥
जानि जिय अनुमान हो सिय सहस बिधि सनमानि।
राम सद्गुन-धाम, परमिति भई कछुक मलानि॥
दीनबंधु दयालु देवर देखि अति अकुलानि।
कहति बचन उदास तुलसी दास त्रिभुवन-रानि॥

(२९)

तौलौं बलि आपुही कीबी बिनय समुझि सुधारि।
जौलों हौं सिखि लेउँ बन ऋषि-रीति बसि दिन चारि॥
तापसी कहि कहा पठवति नृपनि को मनुहारि।
बहुरि तिहि बिधि आइ कहि है साधु कोउ हितकारि॥
लषन लाल कृपाल! निपटहि डारिबीन बिसारि।
पालवी सब तापसनि ज्यों राजधरम बिचारि॥
सुनत सीता-बचन मोचत सकल लोचन-बारि।
बालमीकि न सके तुलसी सो सनेह सँभारि॥

× × × × ×

(३३)

जबतें जानकी रही रुचिर आस्रम आइ।
गगन, जल, थल विमल तब तें सकल मङ्गलदाइ॥
निरस भूरुह सरस फूलत फलत अति अधिकाइ।
कन्द मूल अनेक अंकुर स्वाद सुधा लजाइ॥

मलय मरुत, मराल-मधुकर-मोर-पिक-समुदाइ।
मुदित-मन मृग बिहग बिहरत बिषम बैर बिहाइ॥
रहत रबि अनुकूल दिन, ससि रजनि सजनि सुहाइ।
सीय सुनि सादर सराहति सखिन्ह भलो मनाइ॥
मोद-बिपिन-बिनोद चितवत लेत चितहिं चोराइ।
रामबिनु सिय सुखद बन तुलसी कहै किमि गाइ॥

(३४)

सुभ दिन, सुभ घरी, नीको नखत, लगन सुहाइ।
पूत जाये जानकी द्वै मुनिबधू उठीं गाइ॥
हरषि बरषत सुमन सुर गह गहे बधाए बजाइ।
भुवन कानन आस्रमनि रहे मोद मङ्गल छाइ॥
तेहि निसा तहँ सत्रु सूदन रहे बिधि बस आइ।
माँगि मुनि सों बिदा गवने भोर सो सुख पाइ॥
मातु मौसी बहिनिहूँ तें सासु तें अधिकाइ।
करहिं तापस-तीय तनया सीय-हित चित लाइ॥
किए बिधि ब्यवहार मुनिवर विप्रवृन्द बोलाइ।
कहत सब ऋषिकृपा को फल भयो आजु अघाइ॥
सुरुष ऋषिसुख सुतनि को, सिय सुखद सकल सहाइ।
सूल राम-सनेह को तुलसी न जिय तें जाइ॥

× × × ×

(३६)

बालक सीय के बिहरत मुदित मन दोउ भाइ।
नाम लव कुस राम-सीय-अनुहरति सुन्दरताइ॥
देत मुनि मुनि-सिसु खेलौना ते लै धरत दुराइ।
खेल खेलत नृप-सिसुह के बाल वृन्द बोलाइ॥
भूप भूषन बसन बाहन राज-साज सजाइ।
बरम चरम कृपान सर धनु तून लेत बनाइ॥
दुखी सिय पिय-बिरह तुलसी, सुखी सुत-सुख पाइ।
आँच पय उफनात सींचत सलिल ज्यों सकुचाइ॥

× × × ×

इसके अनन्तर कविसम्राट ने दो पद्य और दे-कर कांड की समाप्ति की है। ग्रन्थ की रचना, वर्णनशैली और साहित्यिक दृष्टि से भी अत्यन्त उत्तम एवं देय है। महाकवि ने इस ग्रन्थ में अपनी अद्भुत और अनुपम कवित्व-शक्ति प्रदर्शन किया है। बड़े बड़े सुकवि इस ग्रन्थ की मनोहारिणी कविता पर मुग्ध हैं।

[४] दोहावली

यह ग्रन्थ ५७३ पद्यों का संग्रह मात्र है। दोहे और सोरठे दो ही प्रकार के छन्दों से ग्रन्थ परिपूर्ण है। दोहों की संख्या की बहुलता के कारण ही ग्रन्थ का नाम 'दोहावली' पड़ा है। इस संग्रहीत ग्रन्थ में लगभग आधे पद्य तुलसीकृत राम-चरित-मानस, तुलसी-सतसई, रामाज्ञा और वैराग्य-सन्दीपनी आदि ग्रन्थों के हैं। परिशेषार्द्ध स्फुट काव्य की भाँति समय समय के निर्मित प्रतीत होते हैं। यही कारण है कि ग्रन्थ का कोई समुचित विषय-विभाग वा क्रम नहीं है। रामनाम-माहात्म्य, तत्वज्ञान, राजनीति, धर्मनीति और परम्परया कलियुग का वर्णन किया गया है। जान पड़ता है कि गोसाईं जी के देहावसान के पश्चात् किसी ने एकत्रित कर 'दोहा-वली' नाम से प्रख्यात कर दिया है। कुछ दोहे बेप्रसंग भी संग्रहीत होगये हैं। उदाहरण के लिये आप दोहा-संख्या २०५, २०६, २४१ और २७१ को ले सकते हैं। अधिकांश पद्यों के पढ़ने से गोसाईं जी की ईश्वरभक्ति, राज-नीतिज्ञता, सांसा-रिक विवेक और धर्मपरायणता का पता चलता है। चातक की अन्योक्ति का अधिकांश सतसई से लिया गया है। यह समस्त प्रकरण ही भगवद्भक्ति और राम-प्रेम की चरम सीमा से समाविष्ट और सन्निहित है। इस ग्रन्थ से

भक्ति-परक

कुछ दोहे नीचे नमूने के तौरपर उपयोगी समझकर दिये जाते हैं :—

राम नाम मणि दीप धरु, जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहिरो, जो चाहसि उजियार ॥ १ ॥
हिय निर्गुण नयनन्हि सगुण, रसना राम सुनाम।
मनहुँ मुरट संपुट लसत, तुलसी ललित ललाम ॥ २ ॥
राम नाम जपि जीह जन, भये सुकृत सुख सालि।
तुलसी इहाँ जो आलसी, गयो आजु की कालि ॥ ३ ॥
स्वारथ सुख सपनेहु अगम, परमारथ न प्रवेस।
राम नाम सुमिरत मिटहिं, तुलसी कठिन कलेस ॥ ४ ॥
राम नाम अवलंब बिनु, परमारथ की आस।
तुलसी बारिद बूँद गहि, चाहत चढ़न अकास ॥ ५ ॥
बिगरी जन्म अनेक की, सुधरे अबहीं आजु।
होइ राम को नाम जपु, तुलसी तजि कुसमाजु ॥ ६ ॥
सकल कामना हीन जे, राम भगति रस लीन।
नाम प्रेम पीयूष ह्रद, तिनहुँ किये मन मीन ॥ ७ ॥
हिय फाटहु फूटहु नयन, जरउ सो तन केहि काम।
द्रवहिं स्रवहिं पुलकहिं नहीं, तुलसी सुमिरत राम ॥ ८ ॥

रे मन सबसों निरस ह्वै, सरस राम सो होहि।
भलो सिखावन देत है, निसि दिन तुलसी तोहि ॥९॥
हरे चरहिं तापहिं बरे, फरे पसारहिं हाथ।
तुलसी स्वारथ मीत सब, परमारथ रघुनाथ ॥१०॥
स्वारथ परमारथ सकल, सुलभ एक ही ओर।
द्वार दूसरे दीनता, उचित न तुलसी तोर ॥११॥
ज्यौं जग बैरी मीन को, आपु सहित परिवार।
त्यौं तुलसी रघुनाथ बिनु, आपनि दसा निहार ॥१२॥
जे जन रूखे विषय रस, चिकने राम सनेह।
ते तुलसी प्रिय राम को, कानन बसहिं कि गेह ॥१३॥
तुलसी जौ पै राम सों, नाहिन सहज सनेह।
मूंड़ मुड़ायो वादि ही, भाँड भयो तजि गेह ॥१४॥
तुलसी श्री रघुबीर तजि, करै भरोसो और।
सुख संपति की का चली, नरकहु नाहीं ठौर ॥१५॥
तुलसी हरि अपमान ते, होइ अकाज समाज।
राज करत रज मिलि गये, सदल सकुल कुरुराज ॥१६॥
राम दूरि माया बढ़ति, घटति जानि मन माँह।
भूरि होति रवि दूरि लखि, सिर पर पगतर छाँह ॥१७॥
बरखा को गोबर भयो, को चहै को करै प्रीति।
तुलसी तू अब अनुभवहि, राम विमुख की रीति ॥१८॥
प्रेम काम तरु परिहरत, सेवत कलि तरु ठूँठ।
स्वारथ परमारथ चहत, सकल मनोरथ झूँठ ॥१९॥
राम प्रेम पथ पोषिये, दिये विषय तनु पीठि।
तुलसी केंचुरि परिहरे, होत साँप हूँ दीठि ॥२०॥
तुलसी जौलों विषय की, मुधा माधुरी मीठि।
तौलों सुधा सहस्र सम, राम भगति सुठि सीठि ॥२१॥
सत्य बचन मानस बिमल, कपट रहित करतूति।
तुलसी रघुबर सेवकहिं, सकै न कलियुग धूति ॥२२॥
हित सों हित रति राम सों, रिपु सों बैर विहाउ।
उदासीन सब सों सरल, तुलसी सहज सुभाउ ॥२३॥
तुलसी राम कृपालु सों, कहि सुनाउ गुन दोष।
होइ दूबरी दीनता, परम पीन सन्तोष ॥२४॥
सब संगी बाधक भये, साधक भये न कोइ।
तुलसी राम कृपालु ते, भलो होइ सो होइ ॥२५॥
जाय कहब करतूति बिनु, जाय जोग बिनु छेम।
तुलसी जाय उपाय सब, बिना राम-पद-प्रेम ॥२६॥

जरै सो संपति सदन सुख, सुहृद मातु पितु भाइ।
सन्मुख होत जो राम पद, करै न सहज सहाइ ॥२७॥
वेष बिसद बोलनि मधुर, मन कटु करम मलीन।
तुलसी राम न पाइये, भये विषय जल मीन ॥२८॥
माया जीव सुभाव गुन, काल करम महदादि।
ईस अंक ते बढ़त सब, ईस अंक बिनु बादि ॥२९॥
परमारथ पहिचानि मति, लसति विषय लपटानि।
निकसि चिता ते अध जरति, मानहुँ सती परानि ॥३०॥

अब कुछ

नीति-विधायक

पद्य इस ग्रन्थ से समुद्धृत किये जाते हैं। इस पुस्तक में राजनीति सम्बन्धी बातें भी गोसाईंजी ने अत्युच्च कक्षा की लिखी हैं, जिनका उद्धरण स्वतन्त्र शीर्षक में किया जायगा।

दिये पीठि पाछे लगे, सन्मुख होत पराय।
तुलसी सम्पति छाँह ज्यों, लखि दिन बैठि गँवाय ॥ १ ॥
सेई सेमर तेइ सुवा, सेवत सदा बसन्त।
तुलसी महिमा मोह की, सुनत सराहत सन्त ॥ २ ॥
हित पुनीत सब स्वारथहिं, अरि असुद्ध बिनु चाँड़।
निज मुख मानिक समदसन, भूमि परत भो हाड़ ॥ ३ ॥
हृदय कपट बर बेष धरि, बचन कहैं गढ़ि छोलि।
अब के लोग मयूर ज्यों, क्यों मिलिये मन खोलि ॥ ४ ॥
चरन चोंच लोचन रँगे, चले मराली चाल।
छीर नीर बिबरन समय, बक उघरत तेहि काल ॥ ५ ॥
कृसधन सखहिं न देब दुख, मुएहु न माँगब नीच।
तुलसी सज्जन की रहनि, पावक पानी बीच ॥ ६ ॥
नीच निचाई नहिं तजै, सज्जन हू के सङ्ग।
तुलसी चन्दन बिटप बसि, विष नहिं तजत भुजङ्ग ॥ ७ ॥
मिथ्या माहुर सुजन कहँ, खलहिं गरल सम साँच।
तुलसी छुवत परात ज्यों, पारद पावक आँच ॥ ८ ॥
सन्त सङ्ग अपवर्ग कर, कामी भवकर पन्थ।
कहहिं साधु कवि कोविद, श्रुति पुरान सद्ग्रन्थ ॥ ९ ॥
सुकृत न सुकृती परिहरै, कपट न कपटी नीच।
मरत सिखावन देइ चले, गीधराज मारीच ॥१०॥
सुजन सुतरु बन ऊख सम, खल टंकिका रुखान।
परहित अनहित लागि सब, साँसति सहत समान ॥११॥

सुजन कहत भल पोच पथ, पापि न परखे भेद।
करमनास सुरसरित मिस, विधि निषेध बद बेद ॥१२॥
आपु आपु कहँ सब भलो, अपने कहँ कोइ कोइ।
तुलसी सब कहँ जो भलो, सुजन सराहिय सोइ ॥१३॥
बसि कुसङ्ग चह सुजनता, ताकी आस निरास।
तीरथ हू को नाम भो, 'गया' मगह के पास ॥१४॥
होइ भले के अनभलो, होइ दानि के सूम।
होइ कुपूत सुपूत के, ज्यों पावक में धूम ॥१५॥
बरखि बिस्व हरषित करत, हरत ताप अघ प्यास।
तुलसी दोष न जलद को, जो जल जरै जवास ॥१६॥
अमर राति जाचक करहिं, मरि मरि फिरि फिरि लेहिं।
तुलसी जाचक पातकी, दातहिं दूषन देहिं ॥१७॥
लखि गयन्द लै चलत भजि, स्वान सुखानो हाड़।
गज गुन मोल अहार बल, महिमा जान कि राड़ ॥१८॥
कै निदरहु कै आदरहु, सिंहहिं स्वान सियार।
हर्ष बिषाद न केहरिहिं, कुंजर गंजनिहार ॥१९॥
ठाढ़ो द्वार न दै सकैं, तुलसी जे नर नीच।
निन्दहिं बलि हरिचंद को, का कियो करन दधीच ॥२०॥
पर सुख संपति देखि सुनि, जरहिं जे जड़ बिनु आगि।
तुलसी तिनके भाग ते, चलै भलाई भागि ॥२१॥
तुलसी निज कीरति चहैं, पर कीरति कहँ खोइ।
तिनके मुँह मसि लागिहैं, मिटहिं न मरिहैं धोइ ॥२२॥
तनु गुन धन महिमा धरम, तेहि बिनु जेहि अभिमान।
तुलसी जियत बिडम्बना, परिनामहु गत जान ॥२३॥
सरल वक्रगति पंच ग्रह, चपरि न चितवत काहु।
तुलसी सूधे सूर ससि, समय बिडंबित राहु ॥२४॥
तुलसी खल-बानी मधुर, सुनि समुझिय हिय हेरि।
राम राज बाधक भई, मन्द मन्थरा चेरि ॥२५॥
जोंक सूधि मनकुटिल गति, खल बिपरीत बिचारु।
अनहित सोनित सोष सो, सो हित सोषन हारु ॥२६॥
नीच गुडी ज्यों जानिबो, सुनि लखि तुलसीदास।
ढीलि दिये गिरि परत महि, खैंचत चढ़त अकास ॥२७॥
भरदर बरषत कोस सत, बचैं जे बूँद बराइ।
तुलसी तेउ खल-बचन-सर, हये, गये न पराइ ॥२८॥
परत कोल्हू मेलि तिल, तिली सनेही जानि।
देखि प्रीति की रीति यह, अब देखिबो रिसान ॥२९॥

सहवासी काचो गिलहि, पुरजन पाक-प्रबीन।
कालछेप केहि मिलि करहिं, तुलसी खग मृग मीन॥३०॥
जासु भरोसे सोइए, राखि गोद में सीस।
तुलसी तासु कुचाल तें, रखवारो जगदीस॥३१॥
मार खोज लै सौंह करि, करि मत लाज न त्रास।
मुए नीच ते मीच बिनु, जे इनके बिस्वास॥३२॥
परद्रोही, परदार-रत, परधन पर-अपवाद।
ते नर पाँवर पाप मय, देह धरे मनुजाद॥३३॥
बचन बेष क्यों जानिए, मन मलीन नरनारि।
सूपनखा, मृग, पूतना, दसमुख प्रमुख बिचारि॥३४॥
हँसनि, मिलनि, बोलनि मधुर, कटु करतब मनमाँह।
छुवत जो सकुचै सुमतिसो, तुलसी तिन्ह की छाँह॥३५॥
कपट सार सूची सहस, बाँधि बचन-परवास।
कियो दुराउ चहै चातुरी, सो सठ तुलसीदास॥३६॥
बचन बिचार अचार तन, मन, करतब छलछूति।
तुलसी क्यों सुख पाइए, अंतर्जामिहि धूति॥३७॥
सारदूल को स्वाँग कर, कूकर की करतूति।
तुलसी तापर चाहिये, कीरति बिजय बिभूति॥३८॥
बड़े पाप बाढ़े किए, छोटे किए लजात।
तुलसी तापर सुख चहत, बिधि सों बहुत रिसात॥३९॥
देस-काल-करता—करम, बचन—बिचार—बिहीन।
ते सुरुतरु-तर दारिदी, सुर सरि-तीर मलीन॥४०॥
राज करत बिनु काजही, करैं कुचालि कुसाज।
तुलसी ते दसकंध ज्यों, जइहैं सहित समाज॥४१॥
राज करत बिनु काज ही, ठटहिं जे कूर कुठाट।
तुलसी ते कुरुराज ज्यों, जइहैं बारह बाट॥४२॥
सभा सुजोधन की सकुनि, सुमति सराहन जोग।
द्रोन बिदुर भीषम हरिहि, कहैं प्रपंची लोग॥४३॥
पांडु सुवन की सदसिते, नीको रिपु हित जानि।
हरिहर सम सब मानियत, मोह ज्ञान की बानि॥४४॥
हित पर बढ़ै बिरोध जब, अनहित पर अनुराग।
राम-बिमुख बिधि बामगति, सगुन अघाय अभाग॥४५॥
भरुहाए नट भाँट के, चपरि चढ़े संग्राम।
कै वे भाजे आइ हैं, कै बाँधे परिनाम॥४६॥
लोक रीति फूटी सहैं, आँजी सहै न कोइ।
तुलसी जो आँजी सहै, सो आँधरो न होइ॥४७॥

कलह न जानब छोट करि, कलह कठिन परिनाम।
लगति अगिनि लघुनीचगृह, जरत धनिक-धन धाम ॥४८॥
जो परि पायँ मनाइए, तासों रूठि बिचारि।
तुलसी तहाँ न जीतिये, जहँ जीतेहु हारि ॥४९॥
जूझेते भल बूझिबो, भली जीति ते हारि।
डहके ते डहकाइबो, भलो जो करिय बिचारि ॥५०॥
जा रिपु सों हारेहु हँसी, जिते पाप परितापु।
तासों रारि निवारिए, समय सँभारिय आपु ॥५१॥
जो मधु मरै न मारिये, माहुर देइ सो काउ।
जग जिति हारे परसुधर, हारि जिते रघुराउ ॥५२॥
रोष न रसना खोलिए, बरु खोलिय तरवारि।
सुनत मधुर, परिनाम हित, बोलिय बचन बिचारि ॥५३॥
मधुर बचन कटु बोलिबो, बिनु श्रम भाग अभाग।
कुहू कुहू कलकंठरव, काका कर रत काग ॥५४॥
पेट न फूलत बिनु कहे, कहत न लागै ढेर।
सुमति बिचारे बोलिये, समुझि कुफेर सुफेर ॥५५॥
रामलषन विजयी भए, बनहु गरीब निवाज।
मुखर बालि रावन गए, घर ही सहित समाज ॥५६॥
खग मृग मीत पुनीत किय, बनहु राम नयपाल।
कुमति बालि दसकंठ घर, सुहृद बंधु कियो काल ॥५७॥
लखै अघानो भूख ज्यों, लखै जीति में हारि।
तुलसी सुमति सराहिए, मग पग धरै बिचारि ॥५८॥
लाभ समय को पालिबो, हानि समय की चूक।
सदा बिचारहिं चारुमति, सुदिन कुदिन दिन दूक ॥५९॥
तुलसी असमय के सखा, धीरज धरम बिबेक।
साहित, साहस, सत्यब्रत, राम-भरोसो एक ॥६०॥
सहि कुबोल साँसित सकल, अँगइ अनट अपमान।
तुलसी धरम न परिहरिय, कहि कर गए सुजान ॥६१॥
चलब नीति मग, रामपग, नेह निबाहब नीक।
तुलसी पहिरिय सो बसन, जो न पखारे फीक ॥६२॥
सिष्य सखा सेवक सचिव, सुतिय सिखावन साँच।
सुनि समुझिय, पुनि परिहरिय, पर मन रंजन पाँच ॥६३॥
नगर नारि भोजन सचिव, सेवक सखा अगार।
सरस, परिहरे रंगरस, निरस बिषाद बिकार ॥६४॥
दीरघ रोगी दारिदी, कटुबच लोलुप लोग।
तुलसी प्रान समान तउ, होहिं निरादर-जोग ॥६५॥

पाही खेती लगन बड़ि, ऋन कुब्याज मग-खेत।
बैर बड़े सों आपने, किये पाँच दुख-हेत ॥६६॥
घाय लगे लोहा ललकि, खैंचि लेइ नइ नीचु।
समरथ पापी सों बयर, जानि बिसाही मीचु ॥६७॥
जो मूरख उपदेस के, होते जोग जहान।
क्यों न सुजोधन बोध कै, आए स्याम सुजान? ॥६८॥
रीझि आपनी बूझि पर, खीझि बिचार-बिहीन।
ते उपदेस न मानहीं, मोह-महोदधि मीन ॥६९॥
कूप खनत मंदिर जरत, आए धारि बबूर।
बवहिं, नवहिं निज काज सिर, कुमति-सिरोमनि कूर ॥७०॥
बहुसुत बहुरुचि बहुबचन, बहु अचार ब्यवहार।
इनको भलो मनाइबो, यह अज्ञान अपार ॥७१॥
तुलसी भेड़ी की धँसनि, जड़ जनता-सनमान।
उपजत ही अभिमान भो, खोवत मूढ़ अपान ॥७२॥
रीझि खीझि गुरु देत सिख, सखा सुसाहिब साधु।
तोरि खाय फल होइ भल, तरु काटे अपराधु ॥७३॥
प्रगट चारि पद धरम के, कलि महँ एक प्रधान।
येन केन बिधि दीन्ह हीं, दान करै कल्यान ॥७४॥
स्रवन घटहु पुनि दृग घटहु, घटहु सकल बलदेह।
इते घटे घटि है कहा, जो न घटै हरि-नेह? ॥७५॥
तुलसी पावस के समय, धरी कोकिलन मौन।
अब तौ दादुर बोलि हैं, हमैं पूछि है कौन? ॥७६॥

[५] कृष्ण-गीतावली

समय और स्थान का प्रभाव भी अनिवार्य है। चाहे कैसा हू सुदृढ़ विचार का मनुष्य हो, उस पर देश-काल का प्रभाव कुछ न कुछ अवश्यमेव पड़ता ही है। श्री अयोध्यापुरी में जाकर आप देखें तो प्रतीत होगा कि आज लक्षावधिवत्सर व्यतीत होने पर भी चतुर्दिक् सीता-राम का किसी न किसी रूप में प्रभाव विद्यमान है, तदनुसार ही सहस्रों वर्ष बीत जाने पर भी ब्रज-मंडल में राधा-कृष्ण एवं नन्द-यशोदा के नाम आबाल-वृद्ध-वनिता सब की रसना पर रमण कर रहे हैं। यमुना का कल कल-निनाद, करील के कुञ्ज और गो-पुंज आज भी वृन्दावन-बिहारी की सुधि दिला रहे हैं। यह वही प्रभाव-शालिनी ब्रजभूमि है, जहाँ जाकर अनन्य रामोपासक गोस्वामी तुलसीदास जी को 'कृष्ण-गीतावली' लिखने की धुन लगी। बस क्या था, उनके सिर पर सूरदास का 'सूर-सागर' सवार हो गया। यह ग्रन्थ ब्रजभाषा-विभूषित और सुपाठ्य है। इसमें ६१ पदों में श्रीकृष्ण-चरित्र का वर्णन किया गया है। पुस्तक में कोई क्रम-विशेष तो पाया नहीं जाता। प्रतीत होता है कि ब्रज में

विचरण करते हुए गोसाईंजी ने समय समय पर आनन्द में मग्न होकर अपने हृदय के उद्गार प्रगट किये हैं। कृष्ण-लीला पूरी नहीं है। पूर्व में श्रीकृष्ण का बाल-चरित्र पुनः गोपिकोपालम्भ, उलूखल से बँधना, इन्द्र-प्रकोप, गोवर्धन-गिरि-धारण, सौन्दर्य-वर्णन, गोपिका-प्रीति, मथुरा-प्रस्थान, गोपी-विलाप, उद्धव-संवाद, भ्रमर-गीत और अन्त में द्रौपदी-चीर-प्रवर्द्धन की कथाएँ ठीक उसी शैली से लिखी गयी हैं जैसी कृष्ण-लीला के लेखक कवियों ने लिखी हैं। पद्यों की रचना सरल, सुगम्य और सरस है। कई आलोचकों का मत है कि 'कृष्ण-गीतावली' के कई पद्य ज्यों के त्यों अथवा कई किञ्चित परिवर्त्तन के साथ सूरदास-निर्मित 'सूर-सागर' से ले लिये गये हैं। गोसाईंजी एक सिद्धहस्त और उद्भट प्रकृत्या सुकवि थे, उनके सम्बन्ध में ऐसा तो मानने का चित्त ही नहीं चाहता कि उनने सूर के पदों का दुरुपहरण किया हो। अधिकतर विश्वास है कि तुलसीरचित पद्यों के संग्रहीता महाशय ने कुछ कारीगरी उनके स्वर्गवास के अनन्तर कर दी हो। नीचे कुछ पद्य बानगी के तौर पर इस ग्रन्थ से उद्धृत किये जाते हैं:—

(८)

राग केदारा

अबहिं उरहनो दै गई, बहुरो फिरि आई।
सुनु मैया! तेरी सौं करौं याकी टेव लरनकी, सकुच बेंचि सो खाई॥
या ब्रज में लरिका घने, हौंही अन्याई।
मुँह लाए मूड़हि चढ़ी अंतहु अहिरिनि तू सूधी करि पाई॥
सुनि सुत की अति चातुरी जसुमति मुसुकाई।
तुलसीदास ग्वालिनी ठगी, आयो न उतर कछु कान्ह ठगौरी लाई॥८॥

× × × × ×

हरि को ललित बदन निहारु।
निपटहि डाँटति निठुर ज्या, लकुट करतें डारु॥
मंजु अंजन सहित जल-कन चुवत लोचन चारु।
स्याम सारस मग मनो ससि स्रवत सुधा-सिंगारु॥
सुभग उर दधि बुंद सुन्दर लखि अपनपौ वारु।
मनहुँ मरकत-मृदु-सिखर पर लसत विषद तुषारु॥
कान्हहू पर सतर भौंहैं, महरि मनहिं बिचारु।
दास तुलसी रहति क्यों रिस निरखि नंदकुमार॥१४॥

(९)

राग बिलावल

देखु सखी हरि बदन इंदु-पर।
चिक्कन कुटिल अलक-अवली छबि, कहि न जाइ सोभा अनूप बर॥

बाल-भुअंगिनि-निकर मनहुँ मिलि रहीं घेरि रस जानि सुधाकर।
तजि न सकहिं नहिं करहिं पान कहो कारनं कौन विचारि डरहिं डर॥
अरुन बनज-लोचन, कपोल सुभ, श्रुति मंडित कुंडल अति सुन्दर।
मनहुँ सिंधु निज सुतहि मनावन पठए जुगुल बसीठ बारि-चर॥
नँदनंदन मुख की सुंदरता कहि न सकत स्रुति सेष उमावर।
तुलसिदास त्रैलोक्य-बिमोहन रूप कपट नर त्रिबिध सूल हर॥२१॥

× × × × ×

बिछुरत श्रीव्रजराज आजु इन, नयनन की परतीति गई।
उड़ि न लगे हरि संग सहज तजि, ह्वै न गए सखि स्याम मई॥
रूप रसिक लालची कहावत, सो करनी कछु तौ न भई।
साँचेहु क्रूर कुटिल, सित मेचक, वृथा मीन छबि छीनि लई॥
अब काहे सोचत मोचत जल, समय गए चित सूल नई।
तुलसिदास तब अपहुँ से भए जड़, जब पलकनि हठ दगा दई॥२४॥

(१०)

राग धनाश्री

जब तें ब्रज तजि गए कन्हाई।
तब तें बिरह-रबि उदित एक रस सखि बिछुरनि-वृष पाई॥
घटत न तेज, चलत नाहिंन रथ, रह्यो उर-नभ परछाई।
इन्द्रिय रूपरासि सोचहिं सुठि, सुधि सब की बिसराई॥
भयो सोक-भय-कोक-कोकनद भ्रम-भ्रमरनि सुखदाई।
चित-चकोर-मनमोर, कुमुद-मुद सकल विकल अधिकाई॥
तनु-तड़ाग बलबारि सूखन लाग्यो परी कुरूपता-काई।
प्रान मीन दीन दिन दूबरे, दसा दुसह अब आई॥
तुलसी दास मनोरथ-मन-मृग मरत जहाँ तहँ धाई।
राम स्याम सावन भादों बिनु जिय की जरनि न जाई॥२६॥

(११)

राग गौरी

सुनत कुलिस सम बचन तिहारे।
चित दै मधुप सुनहु सोउ कारन जाते जात न प्रान हमारे॥
ज्ञान कृपान समान लगत उर, बिहरत छिन छिन होत निनारे।
अवधि-जरा जोहति हठि पुनि पुनि, याते तनु रहत सहत दुख भारे॥
पावक-बिरह समीर-स्वास तनु-तूल मिले तुम्ह जारनिहारे।
तिन्हहिं निदरि अपने हित कारन राखत नयन निपुन रखवारे॥
जीवन कठिन, मरन की यह गति दुसह बिपति व्रजनाथ निवारे।
तुलसिदास यह दसा जानि जिय उचित होइ सो कहौ अलि, प्यारे॥५६॥

[६] रामलला-नहछू

गोस्वामी जी का यह प्रण था कि राम-यशोगान के अतिरिक्त किसी प्राकृतिक पुरुष के संबन्ध की कविता करने में सरस्वती का दुरुपयोग एवं अपमान करना है। यही कारण है कि भगवच्चरित्र-चर्चा के अतिरिक्त आपने अपनी लेखनी से किसी लौकिक पुरुष की जीवनी नहीं लिखी।

'रामलला-नहछू' यह ग्रन्थ अत्यन्त छोटा है। इसमें समस्त २० पद्य हैं। छन्द का नाम 'सोहर' है। यह छन्द प्रायः स्त्रियाँ गाया करती हैं। भारतवर्ष के पूर्वीय प्रान्तों में अवध से लेकर विहार प्रान्त तक की स्त्रियाँ पुत्रजन्मोत्सवादि मंगल कालमें सोहर गाया करती हैं। यों तो राम की भक्ति के वशीभूत होकर तुलसीदास जी ने समस्त ग्रन्थों की रचना की ही है, परन्तु 'रामलला-नहछू' विशेष कर इस अभिप्राय को लेकर निर्माण किया गया प्रतीत होता है कि हमारे देश की स्त्रियाँ गन्दे सोहरों वा गानों के स्थान में इसीका गान करें। परन्तु 'नहछू' की रचना में गोसाईं जी भी परम्परा-प्रवाह में बहकर गाली बकवाने लगे हैं। लोहारिन, अहीरिन, तम्बोलिन, दरजिन, मोचिन, मालिन, बारिन और नाउन तक से आप ने मजाक तो किया ही है, श्री कौशिल्या माता तक की हँसी कराने में भी बाज नहीं आये। सामयिक भेडं-धसान इसी का नाम है :—

> काहे रामजी साँवर लछुमन गोर हो।
> कीदहुँ रानि कौशिलहिं परिगा भोर हो॥
> राम अहहिं दशरथ के, लछिमन आनक हो।
> भरत शत्रुहन भाइ तौ, श्री रघुनायक हो॥

तिस पर तुर्रा तो यह कि कवि जी के कथनानुसार इसे गाने से मुक्ति तक की प्राप्ति हो जायगी!!!

> जे एहि नहछू गाइहिं गाइ सुनाइहिं हो।
> ऋद्धि सिद्धि कल्यान मुक्ति नर पाइहिं हो॥

यहाँ पर कविराज ने ऋद्धि-सिद्धि को कंकड़ पत्थर से और मुक्ति को गाजर मूली से भी सस्ते दर में लुटा दिया है। मेरी धारणा है कि यह ग्रन्थ तुलसीकृत नहीं है।

[७] बरवैरामायण

बरवा छन्दमें रामायण की कथा लिखने के कारण ही ग्रन्थ का नाम 'बरवै-रामायण' प्रख्यात हुआ है। इसमें सप्तकाण्ड हैं। (१) बालकाण्ड में रामजानकी-छवि-वर्णन, धनुर्भंग, और विवाह की कथा लिखी है। यथा :—

'गरब करहु जनि रघुनन्दन मनके माँह।
देखहु आपनि मूरति सियके छाँह॥
उठी सखी हँसि मिसकरि कहि मृदु बैन।
सिय रघुबर के भये उनीदे नैन' ॥

(२) अयोध्याकाण्ड में कुल ८ पद हैं राम-वन-गमन, निषाद-कथा और वाल्मीकि-प्रसंग लिखा गया है। (३) अरण्यकाण्ड में ६ छन्दों में सूर्पनखा-प्रसंग, कञ्चन-मृग-वधादि लिखा है। (४) किष्किन्धाकाण्ड में दो पद्य हैं जिनमें राम-हनुमान-वार्त्तालाप मात्र है। (५) सुन्दरकाण्ड के छः पद्यों में हनुमान-सीता-संवाद पुनः हनुमान-राम संवाद हैं। (६) लंकाकाण्ड में केवल निम्न पद्य हैं—

'विविध बाहिनी बिलसति सहित अनन्त।
जलधि सरिस को कहै राम भगवन्त' ॥

उत्तरकाण्ड में २७ छन्द हैं। इनमें चित्रकूट-माहात्म्य और राम-नाम-महिमा वर्णित है। अन्तिम पद्य यह है :—

'जनम जनम जहँ जहँ तनु तुलसिहिं देहु।
तहँ तहँ राम निबाहिब नाम सनेहु' ॥

[८] वैराग्य-सन्दीपिनी

इस ग्रन्थ में दोहा, चौपाई और सोरठा येही तीन छन्द हैं। सन्त-स्वभाव-वर्णन, सन्त-महिमा-वर्णन और शान्ति-वर्णन ये ही तीन विभाग हैं। समस्त ६२ पद्यों में ग्रन्थ पूर्ण हुआ है। नमूना नीचे दिया जाता है:—

रैनिको भूषन इन्दु है, दिवस को भूषन भानु।
दास को भूषन भक्ति है, भक्ति को भूषन ज्ञान॥
ज्ञान को भूषन ध्यान है, ध्यान को भूषन त्याग।
त्याग को भूषन शान्तिपद, तुलसी अमल अदाग॥

दोहों में मात्रा की अधिकता है। तुलसी रचित प्रतीत नहीं होते।

[९] पार्वती-मंगल

इस ग्रन्थ में शिव-पार्वती का विवाह-वर्णन है। पुस्तक में समस्त १६४ छन्द हैं जिनमें १४८ सोहर और १६ हरिगीतिका हैं। ग्रन्थकार ने ग्रन्थ-निर्माण-काल इस प्रकार दिया है:—

'जय संवत् फागुन सुदि पाँचै गुरु दिनु।
अस्विनी बिरचेउ मंगल सुनि सुख छिनु छिनु॥'

अर्थात् अश्विनी नक्षत्र फाल्गुन शुक्ल ५ बृहस्पतिवार को जय संवत् में यह ग्रन्थ रचा गया। महामहोपाध्याय पण्डित सुधाकर द्विवेदी जी के गणनानुसार

संवत् १६४३ में जय-संवत् था। ग्रन्थ की वाक्य-रचना बड़ी उत्कृष्ट, भाषा ललित और शब्द संगठित हैं। पूरक शब्दों वा पदों का अभावसा है। नमूने के पद्य अधः पंक्तियों में दिये जाते हैं:—

दुलहिनि उमा ईस बर साधक ए मुनि।
बनिहिं अवसि यह काज गगन भइ असधुनि॥
भयेउ अकनि आनन्द महेस मुनीसन्ह।
देहिं सुलोचनि सगुन कलस लिये सीसन्ह॥
सिव सों कहे दिन ठाउँ बहोरि मिलनु जहँ।
चले मुदित मुनिराज गये गिरिबर पहँ॥
गिरि गेह गे अति नेह आदर, पूजि पहुनाई करी।
घर बात घरनि समेत कन्या, आनि सब आगे धरी॥
सुख पाइ बात चलाइ सुदिन, सोधाइ गिरिहिं सिखाइकै।
ऋषि साथ प्रातहिं चले प्रमुदित, ललित लगन लिखाइकै॥

[१०] जानकीमंगल

सीता-राम के अनन्य भक्त गोस्वामी तुलसीदास जी केवल पार्वतीमंगल ही लिखकर मौन रह जायँ, यह मानने की बात नहीं, उनकी लेखनी ने जानकीमंगल लिखकर ही विश्राम लिया। कविराज की लेखन-शक्ति ऐसी अद्भुत थी कि एक ही विषय को विविध छन्दों एवं भावों में विभूषित किया है।

इस ग्रन्थ में सीता और राम के विवाह का वर्णन किया गया है। समस्त छन्दों की संख्या २१६ है, जिनमें २४ हरिगीतिका और शेष सोहर हैं। कथा 'राम-चरित-मानस' की ही है, कहीं कहीं कुछ कुछ भेद करते गये हैं। इसमें रामायण की भाँति जनक-पुष्प-वाटिका में सीता-राम का संदर्शन न लिखकर यज्ञशाला में ही इस प्रकार पारस्परिक साक्षात् कराया है:—

'राम दीख जब सीय, सीय रघुनायक।
दोउ तन तकि तकि मयन सुधारत सायक॥
प्रेम प्रमोद परस्पर प्रगटत गोपहिं।
जनु हिरदै गुन ग्राम थूनि थिर रोपहिं॥
रामसीयवय समौ सुभाय सुहावन।
नृप जोबन छबि पुरइ चहत जनु आवन॥
सो छबि जाइ न बरनि देखि मन मानै।
सुधापान करि मूक कि स्वाद बखानै'॥

इसी प्रकार अन्य कई कथाओं में भी यत्र तत्र किञ्चिन्मात्र भेद पाते हैं। 'राम-चरित-मानस' में धनुष तोड़ने के अनन्तर सत्वर ही परशुराम को पधराया है

क्योंकि इतमीनान से उनकी मरम्मत भरी सभा में कराना मंजूर था, परन्तु जानकी-मंगल में विवाह-बिदाई के पीछे अयोध्या-प्रस्थान के अनन्तर मार्गमें परशुराम का शुभसमागम लिखकर गोसाईंजी ने अपने पाठकों को परितोष दिला दिया है कि वे (तुलसीदासजी) अध्यात्म रामायण और वाल्मीकि रामायण की कथाओं से बेसुध एवं अपरिचित नहीं थे। 'राम-चरित-मानस' की ऐसी विशाल-काय-कथा को कविराज ने जानकीमंगल में कच्छप-ग्रीव के समान इस प्रकार संकुचित कर दिया है:—

'पंथ मिले भृगुनाथ हाथ फरसा लिये।
डाँटहिं आँखि दिखाइ कोप दारुन किये॥
राम कीन्ह परितोष रोष रिसि परिहरि।
चले सौंपि सारंग सुफल लोचन करि'॥

कविता इसका नाम है! जो संकोच और विस्तार की रीति न जाने वह कवि ही क्या?

इस ग्रन्थ में भी विवाह के अवसर पर गोसाईंजी ने आजकल की नाईं गालियाँ गवायीं और नेग दिलवाये हैं। ग्रन्थ ललित भाषा में लिखा गया है।

[११] रामाज्ञा

इसी ग्रन्थ को 'राम-शकुनावली' और 'ध्रुव-प्रश्नावली' नामों से भी प्रख्याति पाते हैं। पुस्तक का विषय 'रामाज्ञा' नाम से उतना विस्पष्ट नहीं होता, जितना कि उक्त नामों से व्यञ्जित होता है। गोसाईंजी ने शकुन-विचार के उद्देश से इस ग्रन्थ को लिखा था। इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में जो लेख 'तुलसी-ग्रन्थावली' के पृष्ठ ७० पर लिखित है उसे पाठकों के लाभार्थ अविकल उद्धृत किया जाता है:—

× × × × ×

इस ग्रन्थ को तुलसीदास जी ने शकुन-विचारने ही की इच्छा से बनाया था, चाहे किसी के अनुरोध से बनाया हो या अपनी ही इच्छा से। इसके दोहों में बराबर शकुन विचारा गया है और अन्त में शकुन विचारने की विधि भी दी है। यथा—

"सुदिन साँझ पोथी नेवति पूजि प्रभात सप्रेम।
सगुन बिचारब चारुमति सादर सत्य सनेम॥
मुनिगनि, दिनगनि, धातु गनि दोहा देखि बिचारि।
देस, करम, करता, बचन सगुन समय अनुहारि॥"

डाक्टर ग्रिअर्सन अपने लेख "नोट्स ऑन तुलसीदास" (Notes on Tulsi Das) में बाबू रामदीन सिंह के कथन पर इस ग्रन्थ बनने के विषय में यह कहानी लिखते हैं कि काशी में राजघाट के राजा गहरवार क्षत्रिय थे, जिनके वंशज अब माँडा और कंतित के राजा हैं। उनके कुमार शिकार खेलने बन

में गए जहाँ उनके साथ के किसी आदमी को बाघ खा गया। राजा को समाचार मिला कि उन्हीं के राजकुमार मारे गये हैं। राजा ने घबरा कर प्रह्लाद-घाट पर रहने वाले प्रसिद्ध ज्योतिषी गंगाराम को बुलाकर प्रश्न किया। साथ ही यह भी कहा कि यदि आपकी बात सच होगी तो एक लाख रुपया पारितोषिक मिलेगा; नहीं तो सिर काट लिया जायगा। गंगाराम एक दिन का समय लेकर घर आये और उदास बैठे रहे। तुलसीदास जी और इनमें बड़ा प्रेम था। ये दोनों मित्र नित्य संध्या को नाव पर बैठ कर गंगापार जाते और भगवदुपासना में मग्न होते थे। उस दिन भी तुलसीदास जी ने चलने को कहा, पर गंगाराम ने उदासी के मारे जाने से अनिच्छा प्रकट की, तुलसीदास जी ने जब कारण सुना तब कहा कि घबराओ नहीं; मैं इसका उपाय कर दूँगा। निदान उपासना से छुट्टी पाकर लौट आने पर तुलसीदास जी ने लिखने की सामग्री माँगी। पर कागज के सिवाय और कुछ न मिला। तब उन्हों ने एक सरकंडे का टुकड़ा लेकर कत्थे से लिखना आरम्भ किया और छः घण्टे में बिना रुके हुए लिख कर इस रामाज्ञा को पूरा कर दिया। ज्योतिषी जी ने इसके अनुसार प्रश्न का फल विचार कर जाना कि राजकुमार कल संध्या को घड़ी दिन रहते कुशल पूर्वक लौट आवेंगे। सवेरे जाकर उन्हों ने राजा से कहा। राजा ने उन्हें संध्या तक कैद रखा। ज्योतिषी के बतलाये ठीक समय पर राजकुमार लौट आये और ज्योतिषी जी को लाख रुपये मिले। वे उस रुपये को तुलसीदास जी को भेंट करने लगे, परन्तु उन्हों ने स्वीकार नहीं किया। बहुत आग्रह करने पर बारह हजार रुपया लेकर उन्हों ने हनुमान जी के बारह मन्दिर बनवा दिए जो अब तक हैं और जिनमें हनुमान जी की मूर्ति दक्षिण मुख किए स्थापित हैं।

हमारी समझ में इस आख्यायिका की जड़ प्रथम सर्ग का यह उनचासवाँ दोहा है—

" सगुन प्रथम ओनचास शुभ तुलसी अति अभिराम।
सब प्रसन्न सुर भूमि सुर गोगन गङ्गाराम॥ "

परन्तु यह कथा सत्य नहीं जँचती। उस समय राजघाट का किला ध्वंस हो चुका था। महमूद गज़नवी के सेनानायक सैयद सालार मसऊद (ग़ाजी मियां) की लड़ाई में यह क़िला टूट चुका था। मुसलमानी समय में यहाँ के चकलेदार मुसलमान होते थे। अन्तिम चकलेदार मीर रुस्तमअली थे जो दशाश्वमेध के पास मीरघाट पर रहते थे और जिनको वर्तमान काशिराजवंश के संस्थापक मनसाराम ने भगा कर काशी का राज्य लिया था। जो हो, पर इसमें सन्देह नहीं कि यह ग्रन्थ प्रह्लादघाट पर एक ब्राह्मण के यहाँ था और इसकी नकल प्रसिद्ध रामायणी लाला छक्कनलाल मिरजापुर वाले ने संवत् १८८४ में की थी। मूल

ग्रन्थ संवत् १६५५ ज्येष्ठ शु. १० रविवार का लिखा हुआ था और कत्थे के ऐसे रङ्ग से लिखा था। इसको और भी बहुत से लोगों ने देखा था, परन्तु यह दुर्भाग्य-वश चोरी हो गया। इसके सैंकड़ों दोहे तुलसीदास जी के दूसरे ग्रन्थों में भी मिलते हैं, विशेष कर दोहावली में। जैसे इसके सातवें अध्याय का २१ वाँ दोहा—

"राम बाम दिसि जानकी लखन दाहिनी ओर।
ध्यान सकल कल्यान-मय सुरतरु तुलसी तोर"॥

वैराग्यसंदीपनी और दोहावली दोनों का पहला दोहा है ऐसे दोहों की एक सूची डाक्टर ग्रिअर्सन ने अपने ऊपर लिखे लेख में दी है।

समस्त ग्रन्थ में सात सर्ग हैं, प्रत्येक सर्ग में सात सप्तक हैं और प्रत्येक सप्तक में सात दोहे हैं। इस क्रम से कुल दोहों की संख्या ७×७×७=३४३ हुई। ग्रंथ-समाप्ति के दो दोहे ये हैं:—

'जो जेहिं काजहिं अनु हरै, सो दोहा जब होइ।
सगुन समय सब सत्य सब, कहब राम गति गोइ॥
गुन विस्वास विचित्र मनि, सगुन मनोहर हारु।
तुलसी रघुबर भक्त उर, बिलसत विमल विचारु॥'

[१२] हनुमानबाहुक

प्रायः लोग कहा करते हैं कि गोसाईं तुलसीदास जी रचित अन्तिम ग्रन्थ 'विनय-पत्रिका' है पर वास्तव में उससे भी अन्त में 'हनुमान-बाहुक' की रचना प्रतीत होती है। इस ग्रन्थ की रचना कवितावली के अन्त्य भाग से सम्बद्ध होकर प्रारम्भ होती है।

तुजुक जहाँगीरी के लेखानुसार संवत् १६७३ में पंजाब में महामारी फैली थी। तुलसीदास ने कवितावली में इस बात का सविस्तर उल्लेख किया है कि काशी में भी प्लेग का भयङ्कर प्रकोप था। उक्त ग्रन्थ के उत्तरकांड के कवित्त, संख्या १७० में कवि लिखते हैं:—

× × × × ×

'बीसी विश्वनाथ की विषाद बड़ो बारानसी
बूझियेन ऐसी गति सङ्कर सहर की।'

ज्योतिष-गणनानुसार संवत् १६६५ से १६८४ तक 'रुद्रविंशति पड़ती है। जान पड़ता है कि पंजाब के पश्चात् प्लेगदेव काशी में पधारे, जिसका वर्णन गोसाईं-जी इस प्रकार करते हैं:—

'संकर सहर सर नर नारि बारिचर, बिकल सकल महामारी मांजा भई है।
उछरत उतरात हहरात मरिजात, भभरि भगत जल थल मीचु मई है॥

देव न दयालु महिपाल न कृपालु चित, बारानसी बाढ़ति अनीति नित नई है।
पाहि रघुराज पाहि कपिराज राम दूत, रामहू की बिगरी तुहीं सुधारि लई है॥

इस पद्य में प्लेग का प्रकोप, लोगों का घर छोड़ कर भागना, आक्रान्तितों का उछलना-चिल्लाना-घबड़ाना, देवताओं का दया न करना, और राजकीय प्रबन्ध भी न होने का स्पष्ट वर्णन आता है।

डाक्टर ग्रिअर्सन का मत है कि काशी में ही गोस्वामी तुलसीदास जी को भी प्लेग हुआ। उनकी बाँह में गिल्टी हुई। इस सम्बन्ध में हनुमानबाहुक के कतिपय कवित्त उद्धृत किये हैं:—

\+ \+ \+ \+

जानत जहान हनुमान को निवाज्यौ जन,
मन अनुमानि बलि बोल न बिसारिये।
सेवा जोग तुलसी कबहुँ कहाँ चूक परी,
साहब सुभाय कपि साहेब सँभारिये॥
अपराधी जानि कीजै साँसति सहस भाँति,
मोदक मरै जो ताहि माहुर न मारिये।
साहसी समीर के दुलारे रघुबीर जूके,
बाँह पीर महाबीर बेगिही निवारिये॥२०॥

आपने ही पापतें त्रितापतें कि साप तें,
बढ़ी है बाँह बेदन सही न कहि जाति है।
औषधि अनेक जंत्र मंत्र टोटकादि किये,
बादि भये देवता मनाये अधिकाति है॥
करतार भरतार हरतार कर्मकाल
को है जगजाल जो न मानत इताति है।
चेरो तेरो तुलसी तू मेरो कहो रामदूत,
ढील तेरी बीर मोहि पीर न पिराति है॥३०॥

ऊपर के कवित्तों से बाँह की असह्य-वेदना सिद्ध होने के अतिरिक्त यह भी स्पष्ट है कि ओषधि, जंत्र, मंत्र, टोटका और देवता-देवी मनाना भी कुछ काम न आया। अब नीचे के कवित्त से प्रगट होता है कि वह प्राण-घातिनी पीड़ा समस्त शरीर में फैल गयी:—

पाँय पीर पेट पीर बाँह पीर मुख पीर,
जरजर सकल सरीर पीर भई है।
देव भूत पितर करम खल काल ग्रह,
मोहिपर दवरि कमान कसि दई है॥

हौं तो बिनु मोल ही बिकानो बलि बारे हीते,
ओट राम नाम की ललाट लिखि लई है।
कुंभज के किंकर बिकल बूड़े गोखुरनि,
हाय राम राय ऐसी नई कहुँ भई है ॥३८॥
जीवौं जग जानकी जीवन को कहाय जन,
मरिबो को बारानसी बारि सुरसरि को।
तुलसीके दुहूँ हाथ मोदक हैं ऐसे ठाँउ,
जाके जिये मुए सोच करि हैं न लरिको ॥
मोको झूठो साँचो लोग राम को कहत जन,
मेरे मन मान है न हर को न हरि को।
भारी पीर दुसह सरीर ते बिहाल होत,
सोऊ रघुबीर बिनु सकै दूर करि को ॥४२॥

कितनी बिनती की परन्तु पीड़ा कुछ न्यून नहीं हुई, तब अन्त में निम्न कवित्त लिख कर तुलसीदास तूष्णी रह गये:—

कहौं हनुमान सो सुजान राम राय सो,
कृपानिधान संकर सो सावधान सुनिये।
हरष विषाद राग रोष गुन दोष मई,
बिरची बिरंचि सब देखियत दुनिये ॥
माया जीव काल के करम के सुभाय के,
करैया राम, वेद कहैं, साँची मन गुनिये।
तुम ते कहा न होय, हाहा सो बुझैये मोहि,
हौंहूँ रहौं मौन ही, वयो सो जानि लुनिये ॥४४॥

कवि के कहने का भाव यह है कि जो बोया है वही काटना है अर्थात् जैसा कर्म कर आये हैं तदनुसार ही फल पाना है।

'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्'

[१३] तुलसी-सतसई

इस ग्रंथ का दूसरा नाम 'राम सतसई' है। मिर्जापुर के प्रसिद्ध रामायणी पण्डित राम गुलाम द्विवेदी जी ने इस ग्रंथ को तुलसी-कृत ग्रन्थों की सूची में नहीं दिया है। महामहोपाध्याय पण्डित सुधाकर द्विवेदी जी ने तो यह सिद्ध किया है कि यह ग्रन्थ 'तुलसी' नामक किसी कायस्थ कवि का बनाया हुआ है। मेरा विचार निम्न कारणों से इसके विरुद्ध है:—

(१) इस सतसई में एक सौ से अधिक दोहे ऐसे हैं जो दोहावली में भी मिलते हैं, ऐसी दशा में यदि इस सतसई को कायस्थ तुलसी का बनाया मानें तो उसके साथ ही यह भी मानना पड़ेगा कि कायस्थ जी ने दोहावली से उन सैकड़ों

दोहों का अपहरण कर लिया है अथवा गोसाईंजी ने ही सतसई से डाके दिये हैं। इन दोनों में एक बात भी मन में नहीं बैठती।

(२) 'तुलसी-सतसई' की रचना दोहाई देकर पुकार रही है कि वह गोसाईं-जी की लेखनी द्वारा लिखी गयी है।

(३) ग्रन्थ-निर्माण-काल नीचे के दोहे में दिया हुआ है :—

अहि रसना थल धेनु रस, गनपति द्विज गुरुवार।
माधव सित सिय जन्म तिथि, सतसैया अवतार॥

इससे सिद्ध है कि यह ग्रन्थ वैशाख कृष्ण ९, संवत् १६४२ में निर्मित हुआ जो गोसाईंजी का समय है।

इस ग्रन्थ में ७ सर्ग हैं। कवि ने प्रथम सर्ग के २२ वें दोहे में लिखा है :—

भरन हरन अति अमित विधि, तत्त्व अर्थ कवि रीति।
संकेतिक सिद्धान्त मत, तुलसी वदत बिनीत॥

अर्थात् इस ग्रन्थ में कहीं भरण (अध्याहार), हरण (लोप), तत्त्व अर्थ (यथार्थ बातें) कवि रीति (कविता की बातें), संकेतिक (दृष्टिकूटक) और सिद्धान्त मत (भक्ति, ज्ञान और नीति आदि की बातें) कथन करेंगे।

इस ग्रन्थ के १०० से ऊपर दोहे दोहावली में मिलते हैं जिन्हें उपयोगी समझ कर दोहावली के प्रकरण में उद्धृत कर चुके हैं।

प्रथम सर्ग—इस सर्ग में प्रेम-भक्तिनिर्देशक ११० दोहे हैं, जिनमें राम की भक्ति और प्रेम का वर्णन किया गया है। चातक की अन्योक्ति में लगभग ३८ दोहे लिखे हैं, जिनमें से कुछ नीचे उद्धृत किये जाते हैं:—

तुलसी तीनों लोक महँ, चातक ही को माथ।
सुनियत जासु न दीनता, कियो दूसरो नाथ॥
ऊँची जाति पपीहरा, नीचो पियत न नीर।
कै याचै घनश्याम सों, कै दुःख सहै शरीर॥
ह्वै अधीन याचत नहीं, सीस नाय नहिं लेय।
ऐसे मानी याचकहिं, को बारिद बिनु देय॥
तुलसी चातक ही फबै, मान राखिबो प्रेम।
वक्र बूँद लखि स्वाति को, निदरि निबाहत नेम॥
बरखि परुख पाहन जलद, पच्छ करै टुक टूक।
तुलसी तदपि न चाहिये, चतुर चातकहिं चूक॥
रटत रटत रसना लटी, तृषा सूखिगो अंग।
तुलसी चातक के हिये, नित नूतनहिं तरंग॥
गंगा यमुना सरस्वती, सात सिंधु भरपूर।
तुलसी चातक के मते, बिन स्वाती सब धूर॥

ब्याधा बध्या पपीहरा, पर्यो गंग जल जाय।
चोंच मूँदि पीवै नहीं, धिक पीवन प्रण जाय॥
बधिक बध्यो परिपुण्य जल, उपर उठाई चोंच।
तुलसी चातक प्रेम पट, मरत न लाई खोंच॥
चातक सुतहिं सिखावनित, आन नीर जनि लेहु।
यह हमरे कुलको धरम, एक स्वाति सो नेहु॥
बाज चंचुगत चातकहिं, भई प्रेम की पीर।
तुलसी परबस हाड़ मम, परिहैं पुहुमी नीर॥
एक भरोसो एक बल, एक आस बिस्वास।
स्वाति सरिस रघुनाथ बर, चातक तुलसीदास॥

द्वितीय-सर्ग—इस सर्ग में उपासना और परा भक्ति सम्बन्धी १०३ दोहे हैं जिन में से कुछ नीचे उद्धृत किये जाते हैं:—

ज्ञान गरीबी गुन धरम, नरम बचन निरमोष।
तुलसी कबहुँ न छाड़िये, सील, सत्य, सन्तोष॥
असन बसन सुत नारिसुख, पापिहुँ के घर होय।
संत-समागम हरिकथा, तुलसी दुर्लभ दोय॥
तुलसी मीठे बचन से, सुख उपजत चहुँ ओर।
बसीकरण यह मन्त्र है, तजिये बचन कठोर॥
मरजादा दूरहिं बसे, तुलसी किये बिचारि।
निकट निरादर होत है, जिमि सुरसरि की बारि॥
यथा धरनि सब बीजमय, नखत निवास अकास।
तथा राम सब धर्ममय, जानत तुलसीदास॥
पुहुमी पानी पावकहुँ, पवनहुँ माहँ समात।
ताकहँ जानत राम अपि, बिनु गुरु किमि लखि जात॥
अगुण ब्रह्म तुलसी सोई, सगुण बिलोकत सोइ।
दुख सुख नाना भाँति को, तेहि बिरोध्र ते होइ॥
तुलसी संत सुअम्ब तरु, फूलि फलहिं पर हेत।
इत ते वे पाहन हनै, उत ते वे फल देत॥
दुख सुख दोनों एक सम, संतन के मन माहिं।
मेरु उदधि गत मुकुर जिमि, भार भीजिबो नाहिं॥
संग दोष ते भेद अस, मधु मदिरा मकरंद।
गुरु गमते देखहिं प्रगट, पूरन परमानन्द॥
तुलसी तरु फूलत फलत, जा विधि कालहिं पाय।
तैसे ही गुन दोष ते, प्रगटत समय सुभाय॥
गुरु ते आवत ज्ञान उर, नासत सकल विकार।
यथा निलय गति दीप के, मिटत सकल अँधियार॥

रावण रावण को हन्यो, दोष राम को नाहिं ।
निजहित अनहित देखु किन, तुलसी आपहिं माहिं ॥

तृतीय सर्ग—इसमें सांकेतिक वक्रोक्ति से रामभक्ति का वर्णन १०१ दोहों में किया है । बड़ी ही खैंचतान से शब्दों का अर्थ निकाला गया है, उदाहरणार्थ केवल दो दोहे नीचे दिये जाते हैं—

बिहंग बीच रैयत त्रितय, पति पति तुलसी तोर ।
तासु बिमुख सुख अति विषम, सपनेहु होसि न भोर ॥

अर्थ—बिहंग पक्षी को कहते हैं जिसका पर्यायवाचक शब्द 'शकुन' लिया । इसका मध्य वर्ण **'कु'** हुआ । रैयत 'परजा' (प्रजा) को कहते हैं, इसका तीसरा वर्ण **'जा'** हुआ । दोनों को मिलाने से **'कुजा'** शब्द बना जिसका अर्थ हुआ **'अवनि-तनया'** अर्थात् सीता । तुलसीदास जी के कहने का भाव यह है कि सीता पति रामचन्द्र तुम्हारे स्वामी हैं, उनके विमुख होने से तुम्हें सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती । पाठक विचार करें कि कैसी क्लिष्ट कल्पना से अर्थ करना पड़ता है ।

बसत जहाँ राघव जलज, तेहि मिति जो जेहि संग ।
भजु तुलसी तेहि अरि सुपद, करि उर प्रेम अभंग ॥

अर्थ—जलज का अर्थ है जल से उत्पन्न । यहाँ मछली अभिप्रेत है । राघव एक प्रकार का मत्स्य होता है जो समुद्र में ही निवास करता है । 'बसत जहाँ राघव जलज' से अर्थ समुद्र का हुआ । 'मिति' कहते हैं मर्यादा को । समुद्र की मर्यादा रावण के संसर्ग से नष्ट हुई । रावण के अरि रामचन्द्र हैं । तुलसीदासजी कहते हैं कि रामचन्द्र के सुन्दर चरणों को अपने हृदय के अटूट प्रेम से स्मरण करो !!!

चतुर्थ सर्ग—आत्मबोध विषयक ९७ दोहों में यह सर्ग समाप्त हुआ है । इसमें प्रायः जीव के स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है । कुछ उपयोगी दोहे नीचे दिये जाते हैं:—

त्रिबिध भाँति को शब्द बर, बिघटन लट परमान ।
कारण अबिरल अल पियत, तुलसी अबिध भुलान ॥
अपनै खोदे कूप महँ, गिरे यथा दुख होय ।
तुलसी सुखद समुझ हिये, रचत जगत सब कोय ॥
माया मन जिव ईश भनि, ब्रह्मा विष्णु महेश ।
सुर देवी औ ब्रह्म लौं, रसना सुत उपदेश ॥
रोम रोम ब्रह्माण्ड बहु, देखत तुलसीदास ।
बिन देखे कैसे कोऊ, सुनि मानै बिस्वास ॥
बलि मिस देखत देवता, करनी समता देव ।
मुए मारि अबिचार रत, स्वारथ साधक एव ॥

कथि रति अटत बिमूढ़ लट, घट उदघटत न ज्ञान।
तुलसी रटत घटत नहीं, अतिशय गत अभिमान ॥
सुनै बरण मानै बरण, बरण बिलग नहिं ज्ञान।
तुलसी गुरु परसाद बस, परत बरण पहिचान ॥
बुद्धया बारत अनय पद, स्वपिन पदारथ लीन।
तुलसी ते रासभ सरिस, निज मन गहहिं प्रवीन ॥
काम क्रोध मद लोभ की, जब लगि मन में खान।
का पंडित का मूरखो, दोनों एक समान ॥
इत कुल की करनी तजे, उत न भजे भगवान।
तुलसी अधवर के भये, ज्यों बबूर को पान ॥
हिम की मूरति के हिये, लगी नीर की प्यास।
लगत शब्द गुरुतर निकर, सो मैं रही न आस ॥
रुज तनुभव परिचय बिना, भेषज कर किमि सोय।
जान परै भेषज करै, सहज नास रुज होय ॥

पञ्चम सर्ग—इस सर्ग में कर्म-सिद्धान्त-प्रतिपादक ९९ दोहे हैं। इसमें कर्म-काण्ड और उसके विविध भेदों का वर्णन किया गया है। जैसे:—

ज्यों धरनी महँ हेतु सब, रहत जथा धरि देह।
त्यों तुलसी लै राम महँ, मिलत कबहुँ नहिं एह ॥
कर्म मिटाये मिटत नहिं, तुलसी किये बिचार।
करतब ही को फेर है, या बिधि सार असार ॥
जौन तार ते अधम गति, उर्ध्व तौन गति जात।
तुलसी मकरी तन्तु इव, कर्म न कबहुँ नसात ॥
जहाँ रहत तहँ सह सदा, तुलसी तेरी बानि।
सुधरै बिधिबस होइ जब, सत संगति पहिचानि ॥
सुख दुख मग अपने गहे, मग केहु लगत न धाय।
तुलसी राम प्रसाद बिनु, सो किमि जान्यो जाय ॥
स्वारथ सो जानहु सदा, जासों बिपति नसाय।
तुलसी गुरु उपदेस बिनु, सो किमि जान्यो जाय ॥
कारज जुग जानहु हिये, नित्य अनित्य समान।
गुरु गमतें देखत सुजन, कह तुलसी परमान ॥
अलंकार घटना कनक, रूप नाम गुन तीन।
तुलसी राम प्रसाद तें, परखहिं परम प्रवीन ॥
पेखि रूप संज्ञा कहब, गुण सुविवेक विचारि।
इतनोई उपदेश बर, तुलसी कहै सुधारि ॥
कर्त्ता जानिन परत है, बिनु गुरुवर परसाद।
तुलसीनिजसुखबिधिरहित, केहि विधि मिटै विषाद ॥

मृण्मय घट जानत जगत, बिनु कुलाल नहिं होय।
तिमि तुलसी कर्ता रहित, कर्म करहिं कहु कोय॥
तातें कर्त्ता ज्ञान कर, जातें कर्म प्रधान।
तुलसी ना लखि पाइहौ, किये अमित अनुमान॥
अनूमान साक्षी रहित, होत नाहिं परमान।
कह तुलसी परत्यक्ष जो, सो कहु अपर को आन॥
सब देखत मृत भाजनहिं, कोइ कोइ लखत कुलाल।
जाके मन के रूप बहु, भाजन बिलघु विशाल॥
करता कारण काल के, योग करम मत जान।
पुनः काल कर्त्ता दुरत, कारण रहत प्रमान॥

षष्ठ सर्ग—ज्ञान-योग-सिद्धान्तात्मक १०१ दोहे इस सर्ग में लिखे गये हैं। पञ्चम सर्ग के निर्धारित विषयों का ही क्रम आगे चलाया गया है। कुछ चुने हुए दोहे नीचे दिये जाते हैं:—

जल थल तन गत है सदा, ते तुलसी तिहुँ काल।
जनम मरन समझे बिना, भासत शमन विशाल॥
अनुस्वार अक्षर रहित, जानत है सब कोय।
कह तुलसी जहँ लगि बरन, तासु रहित नहिं होय॥
रहित बिन्दु सब बरण ते, रेफ सहित सब जानि।
तुलसी स्वर संयोग ते, होत बरण पद मानि॥
अनिल अनल पुनि सलिल रज, तनगत तनवत होय।
बहुरि सो रज गत जल अनल, मरुत सहित रबि सोय॥
बिन काटै तरुवर जथा, मिटै कवन बिधि छाहँ।
त्यों तुलसी उपदेश बिनु, निःसंशय कोउ नाहँ॥
ब्राह्मण बर विद्या विनय, सुरति विवेक निधान।
पथ रति अनय अतीत मति, सहित दया श्रुति मान॥
विनय छत्र सिर जासु के, प्रति पद पर उपकार।
तुलसी सो क्षत्री सही, रहित सकल व्यभिचार॥
वैश्य विनय मग पग धरै, हरै कटुक बर बैन।
सदय सदा शुचि सरलता, हीय अचल सुख ऐन॥
शद्र क्षुद्र पथ परिहरै, हृदय विप्र पद मान।
तुलसी मन समतासु मति, सकल जीव सम जान॥
प्रेम बैर अरु पुण्य अघ, यश, अपयश जय हान।
बात बीच इन सबन को, तुलसी कहहिं सुजान॥
सदा भजन गुरु साधु द्विज, जीव दया सम जान।
सुखद सुनय रत सत्यव्रत, स्वर्ग सप्त सोपान॥

बञ्चक बिधिरत नर अनय, बिधि हिंसा अति लीन।
तुलसी जग महँ बिदित बर, नरक निसेनी तीन॥

सप्तम सर्ग—इसमें विशेष कर नीति सम्बन्धी दोहे लिखे गये हैं। सम्म: पद्यों की संख्या १२९ है, जिनमें से कुछ नीचे लिखे जाते हैं:—

तिनहिं पढ़े तिनहीं सुने, तिनहीं सुमति प्रकास।
जिन आसा पाछे धरी, गही अलख नीरास॥
तब लगि जोगी जगत गुरु, जब लगि रहै निरास।
जब आसा मन में जगी, जग गुरु जोगी दास॥
देइ सुमन करि बास तिल, परि हरि खरि रस लेत।
स्वारथ हित भूतल भरे, मन मेचक तन सेत॥
अँसुवन पथिक निरासते, तट भुँइ सजल स्वरूप।
तुलसी किन बंच्यो नहीं, इन मरुथल के कूप॥
तुलसी संतन से सुने, संतत इहै बिचार।
तन धन चंचल अचल जग, जुग जुग पर उपकार॥
ऊंचहि आपद बिभव बर, नीचै दत्त न होय।
हानि वृद्धि द्विजराज कहँ, नहिं तारागण कोय॥
उरग तुरग नारी नृपति, नर नीचो हथियार।
तुलसी परखत रहब नित, इनहिं न पलटत बार॥
दुरजन आप समान करि, को राखै हित लागि।
तपत तोय सहजाहि पुनि, पलटि बुझावत आगि॥
मंत्र तंत्र तंत्री त्रिया, पुरुष अश्व धन पाठ।
प्रति गुण योग वियोगते, तुरत जाहिं ये आठ॥
नीच निचाई नहिं तजैं, जो पावहिं सत्संग।
तुलसी चंदन विटप बसि, विष नहिं तजत भुअंग॥
दुर्जन दर्पन सम सदा, करि देखो हिय दौर।
सनमुख की गति और है, बिमुख भये गति और॥
मित्र मित्र को अवगुनहिं, पर पहँ भाखत नाहिं।
कूप छाहँ जिमि आपनी, राखत आपहिं माहिं॥
तुलसी सो समरथ सुमति, सुकृती साधु सुजान।
जो बिचारि व्यवहरत जग, खरच, लाभ अनुमान॥
शिष्य सखा सेवक सचिव, सुतिया सिखवन साँच।
सुनि करिये पुनि परिहरिय, पर मन रंजक पाँच॥
तुष्टहि निज रुचि काज करि, रुष्टहिं काज बिगारि।
तिया तनय सेवक सखा, मन के कंटक चारि॥
नारि नगर भोजन सचिव, सेवक सखा अगार।
सरस परिहरे रंग रस, निरस बिषाद बिकार॥

दीरघ रोगी दारिदी, कटु बच लोलुप लोग।
तुलसी प्रान समान जो, तुरत त्यागिबे जोग॥
घाव लगे लोहा ललकि, खैंचिब लेइय नीच।
समरथ पापी सों बयर, तीन बेसाही मीच॥
तुलसी खल बाणी बिमल, सुनि समुझब हिय हेरि।
राम राज बाधक भई, मन्द मन्थरा चेरि॥
विद्या बिनय बिबेक रति, रीति जासु उर होय।
राम परायण सो सदा, आपद ताहि न कोय॥
तजत अमिय उपदेश गुरु, भजत विषय बिष खानि।
चन्द्र किरण धोखे पयसि, चाटत जिमि शठ स्वान॥
शत्रु सयाने सलिल इव, राखि-सीस अपन्याव।
बूड़त लखि डगमगत अति, चपल चहुँदिशि धाव॥
तुलसी झगड़ा बड़न के, बीच परहु जनि धाय।
लड़े लोह पाहन दोऊ, बीच रुई जरि जाय॥
नीच निरावहिं निरस तरु, तुलसी सींचहिं ऊख।
पोषत पयद समान जल, विषय ऊख के रूख॥
भलो कहहिं जानै बिना, की अथवा अपवाद।
तुलसी जानि गवाँर जिय, करब न हरष विषाद॥
खग मृग मीत पुनीत किय, बनहुँ राम नयपाल।
कुमति बालि दशकंठ गृह, सुहृद बंधु किय काल॥
राम लखन बिजयी भये, बनहुँ गरीब निवाज।
मुखर बालि रावण गये, घरही सहित समाज॥
द्वारे टाट न दै सकहिं, तुलसी जे नर नीच।
निदरहिं बलि हरिचंद कहँ, कहु का करण दधीच॥
तुलसी निज कीरति चहहिं, पर कीरति कहँ खोय।
तिनके मुँह मसि लागि हैं, मिटै न मरि हैं धोय॥
नीच चंग सम जानिबो, सुनि लखि तुलसीदास।
ढील देत महि गिरि परत, खैंचत चढ़त अकास॥
कलह न जानब छोट करि, कठिन परम परिणाम।
लगत अनल अति नीच घर, जरत धनिक धन धाम॥
दुर्जन बदन कमान सम, बचन बिमुंचत तीर।
सज्जन उर बेधत नहीं, क्षमा सनाह शरीर॥
कौरव पाँडव जानिबो, क्रोध क्षमा को सीम।
पाँचहिं मारि न सौ सके, सवौ निपाते भीम॥
क्रोध न रसना खोलिये, बरु खोलब तरवार।
सुनत मधुर परिणाम हित, बोलब बचन बिचार॥

पाही खेती लगन बड़ि, ऋण कुब्याज मग खेत।
बैर आपने बड़न ते, किये पाँच दुख देत॥
पेट न फूटत बिन कहे, कहे न लागत ढेर।
बोलब बचन बिचारयुत, समुझि सुफेर कुफेर॥
भूप कहहिं लघु गुनिन कहँ, गुनी कहहिं लघु भूप।
महि गिरि गत दोउ लखत जिमि, तुलसी खर्ब स्वरूप॥
दोहा चारु बिचारु चलु, परिहरि बाद बिबाद।
सुकृत सीम स्वारथ अवधि, परमारथ मरजाद॥
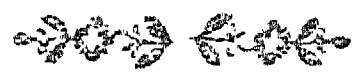
[१४] विनय-पत्रिका

विनय-पत्रिका गोस्वामी तुलसीदासजी का अन्तिम ग्रन्थ है। जब मर्यादापुरुषोत्तम भगवान रामचन्द्र जी की महिमा और विरदावलि को कवि-सम्राट ने स्वरचित विविध ग्रन्थों में विविधप्रकार से गान किया, तिस पर भी अन्तःकरण में शान्ति की उपलब्धि नहीं हुई, तब इनके हृदय-ह्रद की गङ्गोत्री से विनय-पत्रिका-रूप गङ्गा का अव्याहत गति से अबाध्य निःश्रोत चला जो करोड़ों भक्तों और भगवत्-चरित्र-प्रेमियों के हृदय को पवित्र करता हुआ रामभक्ति के अगाध समुद्र में बिराम पागया। गोस्वामीजी के शुद्धान्तःकरण में इस बात की मुहर हो गयी कि अब उन्हें किसी काव्य-विशेष के निर्माण की आवश्यकता न रही। विनय-पत्रिका का अन्तिम भजन कविराज के हृदयोद्गार का सजीव साक्षी है:—

मारुतिमन रुचि भरत की, लखि लखन कही है।
कलि-कालहुँ नाथ नाम सों, प्रतीति प्रीति एक किंकर की निबही है॥
सकल सभा सुनिलै उठी, जानी रीति रही है।
कृपा गरीब-निबाज की, देखत गरीब को साहब बाँह गही है॥
बिहँसि राम कह्यो सत्य है, सुधि मैं हूँ लही है।
मुदित माथ नावत बनी तुलसी अनाथ की, परी रघुनाथ सही है॥२७९॥

जब उनके मानस में यह निश्चय हो गया कि राम ने उनकी विनय-पत्रिका स्वीकार कर ली तब कवि-वर ने अपनी लेखनी को विश्राम दे दिया। गोस्वामी तुलसीदासजी केवल साहित्यशास्त्र के ही कवि-राज न थे, प्रत्युत अन्तिम गति प्राप्त आध्यात्मिक कुरोग के कविराज भी थे। विनय-पत्रिका एक अद्भुत ग्रन्थ है। इसके लिखने में कवि-सम्राट लेखनी तोड़ बैठे हैं। अपनी अद्भुत काव्य-शक्ति और अप्रतिम प्रतिभा का अद्वितीय परिचय प्रदर्शित किया है। भक्ति-रस का सरस प्रवाह, सांसारिक शिक्षाओं का अद्भुत, अथाह और वर्णन-वैचित्र्य का अद्वितीय अवगाह आप इसी पीयूष-प्रवाहिणी जाह्नवी में पावेंगे। यह ग्रन्थ मानवीय अन्तःकरण का एक

सादा और सच्चा चित्र है। मनुष्य को असत्पथ से हटाकर भगवच्चरण में अनुरक्त करनेवाला और साहित्यिक दृष्टि से भी उच्चपद-प्राप्ति का अधिकारी है। यदि गोस्वामी तुलसीदास जी अन्य किसी ग्रन्थ की रचना न भी करते तो भी राम-चरित-मानस और विनयपत्रिका ही उनके यशःसौरभ के प्रसारणार्थ पर्याप्त समझी जा सकती थीं। सद्धर्म-निरूपण, सत्-शिक्षा, धर्म-प्रेम, सत्यता, सरलता, सहनशीलता, धीरता, वीरता, उदारता, दयालुता और भक्ति-प्रेम-परायणता का जैसा चित्रण कविवर ने इन दो ग्रन्थों में किया है वैसा संसार के अन्य किसी भी कवि के ग्रन्थ में स्यात् ही कहीं पाया जाय।

विनयपत्रिका में कुल २७९ भजन हैं। छन्द-संख्या ६१ तक की रचना संस्कृत शब्दों से समाविष्ट है। उन छन्दों में गणेश, सूर्य, शिव, भैरव, पार्वती, गङ्गा, यमुना, काशी के क्षेत्र-पाल, चित्रकूट, हनुमान, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, सीता और रामचन्द्र जी की विनय की है और देवताओं से केवल यही प्रार्थना की है कि श्री राम के चरणों में मुझे भक्ति प्रदान करो।

१. तुलसी राम-भक्ति बर माँगै।
२. देहु काम-रिपु रामचरण-रति। तुलसिदास प्रभु हरहु भेद मति॥
३ देहि मा मोहि प्रण-प्रेम निज नेम यह, राम घनश्याम तुलसी पपीहा।

इत्यादि प्रार्थनाओं से आप समझ सकेंगे कि गोस्वामीजी ने विविध देवों से रामभक्ति की याच्ञा मात्र की है।

निम्न छन्द से आरम्भिक ६१ छन्दों की रचनाशैली का पता आपको लग जायगा:—

सकल सुखकंद आनन्दवन-पुण्यकृत, बिंदुमाधव द्वंद्व-विपति-हारी।
यस्यांघ्रिपाथोज अज शंभु सनकादि सुक, शेष मुनिबृन्द अलि निलयकारी॥
अमलमरकतश्याम, काम-सतकोटि-छबि, पीत पट तड़ित इव जलद नीलम्।
अरुणशतपत्र-लोचन, बिलोकनि चारु, प्रणत जन-सुखद, करुणार्द्रशीलम्॥
काल-गजराज-मृगराज, दनुजेश-बन-दहन-पावक, मोह-निशि-दिनेशम्।
चारिभुज चक्र कौमोदकी जलज दर, सरसिजोपरि यथा राजहंसम्॥
मुकुट कुण्डल तिलक, अलक अलिव्रात इव, भृकुटि द्विज अधरबर चारुनासा।
रुचिर सुकपोल, दर ग्रीव सुख सींव, हरि, इन्दुकर-कुन्दमिव मधुर-हासा॥
उरसि बनमाल सुबिशाल, नवमञ्जरी, भ्राज श्रीबत्स-लांछन, उदारम्।
परम ब्रह्मण्य, अति धन्य गतमन्यु अज, अमित बल बिपुल महिमा अपारम्॥
हार केयूर, कर कनक कङ्कण, रतनजटित मणि मेखला कटिप्रदेशम्।
युगलपद नूपुरा मुखर कलहंसवत, सुभग सर्वांग, सौंदर्य वेषम्॥
सकल-सौभाग्य-संयुक्त त्रैलोक्य श्री, दक्षदिशि रुचिर बारीश कन्या।
बसत बिबुधापगा निकट तट सदन बर, नयन निरखंति नर तेऽतिधन्या॥

[illegible]-[illegible]-[illegible]न, निविड़-संशय-शमन, दमन ब्रजिनाटवी कष्ट हर्त्ता।
[illegible] [illegible] [illegible] अजित गोतीत शिव, विश्व-पालन-हरण, विश्वकर्त्ता॥
[illegible]-[illegible]-[illegible] ऐश्वर्य-निधि, सिद्धि अणिमादि दे भूरि दानम्।
[illegible] [illegible] अति त्रास तुलसीदास, त्राहि श्रीराम उर गारि यानम्॥६१॥

आगे विनयपत्रिका के कुछ चुने हुए छन्द पाठकों के मनोविनोदार्थ और विद्या-र्थियों के लाभार्थ उद्धृत किये जाते हैं:—

(९०)

ऐसी मूढ़ता या मन की।
परिहरि राम भगति सुरसरिता, आस करत ओसकनकी॥
धूमसमूह निरखि चातक ज्यों, तृषित जानि मति घन की।
नहिं तहँ सीतलता न वारि, पुनि, हानि होति लोचन की॥
ज्यों गच-काँच विलोकि सेन जड़, छाँह आपने तन की।
टूटत अति आतुर अहार बस, छति बिसारि आनन की॥
कहँ लौं कहौं कुचाल कृपानिधि, जानत हौ गति मनकी।
तुलसिदास प्रभु हरहु दुसह दुख, करहु लाज निज पन की॥

(९२)

माधव जू मोसम मन्द न कोऊ।
जद्यपि मीन पतङ्ग हीन मति, मोहिं नहिं पूजहिं ओऊ॥
रुचिर रूप-आहार-वस्य उन, पावक लोह न जान्यो।
देखत विपति विषय न तजत हौं, तातें अधिक अजान्यो॥
महामोह-सरिता अपार महँ, संतत फिरत बह्यो।
श्री हरिचरन-कमल-नौका तजि, फिरि फिरि फेन गह्यो॥
अस्थि पुरातन छुधित स्वान अति, ज्यों भरि मुख पकरयो।
निज तालूगत रुधिर पान करि, मन संतोष धरयो॥
परम-कठिन-भव ब्याल ग्रसित हौं, त्रसित भयो अति भारी।
चाहत अभय भेक सरनागत, खगपति-नाथ बिसारी॥
जलचर वृंद जाल अन्तरगत, होत सिमिटि एक पासा।
एकहिं एक खात लालच बस, नहिं देखत निज नासा॥
मेरे अघ सारद अनेक जुग, गनत पार नहिं पावै।
तुलसीदास पतित-पावन प्रभु, यह भरोस जिय आवै॥

(१०२)

हरि तुम बहुत अनुग्रह कीन्हों।
साधन-धाम विबुध-दुर्लभ तनु, मोहि कृपा करि दीन्हों॥
कोटिहुँ मुख कहि जाँय न प्रभु के, एक एक उपकार।
तदपि नाथ कछु और माँगिहौं, दीजै परम उदार॥

बिषय-बारि मन-मीन भिन्न नहिं, होत कबहुँ पल एक।
तातें सहिय बिपति अति दारुण, जनमत जोनि अनेक ॥
कृपा-डोरि, बंसी-पद अंकुस, परम प्रेम मृदु चारो।
एहि बिधि बेधि हरहु मेरो दुख, कौतुक राम तिहारो ॥
हैं स्रुति-विदित उपाय सकल, सुर केहि केहि दीन निहोरै ?
तुलसिदास यहि जीव मोह-रजु, जोइ बाँध्यो सोइ छोरै ॥

(१०४)

जानकीजीवन की बलि जैहौं।
चित कहै राम सीय-पद परिहरि, अब न कहूँ चलि जैहौं।
उपजी उर प्रतीति सपनेहुँ सुख, प्रभुपद बिमुख न पैहौं ॥
मन समेत या तन के बासिन, इहै सिखावन देहौं।
स्रवननि और कथा नहिं सुनिहौं, रसना और न गैहौं ॥
रोकिहौं नयन बिलोकत औरहिं, सीस ईस ही नैहौं।
नातो नेह नाथ सों करि सब, नातो नेह बहैहौं ॥
यह छर भार ताहि तुलसी, जग जाको दास कहैहौं।

(१०५)

अबलौं नसानी अब न नसैहौं।
रामकृपा भव निसा सिरानी, जागे फिर न डसैहौं ॥
पायो नाम चारु चिंतामनि, उरकर तें न खसैहौं।
स्यामरूप सुचि रुचिर कसौटी, चित कंचनहिं कसैहौं ॥
परबस जानि हँस्यो इन इन्द्रिन, निज बस ह्वै न हँसैहौं।
मन-मधुकर पन करि तुलसी, रघुपति-पद कमल बसैहौं ॥

(११४)

माधव ! मो समान जगमाहीं।
सब बिधि हीन, मलीन, दीन अति लीन-बिषय कोउ नाहीं ॥
तुम सम हेतु-रहित, कृपालु, आरत-हित, ईसहिं त्यागी।
मैं दुख-सोक-बिकल कृपालु ! केहि कारन दया न लागी ?
नाहिंन कछु अवगुण तुम्हार, अपराध मोर मैं माना।
ज्ञान भवन तनु दिएहु नाथ ! सोउ पाय न मैं प्रभु जाना ॥
बेनु करील, श्रीखंड बसंतहिं, दूषन मृषा लगावे।
सार-रहित, हतभाग्य सुरभि, पल्लव सो कहु कहँ पावै ॥
सब प्रकार मैं कठिन, मदुल हरि, दृढ़ बिचार जिय मोरे।
तुलसिदास प्रभु मोह-शृङ्खला छुटिहिं तुम्हारे छोरे ॥

(११५)

माधव ! मोह फाँस क्यों टूटै ?
बाहिर कोटि उपाय करिय, अभ्यंतर ग्रंथि न छूटै ॥

घृतपूरन कराह अंतरगत, ससि-प्रतिबिंब दिखावै।
ईंधन अनल लगाइ कलप सत, औंटत नास न पावै॥
तरु-कोटर महँ बस बिहँग, तरु काटे मरै न जैसे।
साधन करिय बिचार-हीन मन, सुद्ध होइ नहिं तैसे॥
अंतर मलिन, विषय मन अति, तन पावन करिय पखारे।
मरै न उरग अनेक जतन, बलमीक बिबिध बिधि मारे॥
तुलसिदास हरि-गुरु-करुना-बिनु, बिमल बिबेक न होई।
बिनु विवेक संसार घोर निधि, पार न पावै कोई॥

(११६)

माधव! अस तुम्हारि यह माया।
करि उपाय पचि मरिय, तरिय नहिं, जब लगि करहु न दाया॥
सुनिय, गुनिय, समुझिय, समुझाइय, दसा हृदय नहिं आवै।
जेहि अनुभव बिनु मोह-जनित, दारुन भव-बिपति सतावै॥
ब्रह्म पियूष मधुर सीतल जो, पै मन सो रसपावै।
तौ कत मृगजल-रूप बिषय, कारन निसि बासर धावै॥
जेहि के भवन बिमल चिंतामनि, सो कत काँच बटोरै।
सपने परबस पर्यो जागि, देखत केहि जाइ निहोरै?॥
ज्ञान भगति साधन अनेक, सब सत्य झूठ कछु नाहीं।
तुलसिदास हरिकृपा मिटै भ्रम, यह भरोस मन माहीं॥

(११७)

हे हरि! कवन दोष तोहि दीजै?
जेहि उपाय सपनेहुँ दुर्लभ गति, सोइ निसिबासर कीजै॥
जानत अर्थ अनर्थ-रूप, तमकूप परब यहि लागे।
तदपि न तजत स्वान, अज, खर ज्यों, फिरत विषय-अनुरागे॥
भूत-द्रोह-कृत मोह-बस्य, हित आपन मैं न बिचारो।
मद-मत्सर, अभिमान, ज्ञान-रिपु, इन महँ रहनि अपारो॥
वेद पुरान सुनत समुझत, रघुनाथ सकल जगव्यापी।
भेद नाहिं श्रीखण्ड बेनु इव, सारहीन मन पापी॥
मैं अपराध-सिंधु करुनाकर! जानत अन्तरजामी।
तुलसिदास भवव्याल-ग्रसित, तव सरन उरग-रिपु-गामी॥

(१४२)

सकुचत हौं अति, राम कृपानिधि! क्यों करि बिनय सुनावौं?
सकल धर्म बिपरीत करत, केहि भाँति नाथ मन भावौं?
जानत हूँ हरिरूप चराचर, मैं हठि नयनन लावौं।
अंजन-केस-सिखा जुवती तहँ, लोचन-सलभ पठावौं॥

स्रवनन को फल कथा तिहारी, यह समुझौं समुझावौं।
तिन्ह स्रवनन पर दोष निरन्तर, सुनि सुनि भरि भरि तावौं॥
जेहि रसना गुनगाइ तिहारे, बिनु प्रयास सुख पावौं।
तेहि मुख पर-अपवाद भेक ज्यों, रटि रटि जनम नसावौं॥
'करहु हृदय अति बिमल बसहिं हरि', कहि कहि सबहिं सिखावौं।
हौं निज उर अभिमान-मोह-मद, खल-मंडली बसावौं॥
जो तनु धरि हरिपद साधहिं जन, सो बिनु काज गवावौं।
हाटक घट भरि धस्यो सुधा गृह, तजि नभ कूप खनावौं॥
मन क्रम बचन लाइ कीन्हें अघ, ते करि जतन दुरावौं।
पर-प्रेरित इरषा-बस कबहुँक, कियो कछु सुभ, सो जनावौं॥
बिप्रद्रोह जनु बाँट पस्यो, हठि सबसों बैर बढ़ावौं।
ताहू पर निज मति-बिलास, सब सन्तन माँझ गनावौं॥
निगम, सेष सादर निहोरि, जो अपने दोष कहावौं।
तौ न सिराहिं कल्पसत लगि, प्रभु कहा एक मुख गावौं?॥
जो करनी आपनी बिचारौं, तौ कि सरन हौं आवौं?
मृदुल सुभाव सील रघुपति को, सो बल मनहिं दिखावौं॥
तुलसिदास प्रभु सो गुन नहिं, जेहि सपनेहु तुमहिं रिझावौं।
नाथ कृपा भवसिंधु धेनुपद, सम जिय जानि सिरावौं॥

(१४३)

सुनहु राम रघुबीर गुसांई! मन अनीति-रत मेरो।
चरन सरोज बिसारि तिहारे, निसि दिन फिरत अनेरो॥
मानत नाहिं-निगम-अनुसासन, त्रास न काहू केरो।
भूल्यो सूल कर्म कोल्हुन तिल, ज्यों बहु बारनि पेरो॥
जहँ सतसंग कथा माधव की, सपनेहुँ करत न फेरो।
लोभ-मोह-मद-काम-क्रोधरत, तिनसों प्रेम घनेरो॥
परगुन सुनत दाह, पर-दूषन, सुनत हर्ष बहुतेरो।
आप पाप को नगर बसावत, सहि न सकत पर-खेरो॥
साधन-फल, स्रुति सार नाम तव, भव-सरिता कहँ बेरो।
सो पर कर काँकिन लागि सठ, बेंचि होत हठि चेरो॥
कबहुँक हौं संगति प्रभावते, जाउँ सुमारग नेरो।
तब करि क्रोधि संग कुमनोरथ, देत कठिन भट-भेरो॥
इक हों दीन मलीन हीन मति, बिपति-जाल अति घेरो॥
तापर सहि न जात करुनानिधि, मन को दुसह दरेरो॥
हारि पस्यो करि जतन बहुत बिधि, तातें कहत सबेरो।
तुलसिदास यह त्रास मिटै, जब हृदय करहु तुम डेरो॥

(१६२)

ऐसो को उदार जग माहीं ?
बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर, राम सरिस कोउ नाहीं ॥
जो गति जोग बिराग जतन करि, नहिं पावत मुनि ज्ञानी ।
सो गति देत गीध सबरी कहँ, प्रभु न बहुत जिय जानी ॥
जो संपति दससीस अरपि करि, रावन सिव पहँ लीन्हीं ।
सो संपदा बिभीषन कहँ अति, सकुच सहित हरि दीन्हीं ॥
तुलसिदास सब भाँति सकल सुख, जो चाहसि मन मेरो ।
तौ भजु राम, काज सब पूरन, करैं कृपानिधि तेरो ॥

(१६८)

जो पै रामचरन रति होती ।
तौ कत त्रिबिध सूल निसि बासर, सहते बिपति निसाती ॥
जौ सन्तोष सुधा निसि बासर, सपनेहुँ कबहुँक पावै ।
तौ कत विषय बिलोकि झूँठ, जल मन कुरंग ज्यों धावै ।
जौ श्रीपति-महिमा विचारि उर, भजते भाव बढ़ाए ।
तौ कत द्वार द्वार कूकर ज्यों, फिरते पेट खलाए ॥
जे लोलुप भए दास आस के, ते सबही के चेरे ।
प्रभु-बिस्वास आस जीती जिन्ह, ते सेवक हरि केरे ॥
नहिं एकौ आचरन भजन को, विनय करत हौं ताते ।
कीजै कृपा दास तुलसी पर, नाथ ! नाम के नाते ॥

(१६९)

जो मोहिं राम लागते मीठे ।
तौ नवरस, षटरस रस अनरस, ह्वै जाते सब सीठे ॥
वंचक बिषय त्रिबिध तनु धरि, अनुभवे सुने अरु डीठे ।
यह जानत हौं हृदय आपने, सपने न अघाइ उबीठे ॥
तुलसिदास प्रभु सों एकहि बल, बचन कहत अति ढीठे ।
नाम की लाज राम करुना कर, कहि न दिये करिचीठे ॥

(१७२)

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो ।
श्रीरघुनाथ-कृपालु-कृपा ते, संत सुभाव गहौंगो ॥
यथा लाभ संतोष सदा, काहू सों कछु न चहौंगो ।
परहित-निरत निरंतर, मन क्रम बचन नेम निबहौंगो ॥
परुष बचन अति दुसह स्रवन सुनि, तेहि पावक न दहौंगो ।
बिगत मान, सम सीतल मन, परगुन, नहिं दोष कहौंगो ॥
परिहरि देहजनित चिंता, दुख सुख समबुद्धि सहौंगो ।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि, अबिचल हरिभक्ति लहौंगो ॥

(१७५)

जो पै रहनि राम सों नाहीं।
तौ नर खर कूकर सूकर से, जाय जियत जग माहीं॥
काम, क्रोध, मद, लोभ, नींद, भय, भूख, प्यास सबही के।
मनुज देह सुर साधु सराहत, सो सनेह सिय-पी के॥
सूर, सुजान, सपूत, सुलच्छन, गनियत गुन गरुआई।
बिनु हरि भजन इँनारुन के फल, तजत नहीं करुआई॥
कीरति, कुल, करतूति, भूति भल, सील, सरूप सलोने।
तुलसी प्रभु-अनुराग-रहित, जस सालन साग अलोने॥

(१८५)

लाज न आवत दास कहावत।
सो आचरन विसारि सोच तजि, जो हरि तुम कहँ भावत।
सकल संग तजि भजत जाहि मुनि, जप तप जाग बनावत॥
मो सम मंद महा खल पाँवर, कौन जतन तेहि पावत?
हरि निर्मल, मल ग्रसित हृदय, असमंजस मोहिं जनावत।
जेहि सर काक कंक बक सूकर, क्यों मराल तहँ आवत॥
जाकी सरन जाइ कोविद, दारुन त्रयताप बुझावत।
तहूँ गये मद मोह लोभ, अति सरगहुँ मिटति न सावत॥
भव-सरिता कहँ नाव संत, यह कहि औरनि समुझावत।
हौं तिनसों करि परम बैर हरि, तुम सों भलो मनावत॥
नाहिंन और ठहर मो कहँ, तातें हठि नातो लावत।
राखु सरन उदार-चूड़ामनि, तुलसिदास गुन गावत॥

(१८६)

कौन जतन बिनती करिए।
निज आचरन बिचारि हारि हिय, मानि जानि डरिए॥
जेहि साधन हरि द्रवहु जानि जन, सो हठि परिहरिए।
जातें बिपति-जाल निसि दिन दुख, तेहि पथ अनुसरिए॥
जानत हूँ मन बचन कर्म परहित कीन्हें तरिए।
सो विपरीत देखि पर सुख, विनु कारन ही जरिए॥
स्रुति पुरान सब को मत यह, सतसंग सुदृढ़ धरिए।
निज अभिमान मोह ईर्षा बस, तिनहि न आदरिए॥
संतत सोइ प्रिय मोहिं, सदा जातें भवनिधि परिए।
कहो अब नाथ! कौन बल तें, संसार सोक हरिए॥
जब कब निज करुना सुभाव तें, द्रवहु तो निस्तरिए।
तुलसिदास विस्वास आन नहिं, कत पचि पचि मरिए॥

(१८८)

मैं तोहिं अब जान्यो, संसार !
बाँधि न सकहि मोहिं हरि के बल, प्रगट कपट-आगार ॥
देखत ही कमनीय कछू , नाहिन पुनि किये विचार।
ज्यों कदली तरु मध्य निहारत, कबहुँ न निकसत सार ॥
तेरे लिये जनम अनेक मैं, फिरत न पायौं पार।
महामोह-मृगजल-सरिता महँ बोर्यौं हौं बारहिं बार ॥
सुनु खल छल बल कोटि किये बस, होहिं न भगत उदार।
सहित सहाय तहाँ बसि अब, जेहि हृदय न नंदकुमार ॥
तासों करहु चातुरी जो नहिं, जानै मरम तुम्हार।
सो परि डरै मरै रजु अहि तें, बूझै नहिं व्यवहार ॥
निज हित सुनु सठ! हठ न करहि जो, चहहि कुसल परिवार।
तुलसिदास प्रभु के दासन तजि, भजहि जहाँ मद मार ॥

(१९८)

मन पछितै हैं अवसर बीते।
दुर्लभ देह पाइ हरि पद भजु, करम बचन अरु हीते ॥
सहसबाहु दसबदन आदि नृप, बचे न काल बली ते।
हम हम करि धन धाम सँवारे, अंत चले उठि रीते ॥
सुत बनितादि जानि स्वारथ-रत, न करु नेह सब ही तें।
अंतहुँ तोहिं तजैंगे पामर, तू न तजै अबही तें ॥
अब नाथहिं अनुरागु जागु जड़, त्यागु दुरासा जीतें।
बुझै न काम-अगिनि तुलसी कहुँ, बिषय भोग बहुघीतें ॥

(१९९)

काहे को फिरत मूढ़ मन धायो।
तजि हरि चरन-सरोज सुधारस, रविकर-जल लय लायो ॥
त्रिजग, देव, नर, असुर, अपर जगजोनि सकल भ्रमि आयो।
गृह, बनिता, सुत, बंधु भए बहु, मातु पिता जिन्ह जायो ॥
जातें निरय निकाय निरंतर, सोइ इन्ह तोहिं सिखायो।
तुव हित होइ कटै भवबंधन, सो मगु तोहिं न बतायो ॥
अजहुँ विषय कहँ जतन करत जद्यपि बहुविधि डहँकायो।
पावक काम भोग-घृत ते सठ, कैसे परत बुझायो ? ॥
बिषयहीन दुख, मिले विपति अति, सुख सपनेहु नहिं पायो।
उभय प्रकार प्रेत-पावक† ज्यों, धन दुःख प्रद स्तुति गायो ॥
छिन छिन छीन होत जीवन, दुरलभ तनु बृथा गँवायो।
तुलसि दास हरि भजहिं आस तजि, काल-उरग जग खायो ॥

† प्रेत-पावक = राकस

(२०१)

लाभ कहा मानुष तनु पाए।
काय, बचन, मन सपनेहुँ कबहुँक, घटत न काज पराए॥
जो सुख सुरपुर नरक गेह बन, आवत बिनहिं बुलाए।
तेहि सुख कहँ बहु जतन करत मन, समुझत नहिं समुझाए॥
परदारा, पर द्रोह, मोह बस, किए मूढ़ मन भाए।
गर्भवास दुखरासि जातना, तीव्र बिपति बिसराए॥
भय निद्रा मैथुन अहार, सब के समान जग जाए।
सुर-दुर्लभ तनु धरि न भजे हरि, मद अभिमान गँवाए॥
गई न निज-पर-बुद्धि, शुद्ध ह्वै रहे न राम-लय लाए।
तुलसिदास यह अवसर बीते, का पुनि के पछिताए?॥

(२०२)

काज कहा नर तनु धरि सार्‌यो?
पर-उपकार सार श्रुति को जो, सो धोखेहु न बिचार्‌यो॥
द्वैत मूल, भय सूल, सोगफल, भवतरु टरै न टार्‌यो।
राम-भजन तीछन कुठार लै, सो नहिं काटि निवार्‌यो॥
संसय-सिंधु नाम-बोहित भजि, निज आतमा न तार्‌यो।
जनम अनेक बिबेकहीन बहु, जोनि भ्रमत नहिं हार्‌यो॥
देखि आन की सहज संपदा, द्वेष अनल मन जार्‌यो।
सम-दम दया दीन-पालन, सीतल हिय हरि न सँभार्‌यो॥
प्रभु गुरु पिता सखा रघुपति तैं, मनक्रम बचन बिसार्‌यो।
तुलसिदास एहि त्रास सरन, राखिहि जेहि गीध उधार्‌यो॥

(२२४)

रघुबरहिं कबहुं मन लागि है?
कुपथ, कुचाल, कुमति, कुमनोरथ, कुटिल कपट कब त्यागि है?
जानत गरल अमिय बिमोह बस, अमिय गनत करि आगि है॥
उलटी रीति प्रीति अपने की तजि, प्रभुपद अनुरागि है।
आखर अरथ मंजु मृदु मोदक, राम प्रेम पाग पागि है॥
ऐसे गुन गाइ रिझाइ स्वामि सों, पाइहै जो मुँह माँगि है।
तू यहि बिधि सुख-सयन सोइहै, जिय की जरनि भूरि भागि है॥

(२३४)

जनम गयो बादिहिं बर बीति।
परमारथ पाले न पर्‌यो कछु, अनुदिन अधिक अनीति॥
खेलत खात लरिकपन गो चलि, जोबन जुबतिन लियो जीति।
रोग-बियोग-सोक-स्रम-संकुल, बड़ि बय बृथहि अतीति॥

राग-रोष-इरषा-बिमोह बस, रुची न साधु-समीति।
कहे न सुने गुनगन रघुबर के, भई न रामपद प्रीति॥
हृदय दहत पछिताय-अनल अब, सुनत दुसह भवभीति।
तुलसी प्रभु तें होइ सो कीजिय, समुझि बिरद की रीति॥

(२३५)

ऐसेहि जन्म-समूह सिराने।
प्राननाथ रघुनाथ से प्रभु तजि सेवत चरन बिराने।
जे जड़ जीव कुटिल कायर खल केवल कलिमल-साने॥
सूखत बदनप्रसंसत तिन्ह कहँ, हरितें अधिक करि माने।
सुख हित कोटि उपाय निरंतर करत न पाँय पिराने॥
सदा मलीन पंथ के जल ज्यों, कबहुँ न हृदय थिराने॥
यह दीनता दूरि करिबे को, अमित जतन उर आने।
तुलसी चित चिंता न मिटै, बिनु चिंतामनि पहिचाने॥

(२३७)

काहे न रसना रामहिं गावहिं ?
निसि दिन पर-अपवाद वृथा कत, रटि रटि राग बढ़ावहिं।
नर मुख सुंदर मन्दिर पावन, बसि जनि ताहि लजावहिं॥
ससि समीप रहि त्यागि सुधा कत,रबि कर-जल कहँ धावहिं?
काम-कथा कलि-कैरव-चंदिनी, सुनत स्रवन दै भावहिं॥
तिनहिं हटकि कहि हरि-कल-कीरति, करन कलंक नसावहिं।
जातरूप मति जुगुति रुचिर मनि, रचि रचि हार बनावहिं॥
सरन-सुखद रविकुल-सरोज-रबि, राम नृपहि पहिरावहिं।
बाद-बिबाद-स्वाद तजि भजि हरि, सरस चरित चित लावहिं॥
तुलसिदास भव तरहि, तिहूँ पुर, तू पुनीत जस पावहिं॥

(२४३)

यहै जानि चरनन्हि चित लायो।
नाहिंन नाथ अकारन को हित, तुम समान पुरान स्रुति गायो।
जननि, जनक, सुत, दार, बन्धुजन, भए बहुत जहँ जहँ हौं जायो।
सब स्वारथ हित प्रीति कपट चित, काहू नहिं हरि भजन सिखायो॥
सुर, मुनि, मनुज, दनुज, अहि, किन्नर, मैं तनु धरि सिर काहि न नायो।
जरत फिरत त्रयताप-पापबस, काहु न हरि! करि कृपा जुड़ायो॥
जतन अनेक किए सुख-कारन, हरिपद-बिमुख सदा दुख पायो।
अब थाक्यो जलहीन नाव ज्यों, देखत बिपति जाल जग छायो॥
मोकहँ नाथ! बूझिए यह गति, सुख-निधान निजपति बिसरायो।
अब तजि रोष करहु करुना हरि, तुलसिदास सरनागत आयो॥

(२४५)

मोहि मूढ़ मन बहुत बिगोयो।
याके लिए सुनहु करुनामय, मैं जग जनमि जनमि दुख रोयो॥
सीतल मधुर पियूष सहज सुख, निकटहिं रहत दूरि जनु खोयो।
बहु भाँतिन स्रम करत मोहबस, वृथहिं मन्दमति बारि बिलोयो॥
करम-कीच जिय जानि सानि चित, चाहत कुटिल मलहि मल धोयो।
तृषावन्त सुरसरि बिहाय सठ, फिरि फिरि बिकल अकास निचोयो॥
तुलसिदास प्रभु कृपा करहु अब, मैं निज दोष कछू नहिं गोयो।
डासत ही गई बीति निसा सब, कबहुँ न नाथ! नींद भरि सोयो॥

(२७१)

जैसो हौं तैसो हौं राम! रावरो जन जानि न परिहरिए।
कृपासिन्धु कोसलधनी सरनागत-पालक, ढरनि आपनी ढरिए॥
हौं तो बिगरायल और को, बिगरो न बिगरिए।
तुम सुधारि आए सदा, सबकी सब बिधि, अब मेरियो सुधरिए।
जग हँसिहै मेरे संग्रहे, कत एहि डर डरिए?
कपि केवट कीन्हें सखा, जेहिं सील सरल चित, तेहि सुभाव अनुसरिए॥
अपराधी तउ आपनो, तुलसी न बिसरिए।
टूटियो बाँह गरे परै, फूटेहूँ बिलोचन पीर होति हितकरिए॥

[१५] अन्यान्य ग्रन्थ

गोस्वामीजी-विरचित जितने ग्रन्थ बतलाये जाते हैं, उनकी सूची द्वितीयाध्याय के आरम्भ में दी गयी है। इनमें मुख्य मुख्य ग्रन्थों के विषयोल्लेख किये जा चुके, शेष कई ग्रन्थ अल्पप्रसिद्ध, कई अप्राप्य अथवा कई अमुद्रित हैं। कई ग्रन्थों के तुलसीकृत होने में भी पूर्ण सन्देह है। इन कारणों से इन ग्रन्थों की विशेष चर्चा नहीं की गयी।

तुलसी साहित्य-रत्नाकर ।

अवसान-खण्ड

[ग्रन्थालोचन]

(मुखबन्ध)

'महतामपि यो न गोचरः
क्वचिदर्थो लघुनावगम्यते ।
सिकतागतशर्कराकणान्
ननु चिन्वन्ति परं पिपीलिकाः ॥'
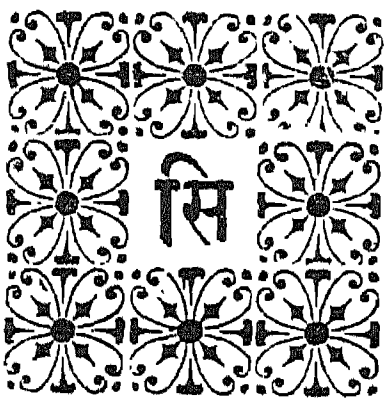
सिकता और शर्करा के वाह्यरूप अभिन्न-प्राय होते हैं । दोनों का संमिश्रण जब हो जाता है तब उनके कणों को पृथक् पृथक् कर देना कोई साधारण व्यापार नहीं । हाथी ऐसे पराक्रमी पशु यदि अपनी शुण्ड से अथवा मनुष्य के समान बुद्धिशाली प्राणी अपने हाथों से परमाणु-द्वय को पृथक् करना चाहें तो उनके लिये यह व्यवसाय असम्भव है । गोस्वामी तुलसीदास जी स्वयं लिखते हैं:—

"ज्यों शर्करा मिले सिकता महँ, बलते न कोउ बिलगावै ।
अति रसज्ञ सूक्ष्म पिपीलिका, बिनु प्रयास ही पावै ॥"

सिकता और शर्करा के कणों को पृथक् पृथक् कर देना अथवा मिश्रित द्रव्य में से शर्कराणुओं को चुन लेना यह रसज्ञ सूक्ष्म पिपीलिका का ही काम है । ठीक उसी प्रकार यह संसार गुण-दोष का संघात है । तदनुसार ही मानवीय समस्त कार्य गुण-दोष-मय हैं । चाहे कैसाहू उच्च कोटि का पावन जीवन रखने वाला कोई महा-पुरुष क्यों न हो, अवश्य किसी न किसी मात्रा में उसके अन्दर अपूर्णता विद्यमान रहती है । तद्विपरीत किसी पतित से पतित जीवन रखने वाले मनुष्य के अभ्यन्तर सद्गुणों का अत्यन्ताभाव है, ऐसा नहीं कहा जा सकता । जहाँ गुण है, वहीं दोष है । जहाँ दोष दृष्टिगोचर होता है, ढूँढने से वहीं गुण की भी विद्यमानता अवलक्षित होती है । कवि ने स्वयं 'रामचरित-मानस' में कहा है:—

'कहहिं बेद इतिहास पुराना । बिधि प्रपंच गुण अवगुण साना ॥
दुखसुख पापपुन्य दिनराती । साधु असाधु सुजाति कुजाती ॥

दानव देव ऊँच अरु नीचू। अमिय सजीवन माहुर मीचू॥
माया ब्रह्म जीव जगदीशा। लच्छि अलच्छि रंक अवनीशा॥
काशी मग सुरसरि कर्मनासा। मरु मालव महिदेव गवासा॥
स्वर्ग नरक अनुराग बिरागा। निगमागम गुण दोष बिभागा॥

जड़ चेतन गुण दोष मय, विश्व कीन्ह करतार।
सन्त हंस गुण गहहिं पय, परिहरि बारि बिकार'॥

जब समस्त विश्व ही गुण-दोष मिश्रित है तब किसी कवि की कविता सर्वथा निर्दोष कैसे हो सकती है? परन्तु गुण-दोष-विवेचन बड़ा ही कठिन कार्य्य है। बुद्धि-स्थौल्य अथवा पक्षपात वा राग-द्वेष-वश, मनुष्य सत्यपथ से विचलित हो असन्मार्ग का अनुगामी बन बैठता है। जिस प्रकार मत्स्यभक्षी ध्यानावस्थित बक सर्वत्र जलाशयों में पाये जाते हैं, परन्तु हंस का निवास केवल मानसर में ही सुना जाता है। कहा भी है:—

'सुनिय सुधा देखिय गरल, बिधि करतूत कराल।
जहँ तहँ काक उलूक बक, मानस सकृत मराल॥'

तदनुसार ही गुणों में भी दोष देखने वाले दुर्जन सर्वत्र देखे जाते हैं, पर सदसद्विवेकिनी मेधायुक्त महापुरुष समालोचक विरले ही सुने जाते हैं। समालोचना का अर्थ है भलीभाँति अथवा सम्यक्‌रूप से देखना। समालोचना के लिये पर्याप्त बुद्धि, पूर्ण विद्या और निष्पक्षभाव की महती आवश्यकता है। मुझे अत्यन्त संकोच होता है, लज्जा आती है और लेखनी डगमगाती है कि मैं कवि-सम्राट गोस्वामी तुलसीदास जी के ग्रन्थों की आलोचना पर समुद्यत हुआ हूँ!!! मेरे पास यद्यपि विद्या और बुद्धि की नितान्त न्यूनता है तथापि मेरा निष्पक्षभाव ही इस कार्य्य के लिये मुझे प्रोत्साहन प्रदान कर उत्सुक और उतारू कर रहा है। पूर्व श्लोक के अनुसार हो सकता है कि जो बात बड़े से बड़े आलोचकों को न सूझी हो वह मुझे दृष्टिगत हुई हो। गोस्वामी जी के ग्रन्थों का प्रसार लगभग आठ करोड़ हिन्दी भाषाभाषी भारतीय जनता में है और केवल प्रचार ही नहीं उनके अन्तःकरण पर इनका गहरा प्रभाव है। प्रायः सभी हिन्दू तुलसीकृत ग्रन्थों को महान् आदर की दृष्टि से देखते और कितने तो वेद-वाक्य से भी बढ़ कर मानते हैं। कुछ इने गिने हिन्दू ऐसे भी निकलेंगे जो गोस्वामी जी के ग्रन्थों को अत्यन्त समादरणीय दृष्टि से देखते हुए भी उनमें दूषण का अत्यन्ताभाव नहीं मानते। मेरी गणना इसी अन्तिम श्रेणी में की जा सकती है। गोसाईंजी की कविता के सम्बन्ध में लेखनी उठाना मेरा दुस्साहस कहा जायगा, रह गयी प्रतिपादित वर्णनों और निगदित विषयों की समालोचना वा उनके सम्बन्ध में विचार। इस अंश में लेखनी उठाने का यदि सर्वांश में नहीं तो अंशतः मैं अपना अधिकार समझता हूँ। कम से कम

हिन्दी-भाषा का कोई भी कवि गोसाईंजी की समता वा समकक्षा का नहीं हुआ है, उनसे उच्चश्रेणी का होना तो किनारे रहा । गोसाईंजी की कविता में दूषण पाना तो दूर रहा मुझे यह भी अधिकार प्राप्त नहीं कि मैं दृढ़तापूर्वक कह सकूँ कि याथातथ्य उन्हें समझ चुका हूँ । हाँ; अलबत्ता अपनी अल्पमति के अनुसार उनके गुणों को जहाँ तक समझ सका हूँ उनका संग्रन्थन करूँगा । रह गयी समालोचना कविराज के विचारों की । इस अंश में यत्किञ्चित् यत्र-तत्र कुछ उल्लेख करूँगा । आशा है कि मेरे सहृदय पाठक क्षमता, धैर्य्य, सौहार्द, सुशीलता, सद्विचार और कृपा से काम लेंगे ।

तुलसीदास के प्रतिपादित विषय

सूर्य्य के प्रकाश को उपलब्ध कर ही यह पृथिवी प्रकाशित होती है, परन्तु उसकी दैनिक और वार्षिक गतियों के कारण प्रकाश का प्रभाव कई श्रेणियों में विभक्त हो जाता है । शीतोष्ण के तारतम्य से ही भिन्न भिन्न ऋतुओं का प्रादुर्भाव होता है । गोस्वामी तुलसीदास जी की रवि-रश्मि-रचना ने भी जनता के अवनि-अन्तःकरण पर षट्ऋतु सा प्रभाव डाला है ।

वसन्त—वसन्त को ऋतुपति वा ऋतुराज कहा गया है । इस ऋतु में सरिता, सरोवर, वन, उपवन, वाटिका, उद्यान, गिरि-गह्वर, नगर और ग्राम सभी सोहावने हो उठते हैं । स्थान स्थान पर विकसित कुसुमावली पर मद-मत्त-भ्रमरावली मनुष्य के चित्त को बरबस वश में कर लेती है । पुष्प-सौरभ से सना समीर किसे आनन्द नहीं पहुँचाता ?

गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपनी कविता में जो मर्यादापुरुषोत्तम राम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न और हनुमानादि नरों एवं सतीशिरोमणि सीता, कौशल्या, सुमित्रा, पार्वती और अनुसूयादि नारियों के पावन आदर्श जीवन लिखे हैं उन्हें पढ़कर जनता का हृदय वसन्त के समान लहलहा उठता है । गोस्वामी जी के कविता-कानन में पवित्र नर-नारियों के जीवन ही वसन्त हैं ।

ग्रीष्म—वसन्त के अनन्तर ही जगतीतल पर ग्रीष्म का प्रादुर्भाव होता है। इस ऋतु में सारी वसुन्धरा सन्तप्त और शुष्क हो उठती है, सरिता-सरोवर सभी उदास हो बैठते हैं तथा पर्वतों में प्रचण्ड दाहकता आ जाती है। वसुधा के समस्त प्राणी व्याकुल हो उठते हैं । 'बिहारी' तो कहते हैं कि:—

'निरखि दुपहरी जेठ की, छाँहौं चाहत छाँह '

गोस्वामी तुलसीदास जी की लेखनी ने पाखण्डों के खण्डन, सद्धर्म के ह्रास-कथन और कुरीति निवारण-प्रकरण में ग्रीष्म का स्वरूप धारण कर लिया है, जिसका निदर्शन प्रसङ्गतः आगे किया जायगा ।

पावस—ग्रीष्म की समाप्ति पर पावस का प्रादुर्भूत होना ही प्रकृति-सिद्ध है। जिस प्रकार वर्षाऋतु में सारी वसुन्धरा जल-मग्न हो जाती है उसी प्रकार तुलसीदास की लेखनी ने राम-भक्ति की मूसलधार वृष्टि से भगवद्भक्तों के हृदय-हृद को भर कर आप्लावित कर दिया। कवि ने स्वयं कह दिया है:—

वर्षा ऋतु रघुपति भगति, तुलसी सालि सुदास।
राम नाम वर वरन युग, सावन भादो मास॥

शरद्— इस ऋतु में शीतोष्ण का समन्वय रहता है, न तो विशेष वृष्टि ही होती और न जाड़ा अथवा गर्मी का ही प्राचुर्य रहता है। वास्तव में यह ऋतु बड़ी ही सुखदा, शान्तिप्रदायिनी और आनन्दरूपा है।

कविराज तुलसीदास जी की कविता में जो धर्म-नीति, लोक-नीति और राजनीति का अंश है वही मानो शरद् ऋतु है जिन्हें पढ़ कर मानवसमुदाय सन्मार्ग का अवलम्बन कर सुखभाजन बनता है।

हेमन्त—यह बड़ी दुष्टा ऋतु है। इसमें रईसों से लेकर सईसों तक के कलेजे काँप उठते हैं। सारा प्रभाव दिखला कर हिम अपनी अन्तगति को प्राप्त हो जाता है। गोसाईं जी की कविता में रावणादि राक्षसों के उपद्रव, राम के साथ घोर संग्राम एवं विनाश-प्राप्ति की कथा ही हेमन्त ऋतु है।

शिशिर—यह ऋतु तो शरद से भी अधिक सुखदायिनी है। हेमन्त के उपद्रव-शमन और वसन्तागमन की मध्यवर्त्तिनी शिशिर ऋतु सब की प्यारी होगी, यह स्वभाव-सिद्ध बात है।

गोसाईं जी की रचना में रामचन्द्र की विजय, अयोध्या-प्रत्यावर्त्तन, अभिषेक और सुराज-व्यवस्था एवं सुशासन की कथा ही शिशिर ऋतु के समान है।

सन्धिकाल— प्रत्येक ऋतु के अन्त्य और आगामी ऋतु के आदि काल को सन्धिकाल कह सकते हैं। गोसाईंजी ने प्रसङ्गवशात् यत्र-तत्र उल्लिखित विभागों के अतिरिक्त जितनी रचनाएँ की हैं वे भिन्न भिन्न ऋतुओं के सन्धि-काल के समान हैं।

इन्हीं उपर्युक्त पथों से कवि-सम्राट की कविता-सरिता गतिशीला हुई है। गोसाईंजी की लेखनी इन्हीं सप्त सन्मार्गों की अनुगामिनी रही है। इनके बनाये जिस ग्रन्थ को आप उठाइये सबके राग-स्वर एक ही पाइयेगा। हाँ, किसी पुस्तक में कोई अंश विस्तृत है, कोई संक्षिप्त, परन्तु बातें लगभग मिलती जुलती हैं। हम इस तृतीय खण्ड में कविराज के ग्रन्थों की कुछ आलोचना करेंगे। इस कार्य से ग्रन्थकार के सत्य-स्वरूप का जनता को साक्षात्कार होगा और वह सचाई की एक समुचित सीमा तक इसके सहारे पहुँच सकेगी। संसार में किसी ग्रन्थ के तथ्य तक

पहुँच सकने की सामर्थ्य सभी पाठकों में नहीं होती, अतः ऐसे लोगों को भी हमारी समालोचना सहायता पहुँचावेगी। सच्ची समालोचना से श्रेष्ठ-रचनाओं का मान सर्व-साधारण में उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है, जिससे सत्साहित्य की अभिवृद्धि और दुस्साहित्य का ह्रास होता है। समालोचना जनता तक किसी सुकवि का संवाद ही नहीं पहुँचाती अपितु वह अपने पाठक-समुदाय में सत्यासत्य के विवेक और औचित्य की वृद्धि करती है। वास्तविक आलोचना ग्रन्थकार के मान-मर्यादा और ग्रन्थ की आयु को सुदीर्घकालीन बनाती है। भावी लेखकों और कवियों के निमित्त वह सच्चे पथ-प्रदर्शक का काम करती है। भविष्य साहित्य के लिये समालोचना एक भव्य-रमणीय राज-पथ का काम करती है। प्रत्येक भाषा की उन्नति के हेतु समालोचना एक अनिवार्य स्थिति रखती है। जिस साहित्य में निष्पक्ष समालोचना का जितना ही अंश अधिक होगा, वह साहित्य उत्तरोत्तर उतनी ही उन्नति करता जायगा, नित्य नवीन सुलेखक और सुकवि समुत्पन्न करेगा। इन्हीं सब भावों को हृदय में रख कर हम आगे कविवर तुलसीदास की कविता और इनके विचारों को भिन्न भिन्न दृष्टिपथ से अवलोकन करेंगे। सम्भव है, सभी पाठक समस्त लेख से सर्वांश में सहमत न हों, परन्तु नम्र निवेदन है कि सहृदयता का त्याग न करें।

'हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः।'

[१] वेद और तुलसीदास

वेद के अर्थ ज्ञान के हैं। परमात्मा नित्य है, अतः उसका ज्ञान भी नित्य है। परमात्मा का ज्ञान अनन्त है, क्योंकि परमात्मा स्वयं स्वरूप से अनन्त है—जीवात्मा का ज्ञान परिमित अर्थात् ससीम है। क्योंकि वह परिछिन्न, सान्त और एकदेशी है। परमात्मा सर्वज्ञ एवं जीव अल्पज्ञ है। जीवात्मा की अल्पज्ञता उसकी यथेष्ट उन्नति में बाधक होती है, वह अपने स्वाभाविक ज्ञान की मात्रा से अपने अन्तिम उद्देश्य (मुक्ति) की प्राप्ति और जगत का यथावत् ज्ञान उपलब्ध नहीं कर सकता। अतः प्रत्येक सृष्टि के प्रारम्भ में परमात्मा मुक्त पुरुषों के द्वारा मनुष्यों के कल्याणार्थ जो ज्ञान प्रदान करता है उसीको 'वेद' कहते हैं। ज्ञान, कर्म, उपासना और विज्ञान इन चार विषयों के पृथक् पृथक् प्रतिपादन करने के कारण ही वेदों के भी पृथक् पृथक् चार नाम क्रमशः ऋक्, यजु, साम और अथर्व प्रसिद्ध हुए। वेद, ज्ञान को कहते हैं, अतः सर्वव्यापी परमात्मा अपना प्रभाव निराकार मुक्तात्माओं पर डालकर उन्हें वेदमय कर जगत को उन्हींके द्वारा ज्ञान का सन्देशा भेजता है। वैदिक भाषा में उन मुक्तात्मा महापुरुषों को अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा कहते हैं। वेदों के छन्दों को ऋचा वा मन्त्र कहते हैं। इन्हीं मन्त्रसमूह को 'संहिता' भी कहा गया

है। मन्त्र भाग के आशय को लेकर महर्षियों ने नाना प्रकार की आख्यायिकाएँ और उपाख्यान रचीं जो रुचिकर और सुगमतया समझ में आने योग्य थीं। इन उपाख्यान भागों की प्रसिद्धि 'ब्राह्मण ग्रन्थ' के नाम से हुई।

ब्राह्मण ग्रन्थ चार हैं। इसके अनन्तर प्रत्येक वेद के प्रतिपाद्य विषय के अनुसार ही महर्षियों ने अभ्युदयार्थ चार उपवेदों की रचना की। नीचे के चक्र से आपको यह पता लग जायगा कि किस वेद का कौन सा ब्राह्मण भाग और कौन सा उपवेद है:—

वेद	ब्राह्मण	उपवेद
ऋक् (ज्ञान)	ऐतरेय	आयुर्वेद (चिकित्साशास्त्र)
यजु (कर्म)	शतपथ	धनुर्वेद (शस्त्रास्त्रविद्या)
साम (उपासना)	साम	गन्धर्ववेद (गानविद्या)
अथर्व (विज्ञान)	गोपथ	अर्थवेद (शिल्पशास्त्र)

तदनन्तर महर्षियों ने ज्ञान के सुगमतया प्रचारार्थ शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष शास्त्र का प्रणयन किया जिन्हें 'वेदाङ्ग' कहते हैं।

उल्लिखित ग्रन्थ वैदिक ग्रन्थ कहलाते हैं और ये जबतक भारतवर्ष में सम्यक् रूप से प्रचलित थे उसी काल को ऐतिहासिक पुरुष 'वैदिक काल' के नाम से प्रख्यात करते हैं। आर्य जाति को वैदिक काल और वैदिक सभ्यता का अभिमान है। एकेश्वरवाद, गुण कर्मानुसार वर्णव्यवस्था, चार आश्रमों का यथावत् विभाग, ब्रह्मचर्याश्रम की समुन्नति, महापुरुषों के सादे जीवन, सम्राटों का अभ्युदय, वैश्यों की समृद्धि और शूद्रों की शुद्धभावमय-सेवा जगत के लिये अनुकरणीय थी।

गोसाईंजी वास्तव में वैदिक मर्यादा के सुदृढ़ परिपोषक थे। साम्प्रदायिक होते हुए भी आप वैदिक प्रथा के परम प्रेमी रहे। अपने ग्रन्थों में जहाँ तहाँ कविराजने इस धर्म के ह्रासपर बड़ा ही शोक प्रगट किया है। यद्यपि वेदों का प्रचार उस समय लुप्तप्राय हो गया था और गोसाईंजी में स्वयं इतनी क्षमता न थी कि वास्तविक वेदार्थ करने में समर्थ होते तथापि एक धार्मिक कवि की संस्थिति में अपने काव्यों के अन्दर आपने अपने विचारानुसार वेदों की महिमा संस्थापन करने में कोई कसर उठा नहीं रखी है। गोस्वामी जी के समय में आर्य जाति नाना प्रकार के मतमतान्तरों और सम्प्रदायों में विभक्त होकर निर्बल हो चुकी थी, जिसका कवि-सम्राट को अत्यन्त शोक था। आपकी निरन्तर यह मनोकामना और अभिलाषा रहती थी कि मनुष्य मात्र एक ही मार्ग के अनुगामी बनें। निम्न पद्यों से आपने अपने भव्य-भाव प्रगट किये हैं:—

'हरित भूमि तृण संकुल, समुझि परै नहिं पन्थ।
जिमि पाखण्ड विवाद ते, लुप्त भये सद्ग्रन्थ॥

भये वर्णसङ्कर कलिहिं, भिन्न सेतु सब लोग।
करहिं पाप दुख पावहीं, भय रुज शोक वियोग॥
श्रुति सम्मत हरि भक्ति पथ, संयुत ज्ञान विवेक।
ते न चलहिं नर मोहबस, कल्पहिं पन्थ अनेक॥

और भी

द्विज श्रुति बंचक भूप प्रजासन। कोउ नहिं मान निगम अनुशासन॥
निराचार जो श्रुति पथ त्यागी। कलियुग सोइ ज्ञानी बैरागी॥
मारग सोइ जाकहँ जो भावा। पण्डित सोइ जो गाल बजावा॥
वर्ण धर्म नहिं आश्रम चारी। श्रुति विरोध रत सब नर नारी॥

ऊपर के पद्यों को आप भलीभाँति विचारें तब आपको पता चलेगा कि वैदिक धर्म के ह्रास का कवि ने कैसा हृदयद्रावक दृश्य उपस्थित किया है !!! अहो! वेद, जिस आर्य जाति के प्राण-स्वरूप थे वहाँ उसी जाति का काल पाकर इस प्रकार का अधःपात पाते हैं कि सत्रहवीं शताब्दी के एक सहृदय कवि को यह लिखना पड़ा कि 'श्रुति विरोध रत सब नर नारी !!!'

गोसाईंजी के नेत्रों में ज्योति अवश्य थी परन्तु करते क्या? बाह्य जगत में घोर अन्धकार था। हम आँख रहते हुए भी प्रकाशभाव में ठोकर खा सकते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि तुलसीदासजी की वेदों पर अगाध आस्था थी, परन्तु उनके समक्ष वेदों का सच्चा स्वरूप जाज्वल्यमान नहीं था।

तो भी हम स्थान स्थान पर वेदों के प्रति कवि-सम्राट का प्रगाढ़ प्रेम पाते हैं, अगाध श्रद्धा देखते हैं। मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्र को ईश्वर का अवतार मानते हुए भी उनके सारे वैदिक संस्कार कराये:—

"तब नान्दी मुख श्राद्ध करि, जात कर्म सब कीन्ह।
हाटक धेनु सु बसन मणि, नृप बिप्रन कहँ दीन्ह॥

× × × ×

नामकरण कर अवसर जानी। भूप बोलि पठये मुनि ज्ञानी॥
धरे नाम मुनि हृदय विचारी। बेद तत्व नृप तब सुत चारी॥

× × × ×

कछुक काल बीते सब भाई। वड़े भये परिजन सुखदाई॥
चूड़ाकरण कीन्ह गुरु आई। मुनि दक्षिणा द्विजन बहु पाई॥

× × × ×

भये कुमार जवहिं सब भ्राता। दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता॥
गुरुगृह गये पढ़न रघुराई। अल्पकाल विद्या सब पाई॥

× × × ×

उपर्युक्त पद्यों में जातकर्म, नामकरण, चूड़ाकरण, उपनयन और वेदारम्भ

संस्कार का वर्णन करके गोसाईं जी चारों भ्राताओं को वसिष्ठ महर्षि के गुरुकुल में भी प्रविष्ट कराते हैं। समावर्त्तन हो चुकने पर विवाह संस्कार में तो स्वयं वेदों को मूर्तिमान करा देते हैं:—

'होमसमय तनुधरि अनल, अति हित आहुति लीन्ह।
विप्र वेष धरि वेद सब, कहि विवाह विधि दीन्ह'॥

अग्निदेव इतना प्रज्वलित हुए मानो शरीर धारण कर हुत द्रव्यका भोजन कर रहे हैं और ऋत्विज ऐसे वेदपाठी थे मानों स्वयं चारो वेद सशरीर पधारे हैं।

कविराज ने सीता जी के मण्डप में पधारने पर 'द्यौः शान्ति' आदि मन्त्रों से शान्ति-पाठ कराया है:—

जब सिय मध्य मण्डपहिं आई। प्रमुदित शान्ति पढ़हिं मुनिराई॥

× × × × ×

पढ़हिं वेद मुनि मङ्गल वानी। गगन सुमन झरि अवसर जानी॥

× × × × ×

जयध्वनि वन्दी वेदध्वनि, मङ्गल गान निसान।
पुनि हर्षहिं वर्षहिं विबुध, सुरतरु सुमन सुजान॥

सारांश यह कि गोसाईं जी ने महापुरुषों के चरित्रोंको वेदों से एक इञ्च भी विचलित नहीं होने दिया है। अब देखिये वाल्मीकि के आश्रम में मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्र के दोनों पुत्रों (लव-कुश) के सभी संस्कारों के होने का उल्लेख गीतावली उत्तरकाण्ड छन्द ३५ में करते हैं:—

× × × × ×

'नामकरण सुअन्नप्राशन बेद बाँधी नीति।
समय सब ऋषिराज करत समाज साज समीति'॥

इसी प्रकार शिव-पार्वती के विवाह में भी गोसाईं जी ने वैदिक प्रणाली का पूर्ण अनुसरण किया है—

बेदी वेद विधान सँवारी। सुभग सुमङ्गल गावहिं नारी॥

× × × × ×

जस विवाह की विधि श्रुति गाई। महामुनिन सो सब करवाई॥

× × × × ×

वेद मंत्र मुनिवर उच्चरहीं। जय जय जय शङ्कर सुर करहीं॥

गोसाईंजी के एक एक शब्द से वेदों के प्रति असीम श्रद्धा पायी जाती है। आप वैदिक-प्रथा के परम प्रेमी प्रतीत होते हैं। देखिये 'राम-चरित-मानस' उत्तरकाण्ड में राम-राज्य-वर्णन में सगर्व उल्लेख करते हैं:—

× × × × ×

राम राज बैठे त्रयलोका। हर्षित भयेउ गयेउ सब शोका॥
बैर न करै काहु सन कोई। राम प्रताप विषमता खोई॥
वर्णाश्रम निज निज धरम, निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं, नहिं भय शोक न रोग॥
दैहिक दैविक भौतिक तापा। रामराज काहुहिं नहिं व्यापा॥
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती॥

गोस्वामी तुलसीदासजी की वेदों में कितनी श्रद्धा-भक्ति थी, इसके जानने के लिये अब अधिक प्रमाण न देकर 'दोहावली' का एक दोहा सं० ४६४ पर्याप्त होगा:—

अतुलित महिमा बेद की, तुलसी किये विचार।
जो निंदत निंदित भयो, विदित बुद्ध अवतार॥

'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्'

[२] उपनिषद् और तुलसीदास

उपनिषदें वेदों की शाखाएँ हैं। चारों वेदों का संक्षिप्त परिचय पीछे दिलाया जा चुका है। चारों वेदोंमें कर्म, उपासना, ज्ञान और विज्ञान इन चार विषयोंके अति संक्षेपसे बीजवत् वर्णन आये हैं। आवश्यकता पड़ने पर ऋषियों ने उपर्युक्त विषय-विधायक मन्त्रों और सूक्तों की बृहती व्याख्याएँ कीं। इन्हीं व्याख्याओं को वैदिक-भाषा में 'शाखा' नाम से उद्बोधित किया गया है। वेदों की जिन शाखाओं में 'उपासना' प्रतिपादन किया गया है उन शाखाओंको 'उपनिषद्' कहते हैं। उप + नि + षद् से यह शब्द संगठित हुआ है। 'उप' के अर्थ हैं समीप और 'नि' निश्चयात्मक अर्थ में आता है। ये दोनों ही उपसर्ग हैं। 'षद्' धातु 'षद् लृ विशरण गत्यवसादनेषु' अर्थात् विशरण, गति और अवसादन अर्थों में आता है। श्रीमच्छङ्कराचार्यजी महाराज मुण्डकोपनिषद्-भाष्य-भूमिका के पृष्ठ ४ पर 'उपनिषद्' शब्द की व्याख्या इस प्रकार करते हैं:—

'य इमां ब्रह्मविद्यामुपयन्त्यात्मभावेन श्रद्धाभक्तिपुरःसराः सन्तस्तेषां गर्भजन्मजरारोगाद्यनर्थ पूगं निशातयति परं वा ब्रह्म गमयत्यविद्यादि संसारकारणं चात्यन्तमवसादयति विनाशयतीत्युपनिषत् उप, नि, पूर्वस्य सदेरेवमर्थ स्मरणात्'।

अर्थात् जो कोई श्रद्धा और भक्ति से संयुक्त होकर अत्यन्त प्रेम के साथ इस ब्रह्मविद्या के समीप आते हैं उनके गर्भ, जन्म, जरा रोगादि अनर्थसमूह

को* यह शिथिल कर देती है अथवा उसको परब्रह्म में मिलाती है और उसके अविद्यादि संसारकारण को अत्यन्त विनष्ट कर देती है, इस हेतु इस ब्रह्मविद्या का नाम 'उपनिषद्' है।

पतञ्जलि मुनि-निर्मिति महाभाष्यानुसार यजुर्वेद की १००, सामवेद की १०००, ऋग्वेद की २१ और अथर्ववेद की ९ शाखाएँ हैं। इस परिगणन से चारों वेदों की कुल ११३० शाखाएँ हुईं, जैसा कहा है:—

× × × × ×

'एकशतमध्वर्युशाखाः सहस्रवर्त्मा सामवेद एकविंशतिधा बह्वृचा नवधाऽथर्वणो वेदेति।'

इन्हीं ११३० शाखाओं में से जो जो ब्रह्मविद्या का प्रतिपादन कर उपासना और मुक्ति का पथ प्रशस्त करती हैं उन्हीं को 'उपनिषद्' कहा जाता है।

यों तो ग्रन्थरचयिताओं और प्रेसपतियों की कृपा से आज सैकड़ों उपनिषदें मुद्रित मिलती हैं, परन्तु रामतापिनी, गोपालतापिनी आदि बहुतेरी उपनिषदें वेदाशयविरुद्ध, आधुनिक और साम्प्रदायिक भावों से भरी हैं। वैदिक उपनिषदें केवल ११ हैं, जिनके नाम नीचे दिये जाते हैं:—

ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक और श्वेताश्वतर।

कई आचार्यों ने केवल १० उपनिषदों को ही वैदिक माना है। यद्यपि श्वेताश्वतर की रचना अन्यों की अपेक्षा किञ्चित् आधुनिक प्रतीत होती है, तथापि ग्रन्थ साद्यन्त वैदिक भावाविष्ट, रुचिर और मनोहर है।

उपनिषदों का विषय ब्रह्मविद्या है। गोसाईंजी यतः अवतारवादी थे अतः उपनिषदों से अधिक सहायता न ले सके। उपनिषदों का जो विषय 'वेदान्त' से मिलता जुलता है उस पर आगे विचार किया जायगा। यहाँ केवल 'ब्रह्मविद्या' वाले भाग से तुलसीदास जी ने कितना लाभ उठाया है, यही दिखलाया जाता है। उपनिषद् का सिद्धान्त है कि परमात्मा:—

'अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति विश्वं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम्॥

—श्वेताश्वतर अ० ३ म० १९

अर्थात् परमेश्वर के हाथ नहीं परन्तु अपनी शक्ति से सबकी रचना और ग्रहण करता है, पग नहीं परन्तु व्यापक होने के कारण सब से अधिक वेगवान है, चक्षु का गोलक नहीं परन्तु सबको यथावत् देखता, श्रोत्र नहीं तथापि सबकी बातें

---

* अनर्थपूर्ण का अर्थ श्री आनन्दगिरि जी ने 'क्लेशसमूह' और निशातयति का अर्थ 'शिथिली करोति' लिखा है।

सुनता, अन्तःकरण नहीं परन्तु सब जगत् को जानता है और उसका पूर्णरूप से जानने वाला कोई नहीं। उसी को सनातन, सब से श्रेष्ठ सब में पूर्ण होने से पुरुष कहते हैं।

उपर्युक्त आशय को गोसाईंजी ने 'राम-चरित-मानस' में इस प्रकार अभिव्यक्त किया है:—

'बिनु पद चलै सुनै बिनु काना। कर बिनु कर्म करै बिधिनाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बाणी बक्ता बड़ जोगी॥
तनु बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहै घ्राण बिनु बास असेखा॥
अस सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी॥'

उपनिषदें ब्रह्म को सर्वव्यापी मानती हैं। वह सब वस्तुओं के बाहर भी है परन्तु बहिः प्रज्ञ ही नहीं है, वह सब वस्तुओं के भीतर भी है, परन्तु अन्तः प्रज्ञ ही नहीं है। इस विषय को 'माण्डूक्योपनिषत्' में इस प्रकार समझाया है:—

नान्तः प्रज्ञं न बहिः प्रज्ञं नो भयतः प्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञं। इत्यादि।

इस आशय की आभामात्र गोस्वामीजी ने 'कवितावली' उत्तरकाण्ड के ९४ वें छन्द के तृतीय चरण के उत्तरार्द्ध में लिया है:—

जे मदमार विकार भरे, ते अचार बिचार समीप न जाहीं।
है अभिमान तऊ मन में, जन भाषि हैं दूसरे दीनन पाहीं॥
जो कछु बात बनाइ कहौं, तुलसी तुम में तुमहूँ उर माहीं।
जानकिजीवन जानत हौ, हमहैं तुम्हरे तुम में सक नाहीं॥

अर्थात् तुम हमारे बाहर भीतर सर्वत्र ओत-प्रोत हो। ब्रह्म-पद-प्राप्ति अथवा मोक्ष, उपनिषदों का मुख्य विषय है। भारतवर्ष के आचार्यों में यद्यपि कई सूक्ष्म विषयों में मतभेद रहा है तथापि शङ्करस्वामी के अद्वैत सिद्धान्त की छाया लेकर उपनिषदों की शैली पर ही गोसाईं जी कैवल्य-स्वरूप-निरूपण इस प्रकार करते हैं:—

'सुनहु तात यह अकथ कहानी। समुझत बनै न जात बखानी॥
ईश्वर अंश जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी॥
सो मायावश भयउ गुसाँई। बँध्यो कीर मरकट की नाईं॥
जड़ चेतनहिं ग्रन्थि परि गई। यदपि मृषा छूटत कठिनई॥
जब तें जीव भयो संसारी। ग्रन्थि न छूट न होय सुखारी॥
श्रुति पुराण बहु कहेँ उपाई। छूट न अधिक अधिक अरुझाई॥
जीव हृदय तम मोह बिशेखी। ग्रन्थि छूटै किमि परै न देखी॥
अस संयोग ईश जब करई। तबहुँ कदाचित सो निरुअरई॥
सात्विक श्रद्धा धेनु सुहाई। जो हरि कृपा हृदय बस आई॥
जप तप व्रत यम नियम अपारा। जे श्रुति कह शुभ धर्म अचारा॥

सो तृण हरित चरै जब गाई। भाव वत्स शिशु पाय पन्हाई ॥
नोइनि वृत्ति पात्र विश्वासा। निर्मल मन अहीर निज दासा ॥
परम धर्ममय पय दुहि भाई। अवटै अनल अकाम बनाई ॥
तोष मरुत तब क्षमा जुड़ावै। धृति सम जावन देइ जमावै ॥
मुदिता मथै विचार मथानी। दम अधार रजु सत्य सुबानी ॥
तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता। विमल विराग सुभग सुपुनीता ॥

दोहा—योग अग्नि करि प्रकट तब, कर्म शुभाशुभ लाय।
बुद्धि सिरावै ज्ञान-घृत, ममता-मल जरि जाय ॥
तब विज्ञान निरूपिणी, बुद्धि विशद घृत पाय।
चित्त दिया भरि धरै दृढ़, समता दियटि बनाय ॥
तीनि अवस्था तीनि गुण, तेहि कपास तें काढ़ि।
तूल तुरीय सवाँरि पुनि, बाती करै सुगाढ़ि ॥

सोरठा—यहि बिधि लेसै दीप, तेज राशि विज्ञानमय।
जातहि जासु समीप, जरहिं मदादिक शलभ सब ॥

सोहमस्मि इति वृत्ति अखण्डा। दीप शिखा सोइ परम प्रचण्डा ॥
आतम अनुभव सुख स्वप्रकाशा। तब भवमूल भेद भ्रमनाशा ॥
प्रबल अविद्या कर परिवारा। मोह आदि तम मिटहिं अपारा ॥
तब सोइ बुद्धि पाय उजियारा। उर गृह बैठि ग्रन्थ निरवारा ॥
छोरन ग्रन्थि पाव जो सोई। तब यह जीव कृतारथ होई ॥
छोरत ग्रन्थि जानि खगराया। विघ्न अनेक करै तब माया ॥
ऋद्धि सिद्धि प्रेरै बहु भाई। बुद्धिहिं लोभ दिखावैं जाई ॥
कल बल छल करि जाय समीपा। अञ्चल बात बुझावै दीपा ॥
होय बुद्धि जो परम सयानी। तिन तन चितव न अनहित जानी ॥
जो तेहि विघ्न बुद्धि नहिं बाधी। तौ बहोरि सुर करहिं उपाधी ॥
इन्द्रिय द्वार झरोखा नाना। तहँ तहँ सुर बैठे करि थाना ॥
आवत देखहिं विषय बयारी। ते हठि देहिं कपाट उघारी ॥
जब सो प्रभञ्जन उर गृह जाई। तबहिं दीप विज्ञान बुझाई ॥
ग्रन्थि न छूटि मिटा सो प्रकासा। बुद्धि विकल भइ विषय बतासा ॥
इन्द्रिय सुरन न ज्ञान सुहाई। विषय भोग पर प्रीति सदाई ॥
विषय समीर बुद्धि कृत भोरी। तेहि विधि दीपको बार बहोरी ॥

तब फिर जीव बिविध विधि, पावै संसृति क्लेश।
हरि माया अति दुस्तर, तरि न जाय विहँगेश ॥
कहत कठिन समुझत कठिन, साधन कठिन विवेक।
होय घुणाक्षर न्याय जो, पुनि प्रत्यूह अनेक ॥

ज्ञान को पन्थ कृपाण के धारा। परत खगेश न लागै बारा ॥

जा निर्विघ्न पन्थ निर्वहई। सो कैवल्य परम पद लहई॥
अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। सन्त पुराण निगम आगम वद॥

ऊपर की समस्त आख्यायिका निम्न उपनिषद्-वाक्य की विस्तृत व्याख्या मात्र है:—

'भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे' ॥—मुण्डक।

——:o:——

[२] दर्शन और तुलसीदास।

दर्शन का अर्थ है देखना। जिन शास्त्रों के पठन से वास्तविक बोध की उत्पत्ति हो उन्हें दर्शन-शास्त्र कहते हैं। दर्शन दो प्रकार के हैं—(१) नास्तिक-दर्शन, (२) आस्तिक दर्शन। नास्तिक दर्शन तीन हैं—(१) चार्वाक, (२) बौद्ध और (३) जैन। चार्वाक दर्शन का मुख्य आचार्य बृहस्पति हुआ है। बौद्ध दर्शन के माध्यमिक, योगाचार, सौत्रान्तिक और वैभाषिक चार भेद हैं। जैन दर्शन को 'अर्हत' दर्शन भी कहते हैं। मुझे यहाँ इन उपर्युक्त नास्तिक दर्शनों के संबन्ध में कुछ वक्तव्य नहीं।

आस्तिक दर्शन छः हैं, जिनके नाम उनके रचयिताओं और प्रतिपादित विषयों के साथ लिखे जाते हैं:—

नाम दर्शन	रचयिता	विषय
न्याय	महर्षि गौतम	तर्क
वैशेषिक	,, कणाद	विज्ञान
सांख्य	,, कपिल	प्रकृति-पुरुष
योग	,, पतञ्जलि	उपासना
मीमांसा	,, जैमिनि	कर्म
वेदान्त	,, वेदव्यास	अध्यात्मज्ञान

गोसाईंजी ने अपने ग्रन्थों में केवल वेदान्त विषय को ही कहीं कहीं लिया है, अतः इसी विषय पर विचार करना सङ्गत है। वेदान्त शब्द का अर्थ है 'वेदानामन्तः'। वेदों का अन्त क्या है, यह विचार्य विषय है। वेद के अर्थ ज्ञान हैं, यह पूर्व लिखा जा चुका है। सांसारिक ज्ञान से परमेश्वर पर्यन्त का ज्ञान वेदों में परिपूर्ण है। परन्तु सब ज्ञानों के अन्त में आत्मज्ञान होता है। अतः वेदान्त उस निगूढ़ शास्त्र का नाम है जिसमें आत्मा और परमात्मा का विवेचन किया गया हो। कहा भी है:—

'शासनाद्वेदतत्त्वानां स तु वेदान्त उच्यते।'

वेदान्त दर्शन महर्षि वेदव्यास प्रणीत है, जिस पर भिन्न भिन्न आचार्य्यों ने भाष्य किये हैं। आचार्य्यों के मतभेद के कारण ही इस विषय के कई भेद हो गये हैं। किसी ने अपने भाष्य में अद्वैत, किसी ने विशिष्टाद्वैत और किसी ने द्वैतवाद का प्रचार किया। इन सिद्धान्तों का अति संक्षिप्त प्रदर्शन किया जाता है।

अद्वैत—मद्रराज्य-प्रान्तस्थ केरल देश-स्थित कालपी ग्राम में नम्बोदरी ब्राह्मण कुलोत्पन्न श्री शिवगुरु शर्मा के पुत्र श्री शङ्कराचार्य्य महाराज ने विक्रम-संवत् ८४५ में अपने जन्म से भारतवर्ष को गौरवास्पद किया, जिनकी सुख्याति समस्त जगती-तल पर प्रसरित है। अद्वैतवाद के प्रवर्त्तक आप ही हैं। आपके मतानुसार ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य कोई सत्तात्मक वस्तु है ही नहीं। जीव और जगत् मिथ्या एवं भ्रमात्मक हैं। इस सिद्धान्त के प्रचार में आचार्य्य को यह कठिनाई आई कि, जब 'ब्रह्म' के अतिरिक्त कोई सत्ता ही नहीं, तब भ्रम किसमें? इसी अड़चल में आकर आपने 'माया' की कल्पना की, जो युक्त्याभास (Fallacy) मात्र है। जब लोग माया का लक्षण पूछने लगे तो आपने उसे अनिर्वचनीय कह दिया।

विशिष्टाद्वैत—इस मत के मूल प्रवर्त्तक श्री रामानुजाचार्य्य हैं जिनका जन्म द्रविड़-देशस्थित 'भूतपुरी' नामक ग्राममें जिसे अब 'प्रेमधुल' कहते हैं, हुआ था। इनके विचारानुसार चित् और अचित् दो सत्तात्मक वस्तु हैं, जिनमें चित् के दो भेद हैं—(१) परमात्मा और (२) जीवात्मा। श्री रामानुज महाराज ब्रह्म को जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण मानते हैं, अर्थात् ब्रह्म ही अपने को जगत् रूप में प्रगट कर नाना प्रकार की लीला का विस्तार और संवरण करता है। वही जीव को भी स्व-सामर्थ्य से प्रगट करता है। सृष्टि-समाप्ति के अनन्तर मकड़ी के तन्तु की नाईं पुनः वही 'ब्रह्म' सब को समेट कर स्व-स्वरूप कर लेता है। श्री शङ्कर-मतानुयायी यादव नामक ब्राह्मण से रामानुजाचार्य ने वेदान्त पढ़ा। शंकर का मत अद्वैतवाद जब इनके मन में नहीं आया तब इनने विशिष्टाद्वैत की कल्पना की और तदनुसार ही वेदान्त और उपनिषदादि की व्याख्यायें कीं। आगे चल कर उन्हीं श्री रामानुज स्वामी ने वैष्णवसम्प्रदाय चलाया जिनके मतानुयायी आज चक्राङ्कित वा आचारी कहलाते हैं। यद्यपि इस सम्प्रदाय के आदि आचार्य्य या मूल प्रवर्तक शठकोपाचार्य्य थे परन्तु रामानुजस्वामी ने अपनी विशेष प्रतिभा और विद्या-बल से उस पर शास्त्रों और उपनिषदों की खोल चढ़ा कर नया जीवन प्रदान किया। इन्हीं रामानुज की शिष्य-परम्परा से कई पीढ़ी बाद श्री रामानन्द स्वामी प्रसिद्ध आचार्य्य हुए हैं जो वैष्णवों की रामानन्दी शाखा के प्रचारक थे। गोस्वामी तुलसीदास जी के गुरु श्री नरहरि दासजी इन्हीं रामानन्द जी के शिष्यों में से थे।

श्रीरामानुजाचार्य्य के बाद माध्व और वल्लभ इन दो आचार्यों ने किञ्चिद् भेदों के साथ स्व-कल्पित वैष्णवसम्प्रदाय चलाये जिनके अनेक अनुयायी विद्यमान हैं।

द्वैत—चित् और अचित् दो सत्ताओं को नित्य अनादि, अविनाशी मानने के कारण ही इस सिद्धान्त का नाम द्वैत-वाद है। चित् सत्ता में भी जीवात्मा और परमात्मा दोनों ही नित्य, अजर, अमर और ज्ञान-स्वरूप माने जाते हैं। फलतः ईश्वर, जीव और प्रकृति इन तीनों सत्ताओं को नित्य मानने के नाते यदि द्वैतवाद को त्रैत वाद भी कहें तो कोई हानि नहीं। इस सिद्धान्त के मानने वाले उन्नीसवीं शताब्दी के आचार्य्य महर्षि दयानन्द जी सरस्वती समझे जाते हैं, जिनका अनुयायी समष्टि आर्यसमाज है। महर्षि ने अपनी विद्या और युक्तियों से सिद्ध किया है कि वेदादि सच्छास्त्रों ने त्रैत-वाद का ही प्रतिपादन किया है। प्राचीन महर्षि और अर्वाचीन कुमारिल भट्ट एवं मण्डन मिश्रादि इसी पक्ष के पोषक थे।

उपर्युक्त सिद्धान्तों में कौन यथार्थ एवं कौन अयथार्थ है, इस पर विवेचन करने के लिये मेरे पास विद्या, स्थान और समय सबका सङ्कोच है, और उसकी आवश्यकता भी नहीं। यहाँ प्रकृत विषय तो यह है कि गोस्वामी तुलसीदास जी का दार्शनिक सिद्धान्त क्या था? सत्य बात तो यह है कि यह विषय बड़ा ही जटिल और दुरूह है। बड़े बड़े विद्यादिग्गजों की ऊहा काम नहीं आती। किसी विद्वान ने लेखनी उठाई तो सिद्ध कर दिया कि गोसाईं जी का दार्शनिक विचार 'अद्वैत' था और किसी ने सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि 'विशिष्टाद्वैत' था। ऐसी दशा में सामञ्जस्य वा समन्वय बड़ा ही कठिन हो जाता है।

मेरी धारणा है कि गोस्वामी तुलसीदास उपर्युक्त तीनों दार्शनिक विचारों में किसी एक के न तो अनन्य-अनुयायी थे और न किसी एक के अन्ध-भक्त ही थे। तीनों में कौन सत्य-सिद्धान्त है, इसका निश्चय एक सच्चे राम-भक्त की स्थिति में वे अनावश्यक समझते थे। देखिये, इस कथन की पुष्टि में मैं गोस्वामी जी के ग्रन्थ का ही प्रमाण देता हूँ। खोलिये विनय-पत्रिका, भजन संख्या १११ पढ़िये:—

'केसव कहि न जाय का कहिये।
देखत तव रचना विचित्र अति समुझि मनहिं मन रहिये॥
शून्य भीति पर चित्र रंग बहु, तनु बिनु लिखा चितेरे।
धोये मिटै न, मरै भीति दुख, पाइय एहि तनु हेरे॥
रविकर नीर बसै अति दारुण मकर रूप तेहि माहीं।
बदन हीन सो ग्रसै चराचर पान करन जे जाहीं॥
कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल करि माने।
तुलसिदास परिहरै तीनि भ्रम, तब आपन पहिचाने॥

आप ऊपर के पदों को विचार पूर्वक पढ़ जायँ। कवि ने माया (प्रकृति) के वैचित्र्य को दर्शाया है। जगत् की स्थिति है वा इसकी प्रतीति भ्रम से हो रही है, इसमें तीन मत हैं। त्रैतवादी इसे सत्य मानते हैं परन्तु नित्य सत्य नहीं,

प्रवाह से। हाँ, उनके मत में प्रकृति नित्य और अजा है। अद्वैतवादी जगत् को मिथ्या मानते और झट पट कह देते हैं कि 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या'। इनका कथन है कि मुकुर-प्रतिबिम्बवत् जगत् सत् और असत् से भिन्न मिथ्या है, क्योंकि उस प्रतिबिम्ब की स्थिति नहीं प्रत्युत प्रतीति है। अब रहे विशिष्टाद्वैतवादी। इनका मत है कि जगत् सदसत् दोनों ही है। इनके मत में ब्रह्म अभिन्ननिमित्तोपादान कारण है अतः वही जगद्रूप हो जाता है। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' इनका मुख्य-वाक्य (Motto) है। वर्त्तमान में जगत् की स्थिति है अतः सत्य है, परन्तु भूत में न थी और न भविष्य में रहेगी अतः असत्य भी कहना असंगत नहीं, इत्यादि।

अब गोस्वामी जी कहते हैं कि इन सब विचारों में पड़ना कि तीनों में कौन ठीक है 'भ्रम में पड़ना है'। इन सब विचारों को छोड़ कर 'आपन' पहचानो, अर्थात् इस बात का विचार करो कि जगत् में मेरा अपना क्या है? किस प्रकार अपना कल्याण होगा, सो सोचो।

मेरा तुलसीदास के ग्रन्थों के स्वाध्याय करने पर अभी तक का जो निश्चय है, वह यह कि गोसाईंजी की इन उपर्युक्त विचारों में से जहाँ जो युक्ति दृढ़ प्रतीत हुई वहाँ वैसा लिखते गये। आगे मैं कतिपय प्रमाण अपने कथन की पुष्टि में प्रस्तुत करता हूँ।

अद्वैतवाद—इस प्रसंग में यह दिखलाया जायगा कि गोसाईंजी के किन किन लेखों में अद्वैत-सिद्धान्त पाया जाता है। बालकाण्ड के प्रारम्भिक मंगला-चरण का षष्ठ श्लोकः—

'यन्मायावशवर्त्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादि देवा सुरा
यत्सत्वादमृषेव भाति सकलं रज्जौ यथाऽहेर्भ्रमः।
यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां
वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम्॥

अर्थात् यह समस्त दृश्य जगत्, ब्रह्मादि देवता और असुर सब जिसकी माया के वशीभूत हैं तथा जिसकी सत्ता से सम्पूर्ण जगत् इस प्रकार सत्य प्रतीत होता है जैसा भ्रम काल में रज्जु देख कर सर्प की प्रतीति हो जाती है एवं संसार-समुद्र को पार करने की इच्छा रखने वालों के लिये जिनके चरण ही नौकारूप हैं उन सब कारणों से परे प्रसिद्ध 'राम' नामक परमेश्वर हरि को मैं प्रणाम करता हूँ।

गोसाईंजी के उपर्युक्त लेख से स्पष्ट शङ्कराचार्य्य का अद्वैत एवं मायावाद प्रकट होता है। रज्जु और सर्प का दृष्टान्त भी गोसाईंजी ने वहीं से लिया है। शाङ्कर-सिद्धान्तानुसार ही जगत् मायाजन्य है, इसकी प्रतीति मिथ्या है—जगत् असत्य है। वह ब्रह्म की सत्ता से ही सत्तावान् प्रतीतमात्र होता है। पुनश्चः—

'झूठो सत्य जाहि बिनु जाने। जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचाने॥
जेहि जाने जग जाइ हेराई। जागे जथा सपन भ्रम जाई॥
बन्दौं बाल रूप सोइ रामू। सब बिधि सुलभ जपत जेहि नामू'॥

यहाँ भी रज्जु-भुजङ्ग और स्वप्नस्थ पदार्थों की प्रतीति का दृष्टान्त दिया है। यहाँ पर गोसाईंजी ने ऊपर की दो चौपाइयों से अद्वैत और मायावाद का चावल और तीसरी चौपाई से विशिष्टाद्वैत की दाल डाल कर आगे की इस

'मंगल भवन अमंगल हारी। द्रवो सो दशरथ अजिर बिहारी॥'

चौपाई द्वारा अवतारवाद के नाना प्रकार के मसालों से सुगन्धित सरस स्वादिष्ट खिचड़ी पकायी है। शाङ्कर मतानुसार अवतार त्रयकाल में असिद्ध है। अवतारवाद का प्रादुर्भाव ही विशिष्टाद्वैत से हुआ है। जहाँ अद्वैत वेदान्त के अनुसार सारा जगत् ही मिथ्या और स्वप्नवत् है तब 'बालरूप राम' सत्य कैसे? अतः तीसरी चौपाई में अवश्य विशिष्टाद्वैत का प्रतिपादन किया है, ऐसा मानना ही पड़ेगा। पुनश्चः—

जथा गगन घन पटल निहारी। झँपेउ भानु कहहिं कु विचारी॥
चितव जो लोचन अंगुलि लाये। प्रगट जुगल ससि तेहि के भाये॥
उमा राम-विषयक अस मोहा। नभ तम धूम धूरि जिमि सोहा॥
विषय करन सुर जीव समेता। सकल एक तें एक सचेता॥
सब कर परम प्रकासक जोई। राम अनादि अवधपति सोई॥
जगत प्रकास्य प्रकासक रामू। मायाधीस ग्यान-गुण-धामू॥
जासु सत्यता तें जड़ माया। भास सत्य इव मोह सहाया॥

रजत सीप महुँ भास जिमि, जथा भानु कर बारि।
जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ, भ्रम न सकै कोउ टारि॥

एहि विधि जग हरि आश्रित रहई। जदपि असत्य देत दुख अहई॥
ज्यों सपने सिर काटै कोई। बिनु जागे न दूरि दुख होई॥
जासु कृपा अस भ्रम मिटि जाई। गिरिजा सोइ कृपालु रघुराई॥
आदि अंत कोउ जासु न पावा। मति अनुमान निगम असगावा॥

इन पद्यों में भी गोसाईंजी ने द्वैताद्वैतवाद का ही निदर्शन किया है। बतलाते हैं कि जैसे आकाश में अन्धकार, धूम, धूलि अथवा मेघ-मण्डल आच्छादित हो जाने पर सूर्य का अस्तित्व नष्ट नहीं हो जाता, केवल हमारे दृष्टि-मार्ग में आवरण आ जाने से सूर्य दृष्टिगत नहीं होता, तदनुसार ही द्रष्टा जीवात्मा पर अविद्या का आवरण है अतः उसे ब्रह्म का साक्षात् नहीं होता। उसी आवरण के कारण यथार्थ ज्ञान न होने से जीव को ब्रह्म-विषयक विविध भ्रम उत्पन्न होने लगते हैं। मेरी धारणा है कि 'जगत प्रकाश्य प्रकाशक रामू' तक त्रैत-सिद्धि होती है। 'जासु सत्यता ते जड़ माया' से अद्वैतवाद प्रारम्भ होकर उद्धृत पद्यों तक समाप्त हुआ है। पुनश्चः—

बोले लखन मधुर मृदुबानी। ज्ञान बिराग भक्ति रस सानी ॥
कोउ न काहु दुख सुख कर दाता। निज कृत कर्म भोग सब भ्राता ॥
जोग वियोग भोग भल मन्दा। हित अनहित मध्यम भ्रम फन्दा ॥
जनम मरन जहँ लगि जग जालू। संपति बिपति करम अरु कालू ॥
धरनि धाम धन पुर परिवारू। स्वर्ग नरक जहँ लगि व्यवहारू ॥
देखिय सुनिय गुनिय मनमाहीं। मोह मूल परमारथ नाहीं ॥

सपने होइ भिखारि नृप, रंक नाकपति होइ।
जागे लाभ न हानि कछु, तिमि प्रपंच जग सोइ ॥

ऊपर के उद्धरण से आपको अत्यन्त स्पष्ट प्रतीत होगा कि गोसाईंजी ने जन्म, मरण, सम्पत्ति, विपत्ति, कर्म, काल, धरणी, धाम, धन, नगर, परिवार, स्वर्ग, नरक और संसार के अनेक अन्य व्यवहार तथा जो कुछ देखते, सुनते वा मन से विचार करते हैं, उन सब को मोह-मूलक या अज्ञान-जन्य बतलाया है। ऊपर के दोहे में तो स्वप्न का दृष्टान्त देकर 'अद्वैत-वाद' का विशाल-काय साइनबोर्ड ही लटका दिया है। पुनश्च:—

श्रुति सेतु पालक राम तुम जगदीस-माया जानकी।
जो सृजति जगपालति हरति रुख पाइ कृपानिधान की ॥
जो सहस सीस अहीस महिधर लषन सचराचर धनी।
सुरकाज धरि नरराज-तनु चले दलन खल निसिचर अनी ॥

सोरठा—रामसरूप तुम्हार, बचन अगोचर बुद्धि पर।
अबिगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह ॥

जग पेखन तुम देखनि हारे। बिधि-हरि-सम्भु नचावन हारे ॥
तेउ न जानहिं मरम तुम्हारा। और तुमहिं को जानन हारा ॥
सोइ जानै जेहि देहु जनाई। जानत तुमहिं तुमहिं होइ जाई ॥
तुमरिहि कृपा तुमहिं रघुनंदन। जानहिं भगत भगत-उर-चंदन ॥
चिदानंदमय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी ॥

× × × ×

पूछेहु मोहिं कि रहौं कहँ, मैं पूछत सकुचाउँ।
जहँ न होहु तहँ देहुँ कहि, तुमहिं देखावौं ठाउँ ॥

ऊपर के हरिगीतिका छन्द के प्रथम दो चरण अद्वैत एवं मायावाद के प्रतिपादक हैं, पुनः अवतार-वाद लिख कर पद्यान्त पर्यन्त अद्वैत कथन किया है। परन्तु एक बात विचारने योग्य यह है कि जब परमार्थ सत्ता में सभी ब्रह्म ही है तब ब्रह्मा, विष्णु और शिव ने क्या अपराध किया कि 'तेउ न जानहिं मरम तुम्हारा' कहा गया? 'हमारा'—'तुम्हारा' इत्यादि भेद शाङ्कर-सिद्धान्त में नहीं है। 'देह' को चिदानन्दमय मानना सिद्धान्तत्रय से असिद्ध है। जब जगत को दृश्य और राम

को द्रष्टा कहा तब प्रश्न उपस्थित होता है कि जगत मिथ्या होने से द्रष्टा ब्रह्म में भी अज्ञान वा भ्रम का अध्यारोप करना पड़ेगा? यदि कहो कि हाँ, तब ब्रह्म भी अज्ञानी हो जायगा। यदि कहा जाय कि 'ना' तब द्रष्टा और दृश्य संबन्ध संघटित नहीं होता। पुनश्च:—

'रामचरित-मानस' उत्तरकाण्ड में काकभुसुण्डि जी गरुड़ से कहते हैं कि:—

"मेरु शिखर बट छाया, मुनि लोमस आसीन।
देखि चरण सिर नायउँ, बचन कहेउँ अति दीन॥
सुनि मम बचन विनीत मृदु, मुनि कृपालु खगराज।
मोहि सादर बूझत भयउ, द्विज आयेउ केहि काज॥
तब मैं कहेउँ कृपानिधि, तुम सर्वज्ञ सुजान।
सगुण ब्रह्म अराधना, मोहिं कहहु भगवान॥

तब मुनीश रघुपति गुण गाथा। कहेउ कछुक सादर खगनाथा॥
ब्रह्मज्ञानरत मुनि विज्ञानी। मोहिं परम अधिकारी जानी॥
लागे करन ब्रह्म उपदेशा। अज अद्वैत अगुण हृदयेशा॥
अकल अनीह अनाम अरूपा। अनुभव गम्य अखण्ड अनूपा॥
मन गोतीत अमल अविनाशी। निर्विकार निरवधि सुखराशी॥
सो तैं तोहि ताहि नहिं भेदा। वारि वीचि इव गावहिं वेदा॥
विविध भाँति मोहिं मुनि समुझावा। निर्गुण मत मम हृदय न आवा॥
पुनि मैं कहेउँ नाय पद सीसा। सगुण उपासन कहहु मुनीसा॥
राम-भक्ति जल मम मन मीना। किमि बिलगाय मुनीश प्रवीना॥
सोइ उपदेश कहहु करि दाया। निज नयनन देखौं रघुराया॥
भरि लोचन बिलोकि अवधेशा। तब सुनिहौं निर्गुण उपदेशा॥
पुनि मुनि कह हरि कथा अनूपा। खंडि सगुणमत अगुण निरूपा॥
तब मैं निर्गुण मत करि दूरी। सगुण निरूपौं करि हठ भूरी॥
उत्तर प्रत्युत्तर मैं दीन्हा। मुनि उर भयउ क्रोध कर चीन्हा॥
सुनु प्रभु बहुत अवज्ञा किये। उपज क्रोध ज्ञानिहुँ के हिये॥
अति संघर्षण करै जो कोई। अनल प्रकट चन्दन ते होई॥

बारहिं बार सकोप मुनि, करहिं निरूपण ज्ञान।
मैं अपने मन बैठि तब, करौं बिबिध अनुमान॥
क्रोध कि द्वैतक बुद्धि बिनु, द्वैत कि बिनु अज्ञान।
मायावश परिछिन्न जड़, जीव कि ईश समान॥

लोमश मुनि बार बार निर्गुण ईश्वर की उपासना का निरूपण कर जीव-ब्रह्म की एकता का प्रतिपादन करते थे, परन्तु काकराज ने स्पष्ट कहा कि मेरे मन में उनकी बातें जँचती नहीं थीं क्योंकि प्रकृति का अनुगामी, अल्पज्ञ और परिछिन्न जीव, ईश्वर के समान किस प्रकार है? अस्तु।

विशिष्टाद्वैत—आगे के उद्धरणों से, गोसाईं जी ने विशिष्टाद्वैत का प्रतिपादन किया है, इसका दिग्दर्शन कराया जाता है। यथा:—

जड़ चेतन जग जीव जे, सकल राममय जानि।
बन्दौं सबके पदकमल, सदा जोरि युग पानि॥
देव दनुज नर नाग खग, प्रेत पितर गंधर्व।
बन्दौ किन्नर रजनिचर, कृपा करहु अब सर्व॥

आकर चारि लाख चौरासी। जाति जीव नभ जल थल बासी॥
सियाराममय सब जग जानी। करौं प्रणाम जोरि युगपानी॥

वास्तव में सिद्धान्त-त्रय में भेद करना बड़ा ही कठिन है। विशिष्टाद्वैतमत से ही अवतारवाद का आविर्भाव हुआ है। ब्रह्म को निमित्तोपादान कारण माना है अतः जगत्, ब्रह्म स्वरूप ही है। इसी मत को तुलसीदास जी उपर्युक्त पद्यों में कथन करते हैं। अब जगत्-ब्रह्म अथवा प्रकृति-पुरुष की अभिन्नता का पुनः स्पष्ट प्रतिपादन करते हैं:—

गिरा अर्थ जल वीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न।
बन्दौं सीताराम पद, जिनहिं परम प्रिय खिन्न॥

चतुर्थ पद पद्य-पूरक मात्र है, शेष तीन पद सिद्धान्त सम्बन्धी हैं। गिरा (वाणी) चार प्रकार की होती है—१ परा, २ पश्यन्ति, ३ मध्यमा और ४ वैखरी। यहाँ मध्यमा वाणी से ही तात्पर्य्य है। वैखरी दशा में प्रगट होने के पूर्व वाणी की मध्यमा गति रहती है, इस अवस्था में जो शब्द हमें बोलना है उसका मस्तिष्क में तदाकार चित्र खचित हो जाता है। जैसे 'कुर्सी' शब्द का उच्चारण करना है तो वैखरी (बोलने की) दशा का पूर्व जब वाणी की मध्यमा दशा रहती है उस समय कुर्सी का आकार मस्तिष्क में समुत्पन्न हो जाता है। गोसाईंजी कहते हैं कि इस मध्यमा गिरा और अर्थ (पदार्थ) में जिस प्रकार भेदाभेद संबन्ध है एवं जल-वीचि में भी भेद और अभेद है तदनुसार ही प्रकृति-पुरुष वा माया-ब्रह्म वा सीता-राम में 'कहियत भिन्न न भिन्न' का संबन्ध है। कवि-कुल-कुमुद-कलाधर कालिदास ने भी पार्वती और शिव के संबन्ध में 'वागर्थाविव संपृक्तौ' पद ही प्रयुक्त किया है। पुनश्च:—

नाम रूप दोउ ईश उपाधी। अकथ अनादि सु सामुझि साधी॥

अर्थात् ईश्वर के नाम और रूप दोनों ही ईश्वर हैं तथा उसकी उपाधि (माया वा प्रकृति) अकथ और अनादि है, अतः सद्बुद्धि से जानी जाती है। पुनश्च:—

अगुण सगुण दोउ ब्रह्म स्वरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा॥

× × ×

एक दारु गत देखिय एकू। पावक युग सम ब्रह्म बिबेकू॥

× × ×

जो गुन रहित सगुन सो कैसे। जल हिम उपल बिलग नहिं जैसे॥

गोसाईंजी सगुण शब्द को साकार अर्थ का पर्यायवाचक समझ कर निराकार-साकार-ऐक्य कथन करते हैं। आकार प्रकृति का कार्यमात्र है। उपर्युक्त पदों में निराकार और साकार की एकता का प्रतिपादन करते हुए उपादान कारण जल-हिम-उपल की अभिन्नता से तुलना देकर युक्त्याभास से काम निकाल लिया है। चिति सत्ताका साकारत्व दिखलाते तब न दृष्टान्त और दार्ष्टान्त की समता होती? जो हो; उक्त पदों से विशिष्टाद्वैत तो अवश्य सिद्ध किया गया है। पुनश्चः—

व्यापि रहेउ संसार महँ, माया-कटक प्रचंड।
सेनापति कामादि भट, दंभ कपट पाखंड॥
सो दासी रघुवीर की, समुझे मिथ्या सोपि।
छुटै न राम-कृपा बिनु, नाथ कहौं पद रोपि॥

व्यापक एक अखण्ड अनन्ता। अखिल अमोघ शक्ति भगवन्ता॥
सोइ सच्चिदानन्दघन रामा। अज विग्यानरूप बलधामा॥
अगुन अदभ्र गिरा गोतीता। समदरसी अनवद्य अजीता॥
निर्मल निराकार निर्मोहा। नित्य निरञ्जन सुख संदोहा॥

भगत हेतु भगवान प्रभु, राम धरेउ तनु भूप।
किए चरित पावन परम, प्राकृत-नर-अनुरूप॥
जथा अनेकन वेष धरि, नृत्य करै नट कोइ।
सोइ सोइ भाव देखावै, आपनु होइ न सोइ॥

ऊपर के पद्यों में माया को राम की दासी कहते हुए रामभजन और राम-कृपा से ही उससे पृथक होने की बात कह कर ब्रह्म की रामरूप में साकार होने की बात कही है, अतः विशिष्टाद्वैत की ही सिद्धि होती है। पुनश्चः—

'मम माया संभव संसारा। जीव चराचर बिबिध प्रकारा॥

में जीव तक की उत्पत्ति मान ली है। चेत् जीव शब्द से यहाँ चित् सत्तात्मक भाव न लेकर सामान्य प्राणिवाचक समझें तौभी विशिष्टाद्वैत की सिद्धि उक्त पद से अनिवार्य है, क्योंकि चराचर संसार को मायाजन्य मान कर उसकी स्थिति तो स्वीकार करते हैं। पीछे कहा जा चुका है कि विशिष्टाद्वैत मत में ब्रह्म ही जगत् रूप में परिणत होता, नाना प्रकार के प्राणियों की उत्पत्ति करता, एक से अनेक रूप होता और जीव को भी पैदा करता है। जब जीव को ब्रह्म का यथावत् बोध हो जाता है तब वह तदाकार होकर ब्रह्म में मिल कर ब्रह्मत्व प्राप्त कर लेता है। देखिये विनय-पत्रिका, भजन-संख्या १३६:—

'जिव जबते हरिते बिलगान्यो। तबते देह गेह निज जान्यो॥
माया बस स्वरूप बिसरायो। तेहि भ्रमते दारुन दुख पायो॥
पायो जो दारुन दुसह दुख, सुखलेस सपनेहुँ नहिं मिल्यौ।
भवसूल सोक अनेक जेहि तेहि, पंथ तू हठि हठि चल्यौ॥
बहु जोति जन्म जरा बिपति, मतिमन्द हरि जान्यौ नहीं।
श्री राम बिनु विश्राम मूढ़, बिचारु लखि पायो कहीं॥१॥
आनँद सिन्धु मध्य तव बासा। बिन जाने कस मरसि पियासा॥
मृग भ्रम बारि सत्य जिय जानी। तहँ तू मगन भयो सुख मानी॥
तहँ मगन मज्जसि पान करि, त्रयकाल जल नाहीं जहाँ।
निज सहज अनुभव रूप तव, खल भूलि चलि आयो तहाँ॥
निर्मल निरञ्जन निर्विकार, उदार सुख तैं परिहर्यौ।
निःकाज राज बिहाय नृप इव, स्वप्न काराग्रह पर्यौ॥२॥
तैं निज कर्म डोरि दृढ़ कीन्हीं। अपने करनि गाँठि गहि दीन्हीं॥
ताते परबस पर्यौ अभागे। ता फल गर्भ बास दुख आगे॥

× × × × ×

सेवत साधु द्वैत भय भागे। श्रीरघुवीर चरन लय लागे॥
देह जनित विकार सब त्यागे। तब फिरि निज स्वरूप अनुरागे॥
अनुराग सो निज रूप जो, जगते बिलच्छन देखिये।
सन्तोष सम सीतल सदा, दम देहवन्त न लेखिये॥
निर्मल निरामय एक रस, तेहि हर्ष शोक न व्यापई।
त्रैलोक्य-पावन सो सदा, जाकी दसा ऐसी भई॥११॥

ऊपर के पद्यों में 'जिव जब ते हरिते बिलगान्यो' विचारणीय पद है। इनके कई पदों से द्वैतवाद की सिद्धि भी हो सकती थी, परन्तु 'सेवत साधु द्वैत भय भागे' से अद्वैत दिखला कर गोसाईंजी ने 'श्रीरघुबीर चरन लय लागे' पद से समस्त पद्य पर 'विशिष्टाद्वैत' की मुहर लगा दी है।

विनयपत्रिका, भजन-संख्या ९१ में लिखते हैं:—

नाचत ही निसि दिवस मर्यौ।
तब ही ते न भयो हरि थिर जबते जिव नाम धर्यौ॥

इस पद्य में 'जबते जिव नाम धर्यौ' पद अत्यन्त शोचनीय है।

'राम-चरित-मानस' में श्री रामचन्द्रजी के प्रति लिखा है—

चिदानन्द मय देह तुम्हारी। विगत विकार जान अधिकारी॥

यह पद अत्यन्त विचारणीय है। 'देह' को चिदानन्दमय मानना यह विशिष्टाद्वैत में ही हो सकता है जहाँ 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' की घोषणा है।

इसी प्रकार अन्यान्य प्रमाण भी विशिष्टाद्वैत के दिये जा सकते हैं। आगे कुछ प्रमाण द्वैत-सिद्धि वा त्रैत-वाद सम्बन्धी दिये जाते हैं।

त्रैत-वाद—ईश्वर, जीव और प्रकृति इन तीनों को अनादि मानना ही त्रैत-वाद है। यद्यपि गोसाईंजी का निज् मत तो 'विशिष्टाद्वैत' ही था तथापि उनके कतिपय लेखों से त्रैत-वाद भी टपकता है, जिन्हें तोड़ मरोड़ करने से विशिष्टाद्वैत भी निकाला जा सकता है, परन्तु किसी कवि ने ठीक कहा है कि 'जोड़ जाड़ तोड़ ताड़ शब्द को न कीजिये। जामें रस बना रहे सोई अर्थ लीजिये'। 'रामचरित-मानस' आरण्यकाण्ड देखिये, जहाँ लक्ष्मण जी ने मर्यादापुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी महाराज से माया, जीव और ईश्वर के लक्षण पूछे हैं:—

× × × ×

कहहु ज्ञान विराग अरु माया। कहहु सो भक्ति करहु जेहि दाया॥
ईश्वर जीवहिं भेद प्रभु, सकल कहहु समुझाइ।
जाते होइ चरण रति, शोक मोह भ्रम जाइ॥
थोरे महँ सब कहौं बुझाई। सुनहु तात मति मन चितलाई॥
मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहि वश कीन्हें जीव निकाया॥
गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई॥
ताकर भेद सुनहु तुम सोऊ। विद्या अपर अविद्या दोऊ॥
एक दुष्ट अतिशय दुख रूपा। जा वश जीव परा भवकूपा॥
एक रचै जग गुण वश जाके। प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताके॥
ज्ञान मान जहँ एकौ नाहीं। देखत ब्रह्म रूप सब माहीं॥
कहिय तात सो परम विरागी। तृण सम सिद्धि तीन गुन त्यागी॥
माया ईशन आपु कहँ, जानि कहै सो जीव।
बन्ध मोक्षप्रद सर्व पर, माया प्रेरक शीव॥

पहले कवि ने माया का स्वरूप-निरूपण करते हुए बतलाया है कि मैं—मेरा और तुम—तुम्हारा ये सब व्यवहार माया-जन्य हैं। इन्द्रियाँ, इन्द्रियजन्य शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध अथवा जहाँ तक मन की गति है, वहाँ तक माया ही माया अर्थात् प्रकृति ही प्रकृति है। वह माया (प्रकृति) दो प्रकार की है—(१) विद्या (यथार्थज्ञान), (२) अविद्या (अयथार्थज्ञान)। पुनः अविद्या रूप जो माया है उसके दो भेद कहते हैं। पहली आवरण शक्ति जो अत्यन्त दुःखस्वरूपा है। इसके वशीभूत होकर जीवात्मा अज्ञानान्धकार से आवृत्त हो आवागमन के कुचक्र में पड़ा है। दूसरी विक्षेप शक्ति है, जिसके अधीन सत्व, रज और तम ये तीन गुण हैं, परन्तु वह जड़ होने के कारण सृष्टि रचने में स्वयं समर्थ नहीं, परमात्मा जब प्रेरणा करता अर्थात् उसमें गति (कम्पन) देता है, तब जगद्रचनादि क्रियाएँ होती हैं। पुनः

बतलाते हैं कि विद्या का स्वरूप 'ज्ञान मान' है अर्थात् जहाँ विद्या है वहाँ उल्लिखित दोनों अविद्याओं में से एक भी नहीं रहती और वहीं पर ब्रह्म की एक रसता वा व्यापकता दीख पड़ती है। परम बिरागी वही मनुष्य है जो नाना प्रकार की सिद्धियों वा तीनों गुणात्मक भोग को तृणवत् समझ कर त्याग देता है। अब आगे के दोहे के प्रथम के दो पदों में जीव का लक्षण कथन करते हैं कि जो अपने को 'माया' और 'ईश्वर' इन दोनों से पृथक् जानता और कहता है वह तो जीव है अथवा द्वितीय दो पदों में स्पष्ट उल्लेख कर दिया है कि जीव को बन्ध-मोक्ष देने वाला सब से परे (सर्वोपरि) माया का प्रेरक जो है वह शीव (शिव) ईश्वर है। यहाँ गोसाईंजी के लेख से विस्पष्ट रूप से त्रैत-सिद्धि होती है। पुनश्चः—

व्यापक एक ब्रह्म अबिनासी। सत चेतन घन आनँदरासी॥
अस प्रभु हृदय अछत अबिकारी। सकल जीव जग दीन दुखारी॥

× × × × ×

राम सच्चिदानन्द दिनेसा। नहिं तहँ मोह निसा अवलेसा॥
सहज प्रकाश रूप भगवाना। नहिं तहँ पुनि विज्ञान बिहाना॥
हर्ष विषाद ज्ञान अज्ञाना। जीव धर्म अहमिति अभिमाना॥

× × × × ×

ज्ञान अखण्ड एक सीताबर। माया बस्य जीव सचराचर॥
जो सबके रह ज्ञान एक रस। ईश्वर जीवहिं भेद कहहु कस॥
माया वशी जीव अभिमानी। ईश बस्य माया गुनखानी॥
परबस जीव स्वबस भगवन्ता। जीव अनेक एक श्रीकन्ता॥

ऊपर के सभी उद्धरण अत्यन्त सुस्पष्ट, सरल और त्रैत सिद्धान्त के परिपोषक हैं। पुनश्चः—

उभय मध्य सिय सोहति कैसी। ब्रह्म जीव बिच माया जैसी॥

इस पद्य में तो प्रत्यक्ष ही ब्रह्म, जीव और माया का त्रैत कथन करके उपमा दी गयी है। पुनश्चः—

मोह निसा सब सोवन हारा। देखहिं सपन अनेक प्रकारा॥
एहि जग जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच वियोगी॥
जानिय तबहिं जीव जग जागा। जब सब विषय बिलास बिरागा॥

सद्ग्रन्थों में अज्ञानावस्था को स्वप्न और ज्ञानावस्था को जागृत कहा गया है। बतलाते हैं कि योगी लोग इस संसाररूपी रात्रि में सजग रहते और अज्ञानी सोकर नाना प्रकार के स्वप्नजनित कष्ट भोगते हैं। जब जीव सब प्रकार के विषयों और विलासों से विरक्त हो जाय तो जानिये कि जगा हुआ है। इसी आशय को श्रीमद्भगवद्गीता में कृष्णजी ने अर्जुन को समझाया है:—

'या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥"

इसी आशयको परिपुष्ट करते हुए गोसाईं तुलसीदासजी 'विनय-पत्रिका' भजन सं० ७३ में इस प्रकार लिखते हैं:—

जागु जागु जीव जड़ जोहै जग जामिनी । देह गेह नेह जानु जैसे घन-दामिनी ॥
सोवत सपने रहे संसृति सन्ताप रे । बूड़ो मृगबारि, खायो जेंवरी को सांपरे ॥
कहै वेद बुध तूतौ बूझि मन माँहिरे । दोष दुख सपने के जागे ही पै जाँहिरे ॥
तुलसी जागे ते जाइ ताप तिहुँ ताय रे । रामनाम सुचि रुचि सहज, सुभायरे ॥

इन भजनों में जीव को उपदेश दिया है कि इस संसार से विरक्त रहने में ही कल्याण है । जिस प्रकार स्वप्नावस्था के सभी पदार्थ असत्य हैं वैसे ही यह शरीर, गृह, कुटुम्बी एवं समस्त जगत् ही अनित्य हैं, अतः भगवान का भजन ही श्रेयस्कर जानो । मृगबारि तथा रज्जु-सर्प से कवि का भाव यह है कि ये मिथ्या और कष्टदायक हैं, सूर्य-रश्मि में जिस प्रकार जल अथ च रज्जु में सर्प का अत्यन्ताभाव है तदनुसार ही जगत् में शान्ति-सुख का अभाव जानो ।

भजन-संख्या १०५ में संसार की तुलना रात्रि से ही की है:—

अबलौं नसानी अब न नसैहों ।
रामकृपा भवनिसा सिरानी जागे फिरि न डसैहों ॥

× × × ×

पुनः भजन-संख्या ११९ के अधोलिखित पद से जीव का भिन्नत्व और संसार का रात्रिवत् रूपक सिद्ध है:—

× × × ×

जेहि निसि सकल जीव सूतहिं तव कृपापात्र जन जागै ।
निज करनी बिपरीत देखि मोहि समुझि महा भय लागै ॥

× × × ×

'रामचरित-मानस' अयोध्याकाण्ड के निम्न लेख से जीवेश्वर के भिन्न भिन्न अस्तित्व की सिद्धि होती है:—

× × × ×

विस्मय हर्ष रहित रघुराऊ । तुम जानहु रघुबीर सुभाऊ ॥
जीव कर्मवश दुख सुख भागी । जाइय अवध देव हितलागी ॥

× × × ×

तुलसी-सतसई में तो अत्यन्त विशद रीति से गोस्वामी जी ने द्वैत-सिद्धान्त की पुष्टि की है, वहाँ तो स्पष्टतया आपने इस बात का निदर्शन किया है कि मुक्ति में भी जीवात्मा ब्रह्म में मिल नहीं जाता, प्रत्युत स्वस्वरूप में स्थित रह कर मुक्ति-सुख की उपलब्धि करता है:—

यथा सकल आपि जात अप, रविमंडल के माहिं ।
मिलत तथा जिव रामपद, होत तहाँ लय नाहिं ॥
कर्म कोष सँग लै गयो, तुलसी अपनी बानि ।
जहाँ जाय बिलसै तहाँ, परै कहाँ पहिचानि ॥

ऊपर के पद्य में स्पष्ट उल्लेख किया है कि मुक्ति में भी जीवात्मा का ब्रह्म में लय नहीं होता, अपने स्वरूप में स्थित रहता है । विशुद्ध ज्ञान से मुक्ति होती है, परन्तु काल पाकर उसकी अवधि समाप्त होने पर पिछले शुभ कर्मों की प्रेरणा से पुनः शरीर धारण कर कर्मानुसार विविध योनियों को प्राप्त होता है । आगे उदाहरण भी देते हैं—

ज्यों धरनी महँ हेतु सब, रहत यथा धरि देह ।
त्यों तुलसी लै राम महँ, मिलत कबहुँ नहिं एह ॥

जिस प्रकार यावत् मूल वृक्षादि और रत्न-स्वर्णादि का हेतु पृथिवी ही है । परन्तु उन्हें पृथिवी में डालने से भी तदाकार नहीं हो जाते अर्थात् अपने स्वरूप में ही रहते हैं उसी प्रकार सब जीवात्मा मुक्ति में भी ब्रह्म में लय नहीं होते । गोस्वामीजी मुक्तावस्था में जीव के कर्मकोष (अन्तःकरण) का अत्यन्ताभाव नहीं मानते:—

कर्म मिटाये मिटत नहिं, तुलसी किये विचार ।
करतब ही को फेर है, या बिधि सार असार ॥
एक किये हो दूसरो, बहुरि तीसरो अंग ।
तुलसी कैसहु ना नसै, अतिशय कर्म तरंग ॥
इन दोउन ते रहित भो, कोउ न राम तजि आन ।
तुलसी यह गति जानिहैं, कोउ कोउ संत सुजान ॥

ऊपर के पद्यों में कविने स्पष्ट किया है कि केवल ब्रह्म ही कर्म और उसके फल से बहिः है, जीवात्मा दोनों में ही बद्ध है । और भी:—

संतन को लय अमि सदन, समुझहिं सुगति प्रवीन ।
कर्म विपर्य्यय कबहुँ नहिं, सदा राम रस लीन ॥

अर्थात् महापुरुष मुक्ति को प्राप्त कर अमरपद की उपलब्धि करते हैं । आवागमन के चक्र से रहित होना ही अमृतत्व है, जैसा वेद में कहा है 'यस्यच्छायाऽमृतं' ।

रामचरित-मानस में भी ऐसा ही कहा है:—

मम दर्शन फल परम अनूपा । जीव पाव निज सहज स्वरूपा ॥

कर्म और पुनर्जन्म के सिद्धान्त को गोस्वामी जी ने विनय-पत्रिका के एक भजन में इस प्रकार अभिव्यक्त किया है:—

बिटप मध्य पुत्रिका सूत्र महँ, कञ्चुकि बिनहिं बनाये।
मनमहँ तथा लीन नाना तनु, प्रगटत अवसर पाये॥

विनय-पत्रिका के भजन-संख्या ७९ में गोस्वामी जी ने अत्यन्त विशद रीति से ब्रह्म-जीव का भेद स्वीकार किया है:—

तू दयालु, दीन हौं, तू दानी, हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुंज-हारी॥
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसो?
मो समान आरत नहिं, आरति-हर तोसो॥
ब्रह्म तू, हौं जीव, तू ठाकुर हौं चेरो।
तात मातु गुरु सखा, तू सब विधि हित मेरो॥
तोहि मोहि नातो, अनेक मानिये जो भावै।
ज्यों त्यों तुलसी कृपालु, चरन सरन पावै॥

फलतः गोस्वामी जी के ग्रन्थों से कहीं अद्वैतवाद, कहीं विशिष्टाद्वैतवाद और कहीं द्वैतवाद की सिद्धि होती है। कुछ खैंचतान करने पर सिद्धान्त-त्रय का विशिष्टाद्वैत में समावेश हो सकता है, परन्तु वैसा करना मेरे विचारानुसार महादोष है। पाठक विचार करें।

[४] पुराण और तुलसीदास

संस्कृत-साहित्य में अष्टादश पुराण माने गये हैं, जिनके नाम नीचे दिये हैं:—

अष्टादश पुराणानि; वाचस्पतौ

ब्राह्मं[१] पाद्मं[२] वैष्णवं[3] च शैवं[४] भागवतं[५] तथा।
तथाऽन्यन्नारदीयं[६] च मार्कण्डेयं[७] च सप्तमम्॥
आग्नेयमष्टमं[८] प्रोक्तं भविष्यन्नवमं[९] तथा।
दशमं ब्रह्मवैवर्तं[१०] लिङ्गमेकादशं[११] तथा॥
वाराहं[१२] द्वादशं प्रोक्तं स्कान्दं[१3] चात्र त्रयोदशम्।
चतुर्दशं वामनं[१४] च कौर्मं[१५] पञ्चदशं तथा॥
मात्स्यं[१६] च गारुडं[१७] चैव ब्रह्माण्डं[१८] मष्टादशं तथा।

इतना ही नहीं, निम्नलिखित अठारह ही उपपुराण भी लिखे गये हैं:—

अष्टादशोपपुराणानि; कूर्मपुराणे

आद्यं सनत्कुमारोक्तं[१] नारसिंह[२] मतः परम्।
तृतीयं नारदं[3] प्रोक्तं कुमारेणतु भाषितम्॥

चतुर्थं शिवधर्माख्यं[४] साक्षान्नन्दीश भाषितम् ।
दुर्वाससोक्त[५] माश्चर्यं नारदोक्तमतः[६] परम् ॥
कापिलं[७] मानवं[८] चैव तथैवो[९] शनसेरितम् ।
ब्रह्माण्डं[१०] वारुणं[११] चाथ कालिका[१२] ह्वयमेवच ॥
माहेश्वरं[१३] तथा साम्बं[१४] सौरं[१५] सर्वार्थं सञ्चयम् ।
पराशरोक्तं[१६] प्रवरं तथा भागवत[१७] द्वयम्[१८] ॥

इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा और नाराशंसी ये पाँचो शब्द प्रायः पर्याय-वाची हैं । पुराणों के प्रतिपाद्य विषय भी पाँच ही हैं ।—(१) किसी महान पुरुष की वंशावली का वर्णन इतिहास कहलाता है, (२) जगत् की उत्पत्ति का वर्णन-भाग पुराण कहलाता है, (३) वैदिक शब्दों के अर्थों के निरूपक भाग को कल्प कहते हैं, (४) किसी दृष्टान्त-दार्ष्टान्त की शैली में कथा वा संवाद कथन करना गाथा है और (५) मानवीय चरित्र की प्रशंसा वा अप्रशंसा का भाग नाराशंसी कहा जाता है । वैदिक-काल में इन शब्द-पञ्च से ब्राह्मण ग्रन्थों का बोध होता था, किन्तु काल पाकर उनके लुप्तप्राय होने पर उल्लिखित अष्टादश पुराणों और उप-पुराणोंकी रचना हुई । कहा जाता है कि अष्टादश पुराण वेद-व्यास के बनाये हैं । शारीरिक सूत्र, योगसूत्र-भाष्य और महाभारत के देखने से विदित है कि व्यास जी परम विद्वान् पुरुष और आत्मविद्या के हस्तामलकवत् ज्ञाता थे । अष्टादश पुराण व्यास जी के बनाये हों अथवा किसी के, इसमें सन्देह नहीं कि काल पाकर मूल लेखमें इनमें सृष्टि-नियमविरुद्ध असम्भव बातें, ऊटपटाँग कथाएँ, साम्प्रदायिक पारस्परिक द्वेषपूर्ण गाथाएँ मिलायी गयीं । पुराणों में भली से भली और बहुतेरी निकम्मी से निकम्मी बातें भरी हैं । मांस-भक्षण-निषेध, मांस-भक्षण की विधि, मद्यपान की विधि तथा निषेध और सहस्रशः परस्पर-विरुद्ध, विधि-निषेधों के अथाह समुद्र ही पुराणोपपुराण हैं । पुराणों में अबतक नये नये श्लोक मिलते जाते हैं । मुरादाबादनिवासी स्वर्गीय पण्डित ज्वाला प्रसाद जी मिश्र द्वारा लिखित पुस्तक को अवलोकन कीजिये तो आप को स्पष्ट हो जायगा ।

यद्यपि गोस्वामी जी ने स्वयं 'विनय-पत्रिका' में

'नाना मति सुनि देखि पुराननि जहाँ तहाँ झगरो सो ।
गुरु कह्यौ राम भगति नीकी मोहि लगत राज डगरो सो ॥'

लिखा है, तथापि विवश होकर आप को भी कथाभागात्मक रचना और साम्प्रदायिक भावों का विशेष भाग पुराणों से लेना पड़ा । गोसाईं जी प्रचुर पौराणिक काल में उत्पन्न हुए थे, अतः उनके विचारों पर पुराणों के प्रभाव का पड़ना आश्चर्योत्पादक नहीं । हम संक्षेप से कुछ नीचे की पङ्क्तियों में इस बात का दिग्दर्शन कराते हैं ।

[१] वैदिक भाषा में ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, शिव, गणेश, इन्द्र, आदित्य, वरुण, अग्नि, यम, मातरिश्वा और अर्यमादि एक ही परमात्मा के—भिन्न भिन्न गुणों के कारण—अनेक नाम मात्र माने जाते थे, जिसके निम्नलिखित प्रमाण हैं:—

एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम् ।
इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम् ॥

यह मनुस्मृति अध्याय १२ का १२३वाँ श्लोक है। इसका अर्थ यह है कि प्रकाश स्वरूप होने से 'अग्नि' विज्ञान रूप होने से 'मनु' सब का पालन करने से 'प्रजापति', ऐश्वर्यशाली होने से 'इन्द्र', सब का जीवन मूल होने से 'प्राण', और सर्वत्र व्यापकःहोने और सब से बृहत् होने के कारण नित्य परमात्मा को 'ब्रह्म' कहते हैं। पुनश्च:—

स ब्रह्मा स विष्णुः स रुद्रः स शिवः सोऽक्षरस्य परमः स्वराट् ।
स इन्द्रः स कालाग्निः स चन्द्रमाः ॥

यह कैवल्योपनिषद् का वचन है। यहाँ अत्यन्त विशद और स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि वही परमात्मा ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, शिव, अक्षर, स्वराट्, इन्द्र, कालाग्नि और चन्द्रमा है। अन्यच्च:—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यस्स सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वान माहुः ॥

यह ऋग्वेद मण्डल १ अनुवाक २२ सूक्त १६४ का ४६ वाँ मन्त्र है। भाव यह है कि इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, दिव्य, सुवर्ण, गरुत्मान्, यम और मातरिश्वादि एक ही ब्रह्म के अनेक नाम हैं। ब्रह्मवेत्ता-लोग समझाने के लिये एक ही के अनेक नाम बताते हैं।

ऊपर के प्रमाणों से आपको स्पष्ट बोध हो गया होगा कि वैदिक-काल में एक ही परमात्मा के भिन्न भिन्न गुणों के प्रकटीकरणार्थ भिन्न भिन्न नाम ही मात्र थे उन सब का वाचक ॐकार माना जाता था। तद्विपरीत पौराणिक काल में भिन्न भिन्न नामों से भिन्न भिन्न शरीरधारी देवों की कल्पना की गयी। ब्रह्मा के चारमुख—अष्टनेत्र, शिवजी के पञ्चमुख पञ्चदश नेत्र, विष्णु चतुर्भुज और क्षीरसागरशायी माने गये। गणेश के शिर में हस्ति-शुण्ड की कल्पना की गयी। इसी क्रम से वायु, यम और अग्नि आदि की पृथक् पृथक् काया कल्पित हुई और इस प्रकार पुराणों में वेदों से 'महान' अन्तर आ गया। गोसाईंजी वैदिक भावों का प्रकाशन नहीं कर सके, प्रत्युत पौराणिक प्रबल-प्रवाह में प्रवाहित हो गये। उदाहरण नीचे है:—

सङ्कर राम रूप अनुरागे। नयन पञ्चदश अति प्रिय लागे॥
हरि हित सहित राम जब जोहे। रमा समेत रमापति मोहे॥
निरखि राम छवि विधि हरखाने। आठे नयन जानि पछताने॥
सुर सेनप उर बहुत उछाहू। बिधि ते ड्योढ़े लोचन लाहू॥
रामहिं चितव सुरेश सुजाना। गौतम शाप परम हित माना॥
देव सकल सुरपतिहिं सिहाहीं। आजु पुरन्दर सम कोउ नाहीं॥

जेहि सुमिरत सिधि होइ, गननायक करिबर बदन।
करौं अनुग्रह सोइ, बुद्धि रासि सुभ गुन सदन॥
नील सरोरुह स्याम, तरुन अरुन बारिज नयन।
करौ सो मम उरधाम, सदा छीर सागर सयन॥

इतना ही नहीं, तुलसीदास जी के ग्रन्थों में आप स्थान स्थान पर देवताओं का विचित्र वर्णन पावेंगे जिसे कुछ विस्तार के साथ आगे स्वतन्त्र शीर्षक देकर मैंने अपने विचार प्रगट किये हैं।

[२] वैदिक साहित्य में पृथिवी के पर्यायवाची शब्दों में 'गौ' शब्द भी माना गया है। 'गौ' शब्द का पृथिवी, गाय, इन्द्रियाँ, और सूर्य की किरण इत्यादि अर्थों में प्रसंगानुसार व्यवहार पाया जाता है। 'गच्छतीति गौः' अर्थात् जो चलायमान हो वह गौ है। यही कारण है कि वेदों में पृथिवी को भी गतिमती माना गया है। यजुर्वेद अध्याय ३ मंत्र ६ देखिये—

(क) आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः।
पितरं च प्रयन्त्स्वः॥

इसका अर्थ यह है कि यह पृथिवी जल भाग के साथ सूर्य की चारों ओर घूमती है। इसके साथ ही वेदों में इस बात का स्पष्ट उल्लेख है कि पृथिवी किसी के आधार पर नहीं ठहरी है। प्रत्युत—

(ख) स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमाम्। यजु १३—४

इस मन्त्र में परमात्मा ही पृथिवी का आधार माना गया है। अन्यच्च—

(ग) आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्मयेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्॥

अर्थात् वृष्टिकर्त्ता सूर्य प्रकाशस्वरूप, तेजोमय, रमणीयता के साथ वर्त्तमान है, वह सर्व प्राणि तथा अप्राणियों में वृष्टि वा किरणामृत सिञ्चन करता हुआ सब मूर्तिमान द्रव्यों को दिखलाता हुआ लोकों के साथ आकर्षण गुणयुक्त है।

अश्व शब्द वैदिक कोष में किरण तथा घोड़े के अर्थ में आता है, यही कारण है कि सूर्य को सप्ताश्व अर्थात् सप्त किरण (लाल, पीला, हरा, नारंगी, आसमानी, नीला, और बनफ़शी) वाला कहा गया है। आलंकारिक भाषा में अरुण (लालिमा) को सूर्य का सारथी कहा है।

तद्विपरीत पुराणों में इस प्रकार के उल्लेख हैं:—

(क) पृथिवी स्थिर है। जब जब उसके ऊपर संकट आता है तब तब वह गाय का रूप धारण कर भगवान् के पास जाती है और वह संकट-निवृत्ति करते हैं।

(ख) पृथिवी शेष के शिर पर है और शेष कच्छप पर स्थित है, इत्यादि।

(ग) सूर्य ही पृथिवी की परिक्रमा करता है। उदयाचल पर्वत पर सूर्योदय होता पुनः वह अस्ताचल की आड़ में सन्ध्या समय छिप जाता है। सूर्य घोड़ों के रथ पर चलता है और अरुण उसका पंगु सारथी है।

गोसाईंजी अपने ग्रन्थों में जनता के समक्ष वैदिक-विज्ञान नहीं रख सके, पुराणों का ही उन्होंने अनुसरण किया। अतः उनके ग्रन्थ वर्त्तमान कालीन विज्ञान से भी कहीं कहीं मेल नहीं खाते। जैसे—

(क) अतिशय देखि धर्म की हानी। परम सभीत धरा अकुलानी॥
धेनु रूप धरि हृदय बिचारी। गई तहाँ जहँ सुर मुनि झारी॥
निज संताप सुनाएसि रोई। काहू ते कछु काज न होई॥

छन्द—सुर मुनि गन्धर्वा मिलि करि सर्वा गे बिरंचि के लोका।
सँग गोतनु धारी भूमि बिचारी परम बिकल भय शोका॥
ब्रह्मा सब जाना मन अनुमाना मेरो कछु न बसाई।
जाकर तैं दासी सो अबिनासी हमरो तोर सहाई॥

सोरठा—धरनि धरहु मन धीर, कह बिरंचि हरि पद सुमिरि।
जानहिं जन की पीर, प्रभु भंजहि दारुन बिपति॥

(ख) छन्द—भरि भुवन घोर कठोर रव रवि बाजि तजि मारग चले।
चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरम कल मले॥

(ग) दोहा—मास दिवस का दिवस भा, मर्म न जाना कोइ।
रथ समेत रवि थाकेउ, निसा कवनि बिधि होइ॥
उदित उदय गिरि मंच पर, रघुबर बाल पतंग।
बिकसे सन्त सरोज बन, हरखे लोचन भृङ्ग॥

सारथि पंगु दिव्य रथ गामी। हरि शंकर विधि मूरति स्वामी॥

यदि इन भावों को आलंकारिक समझें तो ठीक है।

[३] वैदिक साहित्य में मेघ के अनेक नाम गिनाये हैं और उनमें तत्-सम्बन्धी बहुतेरे आलंकारिक वर्णन आते हैं। उन्हीं नामों में 'गिरि' शब्द भी मेघ-पर्याय माना गया है जिसकी निरुक्ति करते हुए यास्काचार्य ने लिखा है—

गिरिरिति मेघनाम सुपठितम्

मेघ गतिमान हैं, अतः गिरि को भी गतिमान लिखा गया। आधुनिक संस्कृत-साहित्य में पर्वत को भी गिरि कहा गया है इसी भ्रम में पौराणिकों ने लिखा है कि पर्वत आकाश में पहले उड़ते थे, उनके परों को इन्द्र ने काटकर उन्हें भूमिपर गिरा दिया और वे सब अधोमुख गिरे और फिर न उठे। यहाँ पर यह भी उल्लेख कर देना सुसंगत होगा कि वेदों में इन्द्र का अर्थ सूर्य्य के भी हैं, अतः इस आख्यायिका का भाव यह था कि मेघ आकाश में यत्र तत्र उड़ते फिरते हैं जिनको सूर्य्य अपने किरणरूप बाण से छेदन कर भूमि पर गिरा देता है अर्थात् वृष्टि करा देता है।

गोसाईंजी ने पुराणों के चक्कर में आकर पहाड़ों का उड़ना लिख दिया:—

कुसमय देखि सनेह सँभारा। बढ़त बिन्ध्य जिमि घटज निवारा॥

इसमें पौराणिक-कथा का समावेश है।

[४] वेदों तथा ब्राह्मणग्रन्थों की आख्यायिकाओं और गाथाओं की आलंकारिक-रचना-शैली से विरुद्ध अर्थ में और कहीं कहीं नवीन रचना में पुराणों में ऐसी कथाएँ लिखी गयी हैं जिन्हें पढ़कर ब्रह्मा, विष्णु, शिव, अहल्या, गौतम, चन्द्र और इन्द्रादि के चरित्र में निन्द्य बातें पायी जाती हैं। पौराणिक कथाओं पर यदि पूर्ण विचार किया जाय तो पता लग जायगा कि स्यात् ही कोई देवता अथवा ऋषि आदर्श-चरित हो। बहुतों के चरित इस ढंग से लिखे गये हैं जिन पर आज ईसाई और मुसलमानों को गहरे एतराज़ का मौका हाथ आता है। इन कथाओं में कुछ तो ऐसी हैं जिनका वर्णन आलंकारिक शैली पर वेदादि सद्ग्रन्थों में आया हुआ है। इसके अतिरिक्त पुराणों की बहुसंख्यक आख्यायिकाओं का विपक्षियों ने समय समय पर प्रक्षेप कर दिया है। गोसाईं तुलसीदासजी के ग्रन्थों में भी जहाँ तहाँ ऐसी कथाओं की गन्ध आगयी है। जैसे—

(१) विष्णु ने जलन्धर की पतिव्रता स्त्री का पातिव्रतधर्म नष्ट किया, उस सती का कोई दोष नहीं था:—

छलकरि टारेउ तासु व्रत, प्रभु सुरकारज कीन्ह।
जब तेइ जानेउ मरम सोइ, स्राप कोपकरि दीन्ह॥

(२) चन्द्रमा ने अपनी गुरु-पत्नी से संभोग किया:—

ससि गुरु तियगामी नहुष, चढ़े भूमिसुर यान।
लोक वेद ते विमुख भा, अधम को बेनु समान॥

(३) गौतम की स्त्री अहल्या के साथ इन्द्र ने कुचाल की:—

गौतम नारी शाप बश, उपल देह धरि धीर।
चरण कमल रज चाहती, कृपा करहु रघुबीर॥

पहली कथा—जलन्धरका अर्थ आकाश-व्यापी समुद्र से है और आलंकारिक शैली में मेघ-माला उसकी स्त्री है, जिस पर विष्णु (सूर्य) की किरणें पड़ती हैं वही मानों सहभोग है, यह प्राकृतिक वर्णन है।

दूसरी कथा—'चन्द्रमा' एक पृथिवी का उपग्रह है। 'बृहस्पति' ग्रह सूर्य की प्रदक्षिणा करता है। 'रोहिणी' एक नक्षत्र है। 'बुध' भी ग्रह है। चंद्रमा, बृहस्पति, बुध और रोहिणी नक्षत्र जब एक राशि पर आते हैं तो उसी काल का आलंकारिक वर्णन किया गया है। चन्द्रमा मानों शिष्य है, बृहस्पति गुरु है और रोहिणी बृहस्पति की स्त्री है। बृहस्पति जब मध्य से हट गया तब चन्द्रमा का प्रकाश रोहिणी पर पड़ा। इसीको कवियों ने जार कर्म बतला कर 'बुध' को पुत्रस्थानी लिखा।

तीसरी कथा—अहल्या और इन्द्र की कथा प्रभात वर्णन-प्रसङ्ग में रूपकालंकार से शतपथ ब्राह्मण कां० ३ प्र० ३ अ० ३ में आयी है। वहाँ इन्द्र का अर्थ है, सूर्य। 'इन्द्रः सूर्य्यः। अस्यन्द्रेति नाम परमैश्वर्यप्राप्तेर्हेतुत्वात्। स अहल्याया जारोस्ति।' अहल्या का अर्थ है, रात्रि। अहर्दिनं लीयतेऽस्यां तस्माद्रात्रिः अहल्या उच्यते। अह नाम दिन में जो लय हो जाय वह अहल्या अर्थात् रात्रि है। जृष् वयो हानि से जार शब्द बनता है रात्रेर्जरयिता रात्रेरायुषो विनाशक इन्द्रः सूर्यः! अतः इन्द्र (सूर्य) ही अहल्या (रात्रि) का जार हुआ। अब गौतम, चन्द्रमा को कहते हैं क्योंकि गच्छतीति गौः इति गौतमश्चन्द्रः। साहित्य-शास्त्र में चन्द्रमा को रजनीपति, रजनीश और राकेश इत्यादि नामों से पुकारा गया है, क्योंकि जैसे स्वकीया स्त्री अपने पति को पाकर प्रसन्नमुख हो उठती है वैसे ही चन्द्रमा के उदय से रात्रि दीप्तिमती हो जाती है। अब आख्यायिका का स्पष्ट भाव यह हुआ कि गौतम (चन्द्रमा) की स्त्री अहल्या (रात्रि) से इन्द्र (सूर्य) ने जार कर्म किया अर्थात् रात्रि की आयु क्षीण कर उदित हुआ। पुनः उस इन्द्र के सहस्र भग (ऐश्वर्य) हुए अर्थात् अनेक किरणें जगत् की सुषुप्त आँखों पर पड़ीं और अन्ततः वे (भग) किरणें नेत्ररूप में परिणत हुईं।

तन्त्रवार्तिक के शिष्टाचार प्रकरण में श्री कुमारिल भट्ट ने इस प्रकार लिखा है—"समस्ततेजाः परमैश्वर्य्यनिमित्तेन्द्रशब्दवाच्यः सवितैवाहनि लीयमानतया रात्रेरहल्याशब्दवाच्यायाः क्षयात्मक जरणहेतुत्वात् जीर्यत्यस्मादनेन वोदितेनेत्यादित्यएवाहल्याजार इत्युच्यते नतु परस्त्रीव्यभिचारात्।"

ऐसी आलंकारिक कथाओं के वास्तविक तत्त्व को न समझ सकने के कारण ही नानाप्रकार के भ्रम संसार में फैल गये हैं।

[५] वैदिककाल, उपनिषत्काल तथा दर्शनकाल में एकेश्वरवाद का प्रचार था, परन्तु पौराणिक-काल में अनेक देवोपासना का प्रचार प्रारम्भ हुआ, अनेकों सम्प्रदायों की सृजना हुई, अवतारवाद चला, प्रकृति-पूजा-प्रादुर्भूत हुई। साम्प्रदायिक विरोध इतना बढ़ा कि शैवों को वैष्णव बुरा भला कहते और वैष्णवों को शैव लोग उलटी सीधी सुनाया करते थे। स्वयं गोस्वामी जी को शैवों ने अत्यन्त कष्ट दिये। इस अंशमें गोस्वामी जी ने स्तुत्य प्रयत्न किया, आपकी हार्दिक इच्छा थी कि साम्प्रदायिक पारस्परिक संघर्ष मिट जाय। इसके लिये अपने ग्रन्थों में आपने इन लेखों का समावेश किया:—

(१) मर्यादापुरुषोत्त राम तथा सीता से जहाँ तहाँ शिव और गणेशादि की वन्दना करायी।

(२) शिव जी से सीता-राम की स्तुति करायी और इन्हें शिव के उपास्य देव बतलाया।

(३) स्वयं रामचन्द्र के हाथ से रामेश्वर की स्थापना करा कर श्रीमुख से निम्न वाक्य कहवाये:—

× × × ×

लिंग थापि बिधिवत करि पूजा। शिव समान प्रिय मोहि न दूजा॥
शिवद्रोही मम दास कहावे। सो नर स्वप्नेहुँ मोहि न भावे॥
शंकर बिमुख भक्ति चह मोरी। सो नर मूढ मन्द मति थोरी॥

शंकर प्रिय मम द्रोही, शिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कल्प भरि, घोर नरक महँ बास॥

जो रामेश्वर दर्शन करि हैं। सो तनु तजि मम धाम सिधरिहैं॥
जो गंगाजल आनि चढ़ाइहिं। सो सायुज्य मुक्ति नर पाइहिं॥
है अकाम जो छल तजि सेइहिं। भक्ति मोरि तेहि शंकर देइहिं॥

× × × ×

औरो एक गुप्त मत, सबहिं कहौं कर जोरि।
शंकर भजन विना नर, भक्ति न पावै मोरि॥

इसमें कोई सन्देह नहीं कि गोसाईंजी इन भेदभावों को मिटाने में बहुत कुछ कृतकार्य भी हुए हैं।

[६] वेदों में परमात्मा के यथार्थ ज्ञान से मुक्ति मानी गयी है, जैसा यजुर्वेद में कहा है:—

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्य वर्णंतमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥

अर्थात्—हे जिज्ञासु पुरुष ! मैं जिन महान् गुणों से युक्त सूर्यतुल्य प्रकाश-स्वरूप अन्धकाररूप अज्ञान से परे वर्तमान स्वरूप से सर्वत्र पूर्ण परमात्मा को जानता हूँ, उसीको जान कर आप दुःखद मृत्यु का उल्लङ्घन कर सकते हो। मोक्ष के लिये इससे बढ़ कर कोई भी अभीष्ट मार्ग विद्यमान नहीं है।

इसी प्रकार शास्त्रकारों ने भी ज्ञान को ही मुक्ति का कारण माना है। सांख्य का सूत्र है:—

ऋते ज्ञानान्मुक्तिः

अर्थात् यथार्थ ज्ञान से मुक्ति होती है।

उपनिषदों में भी कहा है:—

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह ।
बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहुः परमां गतिम् ॥ कठो० २–६–१०

अर्थात्—जब शुद्ध मनयुक्त पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ मन के साथ रहती हैं और बुद्धि निश्चयरूप से स्थिर हो जाती है, उसको परमगति अर्थात् मोक्ष कहते हैं।

पुराणों ने वैदिक मुक्ति का उल्लेख न कर प्रायः स्वर्गलोक के वर्णन से भर दिया। सारूप्य, सालोक्य, सायुज्य, सामीप्य चार प्रकार की मुक्ति बतलायी। नाना प्रकार के व्रतों के करने, नाम-विशेष के उच्चारण मात्र से मुक्ति दिलवायी। गंगादि नामोच्चारण से ही मोक्ष माना गया।

पुराणों की सी ही मुक्ति के संबन्ध में अन्धाधुन्ध-लेख-शैली आप गोस्वामी तुलसीदास जी के ग्रन्थों में पावेंगे। कहीं 'काश्यां मरणान्मुक्तिः' का अनुसरण कर के 'राम-चरित-मानस' किष्किन्धाकाण्ड में लिखा:—

मुक्ति जन्म महि जानि, ज्ञान खानि अघहानि कर।
जहँ बस शंभु भवानि, सो काशी सेइय कस न॥

बालकाण्ड में लिखते हैं:—

काशी मरत जन्तु अवलोकी। जासु नाम बल करौं बिशोकी॥

पुनश्च

आकर चारि जीव जग अहहीं। काशी मरत परम पद लहहीं॥

विनय-पत्रिका का लेख है:—

दानी कहुँ शंकर सम नाहीं।
दीन दयालु दिबोई भावै जाचक सदा सिहाहीं॥

× × × × ×

जोग कोटि करि जोगति हरिसों मुनि माँगत सकुचाहीं।
बेद बिदित तेहि पद पुरारि पुर कीट पतंग समाहीं॥

× × × × ×

पुनश्च

जो गति अगम महामुनि गावहिं। तव पुर कीट पतंगहु पावहिं॥

इसी प्रकार आप ने अपने ग्रन्थों में अयोध्या नगरी को भी 'सकल-कलि-कलुष विध्वंसिनी' ही माना है:—

बन्दौं अवधपुरी अति पावनि। सरयू सरि कलि कलुष नसावनि॥

श्रीरामेश्वर धाम का माहात्म्य पीछे लिख आये हैं, जहाँ स्पष्ट लिखा है:—

जो गंगाजल आनि चढ़ाइहिं। सो सायुज्य मुक्ति नर पाइहिं॥

अब गंगा-माहात्म्य सुनिये।

उत्तरकाण्ड कवित्त रामायण:—

देव नदी कहँ जो जन जान, किये मनसा कुल कोटि उधारे।
देखि चलैं झगरैं सुर नारि, सुरेस बनाइ बिमान सँवारे॥
पूजा को साज बिरंचि रचैं, तुलसी जे महातम जानन हारे।
ओक की नींव परी हरि लोक, बिलोकत गंग तरंग तिहारे॥१४५॥
ब्रह्म जो व्यापक बेद कहैं, गम नाहिं गिरा गुन ज्ञान गुनी को।
जो करता भरता हरता सुर, साहिब साहिब दीन दुनी को॥
सोई भयो द्रव रूप सही, जु है नाथ बिरंचि महेश मुनी को।
मानि प्रतीति सदा तुलसी, जल काहे न सेवत देव धुनी को॥१४६॥

कहाँ तक गिनाया जाय, सब प्रकार मुक्ति देते देते जब गोसाईंजी थक गये तो अन्त में मुक्ति बेचारी को गाजर-मूली से भी सस्ते दर में लुटा दिया। 'राम-लला नहछू' के अन्त में आप लिखते हैं—

जे एहि नहछू गावहिं, गाइ सुनाइहिं हो।
ऋद्धि सिद्धि कल्यान, मुक्ति नर पाइहिं हो॥

कहीं कहीं गोसाईं तुलसीदास जी ने अपने ग्रन्थों में मुक्ति-विषयक-वैदिक-सिद्धान्त का भी निदर्शन किया है:—

धर्म ते विरति योग ते ज्ञाना। ज्ञान मोक्षप्रद बेद बखाना॥

इतना कह कर तुरत ज्ञान-मार्ग की प्रतिद्वन्दिनी भक्ति का समर्थन कर जनता की उलझन बढ़ा देते हैं:—

जाते बेगि द्रवौं मैं भाई। सो मम भक्ति भक्त सुखदाई॥
सो स्वतन्त्र अवलम्बन आना। जेहि आधीन ज्ञान विज्ञाना॥

भक्ति तात अनुपम सुख मूला। मिलहिं जो सन्त होहिं अनुकूला॥
भक्ति के साधन कहौं बखानी। सुगम पन्थ मोहि पावहिं प्रानी॥

ईश्वर-प्राप्ति का मुख्य साधन ज्ञान-मार्ग से उपेक्षा वा उपराम दिलाकर भक्ति का भिन्न निरूपण करके

नहिं कलि कर्म न धर्म विवेकू। रामनाम अवलम्बन एकू॥

का सिद्धान्त प्रचलित किया जिसका परिणाम यह हुआ कि आज लक्षों हिन्दू नारि-नर घर बार छोड़ राम-राम की रटन लगाये देश के भार बन गये। वैरागियों को जहाँ विद्याभ्यास का उपदेश दीजिये तहाँ झट बोल बैठते हैं:—

पढ़ना लिखना बब्भन का काम। भज लो साधो सीताराम॥

कई बैरागी तो सीताराम का उच्चारण सैत्ताराम करने लगे हैं।

इसी प्रकार अजामिल, यवन और नाना प्रकार के पापियों को राम नाम उच्चारण मात्र से आपने परम-पद तक की प्राप्ति करायी। गृद्ध-राज के सम्बन्ध में लिखते हैं—

गृद्ध अधम खग आमिष भोगी। गति दीन्हीं जेहिं जाचहिं जोगी॥

परन्तु विचारणीय विषय तो यह है कि गोसाईं जी ने

सगुण उपासक मोक्ष न लेहीं। तिन कहँ रामभक्ति निज देहीं॥

इस चौपाई के द्वारा तो समस्त सगुणोपासकों से अप्राप्य-मुक्ति पद से त्याग-पत्र (Resignation) दिलवा दिया है।

तब इन लोगों की मुक्ति कैसे हुई?

सब निशाचरों तक को पुनः किस नुसखे से गोसाईं जी मुक्ति दिलाते हैं:—

राम राम करि तनु तजहिं, पावहिं पद निर्बान।
करि उपाय रिपु मारेउ, क्षण महँ कृपानिधान॥

विनय-पत्रिका में स्पष्ट लिख दिया:—

जो गति जोग बिराग जतन करि, नहिं पावत मुनि ज्ञानी।
सो गति देत गीध सबरी कहँ, प्रभु न बहुत जिय जानी॥

सच बात तो यों है कि गोस्वामी तुलसीदास जी के ग्रन्थों में मुक्ति के सम्बन्ध में पुराणों का अनुकरण पाया जाता है, अतः कोई निष्कर्ष नहीं निकल सकता।

यहाँ पर इस बात का उल्लेख कर देना भी स्थानातिरिक्त न होगा कि गोस्वामी जी स्वर्ग और मुक्ति में भेद समझते थे। आरण्यकाण्ड में जहाँ शरभङ्ग से राम-चन्द्र जी मिले हैं वहाँ यह लेख आया है:—

अस कहि योग अग्नि तनु जारा। राम कृपा बैकुण्ठ सिधारा॥
तातें मुनि हरि लीन न भयऊ। प्रथमहि भेद भक्ति बर लयऊ॥

अर्थात् शरभङ्ग मुनि साकारोपासक थे अतः वैकुण्ठ सिधारे, ब्रह्म में लीन नहीं हुए अर्थात् उनकी विदेह मुक्ति न हुई।

[७] वैदिककाल में आर्यजाति में स्त्रियों का पुरुषों के समान ही सम्मान था। मनुने स्पष्ट लिख दिया है:—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राऽफलाः क्रियाः॥
शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्द्धते तद्धि सर्वदा॥

इसके विरुद्ध पौराणिककाल में स्त्रीजाति की अधोगति प्रारम्भ हुई। महाराज युधिष्ठिर जैसे धर्मात्मा पुरुष भी द्रौपदी को सामान्य भौतिकी सम्पत्ति की नाईं बन्धक धर कर जूआ खेल बैठे!!!

हम देखते हैं कि गोसाईं जी भी अपने ग्रन्थों में जहाँ तहाँ पौराणिक धारा में बह कर स्त्री-जाति पर आक्षेप और अपमानसूचक वाक्य लिख बैठे हैं। यथाः—

"ढोल गँवार शूद्र पशु नारी। ये सब ताड़न के अधिकारी॥
× × × ×
नारि स्वभाव सत्य कवि कहहीं। अवगुन आठ सदा उर रहहीं॥
साहस अनृत चपलता माया। भय अविवेक अशौच अदाया॥
× × × ×
पुरुष प्रताप प्रबल दिन राती। अबला अबल सहज जड़ घाती॥
× × × ×
जदपि जोखिता अन अधिकारी। दासी मन बच कर्म तुम्हारी॥
× × × ×
भ्राता पिता पुत्र उर गारी। पुरुष मनोहर निरखति नारी॥
राखिय नारि यदपि उर माहीं। युवती शास्त्र नृपति बस नाहीं॥
× × × ×
पाप उलूक निकर सुखकारी। नारि निबिड़ रजनी अँधियारी॥
साँच कहहिं कवि नारि सुभाऊ। सब बिधि अगम अगाध दुराऊ॥
निज प्रतिबिंब मुकुर गहि जाई। जानि न जाइ नारि गति भाई॥

अवगुन मूल शूलप्रद, प्रमदा सब दुख खानि।

इसी प्रकार आपने और कई स्थलों पर स्त्री-जाति को कोसते हुए 'का नहिं अबला करि सकै' इस स्व-निर्मित मन्त्र से वनिता-मर्याद-विध्वंसक यज्ञ की पूर्णाहुति की है।

देवताओं ने राम को वन भिजवाने में सरस्वती से सहायता ली, सरस्वती ने मन्थरा को प्रेरित किया, मन्थरा ने कैकेयी को उत्तेजना दी। जान पड़ता है कि मूर्ति-त्रयी के अपराध को अक्षम्य समझ कर गोसाईं जी स्त्री-जाति-मात्र से रुष्ट हो गये थे।

[८] वैदिककाल में गुण-कर्म-स्वभावानुसार वर्णव्यवस्था मानी जाती थी जिससे प्रत्येक वर्ण में पारस्परिक प्रेम का प्रचार था। गृह्यसूत्र-काल में 'जन्मना वर्णः' का सूत्रपात हुआ, परन्तु उस समय भी आर्यों के गृह-कार्य में शूद्रों का अधिकार एवं सत्कार था। पौराणिककाल में शूद्रजाति पर अत्याचार और अपमान प्रारम्भ हुआ। इस प्रवाह से गोसाईंजी भी नहीं बचे। कहीं कहीं इन्होंने परम्परा का अनुसरण किया:—

ढोल गँवार शूद्र पशु नारी। ये सब ताड़न के अधिकारी॥
पूजिय बिप्र शीलगुणहीना। शूद्र न गुणगणज्ञानप्रवीना॥

कहीं कहीं तो आप अपढ़ ब्राह्मणों और मूर्ख पुरोहितों तक की गहरी वकालत कर बैठे हैं। सतसई में आपने बड़ी मार्मिकता से सामयिक भेंड़-धसान से भी काम लिया है:—

तुलसी खोटे भक्त कर, रघुपति राखत मान।
ज्यों मूरख पुरोहितहिं, दान देत यजमान॥

सच बात यह है कि जिस प्रकार मूर्ख मनुष्य को पुरोहित बनाना सद्-ग्रन्थों के विरुद्ध है, अन्ध-परम्परा है, उसी प्रकार खोटे दास का सम्मान भी समझिये।

[९] गोसाईंजी ने पौराणिकों की नाईं जहाँ तहाँ अन्य मतावलम्बियों पर भी छींटे दिये हैं। आपने शैवों और वैष्णवों के विरोध मिटाने का पूर्ण प्रयत्न किया है, इसका मुख्य कारण यह है कि इन सम्प्रदायों को आप वैदिक समझते थे, परन्तु उनकी धारणा में जो वेद-बाह्य मत प्रतीत हुए उनकी यत्र-तत्र पूरी खबर भी लेते गये हैं।

(क) कबीर और दादू आदि मतों के सम्बन्ध में लिखा:—

श्रुतिसम्मत हरिभक्तिपथ, संयुत ज्ञान विवेक।
ते न चलहिं नर मोहबस, कल्पहिं पंथ अनेक॥
साखी सबदी दोहरा, कहि कहनी उपखान।
भगति निरूपहिं भगत कलि, निन्दहिं बेद पुरान॥

(ख) जैनियों के प्रतिः—

ईस सीस बिलसत बिमल, तुलसी तरल तरंग।
स्वान सरावग के कहे, लघुता लहै न गङ्ग॥

(ग) सामान्य मूर्तिपूजा के सम्बन्ध में:—

सठ सहि साँसति पति लहत, सुजन कलेस न काय ।
गढ़ि गुढ़ि पाहन पूजिये, गण्डक सिला सुभाय ॥

(घ) भूत-प्रेत पूजने वालों के सम्बन्ध में:—

जे परिहरि हरिहर चरन, पूजहिं भूत घन घोर ।
तिनकी गति मोहि देहु बिधि, जो जननी मत मोर ॥
तुलसी प्रभु पद छाँड़ि कै, पाँवर पूजहिं भूत ।
अन्त फजीहत होहिंगे, ज्यों गनिका को पूत ॥

(ङ) अन्ध-परम्परा तथा मुसलमानी कब्र पूजा इत्यादि के विषय में गोस्वामी जी ने एक बड़ी मार्मिक बात लिखी है:—

लही आँखि कब आँधरेहि, बाँझ पूत कब पाय ।
कब कोढ़ी काया लही, जग बहराइच* जाय ॥

---

* बहराइच के सम्बन्ध में एक लेख न्यायभूषण श्रीमान् पं० धुरेन्द्र शास्त्री जी का आर्यमित्र ता० ३।७।२४ में प्रकाशित हुआ है, जो पाठकों के लाभार्थ अविकल रूप से नीचे दिया जाता है:—

सूर्यवंश-शिरोमणि, धर्मधौरेय, शत्रुदल-दलन, समर्थ श्रावस्तीनरेश महाराज सुहल-देवजी ने अरि-रुधिर-पिपासा-कुल तीक्ष्ण बाण से सैयद मसऊद गाजी को सदा के लिये बिदा कर दिया था, किन्तु आश्चर्य यह है कि जिस मसऊद गाजी को महाराज सुहलदेव जी ने अपने बाण का निशाना बनाया था आज उसी की कबर पर बहराइच में जाकर शतशः हिन्दू अपना धर्मधन लुटाते हैं। बहराइच में जिस स्थान पर मसऊद गाजी मियां की दरगाह बनी हुई है, दरगाह बनने से पूर्व वह स्थान "बालार्क-तीर्थ" नाम से प्रसिद्ध था ।

बालार्क-तीर्थ—इस स्थान पर "सूर्यकुण्ड" नामक तप्तकुण्ड था इसका जल चर्म-रोगनाशक था, अतः यहाँ पर सहस्रों यात्री रोगनिवारणार्थ आया करते थे। चार चतुष्टी अर्थात् ज्येष्ठ मास के चारों रविवार इसके विशेष दिन थे। दिन के बारह बजे इस कुण्ड में स्नान कर यात्री लोग सूर्योन्मुख खड़े हुआ करते थे और स्वास्थ्यलाभ कर गृह लौट जाते थे ।

बौद्ध ग्रन्थों में इस क्षेत्रका नाम आप्तक्षेत्र बनाराम पाया जाता है। बुद्धिस्ट इण्डिया में लिखा है कि बुद्ध भगवान ने बहुत से मनुष्यों को यहाँ क्षेत्र प्रदान किये थे। हर्ष-चरित में लिखा है कि प्रतापपुञ्ज महाराज श्रीहर्ष (शिलादित्य) और उनके पूर्व दल-बल-सहित यहाँ आकर उत्सव में सम्मिलित हुआ करते थे। बालार्कतीर्थ-रहस्य में लिखा है कि बिसेनों के पूर्वज मयूर भट्ट कुष्ठनिवारणार्थ यहाँ आकर रहे थे इत्यादिक लेखों से प्रतीत होता है कि सूर्यवंशी क्षत्रियों का पवित्र 'बालार्क तीर्थ' था और ज्येष्ठ मास में यहाँ बड़ा भारी उत्सव होता था। दूर दूर से सूर्यवंशी क्षत्रिय आकर इस उत्सव में धर्मलाभ करते थे, किन्तु मुसलमानों ने इसका सर्वथा परिवर्तन कर दिया ।

सैयद सालार साहू ने सैयद सैफुद्दीन को बहराइच, मीर हसन को महोबा, अजीजुद्दीन को गोपामऊ (कोपामऊ), मलिक आदम को लखनऊ और मलुक फैज को बनारस प्रान्त में जहाद के लिये भेज दिया। साहू के मर जाने के बाद सैयद सालार मसऊद ग़ाज़ी भी सैफुद्दीन की सहायतार्थ बहराइच पहुँच गया और जहाद बोल दिया। हाथ में झण्डा लेकर मुसलमान

(च) गोरख-पंथियों के विषय में लिखा:—

बरन धरम गयो आश्रम निवास तज्यौ,
आसन चकित सो परावनो परोसो है।
करम उपासना कुबासना विनास्यो ज्ञान,
बचन विराग वेष जगत हरो सो है॥
गोरख जगायो जोग भगति भगायो लोग,
निगम नियोग ते सो कलि ही छरोसो है।
काय मन बचन सुभाय तुलसी है जाहि,
राम नाम को भरोसो ताहि को भरोसो है॥

देहातों में फैल जाते और मरणभय दिखाकर मुसलमान होने को बाधित करते और बड़ी बड़ी आशायें भी दिलाते थे। मरणभय से जनता त्रासमोचन झण्डे के नीचे आकर शिखा सूत्र का परित्याग कर झण्डे को नचाने लगती थी। इस अत्याचार को देख शूरवीरगणाग्रगण्य महाराज सुहल देव जी ने मुसलमानों से युद्ध आरम्भ कर दिया और रजब हठीले, सैयद इब्राहिम, सिकन्दर बरहना और सैफुद्दीन आदि यवन वीरों को भस्मसात् कर दिया। अन्त में भगवान रामचन्द्र के उत्तराधिकारी धनुर्विद्याविशारद महाराज सुहलदेव जी ने सैयद सालार को बाण का निशाना कर दिया। इस प्रकार ३०० वर्ष के लिये जहाद शान्त हो गया।

सैयद सालार के मारे जाने के ३१७ वर्ष पश्चात् सन् १३५१ ई० में फीरोज़ तुग़लक अपनी माता के आग्रह से मसऊद गाज़ी की समाधि (कब्र) बनाने के लिये बहराइच आया (मसऊद ग़ाज़ी के मारे जाने के ३०० वर्ष पश्चात् बहराइच पुनः यवनों के हाथों में आगया था) बादशाह के साथ एक वृद्ध फ़क़ीर था, उसने कहा कि सुहलदेव ने ग़ाज़ी का शव इसी सरोवर पर डाल दिया था (यह फ़क़ीर का कथन नितान्त असत्य था, क्योंकि कुटिला के तटस्थ महुए के पेड़ के नीचे महाराज ने ग़ाज़ी को मारा था) अतः यहां ही ग़ाज़ी की समाधि बननी चाहिये। उसी सूर्यकुण्ड सरोवर को मिट्टी से पाट कर ढालू भूमि पर गाजीमियाँ की समाधि बनाई गयी जो अब भी दुर्ग रूप में उपस्थित है। एवं पवित्र स्थान बालर्कतीर्थ ग़ाज़ीमियाँ की कब्र के रूप में परिणत कर दिया गया। ज्येष्ठ मास के चार रविवार बालार्कतीर्थोत्सव के प्रधान समझे जाते थे, किन्तु मुसलमानों ने ज्येष्ठ का प्रथम रविवार मेले का रखा और वे बालार्क की पूजा के स्थान में ग़ाज़ीमियाँ की पूजा कराने लगे। (अभी हाल ही में हसन निज़ामी ने एक लेख में लिखा था कि हिन्दुओं के मन्दिरों पर मुसलमानों का कानूनन अधिकार है, क्योंकि बहुत से मन्दिरों में मुसलमानों की दी हुई जायदाद लगी हैं। हिन्दुओं ! आप के मन्दिरों और पवित्र स्थानों का जो हाल पूर्व मुसलमानों ने किया है अब भी वही हाल करने को वे प्रस्तुत हो रहे हैं) ग़ाज़ीमियाँ का मेला ज्येष्ठ मास के प्रथम रविवार को लगता है। इस मेला की सफलता ढफालियों के हाथ रहती है।

ढफाली—ढफाली सब के सब हिन्दू थे और ढफली के साथ बालार्कतीर्थ सम्बन्धी भजन गाया करते थे, किन्तु मुसलमानों ने इनको मुसलमान बना लिया और ग़ाज़ीमियाँ के गीत गवाने लगे। इस समय सब की सब यह जाति मुसलमान बनी हुई है और प्रायः बहराइच के जिले में ही रहती है। ढफालियों का यह काम है, ढफली के साथ ग़ाज़ीमियाँ के गीत गाकर, ग़ाज़ीमियाँ अपुत्र को पुत्र, अन्धे को आँख देते हैं, भूत को निकाल कुष्ठ आदि रोगों को दूर कर देते हैं यह कह कर भोले भाले ही नहीं, अपितु बड़े बढ़े धनाढ्य और बाबू साहबों को भी उत्साहित कर 'मेदिनी' बनाकर ले आते हैं और ग़ाज़ीमियाँ को पुजवाते हैं।

(छ) शुष्क अद्वैतवादियों के प्रति लिखा है:—

ब्रह्म ज्ञान बिनु नारिनर, कहहिं न दूसरि बात।
कौड़ी कारन मोहबस, करहिं विप्र गुरुघात॥

परतिय लम्पट कपट सयाने। मोह द्रोह ममता लपटाने॥
तेइ अभेदवादी ज्ञानी नर। देखा मैं चरित्र कलियुग कर॥

× × × ×

भटकत पद अद्वैत में, अटकत ज्ञान गुमान।
सटकत वितरनते बिहठि, फटकत तुष अभिमान॥

मेदिनी—ढफालियों की परिभाषा में यात्रियों के समुदाय का नाम मेदिनी है। यह मेदिनी गोलाकार होती है। इसके बीच में एक लम्बा निशान (झण्डा) होता है। ढफाली जब अपनी ढफली को जोर से बजाते हैं और लिल्ली घोड़ी बजाते हैं तो यात्री लोग भी अपनी गति को तीव्र कर देते हैं। (लिल्ली घोड़ी पर गाजीमियाँ सवार होता था इसकी कब्र भी गाजी के पास बनी हुई है) झण्डे के अग्रभाग में लम्बे लम्बे बाल बन्धे हुए रहते हैं, गाजीमियाँ ने जहाद का झण्डा उठाया था उसीके नीचे हिंदुओं की शिखाएँ काटी जाती थीं। यह झण्डा उसी झण्डे का प्रतिनिधि है। इसमें लम्बे लम्बे बाल, शिखाओंके प्रति-निधिस्वरूप हैं। उस समय मुसलमान होनेवालों से त्रासमोचन झण्डा बनाया जाता था, किन्तु आज भी भोले हिन्दू उसी झण्डे की याद में इस झण्डे को नचाते हैं। यात्रियों को रास्ता में कहीं बबूला-बमण्डल बाबरौला मिल जाय तो ढफाली कहते हैं कि देखो अमुक भूत या प्रेत या सैयद जियारत करने जा रहा है, क्योंकि मसऊद गाजीमियाँ सब भूत प्रेतों के गुरु हैं। मसऊद गाजी ने जबरन शिखा काट कर जिन हिन्दुओं को मुसलमान बनाया था आज भी अवध के उन लोगों में यह प्रथा चली आती है कि बच्चे के सिर पर सिखा रखी जाती है और बहराइच आकर काटी जाती है। भोले हिन्दू भी वहाँ जाकर अपने बच्चों का मुण्डन कराते हैं। मुसलमान तो उन्हीं बालों को कटवाते हैं जो शिखा स्वरूप रखे थे, किन्तु हिन्दू ऐसे अकल के पूरे हैं कि गाजीमियाँ की दरगाह में जाकर सारे सिर के बालों को गाजीमियाँ का नजारा समझ मुँड़वा देते हैं। वहाँ जाकर हिन्दू शिर ही नहीं मुड़ाते अपितु धर्म और धन भी लुटाते हैं।

जंजीरी दरवाजा—दरगाह का सब से पहिला जंजीरी दरवाजा है। इसके आगे मोटी मोटी चार जंजीरें बँध रही हैं। इन जंजीरों को सब यात्री चुम्बन करते हैं। इसके बाद नाल दरवाजा है। इसकी चौखट पर बड़े बड़े नाल ठुके हुए हैं।

मैंने वहाँ मियाँ पुजारियों से पूछा कि यह नाल क्यों और किसने ठोके हैं उत्तर मिला कि जिन हिन्दुओं की कामना पूरी हुई है, उन्होंने नाल ठुकवाये हैं। इस दरवाजा को पार करने के लिये कुछ टैक्स देना आवश्यक है। कम से कम एक पैसा और ज्यादा का कुछ हिसाब नहीं। जैसे जगन्नाथ की चौखट पुजती है इस दरवाजा की चौखट भी ठीक उसी प्रकार पुजती है। मसऊद ग़ाज़ीमियाँ की क़बर के पास जाने के दो दरवाज़े हैं। मेला के समय उत्तरी फाटक और अन्य समय में दक्षिणी फाटक से मनुष्य आते जाते हैं। क़बर उत्तर दक्षिण बनी है। यात्रियों से मुसलमान पण्डे फूल, बताशे और द्रव्य क़बर पर चढ़वा कर करबद्ध शिर झुकवाते हैं और आशीष रूप अपना पंजा यात्री की पीठ पर मारते हैं। स्त्रियों पर पंजा मारने का तरीक़ा ही भिन्न होता है। चढ़ावे में प्रति वर्ष हिन्दुओं का ७० हज़ार रुपया मुसलमानों

(ज) एक अलख जगानेवाले के प्रति कहा:—

'हम लख हमहिं हमार लख, हम हमार के बीच।
तुलसी अलखहिं का लखै, राम राम जपु नीच॥'

फलतः गोस्वामी जी से भी जहाँ तक बन पड़ा है अपने विचार-विरोधियों के प्रतिवाद में उन्होंने कोई कोर कसर उठा नहीं रखी है।

[१०] वेदों में मनुष्यायु सामान्यतया १०० वर्षों की मानी गयी है। विशेष दशा में—

त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषं। यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषं॥

यजुर्वेद अ० ३ मं० ६

कहा गया है अर्थात् ३०० वर्षों तक मनुष्य जीवित रह सकता है। पुराणों में मनुष्यायु की कोई सीमा नहीं दीखती। वसिष्ठ रामचन्द्र की कई पीढ़ियों के पुरोहित पाये जाते हैं। विश्वामित्र का अस्तित्व हम पुराणानुसार त्रेता से लेकर द्वापर तक पाते हैं।

इसी प्रकार गोसाईंजी के ग्रन्थों के अनुसार भी मानवीय आयु को बहुत लम्बी पाते हैं। मनु शतरूपा की तपस्या के विषय में आपने लिखा है कि मनु बहुत वर्ष राज्य करने के उपरान्त अपने पुत्र को बरबस कार्य-भार सौंप कर अपनी धर्मपत्नी शतरूपा के साथ बन में तपस्या करने चले गये। इस लेख से अनुमान किया जा सकता है कि आधी से अधिक आयु अवश्यमेव गार्हस्थाश्रम में व्यतीत हुई होगी। अब आगे उनकी तपस्या के वर्षों की गणना आती है:—

करहिं अहार शाकफलकन्दा। सुमिरहिं ब्रह्म सच्चिदानन्दा॥
पुनि हरिहेतु करन तप लागे। बारिअहार मूलफलत्यागे॥

× × × × ×

एहि विधि बीते वर्ष खट, सहस बारि आहार।
सम्बत् सप्त सहस्र पुनि, रहे समीर अधार॥
वर्ष सहस दस त्यागेउ सोऊ। ठाढ़े रहे एक पग दोऊ॥

को मिल जाता है। ग़ाज़ीमियाँ की क़बर को पूजकर पीर बिरहना की क़बर के पास आते हैं। इस क़बर पर ४१५ दण्डे एक या दो हाथ लम्बे टँगे रहते हैं। यह दण्डा उस स्त्री या पुरुष के सिर पर रक्खा जाता है, जिससे भूत या प्रेत चिपटा हो। इस दण्डे के स्पर्श से भूत उतर जाता है यह विश्वास अक़ल के भंडार हिन्दुओं को ही है। ग़ाज़ीमियाँ की क़बर के उत्तर में एक पेड़ है उस पेड़ को डालियों में लम्बी २ रस्सियाँ बंधी हुई होती हैं। इन रस्सियों से स्त्रियों के हाथ बाँध देते हैं और सुबह से रात्रि के ११ बजे तक वहाँ ही बकरी सी बंधी रहती हैं। वहाँ उनकी कामना पूरी हो जाती है। शूकरी और कुतिया के सन्तान पैदा हो जायँ, किन्तु हिन्दुओं की सन्तान ग़ाज़ीमियाँ के अनुग्रह से ही होती है। जिस धर्मद्रोही का महाराज सुहलदेव जी ने प्राणान्त किया था आज उन्हीं की सन्तान उसकी क़बर पर जाकर धर्म-धन को लुटाती हैं !!!

इस वर्ष-गणना को ध्यान में लाने से मनुष्य की बुद्धि चकराती है। कन्द-मूल-फल खाकर कितने वर्षों तक दम्पति ने तप किये इसकी अवधि तो कवि ने न दी, परन्तु अन्तिम वर्षों का योग २३००० वर्ष होते हैं !!! इस क्रम से दोनों की आयु ५०००० वर्षों से न्यून नहीं प्रतीत होती। इसी प्रकार पार्वती के तप के विषय में लिखते हैं—

संवत सहस मूल फल खाये। शाक खाइ शत बर्ष गँवाये॥
कछु दिन भोजन वारि बतासा। किये कठिन कछु दिन उपवासा॥
बेलपात महि परे सुखाई। तीन सहस संवत सो खाई॥
पुनि परिहरेउ सो खानेउ परना। उमा नाम तब भयउ अपरना॥

यद्यपि कई स्थल पर 'कछु दिन' लिख कर ही छोड़ दिया है, तथापि सब मिलाकर कुमारी पार्वती का पाँच छः सहस्र वर्ष तप करना सिद्ध होता है। महादेव की तपस्या का तो कहना ही क्या है ?

बीते सम्वत् सहससतासी। तजी समाधि शम्भु अबिनासी॥

८७००० वर्ष तक लगातार समाधि लगाये रह गये !!!

पाठक समझ गये होंगे कि इन सब वर्षों को गणना में गोसाईं जी ने आँखें मूँद कर पुराणों का अनुकरण किया है।

[११] वैदिक-काल में आर्य जाति सर्वथा और सर्वदा निरामिष थी। परन्तु पुराणों में जहाँ तहाँ आर्यों के माँसभक्षण का उल्लेख पाया जाता है। परम वैष्णव होते हुए भी गोस्वामी जी ने पौराणिक परम्परा से मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्र के बालपन का वर्णन करते हुए लिखा है:—

बन्धु सखा सङ्ग लेहिं बुलाई। बन मृगया नित खेलहिं जाई॥
पावन मृग मारहिं जिय जानी। दिन प्रति नृपहि देखावहिं आनी॥
जे मग राम बाण ते मारे। ते तनु तजि सुरलोक सिधारे॥
अनुज सखा मिलि भोजन करहिं। मातु पिता आज्ञा अनुसरहीं॥

यद्यपि ऊपर की तीनों चौपाइयों के साथ चौथी चौपाई का कोई सम्बन्ध विशेष नहीं, तथापि कितने ही मांसाहारियों को ग्रन्थकार ने इस दुस्साहस का दुरवसर प्रदान किया ताकि वे ऐसा अनर्थ कर सकें कि रामचन्द्र मारे हुए पावन मृगों का मांस अपने भाइयों तथा साथियों के साथ भोजन करते थे। यदि इसके वास्तविक अर्थ का प्रदर्शन करके हम चौथी चौपाई को दूसरी से पृथक भी कर दें तौ भी रामचन्द्र पर 'पावन मृग' मारने का दोष आये बिना रुक नहीं सकता। हिंसक पशुओं का आखेट तो राजाओं और क्षत्रियों के निमित्त विहित है, पर 'पावन मृग' मारने का पाप तो सर्वथा गर्हित है। यद्यपि तीसरी चौपाई लिखकर गोस्वामी जी ने बहुत आड़-तोप की है, तथापि वह लेख साध्य कोटि में होने के कारण ही द्वितीय चौपाई में वर्णित इतिहास आजकल के हिंसा-प्रेमियों और हत्यारों के जघन्य

कर्म की आड़-तोप का साधन बन गया है। ऐसी ही भूल भानुप्रताप की कथा में भी आपने कर दी है, जहाँ कपटी मुनि ने भानुप्रताप की पाकशाला के पाक बनाये हैं, वहाँ लिखा है:—

'विविध मृगन कर आमिस राँधा। तामहँ बिप्रमांस खल साँधा॥'

यहाँ पर प्रगट होता है कि ब्राह्मण लोग अन्यान्य मृगों का मांस खाते थे, केवल बिप्र-मांस-भक्षण में ही अनौचित्य समझा जाता था, क्योंकि आकाशवाणी उसीके सम्बन्ध में हुई:—

'भयउ रसोईं भूसुरमाँसू। सब द्विज उठे मानि विस्वासू॥'

इस उपाख्यान में गोस्वामी तुलसीदास जी ने ब्राह्मणों तक को मृग-मांस भक्षण कराया !!! ये सब पुराणों की लीलाएँ हैं।

उपसंहार

गोस्वामी तुलसी दास जी के वर्णन का मूलस्रोत पुराणों से ही प्रारम्भ होता है जैसा स्वयं कहा है:—

ना ना पु रा ण नि ग मा ग म स म्म तं

यद्रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि—

स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथा—

भाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति॥

पुराण-निगम और आगम से सहारा लेने के अतिरिक्त गोस्वामी जी ने जनश्रुति से भी बहुत कुछ अवलम्ब लिया है। कई कथाएँ ऐसी लिखी हैं जिनका उल्लेख किसी ग्रन्थ-विशेष में नहीं पाया जाता। स्वयं ग्रन्थकार को—

नाना भाँति राम अवतारा। रामायण शतकोटि अपारा॥
कलप भेद हरिचरित सुहाए। भाँति अनेक मुनीशन गाए॥

लिख कर संगति लगानी पड़ी। कवि ने 'अन्यतोऽपि' का भी बहुत कुछ अनुसरण किया है। राम और शिव के विवाहों में गाली गवाना, दहेज और नेग दिलवाना तथा स्त्रियों का परस्पर हँसी मखौल सब 'अन्यतोऽपि' ही की बानगी है।

जेंवत जानि मधुर धुनि गारी। लै लै नाम पुरुष अरुनारी॥

इत्यादि उल्लेख आजकल के भ्रष्ट विवाहों की देखा देखी से लिख दिया है। वैदिक काल में कदापि ऐसी कुरीति नहीं थी। पाठकों को उचित है कि गोस्वामी जी के ग्रन्थों को पढ़ते समय अपने बुद्धि-विवेक से भी काम लें, जैसा कहा भी है:—

मारग जो धरिये पग तो, तेहि दीठिते सोधि छिनै छिन माहीं।
पीजिय जौ जल तौ पट सोधि, तो लाभ अनेक कछू सक नाहीं॥
कीजिय जो गुरु तो कुल सोधि, न तो मन में भ्रम होत सदाहीं।
'श्रीपति' जो पढ़िये तेहि बुद्धि ते, सोधि न तो श्रम होत वृथाहीं॥

[५] देवता और तुलसीदास

हम वेदों और ब्राह्मण ग्रन्थों से लेकर हिन्दी भाषा की एक छोटी से छोटी पुस्तक तक में 'देवता' शब्द का प्रयोग पाते हैं। पुराणों में तो देवताओं के विषय में बहुत कुछ लिखा गया है, जिसका प्रतिफलस्वरूप आज हिन्दू जाति के अन्दर इस विषय के नाना प्रकार के विचार फैले हुए हैं। लोगों की धारणा है कि आकाश में देवताओं का किसी देवलोक-विशेष में निवास है, उनकी संख्या ३३ करोड़ है और इन्द्र उनका राजा है, इत्यादि। हम ईसाई, यहूदी और इसलामी साहित्य में भी देवताओं का उल्लेख पाते हैं, परन्तु इन साहित्यों में देवता न लिख कर 'फिरिश्ता' शब्द से उद्बोधन कराया गया है। मुसलमानों के ग्रन्थ बतलाते हैं कि फिरिश्तों के शरीर आग के बने हैं और वे मनुष्यों की अपेक्षा सूक्ष्म सत्ता रखने वाले हैं, यही कारण है कि कुरानी खुदा के हुक्म देने पर भी इबलीस ने आदम की परस्तिश न की। ईसाइयों, यहूदियों और मुसलमानों के ग्रन्थ फिरिश्तों के निवास आसमान पर बताते हैं। अब विचारना यह है कि वास्तव में 'देवता' क्या है? देव शब्द की व्युत्पत्ति निरुक्तकार लिखते हैं।

देवो दानाद्वा द्योतनाद्वा

अर्थात् देव का अर्थ दान देना एवं प्रकाश वा द्युतियुक्त होना है। निरुक्त के 'द्युस्थानो भवतीति वा' पद से आकाश में देवों का होना वा रहना भी सिद्ध है। 'दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु' इस धातु से 'देव' शब्द सिद्ध होता है। अर्थात् जिस में क्रीड़ा, विजय की इच्छा, व्यवहार कुशलता, द्युति, प्रशंसा प्राप्ति की योग्यता, आनन्द, शयन कामना, और गति (गमन, मोक्ष, ज्ञान) की शक्ति विद्यमान हो उन्हें देवता कहते हैं। 'विद्वा ं्ऽसो हि देवाः' शतपथ ब्राह्मण का वचन है अर्थात् विद्वानों को देवता कहते हैं। 'देव' शब्द के धात्वर्थ पर विचार करने और वेदादि सद्ग्रन्थों के अवलोकन से प्रतीत होता है कि देवता दो प्रकार के होते हैं—(१) चेतन देव, (२) जड़ देव। विद्वान, सदाचारी, धर्मात्मा और परोपकारी पुरुषों को देव तथा विदुषी, सदाचारिणी, धर्मशीला और परोपकारिणी स्त्रियों को देवी कहते हैं—जिनकी परिगणना देवता के समानान्तर्गत है। जड़ देव ३३ हैं, जिनका विभाग इस प्रकार है—आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, यज्ञ और विद्युत्।

यदि हम यह भी मान लें कि किसी लोकविशेष में जहाँ सांसारिक सुखों का बाहुल्य है, वहाँ जो ऐश्वर्यशाली महाभाग रहते हैं उन्हें 'देवता' कहते हैं तो इसमें कोई आपत्ति प्रतीत नहीं होती, परन्तु हम गोस्वामी तुलसीदास जी के ग्रन्थों में विशेषतः रामचरित-मानस में देखते हैं कि वहाँ कविवर ने देवताओं का अच्छा

चरित्र-चित्रण नहीं किया है। देवताओं ने अपने स्वार्थवश रामचन्द्र को वनवास दिलवाया था, इसी चिढ़ से तुलसीदास जी महाराज देवताओं से रूठे और रूखे थे, अतः उन्हों ने पग पग पर उनका परिहास किया हैं। कपटी, कुचाली और चोर तक कह देना गोसाईं जी की लेखनी का कौतुकमात्र था। उनके उपास्य देव (राम) के विरुद्ध जिसने कुछ भी आन्दोलन किया, चर्चा की अथवा कुछ सम्मति प्रगट की वहाँ गोसाईंजी सत्तू पानी लेकर उसके साथ समर ठान लेते थे। पुराणों तथा स्वयं गोसाईंजी के स्वमतानुसार भी परशुराम जी अवतार ही समझे जाते हैं, परन्तु जनक की यज्ञशाला में बेचारे की जैसी दुर्दशा करायी गयी है कि उसे वे ही जानेंगे। पार्वती ने मोहवश सीता का स्वरूप धारण किया, उस पर भी तुलसीदास उस सती का शिव के द्वारा परित्याग कराते हैं।

शिव सङ्कल्प कीन्ह मनमाहीं। एहि तनु सतिहिं भेंट अब नाहीं॥

पाठक जानते हैं कि सती को पुनः शिव की प्राप्ति के लिये क्या क्या कष्ट झेलने पड़े !!! अब देखिये नारद महाराज जी तपस्या करते हैं, उनका तप देख कर देवराज इन्द्र के अन्तःकरण में स्पर्द्धा उठती है:—

मुनिगति देखि सुरेश डेराना। कामहिं बोलि कीन्ह सनमाना॥
सहित सहाय जाहु मम हेतू। चल्यौ हरखि हिय जलचरकेतू॥
सुनासीर मन महँ अतित्रासा। चहत देव ऋषि मम पुरबासा॥

यदि देवर्षि नारद इन्द्र-लोक-प्राप्ति के निमित्त ही तपस्या करते थे तो इसमें इन्द्र का क्या बिगड़ता था ? अब जरा इन्द्र महाराज के लिये अनुपम उपमा सुनिये:—

कामी लोलुप जे जग माहीं। कुटिल काक इव सबहिं डराहीं॥
सूख हाड़लै भाग सठ, स्वान निरखि मृगराज।
छीनि लेइ जिय जान जड़, तिमि सुरपतिहिं न लाज॥

देवताओं के राजा यदि इन्द्र ऐसे विचार के थे, तो देवता कैसे होंगे ? अब अयोध्याकाण्ड में चलिये। राम के अभिषेक का सारा प्रबन्ध हो गया है, नगर में आनन्दोत्सव मनाया जा रहा है:—

बाजहिं बाजन बिबिधबिधाना। पुरप्रमोद नहिं जाइ बखाना॥
हाट बाट घर गली अथाई। कहहिं परस्पर लोग लुगाई॥
कालिह लगन भल केतिक बारा। पूजहिं बिधि अभिलाष हमारा॥

इसके बाद देवताओं की दुर्दशा सुनिये:—

सकल कहहिं कब होइहिं काली। विघ्न मनावहिं देव कुचाली॥
तिन्हहिं सुहाइ न अवध बधावा। चोरहिं चाँदनि राति न भावा॥
शारद बोलि विनय सुर करहीं। बारहिं बार पायँ लै परहीं॥

× × × × ×

वार वार गहि चरण सकोची। चली बिचारि बिबुध मतिपोची॥
ऊँच निवास नीच करतूती। देखि न सकहिं पराइ विभूती॥

ऊपर के विशेषणों को पढ़ कर आप सहज में ही अनुमान कर सकते हैं कि गोस्वामी के हृदय में देवताओं के प्रति कितना ऊँचा भाव था?

अयोध्याकाण्ड में राम-भरत-मिलाप और वार्त्तालाप के समय विक्षोभ उपस्थित कराने के लिये गोसाईं जी पुनः देवताओं को स्मरण करते हैं:—

अस कहि शारद गइ बिधिलोका। विबुध बिकल मिसि मानहु कोका॥
सुर स्वारथी मलीन मन, कीन्ह कुमंत्र कुठाट।
रचि प्रपंच माया प्रबल, भय भ्रम अरति उचाट॥
करि कुचाल सोचत सुरराजू। भरत हाथ सब काज अकाजू॥

देवराज इन्द्र पर श्री गोसाईंजी की बड़ी कृपा रहती थी, देखिये उनकी उपमा के लिये कैसे शब्द प्रयुक्त किये हैं:—

देखि दुखारि दीन, दुहुँ समाज नर नारि सब।
मघवा महा मलीन, मुये मारि मंगल चहत॥
कपट कुचालिसींव सुरराजू। पर अकाज प्रिय आपन काजू॥
काक समान पाकरिपु रीती। छली मलीन न कतहुँ प्रतीती॥
प्रथम कुमति करि कपट सकेला। सो उचाट सबके सिर मेला॥

यहाँ तक लिख कर गोसाईं जी की साहित्यिक उपमाएँ जब समाप्त हो गयीं तब विवश होकर आपने पाणिनि मुनि निर्मित व्याकरण की शरण ली है:—

लखि हिय हँसि कह कृपानिधानू। सरिस स्वान मघवान जुवानू॥

इस में श्वन्-युवन्-मघवन् शब्द सिद्ध करने वाले 'श्वयुवमघोनामतद्धिते' सूत्रकी आड़ लेकर आपने इन्द्र महाराज को अच्छी बिरादरी में बिठाया है !!!

गोसाईंजी ने अपने ग्रन्थों में देवताओं के जिम्मे दो ही काम मुख्य रूप से सुपुर्द किये हैं (१) दुन्दुभी बजाना और (२) पुष्प बरसाना। जहाँ कोई अद्भुत घटना हुई वहाँ—जङ्गल हो वा नगर, सागर हो वा समर—देवता वेचारों को नगाड़े बजाने पड़ते थे और फूल वरसाना भी अनिवार्य था। जान पड़ता है कि देवता सदा गले में दुन्दुभी बाँधे रहते और झोली में फूल लिये घूमते थे !!!

सुमन वृष्टि नभ बाजन बाजे। मङ्गल कलस दसहुँ दिसि साजे॥
× × × ×
'देवन दीन्हीं दुन्दुभी, प्रभु पर बरसहिं फूल।' इत्यादि

अपनी हँसोड़ तबियत से गोसाईंजी ने शिव की बरात की भद उड़ा दी है:—

शिवहिं शम्भु गण करहिं सिंगारा। जटा मुकुट अहि मौर सँवारा॥
कुण्डल कङ्कन पहिरे ब्याला। तनु बिभूति कटि केहरिछाला॥

ससि ललाट सुन्दर शिव गङ्गा। नैन तीन उपवीत भुजङ्गा ॥
गरल कण्ठ उर नरशिरमाला। अशिव वेष शिवधाम कृपाला ॥
कर त्रिशूल उर डमरू विराजा। चले बसह चढ़ि बाजहिं बाजा ॥
देखि शिवहिं सुरतिय मुसुकाहीं। बर लायक दुलहिन जग नाहीं ॥
विष्णु विरञ्चि आदि सुरत्राता। चढ़ि चढ़ि बाहन चले बराता ॥
सुर समाज सब भाँति अनूपा। नहिं बरात दूलह अनुरूपा ॥
विष्णु कहा अस बिहँसि तब, बोलि सकल दिसि राज।
बिलग बिलग होइ चलहु सब, निज निज सहित समाज ॥
बर अनुहारि बरात न भाई। हँसी करैहहु परपुर जाई ॥
विष्णु वचन सुनि सुर मुसुकाने। निज निज सेन सहित बिलगाने ॥
मन ही मन महेश मुसुकाहीं। हरि के व्यङ्ग वचन नहिं जाहीं ॥
अतिप्रिय बचन सुनत हरिकेरे। भृङ्गी प्रेरि सकल गण टेरे ॥
शिव अनुशासन सुनि सब आये। प्रभु पद जलज सीस तिन नाये ॥
नाना वाहन नाना भेखा। विहँसे शिव समाज निज देखा ॥
कोउ मुखहीन विपुल मुख काहू। कोउ बिनु पद कोउ बहुपद-बाहू ॥
विपुल नयन कोउ नयनबिहीना। हृष्ट पुष्ट कोउ अति तनुछीना ॥

छन्द—तनु छीन कोउ अतिपीन पावन कोउ अपावन तनु धरे।
भूषण कराल कपाल कर सब सद्य शोणित तनु भरे ॥
खर स्वान सुअर शृगाल मूसक वेष अगणित को गनै।
बहु जिनिस प्रेत पिशाच जोगिनि भाँति बरणत नहिं बनै ॥

सोरठा—नाचहिं गावहिं गीत, परम तरंगी भूत सब।
देखत अति बिपरीत, बोलहिं बचन विचित्र अति ॥

जस दुलह तस बनी बराता। कौतुक विविध होइ मगु जाता ॥

× × × × ×

नगर निकट बरात जब आई। सुर खरभर शोभा अधिकाई ॥
करि बनाव सजि बाहन नाना। चले लेन सादर अगवाना ॥
हिय हरखे सुर सेन निहारी। हरिहिं देखि अति भये सुखारी ॥
शिव समाज जब देखन लागे। बिडरि चले वाहन सब भागे ॥
धरि धीरज तहँ रहे सयाने। बालक सब लै जीव पराने ॥
गये भवन पूछहिं पितु माता। कहहिं बचन भय कम्पित गाता ॥
कहिय कहा कहि जाई न बाता। यम कै धार किधौ बरिआता ॥
वर बौराह बरद असवारा। व्याल कपाल बिभूषित छारा ॥

छन्द—तनुछार व्याल कपाल भूषण नगन जटिल भयङ्करा।
सँग भूत प्रेत पिशाच जोगिन बिकट मुख रजनीचरा ॥
जो जियत रहि हि बरात देखत पुन्य बड़ तिनकर सही।
देखहिं सो उमा विवाह घर घर बात अस लरिकन कहीं ॥

पाठक देखें कि गोसाईं जीने किस प्रकार अद्भुत और शान्तरस का संमिश्रण करके शिव-बरात की उधेड़-बुन की है। स्वयं शिवजी ही अपना समाज देख कर हँस पड़े हैं, तब औरों की कौन कहे ?

यह बात नहीं है कि तुलसी दास जी बारात का वर्णन करना ही नहीं जानते थे, रामचन्द्र की बारात वर्णन करने में जब कवि-राज की लेखनी उठी है, तो उसने आकाश-पाताल एक कर दिया है। रामचन्द्र जिस अश्वपर आसीन थे, जरा उसका वर्णन सुन लीजिये:—

जनु बाजिबेषु बनाइ मनसिज, रामहित अतिसोहई।
आपने बय बल रूप गुणगति, सकल भुवन बिमोहई॥
जगमगत जीन जड़ाव ज्योति, सुमोति माणिक मणि लगे।
किंकिणि ललाम लगाम ललित, बिलोकि सुरनर मुनि ठगे॥
प्रभु मनसहिं लवलीन मन, चलत बाजि छवि पाय।
भूषित उडुगण तड़ित घन, जनु बर बरहि नचाय॥
जेहि बरबाजि राम असवारा। तेहि शारदहु न बरणै पारा॥

महादेव की बारात को देख कर और दूलह के दर्शन करके तो आबाल-वृद्ध-बनिता सब के सब भय से कम्पित हो गये, परन्तु राम की बारात का वर्णन सुनिये:—

विविध भाँति होहहि पहुनाई। प्रिय न काहि अस सासुर माई॥
तब तब रामलखन हिं निहारी। होइ हैं सब पुरलोग सुखारी।
सखि जस रामलषणकर जोटा। तैसेइ भूपसंग दुइ ढोटा॥
श्याम गौर सब अङ्ग सुहाये। ते सब कहहिं देखि जे आये॥
कहा एक मैं आजु निहारे। जनु विरञ्चि निज हाथ सँवारे॥
भरत राम ही की अनुहारी। सहसा लखि न सकहिं नर नारी॥
लषण शत्रुसूदन इक रूपा। नखशिख तैं सब अंग अनूपा॥
मनभावहिं मुख बरणि न जाहीं। उपमा कहँ त्रिभुवन कोउ नाहीं॥
उपमा न कोउ कह दास तुलसी, कतहुँ कवि कोविद कहै।
बलविनयविद्याशीलशोभासिन्धु इन सम एइ अहै॥
पुर नारि सकल पसारि अञ्चल, बिधिहिं बचन सुनावहीं।
ब्याहिय सुचारिउ भाइ यहि पुर, हम सुमङ्गल गावहीं॥
कहहिं परस्पर नारि, बारि बिलोचन पुलक तन।
सखि सब करब पुरारि, पुण्य-पयोनिधि भूप दोउ॥

इन उद्धरणों से अब शिव की बारात का मिलान करें को आप इस परिणाम पर अवश्य पहुँचेंगे कि गोस्वामी जी ने हास्य और मनोविनोद के लिये ही शिवजी की बारात का उक्त वर्णन किया है।

नारद महाराज की जो दुर्गति शीलनिधि राजा की कन्या के स्वयंवर में करायी है वह हास्य और शोक की पराकाष्ठा है। काम के वशीभूत होकर नारद उस कन्या से विवाह करने पर आतुर हैं, विष्णु ने भी उनके साथ छल किया। सारा शरीर सुन्दर देकर मुख बन्दर सा दे दिया। अब स्वयंवर का वर्णन पढ़िये:—

× × × ×

निज निज आसन बैठे राजा। बहु बनाव करि सहित समाजा॥
मुनि मन हरख रूप अति मोरे। मोहि तजि आन बरिहिं नहिं भोरे॥
मुनिहितकारन कृपानिधाना। दीन्ह कुरूप न जाइ बखाना॥
सो चरित्र लखि काहु न पावा। नारद जानि सबन शिर नावा॥
रहे तहाँ दुइ रुद्रगण, जे जानहिं सब भेउ।
विप्रवेष देखत फिरहिं, परम कौतुकी तेउ॥
जेहि समाज बैठे मुनि जाई। हृदय रूप अहमिति अधिकाई॥
तहँ बैठे महेशगण दोऊ। विप्रवेषगति लखै न कोऊ॥
करहिं कूट नारदहिं सुनाई। नीक दीन्ह हरि सुन्दरताई॥
रीझिहिं राजकुअरि छवि देखी। इनहिं बरिहिं हरि जानि विशेषी॥
मुनिहिं मोह मन हाथ पराये। हँसहिं शम्भुगण अति सचुपाये॥
यदपि सुनहिं मुनि अटपट बानी। समुझि न परै बुद्धि भ्रमसानी॥
काहु न लखा सो चरित विशेखी। सो स्वरूप नृपकन्या देखी॥
मर्कटबदन भयंकर देही। देखत हृदय क्रोध भा तेही॥
सखी संग लै कुँवरि तब, चलि जनु राजमराल।
देखति फिरै महीप सब, कर सरोजजयमाल॥
जेहि दिसि बैठे नारद फूली। सो दिसि तेहि न बिलोकेउ भूली॥
पुनि पुनि मुनि उसकहिं अकुलाहीं। देखि दसा हरगण मुसुकाहीं॥

× × × ×

अब इसके आगे यह वर्णन है कि स्वयं विष्णु महाराज स्वयम्बर में राजा का शरीर धारण करके गये और कन्या को स्वयं विवाह लाये।

नारद जैसे ज्ञानी भक्त की ऐसी बेइज्जती व्यर्थ करायी गयी। यद्यपि इसका समाधान भी रामायण में गोसाईंजी ने अपने अनुकूल किया है, तथापि इसमें विष्णु का भी छल-व्यवहार प्रकट है, नारद को समझा देना पर्याप्त होता। अब नारद की विष्णु के ऊपर पुष्प-वृष्टि देखिये:—

बीचहिं पन्थ मिले दनुजारी। संग रमा सोइ राजकुमारी॥
बोले बचन मधुर सुरराई। मुनि कहँ चले विकल की नाईं॥
सुनत बचन उपजा अतिक्रोधा। मायावश न रहा मनवोधा॥
परसम्पदा सकहु नहिं देखी। तुम्हरे ईर्षा कपट विशेखी॥
मथत सिन्धु रुद्रहिं बौरायेहु। सुरन प्रेरि विषपान करायहु॥

कपि आकृति तुम्ह कीन्ह हमारी। करिहहिं कीस सहाय तुम्हारी ॥
मम अपकार कीन्ह तुम भारी। नारिबिरह ते होहु दुखारी ॥

× × × × ×

इस कथा का वास्तविक रहस्य गोस्वामी जी महराज ने अरण्यकाण्ड के अन्त में पूर्व कथा की संगति लगाने के उद्देश्य से इस प्रकार प्रकट किया है:—

अतिप्रसन्न रघुनाथहिं जानी। पुनि नारद बोले मृदुवानी ॥
राम जबहिं प्रेरहु निज माया। मोहेहु मोहिं सुनहु रघुराया ॥
तब बिवाह चाहौं मैं कीन्हा। प्रभु केहि कारण करै न दीन्हा ॥
सुनि मुनि तोंहि कहौं सहरोसा। भजहिं जे मोंहिं तजि सकल भरोसा॥
करौं सदा तिनकी रखवारी। जिमि बालक पालै महतारी ॥
गहि शिशु बच्छ अनल अधिकाई। तहँ राखै जननि अरगाई ॥
प्रौढ़ भये तेहि सुत पर माता। प्रीति करै नहिं पाछिल बाता ॥
मोरे प्रौढ़ तनय सम ज्ञानी। बालक सुत सम दास अमानी ॥
जिनहिं मोर बल निज बल ताहीं। दुहुँ कहँ काम क्रोध रिपु आहीं ॥
यह बिचारि पण्डित मोहिं भजहीं। पायहु ज्ञान भक्ति नहिं तजहीं ॥

काम क्रोध लोभादि मद, प्रबल मोह की धारि।
तिन्ह मँह अति दारुण दुखद, मायारूपी नारि ॥

सुनि मुनि कह पुराणश्रुतिसंता। मोहविपिन कहँ नारि वसन्ता ॥
जप तप नेम जलाशय झारी। है ग्रीषम सोखै सब वारी ॥
काम क्रोध मद मत्सर भेका। इनहिं हर्षप्रद वर्षा एका ॥
दुर्वासना कुमुद समुदाई। तिन कंह शरद सदा सुखदाई ॥
धर्म सकल सरसीरूहवृन्दा। है हिम तिन्है देत दुख मंदा ॥
पुनि ममताजवास बहुताई। पलुहै नारि शिशिर ऋतु पाई ॥
पाप उलूक निकट सुखकारी। नारि निविड़ रजनी अँधियारी ॥
बुधिबल शील सत्य सब मीना। बंसीसम तिय कहंहि प्रवीना ॥

अवगुण मूल शूलप्रद, प्रमदा सब सुख खानि।
ताते कीन्ह निवारण, मुनि मैं यह जिय जानि ॥

जब नारद जैसे मुनि भी इस प्रकार काम के वशीभूत हुए तो इसमें विष्णु का ही दोष था कि उन्होंने माया का विस्तार करके मुनि की बुद्धि बिगाड़ दी। मुनि ने विष्णु को शाप दिया। फलतः दोनों ने दोनों की मर्यादा मिट्टी में मिलायी, जिसकी असङ्गति इस लेख से नहीं लग सकी।

देवताओं का अच्छा चित्र गोसाईं जी ने जनता के समक्ष नहीं रक्खा। शेष बातें 'पुराण और तुलसीदास शीर्षक में पीछे लिख आये हैं।

[६] रामोपासना और तुलसीदास

गोस्वामी तुलसीदास श्री सीताराम के अनन्योपासक थे। आपने जितनी ग्रन्थ-रचना की है उन सब का उद्देश्य

स्वान्तःसुखाय तुलसीरघुनाथगाथा
भाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति।

ही रक्खा है। सीताराम के अतिरिक्त जितने भी देवों की बन्दना की है उसके फल-स्वरूप राम-भक्ति की ही याचना की है। तुलसी सतसई की चातक की अन्योक्ति में इस बात का स्पष्ट निदर्शन किया है कि राम के अतिरिक्त उन्हें किसी अन्य का भरोसा नहीं। विनय पत्रिका का निम्न भजन इसी का द्योतक है।

नाहिंन आवत आन भरोसो।
यहि कलिकाल सकल साधन तरु है स्रम-फलनि फरो सो॥
तप, तीरथ, उपवास, दान, व्रत जेहि जो रुचै करो सो।
पाएहि पै जानिबो करम-फल, भरि भरि वेद परोसो॥
आगम-बिधि, जप, जाग करत नर सरत न काम खरो सो।
सुख सपनेहु न जोग-सिधि-साधन, रोग बियोग धरो सो॥
काम, क्रोध, मद, लोभ मोह मिलि ज्ञान बिराग हरो सो।
बिगरत मन संन्यास लेत जल नावत आम घरो सो॥
बहुमत सुनि बहु पथ पुराननि जहाँ तहाँ झगरो सो।
गुरु कह्यो राम भजन नीको मोहिं लागत राज-डगरो सो॥
तुलसी बिनु परतीति प्रीति फिरि फिरि पचि मरै मरो सो।
राम नाम बोहित भवसागर, चाहै तरन तरो सो॥

विनय-पत्रिका के जो भजन द्वितीय-भाग के अन्त में उद्धृत किये गये हैं उनमें से रामभक्ति का सरस प्रवाह प्रवाहित हो रहा है। गोस्वामी जी राम को ही अपना सर्वस्य समझते थे; जैसा कवितावली में कहा है:—

राम हैं मातु पिता गुरू बंधु औ संगी सखा सुत स्वामि सनेही।
राम की सौंह भरोसो है राम को, राम रँग्यो रुचि राच्यो न केही॥
जीयत राम, मुये पुनि राम, सदा रघुनाथहि की गति जेही।
सोई जियै जग मैं तुलसी, नतु डोलत और मुये धरि देही॥
सो जननी, सो पिता, सोइ भाइ, सोइ भामिनी, सो सुत, सोहि मेरो।
सोउ सगो, सो सखा, सोइ सेवक, सो गुरु, सो सुर, साहिब, चेरो॥
सो तुलसी प्रिय प्रान समान, कहाँ लो बनाइ कहौं बहुतेरो।
जो तजि देह को गेह को नेह सनेह सों राम को देह सबेरो॥

× × × × ×

तुलसीदास के विचारानुसार राम-भक्ति के लिये ही मानव-शरीर मिलता है, अपितु राम-भक्ति-विहीन मनुष्य से पशु पक्षियों का जीवन उत्तम बतलाया है:-

तिन्ह तें खर सूकर स्वान भले, जड़तावस ते न कहैं कछु वै।
तुलसी जेहि राम सों नेह नहीं, सो सही पसु पूछ विखान न द्वै॥
जननी कत भार मुई दस मास, भई किन बाँझ, गई किन च्वै।
जरि जाउ सो जीवन, जानकीनाथ! जिये जगमें तुम्हरो बिन ह्वै॥

× × × × ×

रामचरितमानस में तो स्पष्ट कह दिया है:—

पुत्रवती युवती जग सोई। रघुबर-भक्त जासु सुत होई॥
न तरु बाँझ भलि बादि बिआनी। राम-विमुख सुत ते हित-हानी॥

× × × × ×

सो सुख करम धरम जरि जाऊ। जह न राम पद-पङ्कज भाऊ॥

× × × × ×

गोस्वामीजी अपने शरीर के एक एक रोम का अस्तित्व राम-भक्ति के लिये ही चाहते थे, जैसा सत-सई में कहा है:—

हिय फाटै फूटै नयन, जरै सो तन केहि काम।
द्रवहिं स्रवहिं पुलकहिं नहिं, तुलसी सुमिरत राम॥

रामचरित-मानस में अपने अङ्गों की उपयोगिता का कविराज ने इस प्रकार वर्णन किया है:—

ते शिर कटुतूमरिसम तूला। जे न नमहिं हरि गुरु पद मूला॥
नयनन सन्त दरस नहिं देखा। लोचन मोर पंख कर लेखा॥
जो महिं करै ईशगुणगाना। जीह सो दादुरजीहसमाना॥
जिन हरिकथा सुनी नहिं काना। श्रवणरन्ध्र अहिभवन समाना॥
कुलिश कठोर निठुर सोइ छाती। सुनि हरि चरित न जो हरखाती॥

× × × × ×

अहह !!! कैसा उच्च आदर्श है ! भक्त-राज की कैसी उच्च भावना है !! ईश्वर-भक्ति की कैसी प्रेम-पराकाष्ठा है !!! भगवान यदि मनुष्य शरीर दें तो ऐसा ही विचार दें। कवियों ने मनुष्य के सौन्दर्य को वर्णन कर के वास्तव में अभिमान की ही वृद्धि की है, नहीं तो सच्ची बात यह है कि मनुष्य में यदि देश-भक्ति, जाति-भक्ति, और ईश्वर भक्ति न हुई तो सारी सुन्दरता धूल है। मनुष्य के नेत्र, नासिका और अन्यान्य अङ्गोपाङ्गों से पशु पक्षियों के अङ्ग कहीं सौन्दर्य पूर्ण होते हैं। फलतः गोस्वामी जी के सिद्धान्त से ईश्वर-भक्ति में ही लवलीन रहने से समस्त शरीर की उपादेयता है।

बहुतों की यह धारणा है कि गोस्वामी जी राम को विष्णु का अवतार मानते थे, परन्तु बात ऐसी नहीं है। राम को गोस्वामी जी ब्रह्मा, विष्णु और शिव से परे समझते थे, जैसा कहा है:—

जग पेखन तुम देखनहारे। विधि हरि शंभु नचावनहारे॥
तेउ नहिं जानहिं मर्म तुम्हारा। और कहहु को जाननिहारा॥

इसी प्रकार सीता को उमा, रमा और ब्रह्मानी से भी उच्च समझते थे:—

बामभाग शोभति अनुकूला। आदिशक्ति छबि-निधि जगमूला॥
जासु अंश उपजहिं गुणखानी। अगणित उमा रमा ब्रह्मानी॥
भृकुटिविलास जासु जग होई। रामबामदिशि सीता सोई॥

मनु-शतरूपा की तपस्या में कहा है:—

करहिं अहार शाकफलकन्दा। सुमिरहिं ब्रह्म सच्चिदानन्दा॥
पुनि हरिहेतु करन तप लागे। बारि अहार मूल फल त्यागे॥
उर अभिलाष निरन्तर होई। देखिय नयन परम प्रभु सोई॥
अगुण अखण्ड अनन्त अनादी। जेहि चिन्तहिं परमारथवादी॥
नेति नेति जेहि वेद निरूपा। चिदानन्द निरुपाधि अनूपा॥
शम्भु विरञ्चि विष्णु भगवाना। उपजहिं जासु अंश ते नाना॥

गोस्वामीतुलसीदास जी स्मार्त वैष्णव और अवतार-वादी थे, उन्होंने अपने उपास्य देव राम को उपर्युक्त ब्रह्म का अवतार माना है, तथापि लिखते हैं:—

नाना भाँति राम अवतारा। रामायण शतकोटि अपारा॥
हरि अवतारहेतु जेहि होई। इदमित्थं कहि जाइ न सोई॥

राम को ब्रह्म का अवतार बताते हुए भी कितने वैरागी उन्हें परब्रह्म से भी परे मानते हैं, जो दुराग्रह और पक्षपात की पराकाष्ठा है। गोस्वामी जीने भी सतसई के एक स्थल पर लिख मारा:—

सगुण पदारथ एक नित, निर्गुण अमित उपाधि।
तुलसी कहहिं विशेष ते, समुझि सुगति सुठि साधि॥

यहां कवि ने उपादान कारण में परिवर्त्तन दिखला कर ब्रह्म का सोपाधित्व कथन कर युक्त्याभास से काम लिया है। यद्यपि सगुण के अर्थ 'गुण सहित' के है तथापि कई अन्यान्य हिन्दी कवियों की भांति गोस्वामी जी ने भी इस शब्द को साकार अर्थ में प्रयुक्त किया है। भला साकार पदार्थ नित्य कैसे हो सकते हैं? उनका सदा एक स्वरूप में रहना भी असङ्गत है। जितने साकार पदार्थ हैं वे विकाररहित कदापि नहीं हो सकते, तद्विपरीत सर्वव्यापी और सर्वशक्तिमान् ब्रह्म स्वरूप से सोपाधि और सविकार नहीं हो सकता। जिस प्रकार सूर्य की किरणें सभी नेत्रों पर

समानरूप से पड़ती हैं, परन्तु अन्धनेत्रों पर पड़ने के कारण रवि-रश्मि में अन्धत्व का अध्यारोप नहीं होता, तदनुसार ही विश्व के सभी भले बुरे पदार्थों में व्यापक ब्रह्म उनके गुण दोषों से बद्ध न हो कर सर्वथा और सर्वदा निर्लेप रहता है, उपनिषद में कहा है:—

सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः ॥

इन सब बातों पर बिचार करने से यह निर्विवाद मानना पड़ता है कि साकारोपासना के महत्व-निदर्शन के अभिप्राय से ही भक्त-राज ने निर्गुण निर्लेप ब्रह्म में उपाधि का अध्यारोप किया है। इसी आशय का एक दोहा रामचरित-मानस के उत्तरकांड में भी आपने कहा है:—

निर्गुणरूप सुलभ अति, सगुण न जानै कोय।
करत फिरत नाना चरित, सुनि मुनिमन भ्रम होय ॥

यहां तो आप निर्गुणोपासना की अपेक्षा सगुणोपासना को ही दुर्लभ सिद्ध करते हैं। 'सुनि मुनिमन भ्रम होय' की पुष्टि के लिये ही आपने एतद्विषयक भ्रम की बातें सती से उठवा कर शिव से उनका परित्याग भी करा दिया।

जो हो; गोस्वामी जी ने साकार और निराकार विवेचन में ही ब्रह्म-सम्बन्धी विचार प्रगट किये हैं। कविवर विहारी के

'सूच्छमकटि पर ब्रह्म सी, अलख लखी नहिं जाय'

पद की भांति परब्रह्म पद का तुलसीदासजी ने कहीं दुरुपयोग नहीं किया।

तुलसी सत्सई—

में गोस्वामी जी ने राम को सर्वोपरि परमधामस्थ, परमपुरुष माना है और शिव, ब्रह्मादि की उत्पत्ति भी उन्हींसे मानी है, जो नीचे लिखे दोहों से प्रमाणित होती है:—

परम पुरुष परधाम बर, जापर अपर न आन।
तुलसी सो समुझत सुनत, राम सोइ निर्वान ॥
जाके रोमै रोम प्रति, अमित अमित ब्रह्मण्ड।
सो देखत तुलसी प्रगट, अमल सुअचल प्रचण्ड ॥
जिनते उद्भव, बर बिभव, ब्रह्मादिक संसार।
सुगति तासु तिनकी,कृपा, तुलसी बदहिं बिचार ॥
रेफ रमित परमात्मा, सह अकार सियरूप।
दीरघ मिलि विध जीव इव, तुलसी अमल अनूप ॥
अनुस्वार कारण जगत, श्री कर करण अकार।
मिलत अकार मकार भो, तुलसी हर दातार ॥

आप तुलसीकृत समस्त ग्रन्थों को पढ़ जाइये, उन सभी स्थलों पर आप देखेंगे कि भक्तराज ने राम के ऐश्वर्य और ईश्वरत्व प्रदर्शन में कोई कसर उठा न रखी है। राम के समक्ष ब्रह्मा, विष्णु और महेश को तथा सीता के सम्मुख ब्रह्म-पत्नी, रमा और उमा को भी तुच्छातितुच्छ सिद्ध करने का प्रयास किया है। रामचरित-मानस में जहाँ कहीं राम की लौकिक-लीला लिखी है, वहीं झटिति उनकी अलौकिकता-प्रदर्शन के पद्य लिखे हैं। जहाँ सीता के वियोग में राम व्याकुल होते हैं, वहाँ तुलसीदास जीने कैसी गहरी वकालत की है:—

विरहविकल नर इव रघुराई। खोजत बिपिन फिरत दोउ भाई॥
कबहूँ योग बियोग न जाके। देखा प्रगट विरह दुख ताके॥

इसी प्रकार राम-रावण-युद्ध में जहाँ कहीं भी राम का पक्ष दुर्बल हुआ है, वहाँ झटपट कविवर की लेखनी ने प्राड्विवाक का काम किया है:—

उमा करत रघुपति नरलीला। खेल गरुड़ जिमि अहिगण मीला॥

इसी प्रकार बचपन की लीला वर्णन करते हुए गोस्वामी जी लिखते हैं:—

उदर चराचर मेलि जो सोवा। अस्तन पान लागि सो रोवा॥

विद्या पढ़ने के लिये श्रीरामचन्द्रजी गुरु-गृह-गमन करते हैं, वहाँ भी भक्त प्रवर ने लिख दिया:—

जाकी सहज स्वास स्रुति चारी। सो हरि पढ़ यह कौतुक भारी॥

अन्यान्य कई प्रकरणों में भी गोस्वामी जी लिखते गये हैं:—

लव निमेषमहँ भुवन निकाया। पाइ जासु बल विरचति माया॥
भक्तहेतु सोइ दीनदयाला। चितवत चकित धनुषमखशाला॥
जासु त्रास डर कहँ डर होई। भजनप्रभाव दिखावत सोई॥
सुमिरत जाहि मिटै भव भारू। तेहि श्रम यह लौकिक व्यवहारू॥
निगम नेति शिव ध्यान न पावा। माया मृगपाछे सोइ धावा॥
इत्यादि।

आश्चर्य तो यह है कि मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने कहीं भी अपने ईश्वरत्व का दावा नहीं किया। परन्तु गोस्वामी जी 'मुदई सुस्त और गवाह चुस्त' की जन-श्रुति चरितार्थ करते रहे। रामचरित-मानस के किष्किन्धा काण्ड में जहाँ हनुमान मर्यादा पुरुषोत्तम से मिले हैं, वहाँ हनुमान ने प्रश्न किया है:—

की तुम तीन देव महँ कोऊ। नर नारायण की तुम दोऊ॥
जग कारण तारण भवहिं, भञ्जनधरणी भार।
की तुम अखिल भुवनपति, लीन्ह मनुज अवतार॥

इसका उत्तर श्री राम ने बहुत ही सादे शब्दों में दिया है:—

कोशलेश दशरथ के जाये। हम पितुबचन मानि बन आये॥
नाम राम लक्ष्मण दोउ भाई। संग नारि सुकुमारी सुहाई॥
इहाँ हरी निशिचर बैदेही। खोजत विप्र फिरहिं हम तेही॥

आप वाल्मीकि अथवा अध्यात्मरामायण को आद्योपान्त आवलोकन कर जाइये इन ग्रन्थों में रामचन्द्र के ईश्वरत्व प्रदर्शन का कदापि इस प्रकार का प्रयत्न कहीं न पायेँगे। जैसा तुलसीदासविरचित ग्रन्थों में पाते हैं।

सब देव-देवी की पूजा और अर्चा करने के उपरान्त उनसे एक भक्ति की ही ये याञ्चा करते थे, वरञ्च अपना आदर्श ही इन्होने—

'सब कर माँगहिं एक फल, रामचरनरति होइ'।

—रखा था। गोस्वामी जीने पञ्चत्व-प्राप्ति के पूर्व हनुमानवाहुक के निम्न पद—

जीवों जग जानकीजीवन को कहाइ जन,
मरिबे को बारानसी बारि सुरसरि को।
तुलसी के दुहूँ हाथ मोदक प्रमोदक है,
जाये जिये मुए सोच करि हैं न लरिको॥
मोको झूठो साँचो लोग राम को कहत जन,
मेरे मन मान है न हर को न हरि को॥
भारी पीर दुसह सरीर ते बिकल होत,
सोऊ रघुबीर बिन सकै दूर करि को॥

में तो यहाँ तक कह देते हैं कि राम के अतिरिक्त शिव और विष्णु का भी मेरे मन में मान नहीं है।

सुतराम् गोस्वामी तुलसीदास राम के अनन्य भक्त थे। ये सारे ब्रह्माण्ड को राममय जानते थे, एवं सांसारिक ऐश्वर्य को रामबिहीन होने पर मृतिका से भी तुच्छ समझते थे, जैसा कवित्त-रामायण में कहा है:—

काम से रूप प्रताप दिनेस से सोम से सील, गनेस से माने।
हरिचन्द्र से साँचे बड़े बिधि से मघवा से महीप विषय-सुखसाने॥
सुक से मुनि सारद से बकता चिरजीवन लोमस तें अधिकाने।
ऐसे भए तौ कहा तुलसी जु पै राजीव-लोचन राम न जाने॥४३॥
झूमत द्वार अनेक मतंग जँजीर जेर मदअंबु चुचाते।
तीखे तुरंग मनोगति चंचल, पौन के गौनहुँ तें बढ़ि जाते॥
भीतर चन्द्रमुखी अवलोकति, बाहर भूप खरे न समाते।
ऐसे भए तौ कहा तुलसी जु पै जानकीनाथ के रंग न राते॥४४॥

ये सब कतिपय भाव तो उपादेय हैं, परन्तु राम-भक्ति की महिमा गोसाईं जी

ने इतनी बढ़ा दी है कि बहुतेरे लोग उनके भक्ति-परक-पद्यों का दुरुपयोग करने लगे हैं। आज—

देह धरे कर यह फल भाई। भजिय राम सब काम बिहाई॥

इत्यादि पदों को पढ़ कर सहस्रशः हिन्दू निष्क्रिय वैरागी बन गये, जिससे देश की बड़ी हानि हुई है। विवेकी पुरुषों को उचित है कि इनके पद्यों को सावधानी से पढ़ें और समुचित लाभ उठावें।
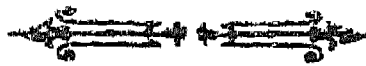
[७] वाल्मीकि और तुलसीदास

पाठक, तुलसीदास जी की रामायण और हनुमान जी के सम्बन्ध में कई दन्त कथाओं को आप जानते हैं, उन्हीं में एक नीचे लिखी जनश्रुति भी प्रसिद्ध हैं:—

"एक बार हनुमान जी रामायण लिख कर श्रीरामचन्द्र जी के पास सही कराने के लिये ले गये। इस पर उन्होने उत्तर दिया कि मैं बाल्मीकि विरचित रामायण पर सही कर चुका हूँ; अतः तुम अपनी रामायण को उन्हीं से ठीक करा लो। ऐसा सुनकर हनुमान जी अपनी रामायण को महर्षि के पास ले गये। बाल्मीकि ने विचार किया कि यदि हनुमान जी के लिखे ग्रन्थ का अस्तित्व संसार में रहा तो मेरे ग्रन्थ को कोई नहीं पूछेगा। इस कारण उन्होने हनुमान जी को स्तुति द्वारा प्रसन्न किया और यह वरदान माँगा कि आप अपनी रामायण समुद्र में फेंक दीजिये। इसपर हनुमान जी ने कहा कि लो मैं अपनी रामायण इस समय तो फेंक देता हूँ, परन्तु कलियुग में तुलसी नामक ब्राह्मण की जिह्वा पर बैठ कर भाषारामायण कथन करूँगा जिसके प्रचार होने पर तुम्हारी रामायण को कोई नहीं पूछेगा।"

यद्यपि उपर्युक्त कथा नितान्त निस्सार प्रतीत होती है, तथापि महामति हरबर्ट स्पेन्सर के कथन—"मिथ्या से मिथ्या कथाओं में भी कुछ न कुछ सत्य का अंश अवश्य रहता ही है।" के अनुसार इस जन-श्रुति के अभ्यन्तर इतना तो अवश्य सत्य का अंश विद्यमान है कि संस्कृत में आदिकवि होने के कारण जो स्थान बाल्मीकि को प्राप्त है, वही स्थान हिन्दीभाषा में इस धुरन्धर कवि को लब्ध है। प्रत्युत वर्त्तमान समय में संस्कृत विद्या के लोप हो जाने के कारण सचमुच बाल्मीकि की अपेक्षा सहस्रगुण, इस तुलसीकृत रामायण का प्रचार अधिक पाया जाता है। कथाओं को रोचक बना देना तो मानो इन्हींके जिम्मे पड़ गया था।

ऐसा सरल, सरस और मधुर काव्य जिसका घर घर, ग्राम ग्राम और नगर नगर में पाठ हो—दूसरा नहीं है। परन्तु स्मरण रहे कि किसीके गौरव को गिराना महापाप है। अतएव; यहाँ पर इस बात का उल्लेख कर देना भी स्थानाति-

रिक्त न होगा कि महाकवि वाल्मीकि को किसीके काव्य की सहायता न मिली, अतः इन्हें सर्वतोभावेन मौलिकता का सर्वथैव श्रेयस् रहेगा, तद्विपरीत गोस्वामी जी को अपने पूर्ववर्ती संस्कृत तथा हिन्दी के समस्त कवि-मण्डल की सहायता प्राप्त हुई और उनके विरचित ग्रन्थ-रत्नों से इन्होंने पूर्ण लाभ उठाया। इस बात को भक्तराज ने

मुनिन प्रथम हरि कीरति गाई।
तेहि मगु चलत सुगम मोहि भाई॥

इस पद्य में सहृदयता के साथ स्वीकार किया है गोस्वामी जी एक परमोदार कवि थे, कृतज्ञता का इन में अश्रुत-पूर्व भाव था। किस कवि के किस ग्रन्थ से तुलसीदास जी ने कौन सा भाव लिया है, इसका विस्तृत-वर्णन तो 'मौलिकता शीर्षक में किया जायगा। प्रसङ्गतः यहाँ यह दिखलाना है कि वाल्मीकिविरचित रामायण से इस महाकवि के ग्रन्थों का कितना साम्य है। अध्यात्म रामायण तथा हनुमन्नाटक के अतिरिक्त कविराज ने वाल्मीकीय से बहुत सहायता ली है, जिसकी कृतज्ञता का इन शब्दों में प्रकाशन बालकाण्ड के प्रारम्भिक-मंगलाचरण में ही किया है:—

सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ।
वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ॥

गोस्वामी तुलसीदास जी के 'रामचरित-मानस' का क्या क्रम है, इस बात का पता पाठकों को 'मध्य-खण्ड' में पूर्ण रूपेण लग चुका है। यहाँ पर कतिपय पृष्ठों में वाल्मीकीय रामायण का क्रम लिखा जाता है। वाल्मीकिविरचित रामायण के सात काण्ड हैं, जिनके नाम क्रमशः बाल, अयोध्या, अरण्य, किष्किन्धा, सुन्दर, लङ्का एवं उत्तर काण्ड हैं। किन्हीं विद्वानों के मत से उत्तरकाण्ड वाल्मीकि रचित नहीं है, वह प्रक्षिप्त है। युद्धकाण्ड तक ही मुनिराज की रचना प्रतीत होती है। शेष छः काण्डों में भी यत्र तत्र क्षेपक मिलाये गये हैं।

बालकाण्ड में प्रारम्भिक-प्रस्तावना, नारद-संवाद, अयोध्या का वर्णन, अश्व-मेध यज्ञ, चारों भाइयों का जन्मोत्सव, राजा दशरथ के दरबार में विश्वामित्र का पधारना, यज्ञ रक्षणार्थ राम-लक्ष्मण को साथ ले जाना, ताडका-कानन में त्रिमूर्त्ति का प्रवेश, रामद्वारा ताडकाबध, विश्वामित्र का राम को दिव्यास्त्र-शस्त्र प्रदान, पुनः परिहारशस्त्रों का देना, सिद्धाश्रम में प्रवेश और यज्ञ की समाप्ति के अनन्तर मिथिला यात्रा, धनुर्भङ्ग, दशरथ जी का मिथिला आगमन, राजा जनक तथा दशरथ की वंशावली का वर्णन, चतुर्भ्रातृ के विवाह, अयोध्या-प्रस्थान, मार्ग में परशुराम का समाधान, तथा महाराज दशरथ का पुत्र एवं पुत्र-वधुओं के संग सकुशल अयो-ध्याप्रत्यावर्त्तन लिखा गया है। बीच बीच में प्रासङ्गिक अथच अप्रासङ्गिक कई उपाख्यान, इतिहास और गाथाएँ भी आती गयी हैं। अयोध्याकाण्ड में भरत-

शत्रुघ्न का ननिहाल जाना, राजा दशरथ का सभा द्वारा सम्मति लेकर राम को युवराज बनाने का उद्योग, मन्थरा द्वारा प्रेरित कैकेयी का विघ्न उपस्थित करना, राम-लक्ष्मण-सीता का बनवास, राजा दशरथ का स्वर्ग-प्रयाण, भरत-शत्रुघ्न का ननिहाल से अयोध्या आना, अयोध्या की दशा पर विलाप, भरत का राम को लौटाने के लिये चित्रकूट प्रस्थान, राम का नहीं लौटना, भरत का राम-पादुका लेकर सदल अयोध्या आकर पुनः अकेले नन्दिग्राम में तप तथा राज्य-प्रबन्ध आदि वर्णन पाये जाते हैं। मध्य २ में श्रवणोपाख्यान तथा वर्षा ऋतु-वर्णन भी अतिविशद रूप से आये हैं। अरण्यकाण्ड में राम का सीता तथा लक्ष्मण के संग दण्डकारण्य में प्रवेश, विराध-वध, शरभंग का राम-दर्शन पाकर प्राणत्याग, सुतीक्ष्ण एवं अगस्त्यादि ऋषियों के आश्रयों में जाना, जटायु से मिलाप, पञ्चवटी में त्रयी मूर्तिका निवास, शूर्पनखा के नाक-कान का काटा जाना, खर-दूषण-त्रिशिरादि के साथ चौदह सहस्र सेना की बध-कथा, रावण का मारीच के संग पंचवटी में आना, कपटवेश में मारीच का राम-लक्ष्मण को धोखा देना, रावण द्वारा सीता-हरण, जटायु का शरीर त्याग, सीता के वियोग में राम का विलाप, दक्षिण-प्रस्थान, कवन्ध-वध, और युगल भ्राताओं का पम्पासर पर आना इत्यादि लिखा गया है। किष्किन्धाकाण्ड में पम्पा सरोवर का सौन्दर्य वसन्त-वर्णन, सीता के वियोग में राम का विलाप, हनुमान-सम्मेलन, सुग्रीव-मैत्री, बालि-बध, तारा-विलाप, वालि की अन्त्येष्टि-क्रिया, सुग्रीव का राज्याभिषेक, वर्षा एवं शरद ऋतुओं के वर्णन, लक्ष्मण का सकोप किष्किन्धा प्रवेश, सुग्रीव का नम्र उत्तर देकर पुनः राम के पास आना, सीता के अन्वेषणार्थ वानरों को चतुर्दिग भेजना, सम्पाति से सीता का पता पाना, और हनुमान को लङ्का जाने के लिये प्रोत्साहित करना इत्यादि वर्णित है। बीच २ में प्रसङ्गतः दुन्दुभि असुर की तथा बालि-सुग्रीव की बैर सम्बधिनी उपकथाएं भी आयी हैं।

सुन्दरकाण्ड में हनुमान का समुद्र पार होना, लङ्का में प्रवेश, रावण के अन्तःपुर में भ्रमण, सीता की खोज न पाने से हनुमान की उदासी, अशोक-बाटिका प्रस्थान, सीता को राक्षसियों से घिरी देखना, रावण का अशोक वाटिका में आकर सीता को प्रेम-भय एवं क्रोध प्रदर्शित करना, सीता का एकान्त में करुण-क्रन्दन, हनुमान का प्रत्यक्ष होना, सीता-हनुमान-संवाद, सीता का राम के प्रति संवाद कहना, हनुमान द्वारा अशोक वाटिका उजाड़ना, अक्ष कुमारादि का बध, हनुमान का रावण के दरबार में जाना, लंका-दहन, पुनः हनुमान का सीता से मिल कर निशानी लेकर राम के पास प्रस्थान, मधुवन-भङ्ग तथा राम से मिल कर सीता की दुःखमयी कथा सुनाने का वर्णन किया गया है।

युद्ध काण्ड में बानरों द्वारा समुद्र पर पुलबाँधना, सेना समेत राम का समुद्र पार डेरा डालना, विभीषण का अपने ज्येष्ठभ्राता रावण से अपमानित हो कर राम

से आ मिलना, रावण का शुक के द्वारा राम-सेना का पता लगाना, सीता का करुण-मय विलाप, सरमा का सीता को आश्वासन-प्रदान, रावण के दरबार में अंगद का जाना, राम-रावण-युद्ध का प्रारम्भ, घोर द्वन्द्व युद्ध, रात्रि युद्ध, अंगद से इन्द्रजित की पराजय, राम-लक्ष्मण का इन्द्रजित द्वारा नाग-फांस से बाँधा जाना पुनः मुक्ति, हनुमान द्वारा धूम्राक्ष और अकम्पन का बध, अंगद द्वारा वज्र दंष्ट्रका बध, नील द्वारा प्रहस्त-वध, लक्ष्मण-रावण-युद्ध में लक्ष्मण की मूर्छा पुनः जागृत, कुम्भकरण का घोर संग्राम के अनन्तर बध, अंगद द्वारा नारान्तक बध, देवान्तक-महोदर-त्रिशिरा-महापार्श्व बध लक्ष्मण से अतिकायका बध, अंगद द्वारा कम्पन-प्रजंघ-शोणिताक्ष का वध, मेघनाद युद्ध तथा लक्ष्मण द्वारा उसका बध, राम-रावण का घोर युद्ध और दिग्विजयी रावण का वध, रावण का दाहसंस्कार, विभीषण का राज्याभिषेक, हनुमान का सीता को विजयसंदेश देना, विभीषण का राम के पास सीता को लाना, राम का सीता के स्वीकार से इनकार पुनः सीता का परीक्षार्थ अग्निप्रवेश, सीता की निष्कलंक-सिद्धि, राम का ससैन्य अयोध्यागमन, भरत-मिलाप, अयोध्या-प्रवेश, रामराज्याभिषेक, राम-राज्य-काल तथा रामायण माहात्म्य लिखा गया है। बाल्मीकीय ग्रन्थ की रचना बतला रही है, कि ग्रन्थ यहीं समाप्त है, तथापि पाठकों के मनोविनोदार्थ उत्तर काण्ड की विषय-सूची भी दी जाती है।

उत्तरकाण्ड में अगस्त्यादि ऋषियों का अभिषेकोत्सव में आगमन, रामद्वारा रावण के जन्म एवं पराक्रमादि का वर्णन, राम से विदा माँग कर ऋषियों-बानरों का प्रस्थान, पुष्पक का कुबेर के पास गमन, सीताराम-बिहार, रामद्वारा सीता का परित्याग करना, सीता का बाल्मीकि मुनि के आश्रम में निवास लव-कुश-जन्म, लवण-वध के लिए शत्रुघ्न का जाना, रामाश्वमेध में लव-कुश का वाल्मीकि के साथ आना, बाल्मीकि के आग्रह पर परीक्षानन्तर राम का सीता के पुनर्ग्रहण का विचार, सीता का प्राणत्याग, माताओं की मृत्यु, राजा युधाजित् का राम को सन्देश, भरत की गन्धर्व देश पर चढ़ाई तथा तक्षशिला और पुष्कलावत की बुनियाद, लक्ष्मण के पुत्र अङ्गद और चन्द्रकेतु को राजतिलक और अंगदीप तथा—चन्द्रकेतु पुर की बुनियाद, राम के पास आकर-एक तपस्वी का गुप्त सन्देश देना, दुर्वासा का प्रवेश, लक्ष्मण का प्राण-त्याग, राम का शोक, कुश-लव का अभिषेक, कुशावती और श्रावस्ती की बुनियाद, शत्रुघ्न का राम के पास आना तथा पुरवासियों के सहित राम का महाप्रस्थान एवं परमगति का सविस्तर वर्णन किया गया है। कई कथाएँ हृदय-द्रावक और करुणापूर्ण हैं। पाठक महोदय, युगल महाकवियों की कथाक्रम-सूची को अवलोकन कर उनके मिलान और अन्तर का अन्दाजा लगा सकते हैं, तथापि जो कवि-द्वय में महान अन्तर हैं उनका कुछ उल्लेख किया जाता हैं:—

[१] **बाल्मीकि** विरचित रामायण के सम्बन्ध में एक जनश्रुति प्रचलित है

कि उसे ऋषि ने रामजन्म के दशसहस्र वर्ष पूर्व ही रच डाला था, परन्तु यह बात सर्वथा निर्मूल है। यदि यह बात सत्य होती तो राम-चरित-सम्बन्धी समस्त क्रियाओं में भविष्य काल का प्रयोग होता। दूसरी बात यह है कि बाल्मीकीय ग्रन्थ के द्वितीय श्लोक—

कोन्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान्कश्च वीर्यवान्।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः॥

के 'साम्प्रतं' शब्द पर दृष्टिपात करते ही यह निश्चय हो जाता है कि महर्षि बाल्मीकि श्रीरामचन्द्र के समकालीन थे। बाल्मीकि के आश्रम में रामचन्द्र जी के जाने की कथा भी रामायणों में सविस्तर कही गयी है। ऐसी दशा में ऐतिहासिक दृष्टि से तुलसीदास के 'राम-चरित-मानस' की अपेक्षा श्रीमद्वाल्मीकिविरचित रामायण ही अधिक प्रामाणिक समझी जा सकती है। अपने चरितनायक की जीवन कथाओं का वाल्मीकि महाराज ने इस ढङ्ग से वर्णन किया है कि लोक उन्हें पढ़कर अलौकिक और अमानुषी न समझ बैठे। हमारा यहाँ प्रकृत विषय यह नहीं है कि रामचन्द्रजी ईश्वर के अवतार थे वा नहीं। हमारा वक्तव्य यह है कि वाल्मीकि ने राम का परिचय श्री नारद से—

'इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामोनाम जनैः श्रुतः।
नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान् धृतिमान्वशी॥

इत्यादि ऐसे शब्दों में कराया है जिनसे ईश्वरत्व का प्रदर्शन न होकर उनके ऐश्वर्य का प्रकटीकरण होता है।

सीता का परिचय देते हुए—

जनकस्य कुले जाता देवमायेव निर्मिता।
सर्वलक्षणसंपन्ना नारीणामुत्तमा वधूः॥

—इसमें भी लौकिक आदर्श ही उपस्थित किया है, परन्तु; तुलसीदास जी ने अपने चरितनायक में पग पग पर ईश्वरत्व के प्रदर्शन कराये हैं जिससे लोक के बीच आदर्श की विशेष संस्थापना नहीं हो सकी। गोसाईं जी ने अपने चरितनायक को जनता के समक्ष अलौकिक ही नहीं, प्रत्युत ब्रह्मा-विष्णु-शिव से भी उच्च स्वरूप में पेश किया है। ऐसी दशा में हमें उनके चरित्रों को पढ़ कर आनन्दित होनेमात्र का अधिकार है, तदनुकूल आचरण बनाने की बातें तो दूर रहीं, सोचने तक की गुंजाइश नहीं। राम के धार्मिक-भाव, आस्तिक-पन, स्त्री-व्रत, ब्रह्मचर्य, और पिता की आज्ञा का प्रतिपालन इत्यादि गुण लोक पर क्या प्रभाव डाल सकते हैं? इन कथाओं के पढ़ने से संसार का यही भाव होगा कि यतः श्री रामचन्द्र परमात्मा के अवतार थे, अतः उनमें उपर्युक्त सद्गुणों का समावेश था, असमदादि में इन गुणों का आविर्भाव कदापि नहीं हो सकता इत्यादि। ऐसी दशा में मानवजाति तदनुकूल आचरण बनाने में अपने को निरा असमर्थ समझेगी।

हो सकता है कि तत्कालीन हिन्दूजनता की पतितावस्था को अवलोकन कर उनकी अभिरुचि रामाभिमुख कराने के सद्विचार से कविराजने, ऐसा किया हो।

[२] वाल्मीकि जी ने मर्यादा पुरुषोत्तम के बल, वीर्य, गाम्भीर्य, औदार्य, शील, धर्म-परायणता और अन्यान्य सद्गुणों का विशेष वर्णन किया है, जैसेः—

बुद्धिमान्नीतिमान् वाग्मी श्रीमाञ्छत्रुनिबर्हणः।
विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवो महाहनुः॥
महोरस्को महेष्वासो गूढ़जत्रुररिंदमः।
आजानुबाहुः सुशिरा सुललाटः सुविक्रमः॥
समः समविभक्ताङ्गः स्निग्धवर्णः प्रतापवान्।
पीनवक्षा विशालाक्षो लक्ष्मीवाञ्छुभलक्षणः॥
धर्मज्ञः सत्यसन्धश्च प्रजानां च हिते रतः।
यशस्वी ज्ञानसम्पन्नः शुचिर्वश्यः समाधिमान्॥
रक्षिता स्वस्य धर्मस्य स्वजनस्य च रक्षिता।
वेदवेदांगतत्वज्ञो धनुर्वेदे च निष्ठितः॥
सर्वशास्त्रार्थतत्वज्ञः स्मृतिमान् प्रतिभानवान्।
सर्वलोकप्रियः साधुरदीनात्मा विचक्षणः॥
सर्वदाऽभिगतः सद्भिः समुद्र इव सिन्धुभिः।
आर्यः सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः॥
सच सर्वगुणोपेतः कौसल्यानन्दवर्धनः।
समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव॥
विष्णुना सदृशो वीर्ये सोमवत्प्रियदर्शनः।
कालाग्निसदृशः क्रोधे क्षमया पृथिवीसमः॥
धनदेन समस्त्यागे सत्ये धर्म इवापरः।
तमेव गुणसम्पन्नं रामं सत्यपराक्रमम्॥ इत्यादि

अर्थात् श्रीरामचन्द्र बुद्धिमान्, नीतिमान्, सद्वक्ता, शोभायुक्त, शत्रुतापी, विस्तृत स्कन्धयुक्त, आजानु-बाहु, शङ्खवत् गर्दनवाले, बड़ी ठोढ़ीवाले, विशाल वक्षःस्थलवाले, बड़े धनुषवाले, मांस से ढकी हुई हँसलियोंवाले, अरि को दमन करनेवाले, सर्वाङ्ग सुडौल, प्रतापयुक्त, विशाल नेत्रवाले, धर्मज्ञ, सत्य-प्रतिज्ञ, प्रजा-हित-निरत, यशस्वी, ज्ञान सम्पन्न पवित्र, श्रेष्ठों की आज्ञा के पालन करने वाले, एकाग्र-चित्त, धर्म-रक्षक, अपने आश्रितों के पोषक, वेद-वेदाङ्गों के तत्वज्ञ, धनुर्वेद में सिद्धहस्त, सर्व लोकप्रिय, साधु, अयाचक भावयुक्त, सिन्धु के समान, सन्तरूप नदियों से परिपूर्ण तथा गम्भीर, आर्य, समदर्शी एवं प्रियदर्शन हैं। समुद्रवत् गम्भीर हिमालय से धीर, विष्णु के समान बली, सोम के समान दर्शनीय, कालाग्नि सरीखे क्रोधी, पृथिवी के समान क्षमाशील, धनद के समान दानी अथच सत्य धर्म-परायण हैं।

ऊपर के विशेषणों पर आप ध्यान दें तो आपको स्पष्ट प्रतीत होगा कि महर्षि वाल्मीकि ने रामचन्द्रजी को संसार के सम्मुख एक आदर्श के स्वरूप में प्रस्तुत किया है। महाकवि ने अयोध्याकाण्ड में राम के इन सद्गुणों का उल्लेख बड़ी सहृदयता से किया है:—

स हि रूपोपपन्नश्च वीर्यवाननसूयकः ।
भूमावनुपमः सूनुर्गुणैर्दशरथोपमः ॥
स च नित्यं प्रशान्तात्मा मृदु पूर्वं च भाषते ।
उच्यमानोऽपि परुषं नोत्तरं प्रतिपद्यते ॥
कदाचिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति ।
न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया ॥
शीलवृद्धैर्ज्ञानवृद्धैर्वयोवृद्धैश्च सज्जनैः ।
कथयन्नास्त वै नित्यमस्त्रयोग्यान्तरेष्वपि ॥
बुद्धिमान् मधुराभाषी पूर्वभाषी प्रियंवदः ।
वीर्यवान्नच वीर्येण महता स्वेन विस्मितः ॥
न चानृतकथो विद्वान्वृद्धानां प्रतिपूजकः ।
अनुरक्तः प्रजाभिश्च प्रजाश्चाप्यनुरञ्जते ॥
सानुक्रोशो जितक्रोधो ब्राह्मणप्रतिपूजकः ।
दीनानुकम्पी धर्मज्ञो नित्यं प्रग्रहवाञ्छुचिः ॥
कुलोचितमतिः क्षात्रं स्वधर्मं बहु मन्यते ।
मन्यते परया कीर्त्या महत्स्वर्गफलं ततः ॥
नाश्रेयसि रतो यश्च न विरुद्धकथारुचिः ।
उत्तरोत्तरयुक्तीनां वक्ताः वाचस्पतिर्यथा ॥
अरोगस्तरुणो वाग्मी वपुष्मान्देशकालवित् ।
लोके पुरुषसारज्ञः साधुरेको विनिर्मितः ॥
सतु श्रेष्ठैर्गुणैः युक्तः प्रजानां पार्थिवात्मजः ।
वहिश्चर इव प्राणो बभूव गुणतः प्रियः ॥
सर्वविद्याव्रतस्नातो यथावत्साङ्गवेदवित् ।
इष्वस्त्रे च पितुः श्रेष्ठो बभूव भरताग्रजः ॥
कल्याणाभिजनः साधुरदीनः सत्यवागृजुः ।
वृद्धैरभिविनीतश्च द्विजैर्धर्मार्थदर्शिभिः ॥
धर्मकामार्थतत्वज्ञः स्मृतिमान्प्रतिभानवान् ।
लौकिके समयाचारे कृतकल्पो विशारदः ॥
निभृतः संवृताकारो गुप्तमन्त्रः सहायवान् ।
अमोघक्रोधहर्षश्च त्यागसंयमकालवित् ॥
दृढभक्तिः स्थिरप्रज्ञो नासद्ग्राही न दुर्वचाः ।
निस्तन्द्रिरप्रमत्तश्च स्वदोषपरदोषवित् ॥

शास्त्रज्ञश्च कृतज्ञश्च पुरुषान्तरकोविदः।
यः प्रग्रहानुग्रहयोर्यथान्यायं विचक्षणः॥
सत्संग्रहानुग्रहणे स्थानविन्निग्रहस्य च।
आयकर्मण्युपायज्ञः संदृष्टव्ययकर्मवित्॥
श्रैष्ठ्यं चास्त्रसमूहेषु प्राप्तो व्यामिश्रकेषु च।
अर्थधर्मौ च संगृह्य सुखतन्त्रो न चालसः॥
वैहारिकाणां शिल्पानां विज्ञातार्थविभागवित्।
आरोहे विनये चैव युक्तो वारणवाजिनाम्॥
धनुर्वेदविदां श्रेष्ठो लोकेऽतिरथसंमतः।
अभियाता प्रहर्त्ता च सेनानयविशारदः॥
एवं श्रेष्ठैर्गुणैर्युक्तः प्रजानां पार्थिवात्मजः।
संमतस्त्रिषु लोकेषु वसुधायाः क्षमागुणैः॥
तथा सर्वप्रजाकान्तैः प्रीतिसंजननैः पितुः।
गुणैर्विरुरुचे रामो दीप्तः सूर्य इवांशुभिः॥

× × × × ×

अर्थात् श्री रामचन्द्र लावण्य-युक्त, शक्ति-सम्पन्न, निन्दा-रहित, गुणों में दशरथ के समान, समस्त पृथिवी में अनुपम हैं। वह शान्त आत्मा सदा नम्रता-पूर्वक वार्त्तालाप करनेवाले और कठोर बचन सुन कर भी उसके प्रति कठोर बचन नहीं बोलते हैं। ऐसे बलवान आत्मा हैं कि एक उपकार से भी सन्तुष्ट हो जाने वाले और अन्य के किये सौ अपकारों को भी भूल जानेवाले हैं। शस्त्रों के अभ्यास से अवकाश पाने पर सदा शील-वृद्ध, ज्ञान-वृद्ध और वयोवृद्ध सज्जनों के साथ शास्त्रकथा करनेवाले हैं। बुद्धिमान, मधुरभाषी, पूर्वभाषी प्रियभाषी और शक्ति सम्पन्न होकर भी स्वशक्ति से विस्मित नहीं होनेवाले हैं। सत्यभाषी, विद्वान, वृद्ध-सेवी, प्रजा-प्रिय, और प्रजाओं को प्यार करनेवाले हैं। दयालु, क्रोध को जीतनेवाले, ब्राह्मणों के पूजक, दीनों पर दया करनेवाले, धर्मज्ञ, गुणग्राही, शुद्ध, कुलानुकूल मतिवाले, अपने क्षात्र धर्म के सम्मान करनेवाले तथा उससे भी उत्तम कीर्ति द्वारा स्वर्ग फल माननेवाले हैं। अकल्याणकारी कर्मों में प्रेम न रखनेवाले, विरुद्ध कथाओं से प्रीति नहीं करनेवाले, वाचस्पति की भाँति उत्तरोत्तर प्रयोग करने वाले, नीरोग, युवा, सुन्दर भाषी, सुन्दर शरीरवाले, देश काल जाननेवाले, लोक में पुरुषों के तत्व को पहचाननेवाले, तथा स्वाभाविक साधु चरितों में अद्वितीय हैं। वह श्रेष्ठ गुणों से युक्त राजपुत्र, प्रजाओं की बाह्य और आन्तरिक चेष्टाओं को जाननेवाले और प्राण के समान प्रिय है। विद्या-स्नातक, व्रत-स्नातक, सांगोपांग वेदों के जाननेवाले, अस्त्र और बाण विद्या में अपने पिता से भी बढ़े हुए, सब प्रकार के कल्याणों के आश्रय, साधु, अदीन, सत्यवादी सरल, धर्मार्थद्रष्टा,

वृद्ध ब्राह्मणों के द्वारा सुशिक्षित, स्मृतिमान्, प्रतिभावान्; लौकिक कर्मों में सामर्थ्य युक्त, धर्माचार में निपुण, गम्भीर, अपनी बाह्य चेष्टाओं को रोकनेवाले, गुप्त मन्त्र वाले, सहायकों से युक्त, क्रोध और हर्ष के प्रयोग में अमोघ और त्याग एवं संग्रह के काल को जाननेवाले हैं। गुरुजनों में दृढ़ भक्तिवाले, स्थिर-प्रज्ञ, सद्ग्राही, दुर्वचन नहीं बोलनेवाले, आलस्य और प्रमाद से रहित, परदोष और स्वदोष को जानने वाले, शास्त्रज्ञ, कृतज्ञ, सब प्रकार के मनुष्यों के भेद जाननेवाले, प्रग्रह और अनुग्रह के प्रयोग में अत्यन्त विचक्षण, सत्पुरुषों के संग्रह और प्रतिष्ठा करने में अत्यन्त दक्ष, दण्ड का अवसर जाननेवाले, और आय-व्यय शास्त्र में पूर्ण निपुण हैं। अस्त्र समूह के प्रयोग और व्यामिश्र में श्रेष्ठता प्राप्त, धर्म और अर्थ के संग्रह-पूर्व्वक सुखोपभोगी और सब कर्मों के यथावत् पालन में आलस्यरहित हैं। विविध प्रकार के खेल सम्बन्धी रचनाओं के जाननेवाले, आय-विभाग के वेत्ता, हाथी और घोड़ों पर आरूढ़ होने और उनको शिक्षित करने में भी सावधान हैं। धनुर्वेद के सर्वश्रेष्ठ ज्ञाता, लोक में अतिरथ, शत्रुओं पर आक्रमण और प्रहार की गति को जाननेवाले, सेना के व्यूह बनाने में निपुण, पृथिवी के समान क्षमा धारण करनेवाले, त्रयलोक में प्रजाओं के प्यारे, और सूर्य के समान अपने गुणों से प्रदीप्त हैं।"

पाठक, इन सद्गुणों और विशेषणोंपर विशेष विचार करें तो पता लगेगा कि महर्षि वाल्मीकि के अन्तःकरण में मर्य्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के प्रति कितना प्रगाढ़ प्रेम था। यद्यपि इस वर्णन में यत्किञ्चित् पुनरुक्ति का भी समावेश है, तथापि किसी कवि के लिये सहसा एकत्रित इतने सद्गुण-सूचक शब्दों की उपलब्धि भी सहज नहीं है। वाल्मीकि के एक २ शब्द से राम के आदर्श का पता लगता है। महाकवि ने मर्य्यादा पुरुषोत्तम के आभ्यन्तरिक सद्गुणों के ही विशेष वर्णन किये हैं और जहां कहीं शारीरिक सौन्दर्य का वर्णन आया है वह भी वीरता का परिद्योतक है। परन्तु; तुलसीदास जी ने प्रायः श्री रामचन्द्र के बाह्य सौन्दर्य, सौकुमार्य और अलौकिक-लावण्य का विशेष कथन किया है।

उदाहरणार्थ मनु—शतरूपा के वरदान-काल के वर्णन पर ही आप ध्यान दें:—

नील सरोरुह नील मणि, नील नीरधर-श्याम।
लाजहिं तनु शोभा निरखि, कोटि कोटि शत काम॥

शरद मयंक वदन छवि सींवाँ। चारु कपोल चिबुक दर ग्रीवा।
अधर अरुण रद सुन्दर नासा। विधु कर निकर विनिन्दक हासा॥
नव अंबुज अंबक छवि नीकी। चितवनि ललित भावती जीकी॥
भृकुटि मनोजचापछबिहारी। तिलक ललाट पटल दुतिकारी॥
कुंडल मकर मुकुट शिर भ्राजा। कुटिल केश जनु मधुप समाजा॥
उर श्रीवत्स रुचिर बनमाला। पदिक हार भूषण मणि जाला॥

केहरि कंधर चारु जनेऊ। बाहु विभूषण सुन्दर तेऊ॥
करि कर सरिस सुभग भुजदंडा। कटि निषंग कर शरकोदंडा॥

तडित विनिन्दक पीतपट, उदर रेख वर तीनि।
नाभि मनोहर लेति जनु, जमुन भँवर छवि छीनि॥

पद राजीव बरनि नहिं जाहीं। मुनि मन मधुप बसहिं जेहि माहीं॥
वाम भाग शोभित अनुकूला। आदि शक्ति छबिनिधि जगमूला॥
जासु अंश उपजहिं गुण खानी। अगणित उमा रमा ब्रह्मानी॥
भृकुटि विलास जासु जग होई। राम बाम दिसि सीता सोई॥
छबि समुद्र हरिरूप विलोकी। इक टक रहे नयन पट रोकी॥
चितवहिं सादर रूप अनूपा। तृप्ति न मानहिं मनुसतरूपा॥
हर्ष विवश तनु दशा भुलानी। परे दण्ड इव गहि पद पानी॥

पुनः जनक राजा के धनुर्यज्ञ में श्री राम-लक्ष्मण जहाँ सम्मिलित हुए हैं वहाँ भी भ्रातृ-द्वय का गोस्वामी जी ने समस्त-प्रायः बाह्य लावण्य ही वर्णन किया है।

लताभवन ते प्रगट भे, तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग विमल विधु, जलद पटल बिलगाइ॥

शोभा सींव सुभग दोउ बीरा। नील पीत जलजात शरीरा॥
काकपक्ष सिर सोहत नीके। गुच्छा बिच बिच कुसुमकलीके॥
भाल तिलक श्रम बिन्दु सुहाए। श्रवण सुभग भूषण छबि छाये॥
विकट भृकुटि कच घूँघुरवारे। नव सरोज लोचन रतनारे॥
चारु चिबुक नासिका कपोला। हास विलास लेत मन मोला॥
मुख छबि कहि न जात मो पाहीं। जो बिलोकि बहु काम लजाहीं॥
उर मणिमाल कम्बुकल ग्रीवा। काम कलभ कर भुजबल सींवा॥
सुमन समेत बाम कर दोना। साँवर कुँवर सखी सुठि लोना॥

केहरि कटि पट पीतधर, सुखमा शील निधान।
देखि भानुकुल भूषणहिं, बिसरा सखिन अपान॥ इत्यादि

आप इन पद्यों पर विचार करें तो स्पष्ट हो जायगा कि इन पद्यों में गोस्वामी जी ने श्री रामचन्द्र जी की बाह्य सुन्दरता का ही वर्णन किया है। जनता इस सौन्दर्य के अनुसार अपने को सुन्दर शरीरयुक्त नहीं बना सकती, अपितु वाल्मीकि-कथित राम के सद्गुणों का अनुकरण कर सकती है, क्योंकि महर्षि ने उन्हें निखिल-गुण-सम्पन्न सिद्ध कर अनुपम आदर्श का प्रदर्शन किया है। सुतरां जहाँ ऋषिराज ने भूमि पर सङ्गमर्मर का राज-पथ निर्मित किया है वहाँ गोसाईंजी काल्पनिक आकाश-सोपान-निर्माण करने में कालयापन करते हुए दीख पड़ते हैं। हाँ, गोस्वामी जी की रचना, काव्य-दृष्टि से वाल्मीकि से बढ़ी चढ़ी है। शब्द-लालित्य बलात्कार विवश कर लेता है।

[३] **वाल्मीकि**-विरचित रामायण न केवल आदि-काव्य का ही ग्रन्थ है, अपितु ऐतिहासिक दृष्टि से भी उपादेय है। यह त्रेतायुग की आर्य-सभ्यता, आर्य-मर्यादा और आर्य-आदर्श-परम्परा का परिचायक भी है। ग्रन्थकार की प्रारम्भिक भूमिका से स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने इस महदुपकारी ग्रन्थ की रचना राम-भक्ति-प्रदर्शन के उद्देश से नहीं, वरन् अधिकतर ऐतिहासिक राज-पथ-निर्माण की दृष्टि से की है। यद्यपि काल पाकर प्रक्षेपक महानुभावों ने इस ग्रन्थ-रत्न की आभा को भी क्षेपकों की धूल डालकर धूसरित और म्लान कर दिया है, कई असम्भव एवं अश्लील कथाओं का भी समावेश कर डाला है। जिससे ग्रन्थ अनेक स्थलों पर अत्यन्त कलुषित हो गया है, तथापि प्रक्षिप्त भागों को निकाल देने पर यह प्राचीन इतिहास का उच्च अधिकारी बन जाता है। यतः रामायण काव्य-मूलक भी है, अतः वह उपमा, रूपक और अतिशयोक्ति आदि आलंकारिक एवं कई औपाख्यानिक रचनाओं के दूरीकरण के अनन्तर एक सत्य इतिहास का स्वरूप धारण करता है। हम प्रक्षिप्त और आलंकारिक रचनाओं को दृष्टि-पथ से हटा कर ही इसकी ऐतिहासिक उपादेयता की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करेंगे।

वाल्मीकि ने आदर्श पुरुषों के चरित्र जहाँ कहीं भी वर्णन किये हैं वहाँ सायं प्रातः सन्ध्या, अग्निहोत्र और स्वाध्याय के वर्णन से उनके वैदिक कर्मों का भी प्रदर्शन कराते गये हैं, जिससे तत्सामयिक वैदिक सभ्यता और उपासना का परिद्योतन होता है। उदाहरणार्थ देखिये बालकाण्ड में विश्वामित्र की राम-लक्ष्मण के साथ यात्रा का वर्णनः—

"प्रभातायां तु शर्वर्यां विश्वामित्रो महामुनिः।
अभ्यभाषत काकुत्स्थौ शयानौ पर्णसंस्तरे॥
कौशल्या सुप्रजा राम पूर्वा सन्ध्या प्रवर्त्तते।
उत्तिष्ठ नरशार्दूल कर्त्तव्यं दैवमाह्निकम्॥
तस्यर्षेः परमोदारं वचः श्रुत्वा नरोत्तमौ।
स्नात्वा कृतोदकौ वीरौ जेपतुः परमं जपम्॥"

अर्थात् प्रभात होते ही महामुनि विश्वामित्र पर्ण-संस्तर पर शयन किये हुए उन दोनों (राम-लक्ष्मण) से बोले हे राम! हे नरशार्दूल! उठो, प्रातःसन्ध्योपासन का काल उपस्थित हुआ है। उस ऋषि के परमोदार वचन को सुन कर वे दोनों नरोत्तम वीर स्नान और आचमन कर के परमजप (गायत्री) का जप करने लगे।

× × × × ×

"ततः प्रभाते विमले कृताह्निकमरिन्दमौ।
विश्वामित्रं पुरस्कृत्य नद्यास्तीरमुपागतौ॥"

अर्थात् विमल प्रभात काल में उठ कर जिन विश्वामित्र ने दैनिक कर्म

(सन्ध्या हवनादि) कर डाला है, उनको आगे कर के वे दोनों शत्रुतापी नदी के तट पर आये।

शोण नदी के तट पर पहुँचने और पार होने का वर्णन इस प्रकार पाया जाता है:—

'उपास्य रात्रिशेषं तु शोणाकूले महर्षिभिः।
निशायां सु प्रभातायां विश्वामित्रोऽभ्यभाषत॥
सुप्रभाता निशा राम पूर्वा सन्ध्या प्रवर्तते।
उत्तिष्ठ नर भद्रं ते गमनायाभिरोचय॥
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य कृतपूर्वाह्णिकक्रियः।
गमनं रोचयामास वाक्यं चेदमुवाच ह॥'

अर्थात् शोण के तट पर महर्षियों के सहित रात्रि व्यतीत होने पर विश्वामित्र ने कहा कि हे राम ! प्रभात हुआ, पूर्वा-सन्ध्या प्रवृत्त हुई, उठो। हे भद्र ! चलने के लिये तैयारी करो। उनके इस वचन को सुन कर प्रातःकाल के नित्य कर्म करने के उपरान्त चलने के लिये प्रस्तुत हो कर यह वचन बोले—

पुनः जनक का वर्णन इस प्रकार आया है:—

"ततः प्रभाते जनकः कृतकर्मा महर्षिभिः।
उवाच वाक्यं वाक्यज्ञः शतानन्दं पुरोहितम्॥"

अर्थात् प्रभात काल में जनक, महर्षियों के साथ नित्य कर्म कर के वाक्यं-वित् पुरोहित शतानन्द से बोले।

राम, सीता और लक्ष्मण की सम्मिलित उपासना का वर्णन अयोध्याकाण्ड के ७६ वें सर्ग में इस प्रकार आया है:—

लक्ष्मणेन यदानीतं पीतं वारि महात्मना।
औपवास्यं तदाकार्षीद्राघवः सह सीतया॥
ततस्तु जलशेषेण लक्ष्मणोप्यकरोत्तदा।
वाग्यतास्ते त्रयः संध्यां समुपासन्त संहिताः॥

अर्थात् जब लक्ष्मण जल ले आया तब महात्मा राम ने उसे पीकर सीता समेत उपवास किया। तब शेष जल को पीकर लक्ष्मण ने भी उपवास किया, तदनन्तर तीनों ने वाणी को रोक कर (मौन होकर अथवा उलटी जिह्वा को ब्रह्म-रन्ध्र के द्वार पर लगा कर) एक साथ सन्ध्योपासन किया।

इसी अयोध्याकाण्ड के सर्ग ८९ में भरत का वर्णन आया है, जहाँ वन में राम को वापस लाने गये हैं:—

रजन्यां सुप्रभातायां भ्रातरस्ते सुहृद्वृताः।
मन्दाकिन्यां हुतं जप्यं कृत्वा राममुपागमत्॥

अर्थात् रात्रि के प्रभात होने पर सुहृदों से युक्त वह भ्राता (अर्थात् भरत) मन्दाकिनी पर सन्ध्योपासन और होम करके राम के पास आये ।

इसी प्रकार अरण्यकाण्ड में लिखा है:—

एवं कथयमानस्य तस्य सौमित्रिणा सह ।
रामस्यास्तंगतः सूर्यः सन्ध्याकालोऽभ्यवर्तत ॥
उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां सह भ्रात्रा यथाविधि ।
प्रविवेशाश्रमपदं तमृषिं चाभ्यवादयत् ॥

अर्थात् रामचन्द्र इस प्रकार अपने भ्राता लक्ष्मण से वार्तालाप करते जा रहे थे कि मार्ग में सूर्यास्त होने से संध्याकाल प्रस्तुत हो गया । भाई लक्ष्मण के संग यथाविधि सायं सन्ध्योपासन करके ऋषि के आश्रम में प्रविष्ट हो कर राम ने ऋषि को अभिवादन किया ।

महाकवि वाल्मीकि ने अपने ग्रन्थ में भारतीय ललनाओं के वर्णन-प्रसंग में भी सन्ध्योपासनादि का उल्लेख किया है । सुन्दरकाण्ड में हनुमानजीने अशोक-वाटिका में महारानी सीता के अन्वेषण के समय इस प्रकार कहा है :—

काञ्चनीं शिंशपामेकां ददर्श स महाकपिः ।
वृतां हेममयीभिस्तु वेदिकाभिः समन्ततः ॥
तामारुह्य महावेगः शिंशपां पर्णसंवृताम् ।
इतो द्रक्ष्यामि वैदेहीं रामदर्शनलालसाम् ॥
संध्याकालमनाः श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी ।
नदीं चेमां शुभजलां संध्यार्थे वरवर्णिनी ॥''

अर्थात् उस महावीर ने एक सुनहरी रंग की शीशम देखी जो चारों ओर से स्वर्णमयी वेदियों से युक्त थी । वह महाकपि पत्तों से पूर्ण उस शीशम पर चढ़ गया ताकि वहाँ से मैं सीता को देख सकूंगा; क्योंकि सन्ध्याकाल में वह मनस्विनी अवश्य इस उत्तम जलवाली नदी पर सन्ध्योपासनार्थ आवेगी ।

हनुमान ने इस प्रकरण में आगे अपना निश्चय इतना दृढ बतलाया है कि यदि वह सीता जीवित होगी तो निश्चय ही इस उपासनाकाल में इस नदी-तट पर प्रस्तुत होगी इत्यादि ।

तुलसीदासजी निस्सन्देह पौराणिककाल में उत्पन्न हुए थे, जिसका प्रभाव अमितरूप से उनके अन्तःकरण पर पड़ा था, जिसकी कुछ कुछ आभा उनकी कविता पर भी यत्र तत्र पड़ी है । महापुरुषों के वर्णन में कई प्रसंगों पर उन्हों ने इतिहास की अवहेलना की है। मर्य्यादापुरुषोत्तम राम की यात्रा लिखते हुए भी—

'उतरि सुरसरिहिं कीन्ह प्रणामा'

और

'यमुनहिं कीन्ह प्रणाम बहोरी'

इत्यादि पदों में उनसे गंगा और यमुना की वन्दना कराई। इसी प्रकार—

'पूजि पार्थिव नायउ माथा'

पद में पार्थिव पुजवाये। जहाँ तक कि योगि-राज जनक से भी—

'गिरिवर दीख जनक नृप जबहीं। करि प्रणाम रथ त्यागेऊ तबहीं॥

इस पद्य में पर्वत तक को प्रणाम कराया। जानकी से—

'गिरजा पूजन जननि पठाई'

—पद में पार्वती की पूजा करवायी है। शिवजी के द्वारा विवाह में गणेश-पूजन का विधान लिख कर कविराज को स्वयं शंका उत्पन्न हुई तो उसे दूसरों के मत्थे मढ़ते हुए—

'यह जनि शंका करै कोउ, सुर अनादि जिय जानि'।

लिख कर समाधान करना पड़ा। हाँ; कहीं कहीं—

प्रात समय ऋषि आयसु पाई। सन्ध्या करन चले दोउ भाई॥

इत्यादि पद्यों में कुछ सन्ध्योपासनादि का वर्णन कर वैदिक प्रतिभा का भी दिग्दर्शन कराया है। गोसाईं जी पौराणिक मर्यादा में इतने लीन थे कि—

'कुंजरमणिकंठाकलित, उर तुलसी की माल'।

इत्यादि कई पद्यों में मर्यादापुरुषोत्तम राम को परमात्मा अथवा विष्णु का अवतार मानते हुए वैष्णव ही सिद्ध कर डाला है। तुलसी की माला का धारण और कण्ठी इत्यादि पहनने की प्रथा वैदिक-काल में कदापि नहीं थी। इसी प्रकार बिभीषण के भव्य-भवन का वर्णन करते हुए लिखा है।

'राम नाम अंकित गृह, शोभा बरणि न जाय।
नव तुलसी के वृन्द बहु, देखि हरख कपिराय॥

मन महँ तर्क करन कपि लागे। ताही समय बिभीषण जागे॥
राम राम तिन सुमिरन कीन्हा। हृदय हरखि कपि सज्जन चीन्हा॥

इत्यादि लेख में बिभीषण का राम-भक्त होना लिखा है, परन्तु त्रेतायुग में रामोपासना की प्रथा कदापि प्रचलित नहीं थी और गृह पर राम-राम लिखने एवं चतुर्दिक तुलसी वृक्ष लगाने का प्रचार भी वैदिक काल में न था। आयुर्वेद के विचार से भले ही कोई सेवन और रक्षण करता हो। वाल्मीकि से अतिविशद रीत्या सिद्ध होता है कि उस काल में लङ्का में वेदों का स्वाध्याय होता था, परन्तु रावणादि के चरित्र, वैदिक न थे। चारित्र्य-पतन के कारण ही वे राक्षस कहलाये। सज्जनों को इस प्रसङ्ग पर विचार करना उचित है।

(४) वाल्मीकि जीने राम को मर्यादापुरुषोत्तम समझते हुए उनके आदर्श-चरित्र को जनता के समक्ष रखा है, अतः उनके स्वाध्याय और उनकी विद्वत्ता का भी यत्र-तत्र समुल्लेख किया है जिन प्रकरणों से हमें अमित उपदेश मिलते हैं। देखिये

विश्वामित्र के साथ जब राम-लक्ष्मण यज्ञरक्षणार्थ चले हैं; उस समय ऋषिवर्य कैसी-कैसी शस्त्रास्त्र की व्यावहारिक शिक्षाएँ देकर उन्हें विविधास्त्र-शस्त्र प्रदान कराते हैं:—

"अध्यर्धयोजनं गत्वा सरय्वाँ दक्षिणे तटे।
रामेति मधुरां वाणीं विश्वामित्रोऽभ्यभाषत ॥
गृहाण वत्स सलिलं माभूत् कालस्य पर्ययः।
मन्त्रग्रामं गृहाण त्वं बलामतिबलां तथा ॥
एतद्विद्याद्वये लब्धे न भवेत्सदृशस्तव।
बला चातिबला चैव सर्वज्ञानस्य मातरौ ॥
क्षुत्पिपासे न ते राम भविष्येते नरोत्तम।
बलामतिबलां चैव पठतस्तव राघव ॥
विद्याद्वयमधीयाने यशश्चाथ भवेद् भुवि।
पितामहसुते ह्येते विद्ये तेजःसमन्विते ॥
प्रदातुं तव काकुत्स्थ सदृशस्त्वं हि पार्थिव।
कामं बहुगुणाः सर्वे त्वय्येते नात्र संशयः ॥
तपसा संभृते चैते बहुरूपे भविष्यतः।
ततो रामो जलं स्पृष्ट्वा प्रहृष्टवदनः शुचिः ॥
प्रतिजग्राह ते विद्ये महर्षेर्भावितात्मनः।
विद्यासमुदितो रामः शुशुभे भीमविक्रमः ॥
सहस्ररश्मिर्भगवान्शरदीव दिवाकरः।
ऊषुस्तां रजनीं तत्र सरय्वां ससुखं त्रयः ॥

अर्थात् डेढ़ योजन (छः कोस) चलकर सरयू नदी के दक्षिण-तट पर पहुँच कर विश्वामित्र ने मधुर वाणी से कहा कि हे राम ! हे वत्स ! उठो, समयका उल्लङ्घन न हो। यह 'बला' और 'अतिबला' नाम की दो विद्याएं हैं जिनके मन्त्र-समूह को तुम मुझ से ग्रहण करो। जब तू इन दोनों विद्याओं को पा जायगा तो फिर कोई तुम्हारा सामना नहीं कर सकेगा। यह 'बला' और 'अतिबला' सर्व ज्ञान की माताएँ हैं। हे राघव ! हे नरोत्तम ! इन विद्याओं को जान लेने पर तुम्हें क्षुधा और पिपासा नहीं प्रतीत होगी। इनके पढ़ लेने पर समस्त पृथिवी पर तुम्हारा सुयश विस्तृत होगा। ये दोनों विद्याएँ जो तेजसमन्वित हैं, पितामह (ब्रह्मा) की कन्याएँ हैं अर्थात ब्रह्मा से प्रादुर्भूत हैं। हे नरेश ! तू सत्पात्र है, तुम में अनेक गुण प्रत्यक्ष हैं, अतः तुम्हें मैं इन विद्याओं को देना चाहता हूँ। तप से धारण की हुई ये विद्याएँ अनेकरूप होंगी। तब रामचन्द्र ने आचमन कर, शुद्ध हो, प्रसन्न-मुख से शुद्धान्तःकरणवाले उस महर्षि से दोनों विद्याओं को ग्रहण किया। विद्या के संबन्ध से राम का पराक्रम प्रचण्ड हो गया और वे ऐसी शोभा को प्राप्त हुए जैसे शरद ऋतु में सूर्य भगवान होते हैं। उस रात्रि में उन तीनों ने वहीं सरयू के तट पर सुखपूर्वक वास किया।

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट पता चलता है कि महर्षि विश्वामित्र ने अत्यन्त प्रेम और वात्सल्य-भाव से राम को बला और अतिबला नाम की दो विद्याएँ प्रदान कीं और राम ने उन्हें श्रद्धा-भक्ति से संयुक्त ग्रहण भी किया। 'बला' और 'अतिबला' विद्याएं क्या हैं? इसका मुझे ज्ञान नहीं, परन्तु महर्षि बाल्मीकि के लेख से प्राचीन वैदिक-प्रथा झलकती है जहाँ आचार्य ब्राह्ममुहूर्त्त में उठकर अपने शिष्यों को उसी उत्तमकाल में विविधविध की लौकिक एवं आध्यात्मिक शिक्षाएँ देते थे। आगे के उद्धरणों से पाठकों के अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्रों के नामों का पता चलेगा:—

"अथ तां रजनीमुष्य विश्वामित्रो महायशाः।
प्रहस्य राघवं वाक्यमुवाच मधुरस्वरम्॥
परितुष्टोऽस्मि भद्रं ते राजपुत्र महायशः।
प्रीत्या परमया युक्तो ददाम्यस्त्राणि सर्वशः॥
येरमित्रान्प्रसह्याजौ वशीकृत्य जयिष्यसि।
तानि दिव्यानि भद्रं ते ददाम्यस्त्राणि सर्वशः॥
दण्डचक्रं महद् दिव्यं तव दास्यामि राघव।
धर्मचक्रं ततो वीर कालचक्रं तथैव च॥
विष्णुचक्रं तथात्युग्रमैन्द्रमस्त्रं तथैव च।
वज्रमस्त्रं नरश्रेष्ठ शैवं शूलवरं तथा॥
अस्त्रं ब्रह्मशिरश्चैव ऐषीकमपि राघव।
ददामि ते महाबाहो ब्राह्ममस्त्रमनुत्तमम्॥
गदे द्वे चैव काकुत्स्थ मोदकी शिखरी शुभे।
प्रदीप्ते नरशार्दूल प्रयच्छामि नृपात्मज॥
धर्मपाशमहं राम कालपाशं तथैव च।
वारुणं पाशमस्त्रं च ददाम्यहमनुत्तमम्॥
अशनी द्वे प्रयच्छामि शुष्कार्द्रे रघुनन्दन।
ददामि चास्त्रं पैनाकमस्त्रं नारायणं तथा॥
आग्नेयमस्त्रं दयितं शिखरं नाम नामतः।
वायव्यं प्रथनं नाम ददामि तव चानघ॥
अस्त्रं हयशिरो नाम क्रौञ्चमस्त्रं तथैव च।
शक्तिद्वयं च काकुत्स्थ ददामि तव राघव॥
कङ्कालं मुशलं घोरं कापालमथ किङ्किणीम्।
धारयन्त्यसुरा यानि ददाम्येतानि सर्वशः॥
वैद्याधरं महास्त्रं च नन्दनं नाम नामतः।
असिरत्नं महाबाहो ददामि नरवरात्मज॥
गान्धर्वमस्त्रं दयितं मोहनं नाम नामतः।
प्रस्वापनं प्रशमनं दद्मि सौम्यं च राघव॥

वर्षणं शोषणं चैव संतापनविलापने।
मादनं चैव दुर्धर्षं कन्दर्पदयितं तथा।
गान्धर्वमस्त्रदयितं मानवं नाम नामतः।
पैशाचमस्त्रं दयितं मोहनं नाम नामतः॥
प्रतीच्छ नरशार्दूल राजपुत्र महायशः।
तामसं नरशार्दूल सौमनं च महाबलम्॥
संवर्तं चैव दुर्धर्षं मौसलं च नृपात्मज।
सत्यमस्त्रं महाबाहो तथा मायामयं परम्॥
सौरं तेजःप्रभं नाम परतेजोऽपकर्षणम्।
सोमास्त्रं शिशिरं नाम त्वाष्ट्रमस्त्रं सुदारुणम्॥
दारुणं च भगस्यापि शीतेषुमथ मानवम्।
एतान्राम महाबाहो कामरूपान्महाबलान्॥
गृहाण परमोदारान्क्षिप्रमेव नृपात्मज।
स्थितस्तु प्राङ्मुखो भूत्वा शुचिर्मुनिवरस्तदा॥
ददौ रामाय सुप्रीतो मन्त्रग्राममनुत्तमम्।
सर्वसंग्रहणं येषां दैवतैरपि दुर्लभम्॥
ततः प्रीतमना रामो विश्वामित्रं महामुनिम्।
अभिवाद्य महातेजा गमनायोपचक्रमे॥

अर्थात्—उस रात्रिमें वहाँ निवास कर अत्यन्त यशस्वी विश्वामित्र हर्षित होकर मधुरस्वर से रामचन्द्र से बोले कि हे महान् यशस्वी राज-पुत्र, मैं तुमपर प्रसन्न हुआ हूँ, तुम्हारा कल्याण हो, मैं तुम्हें बहुतेरे अस्त्र देता हूँ, जिनसे संग्राम में तुम सब शत्रुओं को दबाकर वश में कर के जीत सकोगे। हे राम! तुम्हें एक बड़ा दिव्य 'दण्ड चक्र', 'धर्म चक्र', 'काल चक्र', 'विष्णु चक्र', और वृहद् 'इन्द्रास्त्र' देता हूँ। हे नरेन्द्र राघव! तुम्हें 'वज्रास्त्र', 'शैवशूल्यवर', 'ब्रह्मशिर अस्त्र', 'ऐषीक अस्त्र', और हे महावाहो! सब से उत्तम 'ब्रह्मास्त्र' देता हूँ। हे काकुत्स्थ! हे नर शार्दूल राज-पुत्र! ये दो शुभ गदाएँ 'मोदकी' और 'शिखरी' नाम की जो अति प्रचण्ड हैं इन्हें तुम्हें देता हूँ। 'धर्मपाश', 'कालपाश', 'वरुणपाश' जो उत्तमोत्तम अस्त्र हैं, इन्हें भी तुम्हें देता हूँ। हे रघुनन्दन! ये शुष्क एवं आर्द्र दो 'विजली के अस्त्र' देता हूँ। 'पिनाक अस्त्र', 'नारायण अस्त्र', अग्निका प्यारा 'आग्नेयास्त्र' जो 'शिखर' नाम से प्रसिद्ध है, तथा हे अनघ! वायु का यह 'प्रथन अस्त्र' तुम्हें देता हूँ। हे काकुत्स्थ! हे राघव! 'हयशिर अस्त्र' और 'क्रौञ्च अस्त्र' ये दोनों 'शक्ति-अस्त्र' हैं इन्हें भी तुम्हें प्रदान करता हूँ। 'कंकाल', 'मुसल', 'घोर कापाल', 'किंकिणी' जिनको असुर लोग धारण करते हैं—ये समस्त तुमको देता हूँ। यह विद्याधरोंका महान् अस्त्र जो 'नन्दन' नाम से विख्यात है—जिसे छोड़ने पर छुरे निकलते हैं—हे नरवरात्मज! तुम्हें देता हूँ। गन्धर्वों का प्यारा अस्त्र—जो 'मोहन' नाम से प्रसिद्ध

है अथच 'कोमल', 'प्रस्वापन' तथा 'प्रशमन अस्त्र' तुमको देता हूँ। 'वर्षण', 'शोषण', 'संतापन', 'विलापन' और कामका प्यारा किसीसे न दबनेवाला 'मादन' नाम का अस्त्र, गन्धर्वों का प्रियतम 'मानवास्त्र', पैशाचों का 'मोहन' नाम का अस्त्र, इनको हे नरश्रेष्ठ ! मुझ से ग्रहण करो। इनके अतिरिक्त 'सौमन', संवर्त', दुर्धर्ष 'मौसल' 'सत्य अस्त्र', 'मायामय अस्त्र', सूर्य का 'तेजःप्रभ' अस्त्र जो शत्रु के तेज को खींचने वाला है—सोम का शिशिर अस्त्र', त्वष्टा का 'सुदारुण अस्त्र', भग का 'भयंकर अस्त्र' और शीतेषु का 'मानव अस्त्र' प्रदान करता हूँ। हे महाबाहो ! हे राजपुत्र ! इन सब बलयुक्त सब इच्छाओं का पूर्ण करनेवाले परम उदार अस्त्रों को शीघ्र ग्रहण करो। इसके अनन्तर मुनिराज ने शुद्ध होकर पूर्वाभिमुख खड़ा होकर सर्वोत्तम मन्त्र-समूह को राम को दिया, जिनका संग्रह करना देवताओं को भी दुर्लभ है। तब प्रसन्नमन महा तेजस्वी राम विश्वामित्र को अभिवादन कर के यात्रा के लिये प्रस्तुत हुए।

ऊपर के लेख पर पाठक विचार करें कि कैसे कैसे अद्भुत अस्त्रों का वर्णन आया है। उन अस्त्रों के क्या स्वरूप थे ? उनकी क्या शक्तियाँ थीं ? इन सब बातों का आज पता तक नहीं लगता। उन सब अस्त्रों के कई नामों से इस बात की ऊहा उठती है कि उनमें पृथक् पृथक् विद्युत् (Positvie and Negatvie), अग्नि, वायु और वाष्प इत्यादि के प्रयोग होते थे। इन सब बातों के उल्लेख से कम से कम भारतवर्ष की प्राचीन वैज्ञानिक उन्नति और कला-कौशल की आभा प्रतिभासित होती है। अब आगे रामचन्द्र के प्रश्न से स्पष्ट विदित होगा कि इन अस्त्रों के परिहारक अस्त्रों को भी मुनिराज ने उन्हें प्रदान किया है।

"प्रतिगृह्य ततोऽस्त्राणि प्रहृष्टवदनः शुचिः।
गच्छन्नेव च काकुत्स्थो विश्वामित्रमथाब्रवीत्॥
गृहीतास्त्रोऽस्मि भगवन्दुराधर्षः सुरैरपि।
अस्त्राणां त्वहमिच्छामि संहारान्मुनिपुंगव॥
एवं ब्रुवति काकुत्स्थे विश्वामित्रो महातपाः।
संहारान् व्याजहाराथ धृतिमान् सुव्रतः शुचिः॥
सत्यवन्तं सत्यकीर्तिं धृष्टं रभसमेव च।
प्रतिहारतरं नाम पराङ्मुखमवाङ्मुखम्॥
लक्ष्याक्षविषमौ चैव दृढनाभसुनाभकौ।
दशाक्षशतवक्त्रौ च दशशीर्षशतोदरौ॥
पद्मनाभमहानाभौ दुन्दुनाभस्वनाभकौ।
ज्योतिषं कृशनं चैव नैराश्यविमलावुभौ॥
यौगंधरविनिद्रौ च दैत्यप्रथमनौ तथा।
शुचिबाहुर्महाबाहुर्निष्कलिर्विरुचिस्तथा ।

चार्चिमालिधृतिमालीवृत्तिमान् रुचिरस्तथा ॥
पित्र्यः सौमनसश्चैव विधूतमकरावुभौ ।
परवीरं रतिं चैव धनधान्यौ च राघव ॥
कामरूपं कामरुचिं मोहमावरणं तथा ।
जृम्भकं सर्पनाथं च पन्थानवरुणौ तथा ॥
कृशाश्वतनयान्राम भास्वरान्कामरूपिणः ।
प्रतीच्छ मम भद्रं ते पात्रभूतोऽसि राघव ॥
स च तान्राघवो ज्ञात्वा विश्वामित्रं महामुनिम् ।
गच्छन्नेवाथ मधुरं श्लक्ष्णं वचनमब्रवीन् ॥

अर्थात्—उन अस्त्रों को ग्रहण करके राम शुद्ध होकर प्रसन्नमुख चलते चलते ही उन्होंने विश्वामित्र से कहा कि हे भगवन्! मैंने सब अस्त्र ग्रहण कर लिये हैं अब देवता भी मुझे नहीं दबा सकते। हे मुनिश्रेष्ठ! अब मैं इन सब अस्त्रों के संहार (स्यात् शत्रु आकर मेरे ही ऊपर प्रयोग करे तो उनके रोकने का अस्त्र क्या होगा) जानना चाहता हूँ। राम के ऐसा कहने पर महातपस्वी धैर्यवाले, उत्तम व्रतवाले, पवित्र ऋषि इनके संहार बताने लगे, जिनके नाम 'सत्वान', 'सत्यकीर्ति', 'धृष्ट', 'रभस', 'प्रतिहारतर', 'पराङ्मुख', 'अवाङ्मुख', 'लक्षाक्ष', 'विषम', 'दृढनाभ', 'सुनाभ', 'दशाक्ष', 'शतवक्त्र', 'दशशीर्ष', 'शतोदर', 'पद्मनाभ', 'महानाभ', 'दुन्दुनाभ', 'स्वनाभ', 'ज्योतिष', 'कृशन', 'नैराश्य', 'विमल', 'यौगन्धर', 'विनिद्र', 'दैत्यप्रमथन', 'शुचिवाहु', 'महावाहु', 'निष्कलि', 'विरुचि', 'सार्चिमाली', 'धृतिमालि', 'वृत्तिमान', 'रुचिर', 'पित्र्य', 'सौमनस्य', विधूत, मकर, 'परवीर', 'रति', 'धन', 'धान्य', 'कामरूप', 'कामरुचि', 'मोह', 'आवरण', 'जृम्भक', 'सर्पनाथ', 'पन्थान', और 'वरुण' हैं। हे राम! ये सब अस्त्र कृशाश्व के पुत्र (अर्थात् कृशश्व ऋषि के द्वारा आविष्कृत) हैं, ये चमकते हुए कामरूपी हैं इनको मुझसे स्वीकार करो, तुम्हारा कल्याण हो, हे राघव! तू इन का पात्र है। राम ने उन सब को भली भाँति जान लिया और आगे चले।

सिद्धाश्रम में पहुँच कर विश्वामित्र ने यज्ञ प्रारम्भ किया और भीषण राक्षस उपद्रव करने आये। मारीच को राम ने ऐसे अस्त्रों से मारा जो शीत थे, पर उसे बेहोश कर अपने बल से उन अस्त्रों ने फेंक दिया। सुबाहु को राम ने प्रथम ठंडे अस्त्रों के प्रयोग से बेहोश कर दिया, आग्नेय अस्त्रों से बेचैन करके वायव्यास्त्रों से प्राणहीन कर डाला। इस प्रकार विश्वामित्र के दिये अस्त्रों के द्वारा उनके यज्ञ की सम्यक्तया रक्षा की। आज यूरोपीयन अपने शस्त्रास्त्रों के बल पर अभिमान के मारे फूले नहीं समाते, पर यदि आज ये अस्त्र भारतीयों के हाथ रहते तो कम से कम इन्हें इतने अभिमान का अवसर नहीं मिलता। सुतराम्;

तुलसीदास जी ने इस प्रसंग को अत्यन्त संक्षिप्त कर दिया है, इसका एक मुख्य और प्रबल कारण यह है कि गोस्वामी जी मर्यादा पुरुषोत्तम राम को परमात्मा का अवतार मानते थे, अतः उनका शिष्य-भाव से विद्याग्रहण करने का प्रकरण लिखने में आप अप्रतिष्ठा समझते थे। बड़ी बड़ी मुशकिलों से तो गुरु यहाँ पढ़ने के लिये भेजते हैं:—

गुरुगृह गये पढ़न रघुराई। अलप काल विद्या सब पाई॥

इतना लिख चुकने के अनन्तर ही भक्त-प्रवर को अपने सिद्धान्त के ताईद की सूझी और झटपट लिख दिया।

जाकी सहज स्वास श्रुति चारी। सो हरि पढ़ यह कौतुक भारी॥

अब आप प्रकृत-प्रकरण पर आवें। विश्वामित्र ने रामचन्द्र को नाना भाँति की शस्त्र-विद्याएँ दीं पर गोसाईं जी ने उल्लिखित कारण वश उनका वर्णन नहीं कर के बड़ी वकालत के साथ, पशोपेशी में पड़ते हुए लिखा है:—

तब ऋषि निज नाथहिं जिय चीन्ही। विद्यानिधि कहँ विद्या दीन्हीं॥

इसका एक तुच्छ कारण यह भी हो सकता है कि उन अस्त्रों के नाम इनके छोटे छन्द (चौपाई) में ठीक नहीं बैठते और स्यात् कविता के नीरस होने की भी आशंका संभाव्य हो। जो हो; हमारे कविता-कानन-केशरी ने डबल छलाँग मारी है जिससे बीच का एक आवश्यक प्रकरण छूट गया है। पिछले उद्धरणों में आप देखेंगे कि प्राचीन कालीन गुरु-शिष्य-परम्परा के अनुसार प्रातरुत्थान प्रकरण में वाल्मीकि के लेखानुसार पहले विश्वामित्र उठते हैं, तब रामलक्ष्मण को जगा देते हैं, पर गोसाईं जी पहले लक्ष्मण को तब राम को तब विश्वामित्र को उठाते हैं:—

उठे लखन निसि बिगत सुनि, अरुणशिखाधुनि कान।
गुरुते पहिले जगत पति, जागे राम सुजान॥

(५) वाल्मीकि ने धनुर्यज्ञ का प्रकरण अत्यन्त संक्षिप्त पर अनुपम रीति से लिखा है। इस ग्रन्थ के अनुसार राम-लक्ष्मण को साथ लेकर विश्वामित्र जनक निर्मित यज्ञशाला में पहुँचे, और महाराज जनक से भ्रातृ-द्वय का परिचय दिया है, जनक ने तीनों महापुरुषों का अतिथि-सत्कार किया। जनक के आज्ञानुसार बड़े पिटारे में बन्द धनुष मँगाया गया, उसे राम ने देखा और अनायास तोड़ डाला है। राम की वीरता देखकर सब लोग चकित रह जाते हैं। जनक ने विश्वामित्र की अनुमति से राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न का विवाह सीता, उर्मिला, माण्डवी और श्रुति-कीर्ति इन चार कन्याओं से करने का निश्चय कर महाराज दशरथ को सूचना दी। दशरथ जी अपने ऋत्विज, आचार्य और पुरोहितादि के साथ सहर्ष जनकपुर पधारे और अपने पुत्रों के विवाह हो जाने पर सत्कार-पूर्वक विदा ग्रहण कर अयोध्या

वापस आये हैं। मार्ग में परशुराम मिले, पर राम के पराक्रम को देख कर अपना धनुष भेंट देकर चलते बने।

श्री गोसाईं तुलसीदास जी ने इस प्रकरण को समयानुकूल, विस्तृत, रोचक और कवित्व-सम्पन्न बनाने में लेखनी तोड़ डाली है। इस महाकवि ने अपनी लेखन-कला और काव्य-प्रतिभा का अपूर्व परिचय दिया है। इन स्थलों को पाठक वहीं अवलोकन करें। परशुराम की विशेष सम्मत कराने के उद्देश्य से कविवर ने उन्हें यज्ञशाला में ही आहूत किया और उनकी सेवा में अपूर्व हास्य–कविता समर्पित की है। विवाह प्रकरण में तो आप खुलकर खेले हैं। निस्सन्देह यह प्रकरण रचना-वैचित्र्य की दृष्टि से अनुपम और उत्तम है।

(६) वाल्मीकि विरचित अयोध्याकाण्ड, रचना की दृष्टि से विचित्र है। महाराज दशरथ जब चारों सुयोग्य पुत्रों के विवाह कराकर अयोध्या वापस आये तो अपनी चतुर्थावस्था देखकर पारलौकिक सुधार की ओर कुछ प्रवृत्ति हुई। इधर रामचन्द्र जी युवावस्था प्राप्त कर चुके थे। इसके अतिरिक्त अपने आदर्श गुणों से प्रजा को अत्यन्त मुग्ध कर चुके थे। राजा दशरथ की इच्छा हुई कि राम को युवराज बनाया जाय, परन्तु तत्कालीन व्यवस्था के अनुसार राजा दशरथ इसमें निखिल-तन्त्र-स्वतन्त्र न थे, अतः वह अपनी राज्य-परिषद् (Council of state) का आह्वान करके उसके समक्ष अपना विचार उपस्थित करते हैं:—

ततः परिषदं सर्वामामन्त्र्य वसुधाधिपः।
हितमुद्धर्षणं चैवमुवाच प्रथितं वचः॥
राजलक्षणयुक्तेन कान्तेनानुपमेन च।
उवाच रसयुक्तेन स्वरेण नृपतिर्नृपान्॥
विदितं भवता मेतद्यथा मे राज्यमुत्तमम्।
पूर्वकैर्मम राजेन्द्रैः सुतवत्परिपालितम्॥
मयाप्याचरितं पूर्वैः पन्थानमनुगच्छता।
प्रजानित्यमनिद्रेण यथाशक्त्याभिरक्षिताः॥
इदं शरीरं कृत्स्नस्य लोकस्य चरता हितम्।
पाण्डुरस्यातपत्रस्य छायायां जरितं मया॥
राजप्रभावजुष्टां च दुर्वहामजितेन्द्रियैः।
परिश्रान्तोऽस्मि लोकस्य गुर्वीं धर्मधुरं वहन्॥
सोऽहं विश्राममिच्छामि पुत्रं कृत्वा प्रजाहिते।
संनिकृष्टानिमान्सर्वाननुमान्य द्विजर्षभान्॥
अनुरूपः स वो नाथो लक्ष्मीवाँल्लक्ष्मणाग्रजः।
त्रैलोक्यमपि नाथेन येन स्यान्नाथवत्तरम्॥
यदीदं मेऽनुरूपार्थं मया साधु सुमन्त्रितम्।

भवन्तो मेऽनुमन्यतां कथं वा करवाण्यहम् ॥
यद्यप्येषा मम प्रीतिर्हितमन्यद्विचिन्त्यताम् ।
अन्या मध्यस्थचिन्ताहि विमर्दाभ्यधिकोदया ॥

भाषार्थ—तब वसुधा नरेश (राजा दशरथ) ने अपनी परिषद् को बुला कर सभास्थ अन्य नृपतियों और सभासदों से राजोचित, प्रिय, अनुपम, रसयुक्त हर्षजनक वचन उच्चस्वर से बोले । सज्जनो ! आपको विदित है कि मेरा यह उत्तम राज्य मेरे पूर्वज महाराजों से लालित और पालित है, मैंने भी उन राजेन्द्रों का अनुसरण करते हुए तदनुकूल ही आचरण किया और सदा जागृत रह कर प्रजाओं की यथाशक्ति रक्षा की है । समस्त लोक का हिताचार करते हुए मैंने इस शरीर को श्वेत-छत्रछाया में वृद्ध किया है । राज-प्रभाव से सेव्य विस्तृत लोक-मर्यादा की धुरा को—जो अजितेन्द्रिय पुरुष से कदापि उठायी नहीं जा सकती—वहन करते हुए अब मैं परिश्रान्त हो गया हूँ, अतः मैं आप सब उपस्थित द्विजवरों की अनुमति लेकर अपने पुत्र को प्रजाहित में लगा कर विश्राम करना चाहता हूँ । वह लक्ष्मीवान् लक्ष्मणाग्रज (राम) आपका सुयोग्य नाथ होगा जिसके द्वारा आप ही नहीं, अपितु; त्रिलोक नाथवत्तर होंगे । यदि यह मेरा विचार उत्तम फलदायक हो और मैंने समुचित विचार किया हो तो आप लोग इसमें सम्मति प्रदान करें अन्यथा क्या किया जाय, इसकी अनुमति दें । यद्यपि हित और प्रीतियुक्त बुद्धि से प्रेरित होकर मैंने ऐसा विचार स्थिर किया है, तथापि यदि दूसरे मार्ग से कल्याण प्रतीत होता हो तो आप लोग उस विचार को भी प्रगट करें, क्योंकि मध्यस्थोंका विचार कुछ और ही मूल्य रखता है, जो विमति अर्थात् वाद-विवाद के अनन्तर निर्णीत होता है, उसी निश्चित मत को मानने से विशेष अभ्युदय होता है ।

ऊपर के उद्धरणों से पूर्ण निश्चित होता है कि महाराज दशरथ ने अत्यन्त दक्षता के साथ अपना प्रस्ताव मात्र परिषद् में प्रविष्ट किया था और उसपर भवन (House) की सम्मति (vote) मांगी थी । इसपर परिषदों की अनुमति सुनिये:—

इति ब्रुवन्तं मुदिताः प्रत्यनन्दन्नृपाः नृपम् ।
वृष्टिमन्तं महामेघं नदन्त इव बर्हिणः ॥
स्निग्धोऽनुनादः संजज्ञे ततो हर्षसमीरितः ।
जनौघोद्घुष्टसंनादो विमानं कम्पयन्निव ॥
तस्य धर्मार्थ विदुषो भावमाज्ञाय सर्वशः ।
ब्राह्मणा बलमुख्याश्च पौरजानपदैः सह ॥
समेत्य ते मन्त्रयितुं समतागतबुद्धयः ।
ऊचुश्च मनसा ज्ञात्वा वृद्धं दशरथं नृपम् ॥

इच्छामो हि महाबाहुं रघुवीरं महाबलम् ।
गजेन महता यान्तं रामं छत्रावृताननम् ॥
बहवो नृपकल्याणा गुणाः सन्ति सुतस्य ते ।
इक्ष्वाकुभ्योऽपि सर्वेभ्यो ह्यतिरिक्तो विशांपते ॥
धर्मज्ञः सत्यसंधश्च शीलवाननसूयकः ।
क्षान्तः सान्त्वयिता श्लक्ष्णः कृतज्ञो विजितेन्द्रियः॥
मृदुश्च स्थिरचित्तश्च सदा भव्योऽनसूयकः ।
प्रियवादी च भूतानां सत्यवादी च राघवः ॥
बहुश्रुतानां वृद्धानां ब्राह्मणानामुपासिता ।
तेनास्येहातुला कीर्तिर्यशस्तेजश्चव र्धते ॥
देवासुरमनुष्याणां सर्वास्त्रेषु विशारदः ।
सम्यग्विद्या व्रतस्नातो यथावत्साङ्ग-वेदवित् ॥
पौरान् स्वजनवन्नित्यं कुशलं परिपृच्छति ।
पुत्रेष्वग्निषु दारेषु प्रेष्यशिष्यगणेषु च ॥
व्यसनेषु मनुष्याणां भृशं भवति दुःखितः ।
उत्सवेषु च सर्वेषु पितेव परितुष्यति ॥
सत्यवादी महेष्वासो वृद्धसेवी जितेन्द्रियः ।
स्मितपूर्वाभिलाषी च धर्मं सर्वात्मनाश्रितः ॥
रामो लोकाभिरामोऽयं शौर्यवीर्यपराक्रमैः ।
प्रजापालनसंयुक्तो न रागोपहितेन्द्रियः ॥
नास्य क्रोधः प्रसादश्च निरर्थोऽस्ति कदाचन ।
हन्त्येष नियमाद्वध्यानवध्येषु न कुप्यति ॥
युनक्त्यर्थैः प्रहृष्टश्च तमसौ यत्र तुष्यति ।
वत्सः श्रेयसि जातस्ते दिष्ट्यासौ तव राघव ॥
आशंसते जनः सर्वो राष्ट्रे पुरवरे तथा ।
आभ्यन्तरश्च बाह्यश्च पौरजानपदो जनः ॥
तेषां तद्याचितं देव ! त्वत्प्रसादात्समृध्यताम् ।
पश्यामो यौवराज्यस्थं तव राजोत्तमात्मजम् ॥

अर्थ—महाराज दशरथ का विचार सुनकर सब राजाओं ने प्रसन्न होकर उसे इस प्रकार स्वीकार किया जिस प्रकार जलपूर्ण महामेघ को देखते हुए नाच कर मोर उसका स्वागत करते हैं। राजाओं की सहमति के अनन्तर जनसमूह (Visitors) ने इस प्रकार की ऊँची और स्निग्ध हर्ष-ध्वनि की जिससे राज-भवन गूँज पड़ा अथच कम्पायमान हो उठा। धर्म और अर्थ के जानने वाले उस राजा (दशरथ) के भाव को जान कर ब्राह्मण लोग सेना के प्रमुख सञ्चालक राजाओं के साथ मिल कर विचारने लगे और अपने अपने मन से निश्चय करके सब

एक ही परिणामपर पहुँचे और वृद्ध राजा दशरथ से बोले । हे महाराज ! हम लोग महाबाहु महाबलवान राम को बड़े हाथी पर चढ़कर जाते हुए देखना चाहते हैं और सिर पर झूलते हुए छत्र से उसका मुख आवृत्त हो । हे राजन् ! तुम्हारे पुत्र में बहुतेरे कल्याणकारक गुण हैं, हे नरपते ! रामचन्द्र सारे इक्ष्वाकुवंशियों में प्रभावशाली हैं । धर्मज्ञ, सत्यप्रतिज्ञ, शीलवान्, असूया से रहित, मृदुभाषी, सत्यवक्ता, क्षमाशील, सान्त्वना प्रदाता, शुद्ध, कृतज्ञ, जितेन्द्रिय, मृदु, स्थिरचित्त, सदा सभ्य, निन्दा से रहित, बहुश्रुत, और वृद्ध ब्राह्मणों की सेवा करने वाले हैं। इन सब कारणों से लोक में इनकी अतुल कीर्ति और सुयश का विस्तार हो गया है । मनुष्य, देवता और असुरों के सब प्रकार के अस्त्रों में इन्हें निपुणता प्राप्त हो गयी है । ये विद्या और व्रत के स्नातक और सामवेद के पूर्ण ज्ञाता हैं। नगर के लोगों को सदा स्वजनों की भाँति अर्थात् पुत्र, भृत्य, स्त्री और शिष्य-समुदाय से कुशल पूछा करते हैं । किसी को व्यसन में फँसा हुआ देख कर अत्यन्त दुःखी होते हैं और किसीके यहाँ उत्सव सुन कर पिता के समान प्रसन्न होते हैं । रामचन्द्र इतना बलशाली होते हुए भी धर्म के आश्रित रहनेवाले हैं, शौर्य-वीर्य-पराक्रम से परिपूर्ण हो कर समस्त लोक के प्यारे हैं, प्रजा-पालन के तत्व को पूर्ण जाननेवाले हैं, राग से इनकी इन्द्रियाँ दूषित नहीं होतीं; इनके क्रोध और प्रसाद कभी व्यर्थ नहीं होते । जो वध करने योग्य हैं, उनका वध कर ही डालते हैं और जो अवध्य हैं उन पर कभी क्रोध नहीं करते । जिस पर प्रसन्न होते हैं उसे निहाल कर देते हैं । हे राघवेन्द्र ! तुम्हारा पुत्र तुम्हारे भाग्य से कल्याण में सब से बढ़ा हुआ है । नगर और देश के सब लोग बाहर-भीतर के रहने वाले जन रामराज्य की चाहना कर रहे हैं । हे देव ! इन सब की प्रार्थना तुम्हारी कृपा से फलवती हो । हे राजोत्तम ! हम सब आपके पुत्र को यौवराज्यस्थ देखना चाहते हैं ।

ऊपर के उद्धारणों से प्राचीन राज्य-व्यवस्था की एक आभा टपकती है । महर्षि वाल्मीकि ने जिस मर्यादा, कुशलता और निपुणता के साथ राज्य-परिषद् से स्वीकृति एवं जनता की अनुमति लेकर राज्याभिषेक कराया है, हमारे कविसम्राट गोस्वामी तुलसीदास जी इस प्रसंग में अपने ग्रन्थ में उस श्रेणी तक नहीं पहुँच सके । पाठकों के मनोविनोदार्थ हम इस प्रकरण को कविवर के 'रामचरित-मानस' से उद्धृत करते हैं:—

'राउ सुभाउ मुकुर कर लीन्हा । बदन बिलोकि मुकुट सम कीन्हा ॥
श्रवण समीप भयेउ सितकेसा । मनहुँ जरठपन अस उपदेसा ॥
नृप युवराज राम कहँ देहू । जीवन जन्म लाभ किन लेहू ॥

अस विचारि उर आनि नृप, सुदिन सुअवसर पाइ ।
प्रेम पुलकि तन मुदित मन, गुरुहिं सुनायेउ जाइ ॥

कहेउ भुआल सुनिय मुनिनायक । भये राम सब बिधि सब लायक ॥
सेवक सचिव सकल पुरबासी । जे हमार अरि मित्र उदासी ॥
सबहिं राम प्रिय जेहि बिधि मोही । प्रभुअसीस जनु तनु धरि सोही ॥
विप्र सहित परिवार गोसाईं । करहिं छोह सब रौरेहि नाईं ॥
जे गुरुचरनरेनु सिर धरहीं । ते जनु सकल बिभव बस करहीं ॥
मोहि सम एहि जग भयो न दूजे । सब पायेउँ प्रभु पदरज पूजे ॥
अब अभिलाष एक मन मोरे । पूजहिं नाथ अनुग्रह तोरे ॥
मुनि प्रसन्न लखि सहज सनेहू । कहेउ नरेश रजायसु देहू ॥

राजन राउर नाम जस, सब अभिमत दातार ।
फल अनुगामी महिप मणि, मन अभिलाष तुम्हार ॥

सब बिधि गुरु प्रसन्न जिय जानी । बोले राउ हरखि मृदु बानी ॥
नाथ राम करिये युवराजू । कहिय कृपा करि करिय समाजू ॥
मोहि आछत यह होउ उछाहू । लहहिं लोग सब लोचन लाहू ॥
प्रभु प्रसाद शिव सबै निबाही । यह लालसा एक मन माहीं ॥
पुनि न सोच तनु रहै कि जाऊ । जेहि न होइ पाछे पछिताऊ ॥
सुनि मुनि दशरथ बचन सुहाये । मंगल मोद मूल मन भाये ॥
सुनु नृप जासु बिमुख पछिताहीं । जासु भजन बिनु जरनि न जाहीं ॥
भयेउ तुम्हार तनय सोइ स्वामी । राम पुनीत प्रेम अनुगामी ॥

बेगि बिलम्ब न करिय नृप, साजिय सकल समाज ।
सुदिन सुमंगल तबहिं जब, राम होहिं युवराज ॥

× × × ×

पाठक कवि-द्वय के लेखों का मिलान करें तो स्पष्ट प्रतीत होगा कि वालमीकि के लेख से 'प्रजातन्त्र-शासनप्रणाली' (Democracy) और गोसाईं जी की कविता से 'राजतन्त्र-शासनप्रणाली (Monarchy) प्रगट होती है। तुलसी दासजी ने दशरथ के द्वारा केवल वसिष्ठ से सम्मति लेकर अभिषेक की तैयारी करा दी है, पर वालमीकि ने राज्यपरिषद् और लोकमत का संग्रह करा युवराज्यत्व प्रदान का प्रबन्ध कराया है। राजनीतिक दृष्ट्या ऋषिराज का आसन गोसाईं जी की अपेक्षा अधिक उच्च प्रतीत होता है। सम्भव है, हमारे कवि-सम्राट के अन्तःकरण पर समसामयिक राज्य-व्यवस्था का प्रभाव पड़ा हो और उसीका परिष्कृत एवं परिमार्जित-स्वरूप आपने जनताके समक्ष रखा हो।

(७) वालमीकीय-रचना आदि-काव्य समझी जाती है, इस सिद्धान्त को लक्ष्य में रखते हुए विचार करनेसे इस महाकविका स्थान बड़ा ही उच्चतर प्रतीत होता है। किञ्चित छन्दःशैथिल्यको छोड़कर कविराज-की लेखनी अथाह सागर प्रतीत होती है। किसी भी वर्णन को जहाँ प्रारम्भ किया है, मानों मघा-मेघ की झड़

लगा दी है। सुख-दुःख, हर्ष-शोक, विस्मय, उत्साह, युद्ध, वीरता और नानाप्रकार के भावों के वर्णन करने में महाकवि ने कलम तोड़ दिये हैं। सरिता, सरोवर, वन, उपवन, पर्वत, ऋतु और प्रकृति-लेखक में कविकुल-तिलक ने कमाल कर डाला है। पाठकों के मनोविनोदार्थ किष्किन्धाकाण्ड से पंपासरोवर की शोभा, वसन्त और राम-विलाप का संमिश्रित-वर्णन उद्धृत किया जाता है :—

स तां पुष्करिणीं गत्वा पद्मोत्पलझषाकुलाम्।
रामः सौमित्रिसहितो विललापाकुलेन्द्रियः॥
तत्र दृष्ट्वैव तां हर्षादिन्द्रियाणि चकम्पिरे।
स कामवशमापन्नः सौमित्रिमिदमब्रवीत्॥
सौमित्रे शोभते पम्पा वैदूर्यविमलोदका।
फुल्लपद्मोत्पलवती शोभिता विविधैर्द्रुमैः॥
व्यवकीर्णा बहुविधैः पुष्पैः शीतोदका शिवा॥
अधिकं प्रविभात्येतन्नीलपीतं तु शाद्वलम्।
शोकार्तस्यापि मे पम्पा शोभते चित्रकानना।
द्रुमाणां विविधैः पुष्पैः परिस्तोमैरिवार्पितम्॥
पुष्पभारसमृद्धानि शिखराणि समन्ततः।
लताभिः पुष्पिताग्राभिरुपगूढानि सर्वतः॥
सुखानिलोऽयं सौमित्रे कालः प्रचुरमन्मथः।
गन्धवान् सुरभिर्मासो जातपुष्पफलद्रुमैः॥
पश्य रूपाणि सौमित्रे वनानां पुष्पशालिनाम्।
सृजतां पुष्पवर्षाणि वर्षंतोयमुचामिव॥
प्रस्तरेषु च रम्येषु विविधाः काननद्रुमाः।
वायुवेगप्रचलिताः पुष्पैरवकिरन्ति गाम्॥
पतितैः पतमानैश्च पादपस्थैश्च मारुतः।
कुसुमैः पश्य सौमित्रे क्रीडतीव समन्ततः॥
मत्तकोकिलसंनादैर्नर्तयन्निव पादपान्।
शैलकन्दरनिष्क्रान्तः प्रगीत इव चानिलः॥
तेन विक्षिपतात्यर्थं पवनेन समन्ततः।
अमी संसक्तशाखाग्रा ग्रथिता इव पादपाः॥
सुपुष्पितास्तु पश्यैतान्कर्णिकारान्समन्ततः।
हाटकप्रतिसंछन्नान्नरान्पीताम्बरानिव॥
अयं वसन्तः सौमित्रे नानाविहगनादितः।
सीतया विप्रहीणस्य शोक सन्दीपनो मम॥
अशोकस्तवकाङ्गारः षट्पदस्वननिःस्वनः।
मां हि पल्लवताम्रार्चिर्वसन्ताग्निः प्रधक्ष्यति॥

अयं हि रुचिरस्तस्याः कालो रुचिरकाननः ।
कोकिलाकुलसीमान्तो दयिताया ममानघ ॥
अमी मयूराः शोभन्ते प्रनृत्यन्तस्ततस्ततः ।
स्वैः पक्षैः पवनोद्धूतैर्गवाक्षैः स्फाटिकैरिव ॥
पश्य लक्ष्मण नृत्यन्तं मयूरमुपनृत्यति ।
शिखिनी मन्माथार्तैषा भर्त्तारं गिरिसानुनि ॥
तामेव मनसा रामां मयूरोऽप्यनु धावति ।
वितत्य रुचिरौ पक्षौ स तैरुपहसन्निव ॥
मयूरस्य वने नूनं रक्षसा न हृता प्रिया ।
तस्मान् नृत्यति रम्येषु वनेषु सहकान्तया ॥
ममाप्येवं विशालाक्षी जानकी जातसंभ्रमा ।
मदने नाभिवर्त्तेत यदि नापहृता भवेत् ॥
वसन्तो यदि तत्रापि यत्र मे वसति प्रिया ।
नूनं परवशा सीता सापि शोचत्यहं यथा ॥
श्यामा पद्मपलाशाक्षी मृदुभाषा च मे प्रिया ।
नूनं वसन्तमासाद्य परित्यक्ष्यति जीवितम् ॥
दृढं हि हृदये बुद्धिर्मम संपरिवर्तते ।
नालं वर्तयितुं सीता साध्वी मद्विरहं गता ॥
मयि भावो हि वैदेह्यास्तत्त्वतो विनिवेशितः ।
ममापि भावः सीतायां सर्वथा विनिवेशितः ॥
एष पुष्पवहो वायुः सुखस्पर्शो हिमावहः ।
तां विचिन्तयतः कान्तां पावकप्रतिमो मम ॥
सदा सुखमहं मन्ये यं पुरा सह सीतया ।
मारुतः स विना सीतां शोकसंजननो मम ॥
पश्य लक्ष्मण संनादं वने मदविवर्धनम् ।
पुष्पिताग्रेषु वृक्षेषु द्विजानामवकूजताम् ॥
विक्षिप्तां पवने नैतामसौ तिलकमञ्जरीम् ।
षट्पदः सहसाभ्येति मदोद्धूतामिव प्रियाम् ॥
अमी लक्ष्मण दृश्यन्ते चूताः कुसुमशालिनः ।
विभ्रमोत्सिक्तमनसः साङ्गरागा नरा इव ॥
जले तरुणसूर्याभैः षट्पदाहतकेसरैः ।
पङ्कजैः शोभते पम्पा समन्तादभिसंवृता ॥
पवनाहतवेगाभिरूर्मिभिर्विमलेऽम्भसि ।
पङ्कजानि विराजन्ते ताड्यमानानि लक्ष्मण ॥
पद्मपत्रविशालाक्षीं सततं प्रियपङ्कजाम् ।
अपश्यतो मे वैदेहीं जीवितं नाभिरोचते ॥

यानि स्म रमणीयानि तया सह भवन्ति मे ।
तान्येवारमणीयानि जायन्ते मे तया विना ॥
पद्मकोशपलाशानि द्रष्टुं दृष्टिर्हि मन्यते ।
सीताया नेत्रकोशाभ्यां सदृशानीति लक्ष्मण ॥
पद्मकेसरसंसृष्टो वृक्षान्तरविनिःसृतः ।
निःश्वास इव सीताया वाति वायुर्मनोहरः ॥
गिरिप्रस्थास्तु सौमित्रे सर्वतः संप्रपुष्पितैः ।
निष्पत्रैः सर्वतो रम्यैः प्रदीप्ता इव किंशुकैः ॥
पादपात्पादपं गच्छञ्शैलाच्छैलं वनाद्वनम् ।
वाति नैकरसास्वादसंमोहित इवानिलः ॥
इदं मृष्टमिदं स्वादु प्रफुल्लमिदमित्यपि ।
रागरक्तो मधुकरः कुसुमेष्वेव लीयते ॥
इयं कुसुमसंघातैरुपस्तीर्णा सुखाकृता ।
स्वयं निपतितैर्भूमिः शयनप्रस्तरैरिव ॥
हिमान्ते पश्य सौमित्रे वृक्षाणां पुष्पसम्भवम् ।
पुष्पमासे हि तरवः संघर्षादिव पुष्पिताः ॥
आह्वयन्त इवान्योन्यं नगाः षट्पदनादिताः ।
कुसुमोत्तंसविटपाः शोभन्ते बहु लक्ष्मण ॥
यदि दृश्येत सा साध्वी यदि चेह वसेमहि ।
स्पृहयेयं न शक्राय नायोध्यायै रघूत्तम ॥
न ह्येवं रमणीयेषु शाद्वलेषु तया सह ।
रमतो मे भवेच्चिन्ता न स्पृहान्येषु वा भवेत् ॥
पश्य सानुषु चित्रेषु मृगीभिः सहितान्मृगान् ।
मां पुनर्मृगशावाक्ष्या वैदेह्या विरहीकृतम् ॥
यामामनुगता मन्दं पित्रा प्रस्थापितं वनम् ।
सोता धर्मं समास्थाय क्व नु सा वर्तते प्रिया ॥
तया विहीनः कृपणः कथं लक्ष्मण धारये ।
या मामनुगता राज्याद्भ्रष्टं विहतचेतसम् ॥
तच्चार्चितपद्माक्षं सुगन्धिशुभमव्रणम् ।
अपश्यतो मुखं तस्याः सीदतीव मतिर्मम ॥
स्मितहास्यान्तरयुतं गुणवन्मधुरं हितम् ।
वैदेह्या वाक्यमतुलं कदा श्रोष्यामि लक्ष्मण ॥
किंतु वक्ष्याम्ययोध्यायां कौसल्यां हि नृपात्मज ।
क्व सा स्नुषेति पृच्छन्तीं कथं चापि मनस्विनीम् ॥
गच्छ लक्ष्मण पश्य त्वं भरतं भ्रातृवत्सलम् ।
नह्यहं जीवितुं शक्तस्तामृते जनकात्मजाम् ॥

इति रामं महात्मानं विलपन्तमनाथवत् ।
उवाच लक्ष्मणो भ्राता वचनं युक्तमव्ययम् ॥
संस्तम्भ राम भद्रं ते मा शुचः पुरुषोत्तम ।
नेदृशानां मतिर्मन्दा भवत्यकलुषात्मनाम् ॥
यदि गच्छति पातालं ततोऽभ्यधिकमेव वा ।
सर्वथा रावणस्तात न भविष्यति राघव ॥
उत्साहो बलवानार्य नास्त्युत्साहात्परं बलम् ।
सोत्साहस्य हि लोकेषु न किंचिदपि दुर्लभम् ॥
उत्साहवन्तः पुरुषा नावसीदन्ति कर्मसु ।
उत्साहमात्रमाश्रित्य प्रतिलप्स्यामि जानकीम् ॥
एवं संबोधितस्तेन शोकोपहतचेतनः ।
त्यज्य शोकं च मोहं च रामो धैर्यमुपागमत् ॥
सोऽभ्यतिक्रामदव्यग्रस्तामचिन्त्यपराक्रमः ।
रामः पम्पां सुरुचिरां रम्यां पारिप्लवद्रुमाम् ॥

तावृष्यमूकस्य समीपचारी
चरन्ददर्शाद्भुतदर्शनीयौ ।
शाखामृगाणामधिपस्तरस्वी
वितत्रसे नैव विचेष्ट चेष्टम् ॥

अर्थात्—श्री रामचन्द्र लक्ष्मण के साथ नीलरंग के कमलों और मछलियों से समाकुल पम्पासरोवर पर जाकर व्याकुलेन्द्रिय हो विलाप करने लगे। उस तड़ाग को देखते ही हर्ष से राम की इन्द्रियाँ कम्पित हो उठीं और कामातुर होकर वे लक्ष्मण से बोले। हे सौमित्रि ! वैदूर्यमणि के समान निर्मल जलवाली विकसित रक्त-पीत कमलों से अच्छादित विविध पादपों से समावृत पम्पा कैसी शोभायुक्त हो रही है ! मुझ शोक-सन्तप्त को—यह विचित्रकानना, नाना प्रकार के पुष्पों से समाकीर्ण, शीतल जलवाली, सुखदा पम्पा सुशोभित है यह स्थान नील, पीत और हरित परिस्तोम (गुलदस्ता) की नाईं समर्पित अनेक प्रकार के तरुवरों और पुष्पों से सुसज्जित एवं रमणीय प्रतीत हो रहा है। चतुर्दिक कुसुमसमूह से समृद्ध वृक्ष-शिखर कुसुमित लताओं से आलिङ्गन कर रहे हैं। हे सुमित्रानन्दन ! पत्र-पुष्पों से युक्त द्रुमवान् और सुगन्धवान् यह सुरभि-मास, प्रचुर काम का उद्दीपक है। हे लक्ष्मण ! सुमनशाली बनों के सौन्दर्य को देखो जो मेघ की पुष्प-वर्षा कर रहे हैं ! विविध विध के कानन-द्रुम, वायु-वेग से प्रेरित फूलों को रमणीय प्रस्तर शिलाओं पर बखेर रहे हैं।

हे लक्ष्मण ! देखो; इन गिरे हुए, गिरते हुए और द्रुम-स्थित पुष्पों से वायु कैसा सब ओर मानो क्रीडा कर रहा है। पर्वतों की कन्दराओं से निष्क्रान्त

समीर, तरुवर-समुदाय को नचाता हुआ स्वयं प्रमत्त कोकिल की ध्वनि से मानो संगीत कर रहा है। अथवा यह पवन चारों ओर से वृक्षों को हिला कर उनके शाखाग्र भाग को मिलाते हुए मानों वृक्षों को संग्रथित कर रहा है। चतुर्दिग इन कुसुमित कर्णिकारों को देखो, जो स्वर्णाच्छादित पीताम्बरधारी पुरुषों की भाँति सुशोभित हो रहे हैं। हे सौमित्रे! नाना प्रकार के पक्षियों से निनादित यह वसन्त सीता से विहीन मेरे शोक का संदीपन कर रहा है। यह अग्नि के समान वसन्त—जिसके अँगारे अशोक के गुच्छे, धधक भ्रमरों की गूँजें और लपट कोयलों की ध्वनि हैं—मुझे विदग्ध करेगा। यह काल जिसमें समस्त बन सोहावना हो रहा है और जिस कानन का सीमान्त कोकिल-नाद से परिप्लुत है वह मेरी प्यारी के लिये रुचिर है। ये इतस्ततः नृत्य करते हुए मयूर, पवन से कम्पित पंखों से स्फटिक के गवाक्ष (झरोंकों) की नाईं शोभा दे रहें हैं। हे लक्ष्मण, यह पर्वत शिखर पर नाचते हुए मोर के साथ कन्दर्पमर्दिता मयूरनी भी नृत्य कर रही है। उसका भर्त्ता मोर भी पंख फैला कर उसी रमणी के पीछे मन से धावन करता हुआ अपनी ध्वनि से मेरा उपहास कर रहा है। हे मयूर! तुम्हारी प्यारी बन में राक्षस द्वारा नहीं हरी गयी है, अतः तू सुहावने बन में कान्ता के साथ नाच रहा है। मेरी ओर भी—विशालाक्षी जानकी यदि हरी न गयी होती तो काम से संभ्रम हो झुकती। जहाँ मेरी प्यारी निवास करती है, यदि वहाँ भी वसन्त होगा तो निस्सन्देह परवशा सीता मेरी ही भाँति शोक कर रही होगी। ऐसी दशा में वह नवयुवती, पद्मपत्र से सुशोभित नयनवाली, मृदुभाषिणी अपना जीवन-त्याग कर देगी। मेरे हृदय में यह विचार दृढ़ हो रहा है कि साध्वी सीता मेरे विरह में जीवित नहीं रह सकती। सीता का पूर्ण भाव मुझ में और मेरा पूर्ण भाव सीता में संनिवेशित हो रहा है। यह सुगन्ध और शीतावह सुखस्पर्श वायु उस प्यारी का चिन्तन करते हुए अग्नि के समान दाहक हो रहा है। सीता के साथ जिस वायु को मैं सदा सुखजनक माना करता था अब सीता के बिना वही वायु शोकजनक हो रहा है। हे लक्ष्मण! देखो बन में फूले हुए वृक्षों के ऊपर पक्षियों का कूजन और नाद मद-विवर्धन कर रहे हैं। वह भ्रमर मद से विक्षिप्त हो कर वायु से प्रेरित तिलक मञ्जरी की ओर मदमत्त जानकी की नाईं वेग से जा रहा है। हे लक्ष्मण! कुसुमशाली ये आम्र वृक्ष भ्रमासक्त चित्तवाले अंगराग किये हुए पुरुषों की भाँति दृश्यमान हो रहे हैं। जल में तरुण सूर्य की आभा और भ्रमराहत केसरोंवाले पङ्कजों से यह पम्पा चारों ओर से घिरी हुई है। हे लक्ष्मण! पवन से प्रेरित वेगवती जल-ऊर्मियों से ताड़ित अम्बुज इस विमल अम्बु में अद्भुत शोभा पा रहे हैं। सरोज-पत्र के तुल्य विशालनयनी कमलों को सदा प्यार करने वाली जानकी को नहीं देखते हुए मुझे जीना नहीं रुचता। जो पदार्थ जानकी के

संग मेरे लिये रमणीय थे, वेही अब उसके विहीन अरमणीय हो रहे हैं। हां, पद्म-कोश के पत्तों को दृष्टि पसन्द करती है क्यों कि वे सीता के नेत्रों के समान हैं। पद्म केसर से संसृष्ट, वृक्षान्तर निःसृत मनोहर वायु सीता के निःश्वास के समान चल रहा है। हे लक्ष्मण! पर्वतशिखर, चतुर्दिग विकसित पत्र-हीन किंशुकों से मानो प्रदीप्त हो रहे हैं। एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर, एक पर्वत से अन्य पर्वत पर, और इस बन से उस बन की ओर जाता हुआ वायु अनेक रसों के आस्वादन से आनन्दित हुए (मनुष्य) की भाँति बह रहा है। पुष्पों के माधुर्य, स्वाद और विकास से मदमत्त प्रेम-रत भ्रमर पुष्पों में ही लीन हो जाता है। यह स्वयंपतित पुष्पावली से उपस्तीर्ण यह भूमि शयन-प्रस्तर के समान सुखदा बनी हुई है। हे लक्ष्मण! देखो इस हिमान्तकाल में तरुवरों में पुष्पों की उत्पत्ति देखने से प्रतीत होता है कि इस पुष्पमास में वृक्ष पारस्परिक स्पर्धाभाव से बढ़ चढ़ कर फले हुए हैं। द्रुमसमूह चञ्चरीकों की मधुर ध्वनि से गुञ्जायमान हो रहे हैं, मानो एक दूसरे का आह्वान कर रहे हैं, हे लक्ष्मण! देखो, ये कुसुमोत्तंस विटप अनेक प्रकार से सुशोभित हो रहे हैं। यदि यहाँ उस साध्वी (सीता) का दर्शन हो जाय और मुझे यहीं सदा निवास करना पड़े तो वैसी दशा में हे रघूत्तम! न तो मैं इन्द्रासन की इच्छा करूंगा और न अयोध्या की। इस प्रकार के रमणीय शाद्वल (हरितघास) पर जानकी के साथ विहार करते हुए मुझे न तो कोई चिन्ता होगी और न कोई इच्छा ही। इन विचित्र पर्वतशिखरों पर मृगों के साथ इन मृगियों को देख कर मुझे उस मृगनयनी सीता का स्मरण हो आता है। पिता द्वारा वन में प्रस्थापित मेरे पीछे धर्म-पथ का अनुसरण करनेवाली वह मन्दगतिशीला मेरी प्रिया कहाँ है। मैं राज्य से भ्रष्ट हो चुका था, चित्त पर अनेक चोटें आयी थीं, तौभी मेरे पीछे वह चली। उस सुन्दर पूजित पद्मपत्र के समान नेत्र और व्रणहीन सुगन्धयुक्त मुख को न देख कर मेरी मति डाँवाडोल हो रही है। हे लक्ष्मण! सीता का स्मित मधुर हास से युक्त गुणों भरा हुआ मीठा और हितकारी वचन कब सुनूंगा? हे नृपसुत! जब मैं अयोध्या वापस जाऊंगा तो मनस्विनी माता कौसल्या दौड़कर पूछेगी कि मेरी स्नुषा कहाँ है! और कैसी है!! तो उसको मैं क्या उत्तर दूँगा?

हे लक्ष्मण! अब तुम जाओ, उस भ्रातृ-स्नेही भरत को देखो, अब मैं तो उस जनकात्मजा के विना जीवित नहीं रह सकता। इस प्रकार अनाथ के समान विलाप करते हुए महात्मा राम से भ्राता लक्ष्मण युक्तियुक्त शाश्वत वचन बोला। हे राम! हे पुरुषोत्तम! हे भद्र! आप अपने को सम्हालें, आप जैसे शुद्ध मनवाले महामतियों की ऐसी जड़मति नहीं होनी चाहिये। हे तात! हे राघव! रावण यदि सीता को लेकर पाताल चला जाय अथवा उससे भी आगे चला जाय तौभी नहीं बचेगा। हे आर्य! उत्साह बलवान् है, उत्साह से बढ़कर किसी में बल नहीं, उत्साही

पुरुष के लिये लोक में कुछ दुर्लभ नहीं। उत्साह वाले नरोत्तम कर्मों में दुखी नहीं होते, उत्साह का समाश्रय लेकर ही हम जानकी को पा सकेंगे। इस प्रकार लक्ष्मण के उत्साह-मय वचनों को सुनकर शोक से अपहृत चेतनावाले राम का मोह नष्ट हुआ और उन्हें धैर्य की प्राप्ति हुई। अन्ततः अचिन्त्य पराक्रमवाले राम अव्यग्र होकर उस सुहावनी, रमणीय और द्रुमाच्छादित पम्पा से पार हो गये। उन दोनों अद्भुत दर्शनीयों को ऋष्यमूक के चतुर्दिक घूमने वाले बलवान बानर-जाति के नायक सुग्रीव ने देखा, और वह भयभीत होकर निश्चेष्ट हो गया।

× × × ×

कवि सम्राट तुलसीदास जी ने भी इस प्रसंग का वर्णन किया है, जो इस प्रकार है :—

चले राम त्यागा वन सोऊ। अतुलित बल नर केहरि दोऊ॥
बिरही इव प्रभु करत विषादा। कहत कथा अनेक संवादा॥
लक्ष्मण देखहु कानन शोभा। देखत केहि कर मन नहिं छोभा॥
नारि सहित सब खग मृगबृंदा। मानहुँ मोर करत हहिं निंदा॥
हमहिं देखि मृग निकर पराहीं। मृगी कहहिं तुम कहँ भय नाहीं॥
तुम आनन्द करहु मृग जाये। कंचन मृग ये खोजन आये॥
संग लाइ करिणी करि लेहीं। मानहुँ मोहि सिखावन देहीं॥
शास्त्र सुचिन्तित पुनि पुनि देखिय। भूप सुसेवित वश नहिं लेखिय॥
राखिय नारि यदपि उर माहीं। युवती शास्त्र नृपति वश नाहीं॥
देखहु तात वसन्त सुहावा। प्रिया हीन मोहिं भय उपजावा॥

बिरह बिकल बल हीन मोहि, जानसि निपट अकेल।
सहित बिपिन मधुकर खगन, मदन कीन्ह बग मेल॥
देखि गयो भ्राता सहित, तासु दूत सुनि बात।
डेरा कीन्हेंउँ मनहुँ तिन, कटक हटकि मन-जात॥

विटप विशाल लता अरुझानी। विविध वितान दिये जनु तानी॥
कदलि ताल बर ध्वजा पताका। देखि न मोह धीर मन जाका॥
विविध भाँति फूले तरु नाना। जनु बानैत बने बहु बाना॥
कहुँ कहुँ सुन्दर विटप सुहाये। जनु भट बिलग बिलग होइ छाये॥
कूजत पिक मानहुँ गज माते। ढेक महोख ऊँट बिसराते॥
मोर चकोर कीर बर बाजी। पारावत मराल सब ताजी॥
तीतर लावा पदचर यूथा। बरनि न जाइ मनोज बरूथा॥
रथ गिरि शिला दुन्दुभी झरना। चातक बन्दी गुण गण बरना॥
मधुकर निकर भेरि सहनाई। त्रिविधि बयारि बसीठी आई॥
चतुरंगिनी सेन संग लीन्हें। विचरत सबहिं चिनौती दीन्हें॥

लक्ष्मण देखहु काम अनीका। रहहिं धीर तिनकी जग लीका॥
यहि के एक परम बल नारी। तेहि ते उबर सुभट सोइ भारी॥

तात तीनि अति प्रबल खल, काम क्रोध अरु लोभ।
मुनि विज्ञान निधान मन, करहिं निमिष महँ क्षोभ॥
लोभ के इच्छा दम्भ बल, काम के केवल नारि।
क्रोध के परुष वचन बल, मुनिवर कहहिं विचारि॥

गुणातीत सचराचर स्वामी। राम उमा सब अन्तरजामी॥
कामिनि की दीनता दिखाई। धीरन के मन विरति बढ़ाई॥
क्रोध मनोज लोभ मद माया। छूटहिं सकल राम की दाया॥
सो नर इन्द्रजाल नहिं भूला। जा पर होइ सो नट अनुकूला॥
उमा कहौं मैं अनुभव अपना। सत हरि भजन जगत सब सपना॥
पुनि प्रभु गये सरोवर तीरा। पम्पा नाम सुभग गंभीरा॥
सन्त हृदय जस निर्मल बारी। बाँधे घाट मनोहर चारी॥
जहँ तहँ पिअहिं विविध मृग नीरा। जनु उदार गृह याचक भीरा॥

पुरइनि सघन ओट जल, बेगि न पाइइ मर्म।
मायाछन्न न देखिये, जैसे निर्गुण ब्रह्म॥
सुखी मीन सब एक रस, अति अगाध जल माहिं।
यथा धर्मशीलन्ह के, दिन सुख संयुत जाहिं॥

बिकसे सरसिज नाना रंगा। मधुर मुखर गुंजत बहु भृंगा॥
बोलत जलकुक्कुट कलहंसा। प्रभु बिलोकि जनु करत प्रशंसा॥
चक्रवाक बक खग समुदाई। देखत बनै बरनि नहिं जाई॥
सुन्दर खगगण गिरा सुहाई। जात पथिक जनु लेत बुलाई॥
ताल समीप मुनिन गृह छाये। चहुँ दिसि कानन विटप सुहाये॥
चम्पक बकुल कदम्ब तमाला। पाटल मनस पलास रसाला॥
नव पल्लव कुसुमित तरु नाना। चंचरीक पटली कर गाना॥
शीतल मन्द सुगन्ध सुभाऊ। सन्तत बहै मनोहर बाऊ॥
कुहू कुहू कोकिल ध्वनि करहीं। सुनि रव सरस ध्यान मुनि टरहिं॥

फल भारन नव विटप सब, रहे भूमि नियराय।
पर उपकारी पुरुष जिमि, नवहिं सुसम्पति पाय॥

देखि राम अति रुचिर तलावा। मज्जन कीन्ह परम सुख पावा॥
देखी सुन्दर तरुवर छाया। बैठे अनुज सहित रघुराया॥

\+ \+ \+ \+ \+

दोनों महा कवियों की रचनाओं के मिलान करने में सहसा गोसाईं जी की उक्ति याद आती है।

को बड़ छोट कहत अपराधू। सुनि गुण भेद लखिहिं कवि साधू॥

सरस्वती का जल मीठा है अथवा जाह्नवी का? इसका विवेचन सामान्य नहीं। महर्षि वाल्मीकि की विस्तृत रचना जहाँ कविता-सरिता का अगाध जल है, वहाँ कवि सम्राट की रचना उसकी सुस्वादु मय-सरसता का स्थान पाती है। महर्षिने जिस वर्णन में स्वर्ण सी आभा प्रदान की है उसे हमारे कवितातामरसतमारि तुलसीदासने अपनी रवि-रश्मि रचना की प्रखर-प्रतिभा से परिष्कृत और चमत्कृत कर दिया है। गोस्वामी जी ने निस्सन्देह साठों की कठिन सरस गाठों में मिश्री के फल फलाये हैं, सोने में सुगन्ध डाल दी है, अथच सौरभसने चन्दन-तरुवर में अपनी कविता के फूल फुला दिये हैं। यहाँ कविराज की ऊहा ने शृङ्गाररस की सुहावनी सरस बसन्ती साड़ी पर बीररस के अबीर छिड़क कर रूपक तथा उत्प्रेक्षा के सौरभ सने सदुपदेश के गुलाल एवं गुलाब छिड़के हैं। सच है:

'जहाँ न जायँ रवि, वहाँ पहुँचें कवि'।

---

(८) राम-विवाह और तुलसीदास

गोस्वामी तुलसीदास कृत ग्रन्थों से इस बात का पता लगाना अत्यन्त कठिन है कि विवाह संस्कार के समय सीता और राम की आयु कितनी थी। इस विषय में विशेष विवेचन के पूर्व विवेचक को यह अवश्य हृदयंगम कर लेना चाहिये कि तुलसीदास युगल-मूर्त्ति के बाल रूप के उपासक थे, जैसा:—

बन्दौं बाल रूप सोइ रामू। सब सुख सुलभ जपत जेहि नामू॥
मंगल भवन अमंगल हारी। द्रवहु सो दशरथ अजिर बिहारी॥
बालक रूप राम कर ध्याना। मोहि कहेउ मुनि ज्ञान निधाना॥

तथा

अवधेश के बालक चारि सदा, तुलसी मन मन्दिर में बिहरैं।

इत्यादि पदों से प्रगट है। यही कारण है कि भक्त-प्रवरने अपने ग्रन्थों में उनकी शैशव और किशोर अवस्थाओं के ही वर्णन किये हैं। सामान्यतया उनकी युवा एवं विशेष कर जरावस्था को तो अपने ग्रन्थों में स्थान ही नहीं दिया है। यों तो कवि-समाज में यह प्रथा परम्परया चली आती है कि

'रसविच्छेदहेतुत्वात् मरणं नैव वर्ण्यते'।

अर्थात् कविजन रस-भङ्ग के भय से अपने चरित-नायक का मरण वर्णन नहीं करते। अधिकतर संभव है कि इसी कारण वृद्धावस्था का कथन भी नहीं

करते हों। गोस्वामीजी ने सीता-राम की प्रौढ़ावस्था का भी अत्यल्प ही उल्लेख किया है, उन्हें तो इनमें किशोरावस्था में ही धनुर्भङ्गादि कृत्यों को दिखला कर ईश्वरत्व-प्रदर्शन की धुन थी। वेदों के

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥

तथा

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥

इत्यादि मन्त्रों में मनुष्य की आयु सामान्य रूप से १०० वर्ष एवं विशेष दशा में 'त्र्यायुषं जमदग्नि' के अनुसार ३०० वर्ष मानी गयी है। इस अवधि को चार आश्रमों में विभक्त करने पर न्यूनातिन्यून २५ वर्ष ब्रह्मचर्याश्रम में व्यतीत होना चाहिये।

'ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्'।

इस मन्त्र में वेद भगवान आज्ञा देते हैं कि कन्या ब्रह्मचर्याश्रम की समाप्ति करने पर युवापति को प्राप्त हो। वेदादि सच्छास्त्रानुसार १६ वर्ष कन्या का निकृष्ट ब्रह्मचर्य माना गया है। इन सब वचनों पर ध्यान देने से यह मानना पड़ेगा कि विवाहकाल में राम और सीता की आयु क्रमशः २५-१६ वर्षों से ऊन कदापि न होगी। ऐसे महापुरुष और महाशक्ति का वेद विरुद्ध बाल विवाह मानना महान अनर्थ और अन्याय मूलक है।

'रामचरित-मानस' के अन्त में तिथि-पत्र देकर मुद्रक और प्रकाशकों ने कमाल कर डाला है। मुंशी नवलकिशोर सी. आई. ई. लखनऊ के यन्त्रालय में सन १९१५ की छपी रामायण की पोथी हमारे सामने है। इस पुस्तक के पृष्ठ ६४६ पर ऐसा लेख प्रस्तुत है कि विवाह के समय श्रीरघुनाथ जी १५ वर्ष के और श्री जानकी जी ६ वर्ष की थीं। तिथि-पत्र-प्रदाता महाशय का माङ्गलिक लेख वेदों के आदेश, मानवादर्श, वाल्मीकि के प्रमाण एवं तुलसीदास जी के मन्तव्यों पर भी पानी फेर देता है। इसी ग्रन्थ के पृष्ठ ६५२ पर लिखा है कि श्री महाराजाधिराज रामचन्द्र जीने ११००० वर्ष राज्य किया।

गोस्वामी जी ने अपनी गीतावली के उत्तरकाण्ड में सीता-परित्याग-प्रकरण में एतद्विषयक उल्लेख किया है:—

"संकट सुकृत को सोचत जानि जिय रघुराउ।
सहस द्वादस पंचसत में कछुक है अब आउ॥
भोग पुनि पितु आयु को सोउ किये बने बनाउ।
परिहरे बिनु जानकी नहिं और अनघ उपाउ॥

पालिबे असिधार ब्रत प्रिय प्रेम पाल सुभाऊ।
होइ हित केहि भाँति नित सुविचारु नहिं चित चाउ॥
निपट असमंजसहु बिलसति मुख मनोहर ताउ।
परम धीर धुरीन हृदय कि हरख बिस्मय काउ॥
अनुज सेवक सचिव हैं सब सुमति साधु सखाउ।
जान कोउ न जानकी बिनु अगम अलख लखाउ॥
राम जोगवत सीय मनु प्रिय मनहिं प्रान प्रियाउ।
परम पावन प्रेम परमिति समुझि तुलसी गाउ॥

लोक-प्रसिद्धि है कि राजा दशरथ अपनी आयु पूर्ण होने के पूर्व ही स्वर्ग-गामी हुए, अतः उनकी शेष आयु का भोग रामचन्द्र ने किया। यही कारण है कि अपनी आयु के अनन्तर जब पिता की आयु के भोग का समय आया तब राम ने सीता का परित्याग करना ही उचित समझा। इस प्रसंग में मुझे अपने प्रकृत विषय से ही संबन्ध रखना है। ऊपर के पद्य में रामचन्द्र की समस्त आयु १२,५०० वर्षों की लिखी गयी है इस हिसाब से न्यूनातिन्यून ३००० वर्ष ब्रह्मचर्याश्रम में व्यतीत होने चाहिये। तब तो विवाह काल में राम की आयु तीन सहस्र वर्षों की और सीता की कम से कम डेढ़ सहस्र वर्षों की माननी पड़ेगी। गोसाईं जी गीतावली के पद्य सं० २६ उत्तरकाण्ड में लिखते हैं कि 'गुरुबिनी सुकुमारि सिय तिय मनि समुझि सकुचाहिं।' अर्थात् परित्याग-काल में सीता गर्भवती थीं, अतः रामचन्द्र अत्यन्त संकोच में पड़े थे। अब यदि यह मान लें कि विवाह काल में राम-सीता की आयु क्रमशः १५ और ६ वर्षों की ही हो तो ११००० वर्षों के राज्य-भंग के अनन्तर अन्तिम आयु में माता सीता का गुर्विणी होना भक्त-प्रवर क्योंकर लिखते?

सच बात तो यह है कि पौराणिक वर्ष-गणना ने अन्य सब वर्णनों में अपनी अन्धाधुन्ध प्रगति के अनुसार यहाँ भी डबल छलाँग मारी है और गोसाईं जी ने भी यहाँ—

'मुनिन प्रथम हरि कीरति गाई। तेहि मगु चलत सुगम मोहि भाई॥'

का अनुसरण किया है।

जो हो; विवाह-वय-निरूपण-संबंध में अपने सहृदय पाठकों की सेवा में गोसाईं जी के ग्रन्थों से कतिपय प्रमाण मुझे रखना अभीष्ट है।

महाराज जनक की पुष्प-वाटिका में जिस समय सीता-राम का पारस्परिक साक्षात् हुआ है, उस समय का वर्णन करते हुए श्री तुलसीदास जी लिखते हैं:—

देखन बाग कुँवर दोउ आये। बय किशोर सब भाँति सुहाये॥
श्याम गौर किमि कहौं बखानी। गिरा अनैन नैन बिनु बानी॥

× × × × ×

करत बतकही अनुजसन, मन सियरूप लुभान।
मुख सरोज मकरन्द छबि, करत मधुप इव पान॥
लता ओट तब सखिन लखाये। श्यामल गौर किशोर सुहाये॥

'करत बतकही' इस दोहे में सीता के मुख की सरोज से और छबि की मकरन्द से उपमा दी गयी है। श्री रामचन्द्र का मन (अथवा नेत्र) मधुप होकर छबि मकरन्द का पान कर रहा है। पूर्ण विकसित कमल के मकरन्द को ही पान कर भ्रमर उन्मत्त होता है। कभी सम्भव नहीं कि ६ वर्ष की दुग्धमुखी बालिका को देख कर मर्यादा पुरुषोत्तम का मन मुग्ध हो सकता है। लक्ष्मण से स्पष्ट कह देते हैं कि:—

'जासु विलोकि अलौकिक शोभा। सहज पुनीत मोर मन छोभा॥
सो सब कारण जान विधाता। फरकहिं सुभग अंग सुनु भ्राता॥
रघुवंशिन कर सहज सुभाऊ। मन कुपंथ पग धरै न काऊ॥
मोहि अतिशय प्रतीति जियकेरी। जेहि सपनेहुँ परनारि न हेरी॥
जिनके लहहिं न रिपु रन पीठी। नहिं लावहिं परतिय मन डीठी॥'

इत्यादि।

अब साहित्यिक दृष्टि से विचार करने से यह विषय और भी विशद एवं विस्पष्ट हो जाता है कि उक्त काल में सीता में नायिका के लक्षणों का आगमन हो चुका था, बालिका नहीं थीं। क्यों कि 'रसराज' के रचयिता मतिराम कवि ने

नायिका-लक्षण

इस प्रकार लिखा है:—

उपजत जाहि बिलोकि के, चित्त बीच रस भाव।
ताहि बखानत नायिका, जे प्रवीण कवि राव॥

अथवा 'मनोज मंजरी' कार ने वर्णन किया है:—

जिहि बनिता की सुघरता, लखि मुद लहत सुजान।
ताहि कहत हैं नायिका, कोविद कलानिधान॥

अब विचारना यह है कि 'राम चरित-मानस' के उपर्युक्त प्रसंग में सीता कौन नायिका है। यदि विवाह हो गया होता तब तो 'स्वकीया' होने में कोई सन्देह ही नहीं रह जाता, परन्तु अविवाहिता होने के कारण 'परकीया- कन्यका' कहना ही संगत है, जैसा 'साहित्य-दर्पण' कारने माना है। परिच्छेद ३ के १०८-११० श्लोकों को देखिये:—

परकीया द्विधा प्रोक्ता परोढा कन्यका तथा।

× × ×

कन्या त्वजातोपयमा सलज्जा नवयौवना ॥

× × ×

इसी के आगे उसके परकीया होने में हेतु देते हैं 'अस्याश्च पित्राद्यायत्तत्वा-त्परकीयात्वम् ।' यतः कन्या अविवाहिता होने के कारण पिता इत्यादि के अधीन रहती है, अतः उसे परकीया कन्यका कहते हैं। स्वयं 'साहित्य-दर्पण' के टीकाकार ने अजातोपयमा' का अर्थ 'अजातविवाहा' लिख कर 'नैषधीय-चरित' से विवाह के पूर्व नल-दमयन्ती का अनुराग इस प्रकार उद्धृत किया है:—

'अनैषधायैव जुहोति तातः किं मां कृशानौ न शरीरशेषाम् ।
ईष्टे तनूजन्मतनोः स नूनं मत्प्राणनाथस्तु नलस्तथापि' ॥

ऊपर के वर्णन में आप देखेंगे कि कन्या के लिये 'सलज्जा नव यौवना' पद पड़ा हुआ है और यही भाव गोसाईंजी के उक्त दोहे से उद्बोधित होता है। ६ वर्ष की बालिका के लिये तो 'सलज्जा' अथवा 'नवयौवना' कोई पद उपयुक्त नहीं प्रतीत होता। श्रीरामचन्द्रजी की आयु के सम्बन्ध में ऐसा ही अनुमान किया जाता है। धनुष तोड़ने के पूर्व रामचन्द्र जब सभा में खड़े हुए, उस समय।

ठाढ़ भये उठि सहज सुहाये। ठवनि युवा मृगराज लजाये ॥

पद में युवा-मृगराज से तुलना कर के गोसाईं जी ने श्रीरामचन्द्र का यौवन-काल प्रदर्शित किया है। इस संबन्ध में वाल्मीकीय का प्रमाण लीजिये। राजा जनक ब्रह्मर्षि विश्वामित्र से राम-लक्ष्मण का परिचय पूछते हैं :—

यज्ञोपसदनं ब्रह्मन् प्राप्तोसि मुनिभिः सह ।
इमौ कुमारौ भद्रं ते देवतुल्य पराक्रमौ ॥
गजसिंहगती वीरौ शार्दूलवृषभोपमौ ।
अश्विनाविव रूपेण समुपस्थितयौवनौ ॥
वरायुधधरौ वीरौ कस्य पुत्रौ महामुने ।
भूषयन्ताविमं देशं चन्द्रसूर्याविवाम्बरम् ॥
परस्परस्य सदृशौ प्रमाणोङ्गितचेष्टितैः ।
काकपक्षधरौ वीरौ श्रोतुमिच्छामि तत्वतः ॥

ऊपर के 'समुपस्थितयौवनौ' इत्यादि सभी विशेषणों से आदि महाकविने राम-लक्ष्मण की युवावस्थाका निदर्शन किया है। इसी वर्णन के आगे जनक ने विवाह संबन्धी वार्तालाप में दशरथ के पुत्रों के संबन्ध में स्वयं कहा है :—

'सर्वे भवन्तः सौम्याश्च सर्वे सुचरित्रताः'।

अर्थात् आप सब सौम्य स्वभाववाले तथा पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किये हुए हैं ?

क्या १२००० वर्षों की १५ वर्षों का ही पूर्ण ब्रह्मचर्य कहा जायगा ?

ऊपर के सम्पूर्ण पदों से रामचन्द्र का नायक होना सिद्ध है। क्योंकि 'साहित्य-दर्पण' परिच्छेद ३-३० में

नायक-लक्षण

इस प्रकार लिखा है:—

त्यागी कृती कुलीनः सुश्रीको रूपयौवनोत्साही।
दक्षोऽनुरक्तलोकस्तेजोवैदग्ध्यशीलवान्नेता॥

इसी प्रकार 'मनोज मंजरी' में लेख हैं:—

सुन्दर गुण मन्दिर युवा, युवति विलोकै जाहि।
कवित राग रस निपुण हो, नायक कहिये ताहि॥

इन उल्लेखों के अनन्तर विचारणीय विषय यह रह जाता है कि रामचन्द्र कौन नायक थे। 'साहित्य दर्पण' में 'धीरोदात्त' नायक के ये लक्षण लिखे हैं:—

अविकत्थनः क्षमावानतिगम्भीरो महासत्त्वः।
स्थेयान्निगूढमानो धीरोदात्तो दृढव्रतः कथितः॥

इसके आगे ही उदाहरण देते हुए ग्रन्थकार लिखते हैं, यथा राम युधिष्ठिरादि।'

इन उद्धरणों और उल्लेखों से स्वतः सिद्ध है कि विवाह-काल में सीता और राम युवावस्था को प्राप्त हो चुके थे। गोसाईं जी पुनः सीता के संबंध में लिखते हैं:—

जो पटतरिय तीय सम सीया। जग अस जुवति कहाँ कमनीया॥
× × × ×
सोह नवल तन सुन्दर सारी। जगत जननि अतुलित छवि हारी॥

ऊपर के पद्यों के 'तीय', 'युवति' और 'नवलतन' ये तीनों शब्द युवावस्था के ही अवबोधक हैं।

गोसाईं जी ने कुछ ऐसे पद्यों की भी रचना की है जो ऊपर के विचारों के बाधक हैं। कवि ने सुनयना की बेचैनी का वर्णन करते हुए उनके मुख से प्रायः ऐसे भावों का उद्दीपन कराया है जिनसे श्रीराम की अत्यन्त सुकुमारता एवं बालपन का पता लगता है। यथा:—

कोउ न बुझाइ कहै नृप पाहीं। ये बालक अस हठ भल नाहीं॥
× × × ×
सो धनु राजकुँवर कर देहीं। बाल मराल कि मन्दर लेहीं॥
× × × ×
विधि केहि भाँति धरौं उर धीरा। सिरिस सुमन कहिं बेधहिं हीरा॥

कहा जा सकता है कि धनुष की कठोरता का वर्णन कर के बालक रामचन्द्र से उसका तोड़वाना लिख कर कवि ने उनकी अलौकिकता दर्शायी है, परन्तु वही लेखनी आगे चल कर चक्कर खा जाती है। महाराज दशरथ अपनी पुत्र-वधुओं को अयोध्या ले जाकर अपनी रानियों को संबोधन करके कहते हैं:—

बधू लरिकनी परघर आईं। राखेहु नयन पलक की नाईं॥

इस पद्य में राजा ने बधुओं को 'लरिकनी' पद से अभिव्यक्त किया है। इस संबन्ध में कहा जा सकता है कि पुत्र-वधू (पुत्रिवत्) होने के कारण 'लरिकनी' शब्द का प्रयोग किया हो, परन्तु आगे पढ़िये:—

'सुन्दरि बधुन स्वास लै सोईं। फणिपति जिमि सिर मणि उरगोईं॥

गोसाईं जी के मत से बधुएँ ऐसी बालिका थीं कि अपने अपने पति के संग न सोकर सासुओं के संग सोईं, तिस पर भी गोद में छिप कर। इस वर्णन से बाल-विवाह की गन्ध आती है। गोसाईं जी ने बधुओं को सासुओं के संग सुलाया है, पर कविराज वाल्मीकि लिखते हैं:—

ततः सीतां महाभागामूर्मिलाञ्च यशस्विनीम्।
कुशध्वजसुते चोभे जगृहुर्नृपयोषितः॥
अभिवाद्याभिवाद्यांश्च सर्वा राजसुतास्तदा।
रेमिरे मुदिताः सर्वा भर्तृभिः सहिता रहः॥

अर्थात् जब वधुएं अयोध्या में पहुँचीं तत्पश्चात् रान पत्नियों ने महाभागा सीता तथा यशस्विनी उर्मिला और राजा कुशध्वज की अन्य दो पुत्रियाँ (मांडवी और श्रुतिकीर्ति) को ग्रहण किया अर्थात् प्रेम पूर्वक घर लिवा गयीं। बधुओं ने अभिवाद्या स्त्रियों का अभिवादन कर के अपने अपने पतियों के साथ पृथक् पृथक् निवास कर एकान्त में प्रसन्नता युक्त क्रीड़ा कीं।

अब अरण्यकाण्ड में षड्विंश एवं सप्तविंश सर्ग देखिये, जहाँ रावण परि-व्राजक का स्वरूप बनकर सीता को हरण करने के विचार से उनके समीप गया है। रावण और सीता में इस प्रकार संवाद हुआ है:—

कासि कस्य कुतश्च त्वं किन्निमित्तं च दण्डकान्।
एका चरसि कल्याणि घोरान् राक्षससेवितान्॥

× × ×

दुहिता जनकस्याहं मैथिलस्य महात्मनः।
सीता नाम्नास्मि भद्रं ते रामस्य महिषी प्रिया॥
मम भर्ता महातेजा वयसा पञ्चविंशकः।
अष्टादश हि वर्षाणि मम जन्मनि गण्यते॥

अभिषेकाय तु पितुः समीपं राममागतम् ।
कैकेयी मम भर्त्तारमित्युवाच द्रुतं वचः ॥

× × × ×

अर्थात् रावण पूछता है कि तू कौन है ? किसकी है ? कहाँ से आयी है ? और किस निमित्त अकेली यहाँ भयंकर राक्षसों से आवृत इस गहन वन में विचरती है ?

इस पर सीता कहती है कि मैं मिथिलेश जनक की पुत्री और राम की पट-रानी हूँ । मेरा नाम सीता है । मेरा पति महातेजस्वी और पच्चीस वर्ष की आयु का था तथा मैं अट्ठारह वर्ष की आयु की थी उस समय राम जब अभिषेक के लिये पिता के निकट आये तब मेरे भर्त्ता राम को कैकेयी तुरत यह वचन बोली । अस्तु;

ऊपर के श्लोक में स्पष्ट उल्लेख है कि अभिषेक-प्रबन्ध के समय राम की आयु २५ वर्षों की और श्री सीता जी की १८ वर्षों की । यही विवाह-काल की आयु है, यह हाईकोर्ट का फैसला है ।

(९) मौलिकता और तुलसीदास

कविकुल मुकुटमणि महात्मा तुलसीदास जी एक मौलिक कवि थे, इसमें ननु नच् का किञ्चिन्मात्र भी स्थान नहीं । कवि के मस्तिष्क से निःसृत नवीन विचारों, नूतन क्रमों, नये भव्य भावों, अश्रुत पूर्व कल्पनाओं और नयी नयी उक्तियों से ही मौलिकता की परख होती है । गोस्वामी जी अपने अन्य पूर्ववर्त्ती कवियों की कृतियों से लाभ उठाते हुए भी अनुवादक कवि नहीं थे । इन महाकवि के अन्तः-करण रूप मानसर से जिस कविता-सरिता का प्रवाह प्रवाहित हुआ है, वह स्वतन्त्र-रचना रूप माधुर्य से परिपूर्ण है । इनकी पीयूष-वाणी लेखनी में स्वाभाविक सरसता मधुरता और अकृत्रिमता थी । प्राचीन कथा ग्रन्थों में से वाल्मीकि रामायण अध्यात्म रामायण और हनुमन्नाटक से प्रायः कथाक्रम, उपाख्यान और प्रकृति वर्णन का साहाय्य लेते हुए भी कहीं अविकल अनुवाद नहीं किया, सर्वत्र नवीनता की संरक्षा करते गये हैं । गोस्वामी जी ने 'रामचरित मानस' को याज्ञवल्क्य-भारद्वाज, भुसुण्डि-गरुड और शिव-पार्वती संवाद मानते हुए भी विशेष रूप से शिव-पार्वती के प्रश्नोत्तर रूप में ही वर्णन किया है और स्थान स्थान पर इनके उपकृत हुए हैं जैसे—

शंभु प्रसाद सुमिति हिय हुलसी । रामचरित मानस कवि तुलसी ॥
यह शुभ शंभुउमा-संवादा । सुखद सदा अरु शमन विषादा ॥

इत्यादि

जनता का बहुलांश अध्यात्म रामायण को शिव विरचित मानता है और गोस्वामी जीने यत्र-तत्र किञ्चित परिवर्त्तन करते हुए कथाओं के क्रम को उक्त ग्रन्थ के ही अनुसार रखा है।

बालकाण्ड के प्रारम्भ में मंगलाचरण करने में ही गोस्वामी जी कवीश्वर (वाल्मीकि) और कवीश्वर (हनुमान) की रचनाओं के उपकार को इस प्रकार स्वीकार किया है:—

सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ ।
वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ ॥

तुलसीदास एक उदार कवि थे। पर किसी की कृति से चुपचाप लाभ लेकर चम्पत होना नहीं जानते थे। कहा भी है:—

कविरनुहरति च्छायामर्थं कुकविः पदं तथा चौरः ।
अखिलप्रब-धहर्त्रे साहसकर्त्रे नमस्तुभ्यम् ॥

अर्थात् प्रायः सुकविजन भी अन्य कवियों की छाया वा आशय को ले लेते हैं, कुकवि वे हैं जो ज्यों का त्यों अन्य कवि के भावों को लेते हैं। चोर कवि शब्दों की भी चोरी करते हैं, परन्तु नमस्कार उन साहसी महाशयों को है जो अन्य कवि के द्वारा विरचित समस्त प्रवन्धों का अपहरण करके उन्हें स्वनिर्मित बतलाया करते हैं। सुतराम् गोस्वामी जी एक उच्च श्रेणी के कवि थे। जहाँ कहीं अन्य कवि के विचारों का आश्रय लिया भी है तो बड़ी गम्भीरता और मार्मिकता से नवीनता एवं मौलिकता के साँचे में उसे ढाल कर अपनी प्रतिभा की मुहर लगा डाली है। इसमें उनकी कवित्वशक्ति झलकती है, उनके विस्तृत ग्रन्थावलोकन का पता चलता है। कविराज ने स्वयं कहा भी है:—

नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि ।
स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथगाथा-
भाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति ॥

इसके अतिरिक्त—

मुनिन्ह प्रथम हरि कीरति गाई। तेहि मगु चलत सुगम मोहि भाई ॥
अति अपार जे सरित वर, जे नृप सेतु कराहिं।
चढ़ि पिपीलिका परम लघु, बिनु श्रम पारहिं जाहिं ॥

इन पद्यों में गोस्वामी जी ने बड़ी उदारता एवं सदाशयता से पूर्व सर्व कवि-मण्डल की रचनाओं को उच्चासन प्रदान किया है।

गोस्वामी जी अपनी कविता में संस्कृत-कवियों और संस्कृत ग्रन्थों के पद्यों को अपने प्रकरण में लाकर यत्र-तत्र अविकल, कहीं भावानुवाद, कहीं अक्षरानुवाद

करते गये हैं, जिससे उनके प्रकाण्ड पाण्डित्य और सुदीर्घ स्वाध्याय एवं बहुज्ञता का पता चलता है। आगे पाठक मिलान करें—

(१) मूकं करोति वाचालं पङ्गुलङ्घयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम्॥

मूक होइ बाचाल, पंगु चढ़ै गिरिवर गहन।
जासु कृपा सो दयाल, द्रवौ सकल कलिमल दहन॥

(२) नमस्तस्मै कृता येन पुण्या रामायणी कथा।
सदूषणापि निर्दोषा सखरापि सकोमला॥

बन्दौ मुनि पद कंज, रामायन जिन निरमयेउ।
सखर सकोमल मंजु, दोष रहित दूषण सहित॥

(३) अञ्जलिस्थाणि पुष्पाणि वासयन्ति करद्वयम्।
अहो सुमनसां प्रीतिर्वाम दक्षिणयोः समा॥

बन्दौं सन्त समान चित, हित अनहित नहिं कोय।
अंजलिगत सुभ सुमन जिमि, सम सुगंध कर दोय॥

(४) धूमः ज्योतिः सलिल मरुतां सन्निपातः क्व मेघः। (मेघदूत)
सोइ जल अनल अनिल संघाता।

(५) निर्वर्णं रामनामेदं केवलं च स्वराधिकम्।
सर्वेषां मुकुटं छत्रं मकारो रेफव्यञ्जनम्॥ (महा रामायण)

एक छत्र इक मुकुटमनि, सब बरनन पर जोउ।
तुलसी रघुबर नाम के, बरन बिराजत दोउ॥

(६) यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥ (श्री मद्भगवतद्गीता)

जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
तब तब प्रभु धरि मनुज सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥

(७) संभावितस्य चाकीर्त्तिर्मरणादतिरिच्यते। (गीता)
संभोविदत कहँ अपजस लाहू। मरन कोटि सम दारुन दाहू॥

(८) नहि वन्ध्या विजानाति गुर्वीं प्रसव वेदनाम्।
बाँझ कि जान प्रसव की पीरा।

(९) अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः। (कठोपनिषत्)
बिनु पद चलै सुनै बिनु काना। कर बिनु कर्म करै बिधि नाना॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा।

(१०) यस्यांशेन समुद्भूता ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । (महारामायण)

संभु बिरंचि बिष्णु भगवाना । उपजहिं जासु अंशते नाना ॥

(११) अग्ने वत्सो मनो यमत् परमाच्चित् सधस्थात् ।
अग्ने त्वां कामये गिरा ॥ सामवेद मंत्र ८ ॥

तुलसी ऐसा ध्यान धर, जस बियान की गाइ ।
मुखते तिनका भुस भखै, मन राखै बाछाइ ॥

(१२) असत्यं साहसं माया मात्सर्यं चातिलुब्धता ।
निर्गुणत्वमशौचत्वं स्त्रीणां दोषा स्वभावजाः । (चाणक्यनीति)

नारि सुभाव सत्य कवि कहहीं । अवगुन आठ सदा उर रहहीं ॥
साहस अनृत चपलता माया । भय अविवेक अशौच अदाया ॥

(१३) पतितोऽपि द्विजः श्रेष्ठोन च शूद्रो जितेन्द्रियः ।
निर्दुग्धा चापि गौः पूज्या न च दुग्धवती खरी । (चाणक्यनीति)

पूजिय विप्र शीलगुनहीना । शूद्र न गुन गन ज्ञान प्रवीना ॥
दुष्टो धेनु दुही सुनु भाई । साधु रासभी दुही न जाई ॥

इस अनुवाद में गोस्वामी जी 'निर्दुग्धा' के स्थान में 'दुष्टा', 'दुग्धवती' के स्थान में 'साधु' एवं 'पूज्या' के स्थान में 'दुही' पद देकर ऊपर की चौपाई के आशय से संगति नहीं लगा सके । अच्छा ही हुआ, क्योंकि उक्त आशय ही दुराशय वा असंगत है ।

(१४) आहार निद्रा भय मैथुनं च सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम् ।

गीत—भय निद्रा मैथुन अहार, सब के समान जगजाये । (विनय पत्रिका)

(१५) श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण के लिए आया है:—

मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्त्तिमान्
गोपानां स्वजनो सतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः ।
मृत्युर्भोजपतेर्विराड् विदुषां तत्वं परं योगिनां
वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रङ्ग ङ्गतः साग्रजः ॥

इसी प्रकरण के भाव को गोस्वामी जी ने अपने चरित नायक मर्यादा पुरुषोत्तम के संबन्ध में इस प्रकार लिखा है:—

राज समाज बिराजत रूरे । उडुगण महँ जनु जुग बिधु पूरे ॥
जिनकी रही भावना जैसी । प्रभु मूरति देखी तिन तैसी ॥
देखहिं भूप महा रनधीरा । मनहुँ वीररस धरे सरीरा ॥
डरे कुटिल नृप प्रभुहिं निहारी । मनहुं भयानक मूरति भारी ॥
रहे असुर छल जो नृपभेखा । तिन प्रभु प्रगट काल सम देखा ॥
पुरवासिन देखे दोउ भाई । नर भूषन लोचन सुखदाई ॥

नारि बिलोकहिं हरखि हिय, निज निज रुचि अनुरूप।
जनु सोहत सृँगार धरि, मूरति परम अनूप॥

विदुषन प्रभु विराटमय दीसा। बहुमुख-कर-पग-लोचन-सीसा॥
जनक जाति अवलोकहिं कैसे। सजन सगे प्रिय लागहिं जैसे॥
सहित विदेह बिलोकहिं रानी। सिसुसम प्रीति न जाइ बखानी॥
योगिन परमतत्वमय भासा। शान्त शुद्ध मन सहजप्रकासा॥
हरि भक्तन देखे दोउ भ्राता। इष्टदेव इव सबसुखदाता॥
रामहिं चितव भाव जेहि सीया। सो सनेह सुख नहिं कथनीया॥
उर अनुभवत न कहि सक सोऊ। कवन प्रकार कहै कवि कोऊ॥
जेहि विधि रहा जाहि जस भाऊ। तेहि तस देखेउ कोसलराऊ॥

रामायण

(१६) उदर्कभूतिमिच्छद्भिः सद्भिः खलु न दृश्यते।
चतुर्थीचन्द्रलेखेव परस्त्रीभालपट्टिका॥

जौ आपन चाहसि कल्याना। सुगतिसुमति समुचित विधि नाना॥
तौ परनारि लिलार गोसाईं। तजहु चौथ चन्दा की नाईं॥

रामायण

(१७) वैद्यो गुरुश्च मन्त्री च यस्य राज्ञः प्रियंवदः।
शरीरधर्मकोशेभ्यः क्षिप्रं स परिहीयते॥ (हितोपदेश)

सचिव वैद्य गुरु तीनि जो, प्रिय बोलहिं भय आस।
राजधर्मतनु तीन कर, होइ बेगि ही नास॥ रामायण

(१८) दर्शनादर्शने नैव सोऽपाकर्षत राघवम्।
सुदूरमाश्रमस्यास्य मारीचो मृगतां गतः॥ (वाल्मीकीय)

प्रगटत दुरत करत छल भूरी। एहि विधि प्रभुहिं गयउ लै दूरी॥

रामायण

(१९) मातुः केवलमेव यौवनवनच्छेदे कुठारा वयम्। भर्तृहरिशतक

जननी जोबन बिटप कुठारी। रामायण

(२०) शृणुत जनककल्पाः क्षत्रियाः शुल्कमेते,
दशवदनभुजानां कुण्ठिता यत्र शक्तिः।
नमयति धनुरैशं यस्तदारोपणेन,
त्रिभुवनजयलक्ष्मीर्जानकी तस्य दाराः॥

हनुमन्नाटक

रावन बान महाभट भारे। देखि सरासन गँवहिं सिधारे॥
सोइ पुरारि कोदंड कठोरा। राज समाज आज जो तोरा॥
त्रिभुवन जय समेत वैदेही। बिनहिं विचार बरै हठि तेही॥

(२१) आद्वीपात्परतोप्यमी नृपतयः सर्वे समभ्यागताः,
कन्यायाः कलधौतकोमलरुचेः कीर्तेश्च लाभः परः ।
नाकृष्टं न च टङ्कितं न नमितं नोत्थापितं स्थानतः,
केनापीदमहो महद्धनुरिदं निर्वीरमुर्वीतलम् ॥

हनुमन्नाटक

दीप दीप के भूपति नाना। आये सुनि हम जो प्रन ठाना ॥
देव दनुज धरि मनुज सरीरा। बिपुल बीर आये रनधीरा ॥
कुँवरि मनोहरि बिजय बड़ि, कीरति अति कमनीय ।
पावन हार बिरंचि जनु, रचेउ न धनुदमनीय ॥
कहहु काहि यह लाभ न भावा। काहु न शंकर चाप चढ़ावा ॥
रहं उठाउब तोरब भाई। तिल भरि भूमि न सकेउ छुड़ाई ॥
अब जनि कोउ माखै भटमानी। बीर बिहीन मही मैं जानी ॥

रामायण

(२२) पृथ्वी स्थिरा भव भुजंगम धारयैनां
त्वं कूर्मराज तदिदं द्वितयं दधीथाः ।
दिक्कुञ्जराः कुरुत तत्त्रितये दिधीर्षां
रामः करोति हरकार्मुकमाततज्यम् ॥

हनुमन्नाटक

दिसि कुंजरहु कमठ अहि कोला। धरहु धरनि धरि धीर न डोला ॥
राम चहहिं संकरधनु तोरा। सजग होहु सुनि आयसु मोरा ॥

रामायण

(२३) मितं ददाति जनको मितं भ्राता मितं सुतः ।
अमितस्यहि दातारं भर्त्तारं पूजयेत्सदा ॥

शिवपुराण

मातु पिता भ्राता हितकारी। मितप्रद सब सुनु राजकुमारी ॥
अमितदानि भर्ता बैदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही ॥

रामायण

(२४) सुखस्य दुःखस्य न कोपि दाता स्वकर्मसूत्रग्रथितो हि लोकः ।
कोउ न काहु दुख सुख कर दाता। निज कृत कर्म भोग सब भ्राता ॥

रामायण

(२५) मानुषीकरणरेणुरस्ति ते पादयोरिति कथा प्रथीयसी ।
चरन कमल रजकहँ सब कहई। मानुष करनि मूरि कछु अहई ॥

रामायण

(२६) बुभुक्षितः किं न करोति पापम्
आरत काह न करहिं कुकरमू ।

रामायण

(२७) सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पण्डितः ।

अरध तजहिं बुध सर्वस जाता ।

रामायण

(२८) क्लीवं च दुरवस्थं वा व्याधितं वृद्धमेव च ।
सुखितं दुःखितं चापि पतिमेकं न लंघयेत् ॥

शिवपुराण

दुश्शीलो दुर्भगो वृद्धो जडो रोग्यधनोऽपि वा ।
पतिः स्त्रीभिर्न हातव्य लोकेप्सुभिरपातकी ॥

भागवत

वृद्धरोग बस जड़ धनहीना । अंध बधिर क्रोधी अतिदीना ॥
ऐसेहु पतिकर किय अपमाना । नारि पाव जमपुर दुख नाना ॥

रामायण

(२९) चतुर्विधास्ताः कथिता नार्यो देवि पतिव्रताः ॥
स्वप्नेपि यन्मनो नित्यं स्वपतिं पश्यति ध्रुवम् ।
नान्यं परपतिं भद्रे उत्तमा सा प्रकीर्तिता ॥
या पितृभ्रातृसुतवत् परं पश्यति सद्धिया ।
मध्यमा साहि कथिता शैलजे वै पतिव्रता ॥
बुध्वा स्वधर्मं मनसा व्यभिचारं करोति न ।
निकृष्टा कथिता साहि सुचरित्रा च पार्वति ॥

शिवपुराण

जग पतिव्रता चारि विधि अहहीं । वेद पुराण संत अस कहहीं ॥
उत्तम के अस बस मनमाहीं । सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं ॥
मध्यम परपति देखहिं कैसे । भ्राता पिता पुत्र निज जैसे ॥
धर्म विचारि समुझि कुल रहई । सो निकृष्ट तिय अस श्रुति कहई ॥
बिनु अवसर भयते रह जोई । जानेहु अधम नारि जग सोई ॥

रामायण

(३०) अग्रे यास्याम्यहं पश्चात् त्वमन्वेहि धनुर्धरः ।
आवयोर्मध्यगा सीता मायेवात्मपरात्मनोः ॥

अध्यात्म

आगे राम लखन पुनि पाछे । तापस वेष बने सब आछे ॥
उभय मध्य सिय सोहति कैसी । ब्रह्म जीव बिच माया जैसी ॥

रामायण

रे वृक्षाः पर्वतस्था गिरिगहनलता वायुना वीज्यमानाः
रामोऽहं व्याकुलात्मा दशरथतनयः शोकशुक्रेण दग्धः ।

बिम्बोष्ठी चारुनेत्रा सुविपुलजघना बद्धनागेन्द्रकांची
हा सीता केन नीता मम हृदयगता को भवान् केनदृष्टा ॥

हनुमन्नाटक ।

इस श्लोक का आशयमात्र गोसाईं जीने लेकर निम्न पद्य की रचना की है:—

लछिमन समुझाये बहुभाँति। पूछत चले लता तरु पाँती ॥
हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम देखी सीता मृगनैनी ॥

रामायण

(३२) शास्त्रं सुचिन्तितमपि प्रतिचिन्तनीयं
स्वराधितोऽपि नृपतिः परिशङ्कनीयः ।
अङ्केस्थिताऽपि युवती परिरक्षणीया
शास्त्रे नृपे च युवतौ च कुतो वशित्वम् ॥

इस श्लोक का कविराज ने निम्न चौपाइयों में अक्षरशः अनुवाद कर दिया है:—

शास्त्र सुचिन्तित पुनि पुनि देखिय। भूप सुसेवित बस नहिं लेखिय ॥
राखिय नारि यदपि उर माहीं। युवती शास्त्र नृपति बस नाहीं ॥

रामायण

(३३) भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमैः

फलभरि नम्र विटप सब, रहे भूमि नियराइ ।

(३४) पापान्निवारयति योजयते हिताय
गुह्यानि गूहति गुणान्प्रकटीकरोति ।
आपद्गतं न च जहाति ददाति काले
सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः ॥

कुपथ निवारि सुपंथ चलावा। गुन प्रगटै अवगुनहिं दुरावा ।
विपतिकालकर सतगुन नेहा। श्रुति कह संतमित्र गुन एहा ॥

(३५) परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम् ।
वर्जयेत्तादृशं मित्रं विषकुंभं पयोमुखम् ॥

आगे कह मृदु बचन बनाई। पाछे अनहित मन कुटिलाई ॥
अस कुमित्र परिहरे भलाई ॥

रामायण

(३६) दुहिता भगिनी भ्रातुर्भार्या चैव तथा स्नुषा ।
समा यो रमते तासामेकामपि विमूढधीः ॥
पातकी सतु विज्ञेयः स बध्यो राजभिः सदा ।
त्वं तु भ्रातुः कनिष्ठस्य भार्यायां रमसे बलात् ॥

अध्यात्म

अनुजबधू भगिनी सुतनारी। सुनु सठ ये कन्या समचारी॥
इनहिं कुदृष्टि बिलोकै जोई। ताहि बधे कछु पाप न होई॥

यद्यपि उपर्युक्त संस्कृत पद्यों में 'रमते' एवं 'रमसे बलात्' पद आये हैं जिनके स्थान में गोसाईंजी ने 'इनहिं कुदृष्टि बिलोकै जोई' पद का प्रयोग कर के निस्सन्देह आदर्श को ऊँचा कर दिया है, तथापि दण्ड-विधान के विचार से अव्यावहारिक सा हो गया है, क्योंकि मूल श्लोक में 'स वध्यो राजभिः सदा' ऐसा निर्देश आया है। कुदृष्टि पूर्वक अवलोकन करने से धर्म-नियम तो लागू है, परन्तु राज्य-नियम लागू नहीं हो सकता।

(३७) श्री जयदेव कवि कृत 'प्रसन्न राघव नाटक' से भी कविकुल तिलक तुलसी दासजी ने कतिपय भाव, उक्तियां और पदादि लेकर अपनी रचना-सरिता में विलीन कर लिया है। नाटककार ने लिखा।—

चन्द्रे च रामचन्द्रे च नारीणां च दृगञ्चले।
नीलोत्पलसुहृत्कान्तौ कस्य नामोदते मनः॥

अर्थात्—चन्द्रमा, रामचन्द्र, और स्त्रियों के दृगञ्चल की नील कमल कवि ने दर्शाया है कि राम-गुण-ग्राम गान करने में ही सरस्वती की उपयोगिता है:—

द्वितीय संस्करण, बम्बई मुद्रित पृष्ठ ४, सूत्रधार-कथन

झगिति जगतीमागच्छन्त्याः पितामहविष्टपा-
न्महति पथि यो देव्या वाचः श्रमः समजायत।
अपि कथमसौ मुञ्चेदेनं न चेदवगाहते
रघुपतिगुणग्रामश्लाघासुधामयदीर्घिकाम्॥

कविकुल-भूषण तुलसीदासजी ने भी अपने 'रामचरित-मानस' में इस आशय को लिया है:—

भक्ति हेतु विधिभवन बिहाई। सुमिरत शारद आवति धाई॥
रामचरित-सर बिनु अन्हवाये। सो श्रम जाइ न कोटि उपाये॥

श्लोक में रघुपति गुण-ग्राम-श्लाघा का रूपक सुधामय सुदीर्घिका से किया है, वहाँ गोस्वामी जीने रामचरित का रूपक पुलिङ्ग होने के कारण सर से बाँध कर उपमान एवं उपमेय की एक लिङ्गता की है।

(३८) जनक महाराज की यज्ञशाला में धनुष तोड़ने के लिये जितने राजा, महाराजा एकत्रित हुए थे, उनसे जब कोदंड टस से मस भी न हुआ, वहाँ नाटक के रचयिता ने उदाहरण देकर भारतीय सतियों का कैसा आदर्श उपस्थित किया है:—

अङ्क १ श्लोक ५६

वाणस्य बाहुशिखरैः परिपड्यीमानं
नेदं धनुश्चलति किंचिदपीन्दुमौलेः।

कामातुरस्य वचसामिव संविधानै-
रभ्यर्थितं प्रकृतिचारु मनः सतीनाम् ॥

इस श्लोक को पूर्ण ध्यान में रखते हुए अपने 'रामचरित-मानस' में उक्त अनुपम उपमा को उद्धृत करते हैं:—

भूप सहस्र दस एकहि बारा। लगे उठावन टरे न टारा ॥
डिगै न शंभु सरासन कैसे। कामी बचन सती मन जैसे ॥

(३९) परशुराम-राम के संवाद को सब से प्रथम जयदेव जीने ही रोचक बनाने का प्रयत्न किया था। देखिये अङ्क ४ पृष्ठ ५८:—

राम— भो ब्रह्मन् भवता समं न घटते संग्रामवार्त्तापि नः
सर्वे हीनबला वयं बलवतां यूयं स्थिता मूर्धनि।
यस्मादेकगुणं शरासनमिदं सुव्यक्तमुर्वीभुजा-
मस्माकं भवतां पुनर्नवगुणं यज्ञोपवीतं बलम् ॥

उक्त संवाद को गोस्वामी जीने अत्यन्त विशद और विस्तृत करके उसमें पद पद पर मौलिकता का प्रदर्शन कराया है, जिसका पूरा पता प्रकरण का पाठ करने पर ही पाठक पा सकेंगे। श्लोक का आशय कवि-सम्राट ने इन पद्यों में प्रविष्ट किया है:—

हमहिं तुमहिं सरबरि कस नाथा। कहहु तो कहाँ चरन कहँ माथा ॥
देव एक गुन धनुष हमारे। नौगुन परम पुनीत तुम्हारे ॥

(४०) पुनः— मया स्पृष्टं न वा स्पष्टं कार्मुकं पुरवैरिणः।
भगवन्नात्मनैवेदमभज्यत करोमि किम् ॥

छुवतहिं टूट पिनाक पुराना। मैं केहि हेतु करब अभिमाना ॥

रामायण

(४१) नाटककार ने अङ्क ६ पृष्ठ ९३ पर प्राकृत के गद्य में लिखा:—

हला, पेक्ख पेक्ख। निवडिदं दाव इमस्स सिहरादो अङ्गाल खण्डअम्

अर्थात्

हला! पश्य पश्य निपतितं तावदस्य शिखारादङ्गारखण्डकम्।

गोसाईं जी ने इस आशय को इस प्रकार लिया है:—

कपि करि हृदय विचार, दीन्ह मुद्रिका डारि तब।
जनु असोक अंगार, दीन्ह हरखि उठिकर गहेउ ॥

रामायण

(४२) 'प्रसन्नराघव' के अङ्क ६ पृष्ठ ९६ का लेख है:—

हिमांशुश्चण्डांशुर्नवजलधरो दावदहनः
सरद्वीचीवातः कुपितफणिनिःश्वासपवनः

नवा मल्ली भल्ली कुवलयवनं कुन्तगहनं
मम त्वद्विश्लेषात् सुमुखि विपरीतं जगदिदम् ॥

इसी आशय को गोसाईं जी ने हनुमान के मुख से संवादरूपेण सीता के सम्मुख इस प्रकार कहलवाया है:—

राम वियोग कहेउ तब सीता। मो कहँ सकल भयेउ विपरीता ॥
नवतरु किसलय मनहुँ कृसानू। काल निसासम निसि ससि भानू ॥
कुबलय विपिन कुंत बन सरिसा। बारिद तप्त तेल जनु बरिसा ॥
जेहि तरु रहिय करत तेइ पीरा। उरग स्वास सम त्रिविध समीरा ॥

रामायण

(४३) पुनश्च—

कस्याख्याय व्यतिकरमिमं मुक्तदुःखो भवेयं
को जानीते निभृतमुभयोरावयोः स्नेहसारम्।
जानात्येकं शशधरमुखि ! प्रेमतत्वं मनो मे
त्वामेवैतत् चिरमनुगतं तत्प्रिये किं करोमि ॥

कहेहु ते कछु दुख घटि कि होई। काह कहौं यह जान न कोई ॥
तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एक मन मोरा ॥
सो मन रहत सदा तोहि पाहीं। जानु प्रीति रस इतनोहि मांहीं ॥

(४४) अङ्क ६ पृष्ठ ९२ पर 'प्रसन्नराघव' की रचना देखिये:—

कुरु सकरुणं चेतः श्रीमन्नशोक वनस्पते
दहनकणिकामेकां तावन्मम प्रकटीकुरु ।
ननु विरहिणां सन्तापाय स्फुटी कुरुते भवान्
नवकिसलयश्रेणीव्याजान् कृशानुशिखावलिम् ॥

इसी आशय की उक्ति 'रामचरित-मानस' में इस प्रकार है:—

सुनिय विनय मम बिटप असोका। सत्य नाम करु हरु मम सोका ॥
नूतन किसलय अनल समाना। देइ अगिनि तन करहु निदाना ॥

(४५) नाटक के अङ्क ६ पृष्ठ ९१ पर यह श्लोक है:—

विरमविरम रक्षः किं वृथा जल्पितेन
स्पृशति नहि मदीयं कण्ठसीमानमन्यः ।
रघुपतिभुजदण्डादुत्पलश्यामकान्ते-
र्दशमुख भवदीयान्निष्कृपाद्वा कृपाणात् ॥

इसी श्लोक के भाव और शब्दों में किञ्चित् परिवर्त्तन करके गोस्वामी जी ने 'रामचरित-मानस' में इस प्रकार की रचना की है:—

स्याम सरोज दाम सम सुन्दर। प्रभु भुज करिकर सम दसकन्धर ॥
सो भुज कंठ कि तव असि घोरा। सुनु सठ अस प्रमान प्रन मोरा ॥

(४६) पुनश्च—

चन्द्रहास हर मे परितापं । रामचन्द्रविरहानलजातं ॥
त्वं हि कान्तिजितमौक्तिकचूर्णं । धारया वहसि शीतलमम्भः ॥

इस पद्य का कविकुल-भूषण ने अक्षर-प्राय अनुवाद कर लिया है:—

चन्द्रहास हरु मम परितापा । रघुपति बिरह अनल सन्तापा ॥
सीतल निसि तव असि बरधारा । कह सीता मम हरु दुख भारा ॥

(४७) उक्त नाटक के अङ्क ७ पृष्ठ ११५ पर नीचे लिखा श्लोक विद्यमान है:—

मयूरनखरत्रुटत्तिमिरकुम्भिकुम्भस्थलो-
च्छलत्तरलतारकाकपटकीर्णमुक्ताकणः ।
पुरन्दरहरिद्दरीकुहरगर्भसुप्तोत्थित-
स्तुषारकरकेसरी गगनकाननं गाहते ॥

गोस्वामी तुलसीदास जी ने इसका अनुवाद इस रूप में किया:—

पूरब दिसि गिरि गुहा निवासी । परम प्रताप तेजबलरासी ॥
मत्तनागतम कुंभ बिदारी । ससि केसरी गगन बनचारी ॥
बिथुरे नभ मुकाहल तारा । निसि सुन्दरीकेर सिंगारा ॥

(४८) श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध के २०वें अध्याय में वर्षा और शरद् ऋतुओं के विशद वर्णन से भी गोस्वामी जी ने अपने काव्यों में प्रसंगतः यत्रतत्र आशय लिये हैं:—

सान्द्रनीलाम्बुदैर्व्योम सविद्युत् स्तनयित्नुभिः ।
अस्पष्टज्योतिराच्छन्नं ब्रह्मेव सगुणं बभौ ॥

गोस्वामी जी ने उक्त श्लोक के उत्तरार्द्ध से किञ्चित् परिवर्त्तन के साथ कुछ लाभ उठाया है:—

फूले कमल सोह सर कैसे । निर्गुण ब्रह्म सगुण भये जैसे ।

(४९) अष्टौमासान्निपीतं यद्भूम्याश्चोदमयं वसु ।
स्वगोभिर्मोक्तुमारेभे पर्जन्यः काल आगते ॥

इस श्लोक के आशय को गोसाईं जी ने बड़ी उत्तम रीति से सतसई के राज्य-धर्म-वर्णन में इस प्रकार उपमान और उपमेय को उलट कर ले लिया है:—

बरखत हरखत लोग सब, करखत लखत न कोय ।
तुलसी भूपति भानु सम, प्रजा भाग बस होय ॥

(५०) श्रुत्वा पर्जन्यनिनदं माण्डूका व्यसृजन् गिरः ।
तूष्णीं शयानाः प्राग्यद्वद् ब्राह्मणा नियमात्यये ॥

इस श्लोक के भाव को संकुचित करके तुलसीदास जी ने इस प्रकार लिया है:—

दादुर धुनि चहुँ ओर सुहाई। वेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई॥

(५१) आसन्नुत्पथवाहिन्यः क्षुद्रनद्योऽनु शुष्यतीः।
पुंसो यथाऽस्वतन्त्रस्य देहद्रविणसंपदः॥

चौ०—छुद्र नदी भरि चलि उतराई। जस थोरे धन खल बौराई॥

(५२) हरिता हरिभिः शष्पैरिन्द्रगोपैश्च लोहिता।
उच्छिलीन्ध्रकृतच्छाया नृणां श्रीरिव भूरभूत्॥

सस संपन्न सोह महि कैसी। उपकारी की संपति जैसी॥

(५३) मार्गा बभूवुः संदिग्धा स्तृणैश्छन्नाह्यसंस्कृताः।
नाभ्यस्यमानाः श्रुतयो द्विजैः काल हता इव॥

हरित भूमि तृण संकुल, समुझि परै नहिं पंथ।
जिमि पाखंड विवाद ते, लुप्त भये सद्‌ग्रन्थ॥

(५४) लोक बन्धुषु मेघेषु विद्युतश्चलसौहृदाः।
स्थैर्यं न चक्रुः कामिन्यः पुरुषेषु गुणिष्विव॥

दामिनि दमकि रही घन माहीं। खल की प्रीति यथा थिर नाहीं॥

मूल श्लोक में व्यभिचारिणी स्त्री से उपमा दी है, परन्तु गोसाईं जी ने खल की प्रीति से दामिनि-चंचलता की तुलना करके सहृदयता से काम लियाहै।

(५५) मेघागमोत्सवा हृष्टाः प्रत्यनन्दञ्छिखण्डिनः।
गृहेषु तप्ता निर्विण्णा यथाऽच्युतजनागमे॥

लछुमन देखहु मोर गन, नाचत बारिद पेखि।
गृही बिरतिरत हरस जस, विष्णु भक्त कहँ देखि॥

(५६) पीत्वाऽपः पादपाः पद्‌भिरासन्ना नात्ममूर्तयः।
प्राक् क्षामास्तपसा श्रान्ता यथा कामानुसेवया॥

नौ पल्लव भे विटप अनेका। साधक मन जस मिलै विबेका॥

(५७) शरदा नीरजोत्पत्त्या नीराणि प्रकृतिं ययुः।
भ्रष्टानामिव चेतांसि पुनर्योगनिषेवया॥

सरिता सर निर्मल जल सोहा। संत हृदय जस गत मद मोहा॥

(५८) आगे कतिपय स्फुट श्लोकों के अनुवाद दिखलाये जाते हैं।

पृष्ठतः सेवयेदर्कं जठरेण हुताशनम्।
स्वामिनं सर्वभावेन परलोकममायया॥

भानु पीठ सेइय उर आगी। स्वामिहिं सर्व भाव छल त्यागी॥

(५९) शाखामृगस्य शाखायाः शाखां गन्तुं पराक्रमः।

हनुमन्नाटक

शाखामृग की अति मनुसाई। शाखा ते शाखा पर जाई॥

रामायण

(६०) या विभूतिर्दशग्रीवे शिरश्छेदेऽपि शंकरात्।
दर्शनाद्रामदेवस्य सा विभूतिर्विभीषणे॥

हनुमन्नाटक

जो संपति शिव रावनहिं, दीन्ह दिये दस माथ।
सोइ सम्पदा विभीषणहिं, सकुचि दीन्ह रघुनाथ॥

दोहावली

(६१) सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः॥

वाल्मीकि

प्रिय बानी जे सुनहिं जे कहहीं। ऐसे जग निकाय नर अहहीं॥
बचन परम हित सुनत कठोरे। सुनहिं जे कहहिं ते नर प्रभु थोरे॥

रामायण

(६२) रामः स्त्रीबिरहेण हारितवपुस्तच्चिन्तया लक्ष्मणः
सुग्रीवोंगदशल्यभेदकतया निर्मूलकूलद्रुमः।
गण्यः कस्य विभीषणः सच रिपोः कारुण्यदैन्यातिथि-
र्लङ्कातंकविटंकपावकपटुर्वध्यो ममैकः कपिः॥

हनुमन्नाटक

तब प्रभु नारि बिरह बल हीना। अनुज तासु दुख दुखित मलीना॥
तुम सुग्रीव कुलद्रुम दोऊ। अनुज हमार भीरु अति सोऊ॥
शिल्प कर्म जानहिं नल नीला। है कपि एक महा बलशीला॥
आवा प्रथम नगर जेहि जारा। सुनि हँसि बोला बालिकुमारा॥

(६३) रेरे रावण हीनदीन कुमते रामोऽपि किं मानुषः।

राम मनुज कस रे सठ बंगा। धन्वी काम नदी पुनि गंगा॥
पशु सुरधेनु कल्पतरु रूखा। अन्न दान अरु रस कि पियूखा॥
बैनतेय खग अहि सहसानन। चिन्तामनि नहिं उपल दसानन॥
सुनु मतिमन्द लोक बैकुंठा। लाभ कि रघुपति भक्ति अकुंठा॥

सेन सहित तब मान मथि, बन उजारि पुर जारि।
कस रे सठ हनुमान कपि, गयउ जो तव सुत मारि॥

(६४) मुग्धे शृणुष्व मनुजोऽपि सहस्रमध्ये धर्मव्रती भवति सर्वसमानशीलः।
तेष्वेव कोटिषु भवेद्विषये विरक्तः सद्वासको भवति कोटिविरक्तमध्ये॥ १॥
ज्ञानीषु कोटिषु नृजीवन कोऽपि मुक्तः कश्चित् सहस्रनरजीवनमुक्तमध्ये।
विज्ञानरूपविमलोऽप्यथ ब्रह्म लीनस्तेष्वेव कोटिषु सकृत् खलु रामभक्तः॥ २॥

महारामायण

नरसहस्र महं सुनहु पुरारी। कोउ एक होइ धर्मव्रतधारी॥
धर्मशील कोटिन महं कोई। विषयविमुख बिरागरत होई॥
कोटिविरक्तमध्य श्रुति कहई। सम्यक ज्ञान सकृत कोउ लहई॥
ज्ञानवन्त कोटिन महं कोई। जीवनमुक्त सकृत कोउ सोई॥
तिन सहसन महं सब सुख खानी। दुर्लभ ब्रह्म निरत विज्ञानी॥
धमशील विरक्त अरु ज्ञानी। जीवन मुक्त ब्रह्मपर प्रानी॥
सबते सो दुर्लभ सुरराया। रामभक्तिरत गतमदमाया॥

(६५) ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हिसा।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति॥

जो ज्ञानिन कर चित अपहरई। बरिआई विमोह बस करई॥

(६६) वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही॥ गी०

जो तनु धरेउ तजेउ पुनि, अनायास हरियान।
जिमि नूतन पट पहिरि के, नर परिहरै पुरान॥

(६७) जन्मेदं व्यर्थतां नीतं भवभोगोपलिप्सया।
काचमूल्ये न विक्रीतो हंत चिंतामणिर्मया॥

सो तनु धरि हरि भजहिं न जे नर। होहिं विषयरत मंद मंदतर॥
काच किरिचि बदले जिमि लेहीं। करते डारि परसमनि देही॥

वाराह पुराण

(६८) दैवाच्छूकरशावकेन निहतो म्लेच्छो जरा जर्जरो
हा रामेति हतोऽस्मि भूमिपतितो जल्पस्तनुंत्यक्तवान्।
तीर्णोगोपद वद्भवार्णवमहो नाम्नः प्रभावात्पुनः
किंचित्रं यदि रामनामरसिकास्ते यांत्ति रामास्पदं॥

इस श्लोक को गोस्वामी जी ने 'कवितावली' के निम्न कवित्त में अक्षरशः अनुवादित कर दिया है:—

आँधरो अधम जड़ जाजरो जरा जवन, सूकर के सावक ढका ढकेला मग में।
गिर्यो हिय हहरि हराम को हराम हन्यौ, हाइ हाइ करत परीगा काल फग में॥
तुलसी विसोक ह्वै त्रिलोकपति लोक गयो, नाम के प्रताप बात विदित है जग में।
सोइ राम नाम जो सनेह सो जपत जन, ताकी किमि महिमा कही है जात अग में॥

(६९) असितगिरि समंस्यात् कज्जलं सिंधुपात्रे सुरतरुवरशाखा लेखनीपत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं तदपि तव गुणानामीश पारं न याति॥

गोसाईं जी ने इस श्लोक को 'वैराग्य सन्दीपनी' में इस प्रकार अनुवादित किया है:—

महि पत्री मसि उदधि सुर, तरु लेखनी बनाइ।
तुलसी सारद सो तदपि महिमा लिखी न जाइ॥

(७०) उत्कृष्टमध्यमनिकृष्टजनेषु मैत्री यद्वच्छिलासु सिकतासुजलेषु रेखा।
वैरं निकृष्टमध्यमउत्तमेषु यद्वच्छिलासु सिकतासु जलेषु रेखा॥

गोस्वामी तुलसीदासजी ने बड़ी ही मार्मिकता से 'दोहावली' में इस श्लोक का अक्षरशः अनुवाद कर लिया है:—

उत्तम मध्यम नीच गति, पाहन सिकता पानि।
प्रीति परीक्षा तिहुन की, बैर बितिक्रम जानि॥

(७१) 'उत्तर रामचरित' में भवभूति ने लिखा है:—

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि को नु विज्ञातुमर्हति॥

गोसाईंजी ने 'राम चरित-मानस' के उत्तर काण्ड में इस श्लोक को इस प्रकार लिख डाला है:—

कुलिसहुँ चाहि कठोर अति, कोमल कुसुमहुँ चाहि।
चित खगेस रघुनाथ अस, समुझि परै कछु काहि॥

(७२) इसी प्रकार—

'या पश्यति न सा ब्रूते या ब्रूते सा न पश्यति'

का भावानुवाद—

'गिरा अनैन नैन बिनु बानी'

कर दिया। श्री भिखारीदासजी ने 'नैनन के नहिं बैन बैन के नैन नहीं हैं' लिखा है। परन्तु गोस्वामीजी की रचना में सरलता सरसता और भावुकता है।

(७३) आदि कवि वाल्मीकिजी ने सुन्दरकाण्ड में लिखा है:—

चिन्तयन्ती बरारोहा पतिमेव पतिव्रता।
तृणमन्तरतः कृत्वा प्रत्युवाच शुचिस्मिता॥

इस भाव को हमारे महाकवि इस प्रकार व्यक्त करते हैं:—

तृण धरि ओट कहति बैदेही। सुमिरि अवधपति परम सनेही॥

(७४) नीति का श्लोक है:—

शत्रुर्दहति संयोगे वियोगे मित्रमप्यहो।
उभयोर्दुःखदायित्वं को भेदः शत्रुमित्रयोः॥

इस श्लोक के पूर्ण भाव को गोस्वामी जी ने 'रामचरित-मानस' के वन्दना प्रकरण में बड़ी ही सरलता और सहृदयता से अनुवादित कर उसे मौलिकता के वेष्टन से आवेष्टित किया है:—

बन्दौं संत असज्जनचरना। दुख प्रद उभय बीच कछु बरना॥
मिलत एक दारुन दुख देहीं। बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं॥

इन ऊपर के पद्यों को कवि-कुल-तिलक ने 'शत्रुमित्रयोः' पद के स्थान में 'सन्त असज्जन' का व्यवहार कर विशेष व्यापक बना दिया है।

ऊपर लिखा जा चुका है कि गोसाईं जी ने अनेक संस्कृत ग्रन्थों से सहायता ली है। श्रीमद्भागवत स्कन्ध १२ अध्याय २ और ३ में जहाँ कलि धर्म-निरूपण किया है उस स्थल के निम्नश्लोकों के आशय लिये हैं:—

(७५) 'विप्रत्वे सूत्र मेवहि'
'द्विज चिन्हजनेऊउधार तपी'।

(७६) 'लावण्यं केश धारणम्'। 'महाहारा'।
'अबला कच भूषण भूरि छुधा'।

(७७) 'पाण्डित्ये चापलं वचः'।
'पंडित सोइ जो गाल बजावा'।

(७८) 'उदरं भरता स्वार्थः'।
'उदर भरै सो धर्म सिखावहिं।

(७९) 'प्रजाहि लुब्धै राजन्यै'
'द्विज श्रुति वंचक भूप प्रजासन'।

(८०) 'अनावृष्ट्या विनङ्क्ष्यन्ति दुर्भिक्षकरपीडिताः'।
'कलि बारहिं बार अकाल परै। बिनु अन्न दुखी सब लोग मरैं।

(८१) 'त्रिंशद्विंशतिवर्षाणि परमायुः कलौ नृणाम्'।
'लघु जीवन संवत पंच दसा'।

(८२) नष्टे वेदपथे नृणाम्'।
'कोउ नहिं मान निगम अनुसासन'।

(८३) 'पृथ्वी सागरमेखलाम्'।
'भूमि सप्त सागर मेखला'।

(८४) 'शिश्नोदरपरा द्विजाः'।
'शिश्नोदर पर जमपुर त्रासन'।

(८५) 'शूद्रा, प्रतिग्रहीष्यन्ति तपोवेषोपजीविनः।
धर्मं वक्ष्यन्त्यधर्मज्ञा अधिरुह्योत्तमासनम्'॥

'शूद्र करहिं जप तपव्रत दाना। बैठि बरासन कहहिं पुराना॥
शूद्र द्विजन उपदेसहिं ज्ञाना। मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना'॥

इत्यादि

(८६) 'कलौ काकणिकेऽप्यर्थे विगृह्य त्यक्तसौहृदाः ।
त्यक्षन्ति च प्रियान्प्राणान्हनिष्यन्ति स्वकानपि' ॥
'ब्रह्म ज्ञान बिनु नारि नर, करहि न दूसरि बात ।
कौड़ी लागी मोह बस, करहिं विप्र गुरु घात' ॥

(८७) 'कलेर्दोषनिधेराजन्नस्ति ह्येको महान्गुणः ।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत्' ॥
सुनु व्यालारि कराल कलि, मल अवगुन आगार ।
गुनौ बहुत कलि काल कर, बिनु प्रयास निस्तार' ॥

(८८) 'कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः ।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्त्तनात्' ॥
'कृत युग त्रेता द्वापर, पूजा मख अरु योग ।
जो गति होइ सो कलि हरि, नामते पावहिं लोग' ॥

इसी प्रकार श्रीमद्भागवत स्कन्ध ३ अध्याय २० से देवहुती, से कर्दमभुनि का विवाह और कपिल की उत्पत्ति की कथा अंशतः ले ली है। रन्तिदेव का उपाख्यान भी इसी ग्रन्थ से पढ़ कर 'रन्तिदेव बलि जो कुछ भाखा । तन मन दियेउ वचन प्रन राखा' की रचना की है। अम्बरीष और दुर्वासा की कथा का मूल भी भागवत से लेकर 'सुधि करि अम्बरीष दुर्वासा । भे सुर सुरपति निपट निरासा' का ऐतिहासिक दिग्दर्शन किया है। इसी ग्रन्थ के चतुर्थ सर्ग से शिव और दक्ष का विरोध, दक्ष-यज्ञ-वर्णन, सतीदाह और वीरभद्र के द्वारा दक्ष-यज्ञ-विध्वंस की विस्तृत कथा ली है। देखिये स्कन्ध ४। अध्याय ३:—

(८९) यदाभिषिक्तो दक्षस्तु ब्रह्मणा परमेष्ठिना ।
प्रजापतीनां सर्वेषामाधिपत्ये स्मयोऽभवत् ॥२॥
(९०) इष्ट्वास वाजपेयेन ब्रह्मिष्ठानभिभूय च ।
बृहस्पति सवनाम समारेभे क्रतूत्तमम् ॥३॥
(९१) तस्मिन् ब्रह्मर्षयः सर्वे देवर्षिपितृदेवता ।
आसन् कृतस्वस्त्ययनास्तत्पत्न्यश्च सभर्तृकाः ॥४॥
(९२) तदुपश्रुत्य नभसि खेचराणां प्रजल्पताम् ।
सती दाक्षायणी देवी पितुर्यज्ञमहोत्सवम् ॥५॥
(९३) व्रजन्तीः सर्वतो दिग्भ्य उपदेववरस्त्रियः ।
विमानयानाः सप्रेष्टा निष्ककण्ठीः सुवाससः ॥६॥
(९४) दृष्ट्वा स्वनिलयाभ्याशे लोलाक्षीर्मृष्टकुण्डलाः ।
पतिं भूतपतिं देवमौत्सुक्यादभ्यभाषत ॥७॥
(९५) प्रजापतेस्ते श्वशुरस्य साम्प्रतं निर्यापितो यज्ञमहोत्सवः किल ।
वयं च तत्राभिसराम वामते यद्यर्थितामी विबुधा व्रजन्ति हि ॥

× × × × ×

(९६) कथं सुतायाः पितृगेहकौतुकं
निशम्य देहः सुखयं नेङ्गते ।
अनाहुता अप्यभियंति सौहृदं
भर्तुर्गुरोर्देहकृतश्च केतनम् ॥ १३ ॥

× × × ×

(९७) सोदर्यसंप्रश्नसमर्थवार्त्तया
मात्रा च मातृष्वसृभिश्च सादरम् ।

उपर्युक्त श्लोकों के छायानुवाद गोस्वामीजी ने स्वनिर्मित 'रामचरित-मानस' में इस प्रकार किये हैं:—

देखा विधि विचारि सब लायक । दच्छहिं कीन्ह प्रजापति नायक ॥
बड़ अधिकार दच्छ जब पावा । अति अभिमान हृदय तब आवा ॥

× × × ×

दच्छ लिये मुनि बोलि सब, करन लगे बड़ जाग ।
नेवते सादर सकल सुर, जे पावत मख भाग ॥

किन्नर नाग सिद्ध गंधर्वा । बधुन समेत चले सुर सर्वा ॥
सती विलोके व्योम बिमाना । जात चले सुन्दर विधिनाना ॥
सुर सुन्दरी करहिं कल गाना । सुनत स्रवन छूटहिं मुनिध्याना ॥
पूछेउ तब शिव कहेउ बखानी । पिता यज्ञ सुनि कछु हरखानी ॥
बोली सती मनोहर बानी । भय संकोच प्रेम रस सानी ॥

पिता भवन उत्सव परम, जो प्रभु आयसु होइ ।
तो मैं जाउँ कृपायतन, सादर देखन सोइ ॥

× × × ×

जदपि मित्र प्रभु पितु गुरु गेहा । जाइय बिनु बोले न सँदेहा ॥

× × × ×

पिता भवन जब गई भवानी । दच्छ त्रास काहु न सनमानी ॥
सादर भलेहि मिली इक माता । भगिनी मिली बहुत मुसुकाता ॥

इसी प्रकार किष्किन्धाकाण्ड वाल्मीकिरामायण से बाली और सुग्रीव की कथा का कहीं भावानुवाद, कहीं छायानुवाद और कहीं कहीं अविकल अनुवाद करते गये हैं । पाठकों के मनोरंजनार्थ उक्त ग्रन्थ के नवम सर्ग से एक आख्यान दिया जाता है ।

(९८) श्रूयतां राम यद्वृत्त मादितः प्रभृति त्वया ।
यथा वैरं समुद्भूतं यथा चाहं निराकृतः ॥ १ ॥

(९९) बाली नाम मम भ्राता ज्येष्ठः शत्रुनिषूदनः ।
पितुर्बहुमतो नित्यं ममापि च तथा पुरा ॥ २

(१००) पितर्य्युपरतेऽस्माकं ज्येष्ठोऽयमिति मन्त्रिभिः ।
कपीनामीश्वरो राज्ये कृतः परमसम्मतः ॥ ३ ॥

× × × ×

(१०१) मायावी नाम तेजस्वी पूर्वजो दुन्दुभेः सुतः ।
तेन तस्य महद्वैरं स्त्रीकृतं विश्रुतं पुरा ॥ ५ ॥

(१०२) सतु सुप्तजने रात्रौ किष्किन्धाद्वारमागतः ।
नर्दतिस्म सुसंरब्धो वालिनं चाह्वयद्रणे ॥ ६ ॥

(१०३) प्रसुप्तस्तु मम भ्राता नर्दितं भैरवस्वनम् ।
श्रुत्वा न ममृषे बाली निष्पपात जवात्तदा ॥ ७ ॥

× × ×

(१०४) तं प्रविष्टं रिपुं दृष्ट्वा बिलं रोषवशं गतः ।
मामुवाच तदा बाली वचनं क्षुभितेन्द्रियः ॥१३॥

(१०५) इह त्वं तिष्ठ सुग्रीव बिलद्वारि समाहितः ।
यावत्तत्र प्रविश्याहं निहन्मि सहसा रिपुम् ॥१४॥

× + × ×

(१०६) तस्य प्रविष्टस्य बिलं साग्रसंवत्सरोगतः ।
स्थितस्य च मम द्वारि स कालो व्यत्यवर्तत ॥१६॥

× × × ×

(१०७) अथ दीर्घस्य कालस्य बिलात्तस्माद्विनिःसृतम् ।
सफेनं रुधिरं रक्तमहं दृष्ट्वा सुदुःखितः ॥१८॥

× × × ×

(१०८) अहंत्ववगतो बुद्ध्वा चिन्हैस्तै र्भ्रातरं हतम् ।
पिधाय च बिलद्वारं शिलया गिरि मात्रया ॥२०॥

(१०९) गूहमानस्य मे तत्वं यत्नतो मंत्रिभिः श्रुतम् ।
ततोऽहं तैः समागम्य सम्मतैरभिषेचितः ॥२१॥

(११०) राज्यं प्रशासतस्तस्य न्यायतो मम राघव ।
आजगाम रिपुं हत्वा बाली तमसुरोत्तमम् ॥२२॥

× × ×

(१११) नत्वा पादावहं तस्य मुकुटेनास्पृशं प्रभो ।
अपि बाली मम क्रोधान्नप्रसीद चकार सः ॥

'राम-चरित-मानस':—

नाथ बालि अरु मैं दोउ भाई । प्रीति रही कछु बरणि न जाई ॥
मयसुत मायावी तेहि नाऊं । आवा सो प्रभु हमरे गाऊं ॥
अर्धरात्रि पुरद्वार पुकारा । बाली रिपु बल सहै न पारा ॥
धावा बालि देखि सो भागा । मैं पुनि गयउँ बंधुसँग लागा ॥
गिरिवर गुहा पैठि सो जाई । तब बाली मोहि कहा बुझाई ॥

परखेसु मोहि एक पखवारा। नहिं आवौं तब जानेसु मारा॥
मास दिवस तहँ रहेउँ खरारी। निसरी रुधिर धार तहँ भारी॥
बालि हतेसि मोहि मारिहिं आई। सिला द्वार दै चलेउँ पराई॥
मंत्रिन पुर देखा बिनु साईं। दीन्हेउं मोहि राज बरि आई॥
बाली ताहि मारि गृह आवा। देखि मोहि जिय भेद बढ़ावा॥

× × × ×

इस कथा में आदि कवि ने बाली और मायावी के युद्ध की अवधि एक वर्ष लिखी है, परन्तु हमारे महाकवि ने एक मास में ही उसकी इति श्री कर दी है।

(११२) वाल्मीकि युद्धकाण्ड सर्ग २६।२० में

'न दूतो वधमर्हतिः। लिखा है जिसका अनुवाद गोस्वामी जी ने 'नीति विरोध न मारिय दूता' कर लिया है।

(११३) 'आदाय बालगजलील इवेक्षु यष्टिं सज्जीकृतं नृप विकृष्य बभंज मध्ये' का आशय लेकर 'अजगव खंडेउ ऊख जिमि' की रचना की है।

उपसंहार

मैं पूर्व लिख आया हूँ कि महाकवि तुलसीदास एक मौलिक कवि थे। ऊपर जितने उदाहरण संस्कृत के दिये गये हैं जिनके कवि-सम्राट् ने भावानुवाद, छायानुवाद अथवा अक्षरानुवाद किये हैं उनसे उनकी कीर्ति-कौमुदी कदापि मलिन नहीं होती, अपितु द्विगुणित हो जाती है। उक्त उद्धरणों से कविकुल-तिलक के प्रगाढ़-पाण्डित्य, अविरल अनुशीलन, सत् स्वाध्याय एवं सम्यक् संस्कृतज्ञता का पता लगता है। जान पड़ता है कि गोस्वामी जी हिन्दी भाषा के धुरन्धर सुकवि होने के अतिरिक्त संस्कृत साहित्य के भी प्रकाण्ड-पण्डित थे। पुराण, गीता, नाटक, वाल्मीकीय रामायण और अध्यात्म रामायणादि ग्रन्थों को भली भाँति देख गये थे, भट्टि काव्य एवं कालिदास की कमनीय कविता के भी पाठ कर चुके थे। प्रत्येक काण्ड के प्रारम्भ में कुछ कुछ संस्कृत श्लोक भी लिखते गये हैं जिससे इनकी संस्कृत-रचना-शक्ति की प्रतिभा झलकती है। इनके स्नेहमय हृदय ह्रद से कविता-कालिन्दी का स्वाभाविक स्रोत चला है जो भगवद्भक्ति के अथाह सागर में विराम पागया है। धन्य हो, तुलसीदास तुम अपनी अमर कविता से ही जगत में अमर रहे:—

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयं॥

तुम्हारी कविता जगत में आदृत हुई और वास्तव में तुम्हारा याचित वर-दान महादेव ने दिया:—

होइ प्रसन्न देहु बरदानू। साधु समाज भनिति सनमानू॥

[१०] हिन्दी भाषा और तुलसीदास

हिन्दी एक मिश्रित भाषा है। संस्कृत, प्राकृत, पाली, पंजाबी, सौरसेनी, मागधी, ब्रजी, बुन्देलखण्डी और अरबी-फारसी के शब्द इस भाषा में न्यूनाधिक रूप से व्यवहृत होते हैं। हिन्दी, संस्कृत की दौहित्री अर्थात् प्राकृत-भाषा की पुत्री है। हिन्दी की उत्पत्ति सुगमतया समझाने के लिये इसके पूर्व की भाषाओं के संबन्ध में कुछ वर्णन करना अत्यावश्यक है। यहाँ पर सब से पूर्व थोड़ा वर्णन इस बात का करना है कि मनुष्य, भाषा किस प्रकार सीखता है।

जिस समय हम बच्चे थे, उस समय संसार के किसी भी पदार्थ के संज्ञा-परक शब्दों से नितान्त अनभिज्ञ थे। यहाँ तक कि उनकी ओर आँखें फेर फेर कर हम आश्चर्य-सागर में निमग्न और बेसुध हो रहे थे उस समय सारा लीलामय विविध वस्तुओं का भण्डार विश्व, हमें आश्चर्यमय जान पड़ता था। वस्तुओं के साधर्म्य और वैधर्म्य की मीमांसा तो दूर रही, हम अग्नि और जल तक में भेद नहीं जानते थे। माता के स्तनों से नित्य पीते हुए दूध की दूध-संज्ञा से भी एक मात्र अपरिचित थे। माता को माता कहना भी नहीं जानते थे, कारण कि हमारे पास कोई साहित्य अथवा भाषा प्रस्तुत न थी। सृष्टि के नियमानुसार हम जैसे जैसे बढ़ते गये वैसे वैसे क्रमशः हमारे कानों में विविध विधिके शब्द पड़ने लगे और हमने धीरे धीरे उन शब्दों की धारणा आरम्भ की। शनैः शनैः उन शब्दों के उच्चारण भी करने लगे।

यदि बचपन से हमें किसी के शब्द न सुन पड़ें तो निश्चय है कि हम किसी शब्द को न जान सकते और न बोल ही सकते।

अब इस घटना को आप प्रारम्भ-सृष्टि में ले चलें, जहाँ समष्टि जगत की समानावस्था थी। उस समय न तो किसी के हृदय में कोई भाषा थी और न किसी के पास कोई शब्द ही था। अब प्रश्न है कि आदि-सृष्टि (प्रवाह रूपेण) के जन समुदाय ने शब्द वा शब्द-संगठन किससे सीखा।

चाहे आप किसी भी पहलू से मानें, आरम्भ में शब्द-शास्त्र का गुरु किसी को मानना ही पड़ेगा। निश्चय ही हमारा साहित्य-गुरु—

'कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः'

परमात्मा ही है, जिस सुललित सरस शब्दों में उसने हमारे अन्तःकरण में ज्ञान प्रदान किये, उन्हें 'वेद' कहते हैं। 'वेद' की भाषा को ही 'वैदिक-साहित्य' कहा गया है। चाहे कोई मनुष्य साहित्य का उद्गम परमात्मा को न माने, परन्तु सारे भूमण्डल के विद्वान इस सिद्धान्त पर मतैक्य रखते हैं कि ऋग्वेद से पुरा कालीन साहित्य-ग्रन्थ जगतीतल पर अन्य नहीं है।

वेदों के अनन्तर ब्राह्मणों, उपनिषदों और दर्शनों की रचना हुई। वैदिक-

साहित्य के पश्चात् कुछ विशेष नियमों के साथ बद्ध करने से जो नवीन, विशुद्ध, परिमार्जित एवं परिष्कृत भाषा बनी उसका नाम 'संस्कृत' पड़ा। संस्कृत साहित्य, काल पाकर एक समुन्नत साहित्य हुआ, इसमें धर्मशास्त्र, इतिहास, काव्य, नाटक, आयुर्वेद, खगोल और धनुर्वेद के बड़े से बढ़े ग्रन्थ लिखे, गये, जिनका वर्णन करना, मेरा प्रकृत विषय नहीं। आदि काल में आर्य लोग जिस जिस देश में गये वहाँ के निवासियों को वैदिक और संस्कृत साहित्य की शिक्षा दी। मनुस्मृति से सिद्ध होता है कि जब तक भारत वर्ष के विद्वान ब्राह्मण देश देशान्तरों और द्वीप द्वीपान्तरों में जाते आते रहे तब तक सर्वत्र वैदिक साहित्य और वैदिक धर्म का प्रचार रहा। परन्तु जब से ब्राह्मण, संन्यासी और प्रचारकों ने विदेश गमनागमन का परित्याग कर दिया तब से उन देशों में भिन्न भिन्न भाषाओं और मतों का प्रचार हुआ सही, पर सब में कुछ न कुछ हमारी छाप-मुहर लगी रही।

वैदिक साहित्य के प्रचार के लोप होने से फारस देश में 'परजिक' और 'मीडिक' दो भाषाएँ बनीं। कुछ दिनों के अनन्तर वही 'परजिक', 'पहलवी' के रूप में परिणत हुई। इन सब भाषाओं को इसलामी साहित्य वाले 'सुरयानी' कहते हैं जो 'सुरवाणी' के अतिरिक्त अन्य कोई अर्थ नहीं रखती। पश्चिमी फारस अर्थात मीडिया में जो भाषा बोली जाती थी उसे 'मीडिक' कहते थे। इस देश में 'ज़रदुश्त' नाम का मनुष्य हुआ जो वेद-व्यास का समकालीन था। इसने 'अवस्ता' नाम का ग्रन्थ बनाया। 'अवस्ता' के आधे से अधिक शब्द वैदिक और संस्कृत साहित्य के पाये जाते हैं। नीचे कुछ शब्द मिलान के लिये प्रस्तुत हैं :—

वैदिक शब्द	अवस्ता के शब्द
मित्र	मिथ्र
अर्यमन	ऐर्यमन
भग	बघ
वायु	वयु
दानव	दानु
असुर	अहुर
गाथा	गाथा
मंत्र	मंथ्र
होता	जओता
आहुति	आज़ुइति

—:०:—

संस्कृत के शब्द	अवस्ता के शब्द
नरम्	नरेम्
रथम्	रथेम्
देव	दएव
गो	गओ
कर्ण	करेन
पशु	पसु
पुत्रान्	पुथ्रात्
सा	हा
असि	अहि
अस्मि	आह्मि
कुत्र	कुथ्र । इत्यादि

संस्कृत भाषा से भिन्न भिन्न देशों की भाषाएँ कैसे बनीं, यह मेरा प्रकृत विषय नहीं। केवल यहाँ इङ्गित मात्र कर दिया है। पाठकों को यहाँ तक मैं ला चुका हूँ कि वैदिक साहित्य के अनन्तर संस्कृत साहित्य का प्रचार भारत वर्ष में हुआ। स्मरण रहे कि संस्कृत की रचना व्याकरण और काव्य-कोष के परिमार्जित नियमों पर हुई थी, अतः वह पठित मनुष्यों की भाषा बन गयी और अपठित समाज में उसका अपभ्रंश रूप चलित हुआ, जिसे 'प्राकृत' भाषा कहने लगे। भारतवर्ष में जिस समय बौद्धधर्म का प्रचार प्रारम्भ हुआ उस समय इस देश की सर्वमान्य भाषा, प्राकृत का स्वरूप धारण कर चुकी थी। महात्मा बुद्ध संस्कृत के विद्वान होते हुए भी प्राकृत में प्रचार करने लगे! प्राकृत भाषा काल पाकर 'पाली' के स्वरूप में परिणत हुई। बौद्ध शिलालेखों और स्तूपलेखों की भाषा यही प्राकृत वा पाली है। 'ललित-विस्तर' और 'धम्मपद' प्रभृति बौद्ध ग्रन्थ प्राकृत में लिखे गये। इस समय संस्कृत के लेखकों ने भी अपनी लेखन-शैली में परिवर्तन किया। 'मृच्छकटिक' 'शाकुन्तल' और 'प्रसन्न राघव' इत्यादि नाटक ग्रन्थों को आप उठा कर देखें। इनमें उच्च श्रेणी के पात्रों की भाषा तो संस्कृत है पर जहाँ शूद्रों और स्त्रियों के कथन हैं वहां प्राकृत भाषा मिलेगी। किसी देश वा जाति की भाषा में सहसा परिवर्त्तन नहीं हुआ करता। इस परिवर्त्तन में पर्याप्त समय लगता है। जब 'प्राकृत' भाषा के शुद्ध रूप को भी जनता का अपठित भाग नहीं बोल सका तो देश कालानुसार उच्चारण में अन्तर पड़ते पड़ते भारतवर्ष में भिन्न भिन्न भाषाओं की उत्पत्ति हो गयी। पाठकों की समझ में सुगमता लानेके लिये नीचे कुछ इसका विवरण दिया जाता है।

प्राकृत भाषा से जितनी प्रान्तीय भाषाएँ उत्पन्न हुईं, उनकी मुख्य तीन शाखाएँ आप समझें।

(१) **बाहरी शाखा**—इसकी तीन उपशाखाएँ हैं। पहली उपशाखा उत्तर-पश्चिमी है। काश्मीरी, कोहिस्तानी, लहँड़ा और सिन्धी इसमें सम्मिलित हैं। इन भाषाओं को लगभग ७५००००० पचहत्तर लाख मनुष्य बोलते हैं। दूसरी उपशाखा मराठी है जिसे न्यूनाधिक २ करोड़ मनुष्य बोलते हैं। तीसरी उपशाखा 'पूर्वी है, जिसमें उड़िया, बिहारी, बंगाली और आसामी मिलते हैं जिनके बोलने वालों की संख्या लगभग ९ करोड़ है।

(२) **मध्यवर्ती शाखा**—इसकी कोई उपशाखा नहीं। इसे पूर्वी वा माध्यमिक शाखा भी कहते हैं। लगभग ढाई करोड़ जन संख्या इस में संमिलित है।

(३) **भीतरी शाखा**—इसकी पहली उपशाखा पश्चिमी है, जिसमें पश्चिमी, राजस्थानो, गुजराती, और पंजाबी सम्मिलित हैं, जिन्हें न्यूनाधिक साढ़े सात करोड़ मनुष्य बोलते हैं। दूसरी उपशाखा उत्तरी है, जिस में पश्चिमी पहाड़ी, मध्यवर्ती पहाड़ी और पूर्वी पहाड़ी हैं, जिन्हें लगभग ३ करोड़ मनुष्य बोलते हैं।

लगभग ५ करोड़ भारतवासी द्राविड, तामील, तेलगू, कनारी, मलयालम, इङ्गलिश और अन्यान्य अनार्य भाषाओं के बोलने वाले हैं।

हिन्दी की उत्पत्ति

ऊपर के लेख से आप भलीभाँति समझ गये होंगे कि 'प्राकृत' भाषा से भिन्न भिन्न प्रान्तीय भाषाओं की शनैः शनैः सृष्टि हुई। धीरे धीरे सब प्रान्तों के मनुष्यों के मेल जोल होते रहने से उन भाषाओं में भी किञ्चित् किञ्चित् परिवर्त्तन होते रहे, युक्तप्रान्त, बिहार-बुन्देल खण्ड, बघेल खण्ड, छत्तीस गढ़ और मध्य भारत की भाषाओं में संमिश्रण होकर हिन्दी भाषा की उत्पत्ति हुई। इस हिन्दी में बहुतेरे शब्द संस्कृत और प्राकृत के अपभ्रंश होकर मिल गये। आगे कतिपय शब्द संस्कृत, प्राकृत और हिन्दी के दिये जाते हैं जिन पर ध्यान देने से आप को अत्यन्त सरलता पूर्वक इस बात की प्रतीति हो जायगी कि उच्चारण की सुगमता करने से ही संस्कृत से प्राकृत और प्राकृत से हिन्दी की उत्पत्ति हो गयी है:—

संस्कृत	प्राकृत	हिन्दी
स्त्री	इत्थी	इसतिरी
दृष्टि	दिट्ठि	दीठि
श्रेष्ठ	सेट्ठ	सेठ
मार्ग	मग्ग	मग
चन्द्र	चन्द	चाँद
पुस्तकम्	पोत्थओ	पोथी

संस्कृत	प्राकृत	हिन्दी
मेघ	मेह	मेघ वा मेह
क्लेश	कलेस	कलेस
स्नेह	सिणेह	सनेह
भिक्षु	भिक्खु	भिखारी
धर्म	धम्म	धरम
पुरुष	पुरिसो	पुरुख
ग्राम	गाम	गाँव
सहस्र	सहस्स	सहस
मुहूर्त्त	मुहुत्त	महूरत
वर्ष	बस्स	बरस
पुनः पुनः	पुनप्पुन	पुनि पुनि
वाणिज्य	बणिज्ज	बानिज

बौद्धमत जब तक भारतवर्ष में प्रबल रहा तब तक पाली और प्राकृत भी प्रबल रहीं, इनमें बौद्धों के बहुतेरे ग्रन्थ लिखे गये। इस धर्म के ह्रास के अनन्तर क्रमशः प्राकृत से अपभ्रंश होकर हिन्दी शब्दों की सृष्टि हुई। संज्ञापरक शब्दों के अपभ्रंश के साथ ही साथ क्रिया वाचक शब्दों के भी अपभ्रंश होने लगे। अथवा संस्कृत की क्रियाओं से ही बहुतेरी हिन्दी क्रियाओं की सृष्टि की गयी। जैसे:—

संस्कृत क्रिया	हिन्दी क्रिया
पठति	पढ़ता है
चलति	चलता है
हसति	हँसता है
कूर्दते	कूदता है
खादति	खाता है
जमति	जीमता है
आचमति	आचमन करता है
पिबति	पीता है
याति	जाता है
पाति	पालता है
दर्शयति	दिखाता है। इत्यादि

इस प्रकार संस्कृत वा प्राकृत की संज्ञा और क्रियाओं से अपभ्रंश हो हो कर हिन्दी की बहुतेरी संज्ञाएँ और क्रियाएँ बनीं। संज्ञा-क्रिया-अव्यय मिला कर

वाक्य रचना हुई। इस प्रकार शनैः शनैः हिन्दी की काया संगठित हुई। विक्रमीय ७ वीं शताब्दी तक की हिन्दी का कोई नमूना नहीं पाया जाता।

तुलसीदास जी के पूर्व की हिन्दी

आठवीं शताब्दी

पीछे के वर्णन में मैंने अत्यन्त स्पष्टता से इस बात का निदर्शन कराया है कि हमारी हिन्दी की उत्पत्ति प्राकृत से हुई। बहुतेरे विद्वानों के मत से विक्रम-संवत के अनुसार लगभग ८ वीं शताब्दी में संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश शब्दों के सहारे हिन्दी-नाषा के अङ्गों की किञ्चित पुष्टि हुई और इसी काल से शनै शनैः इस भाषा में ग्रन्थ-लेखन-कार्य का प्रारम्भ हुआ। सर्व प्रथम

पुण्ड कवि—

ने संवत् ७७० में हिन्दी की में कविता की, जिसका उल्लेख शिवसिंहसरोज में शिवसिंह सेंगर ने किया है। पुण्ड कवि का द्वितीय नाम 'पुष्य कवि' भी ख्यात है। इस कवि ने संस्कृत अलंकारों को हिन्दी दोहों में लिखा है।

नवीं शताब्दी

इस शताब्दी में किन किन कवियों ने हिन्दी भाषा में कविताएँ की इसका ठीक पता किसी ग्रन्थ में नहीं पाया जाता। संवत् ८९० के लगभग

'ब्रह्मभट्ट'

नामक भाट कवि ने महाराज खुमान की प्रशंसा में 'खुमान रासो' ग्रन्थ हिन्दी काव्य में रचा।

बारहवीं शताब्दी

संवत् १००० के लगभग काल में भुवाल कविने श्री मद्भगवद्गीता का हिन्दी में अनुवाद किया। इसके अनन्तर राजा नन्द, जिन बल्लभ सूरि, सर्वज्ञ भूप, मसऊद, कुतुब अली और साईं दान चारणादि कतिपय कवियों ने अपनी कविताओं से हिन्दी की पुष्टि की। १२ वीं शताब्दी तक इन्हीं कवियों का पता मिलता है।

तेरहवीं शताब्दी

इस शताब्दी के पूर्वार्द्ध में 'अकरम फैज' नामक मुसलमान कविने कई ग्रन्थ रच कर हिन्दी की सेवा की। हिन्दी के भाग्य से इसी शताब्दी में प्रसिद्ध कवि

---

* शताब्दी से यहां विक्रम संवत् की शताब्दी समझना चाहिये।

चन्दबरदाई

ने अपनी कविता प्रारम्भ की, जिसे कई विचारों से हिन्दी का आदि कवि कह सकते हैं। इस महाकविने अपने आश्रयदाता महाराज पृथ्वीराज की प्रशंसा में 'पृथ्वीराज रासो' नामक भीमकाय ग्रन्थकी हिन्दी में रचना की, जिसमें विविध छन्दों, रसों, भावों तथा अलङ्कारों के समावेश करके हिन्दी भाषा के अङ्ग-प्रत्यङ्ग—नस नस-नाड़ियों में नवजीवन का सञ्चार किया। इस काव्य-ग्रन्थ में गौण रूप से अनेक वर्णनों के अतिरिक्त मुख्य रूपेण पृथ्वीराज की प्रशंसा तथा युद्ध और मृगयादि के उल्लेख हैं। ग्रन्थ में शृङ्गार-रस की प्रधानता है। आदि काल में हिन्दी की जैसी अवस्था अनुमानगम्य हो सकती है, उसका प्रयोग करते हुए 'चन्द' ने उसमें नवीनता और सरसता लाने का अमोघ प्रयत्न किया है। संस्कृत के शब्दों और छन्दों के बहुतायत से स्वेच्छया व्यवहार किये हैं। 'चन्द' से पूर्व किसी हिन्दी कवि ने त्रोटक, मालिनि, इन्द्रवज्रा एवं अन्यान्य संस्कृत छन्दों का हिन्दी भाषा में प्रयोग नहीं किया था। यत्र तत्र फारसी के शब्द भी इनकी कविता में आये हैं। इसके अतिरिक्त पंजाबी, अवधी, मागधी, शौरसेनी और राजपूतानी शब्द भी बहुलता से व्यवहृत हुए हैं। यहीं से हिन्दी कविता का जीवित-जागृत काल प्रारम्भ होता है। यहां पर पाठकों के मनोविनोदार्थ चन्दबरदाई की कविता के कुछ नमूने दिखलाये जाते हैं:—

॥ त्रोटक ॥

ततथे ततथे ततथे सुरयं। ततथुंग मृंदग धुनिच्चरयं॥
उघरे त्रिघटी हरि विक्कमयं। अमरी रस रीति अनुक्कमयं॥
व्रज बालिन आलिन आलिनपं। इक इक्कति कन्ह विचं व्रजयं॥
निजनित्तंत वत्तंत किं नमनं। दिगपाल मिले❀ कोतिगनं॥

॥ पद्धति ॥

बलवंत सबल पाहार पुंज। कर धरै षग्ग धायौ सु नंज॥
लै पत्र चली कालिका नारि। परवत्त गहै गयदंत भार॥
सिर तीर बुंद बरषंत वारि। सिर नषै वृंद अषित अपार॥
षमों षग्ग वजै करार। घन रहै घाइ जनु मत्त वार॥

अन्य कवि

चन्द बरदाई का पुत्र 'जल्हन' भी कवि था। माननीय मिश्र बन्धुओं ने लिखा है कि इसने अपने पिता द्वारा विरचित अधूरे रासों को पूरा किया, पर यह चन्द के सदृश ओजस्वी कवि नहीं था। महोबे का जगनिक, चन्द का सम सामयिक था। इसने 'आल्हा' छन्दों में अपनी कविता की है। इसके अनन्तर केदार, बन्दर

❀ यहाँ छन्दोभङ्ग है।

बेणा, मोहनलाल द्विज, दामोदर, ज्ञानेश्वर, मुक्ताबाई, नामदेव, नरपति, नल्हसिंह, शार्ङ्गधर, खुसरो और मुल्ला दाऊद प्रभृति कवि, लगभग चौदहवीं शताब्दी के अन्त तक क्रमशः हुए, जिन्होंने अपनी रचना द्वारा हिन्दी के कलेवर की पुष्टि की।

पन्द्रहवीं शताब्दी

यह शताब्दी उत्तरोत्तर महत्व की है। इसमें कई प्रतिभाशाली कवि प्रादुर्भूत हुए। इस शताब्दी के प्रारम्भ में ही

महात्मा गोरखनाथ जी

ने अपनी धार्मिक-कविता का लेखनारम्भ किया। आपकी हिन्दी के साथ प्रीति देख कर बहुतेरे संस्कृतज्ञ पण्डित भी हिन्दी का आदर करने लगे। इन महानुभाव ने बीसियों ग्रन्थ हिन्दी में लिखे। स्थानाभाव से केवल दो पद्य नीचे उद्धृत किये जाते हैं:—

(१)

अवधू रहिया हाटे बाटे रूप बिरष की छाया।
तजि वा काम क्रोध लोभ मोह संसार की माया॥*

(२)

आपु सु गुनरि यनंत विचार। पंडित निद्रा अलप अहार॥

सर्वप्रथम हिन्दी गद्य के लेखक म० गोरखनाथ जी ही हुए हैं।

विद्यापति ठाकुर

लगभग १५ वीं शताब्दी के मध्य-काल में बिहार-प्रान्त के इस प्रतिभाशाली कवि ने अपनी कविता की रचना प्रारम्भ की। मैथिली बोली में विद्यापति जी ने कविता लिखी है, जो हिन्दी का एक अङ्ग ही है। नीचे विद्यापति ठाकुर की एक कविता, बानगीस्वरूप उद्धृत की जाती है:—

कत सुख सार पाओल तुव तीरे। छड़इत निकट नयन बह नीरे॥
कर जोरि बिनमों विमल तरंगे। पुन दरसन हो पुनमति गंगे॥

अन्य कवि

इसी शताब्दी में राजपूताने की मीराबाई ने भी कविता की। इसके अतिरिक्त जयदेव, उमापति, नारायणदेव, भानुदास, सेननाई और भावानन्दादि कई कवियों ने इसी काल में कविताएँ कीं। इसी शताब्दी में त्याग-मूर्ति—

* छन्दोभङ्ग है।

महात्मा कबीर

का आगमन हुआ। इस महापुरुष ने लगभग ४० ग्रंथों की रचना करके हिन्दी में अनेक निगूढ़ तत्वों का संग्रन्थन किया। बाबा कबीर की कविता ओजस्विनी तो नहीं, पर भव्य-भाव-पूर्ण अवश्य हुई है। अनुराग सागर, कबीर की साखी, हंस-मुक्तावली, विवेकसागर, कायापंजी, ज्ञानसागर, बीजक और सतकबीर इत्यादि ग्रन्थ कबीर साहब के अत्यन्तप्रसिद्ध हैं, जो शिक्षा-प्रद होने के अतिरिक्त हिन्दी की दृष्टि से भी उपादेय हैं। आपकी कविता विशेष कर आध्यात्मिक हुई है। उदाहरण :—

जहिया तू मुक्ताहता, तहिया हता न कोय।
छठी तुम्हारी हौं करी, तू कहँ चला बिगोय॥
सब आयो इस एक पै, डार पात फल फूल।
कबिरा पाछे का रहा, गहि पकरे जिन मूल॥
आगे सीढ़ी साँकरी, पीछे चकना चूर।
परदा तर की सुन्दरी, रही धका दै दूर॥

सोलहवीं शताब्दी

इस शताब्दी के प्रारम्भ में रयिदास चर्मकार, नामी भक्त और कवि हुए हैं। दामो, ज्ञान सागर जैन, धर्मदास, चरणदास और अलि भगवान ने अपनी कविता हिन्दी भाषा में रची। इस शताब्दी के उत्तरार्द्ध में

बाबा नानक जी

ने अपनी कविता पंजाबी में प्रारम्भ की। ग्रन्थसाहब, साखी, सुखमनी और अष्टाङ्ग-योग की रचना कर के आपने सुन्दर विचारों का प्रकाशन किया। 'ग्रन्थसाहब' सिक्ख सम्प्रदाय में बड़े आदर की दृष्टि से देखा जाता है।

आगे आपकी रचना के एक दो नमूने दिये जाते हैं:—

(१)

नानक नन्हे ह्वै रहो, जैसे नन्ही दूब।
घास पात सब सूखिगो, दूब खूब की खूब॥

(२)

मन की मनही माँहि रही।
ना हरि भजे न तीरथ सेवे चोटी काल गही॥
दारा, मीत, पूत, रथ, संपति, धन, जन पूर्न मही।
और सकल मिथ्या यह जानो भजना राम सही॥
फिरत फिरत बहुते जुग हार्‌यो मानस देह लही।
नानक कहत मिलत की बिरियाँ सुमिरत कहा नही॥

इसी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हिन्दी के सौभाग्य से साहित्य-नभ-मण्डल के पूर्ण विधु

सूरदास जी

की प्रतिभा प्रतिभासित हुई। 'सूर' श्रीकृष्ण के अनन्योपासक थे और यावज्जीवन कृष्ण-भक्ति-पूर्ण कविता करते रहे। सूरसागर, सूरसारावली, सूररामायण, साहित्य-लहरी और नल-दमयन्ती इत्यादि कई अनुपम ग्रन्थों की रचना इस महाकवि ने की है। सूरदास जी के भजन प्रसिद्ध हैं। इनकी कविता में सरसता, मधुरता और भक्ति का प्रवाह प्रवाहित हुआ। उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा ने प्रौढ़ता धारण की। अलंकारों ने आश्रय पाया। अर्थ-गौरवमें सजीवता आयी। शृङ्गार-रस में भी सरसता का सञ्चार हुआ, भावों में भी भाव आये। वर्णन-शैली का भव्य राज-पथ प्रशस्त हुआ। 'सूर' की कविता ने शुष्क अन्तःकरणों में भी कलकल निनादिनी कालिन्दी के श्याम स्वरूप श्याम-प्रेम का प्रवाह प्रवाहित कर दिया। 'सूर-दास' जी एक भावुक कवि थे। इनके हृदय की आँखें बड़ी ही तेज थीं। जहाँ सूर (सूर्य) की भी गति नहीं, वहाँ सूर (कवि) की दृष्टि पहुँची है। आगे इनकी कविता के कुछ पद्य दिये जाते हैं:—

(१)

लोचन लालच ते न टरै।
हरिमुख ए रंग संग विधे दाधौ फिरै जरै॥
ज्यों मधुकर रुचि रच्यो केतकी कंटक कोटि अरै।
तैसोई लोभ तजत नहिं लोभी फिरि फिरि फिरी फिरै॥
मग ज्यों सहत सहज सरदारन सन्मुख ते न टरै।
जानत आहि हते तनु त्यागत तापर हितहिं करै॥
समुझि न परै कवन सच पावत जीवन जाइ मरै।
सूर सुभट हठ छाँड़त नाहीं काटो शीश लरै॥

(२)

बिन गोपाल बैरिनि भई कुँजै।
जे वै लता लगत तनु शीतल अब भई विषम अनल की पुँजै॥
वृथा बहुत यमुना तट खगरो वृथा कमल फूलनि अलि गुँजै।
पवन पानि घनसारि सुमन दै दधि सुत किरनि भानु भै भुँजै॥
ए ऊधो कहियो माधो सों मदन मारि कीन्हीं हम लुँजै।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरश को मग जोवत अँखियन भई धुँजै॥

(३)

जौ विधि को अपनो कर पाऊं ।
तौ सखि कह्यौ होय कछु तेरो, मनकी साध पुराऊं ॥
लोचन रोम रोम पुनि माँगौं, पुनि पुनि त्रास दिखाऊं ।
एक टक रहैं निमिष नहिं लागैं, पद्धति नयी चलाऊं ॥
कहा करौं यह रूप स्याम घन, लोचन द्वै नहिं ठाऊं ।
एते पै ये निमिष सूर सुनि, यह दुख काहि सुनाऊं ॥

अन्य कवि

सूरदास जी के अतिरिक्त उसी काल में कृष्णदास, परमानन्ददास, कुंभनदास, चतुर्भुजदास, छीतस्वामी, नन्ददास और गोविन्दस्वामी प्रभृति कवियों ने हिन्दी कविताएँ कीं। प्रसिद्ध वैष्णव कवि श्रीगोस्वामी हरिवंशहित ने बड़ी रसीली कविता रची। संवत् १५६३ में 'चन्द' नामक किसी कवि ने हितोपदेश ग्रन्थ बनाया। संवत् १५८७ के लगभग श्रीलालचदास नामक हलवाई ने दशम स्कन्ध भागवत की कथा दोहे चौपाइयों में लिखी।

इसके अतिरिक्त महापात्र नरहरि, स्वामी निपट निरंजन, शाह मुहम्मद, चम्पादेवी और कृपाराम ने हिन्दी में कविताएँ रचीं।

सोलहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध

मलिक मुहम्मद जायसी

ने 'पद्मावत' की रचना की। इस ग्रन्थ में चित्तौरगढ़ के राजा रतनसेन की सहधर्मिणी रानी 'पद्मावती' का वर्णन करते हुए कवि ने अपनी कवित्व-शक्ति का अच्छा परिचय दिया है। 'अखराव' नाम की द्वितीय पुस्तक में ईश्वर-स्तुति इत्यादि लिखी है। इनकी कविता का नीचे नमूना दिया जाता है:—

प्रथम वसंत नवल ऋतु आई। सो ऋतु चैत बैसाख सोहाई ॥
चंदन चीर पहिरि धन अंगा। सेंदुर दीन्ह बिहँसि भर मंगा ॥
कुसुम हार औउ परिमल वासू। मलयागिरि छिरका कलयासू ॥
सौर सुपेती फूलन डासी। धन औ कंत मिले सुखवासी ॥
पिउ सँजोग धन जोवन वारी। भँवर पुहुप मिलि करै धमारी ॥
होय फाग भल चाँचरि जोरी। विरह जराय दीन्ह जस होरी ॥
धन सस सियर तपै पिउ सूरू। नखत सिंगार होंहि सब चूरू ॥

जेहि घर कंता रितु भली, आव वसंता नित्त ।
सुख बहरावै दिवस निसि, दुःख न जानै कित्त ॥

नरोत्तमदास और हरिदासजी ने भी काव्य-ग्रन्थों की रचना की। इसके अनन्तर

सम्राट अकबर

का काल उपस्थित हुआ। यह बादशाह स्वयं हिन्दी कविता का परमप्रेमी और कवि भी था। इसके दरबार के मुख्य सरदार राजा बीरबल अच्छे कवि थे। इसके अतिरिक्त टोडरमल, मानसिंह, तानसेन, फैजी, अबुलफ़ज़ल, नरहरि, रहीम और गंगप्रभृति नामी कवि अकबरी दरबार को साहित्य-मय किये हुए थे। 'गंग' एक उच्चकोटि के कवि थे। 'रहीम' के दोहे बड़े प्रभावशाली और चुटीले होते थे। इसी काल में कतिपय

अन्य कवि

हुए जिन्होंने हिन्दी में कविताएँ रचीं। महात्मा दादूदयाल, श्रीभट्ट, नागरीदास, भगवानहित और रसिक कवि हुए। दादूदयाल जी ने अपना पन्थ भी चलाया, इनके अनुयायी सुन्दरदास जी ने हिन्दी में अच्छी काव्यरचना की। अध्यात्मज्ञान विशेष रूप से लिखा, गुरु की महिमा गायी। अब आगे चलकर हिन्दी का भाग्योदय हुआ। देखिये

सत्रहवीं शताब्दी

एक पुण्यवती शताब्दी हुई। सोलहवीं शताब्दी का अवसान भाग ब्राह्म मुहूर्त्त के समान था। निशान्त में उषाकाल की लालिमा छिटकी और अकस्मात् साहित्य-गगन-मण्डल के मार्त्तण्ड

महात्मा तुलसीदासजी

का उदय हुआ। किसी साहित्यिक ने कहा है:—

सूर सूर तुलसी ससी, उडुगण केसवदास।
अब कै कवि खद्योत सम, जहँ तहँ करहिं प्रकास॥

परन्तु मेरी धारणा है कि सूर-सूर का 'यमक' और तुलसीससी का 'अनुप्रास' मिलाने की लिप्सा से ही कविजी ने ऊपर का बेमेल दोहा कहा है, अन्यथा इसकी रचना यों होती:—

तुलसी रबिसम सूर ससि, उडुगण केसवदास।
अब के कवि खद्योत सम, जहँ तहँ करहिं प्रकास॥

जिस प्रकार चन्द्रमा सब वनस्पतियों में रस प्रदान करता और सूर्य उसे पकाकर हरियाली और जीवनी-शक्ति का सञ्चार करता है उसी प्रकार सूर की

ग्रमीली हिन्दी को तुलसी की कविता ने परिपक्व कर उसे साहित्य शास्त्र का एक सुदृढ़ अंग बना दिया। धन्य वह घड़ी थी, धन्य वह मुहूर्त्त था जब इस महाकवि ने हिन्दी हित को दृष्टिपथ में रखकर हिन्दी में ग्रन्थरचना के महोच्च विचार से लेखनी उठाई। हमारी मातृभाषा हिन्दी वास्तव में अब पुत्रवती हुई। इस महाकवि ने हिन्दी भाषा और हिन्दूजाति को अपनी अमूल्य सेवा के मूल्य से खरीद लिया। अब तक के बीसियों कवियों की रचना मिलकर भी जो रंग न ला सकी, वह रंग अकेले तुलसी की कविता ले आयी। हिन्दी साहित्य के उद्यान में नवीन नवीन कुसुम खिलाये, कठिन गाँठों में भी फल फलाये।

यहां तक मैंने हिन्दी के उस स्वरूप का निदर्शन कराया है, जो तुलसीदास जी के पूर्व था। आगे इस बात का दिग्दर्शन कराना है कि गोस्वामी जी के द्वारा हिन्दी में क्या नवीनता आयी और उनके द्वारा हिन्दी के किन किन अङ्गों की पुष्टि हुई।

नामकरण

मेरी धारणा है कि सब से पूर्व गोस्वामी तुलसीदास जी ने ही हिन्दी का 'भाषा' नाम से नाम-करण-संस्कार किया। 'रामचरित-मानस' के बालकाण्ड के निम्न पद्य इसके प्रमाण में पर्याप्त समझे जायँगे:—

(१) नानापुराणनिगमागमसम्मतंयद्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वान्तःसुखाय तुलसीरघुनाथगाथा-
भाषानिबद्धमतिमञ्जुलमातनोति॥

(२) जे प्राकृत कबि परम सयाने। भाषा जिन हरिचरित बखाने॥
(३) भाषाबद्ध करब मैं सोई। मोरे जिय प्रतीति जेहि होई॥
(४) भाषा भनिति मोरि मति भोरी। हँसिबे जोग हँसे नहिं खोरी॥

गोस्वामी जी के समय में संस्कृत के पण्डित हिन्दी भाषा को तुच्छ-दृष्टि से देखते थे। कई पण्डित तुलसीदास जी को संस्कृत में ग्रन्थ लिखने की प्रेरणा किया करते थे। उनके उत्तर में गोस्वामी जी कहा करते थे:—

(५) का भाषा का संसकृत, प्रेम चाहिये साँच।
काम जो आवै कामरी, का लै करौं कमाँच॥

महाकवि के हृदय में भाव यह था कि वर्त्तमानकाल संस्कृत कविता का नहीं है। संस्कृत में तो बहुतेरे अमूल्य ग्रन्थ प्रस्तुत हैं, जिन्हें लोग पढ़ते नहीं, भाषा में लिखने से इनके विचारों का प्रचार और विस्तार विशेष रूप से होगा। उस समय भाषा की रचना का हिन्दू समाज पर कुछ प्रभाव नहीं था। यही कारण है कि

'राम-चरित-मानस' के बालकाण्ड के आरम्भ में ही गोस्वामीजी ने शिव-पार्वती से बरदान माँगा है:—

(६) सपनेहुँ साँचेहु मोहि पर, जो हरि गौरि पसाउ।
तौ फुर होउ जो कहँउ सब, भाषासनित प्रभाउ॥

कवित्त

गोस्वामीजी कविता मात्र को 'कवित्त' वा 'कवित' कहा करते थे। जैसे:—

(१) निज कवित्त केहि लाग न नीका। सरस होइ अथवा अति फीका॥
(२) कवित रसिक न रामपद नेहू। तिन कहँ सुखद हासरस एहू॥
(३) भाव भेद रस भेद अपारा। कवित दोष गुन विविध प्रकारा॥
(४) कवित विवेक एक नहिं मोरे। सत्य कहौं लिखि कागद कोरे॥
(५) तैसेइ सुकवि कवित बुध कहहीं। उपजहिं अनत अनत छबि लहहीं॥

काव्य-ख्याति

इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं कि गोसाईं जी एक सर्वोच्च महाकवि थे। यह बात दूसरी है कि

कवि न होउँ नहिं बचन प्रबीना। सकल कला सब विद्याहीना॥
आखर अरथ अलंकृत नाना। छन्द प्रबन्ध अनेक विधाना॥
भावभेद रसभेद अपारा। कवित दोष गुन विविध प्रकारा॥
कबित विवेक एक नहिं मोरे। सत्य कहौं लिखि कागद कोरे

इत्यादि वाक्य प्रदर्शनार्थ लिखे हैं, तथापि निपट नम्रता से भी काम बनता न देखकर कवि-सम्राट ने सत्वर ही अपनी कविता की इस प्रकार विशेषता भी कह डाली:—

भनिति मोरि सब गुन रहित, बिस्व विदित गुन एक।
सो विचारि सुनिहहिं सुमति, जिन्के बिमल बिवेक॥

एहि महँ रघुपति नाम उदारा। अति पावन पुरान स्रुति सारा॥
मंगल भवन अमंगल हारी। उमा सहित जेहि जपत पुरारी॥
भनिति विचित्र सुकविकृति जोऊ। राम नाम बिनु सोह न सोऊ॥
बिधु बदनी सब भाँति सँवारी। सोह न बसन बिना बरनारी॥
सब गुन रहित कुकविकृत बानी। राम नाम जस अंकित जानी॥
सादर कहहिं सुनहिं बुध ताही। मधुकर सरिस संत गुनग्राही॥
जदपि कवित रस एकउ नाहीं। राम प्रताप प्रगट एहि माहीं॥
सोइ भरोस मोरे मन आवा। को न सुसंग बड़प्पन पावा॥
धूमउ तजै सहस करुआई। अगर प्रसंग सुगंध बसाई॥
भनिति भदेस वस्तु भलि बरनी। रामकथा जग मंगलकरनी॥

मंगल करनि कलिमल हरनि, तुलसी कथा रघुनाथ की।
गति कूर कविता सहित की, ज्यों परम पावन पाथकी॥
प्रभु सुजस संगति भनिति भलि, होइहिं सुजन मनभावनी।
भवअंक भूति मसान की, सुमिरत सुहावनि पावनी॥

प्रिय लागिहिं अति सबहिं मम, भनिति राम जस संग।
दारु विचारि कि करे कोई, बन्दिय मलय प्रसंग॥
स्याम सुरभिपय विसद अति, गुनद करहि सब हान।
गिरा ग्राम्य सिय राम जस, गावहिं सुनहिं सुजान॥

× × × ×

अपनी कविता की इतनी ज़बरदस्त और क़लमतोड़ वकालत गोस्वामी जी को इसलिये करनी पड़ी कि उस समय के संस्कृताभिमानी हिन्दी को हेय समझते थे। गोस्वामी जी ने भी उनके भय से अपनी भाषा को 'ग्राम्य-गिरा' लिख दिया, फिर कई युक्तियों से उसकी उपादेयता सिद्ध की है। महाकवि ने डरते डरते ही भाषा में रचना की। परिडतमराडली मानेगी अथवा नहीं, जगत में उनकी ख्याति होगी अथवा उपहास, इसका निश्चय नहीं कर पाये। केवल राम-भरोसे लेखनी उठा ली:—

राम सुकीरति भनिति भदेसा। असमंजस अस मोहिं अँदेसा॥
तुम्हरी कृपा सुलभ सोउ मोरे। सिअनि सुहावनि टाट पटोरे॥

महाकवि को अपनी काव्य-ख्याति की लालसा भी कम न थी। आपने लिखा है।

भनिति मोरि सिव कृपा विभाती। ससि समाज मिलि मनहुँ सुराती॥
जो प्रबन्ध बुध नहिं आदर हो। सो स्रम वादि बालकवि करहीं॥
होइ प्रसन्न देहु बरदानू। साधु समाज भनिति सनमानू॥

सो न होइ बिनु बिमल मति, मोहि मति बल अति थोर।
करहु कृपा हरि जस चहौं, पुनि पुनि करौं निहोर॥

वास्तव में काव्य वही है जिसके द्वारा जगत का लाभ हो। जगत को लाभ वही कविता पहुँचा सकती है, जिसकी रचना का बुध-समाज में समादर हो। कुकवि कहाने से गोस्वामी जी भी डर गये:—

सीय बरनि उपमा को देई। कुकबि कहाइ अजस को लेई॥

कविता का उद्देश

प्रत्येक कवि किसी उद्देश से प्रेरित हो कर कविता करता है। गोस्वामी जी ने लिखा है:—

'स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथगाथा—
भाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति'॥

दूसरा कारण आप बतलाते हैं:—

बुध बरनहिं हरि जस अस जानी। करन पुनीत सफल निज बानी॥

गोस्वामी जी जिह्वा की सफलता के लिये ईश-गुण-गान आवश्यक समझते थे, जैसा लिखा है:—

जो नहिं करै ईसगुन गाना। जीह सो दादुरजीह समाना॥

आप तो प्रतिज्ञा कर चुके थे:—

'श्रवणन्हि और कथा नहिं सुनि हौं, रसना और न गैहौं'।

गोसाईंजी अमित सरस्वती को रामचरित्र-सर के अतिरिक्त प्राकृत पुरुषों की भक्तिपरक कवितारूप ताल-तलैया में स्नान कराना पाप समझते थे। जैसा कहा है:—

भगति हेतु बिधिभवन बिहाई। सुमिरति सारद आवति धाई॥
राम चरितसर बिनु अन्हवाये। सो स्रम जाइ न कोटि उपाये॥
कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना। सिर धुन गिरा लाग पछताना॥

इतना सब होते हुए भी गोस्वामीजी ने अपनी कविता में लोकहित की भी उपेक्षा नहीं की। जो रचना केवल परलोकपथ का ही पाथेय है वह सर्वप्रिय वा सर्वहितकर नहीं हो सकती। कविता वही है जिससे अभ्युदय एवं निःश्रेयस दोनों की ही प्राप्ति हो। वास्तव में 'कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरिसम सब कर हित होई' यह वाक्य महाकवि की महती उदारता की सिद्धि करता है। गोस्वामी जीने अपनी कविता से स्वार्थ और परमार्थ दोनों की ही उपलब्धि लिखी है, जो सतसई के निम्न दोहे से प्रगट है:—

दोहा चारु विचारु चलु, परिहरि बाद बिबाद।
सुकृत सीम स्वारथ अवधि, परमारथ मरजाद॥

अर्थ-ज्ञान

शब्द और अर्थ अभिन्नप्राय हैं। वास्तव में कविता के अर्थ-ज्ञान के लिये व्याकरण, काव्य-कला और पूर्ण साहित्यिक बोध की आवश्यकता है। कहने को तो घर घर रामायणी बैठे हैं, पर गोस्वामी जी के पद्य

काव्य कला गतिहीन जे, करता करम न ज्ञान।
तेपि अर्थमगु पगुधरहिं, तुलसी स्वान समान॥

के अनुसार अर्थ करने का अधिकार सब को नहीं है।

हिन्दी में नवीनता

गोस्वामी तुलसीदास जी की कविता में मौलिकता और स्वाभाविकता थी, वे अनुवादक कवि नहीं थे। स्वाभाविक कवि होना पूर्व-जन्म के संस्कारों से संबन्ध

रखता है। गोस्वामी इसे ईश्वर की प्रेरणा कहते थे, जैसा नीचे के पद्यों से प्रकट है:-

सारद दारु नारि सम स्वामी। राम सूत्रधर अन्तरजामी ॥
जेहि पर कृपा करहिं जन जानी। कवि उर अजिर नचावहिं बानी ॥

आप की कविता से हिन्दी में निम्न लिखित नवीनताएँ आईं, जिन से हिन्दी के कृशगातों में बल, शक्ति और ओज का सञ्चार होकर उसके अङ्ग प्रत्यङ्ग की परिपुष्टि हुई।

(१) महाकाव्य की रचना

गोस्वामी जी के पूर्व जितने कवि हुए हैं, उनमें अधिकांश कवि थे, सुकवि थे, महाकवि नहीं। अतः उनके रचित ग्रन्थों को काव्य कहेंगे, न कि महाकाव्य। इतना लिखते हुए हम 'चन्द' और 'सूर' को कदापि नहीं भूल सकते। 'चन्दबरदाई' और 'तुलसीदास जी' की कविता में आकाश-पाताल का अन्तर रहते हुए भी 'चन्द' को आदि महाकवि होने का श्रेय प्राप्त था, है और रहेगा। यदि कोई मनुष्य काल-विचार से शकट के आविष्कर्त्ता को धूम्रयान-निर्माता की अपेक्षा विशेष बुद्धिमान समझे तो उसका दोष जिस प्रकार क्षम्य है, उसी प्रकार यदि कोई साहित्य-समालोचक गोस्वामी जी की अपेक्षा चन्दबरदाई को सुकवि कहे तो उसे ऐसा कहने का अधिकार है। परन्तु तत्त्वतः दोनों महाकवियों में उतना ही अन्तर है, जितना 'चन्द' के नायक 'पृथ्वीराज चौहान' और गोस्वामी जी के चरित-नायक मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र में। यद्यपि चन्दबरदाई द्वारा विरचित 'पृथ्वीराज रासो' एक भीमकाय-ग्रन्थ है और वह गोस्वामी जी से न्यूनाधिक ३०० वर्ष पूर्व का लिखा हुआ है, इसके अतिरिक्त रसों, भावों और अलंकारों से भी परिपूर्ण है तथापि 'साहित्य-दर्पणादि' प्रामाणिक साहित्य ग्रन्थों के प्रतिपादित सिद्धान्तानुसार उसमें महाकाव्य के कई लक्षण संघटित नहीं होते। कविता में भी वह माधुर्य, ओज और प्रसाद नहीं, जो गोस्वामी जी की रचना में है। यदि तुलसीदास जी को यह सुविधा प्राप्त थी, कि उनके पूर्व बहुतेरे कवि हो चुके थे, जिनकी काव्य-शैली से संभव है कि उन्हें किंचित् लाभ भी पहुँचा हो, तो 'चंद' के सम्मुख हिन्दी की प्रारम्भिक दशा होने के कारण शब्दों के तोड़-मरोड़ का मार्ग प्रशस्त था और उसने ऐसा किया भी है। नीचे के उद्धरण से मेरी बात का स्पष्टीकरण हो जायगा :—

भुजंगप्रयात

मरोरंग रेजं ग्रहेरंग रारी। जलं जावकं सोभ पन्नार पारी ॥
हयं छिछ उट्ठी रुधी छिछतारी। हथं बक ऊरुद्ध दुअद्ध पारी ॥
तिनंकी उपम्मा कवीतं कहाई। जलं जावकं पावकं को बुड़ाई ॥

बरदाई ने हिन्दी के शब्दों के भी ऊपर अनुस्वार लगाकर उन पर संस्कृत की खोल चढ़ाई है। गोस्वामी जी की हिन्दी परिमार्जित और उनमें संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्द भी सौष्ठवपूर्ण हैं। सुतराम् साहित्य, धर्म नीति, समाज-नीति, राजनीति, लोकादर्श और परमार्थ सभी दृष्टि से गोस्वामीजी 'चन्द' की अपेक्षा बहुत ही उच्च आसन पर आसीन दृष्टि गत होते हैं। अब रहे सूरदास जी।

इस निर्णय में लेखनी को विकट मार्ग से पार होना पड़ेगा। चन्द्रमा और सूर्य में किसे अधिक महत्व पूर्ण एवं उपयोगी कहा जाय, इसका निर्णय जितना कठिन है उतनी ही क्लिष्ट समस्या सूर और तुलसी की रचना के सम्बन्ध की है। युगल कवियों के चरित नायक भी महापुरुष ही थे। कविता का तो कहना ही क्या? ऐसी दशा में—

को बड़ छोट कहत अपराधू। सुनि गुन भेद समुझिहैं साधू॥

कह कर ही मौन रहना पड़ता है। सूरदास जी निस्सन्देह महाकवि थे। उनकी कविता सरस सुवर्णी, सालंकार, सगुण और स्वाभाविक सरस्वती की धारा के समान धावमान हुई है। पर उसमें कोई विशेष क्रम नहीं, प्रेम और भक्ति के अतिरिक्त सांसारिक व्यवहार में उतनी उपादेय नहीं, जितनी हमारे चरित नायक गोस्वामी जी की।

कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सबकर हित होई॥

के सिद्धान्त को लक्ष्य में रख कर सभी निर्णायक गोस्वामी जी की कविता की उत्कृष्टता को स्वीकार करेंगे, क्योंकि महाकवि सूर ने लोकहित की बातें अत्यल्प कही हैं। शब्द-रचना सरस होते हुए भी पाण्डित्य-पूर्ण एवं क्लिष्ट है। हाँ अलबत्ता,- यदि गोस्वामी तुलसीदास जी श्रीकृष्ण गीतावली न बनाते तो स्यात् सूरदास जी सहृदयता और भावुकता में बाजी मार लेते, क्योंकि 'सूरसागर' में सूर ने प्रेम की प्रतिमा प्रतिबिम्बित कर दी है। गोस्वामी जी की लेखनी अनेक उपयोगी विषयों की ओर अग्रसर हुई है, अतः कहीं कहीं उसमें विशेष सादगी रही है। जो हो; सर्व विचार से सूरदास जी की अपेक्षा गोस्वामी तुलसीदास की रचना को हम आदर्श महाकाव्य कहेंगे।

(२) प्राचीनता का सन्दर्भ

सोने में सुगन्ध अवश्य अलौकिक गुण है। गोस्वामी जी के पूर्व जितने कवि हुए उनमें कुछ ऐसे थे जो अपने आश्रय-दाता का ही यश गान करते रहे, कुछ अनुवादक कवि थे पर अधिकांश संख्या धार्मिक कवियों की थी। महात्मा गोरख-नाथ, श्री दादूदयालु, महात्मा कबीर और बाबा नानक ने अपनी रचना में स्वक-

ल्पित मतों की खिचड़ी पकाई है, उनमें प्राचीनता का लेश भी नहीं। इतना ही नहीं ज्ञानभिज्ञतावश जहाँ तहाँ वेद-शास्त्रों पर भी तीरन्दाजी की है। परन्तु हमारे चरित-नायक ने यत्र-तत्र प्राचीन आर्य-गौरव, आर्य-सभ्यता एवं श्रुति-स्मृतियों की रक्षा की है और उनकी दुहाई दी है। उनके शब्दों और पदों से आस्तिकता और श्रद्धा की धारा बह रही है। जहाँ तहाँ 'कहहिं वेद इतिहास पुराना, और

मुनिन्ह प्रथम हरि कीरति गाई।
तेहि मगु चलत सुगम मोहि भाई॥

की ध्वनि सुन पड़ती है। गोस्वामी जी के किसी भी प्रबन्ध में उच्छृङ्खलता और औद्धत्य का लेश नहीं। सर्वत्र प्राचीनता पूर्ण सन्दर्भ और प्राचीन सद्ग्रन्थों के महत्व-द्योतक लेख पाये जाते हैं। वेदों की महिमा के विषय में यहाँ तक लिखा:—

अतुलित महिमा वेद की, को कहि पावै पार।
जेहि निन्दत निन्दित भयो, विदित बुद्ध अवतार॥

इसी प्रकार वेदान्तादि दर्शनों के पारिभाषिक और सैद्धान्तिक शब्दों एवं पदों को हिन्दी भाषामें लाकर इन महाकवि ने हिन्दी साहित्य के साथ अवर्णनीय उपकार किया है। इतना ही नहीं गोसाईं जीने राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक और धार्मिक निगूढ़ तत्व-रत्नों को—जो संस्कृत साहित्याकर में निहित थे—निकालकर जनता के समक्ष विकीर्ण कर दिया है। आपने अपने ग्रन्थों में शिष्टाचार, शील, नम्रता, पवित्रता, सौहार्द्र, वीरता, सहनशीलता, और पारस्परिक-प्रेम का जैसा आदर्श उपस्थित किया है, वैसा अन्य कोई कवि नहीं कर सका।

(३) क्रमबद्ध-छन्द रचना

गोस्वामी जी की समस्त कृति के, शैली के विचार से, पाँच विभाग किये जा सकते हैं। (१) 'राम चरित-मानस', सर्व-गुण-सम्पन्न होता हुआ भी कथा-वाचकों के विशेष काम का है। इसके द्वारा समाज-सुधार का कार्य भली भाँति किया जा सकता है। (२) 'कवित्त-रामायण' दरबारी ब्रह्म भट्टों और चारणों के लिये विशेष उपयोगी है। (३) 'विनय-पत्रिका' 'गीतावली' और 'कृष्ण गीतावली' सङ्गीत प्रेमियों के लिये विशेष रुचिकर हैं (४) 'रामलला नहछू' स्त्री-समाज के गायन योग्य है (५) 'दोहावली,' 'सतसई' और 'बरवै-रामायणादि' भक्ति, ज्ञान और लोकदृष्टि से भी उपादेय हैं। गोस्वामी जी की कविता की एक यह भी महत्व पूर्ण विशेषता है।

'राम चरित-मानस' की रचना विशेष क्रमबद्ध' है। कथाओं और उपाख्यानों में तो क्रम है ही, छन्दों में भी क्रम पाया जाता है। प्रत्येक काण्ड के प्रारम्भ में कुछ संस्कृत श्लोक दिये हैं। न्यूनाधिक ८-१० चौपाइयों के अनन्तर दोहे और काण्ड

की समाप्ति पर 'हरिगीतिका-छन्द' देकर पुनः एक वा दो दोहे देते गये हैं। गोस्वामी जी के पूर्व संवत् १५२७ में ❀

श्रीलालचदास

नामक कवि ने दशमस्कन्ध भागवत का हिन्दी में पद्यानुवाद किया और चौपाई तथा दोहे का क्रम चलाया, जिसके कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं:—

संवत पन्द्रह सै सताइस जब हीं। समै बीलंब नाम भौ तब हीं॥
राय बरेली उतीम वासा। लालच राम नाम की आसा॥
मास असाढ़ कथा अनुसारी। हरी बासर रजनी उजिआरी॥
करी क्रीपा मोही देहु मुरारी। स्कल संत मीली करौ उपकारी॥
स्कल संत को नावों माथा। जेही बीधी लछुपति पावों नाथा॥
सर्व जीव मों रचना जाकी। कथा रिसाल कहौं मैं ताकी॥
गुन भाग्वत मती अनुसारी। गुरु प्रताप कछु कहौं बीचारी॥
जेही कारन वपु धरे गोसाईं। गोखुल नन्द सुता भौ आई॥
सो चरीत्र सम भाखा गावों। प्रेम भग्ती मती जेही सो पावों॥

अलख अगोचर ठाकुर, सो बीधी गोकुल आव।
बीलकुल सन्त संग हर, जन लाल गुन गाव॥

ऊपर के पद्यों में कितनी अशुद्धियाँ और कितने स्थलों पर छन्दोभङ्ग हैं इसका विवेचन पाठक स्वयं सुगमता से कर लेंगे, उनपर किसी की टीका-टिप्पणी की आवश्यकता नहीं। चौपाइयों की संख्या में भी कवि ने कोई क्रम नहीं रखा है। कहीं कहीं १०-१२ चौपाइयों पर और कहीं ३०-४० चौपाइयों के अनन्तर दोहे दिये हैं।

बारहट नरहरि दास

ने भी दशम स्कन्ध भागवत का संवत १५९० में हिन्दी पद्यों में अनुवाद किया, जिसकी बानगी नीचे दी जाती है:—

आकास जलद अकास। प्रति रंग रंग प्रकास॥
संघट घन नभ घोर। अरु घटा बढ़ि चहुँ ओर॥
दिसि मंत घन सद्दाप। चढ़ि रंग सुरपति चाप॥
बग पंति उज्जेल पानि। प्रति घटा मध्य प्रमानि॥

❀ माननीय मिश्र बन्धुओं ने श्रीलालचदास का कविता काल संवत् १५८७ लिखा है पर 'श्रीमन्नूलाल पुस्तकालय-गया' में जो हस्तलिपि है उसमें संवत् १५२७ लिखा है। मेरा मिश्र बन्धुओं के अन्वेषण पर विशेष विश्वास है।

चहुँ ओर बीजक चमंक। नहिं दुरत नभहिं निसंक ॥
सब रवै शिखर सिलाव। प्रतिमा अनेक प्रभाव ॥
× × × × ×

इस अनुवाद में कवि ने कवित्त, सवैया, हरिगीतिका, दोहा, और पद्धरी इत्यादि छन्दों की रचना की है। कविता अत्यन्त साधारण और छन्द-क्रम रहित है इन रचनाओं से तुलसीदास जी महाराज की रचना से तुलना करना व्यर्थ है। सूर्य प्रतिभा की दीपक, दीप्ति से समता ही क्या? छन्दों का क्रम तो

सूरदासजी

ने भी नहीं रखा है। इनकी रचना में तो भजन ही भजन हैं।

सुतराम् विविध विधि के सुललित छन्दों की रचना और अनेक ग्रन्थों में क्रम-गति के यथावत् प्रतिपालन के विचार से भी गोस्वामीजी सर्वश्रेष्ठ महाकवि थे।

(४) संस्कृत का प्रयोग

विशुद्ध और परिमार्जित भाषा का प्रयोग तो गोस्वामी जी की लेखनी का कुतूहल था। इसके अतिरिक्त कई स्थलों की रचना अत्यन्त मधुर और संस्कृत मिश्रित हुई है। गोस्वामीजी के पुरा एवं पर कालीन किसी कवि ने संस्कृत के शब्दों के प्रयोग इतने बाहुल्य से नहीं किये। 'विनय-पत्रिका' की न्यूनाधिक तृतीयाँश रचना संस्कृत संमिश्रित हैं। उदाहरणार्थ दो पद्य दिये जाते हैं:—

(१)

जयति लक्ष्मणानंत भगवंत भूधर, भुजगराज भुवनेश, भूभारहारी।
प्रलय पावक-महाज्वाल-माला-वमन, शमन-संताप, लीलावतारी ॥
जयति दाशरथि, समर-समरथ, सुमित्रा सुवन शत्रुसूदन, राम भरत बंधो।
चारु-चम्पक बरन, बसन भूषनौ-धरत दिव्यतर, भव्य, लावण्यसिंधो ॥
जयति गाधेय-गौतम-जनक सुखजनक विश्वकंटक-कुटिल-कोटिहंता।
वचन-चय-चातुरी-परसुधर-गर्वहर, सर्वदा रामभद्रानुगंता ॥
जयति सीतेस-सेवासरस, विषयरस निरस, निरुपाधि, धुरधर्मधारी।
विपुल-बलमूल, शार्दूल विक्रम, जलदनाद मर्दन, महावीर भारी ॥
जयति संग्राम-सागर-भयंकर-तरण-रामरहित-करण-वरबाहु-सेतू।
उर्मिलारमण, कल्याण मंगल भवन, दास तुलसी-दोष-दवन-हेतू ॥

(२)

जानकीनाथ रघुनाथ रागादितम-तरणि, तारुण्य तनु तेज धामं।
सच्चिदानंद आनन्द कंदाकरं विश्व विश्रम रामाभिरामं ॥

नील नव-वारिधर सुभग सुभ-कांतिकर पीत कौशेय-बर बसन-धारी।
रत्नहाटक-जटित मुकुट मंडित मौलि भानुसत सद्दश-उद्योतकारी॥
स्रवन कुंडल, भाल तिलक, भ्रूरुचिर अति, अरुन अंभोज लोचन विसालं।
वक्र आलोक्य त्रैलोक्य-सोकापहं, मार रिपु हृदय-मानस-मरालं॥
नासिका चारु, सुकपोल, द्विज वज्र द्युति, अधर बिंबोपमा, मधुरहासं।
कंठ दर, चिबुक बर, वचन गम्भीरतर, सत्य संकल्प सुरत्रास नासं॥
सुमन-सुविचित्र-नव तुलसिका-दलजुतं, मृदुल वनमाल उर भ्राजमानं।
भ्रमत आमोद बस मत्त मधुकर-निकर मधुरतर मुखर कुर्बन्ति गानं॥
सुभग श्रीवत्स केयूर कंकन हार किंकिनी-रटनि कटितट रसालं।
बाम दिसि जनकजासीन-सिंहासनं कनक-मृदु पल्लवित तरु तमालं॥
आजानु भुजदण्ड, कोदण्ड मण्डित बाम बाहु, दक्षिणपाणि बाणमेकं।
अखिल मुनिनिकर सुर सिद्ध गंधर्व वर नमत नरनाग अवनिप अनेकं॥
अनघ अविच्छिन्न सर्वज्ञ सर्वस खलु सर्वतोभद्रदाताऽस्माकं।
प्रणतजन-खेद विच्छेद-विद्या-निपुन नौमि श्रीराम सौमित्रि साकं॥
युगल पद पद्म सुख सद्म पद्मालयं चिह्न कुलिसादि सोभातिभारी।
हनुमंत-हृदि विमल-कृत परम मन्दिर सदा दास तुलसी सरन-सोकहारी॥

(५) विविध प्रान्तीय भाषाओं के प्रयोग

यों तो हिन्दी भाषा ही प्राकृत, सौरसेनी और मागधी प्रमुख भाषाओं से बनी है, तिस पर गोसाईं जी ने अपनी रचना में विशुद्ध संस्कृत और शुद्ध हिन्दी के साथ साथ ग्रामीण भाषा मिलाकर जिस त्रिवेणी की रचना की है, वह आध्यात्मिक एवं मानसिक जगत के निमित्त गंगा, यमुना और सरस्वती की त्रिवेणी से भी विशेष सुखदा तथा शान्तिप्रदा है। कहीं कहीं आपकी कवितारूप प्रवाह-त्रय में फ़ारसी और अरबी भाषाओं के शब्द विचित्र बुलबुले की बहार दिखलाते हैं जिससे इस सिद्धान्त की पुष्टि होती है कि यदि आवश्यकता पड़े और भाषा के स्वरूप एवं सौन्दर्य में कोई विकार न आता हो तो हमें खुशी के साथ विदेशी शब्दों के इस्तेमाल करने का हक़ है। महाकवि ने अपनी कविता में व्रजभाषा, अवधी, बुन्देल खण्डी, मागधी, भोजपुरी और कुछ फारसी तथा अरबी शब्दों के प्रयोग किये हैं। यहाँ हम प्रत्येक की रचना के कुछ उदाहरण देंगेः—

अवधी

भैया कहहु कुसल दुइ बारे। तुम नीके निज नयन निहारे॥
जा दिन ते मुनि गये लिवाई। तबते आजु साँच सुधि पाई॥

भोजपुरी

पठये भरत भूप ननिऔरे। राम मातु मत जानब रौरे ॥
भुजबल विस्व जितब तुम जहिया। धरिहैं राम मनुज तनु तहिया ॥
सठहु सदा तुम मोर मरायल। असकहि गगन पंथ पर धायल ॥

और

हमहिं दिहल करि कुटिल करम चँद मंदमोल बिन डोलारे। इत्यादि ॥

ब्रजभाषा

अब ब्रजवास महरि किमि कीबो।
दूध दह्योउ माखन ढारत हैं हुतो पोसात दान दिन दीबो।
अवनौ कठिन कान्ह के करतब तुम्ह हौ हँसति कहा कहि लीबो ॥
लीजै गाउँ नाउँ लहै रावरो है जग ठाउँ कहूँ है जीबो।
ग्वालि वचन सुनि कहति जसोमति भलो न भूमि पर बादर छीबो ॥
दैअहि लागि कहौ तुलसी प्रभु अजहुँ न तजत पयोधर पीबो।

बुन्देलखण्डी

ए दारिका परिचारिकाकरि पालिबी करुना मई।
अपराध छमिबो बोलि पठयो बहुत हौं ढीठी दई ॥
पुनि भानुकुल भूषन सकल सनमाननिधि समधी किये।
कहि जात नहिं बिनती परसपर प्रेम परि पूरक हिये ॥

मागधी

विनय प्रेम बस भई भवानी। खसी माल मूरति मुसुकानी ॥
प्रभु जानी कैकई लजानी। प्रथम तासु गृह गये भवानी ॥

बंग भाषा

मास दिवस का दिवस भा, मरम न जाना कोइ।
रथ समेत रवि थाकेउ, निसा कवनि विधि होइ ॥
मधुकर कहहु कहन जदि पारो

और

बाली रिपुबल सहै न पारा। इत्यादि

अरबी और फ़ारसी

गनी गरीब राम नयनागर।
जे जड चेतन जीव जहाना।
साहिब गरीब निवाज।

सबकर हित रुख राउर राखे

बड़े बिबुध दरबार ते, भूमि भूप दरबार।

उमरि दराज राज रावरी चहत हों।

असमंजस अस मोहि अँदेसा॥

साहिब सुजान जिन खान हूँ को पच्छ कियो, राम बोला नाम हौं गुलाम राम साहु को।

जैसे काग जहाज को, सूझत और न ठौर। इत्यादि

गोस्वामी जी का गद्य

गोस्वामी जी न तो गद्य के लेखक ही थे और न उस समय तक गद्य-लेखन प्रणाली ही प्रशस्त एवं सुस्थिर हुई थी। केवल राजा टोडरमल (जो गोसाईं जी के मित्र थे) के दो लड़कों के पञ्चनामे में जो किञ्चिन्मात्र गद्य-लेख है, उसके आवश्यक अंश को काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'तुलसी-ग्रन्थावली' से उद्धृत किये देता हूँ:—

पंचनामे की प्रतिलिपि

श्रीजानकीवल्लभो विजयते।

द्विश्शरं नाभिसंधत्ते द्विस्स्थापयति नाश्रितान्।
द्विर्ददाति न चार्थिभ्यो रामो द्विर्नैव भाषते॥१॥
तुलसी जान्यो दसरथहि धरमु न सत्य समान।
रामु तजो जेहि लागि बिनु राम परिहरि प्रान॥२॥
धर्म्मो जयति नाधर्म्मस्सत्यं जयति नानृतम्।
क्षमा जयति न क्रोधो विष्णुर्जयति नासुरः॥३॥

श्रीपरमेश्वर

संवत १६६९ समये कुआर सुदि तेरसीवार सुभ दीने लिपीतं पत्र अनंदराम तथा कन्हई के अंश विभाग पुर्वमु आगे जे आग्य दुनहु जने मागा जे आग्य भै शे प्रमान माना दुनहु जने विदित

तफसील अंश टोडरमलु के माह जे विभाग पदु होत रा—

अंश अनंदराम

मौजे भदैनी मह अंश पाच तेहि मह अंश दुइ, अनन्द राम, तथा लहर-तारा सगरेउ तथा छितुपुरा अंश टोडर

अंश कन्हई

मौजे भदैनी मह अंश पाँच तेहि मह तीनिअंश कन्हई तथा मौजे शिवपुरा तथा नदेसरी अंश टोडर—मलुक हील

मलुक तथा नयपुरा अंश, टोडर मलुक हुज्जती नास्ती, लीषीतं कन्हई जे ऊपर हील हुज्जती नास्ती लिखातं अनंद राम लिषा से सही।
जे उपर लिखा से सही।

साछी रायराम रामदत्त सुत
साछी राम सेनी ऊद्धव सुत
साछी रामसिंह उद्धव सुत
साछी जादो राय गहर राय सुत ।।

इत्यादि।

(आगे साची में इसी क्रम से अनेक नाम आये हैं, जिन्हें विस्तारभय से नहीं लिखा है)

उपसंहार

गोस्वामी जी की हिन्दी के संबन्ध में बहुत कुछ लिखा और कहा जा सकता है। महाकवि का अपनी भाषा पर पूर्ण अधिकार (Command) था। जान पड़ता है कि उनकी सरस्वती सदा उनकी रसना पर नृत्य करती थी। कहने को तो आप अपनी भाषा को ग्राम्यगिरा और भदेस कहते हैं, पर वास्तव में वह विशेष परिमार्जित, परिष्कृत और प्राञ्जल है। हिन्दी साहित्य के भण्डार में आपके ग्रन्थ अमूल्य रत्न हैं आपके उपकार से हिन्दी भाषा तथा हिन्दू जाति सदा ऋणी रहेगी।

(११) व्याकरण और तुलसीदास

किसी भाषा का व्याकरण के साथ अटूट सम्बन्ध है! अथवा यों कहिये कि व्याकरण के विना भाषा ठीक बन ही नहीं सकती। मनुष्य के हृदयांतर्गत भाव किसी भाषा के द्वारा ही दूसरों पर प्रगट किये जा सकते हैं। परन्तु यदि वह भाषा व्याकरण के नियमों से सुसङ्गठित न हो तो श्रोता के हृदय पर किसी दूसरे भाव का ही अंकन हो जाता है। कहने वाले के हृदय में भाव हैं कि "रामने रावण को बाण से मारा"। अब इसी वाक्य को व्याकरण के नियम विरुद्ध विभक्तियों को उलट पुलट कर किसी ने कहा कि "राम को रावण ने बाण से मारा" बस, चलिये सारा इतिहास ही पलट गया। इसी प्रकार व्याकरण के विना साहित्य में नाना प्रकार की गड़बड़ी उपस्थित हो जाया करेगी।

हमारे चरित-नायक साहित्य-शास्त्र के अद्वितीय पण्डित होते हुए व्याकरण का प्रगाढ़ पाण्डित्य रखते थे। हाल में जो उनका जीवन चरित्र रामचरित मानस के नवीन संस्करण के साथ लखनऊ के नवल किशोर-प्रेस में छपा है; उससे सिद्ध होता है कि गोस्वामी जी को उनके दीक्षा गुरु श्रीनरहरि दास जी ने पाणिनि-सूत्र कुछ

दिनों तक पढ़ाये; तदनन्तर उन्होंने काशी में श्री शेष सनातन जी के यहां पन्द्रह वर्षों तक निवास कर व्याकरण, वेद, शास्त्र और पुराणों के अध्ययन किये। रामचरित मानस के प्रत्येक काण्ड के श्लोकों की रचना देखने से इसका पूरा स्पष्टीकरण होजाता है कि गोस्वामी जी व्याकरण के अच्छे ज्ञाता थे। राम चरित मानस अथवा उनके अन्य ग्रन्थों की रचना, संस्कृत और हिन्दी के व्याकरणों के नियमोंसे सुसज्जित और सुसङ्-ठित हैं। इन रचनाओं का पिङ्गल शास्त्र से जहां तक सम्बन्ध है वह अगले शीर्षक में दिखलाया जायगा। यहाँ व्याकरण के कुछ अन्यप्रयोगों पर दृष्टिपात किया जाता है।

(१) पीछे कहा जा चुका है कि गोस्वामी जी संस्कृत व्याकरण के प्रौढ़ पण्डित थे जिसका महाकविने अपनी संस्कृत रचना में ही नहीं, अपितु हिन्दी रचना में भी कहीं कहीं अच्छा निदर्शन कराया है। अयोध्याकाण्ड में नीचे लिखी चौपाई

'लखि हिय हँसि कह कृपानिधानू। सरिस स्वान मघवान जुवानू'॥

में कविराज ने अपनी कवित्व शक्ति के साथ ही व्याकरण की मर्मज्ञता मिलाकर अपूर्व हास्यरसका उद्बोध कराया है। पाणिनि व्याकरण

'श्वयुवमघोनामतद्धिते'

सूत्र से श्वन्—युवन्—मघवन् शब्दों की सिद्धि होती है। अर्थात् जो 'भ' संज्ञक श्वन्, युवन् और मघवन् अङ्ग हैं उनको संप्रसारण हो। इससे वकार को उकार हुआ। जैसे शु उ अन्—शस्। यहाँ 'सम्प्रसारणाच्च' सूत्र से उकार अकार से मिलकर उकार हुआ; जैसे शुनः शुना श्वभ्याम्, यूनः, यूना, तथा मघोनः मघोना आदि शब्द सिद्ध होते हैं। जैसा किसी ने कहा भी है

"अशेषवित् पाणिनिरेकसूत्रे श्वानं युवानं मघवानमाह"

ऊपर के उदाहरणों में मघवान (इन्द्र) को श्वान और युवान का सहवर्गी सिद्ध करते हुए महाकविने अपूर्व छटा दिखलाई है।

रोदति वदति बहु भाँति करुना करति संकर पँह गईं,

यहाँ रोदति और वदति शब्दों में ज्यों के त्यों संस्कृत व्याकरण के अनुसार ही विभक्तियां रखीं हैं। इस प्रकार 'अहमम मलिन जनेषु' पद में 'जनेषु' शब्द बहु वचन सप्तम्यन्त और 'लरौं सुखेन कालःकिन होई' इस पद में 'सुखेन' शब्द में संस्कृत की ही तृतीया विभक्ति के एकवचन का रूप रखा है।

"हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थं कहि जात न सोई॥"
देखि प्रीति सुनि वचन अमोले। एवमस्तु करुणानिधि बोले॥

इन पदों में 'इदमित्थं और एवमस्तु' शब्द संस्कृत मुहावरे के अनुसार ही रखे हैं। सारांश यह कि हिन्दी रचना में भी संस्कृत व्याकरण के अनुसार जहां तहां शब्दों और पदों के प्रयोग किये हैं।

(८) गोस्वामी जी ने अपने ग्रन्थों में संस्कृत के शब्दों के अतिरिक्त अवधी, ब्रजभाषा, बुन्देलखण्डी और भोजपुरी आदि कई भाषाओं के भी प्रयोग किये हैं। परन्तु सभी बोलियों में व्याकरण के नियम लागू रखे हैं। गोसाईं जी के समय में आज कल की गद्य रचना अथवा खड़ी बोली की पद्य रचना की नाईं कर्त्ता के साथ निर्धारित नियमों में भी 'ने' विभक्ति लाने की प्रथा नहीं थी। इसी कारण इन की रचना में कर्त्ता के साथ कहीं विभक्ति का प्रयोग नहीं हुआ, परन्तु क्रियाओं का प्रयोग कविराज ने व्याकरण के नियम के अनुसार ही किये हैं। जैसेः—

सरल सुभाउ राम महतारी। बोली बचन धीर धरि भारी॥
यहि बिधि आइ बिलोकी बेनी। सुमिरत सकल सुमंगल देनी।

पहले पद्य में 'बोली' क्रिया कर्त्ता के अनुसार और दूसरे पद्य में 'बिलोकी' क्रिया कर्म के अनुसार लिखी गई है जो सामयिक व्याकरण के अनुकूल ही हैं।

चले जात मुनि दीन्ह देखाई। सुनि ताड़का क्रोध करि धाई॥
एकहिं बान प्रान हरि लीन्हा। दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा॥

इन पद्यों में 'लीन्हा' और 'दीन्हा' क्रिया को गोस्वामीजी ने प्रचलित नियमों के अनुसार ही एकवचन पुल्लिङ्ग रखा है। कहीं कहीं इन नियमों की अवहेलना कर स्वच्छन्दता से भी काम लिया है। जैसे—

राम बिदा माँगा कर जोरी। कीन्ह प्रणाम बहोरि बहोरी॥
सकल कथा मैं तुमहिं सुनाई। काग देह जेहि कारन पाई॥

प्रथम पद में 'बिदा' शब्द स्त्रीलिङ्ग है, अतः माँगी लिखना उचित था। इसी प्रकार—

प्रश्न उमा के सहज सुहाई। छल बिहीन सुनि शिव मन भाई॥

इस पद्य तथा कई अन्य स्थलों पर महाकवि ने 'प्रश्न' शब्द को स्त्रीलिङ्ग रूप प्रदान किया है।

सादर भरतहिं मिली एक माता। भगिनी मिली बहुत मुसकाता—
में भगिनी के साथ 'मुसुकाता' और—

'गावहिं मंगल मंजुल बानी। सुनि कलरव कल कंठ लजानी।'
में कल कंठ के साथ 'लजानी' शब्द चिन्त्य हैं। इसी प्रकार किसी किसी 'राम चरित-मानस' में—

मर्म बचन सीता जब बोला। हरि प्रेरित लछिमन मन डोला॥
पाठ दिया हुआ है, परन्तु विश्वास नहीं होता कि 'सीता' के साथ 'बोला' पद देकर गोस्वामी जी इस प्रकार का लिङ्ग—विपर्यय करेंगे। अतः

मर्म बचन सीता जब बोली। हरि प्रेरित लछिमन मति डोली॥

पाठ ही समीचीन है।

रघुवर जनम अनन्द बधाई। भँवर तरङ्ग मनोहरताई॥
प्रेम भगति जो बरनि न जाई। सोइ मधुरता सुसीतलताई॥
देहिं असीस परम सुख पाई। फिरे सराहत सुन्दरताई॥

इन पद्यों में कवि ने मनोहरता, शीतलता और सुन्दरता शब्द में—जो स्वयं भाववाचक संज्ञा के रूप में हैं—'आई' प्रत्यय लगाकर भावको भी भाव बना डाला है। इसी प्रकार सुघरताई और मधुरताई इत्यादि शब्दों के भी स्वच्छन्द प्रयोग किये हैं।

अवनिप अकनि राम पगुधारे। धरि धीरज मृदु बचन उचारे॥

इस पद्य में गोस्वामीजी ने संस्कृतकी 'आकर्ण्य' क्रिया को 'अकनि' के रूप में ढ़ाल दिया है। परन्तु उसका स्वरूप पूर्वकालिक क्रिया का ही रखा है।

कर्मकारक की विभक्ति 'को' के स्थान में 'कहँ' और कहीं कहीं केवल 'हिं' का ही प्रयोग किया है। जैसेः—

तब ऋषि निज नाथहिं जिय चीन्हीं। विद्यानिधि कहँ विद्या दीन्हीं॥

इस पद्य में दोनों विभक्तियों के उदाहरण आगये हैं। इसी क्रम से ब्रजभाषा के अन्य कवियों की भाँति करणकारक की विभक्ति 'से' के स्थान में 'ते' लिखते और कहीं कहीं शब्द का केवल बहुवचन रूप देकर तृतीया का प्रयोग कर लेते थे। जैसे—'सरते हत्यो' वा 'सरन्हि मारयो' इत्यादि पदों के प्रयोग। सम्प्रदान कारक में भी 'कहँ' वा 'हिं' का ही व्यवहार करते थे। जैसा

तिन कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं।
वा
तिनहिं कहा अघटित जगमाहीं॥

इत्यादि उदाहरणों में आप प्रत्यक्ष देखते हैं। इसी प्रकार अन्य कारकों की विभक्तियों के प्रयोग अन्यान्य ब्रजभाषा के कवियों की भाँति ही किये हैं।

गोस्वामी जी अपनी कविता लिखते समय व्याकरण के सम्बन्ध में भी बड़े सतर्क और सावधान रहे हैं। लिंगभेद में एक एक मात्रा का ध्यान रखा है। देखिये 'मति' शब्द स्त्रीलिङ्ग और 'वचन' शब्द पुलिङ्ग है अतः कैसी बारीकी से लिखते हैं:—

जो असि मति पितु खायेउ कीसा। कहि अस बचन हँसा दससीसा॥

इसी प्रकार 'सभा' शब्द के स्त्रीलिङ्ग होने के कारण

राम सत्य संकल्प प्रभु, सभा कालबस तोरि।

में 'तोरि' शब्द दिया है।

गीतावली में आप लिखते हैं:—

बैठी सगुन मनावति माता
कब ऐहैं मेरे बाल कुसल घर, कहहु काग फुरि बाता।
दूध भात की दोनी दैहों सोने चोंच मढ़ैहों॥
जब सिय सहित बिलोकि नयन भरि, राम लषन उर लैहों।

इन पद्यों पर आप दृष्टि डालें। 'माता' के साथ 'मनावति', 'बाता' के साथ 'फुरि' और दोनी के पूर्व 'की' कैसी बारीकी लिये हुए पद हैं।

कहीं कहीं अत्यन्त भिन्नधर्मा विजातीय वस्तुओं के बीच एक ही क्रिया देकर गोस्वामीजी ने अपूर्व चमत्कार दिखलाया है। जैसे:—

बेगबल साहस सराहत कृपानिधान, भरत की कुसल अचल लाये चालके।

इस पद में भरत की कुशल और पर्वत के लिये एक ही 'लाये' क्रिया दी है।

(३) गोस्वामी जी को लिपि-वैलक्षण्य प्रसिद्ध है। आप तालव्य 'श' और दन्त्य 'स' दोनों ही के स्थानों में दन्त्य 'स' ही लिखा करते थे। इसी कारण आप के ग्रन्थों में दरसन, दसरथ, कौसल्या, सत्रुघ्न, सतानन्द, संकर, सिव, गनेस और सचा इत्यादि शब्द स्थान स्थान पर पाये जाते हैं। मूर्द्धन्य 'ष' को स्वस्थान एवं कण्ठ्य 'ख' के स्थान में भी लिखा करते थे। उनकी हस्तलिपियों में सर्वत्र 'खल' को 'षल' 'देखी' का 'देषी', 'खग' को 'षग' और 'खिसियान' को 'षिसियान' लिखा पाते हैं। ब्रजभाषा के अन्यान्य कवियों की भाँति मूर्द्धन्य 'ण' को दन्त्य 'न' ही लिखा करते थे। कारन, गनेस, तृस्ना, लषन, भनिति गुनगन, और कृस्न इत्यादि शब्द इन्हीं रूपों में यत्र-तत्र पाये जाते हैं। 'लक्ष्मण' शब्द को लषन लषनु, लछिमन, लछिमनु, लक्खन और लक्खन, कई प्रकार से लिखते हैं। सतसई में तो 'लक्ष मन' के स्थान पर

'उलटे तासी तासुपति, सौ हजार मन सत्थ।

इस पद्य में 'सौ हजार मन' तक लिख डाला। संयुक्ताक्षरों के प्रयोग गोसाईं जी भरसक कम किया करते थे। धरम, करम, बरन भगति, और बघनि इत्यादि शब्द इस उदाहरण में पर्याप्त समझे जायँगे। मन-क्रम-वचन के स्थान में स्वच्छन्दता से ही प्रयुक्त करते गये हैं। कर्म का क्रम क्यों कर हुआ? यह समझ में नहीं आता। ऋषि के स्थान में रिषि, विष्णु के स्थान में बिस्नु, सज्ञान के स्थान में सयान, अज्ञान के स्थान में अयान वा अजान अथवा अजाना-अजानू, और प्रतिज्ञा के स्थान में प्रतिज्ञा, परतिग्या तथा पैज भी व्यवहृत किये हैं। इनके ग्रन्थों में स्वर मध्य ऋ, 'ॠ, ऌ, ॡ और अः' एवं व्यञ्जनों में ख, ङ, ञ, ण, क्ष, त्र और ज्ञ के प्रयोग कहीं नहीं पाये जाते। कई स्थलों पर 'थ' के स्थान में 'ह' तक कर डाला है। जैसे:—

खल अघ अगुन साधु गुनगाहा। ऊपर अपार उदधि अवगाहा॥
में 'गाथा' शब्द को 'गाहा' लिखा है। ऊपर के उदाहरणों में महाकवि के सिर शब्दों के तोड़-मरोड़ का कदापि दोषारोपण नहीं हो सकता, क्योंकि उनकी कविता कई प्रान्तीय बोलियों और प्राकृत की खिचड़ी है। भिन्न भिन्न प्रकार के स्वाद और सुगन्धों का संमिश्रण ही खिचड़ी की विशेषता है। जो लोग इन शब्दों को शुद्धकर आजकल पुस्तकों में भेद डाल रहे हैं, वास्तव में वे गोसाईं जी के साथ घात करते हैं।

(१२) इतिहास और तुलसीदास

पुरावृत्त को इतिहास कहते हैं। इतिहास कई प्रकार के होते हैं। मानवीय इतिहास, पशु जाति का इतिहास, साहित्य का इतिहास एवं सृष्टि का इतिहास, सभी इतिहास के अन्तर्गत हैं। समस्त भूगोल का भी इतिहास होता है। इसी प्रकार किसी देश, प्रान्त, और नगर निवासी अथवा परिवार किंवा व्यक्ति विशेष की चरित्र-चर्चा को भी इतिहास ही कहा गया है। हमारे प्राचीन ग्रन्थों में क्रमबद्ध इतिहास साम्प्रतिक शैली से लिखे हुए नहीं मिलते। यही कारण है कि वैदिक काल का इतिहास तमाच्छादित है। श्रीमद्वाल्मीकि रामायण और महाभारत ये दो ग्रन्थ ऐसे हैं कि जिन्हें इतिहास कहा जा सकता है। पुराणों में भी यत्र-तत्र इतिहास पाये जाते हैं। ब्राह्मणों और उपनिषदों में भी कहीं कहीं गाथा और आख्यायिका की शैली पर इतिहास की कल्पना की जा सकती है।

हमारे चरित्र-नायक प्राकृतिक मनुष्यों की चर्चा भी अपने काव्य में करना नहीं चाहते थे। उनका संकल्प था कि अपने इष्टदेव सीताराम के सम्बन्ध से ही अन्यों की भी चर्चा करेंगे। गोस्वामी जी ने अपने ग्रन्थों में कतिपय देवताओं, राज-पुरुषों, ऋषियों, बानरों, ऋक्षों और राक्षसों के सम्बन्ध में ही जहां तहां उल्लेख किये हैं। जिनका संक्षिप्त वर्णन नीचे किया जाता है।

देवता

कहीं कहीं वन्दना के अभिप्राय से महाकवि ने देवताओं के नामोल्लेख किये हैं। शिवजी को राम की भक्ति का भण्डारी समझ कर सब से उच्चासन प्रदान किया है। शिवजी के ही संबन्ध से पार्वती, गणेश और कार्तिकेय के नाम दिये हैं। सरस्वती का नाम वन्दना के अभिप्राय से ही लाये हैं। वैष्णव होने के कारण विष्णु और लक्ष्मी का वर्णन अनिवार्य था। प्रसंगवशात् ब्रह्मा, ब्रह्माणी, इन्द्र और शची के भी वर्णन किये हैं। अतिशयोक्ति लेख में शेष नागको भी घसीटते गये हैं। पुराणों की भाँति गोस्वामी जी ने भी देवता स्वरूप-निर्णय में नाना प्रकार की कल्पनाओं से

काम लिया है। शेष के आधार पर पृथिवी स्थित है, इस धारणा में शेष का अर्थ नहीं समझा गया है। वैदिक काल में शेष से परमात्मा का ग्रहण होता था।

राजवंश

तुलसीदास ने अपने ग्रन्थों को राम भक्ति से प्रेरित होकर 'स्वान्तः-सुखाय' लिखा है, कुछ इतिहास के अभिप्राय से नहीं। यही कारण है कि आपके ग्रन्थों में ऐतिहासिक क्रम का पाया जाना तो किनारे रहा; रघुकुल की वंशावली भी नहीं पायी जाती। महाराज दशरथ के पिता तक का नामोल्लेख करना आपने उचित नहीं समझा। मैं तो समझता हूँ कि महाराज दशरथ का नाम भी रामचन्द्र के सम्बन्ध से ही आया है, ऐतिहासिक दृष्टि से नहीं। विवाह काल में वंशावली कह कर शाखोचार होता है, वहां भी कविराज ने—

'बर कुँवरि दोउ कर जोरि शाखोचार दोउ कुल गुरु करें'

इतना ही लिख कर अलम् मान लिया है। नीचे वाल्मीकि रामायण के आधार पर मर्यादा पुरुषोत्तम की वंशावली दी जाती है। एक राजा के नीचे दूसरे राजा का नाम है, जो पहले का पुत्र है। सम्भव है कि एक राजा के कई पुत्र हों, परन्तु जो अभिषिक्त हुआ है, उसी का नाम दिया जाता है:—

१ मनु	९ धन्धुमार	१७ असमञ्ज	२५ सुदर्शन	३३ नाभाग
२ इक्ष्वाकु	१० युवनाश्व	१८ अंशुमान	२६ अग्निवर्ण	३४ अज
३ कुक्षि	११ मान्धाता	१९ दिलीप	२७ शीघ्रग	३५ दशरथ
४ विकुक्षि	१२ सुसन्धि	२० भगीरथ	२८ मरु	३६ राम, लक्ष्मण
५ बाण	१३ ध्रुवसन्धि	२१ कुकत्स्थ	२९ प्रशुश्रुक	भरत और
६ अनरण्य	१४ भरत	२२ रघु	३० अम्बरीष	शत्रुघ्न
७ पृथु	१५ असित	२३ प्रवृद्ध	३१ नहुष	
८ त्रिशंकु	१६ सगर	२४ शंखन	३२ ययाति	

इसी क्रमसे आगे राजा जनक की वंशावली दी जाती है:—

१. निमि
२. मिथि वा जनकरी)
३. उदावसु
४. नन्दि वर्धन
५. सुकेतु
६. देवरात
७. वृहद्रथ
८. महावीर
९. सुधृति
१०. धृष्टकेतु
११. हर्यश्व
१२. मरु
१३. प्रतीन्धक
१४. कीर्तिरथ
१५. देवमीढ़
१६. विबुध
१७. महीध्रक
१८. कीर्त्ति
१९. महारोमा
२०. स्वर्णरोमा
२१. ह्रस्वरोमा
२२. सीरध्वज (जनक) और
कुशध्वज

इस वंशका पहला राजा निमि था, जिसका पुत्र मिथि हुआ। इसी मिथि के नाम से मिथिला देश की प्रख्याति हुई है। यही मिथि सब से पहला जनक कहलाया, तबसे उसके सभी वंशज 'जनक' उपाधि से विभूषित होते आये। इस वंश की छठी पीढ़ी में देवरात नामी राजा हुआ था, जिसके राजत्व काल में प्रसिद्ध ऐतिहासिक धनुष बना था, जिसे दाशरथी राम ने तोड़ा। बाईसवीं पीढ़ी के राजा का नाम सीरध्वज था, जो आज केवल 'जनक' नाम से प्रख्यात है। सीरध्वज जनक की दो कन्यायें थीं (१) सीता—जिनका विवाह श्रीराम से हुआ, (२) उर्मिला—जिनका विवाह लक्ष्मण से हुआ था। सीरध्वज का लघु भ्राता कुशध्वज था, जिसकी माण्डवी और श्रुतिकीर्ति नाम की दो कन्याओं से भरत और शत्रुघ्न का विवाह हुआ था।

तुलसीदासजी ने अपने ग्रंथोंमें चारों भाइयों के पुत्रों के नाम तक नहीं दिये। उत्तरकाण्ड में केवल:—

'दुइ सुत सीता सुन्दर जाये। लव कुश नाम पुरानन्ह गाये॥

लिखकर छोड़ दिया। हाँ, अन्य भ्रातृ-त्रय की सन्तान के सम्बन्ध में—

दुइ दुइ सुत सब भाइन्ह केरे। भये रूप गुन सील घनेरे॥

भी लिखने की कृपा की है।

श्रीमद्भागवत के नवमस्कन्ध में जो सूर्यवंश की वंशावली दी हुई है, उसमें श्री भरत के दोनों पुत्रों के नाम तक्ष और पुष्कल तथा श्री लक्ष्मण जी के पुत्रद्वय के नाम अङ्गद और चित्रकेतु एवं श्री शत्रुघ्न के दोनों बालकों के नाम सुबाहु और शत्रुसेन लिखे हुए हैं। यह वंशावली श्रीमद्वाल्मीकि द्वारा लिखित वंशावली की अपेक्षा अत्यन्त सुविस्तृत और ऐतिहासिक दृष्ट्या समुपादेय है।

इसी प्रकार कविराजने राम चरित्र-चर्चा के विचार से ही कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी के भी नाम लिखे हैं। प्रसंगवशात् कौशल्या और सुमित्रा को पूर्ण-मर्यादा-सम्पन्न सिद्ध किया।

जैसे:—

कौशल्यादि नारि प्रिय, सब आचरन पुनीत।
पति अनुकूल प्रेम दृढ़, हरिपद कमल विनीत॥

इत्यादि। परन्तु साथ ही कैकेयी के ओछेपन के प्रदर्शन में कवि-पुंगव ने कोई कसर न रखी है।

काइ कुमति कैकयी केरी। परी जासु फल विपति घनेरी॥
कैकयी कस जनमी जग माँझा। जो जनमी तब भइ किन बाँझा॥

इत्यादि पदों से उसकी लघुता दिखलाई है। परन्तु सहृदयता यह है कि दूसरी चौपाई को भरत के मुख से पश्चात्ताप स्वरूप में कहलवाया है। जनक के नाम के साथ ही इनकी सहधर्मिणी सुनयना का भी वर्णन किया है। रामावतार के प्रसंग—

कश्यप अदिति तहाँ पितुमाता। दशरथ कौशिल्या विख्याता॥

में कश्यप और अदिति के नाम मात्र दिये हैं। इसी प्रकार कुछ विस्तार के साथ मनु-सतरूपा, उत्तानपाद प्रियव्रत और ध्रुव की कथा दी है। सत्यकेतु राजा के पुत्र भानुप्रताप और अरिमर्दन की कथा लिखते हुए भानुप्रताप की गाथा विस्तार से लिखी है। इस कल्पित कथा में उसके मन्त्री धर्मरुचि की भी चर्चा की है।

पार्वती के पिता हिमालय और माता मैना की कथा को महाकवि ने विस्तृत और विशद रूप में लिखा है। राम परशुराम के संवाद—

सहसबाहु भुज छेदन हारा। परसु बिलोकु महीप कुमारा॥

में सहस्रबाहु का नाममात्र आया है। यतः इतिहास का विषय गोस्वामी-जीका उल्लेख्य नहीं था, अतः बीच बीच की कथाओं को वे संक्षिप्त करते गये हैं। कहीं कहीं आपने संक्षेप का कारण भी लिख दिया है:—

यह इतिहास सकल जग जाना। ताते मैं संक्षेप बखाना॥

ऋषि

रामचरित-मानस अथवा तुलसीकृत अन्यान्य ग्रन्थों में राम के संबन्ध में ही बाल्मीकि, वशिष्ठ, याज्ञवल्क्य, भरद्वाज, नारद, अगस्त्य; सुतीक्ष्ण, विश्वामित्र और परशुराम प्रभृति ऋषियोंके नाम और उनकी कहीं कहीं संक्षिप्त कथायें भी लिखी हैं। क्वचित् गाधि, यमदग्नि, पुलस्त्य, गौतम, व्यास, शुक, और सनकादि के नाम भी आये हैं। सांख्यशास्त्र के प्रणेता कपिल मुनि के सम्बन्ध से उनके पिता कर्दम मुनि और माता देवहुति के नाम दिये हैं। अयोध्याकांड में मन्थरा और कैकेयी के वार्तालाप में दृष्टान्त रूप से कश्यपमुनि की दो स्त्रियों (कद्रू और विनिता) के नाम इस प्रकार ले आये:—

कद्रू बिनितहिं दीन्ह दुख, तुमहिं कोसिला देव।
भरत बन्दि गृह सेइ हैं, लखन राम कर नेव॥

पार्वती की तपस्या के वर्णन में वेदशिरा मुनि का नाम मात्र आया है:—

वेदशिरा मुनि आइ तब, सबहिं कहा समुझाइ।
पारबती महिमा सुनत, रहे प्रबोधहिं पाइ॥

ऋषि पत्नियों में

अरुन्धती अरु अग्नि-समाऊ। रथ चढ़ि चले मुदित मुनिराऊ॥

पद्य लिख कर केवल वशिष्ठ की स्त्री अरुन्धती का नाम दिया है। अरण्य-काण्ड में महर्षि अत्रि की धर्मपत्नी अनुसूया के मुख से महारानी सीता को पातिव्रत-धर्म का उपदेश श्रवण कराया है। शिला-शाप-मोचन के प्रकरण में गौतम की स्त्री अहल्या का नामोल्लेख किया है।

बानर-जाति

रामायण की बानर जाति क्या है? यह एक विवादग्रस्त विषय है। अवतार वादी गोस्वामी तुलसीदास जी ने 'राम चरित-मानस' में लिखा है कि राक्षसों के अत्याचार से पीड़ित होकर पृथिवी गोरूप धारण कर ब्रह्मा के पास गयी और अपना सारा दुःख उनसे कह सुनाया। ब्रह्मा भी अपने को असमर्थ समझकर विष्णु के पास जाने को सोचने लगे। ब्रह्मा जी इस निश्चय तक नहीं पहुँच सके कि विष्णु कहाँ मिलेंगे। किसीने सम्मति दी कि बैकुण्ठ में विष्णु से भेंट होगी और कोई कहता था कि क्षीर-सागर में वे मिलेंगे! ब्रह्मा के साथ देव-वृन्द भी था, जिसमें शिव जी भी विद्यमान थे। शिव जी महाराजने ब्रह्मा से कहा:—

हरि व्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम ते प्रगट होहिं मैं जाना॥
देस काल दिसि बिदिसिहुँ माहीं। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं॥
अग जग मय सब रहित बिरागी। प्रेम ते प्रभु प्रगटै जिमि आगी॥

शिवजी की उक्ति को मान कर ब्रह्मा जी ने विष्णु की प्रेम-पूर्वक स्तुति की। विष्णु जी ने देवों और पृथिवी को भयभीत समझ कर आकाशवाणी द्वारा निम्न सूचना दी:—

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेशा। तुम्हहिं लागि धरिहउँ नर-वेशा।
असंन्ह सहित मनुज अवतारा। लेइहउँ दिनकर-बंश उदारा॥
कस्यप अदिति महातप कीन्हा। तिन कहँ मैं पूरब बर दीन्हा॥
ते दशरथ-कौसल्या-रूपा। कोसलपुरी प्रगट नर-भूपा॥
तिन्हके गृह अवतरिहउँ जाई। रघुकुल तिलक सुधारिउ भाई॥
नारद बचन सत्य सब करिहउँ। परम सक्ति समेत अवतरिहउँ॥
हरिहउँ सकल भूमि गरुआई। निर्भय होउ देव समुदाई॥
गगन ब्रह्म-बानी सुनि काना। तुरत फिरे सुर हृदय जुड़ाना॥
तब ब्रह्मा धरनिहि समुझावा। अभय भई भरोस जिय आवा॥

दोहा—निज लोकहि बिरञ्चि गे, देवन्ह इहइ सिखाइ।
बानर-तनु धरि धरि महि, हरि पद सेवहु जाइ॥

गये देव सब निज निज धामा। भूमि सहित मन कहँ विश्रामा ॥
जो कछु आयसु ब्रह्मा दीन्हा। हरषे देव बिलम्ब न कीन्हा ॥
बनचर देह धरी छिति माँहीं। अतुलित बल-प्रताप तिन्ह पाहीं ॥
गिरि-तरु-नख आयुध सब बीरा। हरि मारग चितवहि मतिधीरा ॥
गिरि कानन जहँ तहँ मही पूरी। रहे निज निज अनीक रुचि रूरी ॥
यह सब रुचिर चरित मैं भाखा। अब सो सुनहु जो बीचहि राखा ॥

× × × ×

ऊपर के पद्यों से पाठकों को पता चलेगा कि ब्रह्माजी के निदेशानुसार ही देवताओं ने पृथिवीतल में बानर के विग्रह धारण किये थे। इसी कथा के आधार पर ही गोसाईजीने समस्त ग्रन्थों में तदनुकूल ही बानरों के चरित्र का संग्रन्थन किया है। वाल्मीकि-रामायण और अध्यात्म रामायण भी इस शैली से शून्य नहीं। यहाँ पर 'रामचरित-मानस' के अन्य लेखों के साथ उक्त आख्यायिका का मिलान किया जाता है। प्रसिद्धि है कि देवताओं की संख्या ३३ कोटि है। यदि सब देवों ने बानर के शरीर धारण किये हों तो कुछ काल के लिये तो अवश्य ही देव-योनि का अभाव मानते हुए बानरों की संख्या अधिकाधिक ३३ करोड़ मानी जायगी। अब देखना है कि बानर कुल कितनी संख्या में थे। युद्ध-कांड में स्वयं शिव जी महाराज साक्षात् प्रत्यक्ष-साक्षी (Eyewitness) के स्वरूप में महारानी पार्वती से कह रहे हैं:—

'बानर कटक उमा मैं देखा। सो मूरख जो किय चह लेखा ॥'

आपके कथनानुसार बानरों की गणना गणित से गम्य नहीं। स्वयं गोस्वामीजी ने 'शुक' के मुख से रावण को संवाद दिलवाया है:—

'अस मैं स्रवन सुना दसकन्धर। पदमु अठारह यूथप बन्दर ॥'

यहाँ अट्ठारह पद्म तो सेनापति बानर थे, सेना की संख्या वतलाने की इच्छा करने वाला तो अवश्य शिवजी के शब्दों में मूर्ख है।

इसके अतिरिक्त 'नारद-मोह' की गाथा में भी गोसाई जी ने शाप देते समय विष्णु के प्रति नारद के मुख से कहलाया है :—

कपि आकृत तुम कीन्ह हमारी। करिहैं कीस सहाय तुम्हारी ॥

इन्हीं सब स्वर्ग-पाताल की ग्रन्थियों से मर्यादा पुरुषोत्तम के युद्ध सहायकों को 'बानर' लिखा गया है। परन्तु ऋक्षों का समाधान वहाँ भी नहीं पाया जाता!

इस कथा से बानरों के संबंध में जिनका समाधान हो गया हो, उनके [लि]ये आगे कुछ भी लिखने की आवश्यकता नहीं, परन्तु पुरातथ्यान्वेषियो को कदापि [शा]न्ति नहीं मिल सकती।

बानर जाति बन्दर थी अथवा मनुष्य? यह प्रश्न हमारे सामने अभीतक ज्यों [का त्य]ों है। नीचे इस संबन्ध में कुछ विवेचन किया जाता है।

[१] दण्डकारण्य में—

मनुष्यों की एक जाति बसती है जो जाति ही 'बानर' नाम से प्रसिद्ध है। त्रेता युग में 'हनुमान' नाम के परम पराक्रमी महा पुरुष हुए थे जिन्होंने बनचारी मर्यादा पुरुषोत्तम राम की आपत्ति-काल में प्राण-पण से सहायता की थी। मद्रास प्रान्त में विकट बन के अन्दर 'रत्नपुर' नामक ग्राम में एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण परिवार बसता था, जिसमें 'प्रह्लाद विद्याधर' नामक एक महा पुरुष का जन्म हुआ, जिनके पुत्र का नाम 'पवन विद्याधर' था। हमारे प्रसिद्ध ऐतिहासिक वीर-पुङ्गव 'हनुमान' इन्हीं पवन विद्याधर जी के पुत्र थे। इनकी माता का नाम श्रीमती अंजनी देवी था, जिनका 'हनुपुर' नामक ग्राम में नानिहाल था। इसी हनुपुर ग्राम में अंजनी माता ने एक नर-केसरी का प्रसव किया, जिसका ग्राम से सम्बद्ध होता हुआ 'हनुमान' नाम पड़ा। अब बाल्मीकि की रचना से मुझे सिद्ध करना है कि वास्तव में वीराग्रगण्य हनुमान जी मनुष्य थे, न कि बन्दर। देखिये किष्किन्धा काण्ड से कतिपय श्लोक उस प्रसङ्ग से उद्धृत किये देता हूं, जहां सुग्रीव के दूत होकर हनुमान जी राम-लक्ष्मण के सन्निकट गये हैं:—

तमभ्यभाष सौमित्रे सुग्रीव सचिवं कपिम्।
वाक्यज्ञं मधुरैर्वाक्यैः स्नेहयुक्तमरिन्दमम्॥
नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः।
नासामवेदविदुषः शक्यमेवं विभाषितुम्॥
नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा-श्रुतम्।
बहु व्याहरतानेन न किञ्चिदपशब्दितम्॥
न मुखे नेत्रयोश्चाऽपि ललाटे च भ्रुवोस्तथा।
अन्येष्यपि च सर्वेषु दोषः संविदितः क्वचित्॥
अविस्तरमसंदिग्धमविलम्बितमव्यथम्।
उरस्थं कण्ठगं वाक्यं वर्तते मध्यमस्वरम्॥
संस्कारक्रमसम्पन्नामद्भुतामविलंविताम्।
उच्चारयति कल्याणीं वाचं हृदयहर्षिणीम्॥
अनया चित्रया वाचा त्रिस्थानव्यञ्जनस्थया।
कस्य नाराध्यते चितमुद्यतासेररेरपि॥

किष्किन्धा काण्ड में यह वार्ता आयी है। सुग्रीव के मंत्री हनुमान जहां राम लक्ष्मण के पास मैत्री का सन्देश लेकर आये हैं वहां श्रीमान् रामचन्द्र जी ने अपने लघुभ्राता से हनुमान का परिचय दिया है। कहते हैं कि हे लक्ष्मण! स्नेह से भरे हुए, अरिन्दम तथा वाक्य रचना जानने वाले सुग्रीव के इस मंत्री ने मधुर वाक्यों द्वारा जैसा भाषण किया है वैसा भाषण बिना ऋक्, यजु और साम वेद जाने कोई

नहीं कर सकता अर्थात् यह वदे-त्रय का मर्मज्ञ है। निस्सन्देह इसने अनेक बार व्याकरण का अध्ययन किया है, क्योंकि बहुत देर तक वार्तालाप होने पर भी कहीं इसने अपभ्रंश शब्द का व्यवहार नहीं किया। बोलते समय इसके मुख पर, नेत्रों में, ललाट पर, भ्रुवों और अन्य अंगों में भी कहीं दोष विदित नहीं होता। न इसके शब्द संक्षिप्त होते, न सन्दिग्ध, न विलम्ब से उच्चारण होता और न सुनने वाले को व्यथा होती है। यह हृदय तथा कण्ठ में प्राप्त हुए वाक्य को मध्यम स्वर से बोलता है। और यह संस्कार के क्रम से सम्पन्न, अद्भुत भाषण करनेवाला, विलम्ब दोष से रहित और हृदय हर्ष प्रदायिनी कल्याणी वाणी का उच्चारण करता है। तीन स्थानों में उत्पन्न होने वाली ऐसी विचित्र वाणी के श्रवण से किसका चित्त वशीभूत नहीं होता ? चाहे तलवार उठाया हुआ शत्रु भी क्यों न हो ?

पाठक उपर के वर्णन को पूर्णध्यान से पढ़ें तो यह भली भाँति झलक जाता है कि रामचन्द्र ने हनुमान के जिन गुणों के वर्णन किये हैं, उनमें एक गुण भी बन्दर में नहीं पाया जाता। बन्दरों में राजा होना, मंत्री रखना, मैत्री के निमित्त संवाद भेजना आदि व्यवहार नहीं पाये जाते। चारों वेदों का ज्ञाता, व्याकरण का अगाध विद्वान् और शब्द शास्त्र पारंगत बन्दर कहीं पाया जाता है ?

यह तो हनुमान का वर्णन हुआ। अब देखिये वाली जहाँ श्रीराम चन्द्र से युद्ध करने चला है वहाँ का लेख:—

ततः स्वस्त्ययनं कृत्वा मंत्रविद्विजयैषिणी।
अन्तः पुरं सहस्त्रीभिः प्रविष्टा शोकमोहिता॥

अर्थात्-विजय चाहती हुई वेद मंत्रों को जानने वाली तारा स्वस्ति वाचन कर के शोक से मोहित स्त्रियों के संग अन्तःपुर में लौट आयी।

यह प्रकरण सज्जनों के विचार करने योग्य है कि तारा यदि बन्दरी होती तो मंत्रवित् उसका विशेषण कदापि नहीं होता और वह स्वस्त्यन कभी नहीं कर सकती थी।

अब बाली के सम्बन्ध में उल्लेख है कि जब रावण बाली के यहाँ गया और पूछा कि बाली कहाँ है ? तब द्वारपालों ने उत्तर दिया:—

चतुर्भ्योऽपि समुद्रेभ्यः सन्ध्यामन्वास्य रावण।
इदं मुहूर्त्तमायाति वाली तिष्ठ मुहूर्त्तकम्॥

अर्थात् हे रावण ! मुहूर्त्त मात्र यहाँ ठहर जाओ बाली समुद्रतट पर संध्या करने गया है वह एक मुहूर्त्त में आ जाता है।

बिचारने की बात है कि यदि बाली सचमुच बानर (बन्दर) होता तो सन्ध्योपासन करने के लिये समुद्रतट पर क्यों जाता ?

आगे किष्किन्धा काण्ड के पञ्चदश सर्ग में बाली का प्रेत संस्कार, वेदानुकूल अन्त्येष्टि और उदक कर्म का विधान वर्णित है।

ततोऽग्निं विधिवद्दत्वा सोऽपसव्यं चकार ह।
पितरं दीर्घमध्वानं प्रस्थितं व्याकुलेन्द्रियः॥
संस्कृत्य वालिनं तं तु विधिवत्प्लवगर्षभाः।
आजग्मुरुदकं कर्तुं नदीं शुभजलां शिवाम्॥

अर्थात्—इसके पश्चात् उस व्याकुलेन्द्रिय अंगद ने बड़ी दूर जाकर पिता का यथाविधि अग्न्याधान कर के प्रदक्षिणा की। इस प्रकार वे सब बाली का बिधिवत् संस्कार करके सुन्दर शुभजल वाली नदी पर उदक कर्म (स्नानादि) के लिये आये।

विचारशील पाठक समझ गये होंगे कि हनुमान, सुग्रीव, बाली और अंगदादि सब सभ्य मनुष्य थे न कि बानर (शाखामृग)।

पूर्व लिखा जा चुका है कि दाक्षिणात्य में मनुष्यों के ही भेद विशेष से बानर नाम की एक जाति बसती थी। जिनके वंशज अद्यावधि विद्यमान हैं। ये हनुमानादि इसी जाति के थे। हमारे संस्कृत साहित्य में एक व्यवहार-प्रथा चली आती है कि व्यक्ति वा जाति विशेष के निमित्त जो शब्द व्यवहृत होता है उसको किसी अन्य अर्थ में भी आये हुए पर्याय वाचक शब्दों को स्थानान्तर कविजन प्रयोग में लाने लगते हैं। अब प्रकृत बानर शब्द को ही लीजिये। बानर शब्द कहीं जाति विशेष के लिए आया। बानर शब्द (बन्दर) के अर्थ में भी आता है।

कवियों ने करामात क्या की कि जाति विशेष के अर्थ में भी बानर (बन्दर) के पर्याय वाचक हरि, प्लवग, प्लवंग, वर्वर, कीश, कपि, शाखामृग, वलीमुख एवं मर्कट शब्दों के प्रयोग करने लगे। यही कारण है कि बानर (मानवीय जाति विशेष) वंशज हनुमान बन्दर समझे गये। बस क्या था; चित्रकारों ने लम्बी लूम लगा दी। बड़ी दुर्दशा तो इनके पिता की हुई। पवन विद्याधर इनके पिता का नाम था। कवियों ने पवन के स्थान में मरूत, वायु, समीर, प्रभंजन, मारुत और वात इत्यादि शब्दों के प्रयोग करके पवन देव को 'हवा' कर दिया। पुराणों ने वायु और अंजनी की आख्यायिका लिखकर कमाल में भी जमाल डाल दिया। इस प्रकार जगत में नाना प्रकार के भ्रम उत्पन्न हो गये। हिन्दी भाषा में भी 'दशरथ' का अनुवाद 'एकशून्यरथ' और 'हिरण्याक्ष' का शब्दान्तर 'कनक लोचन' हाटक लोचन और स्वर्णाक्ष लिखे गये। महाराज इक्ष्वाकु के वंश में 'अंशुमान' एक अत्यन्त प्रतापी राजा हो गये हैं। सूर्य के पर्याय वाचक शब्दों में रवि, भास्कर, अर्क, तरणि, दिवाकर, विभाकर, भानु, हंस और सविता इत्यादि के समान ही अंशुमाली तथा अंशुमान् शब्द भी आते हैं। कवियों की असीम अनुकम्पा से अंशुमान राजा सूर्य बन गये और रामादि सब के सब सूर्य वंशी कहलाने लगे। श्री मद्भागवत में

'आदित्य' नाम के राजा से इस वंश की वृद्धि लिखी है। जो हो वह 'आदित्य' भी व्यक्ति विशेष का ही वाचक है, न कि सूर्य का। इसी प्रकार योगिराज श्रीकृष्ण भगवान चन्द्रवंशी प्रसिद्ध हुए। श्रीमद्भागवत स्कन्ध ९ अ० १४ में वंशावली वर्णन करते हुए विष्णु की नाभि से कमल, कमल में ब्रह्मा, ब्रह्मा से अत्रि, अत्रि से 'सोम' नामक राजा की उत्पत्ति लिखी है। कवियों ने इस राजा के वर्णन में 'सोम' का पर्यायवाचक 'चन्द्र' और 'इन्दु' इत्यादि लिखकर इसे चन्द्रमा (उपग्रह) बना डाला तदुपरान्त सोम राजा के सभी वंशज 'चन्द्रवंशी' प्रसिद्ध हो गये !

'कवयः किन्न कुर्वन्ति,

गोसाईं जी ने भानुप्रताप की कथा को स्वरचित 'राम चरित-मानस' में विस्तार के साथ लिखा है। प्रसङ्ग वशात् और छन्द बैठाने के लिये देखिये—

तासु समीप गवन बन कीन्हा। यह प्रताप रवि तब तेहि चीन्हा ॥
नाम तुम्हार प्रताप दीनेसा। सत्य केतु तब पिता नरेसा ॥

इन पद्यों में 'भानु' के पर्याय वाचक 'रवि' 'दिनेश' शब्दों के प्रयोग किये हैं। इसी प्रकार 'मेघनाद' नाम को—

' वारिदनाद जेठ सुततासू '

पद्य में 'वारिद नाद' और कहीं कहीं 'घननाद' एवं 'जलदनाद' भी लिखते गये हैं।

महाराज रामचन्द्र की वन-यात्रा में गोमती नदी मिलती है वहाँ लिखते हैं:—

'सई उतारि गोमती नहाने'।

परन्तु महाराज स्वायम्भुव मनु-शतरूपा के वन-यात्रा प्रसङ्ग में:—

'पहुँचे जाइ धेनुमति तीरा। हरखि नहाने निर्मल नीरा'।

लिखते हुए गोसाईं जी ने 'गोमती' को 'धेनुमती' लिख दिया' मैं समझता हूँ कि 'गोस्वामी' जी को 'धेनुस्वामी' भी कहना असंगत नहीं होगा।

ऊपर के उद्धरणों से पाठको को कवियों की करामात का कुछ पता चला होगा और इससे 'बानर-जाति' की जो दुर्गति कवि-समाज ने की है, वह समझ में आ गया होगा। अब देखिये:—

महाराज दशरथ का सखा जटायु पक्षी बन गया। जटायु और संपाती दो भाई थे जिनके पास पक्षी के आकार के आकाशयान थे, जो उड़ते थे। सहचारी अर्थ में जटायु और सम्पाती ही पक्षी लिखे जाने लगे और पीछे लोग सचमुच उन्हें पक्षी ही समझ गये। जटायु ने रावण के साथ आकाश में ही उस समय युद्ध किया था, जब वह (रावण) सीता को हरण कर रथ पर लिये जा रहा था। जटायु इसी युद्ध में मारा गया और मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी महाराज ने उसका विधिवत् अग्निदाह किया।

एवमुक्त्वा चितां दीप्तामारोप्य पतगेश्वरम्।
ददाह रामो धर्मात्मा स्वबन्धुमिव दुःखितः॥
ततो गोदावरीं गत्वा नदीं नरवरात्मजौ।
उदकं चक्रतुस्तस्मै गृध्रराजाय तावुभौ॥

अर्थात्—ऐसा कह कर पक्षिराज जटायु को जलती हुई चिता पर चढ़ा कर दुःखित हुए धर्मात्मा रामचन्द्र ने अपने बन्धु की भाँति उसका संस्कार किया! तदनन्तर वे दोनों राजपुत्र गोदावरी के तटपर गये और वहाँ उन्होंने उदक कर्म (स्नानादि) किया। यदि जटायु वास्तव में पक्षी होता तो रामचन्द्रजी महाराज उसका बन्धुवत् संस्कार क्यों करते ?

यही दशा जामवन्त की हुई। ऋक्षजाति का अधिपति श्री भगवान् राम का युद्धमंत्री जामवन्त ऋक्ष (भालू) समझा गया !!!

[२] कुछ विचारकों का कथन है कि रामचन्द्र के दल में भिन्न भिन्न समुदाय के वनवासियों ने सम्मिलित होकर सहायता की थी। भिन्न भिन्न दलों की भिन्न भिन्न पताकायें थीं। पताकाओं के चित्र के अनुसार ही वह दल घोषित होता था। जिस दलकी पताका के ऊपर बानर का चित्र था, उस दल के सभी वीर 'बानर' नाम से पुकारे जाते थे। इसी प्रकार जिस दलकी पताका के ऊपर ऋक्ष का चित्र विद्यमान था, उस रथ के समस्त योद्धा 'ऋक्ष' कहे जाते थे। प्रत्येक दल के नायक बानरपति, कपिपति, कपीश एवं ऋक्षपति और ऋक्षराज पद से प्रतिध्वनित होते थे। आप श्रीमद्भगवद्गीता के अध्याय २ के श्लोक २०—

अथ व्यवस्थितान्दृष्ट्वा धार्त्तराष्ट्रान् कपिध्वजः।
प्रवृत्ते शस्त्रसंपाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः॥

को देखें, वहाँ कपिध्वज शब्द अर्जुन के निमित्त इस हेतु प्रयुक्त हुआ है कि उनकी ध्वजा के ऊपर पताका में बानर का चित्र था। इसी प्रकार श्रीमद्भागवत प्रथम स्कन्ध अध्याय ७ श्लोक १७ में—

इति प्रियां वल्गुविचित्रजल्पैः
स सान्त्वयित्वाऽच्युतमित्रसूतः।
अन्वाद्रवद्दंशित उग्रधन्वा
कपिध्वजो गुरुपुत्रं रथेन॥

में भी अर्जुन के लिये 'कपि-ध्वज' शब्द प्रयुक्त हुआ। इन ऊपर के श्लोकों से सिद्ध है कि बानरों का चित्र ध्वजा के ऊपर पूर्वकाल में दिया जाता था। किष्किन्धा निवासी श्रीकण्ठ (सुग्रीव) राजा के राजत्व-काल से यह प्रथा चलित हुई थी। कुछ काल के अनन्तर सहचारी अर्थ में उन मनुष्यों को ही लोग 'बानर' कहने

लगे। देखिये श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण बालकाण्ड सर्ग १७ में कई स्थलों में 'विद्याधर' जाति का वर्णन किया है, जिनमें केवल श्लोकार्द्ध उद्धृत किया जाता है:—

"ऋषयश्च महात्मानः सिद्धविद्याधरोरगाः"

इस पद्य में ऋषि, महात्मा, सिद्ध, विद्याधर और नाग इत्यादि मनुष्य श्रेणी की ही भिन्न भिन्न योग्यता रखने वाली जातियों के उल्लेख किये हैं। हमारे पाठक 'राजस्थान' नामक प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ रचयिता 'कर्नल जेम्स टाड' के नामसे सुपरिचित हैं। इनके पूर्वजने स्काटलैण्ड के राजा 'रावर्ट दिब्रूस' के बाल बच्चों को इङ्गलैण्ड के कारावास से छुड़ाया था, अतः इस अमूल्य सेवा के उपलक्ष्य में उन्हें 'नाइट बैरोनेट' का पद मिला और 'टॉड' का चिह्न धरण करने की प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। स्कॉच भाषा में टाड शब्द के अर्थ 'लोमड़ी' के हैं। सिर के टोपपर लोमड़ी के चिह्न धारण करने से ही उसके वंशज 'टाड' की उपाधि से प्रख्यात हुए। इस इतिहास के लुप्त होने से कोई साहित्यिक कपिराज 'कर्नल जेम्स टाड' को लोमड़ी का वंशज लिख मारें तो जगत में कितना भ्रम फैल जायगा ?

यही दशा हनुमान, जामवन्त और जटायु प्रभृतियों की हुई जो क्रमशः बानर, ऋत्त और पत्ती प्रसिद्ध हो गये।

कलिकालसर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य्यरचित जैन रामायण

प्रथम सर्ग—बानर वंश की उत्पत्तिः—

कीर्ति धवल के इन स्नेह वाक्यों को सुन, उसका वियोग अपने लिये भी आपदा पूर्ण समझ, श्रीकंठ ने बानर द्वीप में रहना स्वीकार कर लिया। कीर्तिधवल ने बानरद्वीप के किष्किधागिरि पर बसी हुई 'किष्किधा' पुरी को राजधानी बना, उसका राजतिलक श्रीकंठ के कर दिया। श्रीकंठ ने एक दिन वहाँ बड़ी बड़ी देहवाले फल-भक्षी, सुन्दर बानर देखे। उनके लिये उसने अमारी घोषणा करवा दी, और किसी नियत स्थान पर उनके अन्नजल आदि का भी प्रबंध कर दिया। यह देख प्रजाजन भी बंदरों का सत्कार करने लगे।

"यथा राजा तथा प्रजाः"

उसके बाद यहाँ के विद्याधर लोग कौतुकवश, चित्रों में, लेख्य में; और ध्वजा, छत्र आदि में भी बन्दरों के चिन्ह बनाने लगे। बानर द्वीप के राजा से और सर्वत्र बंदरों के चिन्हों के रहने से, वहाँ के विद्याधर 'वानर' के नाम से प्रसिद्ध हुए।

[३] किन्हीं अन्वेषकों का कथन है कि ये बानर और भालू नाम से पुकारे जानेवाले रामायण के पात्र वास्तव में मनुष्य थे, परन्तु चंचल प्रकृतिवाले बानर और स्थिरप्रकृति वाले ऋत्त कहलाते थे। रूस और जापान के युद्ध के अवसर पर

रूसी लोग जापानियों को पीत बानर (yellow monkey) कहा करते थे; इससे यह सिद्ध नहीं हो सकता कि जापानी लोग वास्तव में पीले बानर थे। चेहरे उनके पीले और स्वभाव चञ्चल हैं, अतः आलंकारिक रूप से पीत-बानर कहा जा सकता है।

जो हो; गोस्वामी जी ने राम-चरित-मानस में अधिकतर इनके वर्णन बानर जैसे ही किये हैं। कहीं कहीं हनुमान जी के वर्णन में—

हाथ छत्र अरु ध्वजा बिराजे। कांधे मूँज जनेऊ छाजे॥

इत्यादि पदों के प्रयोग से इस बात को इङ्गित किया है कि हनुमानादि मनुष्य ही थे न कि बानर; क्योंकि बानर यज्ञोपवीत नहीं धारण करते। बालि-सुग्रीव इत्यादि राजाओं के वर्णन भी मनुष्यवत् ही किया है। आशा है कि सहृदय पाठक इस विषय पर स्वतन्त्र विचार करेंगे।

राम-चरित-मानस में बालि, सुग्रीव, हनुमान, अंगद तारा, नल, नील, दधि-मुख, केहरि, कुमुद, गव, अंजनि, पवन और पनस प्रभृति बानरों और बानरियों के नाम दिये हैं। ऋक्षों में केवल जामवन्त का ही नाम पाया जाता है।

राक्षस—जाति

राम-चरित-मानस से सिद्ध होता है कि रावणादि उच्च ब्राह्मण वंशज थे। जैसा कहा है:—

उत्तम कुल पुलस्त कर नाती। शिव बिरंचि पूजेउ बहु भांती।
वर पायउ कीन्हेउ सब काजा। जीतेउ लोकपाल सब राजा॥

पुराणों के लेख से भी यही सिद्ध होता है कि रावण कुम्भकरणादि का वर्णन युद्ध में रोचकता लाने के अभिप्राय से अद्भुत रस में कवियों ने किया है। इन वर्णनों में अतिशयोक्ति अलंकार के संमिश्रण से इतना वैचित्र्य आ गया है कि जिससे प्रगट होता है कि लंकानिवासी राक्षस यदि वास्तव में वैसेही हों तो अजायबघर में रखने योग्य जन्तु थे। रावण को दशशीशों, बीस भुजाओं और बीस नेत्रों वाला लिखा गया है। वास्तव में नाम का अर्थ करने से सारी गड़बड़ी उपस्थित हुई है! आज भी लोक में दो भुजा वालों के नाम चतुर्भुज हैं। यदि चतुर्भुज शब्द से चारभुजा का ग्रहण करके उसमें चार नेत्र, चार पग, दो शीश और चार कान की कल्पना कर लें तो वह विचारा मनुष्य इसी कल्पना के आधार पर निश्चय ही एक विचित्र जन्तु हो जायगा। यही दशा दशमुख वा दशशीश की भी हुई है। विचारे कुम्भकरण की दुर्दशा का तो पारावार नहीं। कविराजों ने गज फीट लेकर उसके मस्तक बदन माप डाले:—

निरखत मन्दिर आयउ तहँवा। कुम्भकरण सोअत रह जहवाँ॥
अति अकार तनु चितै न जाई। चौतीस योजन की चकराई॥
योजन तीनि तीनि के काना। बाईस योजन बाहु अजाना॥
दुइ योजन की नाक जो बाढ़ी। योजन एक मूछ रह ठाढ़ी॥
सतरह योजन जाँघ लँबाई। शत योजन तनु वरनि न जाई॥

अद्भुत रस और अतिशयोक्ति के संमिश्रण का उदाहरण खासा है। परन्तु लोक में ऐसे मनुष्यों का भी अभाव नहीं है, जो रस और अलंकार को अर्द्ध-चन्द्र-प्रहार करके ऐसे लेखों को सत्य समझते हैं।

वाल्मीकि रामायण देखने से विदित होता है कि लंकानिवासी उच्चकुलस्थ आर्य थे। परन्तु रावण के आचार-च्युत होने से पापियों का एक प्रबल संघ बन गया था। सुन्दरकाण्ड में जहाँ हनुमान सीता की खोज में लंका गये हैं वहाँ का लेख है:—

भवनाद्भवनं गच्छन्ददर्श कपिकुञ्जरः।
विविधाकृतिरूपाणि भवनानि ततस्ततः॥
शुश्राव जपतां तत्र मंत्रान् रक्षोगृहेषु वै।
स्वाध्यायनिरतांश्चैव यातुधानन्ददर्श सः॥

अर्थात् एक भवन से दूसरे भवन को जाते हुए हनुमान ने वहां नाना प्रकार की आकृतिवाले भवन देखे। उन घरों में उसने जप करते हुओं के मंत्र सुने और स्वाध्याय में रत राक्षसों को देखा।

पुनश्च.—

तथा विप्रेक्षमाणस्य वनं पुष्पितपादपम्।
विचिन्वतश्च वैदेहीं किंचिच्छेषा निशाभवत्॥
षडङ्गवेदविदुषां क्रतुप्रवरयाजिनाम्।
शुश्राव ब्रह्मघोषान् स विरात्रे ब्रह्मरक्षसाम्॥

अर्थात् इस भाँति पुष्पित बनके वृक्षों को देखते और सीता को ढूंढ़ते हुए हनुमान को थोड़ीसी रात रह गयी। फिर उसने अन्तिम रात्रि के समय षडङ्ग वेद के जाननेवाले और उत्तम यज्ञों के करने वाले ब्राह्मण राक्षसों की वेदध्वनि सुनी।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी कहीं कहीं राक्षसों के यज्ञ की चर्चा की है।

सुतरां; राक्षस भी मनुष्ययोनि के ही थे, आचार-च्युत होने और अमानुषिक कर्म करने के कारण इन्हें राक्षस कहा गया। गोस्वामी जी ने राम चरित मानस में रावण, कुम्भकरण, मेघनाद, अक्षय-कुमार, खर, दूषण, मन्दोदरी, मारीच, सुबाहु, ताटका, सुलोचना और त्रिजटा प्रभृति राक्षस और राक्षसियों के नाम तथा वर्णन दिये हैं। बिभीषण का नाम राम-भक्त होने के कारण राक्षसों की श्रेणी से बाहर

रखा है। अन्यत्र मय, मायावी, दुन्दुभी, हिरण्याक्ष, हिरण्यकश्यपु, मधु, कैटभ, काल-नेमि कालकेतु और राहु की भी कथाएँ लिखी हैं। लक्ष्मण के शक्ति-प्रसंग में लंका निवासी सुषेन वैद्य का भी नाम दिया है।

उपसंहार

विस्तार भय से राम-चरित-मानस के पात्रों का और ग्रन्थ में आये हुए नामों का हम विशेष ऐतिहासिक वर्णन नहीं दे सके हैं। इनके ग्रन्थों में अप्सरा, गंधर्व, किन्नर और मागध तथा सूत शब्द भी आये हैं। जो भिन्न भिन्न गायक जातियों के अवान्तर भेद हैं। भूत, प्रेत, बैताल, और योगिनी इत्यादि शब्द भी विवेचनीय हैं। यक्ष शब्द भी जातिवाचक आया है। इसके अतिरिक्त शबरी, गीध, जय, विजय, निषाद और अजामिल इत्यादि भक्तों के भी यत्र तत्र उल्लेख किये गये हैं। स्मृतिदोषवशात् यदि किसी के नाम छूट गये हों तो पाठक क्षमा करेंगे।

(१३) भूगोल और तुलसीदास

गोस्वामी जी के ग्रन्थों में नगरों, नदियों, पर्वतों और वनों का वर्णन अथवा नाम, भौगोलिक वर्णन के उद्देश से नहीं, अपितु राम-वर्णन के संवन्ध से आया है। जिन जिन स्थानों से राम का क्षणिक संबन्ध भी हुआ उसे भक्त प्रवर परम पवित्र समझते थे और भक्तिभाव से प्रेरित होकर ही उसके संवन्ध में कुछ लिख दिया करते थे। जैसा अयोध्याकाण्ड में राम-वन गमन-काल का वर्णन करते हैं:—

> जे पुरग्राम बसहिं मगु माहीं। तिन्हहिं नाग सुर नगर सिहाहीं॥
> केहि सुकृती केहि घरी बसाये। धन्य पुण्यमय परम सुहाये॥
> जहँ जहँ राम चरण चलि जाहीं। तेहि समान अमरावति नाहीं॥
> पुण्य पुंज मगु निकट निवासी। तिन्हहिं सराहहिं सुरपुर बासी॥
> जेहि सर सरित राम अवगाहहिं। तिन्हहिं देवसरि सरित सराहहिं॥
> जेहि तरुतर प्रभु बैठहिं जाई। करहिं कल्पतरु तासु बड़ाई॥
> परसि राम पद पद्म परागा। मानत भूमि भूरि निज भागा॥

बस: इसी नाते से गोस्वामी जीने उन सरों, सरिताओं, पर्वतों काननों और नगरों का वर्णन किया है, जिनसे उनके उपास्यदेव का किसी प्रकार का सम्पर्क रहा था।

अन्य प्रकरण अथवा प्रसङ्ग में भी किञ्चित् भौगोलिक वर्णन आये हैं। दण्डकारण्य के वर्णन में गोस्वामी जी महाकवि वाल्मिकि की नाईं कृतकार्य नहीं हो सके, क्योंकि प्रायः नगरों अथवा तीर्थ स्थानों में ही भ्रमण करते रहने के

कारण इन्हें जंगल का अनुभव कम था। यही कारण है कि अरण्य-काण्ड में कतिपय ऋष्याश्रमों का ही उल्लेख करके तूष्णीं रह गये।

नगर वर्णन

गोस्वामी जी ने राम-जन्म-संबन्ध से सब से अधिक वर्णन अयोध्या का किया है। 'अयोध्या नामकी अपेक्षा 'अवध' नाम इन्हें अधिक प्यारा था। राम-चरित-मानस के द्वितीय काण्ड का नाम भी आपने अवधकाण्ड ही रखा था, जो समय पाकर परिवर्त्तित हो गया 'अयोध्या' नगर का नाम इनके ग्रन्थों में शतशः वार आया होगा। अयोध्या, अवध, अवधपुरी, कोशल, कोशलपुर, कोशलपुरी, रामपुरी, रामपुर, दशरथपुर, दशरथनगर, और दशरथ पुरी, इत्यादि विविध पर्यायवाची शब्दों से इस मनोहारिणी नगरी का उल्लेख गोस्वामी जीने किया है। इस नगर के सम्बन्ध से ही कविराज ने श्रीरामचन्द्र जी अथवा कहीं कहीं दशरथ जी महाराज को भी अवधेश, अवधपति, अवधनाथ, अवधराज, अवधनरेश, अवधपाल, कोशलेश, कोशलेन्द्र कोशलभूप, कोशलनरेश, कोशलाधीश, कोशलधनी, कोशलपति, कोशलराय, कोशलराउ, कोशलराज, कोशलामण्डन और कोशलनाथ के नाम से पुकारा है। बालकाण्ड में सब देवी, देवताओं और महापुरुषों की वन्दना के साथ ही भक्त प्रवर ने अवधपुरी की भी वन्दना की है।

बन्दौं अवधपुरी अति पावनि। सरयू सरि कलि कलुष नसावनि॥

उत्तरकाण्ड में तो महाकवि ने अयोध्या का वर्णन अत्यन्त प्रशस्त रीति पर कुशलता पूर्वक किया है। जैसा:—

नारदादि सनकादि मुनीशा। दर्शन लागि कोशलाधीशा॥
दिन प्रति सकल अयोध्या आवहिं। देखि नगर विराग बिसरावहिं॥
रत्न-जटित मणि कनक अटारी। नाना रंग रुचिर गच ढारी॥
पुर चहुँ पास कोट अति सुन्दर। रचे कगूँरा रंग रंग बर॥
नव गृह सुन्दर निकर बनाई। मनहुँ घेरि अमरावति आई॥
महि बहु रूप रुचिर गज काँचा। जो विलोकि मुनिवर मन राँचा॥
धवलधाम ऊपर नभ चुम्बत। कलश मनहुँ रवि शशि द्युतिनिन्दत॥
बहुमणि रचित झरोखा भ्राजे। गृह गृह प्रति मणि दीप विराजे॥

मणिदीप राजहिं भवन भ्राजहिं देहरी विद्रुम रचा।
मणिखम्भ भीति विरञ्चि विरचत कनकमणि परवत खचा॥
सुन्दर मनोहर मन्दिरायत अजिर रुचिर फटिकन रचे।
प्रति द्वार द्वार कपाट पुरट बनाय बहु बज्रन खचे॥

चारुचित्र शाला अमित, गृह प्रति रचे बनाय॥
राम-धाम जे निरखत, पुनि मन लेत चुराय॥

सुमन वाटिका सवहिं लगाई। त्रिविध भाँति करि यतन बनाई॥
लता ललित बहु भाँति सुहाई। फूलहिं सदा वसन्त कि नाई॥
गुञ्जत मधुकर मुखर मनोहर। मारुत त्रिविध सदा वह सुन्दर॥
नाना खग बालकन जिआये। बोलत मधुर उड़ात सुहाये॥
मोर हंस सारस पारावत। भवनन पर शोभा अति पावत॥
जहँ तहँ देखहिं निज परछाहीं। बहु बिधि कूजहिं नृत्य कराहीं॥
शुक सारिका पढ़ावहिं बालक। कहहु राम रघुपति जन पालक॥
राजद्वार सबही विधि चारू। बीथीं चौहट रुचिर बज़ारू॥

बाजार चारु न बने बरणत वस्तु विनु गथ पाइये।
जहँ भूप रमानिवास तहँ की सम्पदा किमि गाइये॥
बैठे बज़ाज़ सराफ बणिक अनेक मनहुँ कुवेर ते।
सब सुखी सब सच्चरित सुन्दर नारि नर शिशु जरठ ते॥

उत्तर दिशिसरयू बहै, निर्मल जल गम्भीर।
बाँधे घाट मोनहर, स्वल्प पंक नहिं तीर॥

दूरि फराक रुचिर सोघाटा। जहँ जल पिवहिं वाजि गजठाटा॥
पनिघट परम मनोहर नाना। तहाँ न पुरुष करहिं अस्नाना॥
राजघाट सबही विधि सुन्दर। मज्जहिं तहां वर्ण चारिउ नर॥
तीर तीर देवन कर मन्दर। चहुं दिशि तेहि के उपवन सुन्दर॥
कहुँ कहुँ सरिता तीर उदासी। बसहि ज्ञानरत मुनि सन्यासी॥
जहँ तहँ तुलसी वृन्द सुहाये। बहु प्रकार सब मुनिन लगाये॥
पुर शोभा कछुबरणि न जाई। बाहर नगर परम रुचिराई॥
देखत पुरी अखिल अघभागा। बन उपवन वापिका तड़ागा॥

वापी तड़ाग अनूप कूप मनोहरायत सोहई।
सोपान सुन्दर नीरनिरमल देखि सुर मुनि मोहई॥
बहु रंग कंज अनेक खग कूजहि मधुप गुंजारही।
आराम रम्य पिकादि खग रव मनहुँ पथिक हँकारही॥

दोहा—रमानाथ जहँ राज्यपति, सो पुर वरणि न जाय।
अणिमादिक सुख सम्पदा, रही अवध पुर छाय॥

अयोध्या-वर्णन के अतिरिक्त गोस्वामी जी ने महासती सीता के संबन्ध से जनकपुरी का भी विस्तृत वर्णन किया है। मिथिला, विदेहनगर विदेहपुर, जनकपुर और तिरहुत आदि पर्याय वाचक, शब्दों से इस नगर को गोस्वामी जी ने स्मरण किया है। इसी कारण जनक महाराज को मिथिलेश, मिथिलापति, मिथिलाधनी, तिरहुतिराउ, तिरहुतराज और विदेह इत्यादि नामों से विभूषित किया है। बालकाण्ड में आपने जनकपुरके वर्णन में ये पद्य लिखे हैं:—

तब प्रभु रिषिन्ह समेत नहाये। बिबिध दान महिदेवन्ह पाये॥
हरषि चले मुनि-वृन्द-सहाया। बेगि बिदेह-नगर नियराया॥
पुर रम्यता राम जब देखी। हरषे अनुज समेत बिसेखी॥
बापी कूप सरित सर नाना। सलिल सुधा-सम मनि-सोपाना॥
गुञ्जत मञ्जु मत्तरस भृङ्गा। कूजत कल बहु बरन बिहङ्गा॥
बरन बरन बिकसे बन जाता। त्रिबिध समीर सदा सुख-दाता॥

दोहा—सुमन बाटिका बाग बन, बिपुल बिहङ्ग निवास।
फूलत फलत सुपल्लवत, सोहत पुर चहुँ पास॥

बनइ न बरनत नगर निकाई। जहाँ जाइ मन तहइँ लोभाई॥
चारु बजार बिचित्र अँबारी। मनिमय जनु बिधि स्वकर सँवारी॥
धनिक-बनिक बर धनद समाना। बैठे सकल बस्तु लेइ नाना॥
चौहट सुन्दर गली सुहाई। सन्तत रहहिं सुगन्ध सिंचाई॥
मङ्गल-मय मन्दिर सब केरे। चित्रित जनु रतिनाथ चितेरे॥
पुर नर-नारि सुभग सुचि सन्ता। धरमसील ज्ञानी गुनवन्ता॥
अति अनूप जहँ जनक निवासू। बिथकहिं बिबुध बिलोकि बिलासू॥
होत चकित चित कोटि बिलोकी। सकल भुवन सोभा जनु रोकी॥

दोह—धवल-धाम मनि-पुरट-पुर, सुघटित नाना भाँति।
सिय-निवास सुन्दर सदन, सोभा किमि कहि जाति॥

सूर सचिव सेनप बहुतेरे। नृप गृह सरिस सदन सब केरे॥
पुर बाहिर सर सरित समीपा। उतरे जहँ तहँ बिपुल महीपा॥
देखि अनूप एक अँबराई। सब सुपास सब भाँति सुहाई॥
कौशिक कहेउ मोर मन माना। यहाँ रहिय रघुबीर सुजाना॥

× × ×

रावण की प्रभुता प्रदर्शन के विचार से गोस्वामीजी ने लंका का वर्णन भी अत्यन्त विशद रीति से किया है:—

गिरि पर चढ़ि लङ्का तेहि देखी। कहि न जाय अति दुर्ग विशेखी॥
अति उतङ्ग जलनिधि चहुँ पासा। कनक कोट कर परम प्रकासा॥

छंद—कनक कोट विचित्र मणि कृत सुन्दराजित अति घना॥
चौहट्ट हाट सुघाट वीथी चारु पुर बहु विधि बना॥
गज वाजि खच्चर निकर पदचर रथ वरूथनि को गनै॥
बहु रूप निशिचर यूथ अति बल सेन वर्णत नहिं बनै॥
बन बाग उपवन वाटिका सर कूप वापी सोहहीं॥
नर-नाग सुर-गन्धर्व कन्या रूप मुनि मन मोहहीं॥
कहुँ मल्ल देह विशाल शैल समान अतिबल गर्जहीं॥

नाना अखारन भिरहिं बहु विधि एक एकन तर्जहीं ॥
करि यत्न भट कोटिन विकटतनु नगर चहुँ दिशि रच्छहीं ॥
कहुँ महिष मानुष धेनु खर अज खग निशाचर भच्छहीं ॥
यहि लागि तुलसीदास इनकी कथा संक्षेपहिं कहीं ॥
रघुवीरशरतीरथसरित तनु त्यागि गति पैहैं सही ॥

× × × ×

तुलसीदासजी ने सिंहलद्वीप को ही लंका लिखा है परन्तु रावण की राजधानी जिस नगर में थी उसको भी लंका ही लिखते हैं। जैसा;

गिरित्रिकूट ऊपर बस लंका। तहँ रह रावण सहज अशंका ।।

बहुत से लेखकों का कथन है कि वर्त्तमान 'पोलन-नरुआ में ही—जो पुलस्तिनगर' का अपभ्रंश है—रावण की राजधानी थी, जिसे कवियों ने लंका लिखा है। राम-बन-गमन वर्णन के संबन्ध से ही प्रयाग, चित्रकूट, शृङ्गबेरपुर अथवा सिंगरौर, और रामेश्वर आदि स्थानों के नाम गोस्वामीजी ने लिखे हैं। इनके अतिरिक्त अन्यान्य प्रसंगवश काशी, नन्दिग्राम, केकयदेश, मग (मगध), मरुदेश मालवा, उज्जैन, सप्तदीप, भोगवती और अमरावती आदि नगरों वा प्रदेशों के नाम 'राम-चरित-मानस' में आये हैं।

चारि पदारथ भरा भँडारु। पुन्य प्रदेश देश अति चारु ॥

इस चौपाई में प्रदेश (प्रान्त वा सूबा) और देश (एक राजा का समस्त राज्य) ये भौगोलिक शब्द मात्र आये हैं।

नदी वर्णन

रामचरितमानस अथवा तुलसीकृत अन्यान्य ग्रन्थों में पुण्यसलिला गंगा का वर्णन सुरसरि, देवसरि, बिबुधसरि, बिबुधनदी, देवधुनि, और सुरसरिता आदि भिन्न २ पर्य्यायवाची नामों के साथ आया है। यमुना का नाम भी कई बार आया है। रवितनया अथवा दिनकरकन्या इत्यादि नामों से भी इस नदी का वर्णन कविराज ने किया है। सरयू नदी तो अयोध्या के संसर्ग से गोस्वामी जी की अत्यन्त प्यारी थी ही। इसके अतिरिक्त सोन, गोदावरी, कर्मनाशा, तमसा, सई, गोमती (धेनुमति) सरस्वती, मन्दाकिनी, और मेकलसुता (नर्मदा) इत्यादि नदियों के नामोल्लेख यत्र तत्र हुआ है। सीताहरण हो जाने के अनन्तर 'पंपा-सर' का विस्तृत वर्णन कविराज ने किया है। 'रामचरित-मानस' में मानसरोवर वा मानसर का भी विशद वर्णन आया है। कहीं २ त्रिवेणी वा त्रिमुहानी की भी चर्चा आयी है।

पर्वत वर्णन

पार्वती के सम्बन्ध से गोस्वामीजी ने हिमालय पर्वत का हिमगिरि, हिमभूधर, हिमाचल, हिमवंत, हिमवान्, तुहिनगिरि, गिरिपति, गिरीश, गिरिराजा, गिरिराज, गिरिराऊ और तुषाराद्रि विविध नामों से वर्णन किया है। प्रसंगतः कैलास और बदरीवन के नाम भी आये हैं। कैलास को शिवशैल भी कहा है। 'रामचरितमानस' में (विन्ध्याचल) पर्वत का भी नाम आया है। राम-यात्रा के सम्बन्ध से ऋष्यमूक, प्रवर्षणक और सुबेल पर्वतों के नाम आये हैं। विविध स्थलों पर त्रिकूट, सुमेरु, मन्दर और मैनाक का भी उल्लेख किया गया है।

अरण्य-वर्णन

वनों में दण्डकारण्य, पञ्चवटी, अशोकवन, बदरी बन और नैमिषारण्य के ही मुख्यतः नाम गोस्वामीजी के ग्रन्थों में आये हैं अरण्यों के वर्णन में हमारे चरित-नायक महाकवि बाल्मीकि की नाईं कृतकार्य्य न हो सके, क्योंकि प्रायः नगरों और तीर्थ स्थानों में ही भ्रमण करते रहने के कारण उन्हें जंगल का अनुभव कम था। अरण्य-काण्ड में कतिपय ऋषिआश्रमों का ही उल्लेख करके तूष्णी रह गये। दूसरी मुख्य बात यह है कि हमारे कविसम्राट को तो रामायण लिखनी थी, उन्हें राम-चरित-चर्चा की धुन थी, चाहे नगर का वर्णन हो अथवा बन का दृश्य हो, थोड़ा सा प्रासङ्गिक वर्णन के उपरान्त ही उपरत होकर आपकी लेखनी पुनः अपने उपवास्य देव के वर्णन में ही अनुरक्त हो जाती थी। गोस्वामी जी तो राम वनवास से ही बन की शोभा और श्रीवृद्धि समझते थे;—

गिरि बन नदी ताल छवि छाये। दिन दिन प्रति अति होहिं सोहाये॥
खग मृग वृन्द अनन्दित रहहीं। मधुप मधुर गुञ्जत छवि लहहीं॥
सो बन बरनि न सक अहिराजा। जहाँ प्रकट रघुवीर विराजा॥
मंगल मूल भयेउ बन तबते। कीन्ह निवास रमापति जबते॥

× × × × × ×

इसी प्रकार यत्रतत्र बनों और वन्यदृश्यों के सत् किञ्चित्वर्णन आये हैं, बनों की ओर प्रलोभन दिखलाना हुआ वहाँ आपने लिखा:—

"झरना झरहिं सुधा-सम बारी। मधुर मनोहर मंगलकारी"॥

परन्तु, बनकी ओर से जहाँ जानकी को भय प्रदर्शन की आवश्यकता हुई, वहाँ कवि-राज की लेखनी ने कितनी कुशलता दिखाई है उसे भी देखिये:—

"लागहिं अति पहाड़ कर पानी। बिपिन बिपति नहिं जाई बखानी"॥

कविता इसका नाम है। काव्यकुशलता इसीको कहते हैं। अरण्य काण्ड के अन्तमें थोड़ा सा वर्णन सालंकार आया है:—

लछिमन देखु बिपिन कै शोभा। देखत केहि कर मन नहिं छोभा॥
नारि सहित सब खग-मृग-बृन्दा। मानहुँ मोरि करत हहिं निन्दा॥
हमहिं देखि मृग-निकर पराहीं। मृगी कहहिं तुम्ह कहँ भय नाहिं॥
तुम्ह आनन्द करहु मृग-जाये। कञ्चन मृग खोजन ये आये॥
सङ्ग लाइ करिणी करि लेहीं। मानहुँ मोहिं सिखावन देहीं॥
सास्त्र सुचिन्तित पुनि पुनि देखिय। भूप सुसेबित बस नहिं लेखिय॥
राखिय नारि तदपि उर माहीं। जुबती सास्त्र नृपति बस नाहीं॥
देखहु तात बसन्त सुहावा। प्रिया-हीन मोहि भय उपजावा॥

दोहा—बिरह-बिकल बल-हीन मोहिं, जानेसि निपट अकेल।
सहित बिपिन मधुकर खग, मदन कीन्ह बगमेल॥
देखि गयउ भ्राता सहित, तासु दूत सुनि बात।
डेरा कीन्हेउ मनहुँ तब, कटक हटकि मन जात॥

बिटप बिसाल लता अरुझानी। बिबिध बितान दिये तनु तानी॥
कदलि ताल बर ध्वजा पताका। देखि न मोह धीर मन जाका॥
बिबिध भाँति फूले तरु नाना। जनु बनैत बने बहु बाना॥
कहुँ कहुँ सुन्दर बिटप सुहाये। जनु भट बिलग बिलग होइ छाये॥
कूजत पिक मानहुँ गजमाते। ढेक महोख ऊँट बिसराते॥
मोर-चकोर-कीर बर बाजी। पारावत मराल सब ताजी॥
तीतर लावक पदचर जूथा। बरनि न जाइ मनोज बरुथा॥
रथ गिरि सिला दुन्दुभी झरना। चातक बन्दी गुन-गन बरना॥
मधुकर-मुखर भेरि सहनाई। त्रिबिध बयारि बसीठी आई॥
चतुरङ्गिनी सेन सँग लीन्हे। बिचरत मनहुँ चुनौती दीन्हे॥

× × × ×

फलतः महाकवि ने प्रसङ्गवशात् राम के समय का भारतवर्ष का भौगोलिक वर्णन यत् किञ्चित् किया है, जो पाठकों के मनोविनोदार्थ ऊपर दिया गया।

(१४) विज्ञान और तुलसीदास

पदार्थ विद्या का नाम विज्ञान है। कला-कौशल के साथ इस विद्या का सन्निकट सम्बन्ध है। प्राचीन भारत में विज्ञान की पूर्ण उन्नति के लेख पाये जाते हैं। वाल्मीकि और तुलसीदास शीर्षक लेख में इस बात को विस्तार के साथ दिखलाया गया है कि महर्षि विश्वामित्र ने राम और लक्ष्मण को नाना प्रकार की अस्त्र शस्त्र विद्यायें सिखलाईं, उनके प्रयोग बतलाये और विविध विधि के शस्त्रास्त्र प्रदान किये। आज यूरोपियन अपने वायु-यान-निर्माण पर फूले नहीं समाते,

परन्तु भारतवर्ष के पुरा कालीन शास्त्र डंके की चोट से यह सिद्ध करते हैं कि आर्यावर्त के निवासी वायुयान और जलयान की रचना में सिद्ध-हस्त थे। रामायण के लेख से सिद्ध होता है कि मर्यादापुरुषोत्तम राम युद्ध की समाप्ति पर अपने प्रमुख सहायकों के साथ पुष्पक विमान पर आरूढ़ होकर लंका से अयोध्या आये थे। महर्षि बाल्मीकि के लेख से सिद्ध होता है कि विभीषण वायुयान पर चढ़ कर ही लंका से रामचन्द्र से मिलने के लिये उनकी सेना तक आये थे। प्रत्युत वहाँ तो इस प्रकार का लेख विद्यमान है कि बहुत विलम्ब तक विभीषण आकाश में ही स्थित रह कर रामचन्द्र से बातें करते रहे; अन्त में जब राम ने अपने मन्त्रियों से परामर्श कर विभीषण को आने का आदेश किया तब आये। गोस्वामीजी ने इस सम्बन्ध में कुछ विशेष नहीं लिखा है।

जब राम और रावण से घोर युद्ध हो रहा था उस समय का वर्णन करते हुये महाकवि ने राक्षसों के सम्बन्ध में लिखा है:—

नभ चढ़ि बरसहिं विपुल अंगारा। महि ते प्रगट होइ जलधारा॥

इस चौपाई का कुछ विशेष अर्थ समझ में नहीं आता था, परन्तु जिस समय जर्मन-ब्रिटिश-युद्ध घन घोर छिड़ा हुआ था, उस समय समाचार पत्रों में छपा कि जर्मनों ने ऐसे बमगोलों का अविष्कार किया है कि जिन्हे लेकर वे आकाश से पृथिवी पर पटकते हैं और वे बमगोले धरती के स्तरों को तोड़ते और उड़ाते हुए भूगर्भस्थ जल तक पहुँच जाते हैं और विरोधियों की सेना जलमें डूब जाती है। इस समाचार के पढ़ने के अनन्तर तुलसीदास की चौपाई का अर्थ झलक गया। इस प्रकार के वायुयान और बमगोले पहले भी बनते थे। पदार्थ विद्या आदिकाल से चली आ रही है। कुछ युरोपियनों की खरीदी हुई नहीं है। यदि कोई दुराग्रहवशात बाल्मीकि प्रभृति ऋषियों को कल्पनामात्र समझे तो भी इस पर भारत को अभिमान हो सकता है कि कम से कम इतना तो सिद्ध हुआ कि युरोपियन सभ्यता के सहस्रशः शताब्दीपूर्व भारतीयों के मस्तिष्क में इस विद्याका अङ्कुर विद्यमान था। आज अपनी अस्त्र-शस्त्र रचना पर यूरोप अभिमान कर रहा है, परन्तु देखिये 'राम चरित-मानस' के लंकाकाण्ड में गोस्वामी जी ने लिखा है:—

पावक-सर छाड़ेउ रघुबीरा। छन महं जरे निसाचर तीरा॥
छाड़ेसि तीव्र सक्ति खिसिआई। बान सङ्ग प्रभु केरि पठाई॥
कोटिन्ह चक्र त्रिसूल पबारई। बिनु प्रयास प्रभु काटि निवारइ॥
विफल होहिं रावन सर कैसे। खल के सकल मनोरथ जैसे॥

क्या ही विचित्र वर्णन है! रामचन्द्र अग्नि-बाण छोड़ते हैं और राक्षसों के तीरों को जला देते हैं। इसके अनन्तर रावण क्रोधित हो कर तीव्र 'शक्ति' का प्रयोग करता है परन्तु राम अपनी शस्त्रशालीनता से उसे बीच से ही वापस दे देते हैं।

नितान्त निरुपाय होकर रावण नानाप्रकार के चक्र और त्रिशूलों का प्रयोग करता है, परन्तु रणवीर राम उन्हें अनायास काट गिराते हैं। रावण के सारे शस्त्र इस प्रकार निष्फल हो गये जिस प्रकार दुष्ट पुरुषों के सारे मनोरथ निष्फल हो जाते हैं। यहाँ तुलसीदासजी ने युद्ध और विज्ञान का वर्णन करते हुए उदाहरणालंकार देकर कमाल कर दिया है। दुष्टों को एक भारी शिक्षा भी दी है।

देवताओं के आकाश-मार्ग द्वारा विचरण का वृतान्त समस्त रामचरित मानस में मिलता है, जिससे सिद्ध होता है कि वे वायुयान द्वारा ही भ्रमण करते होंगे। देखिये—दक्षप्रजापति के यज्ञ में बिमानों पर आरूढ़ होकर देवताओं के सपत्नीक आकाश द्वारा यात्रा करने का वर्णन रामचरित मानस में इस प्रकार आया है:—

> किन्नर नाग सिद्ध गंधर्वा। बधुन समेत चले सुर सर्वा॥
> विष्णु विरंचि महेश विहाई। चले सकल सुर यान बनाई॥
> सती बिलोके व्योम बिमाना। चले जात सुंदर बिधि नाना॥
> सुरसुंदरी करहिं कलगाना। सुनत श्रवन छूटत मुनि ध्याना॥
>
> × × × ×

राम-रावणयुद्ध के अवसर पर जहाँ आकाश से ही देवता लोग राम की स्तुति कर रहे थे, वहाँ लेख है:—

> अस्तुति करत देवतन्हि देखे। भयउ एक मैं इन्ह के लेखे॥
> सठहु सदा तुम्ह मोर मरायल। कस कहि कोपि गगन पथ धायल॥
> हाहाकार करत सुर भागे। खलहु जाहु कहँ मोरे आगे॥
> देखि बिकल सुर अङ्गद धाये। कूदि चरन गहि भूमि गिराये॥
>
> × × × ×

इन चौपाइयों से रावण और अङ्गद का आकाश भ्रमण सिद्ध होता है। 'रामचरित-मानस' का लंकाकाण्ड विज्ञान-प्रेमियों को अपने दृष्टिकोण से मनोयोग-पूर्वक मनन करने योग्य है।

---

(१५) ज्योतिष और तुलसीदास

गोसाईं जी के ग्रन्थों को देखने से पता चलता है कि आप ज्योतिष विद्या के प्रकाण्ड पण्डित हों वा न हों, परन्तु उससे अनभिज्ञ न थे। ज्योतिष को वेद का नेत्र कहा गया है। प्राचीनकाल में अन्य विद्याओं की शिक्षा के साथ साथ इस विद्या

की शिक्षा अनिवार्य्यप्राय थी। गणित और फलित इस विद्या के दो मुख्य भेद हैं। कई विद्वानों की धारणा है कि फलित ज्योतिष प्राचीन नहीं है। जो हो, हमें यहाँ पर इस विद्या की प्राचीनता और अर्वाचीनता का विवेचन अभीष्ट नहीं, हमें तो यहाँ यह दिखलाना है कि हमारे कविकुल-तिलक तुलसीदासजी ने अपनी कविता में किस कुशलता के साथ इसका निदर्शन किया है। गोस्वामीजी के समय में ही क्या प्रत्युत उससे कई शताब्दि पूर्व से ही भारतीय गणकों की धारणा बँध गई थी कि पृथिवी में किसी प्रकार की गति नहीं, वरन् सूर्य्य ही पृथिवी की परिक्रमा करता है। इस बात को लक्ष्य में रख कर महाकवि ने रामजन्म-वर्णन में निम्न दोहे का निर्माण किया:-

[१] मास दिवसका दिवस भा, मरम जाना कोइ।
रथ समेत रवि थाकेउ, निसा कवनि विधि होइ॥

यहाँ पर सूर्य्य का चलकर स्थिर होना यदि सीधे अर्थ लिया जाय तो यह सिद्धान्त प्राचीन ज्योतिष के विरुद्ध प्रतीत होता है। परन्तु ऐसी भूल का कारण समय का प्रवाह और प्रभाव मात्र है।

गोस्वामीजीकी दोहावली देखने से उनकी ज्योतिष सम्बन्धी अभिज्ञता का परिद्योतन होता है। देखिये दोहा संख्या ४५६:—

[२] स्रुतिगुन करगुन पुजुग मृग, हय रेवती सखाउ।
देहि लेहि धन धरनि अरु,गएहु न जाइहिंकाउ॥

कहते हैं कि श्रुतिगुण, (अर्थात् श्रवण, नक्षत्र से तीन नक्षत्र श्रवण, धनिष्ठा और शतभिक) करगुण, (अर्थात् हस्त से तीन नक्षत्र हस्त, चित्रा और स्वाती) पुयुग, (अर्थात् पुकार आदिस्थ दो नक्षत्र पुष्य और पुनर्वसु) मृग, (मृगशिरा) हय, (अश्विनी) रेवती और सखाउ (अनुराधा) नक्षत्रों में जो धन पृथिवी में गाड़ कर रखा जाता है वह कदापि नष्ट नहीं होता। अब आगेके दोहावली के दोहा ४५७ को देखिये:—

[३] ऊगुन पूगुन वि अज कृ म, आ भ अ मू गुनु साथ।
हरो धरो गाडो दियो, धन फिर चढ़ै न हाथ॥

इस दोहे में कहते हैं कि ऊगुण, (अर्थात् ऊकार आदिस्थ तीन नक्षत्रों उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ और उत्तर भाद्रपद) पूगुन, (अर्थात् पूकार आदिस्थ तीन नक्षत्रों पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ और पूर्वभाद्रपद) वि, (विशाखा) अज, (रोहणी) कृ, (कृत्तिका) म, (मघा) आ, (आर्द्रा) भ, (भरणी) अ, (अश्लेषा) और मू (मूल) नक्षत्रों में जो धन हरण हो जाय अथवा कहीं रखा हुआ हो किंवा कहीं पृथिवी में गाड़ा गया हो वा किसी को दिया गया हो वह फिर लौट कर नहीं आता।

इसी प्रकार दोहा संख्या ४५८ में लिखा है:—

[४] रबि हर दिसि गुन रस नयन, मुनि प्रथमादिक बार।
तिथि सब-काज-नसावनी, होइ कुजोग विचार॥

अर्थात् रवि, (द्वादशी) हर, (एकादशी) दिशि, (दशमी) गुन, (तृतीया) रस, (षष्ठी) नयन, (द्वितीया) और मुनि (सप्तमी) इन तिथियों में क्रमशः रवि, सोम, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि पड़े तो कुयोग समझना चाहिये। वह तिथि सब कार्य्यों को नष्ट करने वाली होगी।

पुनश्च देखिये दोहा संख्या ४५९:—

(५) ससि सर नव दुइ छ दस गुन, मुनिफल बसु हर भानु।
मेषादिक क्रम तें गनहिं, घात-चंद्र जिय जानु॥

अर्थात् चन्द्रमा यदि इन स्थानों पर हो तो उसे घातक जानो:—

मेष का १, वृष का ५, मिथुन का ९, कर्क का २, सिंह का ६, कन्या का १०, तुला का ३, वृश्चिक का ७, धन का ४, मकर का ८, कुम्भ का ११ और मीन का १२।

पुनः यात्रा प्रकरण में दोहा संख्या ४६० में बतलाते हैं:—

[६] नकुल सुदरसन दरसनी, छेमकरी चक चाप।
दस दिसि देखत सगुन सुभ, पूजहिं मन अभिलाष॥

नकुल, (नेवला), सुदर्शन, (मछली) दर्शनी, (आईना) क्षेमकरी और चक्रवाक का दर्शन अत्यन्त शुभ है।

इसी प्रकार सतसई के—

[७] लगन मुहूरत जोग बल, तुलसी गनत न काहि।
राम भये जेहि दाहिने, सबै दाहिने ताहि॥

दोहे में लग्न, मुहूर्त और योगबल की चर्चा चर्चित है। आकाशस्थ पिण्ड, ग्रह और तारे पूर्व से पश्चिम को चलते हुए एक अहोरात्र में एक बार घूम जाते हैं। पृथिवी की दैनिक गति के कारण राशिचक्र भी २४ घण्टे में एक परिक्रमा कर लेता है। जिससे भिन्न भिन्न समय में भिन्न भिन्न राशियाँ पूर्व क्षितिज में उदित होती हैं। समस्त १२ राशियों का २४ घण्टे में उदय होता है, अतः एक राशि का उदय-काल २ घण्टे समझा जाता है। स्थानों के अक्षांश के अनुसार प्रत्येक राशि का उदयकाल भिन्न होता है। जिस समय जो राशि पूर्वक्षितिज को स्पर्श किये रहती है वही राशि उस समय लग्न कहलाती है। किस समय कौन राशि लग्न है इसकी गणना-लग्न-सारिणी से हो सकती है। सूर्य जिस राशि में होता है वही राशि सूर्योदय के समय लग्न होती है। शुभकाल को मुहूर्त्त कहते हैं। यात्रा, विवाह, अन्यान्य संस्कार

एवं गृह-निर्माणादि कार्यों के भिन्न भिन्न दृष्टिपथ से पृथक् पृथक् मुहूर्त समझे जाते हैं। योग २७ हैं जिनके नाम ये हैं:—

१ विष्कुंभ २ प्रीति ३ आयुष्मान् ४ सौभाग्य ५ शोभन ६ अतिगण्ड ७ सुकर्मा ८ धृति ९ शूल १० गण्ड ११ वृद्धि १२ ध्रुव १३ व्याघात १४ हर्षण १५ वज्र १६ सिद्धि १७ व्यतीपात १८ वरीयान ११ परिघ २० शिव २१ सिद्ध २२ साध्य २३ शुभ २४ शुक्ल २५ ब्रह्म २६ ऐन्द्र २७ वैधृति।

अश्विनी नक्षत्र के आदि बिन्दु से सूर्य एवं चन्द्रमा की दूरियों को अंशों में लिखकर उसे तिगुना कर के गुणनफल में ४० का भाग देकर जितनी लब्धि हो समझिये कि क्रमशः उतने योग व्यतीत हो चुके हैं और अग्रिम योग वर्त्तमान है।

ज्योतिषशास्त्र के इन विचारों का सूक्ष्मातिसूक्ष्म निदर्शन गोस्वामीजी ने सतसई के उल्लिखित दोहे में किया है।

रामचरित मानस में भी जनक की यात्रा वर्णन करते हुए कविराज ने लिखा है:—

[८] दुघरी साधि चले ततकाला। किय विश्राम न मग महिपाला॥

इसमें दुघड़िया यात्रा का वर्णन है। दिन वा रात्रिमान के १६ समभाग करने से २ घड़ी होती है। उद्वेग, अमृत, रोग, लाभ, शुभ, चर और काल ये सात फल निरन्तर क्रमशः सम रूप से वर्तते हैं। इनके मध्य अमृत लाभ अथवा शुभ मुहूर्त में महाराज जनक ने यात्रा की होगी। इसी प्रकार स्थल विशेष पर गोसाईंजी ने यात्रा शकुन, फल और ज्योतिष के किंचित् अन्यान्य प्रकरणों के प्रदर्शन किये हैं, जैसा निम्न पद्यों से प्रकट है:—

बनइ न बरनत बनी बराता। होहिं सगुन सुन्दर सुभ दाता॥
चारा चाष वाम दिसि लेई। मनहुँ सकल मंगल कहि देई॥
दाहिन काग सुखेत सुहावा। नकुल दरस सब काहू पावा॥
सानुकूल बह त्रिविध बयारी। सघट सबाल आव बरनारी॥
लावा फिरि फिरि दरस देखावा। सुरभी सनमुख सिसुहि पिआवा॥
मृग माला फिरि दाहिनि आई। मंगल गन जनु दीन्ह देखाई॥
छेमकरी कह छेम बिसेखी। स्यामा बाम सुतरु पर देखी॥
सनमुख आयउ दधि अरु मीना। कर पुस्तक दुइ विप्र प्रवीना॥

मंगल मय कल्यान मय, अभिमत फल दातार।
जनु सब साँचे होन हित, भये सगुन एक बार॥

इसी प्रकार दोहावली में लिखा है:—

सुधा साधु सुरतरु सुमन, सुफल सुहावनि बात।
तुलसी सीतापति भगति, सगुन सुमंगल सात॥

अर्थात् अमृत, साधु, देव, वृक्ष, पुष्प, सुफल, कल्याणकारिणी वाणी और परमात्मा की भक्ति ये सातों शकुन और सुमंगल प्रद हैं। इसी क्रम से रामचरित मानस आदि ग्रन्थों में यत्र तत्र एतद्विषयक वर्णन आये हैं।

'कवितावली' के अन्त में छन्द सं० १८० में क्षेमकरी को भी यात्रा-काल में दर्शनीय माना है:—

कुंकुम रंग सुअंग जितो, मुखचंद सों चन्द सों होड़ परी है।
बोलत बोल समृद्धि चुवै, अवलोकत सोच विषाद हरी है॥
गौरी कि गंग बिहंगिनि वेष, कि मंजुल मूरति मोद भरी है।
पेखि सप्रेम पयान समै, सब सोच विमोचन क्षेम करी* है॥

(९) लङ्काकाण्ड के निम्न दोहे में महाकवि ने समय-विभागों के कुछ पारिभाषिक शब्द दिये हैं:—

लव निमेष परिमान जुग, बरष कलप शर चंड।
भजसि न मन तेहि राम कहँ, काल जासु कोदंड॥

जितने कालांश में आँख की पलक एक बार गिरे उसे निमेष कहते हैं। निमेष के १/६० अंश को लव कहते हैं। यहाँ काल-परिमाण के लव, निमेष, वर्ष, युग और कल्प पाँच अंशों के नाममात्र दिये हैं। नीचे के चक्र से पाठकों को स्पष्टतया बोध हो जायगा।

६० लव = १ निमेष
१८ निमेष = १ काष्ठा
३० काष्ठा = १ मुहूर्त
३० मुहूर्त = १ अहोरात्र
३० अहोरात्र = १ मास
१२ मास = १ वर्ष

४३२००० वर्ष = कलियुग
८६४००० वर्ष = द्वापर
१२९६००० वर्ष = त्रेता
१७२८००० वर्ष = सत्ययुग

४३२०००० वर्ष = चतुर्युग (महायुग)
१००० महायुग = कल्प

---

* क्षेमकरी एक प्रकार की चील है जिसकी चोंच सफेद होती है। इसके बदन का रंग कत्थई होता है जिसमें किञ्चित पीत रंग की आभा आभासित होती है।

(१०) 'रामचरित-मानस' के अयोध्याकाण्ड के

'आगे राम लखन पुनि पाछे। तापस वेष विराजत काछे॥
उभय मध्य सिय सोहति कैसी। ब्रह्म जीव बिच माया जैसी॥
बहुरि कहौं छवि जस मन बसई। जनु मधु मदन मध्य रति लसई॥
उपमा बहुरि कहौं जिय जोही। जनु बुध बिधु बिच रोहिनि सोही॥

उपर्युक्त पद्यों में उपमा और उत्प्रेक्षा की जह्नवी में ज्योतिषविद्यारूप यमुना के सङ्गम पर वेदान्त-कथा स्वरूप सरस्वती की त्रिवेणी संसृष्ट करके कवि सम्राट ने उसमें लोकादर्श के सुस्वादु रसपूर्ण सोनभद्र के प्रवाह को प्रवाहित कर अनुपम दृश्य उपस्थित किया है। वास्तव में महाकवि यहाँ कलम तोड़ बैठे हैं। यहाँ मुझे प्रसंगतः 'जनु बुध बिधु बिच रोहिनि सोही' पर विचार करना है। सूर्य के चतुर्दिक् परिक्रमा करने वालों में बुध भी एक ग्रह है। चन्द्रमा पृथिवी की उपग्रह है। रोहिणी एक नक्षत्र है। चन्द्रमा जब रोहिणी नक्षत्र पर आता है और बुध उसके पृष्ठ भाग पर रहता है, तो उस समय रोहिणी विशेष दीप्तिमती हो उठती है। गोस्वामी जीने अपने साहित्यिक वर्णनरूप आभूषण में इस ज्योतिष-प्रकरण का रत्नजटित कर अनुपम लावण्य ला दिया है।

ऊपर के उद्धरणों से महाकवि का ज्योतिर्विद्यासम्बन्धी ज्ञान का प्रकटीकरण होता है।

(१६) अङ्कगणित और तुलसीदास

साहित्य के बाद मानव जीवनोपयोगिनी विद्याओं में गणित शास्त्र का ही प्रथम स्थान है। गोसाईं जी गणित के बहुज्ञ हों वा न हों, परन्तु कुछ कुछ जानते अवश्य थे। यों तो राम-भक्ति से जिस विद्या का सम्बन्ध न हो, उसे सीखना अथवा जानना भी ये नहीं चाहते थे। अपने ग्रन्थों में प्रसंगानुसार आपने कतिपय ऐसे पद्य लिखे हैं, जिनसे इनकी गणितसंबन्धी कुछ कुछ जानकारी झलकती है।

अहि रसना थन धेनु रस, गनपति द्विज गुरुवार।
माधव सित सिय जन्म तिथि, सतसैया अवतार॥

'अङ्कानां वामतो गतिः' की रीति से अहिरसना २, धेनुथन ४, रस ६ और गणपति द्विज १ को क्रमशः रखने से १६४२ संवत् निकलता है।

जग ते रहु छत्तीस ह्वै, राम चरन छत्तीन।

इसमें ३६ तथा ६३ का उदाहरण आने से गणित का प्रयोग झलकता है।

अंक रहित कछु हाथ नहिं, सहित अंक दस गून।
तुलसी पति रति अंक सम, सकल साधना सून॥

में दिखलाया है कि शून्य का मूल्य कुछ नहीं होता, पर यदि अंक उसकी बायीं ओर लग जाय तो अंक का मूल्य वही शून्य दस गुना बढ़ा कर आप भी मूल्यवान बन जाता है। पुनश्च

तुलसी अपने राम कहँ, भजन करहु इक अंक।
आदि अन्त निरबाहिबो, जैसे नव को अंक॥
दुगुने तिगुने चौगुने, पंच षष्ठ औ सात।
आठो ते पुनि नौगुने, नौ के नौ रहि जात॥
तुलसी राम सनेह करु, त्यागु सकल उपचार।
जैसे घटत न अंक नौ, नौ के लिखत पहार॥

ऊपर के दोहों में गोस्वामीजी ने ९ अङ्क के साथ अच्छा गणितका कौशल दिखलाया है। नव के दुगुने, तिगुने, चौगुने, पचगुने, छःगुने, सतगुने अठगुने, अथवा नवगुने भी करो तौ भी उन अङ्कों को जोड़ देने से नव ही नव रहता है। नव के पहाड़े को लिखने में नव अङ्क की हानि नहीं होती, जैसे

९ का ९ = ९
१८ का १ + ८ = ९
२७ का २ + ७ = ९
३६ का ३ + ६ = ९
४५ का ४ + ५ = ९
५४ का ५ + ४ = ९
६३ का ६ + ३ = ९
७२ का ७ + २ = ९
८१ का ८ + १ = ९
९० का ९ + ० = ९

मौलिक अङ्क ९ ही तक हैं। नव के पहाड़े का आप ध्यान पूर्वक अवलोकन करें। दहने से एक एक अंक घटता हुआ अन्त में शून्य तक पहुँच गया और बायीं ओर से बढ़ता बढ़ता नव तक चला आया। सब अंकों को पृथक पृथक जोड़ देने से नव ही नव रह जाता है। गोसाईंजी ने इस गणितके सिद्धान्त को अपने वेदान्त में इस प्रकार मिला दिया:—

नौ के नौ रहि जात हैं, तुलसी किये विचार।
रम्यौ राम इमि जगत में, नहीं द्वैत विस्तार॥

अङ्कों की इस मौलिकता को महाकवि ने भलीभाँति समझा था। इसी प्रकार 'रामचरित-मानस' में भी यत्र तत्र गणना के कुछ अंक मात्र आये हैं। एक, दश, शत, सहस्र, दश सहस्र, लक्ष कोटि और पद्म तक की प्रसंगानुसार संख्याएँ भी आयी हैं। गीतावली में १२५०० को कवि ने इस प्रकार लिखा है:—

'सहस द्वादश पंचशत में कछुक है अब आयु'

इन सब उद्धरणों से सिद्ध होता है कि गोसाईंजी अङ्कगणित से भी अपरिचित वा अनभिज्ञ नहीं थे।

इसी प्रकार दोहावली में महाकवि ने यह दोहा लिखा है:—

"नाम चतुर्गुण पंचयुत, दूने हर वसु शेष।
तुलसी सकल चराचर, राम नाम मय पेष॥"

अर्थात्—किसी भी नाम के अक्षरों का चौगुणा कर के उसमें पाँच जोड़ने से जो फल प्राप्त हो, उसको दूना कर के आठ से भाग देने से जो शेष बचेंगे वह एक रा और दूसरा म है, अर्थात राम हैं।

उदाहरण—लक्ष्मण एक नाम है जिसमें तीन अक्षर हैं जिसके चौगुने बारह हुए, इस बारह में पाँच मिला देने से योगफल सत्तरह हुआ जिसका दूना चौंतीस होता है जिसमें आठ का भाग देने से शेष दो रहेगा और यही राम के युग्माक्षर हैं।

इस दोहे से गोस्वामी जी का गणित-कौशल पूर्णतः प्रतीत होता है। आप इसको गणित के ढंग पर यों समझे कि किसी भी संख्या के चौगुने में पाँच जोड़ कर यदि योगफल का दूना करें और उसमें आठ का भाग दें तो प्रत्येक दशा में शेष दो ही बचेंगे।

मान लिया कि संख्या "अ" है

$$= \frac{(\text{अ} \times ४ + ५)२}{८}$$

$$= \frac{(४\text{अ} + ५)२}{८}$$

$$= \frac{८\text{अ} + १०}{८}$$

$$= \frac{८\text{अ}}{८} + \frac{१०}{८} = \text{अ} + १ + \frac{२}{८}$$

ऐसी दशा में आप विचार करें कि वास्तव में समस्त क्रिया के अनन्तर इसको इस प्रकार भी लिख सकते हैं:—(संख्या × ४ + ५) २ = (संख्या + १) ८ + २ प्रत्येक दशा में २ का ही शेष रहना अनिवार्य है। सचमुच यह एक

गणित सम्बन्धी कौशल है जो गोस्वामी जी के मस्तिष्क में पूर्णरूप से विद्यमान था। हाँ यह बात दूसरी है कि अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार वह प्रत्येक विद्या का उतना ही प्रयोग करते थे जितने का राम से संबन्ध समझते थे। गणित हो वा खगोल, इतिहास हो वा भूगोल, जिसका राम से सम्बन्ध नहीं, वह उनके लिये व्यर्थ था। जैसा कहा है:—

चतुराई चूल्हे परे, यम गहि ज्ञानहि खाय।
तुलसी प्रेम न राम पद, सब जर मूल नसाय॥

फलतः आपके मस्तिष्क में गणित विद्या भी अन्य कई विद्याओं के समान विद्यमान थी। चाहे गणित के बड़े भारी विद्वान हों अथवा न हों इसके रसिक अवश्य थे।

(१७) कला कौशल और तुलसीदास

किसी देश के अभ्युदय के कारणों में से कलाकौशल एक मुख्य कारण है। जिस देश में इसका अभाव है, वह देश सदैव दरिद्र बना रहता है! प्राचीन भारत की साम्पत्तिक दशा विशेष चढ़ी बढ़ी थी, क्योंकि यहाँ का कला कौशल बहुत ही उन्नतावस्था को प्राप्त था।

गोस्वामी तुलसीदासजी के ग्रन्थों से भारत की कला कौशल सम्बन्धी अवस्था का पता लगाना अत्यन्त कठिन हैं; क्योंकि आप पुराकालीन कवि नहीं थे। यहाँ प्रसंगवशात् हमें यह दिखलाना हैं कि हमारे महाकवि ने यत्किंचित् इस सम्बन्ध में जहाँ लेखनी उठाई है उनके उन लेखों से पता चलता है कि इस ज्ञान से भी आप परिचित थे। देखिये बालकाण्ड में राजा जनक की यज्ञशाला का वर्णन—

पुर पूरब-दिसि गे दोउ भाई। जहँ धनु-मख हित भूमि बनाई॥
अति विस्तार चारु गच ढारी। बिमल-बेदिका रुचिर सँवारी॥
चहुँ दिशि कञ्चन मञ्च बिसाला। रचे जहाँ बैठहिं महिपाला॥
तेहि पाछे समीप चहुँ पासा। अपर मंच मण्डली बिलासा॥
कछुक ऊँचि सब भाँति सुहाई। बैठहि नगरलोग जहँ आई॥
तिन्ह के निकट बिशाल सुहाये। धवल धाम बहुबरन बनाये॥
जहँ बैठे देखहिं सब नारी। जथाजोग निज-कुल अनुहारी॥
पुर बालक कहि कहि मृदु बचना। सादर प्रभुहिं देखावहिं रचना॥

इन ऊपर के लेखों से पता चलता है कि गोस्वामीजी को सभा-मण्डप प्रधान मञ्च और यथायोग्य मनुष्यों के बैठाने के सम्बन्ध में पूरी जानकारी थी। स्त्रियों के बैठने योग्य पृथक स्थान बनाये, आज कल जैसी खिचड़ी नहीं पकाई।

आगे विवाह-मण्डप की रचना देखिये:—

बहुरि महाजन सकल बोलाये आइ सबन्हि सादर सिर नाये ॥
हाट बाट मन्दिर सुर-बासा। नगर सवाँरहु चारिहु पासा ॥
हरषि चले निज निज गृह आये। पुनि परिचारक बोलि पठाये ॥
रचहु बिचित्र बितान बनाई। सिर धरि बचन चले सचु पाई ॥
पठये बोलि गुनी तिन्ह नाना। जे बितान बिधि कुसल सुजाना ॥
बिधिहि बन्दि तिन्ह कीन्ह अरम्भा। बिरचे कनक कदलि के खम्भा ॥

हरित-मनिन्ह के पत्र फल, पदुमराग के फूल।
रचना देखि बिचित्रि अति, मन बिरञ्चि कर भूल ॥

बेनु हरित-मनि-मय सब कीन्हे। सरल सपरन परहिं नहिं चीन्हे ॥
कनक कलित अहि बेलि बनाई। लखि नहिं परइ सपरन सुहाई ॥
तेहि के रचि पचि बन्ध बनाये। बिच बिच मुकुता-दाम लगाये ॥
मानिक मरकत कुलिस पिरोजा। चीरि केरि पचि रचे सरोजा ॥
किये भृङ्ग बहु रङ्ग बिहङ्गा। गुञ्जहिं कूजहिं पवन प्रसंगा ॥
सुर-प्रतिमा खम्भन्हि गढ़ि काढ़ी। मङ्गल-द्रव्य लिये सब ठाढ़ी ॥
चौके भाँति अनेक पुराई। सिन्धुर मनि-मय सहज सुहाई ॥

सौरभ-पल्लव सुभग सुठि, किये नीलमनि कोरि।
हेम-बौर मरकत-घवरि, लसत पाट-मय डोरि ॥

रचे रुचिर बर वन्दनवारे। मनहुँ मनोभव फन्द सँवारे ॥
मङ्गल-कलस अनेक बनाये। ध्वज पताक पट चँवर सुहाये ॥
दीप मनोहर मनि-मय नाना। जाइ न बरनि बिचित्र बिताना ॥
जेहि मण्डप दुलहिनि बैदेही। सो बरनइ असि मति कवि केही ॥
दूलह राम रूप-गुन-सागर। सो बितान तिहुँ लोक उजागर ॥
जनक-भवन कै सोभा जैसी। गृह गृह पति पुर देखिय तैसी ॥
जेहि तिरहुति तेहि समय निहारी। तेहि लघु लाग भुवन दस-चारी ॥
जो सम्पदा नीच गृह सोहा। सो बिलोकि सुरनायक मोहा ॥

बसइ नगर जेहि लच्छि करि, कपट नारि नर बेष।
तेहि पुर कै सोभा कहत, सकुचहिं सारद सेष ॥

ऊपर के पद्यों में कवि की काव्यप्रतिभा और उनकी कला कौशल सम्बन्धी जानकारी संदेह वर्तमान है। उस पर टीका टिपणी की आवश्यकता नहीं है।

आये दिन संसार इस बात को स्वीकार कर चुका है कि विविध विध के वस्त्रों का बनाना भारतवर्ष की प्राचीन कला है। आर्य्यों के विवाह-संस्कार में निम्न-लिखित मन्त्र आता है:—

ॐ या आकृतन्न वयं या अतन्वत याश्चा देवीस्तन्तू ततन्थ।
तास्त्वा देवीर्जरसे संव्ययस्वायुष्मतीदं परिधत्स्व वासः।

इसका भावार्थ यह है कि वर अपने हाथ के बुने हुए वस्त्रों को प्रेम-पूर्वक वधू को पहनने के निमित्त दे। इसके आगे पारस्कर गृह्य सूत्र का जो मंत्र उपवस्त्रों के सम्बन्ध का है उससे भी इस मत की ही पुष्टि होती है कि प्राचीनकाल में आर्यों के प्रत्येक गृह में चरखे और करघे चलते थे। वस्त्र बुनने की शिक्षा का स्रोत वेदों से ही निसृत हुआ है। वस्त्र बुनने वालों को 'वयित्री','वाय' और सिरी कहते थे। मयूख और वेमन् इत्यादि औजारों के वर्णन भी प्राचीन ग्रन्थों और संहिताओं में पाये जाते हैं। 'औशनसी' स्मृति में दरजी को 'सूचिक' और रँगरेज को 'रंजक' लिखा है। रँगने वाली स्त्रियों को 'रजयित्री' कहा जाता था। ब्राह्मण ग्रन्थों में सूई को 'सूची' और 'वेशी' भी लिखा गया है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में वर्णन है कि सूई सोने, चाँदी और लोहे की बनती है। कैंची को 'भुरिज' कहते थे। तार्प्य, शाशूल, द्रापि, उष्णीष, अन्तरीय, उत्तरीय, पेशस्, नीवि, तूष, और बल्कल ये विविध नाम सिये हुए वस्त्रों तथा उपवस्त्रों के लिखे पाये जाते हैं, इत्यादि।

भारतवर्ष के महान से महान पुरुष और बड़े से बड़े घरों की स्त्रियाँ भी इस कला में निपुण थीं। गोस्वामी जी ने रामचरितमानस में एक बात बड़े मार्के की बात लिखी है, जिस पर मैं अपने पाठकों का ध्यान आकर्षित करता हूँ। उत्तर-काण्ड में मर्यादा पुरुषोत्तम राम के अभिषेक के अनन्तर जहाँ समागत सज्जनों की बिदाई होने लगी है, वहाँ लिखा है :—

सुग्रीवहिं प्रथमहिं पहिराये। भरत वसन निज हाथ बनाये॥

अर्थात् सुग्रीव को सब से प्रथम भरतजी ने अपने हाथों से बुने हुए वस्त्र पहनाये। इससे सिद्ध होता है कि भरत जैसे महापुरुष भी पूर्वकाल में अपने हाथों से वस्त्र बुनने में संकोच तो क्या अभिमान समझते थे।

दुःख की बात है कि समुद्र के पुल बाँधने के संबन्ध में वर्णन करते हुए गोस्वामीजी प्राचीनकला-कौशल की पूरी स्थापना नहीं कर सके। यहाँ तक कि

नाथ नील नल कपि दोउ भाई। लरिकाई ऋषि आसिष पाई॥

चौपाई देकर नल-नील जैसे शिल्पी इञ्जीनियरों के सुयश को धूल में मिला कर सब गुड़ गोबर कर दिया। इन्हें तो रामचन्द्र की महिमा पर ही सारा काम निकालना था; अतः आगे इसका और स्पष्टीकरण करते हैं :—

महिमा यह न जलधि की बरनी। पाहन गुन न कपिन की करनी॥

श्री रघुबीर प्रताप ते, सिन्धु तरे पाषान।
ते मतिमंद जे राम तजि, भजहिं जाइ प्रभु आन॥

वास्तव में इसे भूल नहीं कह सकते, क्योंकि अपने चरित-नायक में उनका प्रगाढ़ प्रेम था और असीम आस्था थी, प्रेम को नेत्र नहीं होते।

(१८) छन्दः शास्त्र और तुलसीदास

जिस शास्त्र के पढ़ने से विविध विधि के छन्दों के लक्षण, गणों के भेद, प्रस्तार, नष्ट और उद्दिष्ट इत्यादि का पूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है, उसे छन्दः शास्त्र वा पिङ्गल कहते हैं। 'पिङ्गल' नामक आचार्य ने इस शास्त्र का आविष्कार किया था, अतः इस विद्या ही का नाम पीङ्गल पड़ गया। महाकवि तुलसीदास जो इस शास्त्र के पारंगत पण्डित थे। कई छन्दों पर तो इनका पूर्ण अधिकार प्रतीत होता है। चौपाई, दोहा, सोरठा, हरिगीतिका और छप्पय इत्यादि छन्दों की रचना करते समय तो जान पड़ता है कि वाणी इनकी वाणी पर नृत्य करती रहती थी। गोसाईं जी रामभक्ति के अतिरिक्त अन्य अत्यन्त उपयोगी विषय पर भी लेखनी उठाना नहीं चाहते थे अतः छन्दशास्त्र विषयक कोई स्वतन्त्र रचना इनकी नहीं पायी जाती है। हाँ सतसई में प्रसंगतः निम्न बातें एतद्विषयक आयी हैं:—

मन भय जर सत लाग युत, प्रगट छन्द जग होय।
सो घटना शुभदा सदा, कहत सुकवि सब कोय॥

अर्थात् मगण, नगण, भगण, यगण, जगण, रगण, सगण, और तगण से तुली हुई लघु तथा गुरु के विवेक से परिमार्जित कविता की ही सुकवि सराहना करते हैं। इन गणों के लक्षण ये हैं:—

नाम गण	चिह्न	लक्षण
म गण	ऽ ऽ ऽ	तीनों गुरु मात्रा
य ,,	। ऽ ऽ	आदि लघु मात्रा
र ,,	ऽ । ऽ	मध्य लघु मात्रा
स ,,	। । ऽ	अन्त्य गुरु मात्रा
त ,,	ऽ ऽ ।	अन्त्य लघु मात्रा
ज ,,	। ऽ ।	मध्य गुरुमात्रा
भ ,,	ऽ । ।	आदि गुरुमात्रा
न ,,	। । ।	तीनों लघुमात्रा

प्रमाणः—

"मस्त्रिगुरुस्त्रिलघुश्च नकारो भादि गुरुस्तत आदि लघुर्यः।
जो गुरु मध्यगतो रल मध्यः सोऽन्त्यगुरुः कथितोऽन्त्यलघुस्तः"

इन आठ गणों में म, न भ, य को शुभ एवं ज, र, स, त, को कविजन अशुभ बतलाते हैं अर्थात् अशुभ गणों को ग्रन्थारम्भ में नहीं लाते। अब आगे कविराज ने गुरु और लघु के लक्षण एवं उदाहरण दिये हैं:—

दोहा—जत समान तत जान लघु, अपर वेद गुरु मान।
संयोगादि विकल्प पुनि, पद न अंत कहँ जान॥

अ, इ, उ, ऋ और लृ ये पाँचो समान स्वर कहलाते हैं स्वयं भी लघु हैं और जिन व्यञ्जनों के साथ इन स्वरों की मात्रा मिली हो वे भी लघु ही समझे जाते हैं। गुरु मात्राएँ चार हैं, १ दीर्घवर्ण संयुक्ताक्षर का पूर्ववर्त्तीवर्ण ३ अनुस्वार युक्त-वर्ण और ४ विसर्ग युक्तवर्ण। पदों के अन्त्याक्षर भी विकल्प से गुरु होते हैं।

प्रमाणः—

संयुक्ताद्यं दीर्घं सानुस्वारं विसर्गसंमिश्रम्।
विज्ञेयमक्षरं गुरुं पादान्तस्थं विकल्पेन॥

अग्रिम दोहे में गोस्वामीजी ने गुरु-लघु के उदाहरण दिये हैं:—

दुइ गुरु सीता सार गण, राम सो गुरु लघु होइ।
लघु गुरु रमा प्रतच्छ गण, युग लहु हर गण सोइ॥

'सीता' शब्द में दोनों गुरु ऽऽ, 'राम' शब्द में एक गुरु एक लघुऽ।, 'रमा' शब्द में एक लघु एक गुरु ।ऽ और 'हर' शब्द में दोनों लघु ॥ मात्राएँ हैं।

आगे के दोहे में कविवर कहते हैं:—

दीरघ लघु करि तहँ पढ़ब, जहँ लह मुख विश्राम।
प्राकृत प्रगट प्रभाव यह, जनति बुधाबुध बाम॥

अर्थात्—जहाँ पढ़ने में मुख की सुविधा हो, वहाँ दीर्घ मात्रा का उच्चारण भी लघु जैसा करना चाहिये। यह उपर्युक्त प्रभाव (नियम) बुधजनों के बीच प्राकृतिक (स्वाभाविक) ही प्रगट हुआ, पर अबुध जन सदा इससे बाम (विपरीत) ही चलते हैं।

सतसई के तृतीय सर्ग में भक्ति-विषयक-प्रसंग में कवि-सम्राट ने कुछ छन्दः शास्त्र के गणाष्टक की चर्चा की है:—

भगण जगण कासो करसि, राम अपर नहिं कोय।
तुलसी पति पहिचान बिनु, कोउ तुल कबहु न होय॥

भगण के आदि में गुरु होता है, जैसे तामस। जगण के मध्य में गुरु होता है जैसे विरोध। अर्थात् तमोगुण के वशीभूत होकर किससे विरोध कर रहा है। राम के ऊपर कोई नहीं। बिना पति को पहचाने कोई शुद्ध नहीं हो सकता।

तुलसी तगण विहीन नर, सदा नगण के बीच।
तिनहिं यगण कैसे लहै, परे सगण के कीच॥

तगण की देवता आकाश है जो निर्मल है। नगण में तीनों वर्ण लघु होते हैं जैसे नरक। यगण का फल बुद्धि-वृद्धि है। सगण का फल मृत्यु अर्थात् जन्म-मरण है।

आगे गणों का शुभाशुभ बतलाते हैं:—

इन्द्र रवनि सुर देव-ऋषि, रुकुमिणिपति शुभ जान।
भोजन दुहिता काक अलि, आनँद अशुभ समान॥

शब्द	अर्थ	गण	आकार	प्रकार	देवता	फल	संज्ञा
इन्द्र रवनि	इन्द्राणी	मगण	SSS	शुभ	भूमि	श्रीदाता	देव
सुर	अमर	नगण	।।।	,,	शेष	सुखद	,,
देवऋषि	नारद	भगण	S।।	,,	चन्द्र	यशदाता	दास
रुकुमिणिपति	बिहारी	यगण	।SS	,,	जल	बुद्धिवृद्धि	,,
भोजन	अहार	जगण	।S।	अशुभ	रवि	रोगप्रद	उदासीन
दुहिता	पुत्रिका	रगण	S।S	,,	अग्नि	दाहक	शत्रु
काक	बलिभच्छ	सगण	।।S	,,	काल	मृत्युद	,,
अलि	शारङ्ग	तगण	SS।	,,	आकाश	शून्य	उदासीन

सदा मगण पर प्रीति जेहि, जानु नगण सम ताहि।
यगण ताहि जययुत रहत, तुलसी संशय नाहिं॥
भगण भक्तिकर भरम तजि, तगण सगण बिधि होय।
सगण सुभाय समुझि तजो, भजे न दूषण कोय॥

कहते हैं कि मगण, नगण, यगण और भगण ये प्रीति जय और भक्तिप्रद हैं अर्थात् शुभ हैं अन्य तगण सगण, जगण और रगण अशुभ हैं।

छन्दःशास्त्र सम्बन्धी इतनी बातें गोसाईं जी ने अपनी सतसई में लिखी हैं।

रामचरित मानस—इस महाकाव्य में दो प्रकार के छन्द आये हैं (१) मात्रिक छन्द (२) वर्णवृत्त।

मात्रिक छन्द

रामायण में केवल आठ प्रकार के मात्रिक छन्द आये हैं। (१) चौपाई (२) दोहा (३) सोरठा (४) चौपैया (५) डिल्ला (६) तोमर (७) हरिगीतिका (८) त्रिभङ्गी।

[चौपाई]

इस छन्द में चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में सोरह मात्राओं का होना आवश्यक है। चरणान्त में जगण और तगण न हो। इसी छन्द को पादाकुलक और रूप चौपाई भी कहते हैं। गोस्वामीजी ने अनुकूला, डिल्ला, नवमालिनी, विद्युन्माला, दोधक, भ्रमर, विलासिता, तामरस, स्वागता, पणव और चम्पकमाला इत्यादि छन्दों की परिगणना भी चौपाई छन्द में ही की है। जो हो; सोरह मात्राओं से युक्त चोपाइयों का ही इनमें बहुमूल्य है।

उदाहरण

बन दुख नाथ कहे बहुतेरे। भय विषाद परिताप घनेरे॥
प्रभु बियोग लवलेस समाना। सब मिलि होहिं न कृपानिधाना॥

[दोहा]

इस छन्द में चार चरण होते हैं। प्रथम और तृतीय चरण में तेरह तेरह मात्राएँ अथ च द्वितीय और चतुर्थ में ग्यारह ग्यारह मात्राएँ होती हैं।

उदाहरण

जाके बल लवलेस ते, जितेउँ चराचर झारि।
तासु दूत हौं जाहि की, हरि आनेउ प्रिय नारि॥

गोस्वामी जी ने अपने ग्रन्थों में बहुतेरे ऐसे दोहे लिखे हैं, जिनके प्रथम और तृतीय चरणों में बारह बारह मात्राएँ हैं। उदाहरणः—

विनय कीन्ह चतुरानन, प्रेम पुलकि अति गात।
सोभा सिन्धु बिलोकत, लोचन नाहिं अघात॥

दोहे को उलट देने से सोरठा छन्द बन जाता है। जैसेः—

जितेउँ चराचर झारि, जाके बल लवलेस ते।
हरि आनेउ प्रिय नारि, तासु दूत हौं जाहि की॥

[सोरठा]

इस छन्द में चार चरण होते हैं। प्रथम और तृतीय चरण में ग्यारह ग्यारह अथच द्वितीय और चतुर्थ चरण में तेरह तेरह मात्राएँ होती हैं।

उदाहरण

मुक्ति जन्म महि जानि, ज्ञानखानि अघहानि कर।
जहँ बस शंभु भवानि, सो कासी सेइय कस न॥

सोरठे को उलट देने से दोहा बन जाता है। जैसेः—

ज्ञान खानि अघहानि कर, मुक्ति जन्म महि जनि।
सो कासी सेइय कसन, जहँ बस शंभु भवानि॥

[चौपैया]

इस छन्द में चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में ३०-३० मात्राएँ होती हैं। दशवीं, अट्ठारहवीं और तीसवीं मात्राओं पर यति होती है।

[उदाहरण]

सुर मुनि गंधर्वा, मिलि करि सर्वा, गे विरंचि के लोका।
सँग गोतनु धारी, भूमि विचारी, परम विकल भय सोका॥
ब्रह्मा सब जाना, मन अनुमाना, मोरे कछु न बसाई।
जा करि तैं दासी, सो अविनासी, हमरो तोर सहाई॥

[डिल्ला]

इस छन्द के चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में सोरह सोरह मात्राएँ होतो हैं। चरणान्त में भगण का होना अनिवार्य है।

उदाहरण

मामभिरक्षय रघुकुल नायक। धृत वर चाप रुचिरकर सायक॥
मोह महाघन-पटल विभंजन। संसय विपिन अनल सुर रंजन॥

[तोमर]

तोमर छन्द के चार चारण होते हैं। प्रत्येक चरण में बारह बारह मात्राएं होती हैं। चरणान्त में गुरु-लघु का होना आवश्यक है।

उदाहरण

जब कीन्ह ते पाखंड। भय प्रगट जन्तु प्रचण्ड॥
बैताल भूत पिशाच। कर धरे धनुष नराच॥

[हरिगीतिका]

हरि—इस छन्द के चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में अट्ठाईस मात्राएँ होती हैं। १६ वीं और २८ वीं मात्राओं पर यति होती है। गोस्वामीजीने कहीं १४ वीं मात्रा पर ही प्रथम यति दी है। चारणान्त में लघु-गुरुवर्ण आये हैं।

उदाहरण

उपदेश यह जेहि तात तुमते, राम सिय सुख पावहीं।
पितु मातु प्रिय परिवार पुर सुख, सुरति बन बिसरावहीं॥

तुलसी सुतहिं सिख देइ आयसु, देइ पुनि आसिख दई।
रति होउ अविरल अमल सिय, रघुबीर पद नित नित नई॥

[त्रिभंगी]

इस छन्द में चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में ३२—३२ मात्राएँ होती हैं। १० वीं १८ वीं २६ वीं और ३२ वीं मात्राओं पर यति होती हैं।

उदाहरण

ब्रह्माण्डनिकाया, निर्मित माया, रोम रोम प्रति, वेद कहै।
मम उर सो वासी, यह उपहासी, सुनत धीर मति, थिर न रहै॥
उपजा जब ज्ञाना, प्रभु मुसकाना, चरित बहुत बिधि, कीन्ह चहै।
कहि कथा सुनाई, मातु बुझाई, जेहि प्रकार सुत, प्रेम लहै॥

वर्णवृत्त

रामचरित मानस में वर्णवृत्त ग्यारह हैं (१) अनुष्टुप (२) इन्द्रवज्रा (३) तोटक (४) नगस्वरूपिणी (५) भुजङ्गप्रयात् (६) मालिनी (७) रथोद्धता (८) बसन्ततिलका (९) वंशस्थविलम् (१०) शार्दूलविक्रीडित और (११) स्रग्धरा। ये सभी छन्द प्रायः संस्कृत में ही व्यवहृत हुए हैं, अतः इन छन्दों के लक्षण भी संस्कृत के ग्रन्थानुसार ही दिये जाते हैं। देखिये कविकुल तिलक कालिदास विरचित श्रुतबोधः—

[अनुष्टुप]

श्लोके षष्ठं गुरुं ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम्।
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः॥

अर्थात् इस छन्द में चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में आठ अक्षरों का होना आवश्यक है। प्रथम और तृतीय पाद के सप्तम अक्षर गुरु होते हैं। चारो चरणों में पंचमवर्ण का लघु और षष्ठ का गुरु होना अनिवार्य हैं। द्वितीय और चतुर्थ चरणों में सप्तमवर्ण लघु होना चाहिये।

उदाहरण

रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतुष्टये।
ये पठन्ति नरा भक्त्या, तेषां शम्भुः प्रसीदति॥

[इन्द्रवज्रा]

यस्यां त्रिपट् सप्तममक्षरं स्याद्ध्रस्वं सुजंघे नवमञ्च तद्वत्।
गत्या विलज्जीकृतहंसकान्ते तामिन्द्रवज्रां ब्रुवते कवीन्द्राः॥

अर्थात्—इस छन्द में चार चरण होते हैं प्रत्येक चरण के तीसरे छठें,

सातवें और नवें अक्षर का ह्रस्व होना आवश्यक है। 'वृत्तरत्नाकर' कार ने लिखा है 'स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ तगौ गः'। दो तगण एक जगण और दो गुरु प्रत्येक चरण में आने से इन्द्रवज्रा छन्द होता है, जिसका स्वरूप SSISSIISISS ऐसा होगा।

उदाहरण

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं सीतासमारोपितवामभागम्।
पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम्॥

यहाँ पर कविजी ने तीन चरण इन्द्रवज्रा के लिखकर चतुर्थ चरण उपेन्द्र-वज्रा के रख दिये हैं। अतः यह छन्द इन्द्रवज्रा के अवान्तर भेद 'शाला' और 'हँसी' से संमिश्रित हो गया है।

[तोटक]

सतृतीयकषष्ठमनन्तरे नवमं विरतिप्रभवं गुरु चेत्।
घनपीनपयोधरभारनते ननु तोटकवृत्तमिदं कथितं॥

उदाहरण

जयराम रमारमनं शमनं। भवताप भयाकुल पाहि जनं।
अवधेश सुरेश रमेश विभो। शरणागत माँगत पाहि प्रभो॥

[नगस्वरूपिणी]

द्वितुर्यषष्ठमष्टमं गुरु प्रयोजितं यदा।
तदा निवेदयन्ति तां बुधा नगस्वरूपिणीम्॥

इस छन्द में चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण १ जगण १ रगण १ लघु तथा १ गुरु का होता है अर्थात् प्रत्येक चरण में द्वितीय, चतुर्थ, षष्ठ और अष्टम वर्ण का गुरु होना अनिवार्य है, जिसका ISISISIS ऐसा स्वरूप होगा। इसीको 'प्रमाणिका' भी कहा है, यथा

"प्रमाणिका जरौ लगौ"

उदाहरण

नमामि भक्तवत्सलं। कृपालुशीलकोमलं॥
भजामि ते पदाम्बुजं। अकामिनां स्वधामदं॥

[भुजङ्गप्रयात]

यदाद्यं चतुर्थं तथा सप्तमं चेत्तथैवाक्षरं ह्रस्वमेकादशाद्यम्।
शरच्चन्द्रविद्वेषिवक्त्रारविन्दे तदुक्तं कवीन्द्रैर्भुजङ्गप्रयातम्॥

भुजङ्गप्रयात छन्द में चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में चार यगण होना आवश्यक है, जैसा 'वृत्तरत्नाकरकार ने कहा है

'भुजङ्गप्रयातं भवेद्यैश्चतुर्भिः'

इस वृत्त के प्रथम, चतुर्थ, सप्तम और दशम वर्णों का लघु होना निश्चित है। इसके प्रत्येक चरण का रूप ।SS।SS।SS।SS ऐसा होता है। उदाहरण

नमामीशमीशान निर्वाण रूपं। विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपं॥
अजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं। चिदाकाशमाकाशवासं भजेहं॥

[मालिनीवृत्त]

प्रथममगुरुषट्कं विद्यते यत्र कान्ते तदनु च दशमं चेदक्षरं द्वादशान्त्यम्।
गिरिभिरथ तुरङ्गैर्यत्र कान्ते विरामः सुकविजनमनोज्ञा मालिनी सा प्रसिद्धा॥

इस छन्द के चारो चरण पन्द्रह पन्द्रह अक्षरों के होते हैं अर्थात् प्रत्येक चरण में दो नगण, एक मगण और दो यगण आते हैं। इसके चरणों में प्रत्येक का स्वरूप ।।। ।।। SSS ।SS ।SS इस प्रकार का होता है। कहा भी है

'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः

उदाहरण

अतुलितबलधामं स्वर्णशैलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं,
रघुपतिवरदूतं वातजातं नमामि॥

[रथोद्धतावृत्त]

"रान्नराविह रथोद्धता लगौ"

इस छन्द के प्रत्येक चारों चरणों में ग्यारह अक्षर होते हैं अर्थात् १ रगण, १ नगण पुनः १ रगण अन्त में १ लघु और १ गुरु का आना निश्चित है, जिसका स्वरूप S।S ।।। S।S ।S ऐसा होता है।

उदाहरण

कुन्द इन्दु दरगौर सुन्दरं अम्बिकापतिमभीष्ट सिद्धिदम्।
कारुणीककलकंजलोचनं नौमिशङ्करमनङ्गमोचनम्॥

[बसन्ततिलका]

उक्ता वसन्त तिलका तभजाज गौगः सिंहोद्धतेऽयमुदिता मुनि काश्यपेन।
उद्धर्षिणीति गदिता मुनिशैतवेन श्रीपिङ्गलेन कथिता मधुमाधवीति॥

इस वसन्ततिलकाके प्रत्येक चरण में एक तगण, एक भगण, दो जगण, और अन्त में दो गुरु वर्ण होते हैं। इसका स्वरूप इस प्रकार का होगा SS । S ।। । S ।। S । SS

उदाहरण

नान्यास्पृहा रघुपतेहृदयेऽस्मदीये
सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा ।
भक्तिं प्रयच्छ रघुपुङ्गवनिर्भरां मे
कामादिदोषरहितं कुरु मानसं च ॥

[वंशस्थ]

'जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ'

इस वृत्त के प्रत्येक चरण में बारह बारह अक्षर होते हैं अर्थात् एक जगण, एक तगण, एक जगण और एक रगण रहता है। प्रत्येक चरण का स्वरूप । S । SS ।। S । S । S इस प्रकार का होगा।

उदाहरण

प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः ।
मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य मे सदास्तु सा मन्जुलमङ्गलप्रदा ॥

[शार्दूलविक्रीड़ित]

"सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्"

इस वृत्त में प्रत्येक चरण में उन्नीस अक्षर होते हैं अर्थात् एक मगण, एक सगण, एक जगण, एक सगण, दो तगण और एक गुरु मात्रा का होना आवश्यक है। इसका स्वरूप SSS।।S।S।।।SSS।SS।S पहली यति बारह अक्षरों पर और दूसरी उन्नीसवें अक्षर पर होती है।

उदाहरण

यन्मायावशवर्त्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवा सुराः
यत्सत्वादमृषेव भाति सकलं रज्जौ यथाऽहेर्भ्रमः ।
यत्पादप्लव एक एवहि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां
वन्देहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम् ॥

[स्रग्धरा]

"म्रौ भ्नौ यानां त्रयेणात्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्"

इस वृत्त के प्रत्येक चरण में इक्कीस अक्षर होते हैं अर्थात् एक मगण, एक रगण, एक भगण, एक नगण और तीन यगण का होना आवश्यक है। इसका

स्वरूप SSSSISSIIIIIISSISSISS इस प्रकार होगा। सात सात अक्षरों पर प्रत्येक चरण में तीन यति होती है।

उदाहरण

केकीकण्ठाभनीलं सुरवरविलसद्विप्रपादाब्जचिन्हं
शोभाढ्यं पीतवस्त्रं सरसिजनयनं सर्वदा सुप्रसन्नम्।
पाणौ नाराचचापं कपिनिकरयुतं बन्धुना सेव्यमानं
नौमीड्यं जानकीशं रघुवरमनिशं पुष्पकारूढरामम्॥

कवितावली में सवैया, कवित्त, धनाक्षरी, छप्पय और झूलना ये पाँच प्रकार के छन्द पाये जाते हैं, जिनके लक्षण और उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

सवैया।

यह वर्णवृत्त है। इसमें चार चरण होते हैं। गण विचार से सवैया के १२ प्रकार हैं।

संख्या	नाम	लक्षण
१	मदिरा	जिसमें ७ भगण और १ गुरु हों।
२	किरीटी	" ८ भगण हों।
३	मालती	" ७ भगण और २ गुरु हों।
४	चित्रपदा	" ७ भगण और १ लघु हों।
५	मल्लिका	" १ लघु और ७ भगण हों।
६	माधवी	" १ लघु, ७ भगण और २ गुरु हों।
७	दुर्मिलिका	" २ लघु, ७ भगण और १ गुरु हों अथवा जिसमें ८ सगण हों।
८	कमला	" २ लघु, ७ भगण और २ गुरु हों। अथवा जिसमें ८ सगण और एक गुरु हों।
९	मंजरी	" १ लघु ७ भगण, १ गुरु और १ लघु हों।
१०	ललिता	" २ लघु और ८ भगण हों। अथवा जिसमें ८ सगण और २ गुरु हो।
११	सुधा	" २ लघु, ७ भगण, १ गुरु और १ लघु हों।
१२	अलसा	" ७ भगण और १ रगण हों।

उदाहरण के लिये कवितावली में किरीटी, मालती, दुर्मिलिका और कमला इन चारों के ही प्रकारविशेष मिलते हैं। ये ही चार सुगम, सुपाठ्य और सुश्राव्य भी होते हैं।

किरीटी ।

जाके बिलोकत लोकप होत, बिसोक लहैं सुरलोक सुठौरहिं ।
सो कमला तजि चंचलता, करि कोटि कला रिझवै सिरमौरहिं ॥
ताको कहा यक है तुलसी, तू लजायन माँगत कूकुर कौरहिं ।
जानकी जीवन को जन ह्वै, जरिजाउ सो जीभ जो जाँचत औरहिं ॥

मालती ।

दूलह श्री रघुनाथ बने, दुलही सिय सुंदरि मन्दिर माहीं ।
गावति गीत सबै मिलि सुन्दरि, वेद जुवा जुरि विप्र पढ़ाहीं ॥
राम को रूप निहारति जानकी, कंकन के नग की परछाहीं ।
यातें सबै सुधि भूलि गई, कर टेकि रही पल टारति नाहीं ॥

दुर्मिलिका ।

तनकी दुतिस्याम सरोरुह लोचन, कंजकी मंजुलताई हरैं ।
अति सुन्दर सोहत धूरि भरे, छबि भूरि अनंग की दूरीधरैं ॥
दमकैं दँतियां दुति दामिनि ज्यों, किलकैं कल बाल विनोद करैं ।
अवधेस के बालक चारि सदा, तुलसी मन मन्दिर में बिहरैं ॥

कमला ।

पद कोमल स्यामल गौर कलेवर, राजत कोटि मनोज लजाये ।
कर बान सरासन सीस जटा, सरसीरुहलोचन सोन सुहाये ॥
जिन देखे सखी सत भायहुते, तुलसी तिन तौ मन फेरि न पाये ।
यहि मारग आजु किशोर बधू, मृगनैनी समेत सुभाय सिधाये ॥

गोसाईं जी ने किन्हीं छन्दों की रचना में उपर्युक्त नियमों की अवहेलना भी कर दी है। उदाहरण के लिये उत्तरकाण्ड के छन्द संख्या १२, ३४ और ४९ दिये जा सकते हैं, जिनके चारों चरणों के अक्षर वा गण समान नहीं हैं। महाकवि की किञ्चित् असावधानी वा मुद्रकों की भूल वश ही ऐसी घटना संघटित हुई होगी।

छप्पय ।

इस छन्द में छः चरण होते हैं जिनमें प्रथम चार रोला के और अन्तिम दो उल्लाला के रहते हैं। यह मात्रिक छन्द है। रोला में २४-२४ और उल्लाला में २८-२८ मात्राएँ होती हैं। उल्लाला के चरणों में १५ मात्राओं पर प्रथम और २८ वीं मात्रा पर द्वितीय यति होती है।

उदाहरण ।

डिगति उर्वि अति गुर्वि, सर्व पब्बै समुद्र सर ।
ब्याल बधिर तेहि काल, बिकल दिगपाल चराचर ॥

दिग्गयन्द लर खरत, परत दसकंठ मुक्ख भर।
सुर विमान हिमवान भान, संघटित परस्पर॥
चौंके बिरंचि संकर सहित, कोल कमठ अहि कलमल्यौ।
ब्रह्मांड खंड कियो चंड धुनि, जबहिं राम शिव धनुदल्यौ॥

कवित्त।

यह छन्द चार चरणों का होता है। प्रत्येक चरण में प्रायः ३० वा ३१ अक्षर होते हैं जिनमें १६ अक्षरों के अनन्तर पहली यति होती है। इस छन्द में गण अथवा मात्रा का विचार नहीं रहता।

उदाहरण।

सुंदर बदन सरसीरुह सुहाये नैन, मंजुल प्रसून माथे मुकुट जटनिके।
अंसनि सरासन लसत सुचि कर सर, तून कटि मुनिपट लूटकपटनिके॥
नारि सुकुमारि संग जाके अंग उबटिकै, विधि बिरचे बरूथ विद्युत छटनिके।
गोरे को बरन देखे सो नोन सलोनो लागै, साँवरे बिलोके गर्व घटत घटनिके॥

घनाक्षरी।

इसमें चार चरण होते हैं। गण अथवा मात्रा का विचार इस छन्द में भी नहीं होता। प्रत्येक चरण में ३१, ३२ अथवा ३३ अक्षर तक होते हैं।

उदाहरण

जलज नयन जल जानन जटा है सिर, जोवन उमंग अंग उदित उदार हैं।
साँवरे गोरेके बीच भामिनी सुदामिनीसी, मुनिपट धरे उर फूलनिके हार हैं॥
करनि सरासन सिलीमुख निखंग कटि, अतिही अनूप काहू भूपके कुमार हैं।
तुलसी बिलोकि कै तिलोकके तिलक तीनि, रहे नर नारि ज्यौं चितेरे चित्रसार हैं॥

झूलना।

यह मात्रिक छन्द है। इसके भी चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में ३७ मात्राएँ होती हैं। पहली गति २० मात्राओं पर और दूसरी ३७ वीं पर होती हैं।

उदाहरण

सुभुज मारीच खर त्रिसिर दूषन बालि
दलत जेहि दूसरो सर न साँध्यौ।
आनि पर बाम बिधि बाम तेहि राम सों,
सकत संग्राम दसकंध काँध्यौ॥

समुझि तुलसीस कपि कर्म घर घर घैरु,
बिकल सुनि सकल पाथोधि बाँध्यौ।
बसत गढ़लंक लंकेस नायक अछत,
लंक नहिं खात कोउ भात राँध्यौ॥

गीतावली और विनयपत्रिका में गोसाईंजी ने उत्तमोत्तम गीतिकाएँ लिखी हैं जिनकी राग-रागिनियों के वर्णन की यहाँ आवश्यकता नहीं। सतसई और दोहावली में केवल दोहे हैं, जिसका लक्षण पीछे लिखा जा चुका है।

रामलला नहछू—इस ग्रन्थ को कविराज ने सोहर छन्दों में लिखा है। स्त्रियों के गाने योग्य है। चार पदों का एक छन्द माना गया है। प्रत्येक चरण में २० से २३ तक मात्राएँ पायी जाती हैं।

उदाहरण—

आदि सारदा गनपति गौरि मनाइय हो।
रामलला कर नहछू गाइ सुनाइय हो॥
जेहि गाये सिधि होइ परम निधि पाइय हो।
कोटि जनम कर पातक दूरि सो जाइय हो॥

वैराग्य सन्दीपनी—इस ग्रन्थ में चौपाई, दोहे और सोरठे मात्र हैं जिनके लक्षण पीछे लिखे जा चुके हैं। उदाहरण भी वहीं अङ्कित हैं। बरवै रामायण में केवल बरवै छन्द हैं। इस छन्द में दो चरण होते हैं जिनके प्रत्येक चरण में १९ मात्राएँ रहती हैं।

उदाहरण

वेद नाम कहि अँगुरिन खंडि अकास।
पठयो सूपनखाहिं लखन के पास॥

जानकीमंगल और पार्वतीमंगल को महाकवि ने मंगल नामक छन्द में लिखा है, जिसके दो चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में २० मात्राएँ रखी हैं।

उदाहरण

जनक नाम तेहि नगर बसै नर नायक।
सब गुन अवधि न दूसर पटतर लायक॥

इन ग्रन्थों के अन्त भाग में हरिगीतिका छन्द भी आये हैं। रामाज्ञा—में केवल दोहे हैं।

सुतरां महाकवि तुलसीदास जी विरचित समस्त ग्रन्थ छन्दः शास्त्र के नियमों से सुसंगठित हैं। गोस्वामीजी ने अपने ग्रन्थों में अल्प छन्दों के प्रयोग किये हैं।

महाकवि केशव की भाँति निज पाण्डित्य प्रदर्शन का भाव इनमें नहीं था कि पग पग पर अपूर्व पद्यों वा छन्दों के प्रयोग करते। ऐसा करने से काव्य के रसों का प्रवाह प्रवाहित नहीं कर पाते। शीघ्र शीघ्र छन्दों के परिवर्तन से कथाओं और उपाख्यानों के क्रम में शैथिल्य प्रतीत होता। अस्तु; रचना-विचार से भी आपकी कविता का संसार आदर करता है और करेगा।

(१६) राजनीति और तुलसीदास

गोस्वामी तुलसीदास जी राजनीति-शास्त्र के भी प्रौढ़ पण्डित थे, परन्तु उनके मस्तिष्क में प्रजातन्त्र-शासन-प्रणाली का स्यात् संस्कार तक न था। वे एकतन्त्र शासन के प्रतिपादक थे। अथवा यों कहिये कि आप सुराज्यवादी थे, स्वराज्यवादी नहीं। इन दोनों शासन-पद्धतियों में क्या अन्तर है, इस पर विवेचन करने में कुछ विषयान्तर की प्रतीति होती है, क्योंकि मेरा विषय उसी राजनीति से सम्बन्ध रखता है, जो तुलसीदास की थी। गोस्वामी जी के भौतिक नेत्रों के सम्मुख अत्याचारी मुगलों की साम्राज्य और मानसिक चक्षुओं के समक्ष आदर्श 'राम-राज्य' था। मुगलों की निरंकुशता और प्रजोत्पीड़न से उनका साम्राज्य विध्वस्त एवं धूलि-धूसरित हो गया। क्यों न हो; कवि के शब्दों में वैसा ही होना भी चाहता था:—

टंक टंक ह्वै परत गिरि, साखा सहज खजूरि।
गरहिं कुनृप करि २ कुनय, सो कुचाल भुवि भूरि॥

अथवा

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी॥

वास्तव में राज्य प्रजावर्ग की सम्पत्ति और स्वत्व है। वह एक धरोहर है जो राजा के सन्निकट सुरक्षा के भाव से सुपुर्द किया हुआ रहता है। राजा केवल प्रबन्धक की स्थिति में है। अयोग्य राजा अपने राज्य को आमोद-प्रमोद और विषय-सुख का साधन समझ लेते हैं। 'रामचरित-मानस' में राजा का आसन बहुत ही उच्च और उत्तरदायित्व पूर्ण रखा गया है। भरत जैसे साक्षात धर्म मूर्त्तिमान् महानुभाव भी अपने को इस आसन पर आसीन होने योग्य नहीं समझते थे। उन्होंने कहा है:—

मोहि हठि राज देइहहु जबहीं। राज रसातल जाइहिं तबहीं॥

इसी प्रकार धर्म-धुरीण, वीराग्रगण्य लक्ष्मण जी ने भी मर्य्यादा पुरुषोत्तम के समक्ष अपने को राज-पद के लिये सर्वथा अनधिकारी बतलाया है:—

धर्मनीति उपदेसिय ताही। कीरति भूति सुगति प्रिय जाही॥
नरवर धीर धरमधुरधारी। निगम नीति के ते अधिकारी॥
मैं सिसु प्रभु सनेह प्रतिपाला। मन्दर मेरु कि लेइ मराला॥

गोस्वामीजी ने सारे राज्य-शासन तत्वरत्न को

मुखिया मुख सो चाहिये, खान पान कहँ एक।
पालै पोसै सकल अँग, तुलसी सहित विवेक॥

इस पद्य-संजूषा में बन्द कर दिया है। इसके आगे आप स्वयं लिखते हैं :—

राज-धर्म सरबस इतनोई।

वास्तव में मनुष्य-समाज में एक राजा की वही स्थिति होती है, जो शरीर में मुख की। मुख में नाना प्रकार के भक्ष्य, भोज्य, लेह्य और पेय पदार्थ दिये जाते हैं, परन्तु मुख सबको यथाविधि पाकस्थली में पहुँचा कर आप जल से आचमन कर पुनः पूर्ववत् हो जाया करता है। उसी प्रकार राजा के पास जो धन आवे, उसे सदा प्रजा-जन के हित में स्थापन करता रहे, तो उभय पक्ष का कल्याण होता है। गोस्वामी जी ने 'तुलसी सतसई' में इस सम्बन्ध के कतिपय पद्य लिखे हैं :—

माली भानु कृसानु सम, नीति निपुन महिपाल।
प्रजा भाग बस होहिंगे, कबहुँ कबहुँ कलिकाल॥

अर्थात् राजा में माली, सूर्य और अग्नि इन तीनों के गुण होने चाहिये। वास्तव में माली का सर्वस्व बाग है और बाग का एक मात्र रक्षक माली होता है। जिस प्रकार माली वाटिका को सदा निरापद रख कर उसके पौधों को सिञ्चनादि से उनके पल्लवित, पुष्पित और फलित होने में साहाय्य-प्रदान करता है, उसी प्रकार राजा का धर्म है कि वह देश को सर्वथा वाह्य शत्रुओं के आक्रमण से सुरक्षित रखता हुआ प्रजाओं को अभ्युदय एवं निःश्रेय के सन्मार्ग पर ले चले। देखिये 'रामचरित-मानस' के उत्तरकाण्ड में गोस्वामी जी ने प्रजाओं की सुख-समृद्धि एवं उनकी धर्म-परायणता का कैसा अच्छा चित्र चित्रित किया है :—

बैर न करै काहु सन कोई। राम प्रताप विषमता खोई॥

बरनाश्रम निज निज धरम, निरत वेदपथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं, नहिं भय शोक न रोग॥

दैहिक दैविक भौतिक तापा। रामराज नहिं काहुहि व्यापा॥
सब नर करहिं परसपर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत स्रुति रीती॥
चारिहु चरन धरम जग माहीं। पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं॥
राम भगति-रत नर अरु नारी। सकल परम गति के अधिकारी॥
अलप मृत्यु नहिं कवनिउँ पीरा। सब सुन्दर सब विरुज सरीरा॥

नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छनहीना॥
सब निर्दंभ धर्मरत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी॥
सब गुणज्ञ पंडित सब ज्ञानी। सब कृतज्ञ नहिं कपट सयानी॥
रामराज कर सुख सम्पदा। बरनि न सकहिं फनीस सारदा॥
सब उदार सब पर उपकारी। बिप्र चरन सेवक नर नारी॥
एक नारि ब्रत रत सब भारी। ते मन बच क्रम पति हितकारी॥

× × × ×

माली का कार्य्य जिस प्रकार उद्यान को सौन्दर्यपूर्ण और दर्शनीय बनाना है, उसी प्रकार एक उत्कृष्ट राजा अपने राज्य को बाह्य सौन्दर्य-युक्त भी बनाता है। देखिये—राम राज्य की सुन्दरता:—

फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन। रहहिं एक सँग गज पंचानन॥
खग मृग सहज बैर बिसराई। सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई॥
कूजहिं खग मृग नाना बृन्दा। अभय चरहिं बन करहिं अनन्दा॥
सीतल सुरभि पवन बह मन्दा। गुञ्जत अलि लेइ चलि मकरन्दा॥
लता बिटप माँगे मधु चवहीं। मन भावतो धेनु पय स्रवहीं॥
सस सम्पन्न सदा रह धरनी। त्रेता भइ कृतजुग कै करनी॥
प्रगटी गिरिन्ह विविध मन खानी। जगदातमा भूप जग जानी॥
सरिता सकल बहहि बर बारी। सीतल अमल स्वादु सुखकारी॥
सागर निज मर्यादा रहहीं। डारहि रतन तटन्हि नर लहहीं॥
सरसिज-संकुल सकल तड़ागा। अति प्रसन्न दस दिसा अभागा॥

बिधु महि पूरि मयूखन्हि, रबि तप जेतनेहिं काज।
माँगे बारिद देहिं जल, रामचन्द्र के राज॥

ये सब उल्लिखित गुण माली के हैं, जो एक श्रेष्ठ राजा में निवास करते हैं। राजा में दूसरा गुण सूर्य का होना चाहिये। सूर्य की अविद्यमानता में भूलोक पर निविड़ तम फैल जाता है, परन्तु सूर्योदय होते ही गिरि-गह्वर-निहित अन्धकार भी प्रकाश-प्राचुर्य से विलीन हो जाता है। तदनुसार ही राजा को उचित है कि अपने राज्य में अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करे। रामचरित-मानस के उत्तर-काण्ड में इस विषय को बड़ी ही रोचक रीति से लिखा गया है:—

जब ते राम प्रताप खगेसा। उदित भयेउ अति प्रबल दिनेसा॥
पूरि प्रकास रहेउ तिहुँ लोका। बहुतन्ह सुख बहुतन्ह मन सोका॥
जिन्हहि सोक ते कहहुँ बखानी। प्रथम अविद्या निसा नसानी॥
अघ उलूक जहँ तहाँ लुकाने। काम क्रोध कैरव सकुचाने॥
विविध कर्म गुन काल सुभाऊ। ए चकोर सुख लहहिं न काऊ॥
मत्सर मान मोह मद चोरा। इन्ह कर हुनर न कवनिहुँ ओरा॥

धरम तड़ाग ज्ञान विज्ञाना। ए पंकज विकसे विधि नाना ॥
सुख सन्तोष विराग विवेका। विगत सोक ए कोक अनेका ॥
यह प्रताप रवि जाके, उर जब करइ प्रकास।
पछिले बाढ़हिं प्रथम जे, कहे ते पावहिं नास ॥

तीसरा गुण राजा में अग्नि की दाहकता के समान अन्यायियों, अत्याचारियों, आततायियों और—

'खलस्य दण्डः सुजनस्य पूजा'

के सम्बन्ध का है। प्रजावर्ग में सुख-शान्ति स्थापन को लक्ष्य में रख कर दुष्टों का दलन भी राजा का एक मुख्य धर्म है। यदि वास्तव में राजा अपनी दण्ड-नीति पर दृढ़ रहे, तो दुष्टों को दुष्टता करने का साहस नहीं हो सकता। 'राम-चरित-मानस' के किष्किन्धाकाण्ड में पावस-ऋतु का वर्णन करते हुए महाकवि ने उदाहरणालंकार के स्वरूप में इस सिद्धान्त की पुष्टि की है:—

अर्क जवास पात बिनु भयऊ। जस सुराज खल उद्यम गयऊ ॥

अर्थात् पावस ने जिस प्रकार अर्क-जवास को शोभा हीन कर दिया है उसी प्रकार उत्तम राजा दुष्टों को निश्शक्त बना देते हैं। सुराज्य वही है जहाँ राजा के भय से अनाचारियों को अनाचार करने की शक्ति ही प्राप्त न हो। राजा में चार गुणों का निवास—

'साम दाम अरु दण्ड विभेदा'

कहा गया है। जिस राज्य में अधिक दण्ड होता है उसका अर्थ यह है कि वहाँ विशेष अपराध भी होता है, अथच वहाँ अपराधियों का बाहुल्य है।

अथवा यह भी समझा जा सकता है कि अधर्मी और अन्यायी राजा अपनी प्रजाओं को अनुचित पथ पर चलने के निमित्त बाध्य और विवश करता है, पर प्रजाएँ जब उसकी आज्ञा को नहीं मानतीं तब बदले के भाव से प्रेरित होकर वह दुष्ट राजा प्रजा-पीडन करता है। 'तुलसी सतसई' में महाकवि तत्सामयिक छोटे छोटे माण्डलिक हिन्दू राजाओं और मुगल सम्राट के सम्बन्ध में लिखते हैं:—

गौड़ गँवार नृपाल कलि, जवन महामहिपाल।
साम न दाम न भेद विधि, केवल दण्ड कराल ॥
काल तोपची तुपक महि, दारू अनल कराल।
पाप पलीता लगि रही, गोला पुहुमीपाल ॥

अर्थात् इस समय साम, दाम और भेद से काम न लेकर गँवार राजे तथा यवन-सम्राट केवल कराल दण्ड का ही प्रयोग करते हैं। प्रजाओं पर रात्रिन्दिव अत्याचार किया जा रहा है।

प्रजाओं में भेद डालना यह कूटनीति है। आदर्श-राज्य वही है, जहाँ राजा केवल 'साम और दाम' की नीति से प्रजावर्ग पर अपना शासन स्थापित रखता है। गोस्वामी जी रामराज्य का वर्णन करते हुए दण्ड और भेद को परिसंख्यालंकार की शैली पर यतियों के कर और नर्त्तक समाज में स्थापित करते हैं—

दंड जतिन्ह कर भेद जहँ, नर्त्तक नृत्य-समाज।
जीतेहुं मन जग सुनिय अस, रामचंद्र के राज॥

जिस राजा के राज्य में प्रजाएँ इस प्रकार धर्म-पथ पर आरूढ़ होंगी, वहाँ ही अभ्युदय और निःश्रेयस का साम्राज्य स्थापित हो सकता है। उसीको सुराज्य कहेंगे। जैसा कहा है:—

अलिगन गावत नाचत मोरा। जनु सुराज मंगल चहुं ओरा॥

आगे प्रजाओं से करप्राप्त करने को रीति लिखते हैं:—

बरखत हरखत लोग सब, करखत लखत न कोय॥
तुलसी भूपति भानुसम, प्रजा भाग बस होय॥

अहह! कैसी समुन्नत और राजनीतिज्ञतापूर्ण प्रणाली का निर्देश महाकवि ने किया है। तत्वतः सूर्य भूलोक के जलाशयों से ही जल को बाष्प बना कर आकाश मण्डल में ले जाता है, पर यह रीति ऐसी अदृष्ट है कि कोई इस क्रिया को भौतिक नेत्रों से नहीं देखता। जब उसी बाष्प से मेघ बनकर मूसलधार वृष्टि होने लगती है, तब पुनः सारी वसुन्धरा जलनिमग्न हो जाती है। राजा को ठीक इसी शैली का अनुसरण करना चाहिये। उसका धर्म है कि वह प्रजाओं से यथा-योग्य उनकी आय और अवस्था के अनुसार शनैः शनैः निश्चित कर लिया करे, जिस से प्रजावर्ग के चित्त पर किसी प्रकार का क्लेश और क्षोभ न हो। उस लिये हुए धन को राजा अपने राज्य में विद्यालयों, अनाथालयों, धर्मशालाओं और सुन्दर पथों के निर्माण में व्यय कर के सब को दिखला दे कि तुम्हारे धन को हमने इन सब उपयोगी कार्यों में लगाया है। ऐसे ही राज्य में प्रजाजन सुख समृद्धि से सम्पन्न रहते हैं।

गोस्वामीजी ने किष्किन्धाकाण्ड के शरद्-वर्णन में राजा के दो और गुणों का उल्लेख किया है:—

पङ्क न रेनु सोह अस धरनी। नीति निपुन नृप की जसि करनी॥

जिस राज्य में आलस्य और अकर्मण्यता की कीचड़ नहीं उत्पन्न होती और न नैराश्य और असन्तोष की धूलि ही उड़ती है, उसी राज्य में अभ्युदय-देव का दर्शन हो सकता है। राजाजनक के विभव और जनकपुर की स्त्रियों के संबन्ध में गोसाईंजी ने लिखा है:—

बनै न बरनत नगर निकाई। जहाँ जाइ मन तहँइ लोभाई ॥
चारु बजार विचित्र अँबारी। मनिमय बिधि जनु स्वकर सँवारी ॥
धनिक बनिक बर धनद समाना। बैठे सकल बस्तु लै नाना ॥
चौहट सुन्दर गली सुहाई। संतत रहहिं सुगंध सिंचाई ॥
मंगलमय मंदिर सब केरे। चित्रित जनु रतिनाथ चितेरे ॥
पुर नर नारि सुभग सुचि संता। धर्मशील ज्ञानी गुनवंता ॥
अति अनूप जहँ जनक निवासू। बिथकहिं बिबुध बिलोकि बिलासू ॥
होत चकित चित कोट बिलोकी। सकल भुवन सोभा जनु रोकी ॥

धवल धाम मनि पुरटपट, सुघटित नाना भाँति।
सिय निवास सुन्दर सदन, सोभा किमि कहि जाति ॥

सुभग द्वार सब कुलिस कपाटा। भूप भीर नट मागध भाटा ॥
बनी बिसाल बाजि गजसाला। हय गज रथ संकुल सब काला ॥
सूर सचिव सेनप बहुतेरे। नृप गृह सरिस सदन सब केरे ॥

× × × ×

इसीको आदर्श राज्य कहते हैं। राजाका धर्म है कि वह प्रजाओं को समृद्धि-शाली बनावे।

जेहि विधि सुखी होहिं पुर लोगा।
करहिं कृपानिधि सोइ सोइ योगा ॥

मर्यादा पुरुषोत्तम के हृदय में प्रजा-वात्सल्य एवं लोक-रञ्जन का भाव पर्याप्त रूप से विद्यमान था। कहीं कहीं तो प्रजा-रञ्जन की मात्रा सीमा का उल्लङ्घन कर अतिरूप में परिणत हो गयी है। एक साधारण प्रजा के प्रमादपूर्ण कथन पर सीता का परित्याग इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

सिय निन्दक अघ ओघ नसाये।
लोक बिसोक बनाइ बसाये ॥

तक तो अत्यन्त ठीक था, पर—

चरचा चरनि सों चरची जान मनि रघुराइ।
दूत मुख सुनिलोक धुनि घर घरनि बूझी आइ ॥
प्रिया निज अभिलाष सचि कहि कहति सिय सकुचाइ।
तीय तनय समेत तापस पूजि हौं बन जाइ ॥
धीर धरि रघुबीर भोरहिं लिये लषन बोलाइ।
तात तुरतहिं साजि स्यन्दन सीय लेहु चढ़ाइ ॥
बालमीकि मुनीस आस्रम आइयहु पहुँचाइ।
'भलेहि नाथ' सुहाथ माथे राखि राम रजाइ।
चले तुलसी पालि सेवक धरम अवधि अघाइ ॥

में जो निर्दोषा जानकी का देश निकाला दिया है वह—

अति सर्वत्र वर्जयेत्

के अन्तर्गत आ गया है। प्रजा वा लोक को प्रसन्न करना अच्छा है, पर उसमें किसी निरपराध का बलि-प्रदान तो अत्यन्त अनुचित है।

'रामचरित-मानस' का अवधकाण्ड राजनीति-रत्न की खान है। महाराज दशरथ की प्रबल इच्छा श्री रामचन्द्र को युवराज बनाने की है, पर गुरु वसिष्ठ से आदेश लेते हैं:—

नाथ राम करिये युवराजू। करिय कृपा करि करिय समाजू॥
जो पाँचहिं मत लागै नीका। करहु हरषि हिय रामहिं टीका॥

परन्तु वसिष्ठ भी स्वयं सम्मति न देकर द्विजों की सभा करके प्रस्तावमात्र करते हैं:—

सब द्विज देहु हरषि अनुसासन। रामचन्द्र बैठहिं सिंहासन॥

अन्त में सर्व सम्मति से यह स्वीकृति हुई:—

अब मुनिवर विलम्ब नहिं कीजै। रामचन्द्र कहँ तिलक करीजै॥

पर, राम को राज्य-तिलक के स्थान में वनवास मिला। वन-यात्रा की आज्ञा माता कौशल्या दे चुकीं, पर शोक से व्याकुल होकर धर्म-पथ-परायण राम से कहती हैं:—

बेगि प्रजा दुख मेटब आई। जननी निठुर बिसरि जनि जाई।

अहह! राजमाता के हृदय में प्रजाओं के दुःख का कैसा दाह था!!! वह पुनः कहती हैं:—

राज देन कहि दीन्ह बन, मोहि न दुख लवलेस।
तुम बिन भरतहिं भूपतिहिं, प्रजहिं प्रचण्ड कलेस॥

प्रजाओं के क्लेश के सामने माता कौशल्या अपने पुत्र-वियोग-जनित दुःख को भी भूल गयीं। अब लक्ष्मण को रामचन्द्र जी वन-गमन का निषेध करते हुए समझाते हैं:—

मैं वन जाउँ तुमहिं लै साथा। होइहिं सब बिधि अवध अनाथा॥
गुरु पितु मातु प्रजा परिवारू। सब कहँ परै दुसह दुख भारू॥
रहहु करहु सब कर परितोषू। न तरु तात होइहिं बड़ दोषू॥
जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी॥

भगवान के हृदय में प्रजाओं के प्रति कैसा प्रगाढ़ प्रेम था, इसका कुछ पता

तो पाठकों को अवश्य मिल गया होगा। इसका प्रतिफल यह हुआ कि प्रजाओं का राम के वियोग में जीवन दुःखमय हो गया। वन-गमन-काल की दशा देखियेः—

चलत राम लखि अवध अनाथा। बिकल लोग लागे सब साथा॥
कृपासिंधु सब बिधि समुझावहिं। फिरहिं प्रेमबस पुनि फिरि आवहिं॥
लागत अवध भयावनि भारी। मानहुँ कालराति अँधियारी॥
घोर जंतु सम पुर नरनारी। डरपहिं एकहि एक निहारी॥
घर मसान जनु परिजन भूता। सुत हित मीत मनहुँ जमदूता॥
बागन बिटप बेलि कुम्हिलाहीं। सरित सरोवर देखि न जाहीं॥

हय गज कोटिन्ह केलि मृग, पुर पसु चातक मोर।
पिक रथांग सुक सारिका, सारस हंस चकोर॥

राम वियोग बिकल सब ठाढ़े। जहँ तहँ मनहुँ चित्र लिखि काढ़े॥
नगर सकल बन गहबर भारी। खग मृग विपुल सकल नर नारी॥
विधि केकई किरातिनि कीन्हीं। जेइ दव दुसह दसहु दिसि दीन्हीं॥
सहि न सके रघुवर बिरहागी। चले लोग सब व्याकुल भागी॥
सबहि विचार कीन्ह मन माहीं। राम लषन सिय बिनु सुख नाहीं॥
जहाँ राम तहँ सबै समाजू। बिनु रघुबीर अवध केहि काजू॥
चले साथ अस मंत्र दृढ़ाई। सुरदुर्लभ सुख सदन बिहाई॥
राम चरन पंकज प्रिय जिनहीं। विषय भोग बस करैं कि तिनहीं॥

बालक वृद्ध विहाइ गृह, लगे लोग सब साथ।
तमसातीर निवास किय, प्रथम दिवस रघुनाथ॥

रघुपति प्रजा प्रेम-बस देखी। सदय हृदय दुख भयउ बिसेखी॥
करुनामय रघुनाथ गोसाईं। बेगि पाइ अहि पीर पराई॥
कहि सप्रेम मृदु बचन सुहाए। बहु बिधि राम लोग समझाए॥
किए धरम-उपदेस घनेरे। लोग प्रेम बस फिरहिं न फेरे॥
सील-सनेह छाँड़ि नहिं जाई। असमंजस बस भे रघुराई॥
लोग सोग-श्रम-बस गए सोई। कछुक देव-माया मति मोई॥
जबहिं जाम जुग जामिनि बीती। राम सचिव सन कहेउ सप्रीती॥
खोज मारि रथ हाँकहु ताता। आन उपाय बनिहि नहिं बाता॥

राम-लषन-सिय जान चढ़ि, सम्भु चरन सिर नाइ।
सचिव चलायउ तुरत रथ, इत उत खोज दुराइ॥

जागे सकल लोग भये भोरु। गे रघुनाथ भयउ अति सोरु॥
रथ कर खोज कतहुँ नहिं पावहिं। राम राम कहि चहुँदिसि धावहिं॥
मनहुँ बारिनिधि बूड़ जहाजू। भयउ बिकल बड़ बनिक समाजू॥
एकहिं एक देहिं उपदेसू। तजे राम हम जानि कलेसू॥

निंदहि आपु सराहहिं मीना। धिक जीवन रघुबीर बिहीना॥
जो पै प्रिय बियोग बिधि कीन्हा। तौ कस मरन न माँगे दीन्हा॥
एहि बिधि करत प्रलाप कलापा। आये अवध भरे परितापा॥
बिषम बियोग न जाइ बखाना। अवधि आस सब राखहिं प्राना॥

राम दरस हित नेम ब्रत, लगे करन नर नारि।
मनहुँ कोककोकी कमल, दीन बिहीन तमारि॥

देखिये पाठक! इसका नाम है राज-भक्ति। इसको कहते हैं प्रजाओं की अपने राजा के प्रति श्रद्धा और सच्ची भक्ति।

राम-वन-गमन के अनन्तर भरत को गुरु और मन्त्रि-मण्डल तथा प्रजावर्ग ने राजा बनाना चाहा और अनेकों यत्न किये पर महामति भरत ने स्पष्ट उत्तर दिया:—

पितु सुरपुर सिय राम बन, करन कहहु मोहि राज।
एहि ते जानहु मोर भल, कै आपन बड़ काज॥
ग्रह ग्रहीत पुनि बात बस, तापर बीछी मार।
ताहि पिआइय बारुनी, कहहु कवन उपचार॥

अन्त में सब मंत्रियों ने भरत के समक्ष यह प्रस्ताव किया:—

कीजिय गुरु आयसु अवसि, कहहिं सचिव कर जोरि।
रघुपति आये उचित जस, तब तस करब बहोरि॥

परन्तु भरत ने स्पष्ट उत्तर दे दिया:—

हित हमार सियपति सेवकाई। सो हरि लीन्ह मातु कुटिलाई॥
मैं अनुमान दीख मन माहीं। आन उपाय मोर भल नाहीं॥
सोक समाज राज केहि लेखे। लखन राम सियपद बिनु देखे॥

भरत जी रामचन्द्र महाराज को वापस लाने के लिये गये, बहुतेरा आग्रह किया। गुरु बसिष्ठ जी राम से कहते हैं:—

भरत बिनय सादर सुनिय, करिय बिचार बहोरि।
करब साधु मत लोक मत, नृप नय निगम निचोरि॥

अर्थ यह हुआ कि राजनीति के साथ साथ वेद के विधान एवं साधुमत तथा लोकमत पर भी पूर्ण ध्यान देना उचित है। अन्त में रामचन्द्र ने भरत को हाईकोर्ट का फैसला सुना दिया।

पालहु प्रजहिं कर्म मन बानी। काल कर्म गति अघटित जानी॥

कैसा सुन्दर उच्च आदेश है, घोर विपत्ति में भी राम को न प्रजाएँ भूलती हैं और न प्रजाओं को राम। लंका-विजय के अनन्तर अयोध्या-प्रत्यावर्त्तन के समय

राम के आगमन की सूचना पाकर अयोध्या निवासियों की प्रसन्नता और उल्लास का ठिकाना न रहा :—

समाचार पुरबासिन्ह पाये। नर अरु नारि हरषि सब धाये॥
दधि दूर्बा रोचन फल फूला। नव तुलसीदल मंगल मूला॥
भरि भरि हेमथार बर भामिनि। गावति चलीं सिंधुरागामिनि॥
जो जैसहि तैसहि उठि धावहिं। बाल वृद्ध कहँ संग न लावहिं॥
एक एक सन पूछहिं धाई। तुम देखे कृपाल रघुराई॥

आवत देखे लोग सब, कृपासिंधु भगवान।
नगर निकट प्रभु प्रेरेउ, उतरेउ भूमि बिमान॥

राम-दर्शन के निमित्त अपार जनता की भीड़ थी। गुरु बसिष्ठ, पुरोहित, ऋषि-महर्षि, राज्य-परिवार और प्रजा-वर्ग सभी उमड़ पड़ा था। भगवान सब से समान भाव से यथायोग्य मिलना भी चाहते थे अतः—

अमित रूप प्रगटे तेहि काला। यथाजोग मिलि सबहिं कृपाला॥
कृपादृष्टि रघुबीर बिलोकी। किये सकल नरनारि बिसोकी॥
छनमह सबहिं मिले भगवाना। उमा मरम यह काहु न जाना॥

कथन का भाव यह कि राम ने किसी की उपेक्षा न की, बड़ी शीघ्रता के साथ बड़े छोटे सब से मिले। परमात्मा ने अयोध्या की शोकसन्तप्ता दुःखिनी प्रजा के जिस प्रकार दिन पलटाये तदनुसार समस्त देश की प्रजा को राम-राज्य के दर्शन करावें।

समस्त भूमण्डल के चक्रवर्ती राजा रामचन्द्र सभा में बैठ कर साधारण प्रजाओं से हृदय खोलकर कहते हैं—

जो अनीति कछु भाखौं भाई। तो मोहि बरजहु भय बिसराई॥

ऐसी उदारता का उदाहरण संसार के इतिहास में नहीं मिलता !!! वास्तव में मानवीय स्वतन्त्रता का इससे बढ़ कर क्या आदर हो सकता है ?

सुतराम् तुलसीदास जी राजनीति की दृष्टि से भी उत्कट कवि थे।

(२०) कवित्व और तुलसीदास

कविता सृष्टि की सुन्दरता है, काव्य ही विश्वरचना का एकमात्र आनन्द है। समस्त जगत एक प्रकाण्ड महाकाव्य और विश्वरचयिता ही महाकवि है। वेदों में भगवान को "कविर्मनीषी परिभूःस्वयम्भुः" इत्यादि नामों से पुकारते हुए 'कवि' भी कहा गया है।

"देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति" में परमात्मा की सृष्टि और वेद को ही काव्य कहा गया है। परमेश्वर तीन अर्थों में कवि है। प्रथम अर्थ यह है कि उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षादि जितने मुख्य अलंकार हैं, उनका आधार सृष्टि है। कमल, चन्द्र, सूर्य, हिरण, मछली, खञ्जन, इन्द्रधनुष, विद्युत, हंस, सर्प, मयूर और अन्यान्य प्राकृतिक पदार्थों पर ही समस्त अलंकारों का ऊहापोह होता है। यतः इन वस्तुओं की अलंकारमय-रचना करने वाला परमात्मा है, अतः वह आदि कवि है। द्वितीय अर्थ यह है कि जिस प्रकार काव्य छन्द रचना के नियमों, शब्द-संगठन, शब्द-सौष्ठव और सरसता से युक्त होता है, उसी प्रकार इस सृष्टि की रचना वैज्ञानिक नियमों के आधार पर सगुण और सुन्दर की गई है। तृतीय अर्थ यह है कि वेद ईश्वरीय ज्ञान और आदिकाव्य है।

जहाँ वेदों से जगत् ने नाना प्रकार के ज्ञान-विज्ञान की शिक्षाएँ प्राप्त कीं, वहाँ काव्य-रसिक-समुदाय ने उनसे ही कवित्व का स्रोत भी उपलब्ध किया। वेदों में आलङ्कारिक और साहित्यिक शैली के बहुतेरे ऐसे उपाख्यान आये हैं, जहाँ साधारण मस्तिष्क के मनुष्यों को कौन कहे, संस्कृत के बड़े बड़े धुरन्धर विद्वान भी शैली नहीं पहचान सकने के कारण वैदिक ऋचाओं के अर्थ करने में चक्कर खा गये हैं। चाहे कोई काव्य-ग्रन्थ क्यों न हो, उसके वास्तविक तत्व को जानने के लिये आपको काव्य की गति जानना अत्यावश्यक है। साहित्यिक कल्पनाओं के मर्म तक पहुँचे विना आपको काव्य-जनित आनन्द की उपलब्धि नहीं हो सकती। काव्य यथार्थ में धर्मार्थ काम-मोक्ष—चतुर्वर्ग—के प्रदाता हैं। साहित्यदर्पण के प्रथम परिच्छेद में कहा भी है:—

> चतुर्वर्गफलप्राप्तिः सुखादल्पधियामपि।
> काव्यादेव यतस्तेन तत्स्वरूपं निरूप्यते॥
> धर्मार्थकाममोक्षेपु वैचक्षण्यं कलासु च।
> करोति कीर्तिं प्रीतिं च साधुकाव्यनिषेवणम्॥

परन्तु बात यह है कि चतुर्वर्ग-फल-प्राप्ति करानेवाले साधु-काव्य बड़े ही भाग्य से उपलब्ध होते हैं, क्योंकि सत्कवियों की संख्या अत्यल्प होती है। जो हो; हमें काव्य को काव्य-दृष्टि से पढ़ना होगा, उसमें दार्शनिक तर्क-वितर्क का डिनामाइट लगाना अथवा वैज्ञानिक विचारों का बम गोला बरसाना कविता के साथ महान अन्याय करना है।

कवियों की दृष्टि ही कुछ विलक्षण हुआ करती है। किसी सामान्य से सामान्य घटना के ऊपर विचार करने में भी कवियों की चितवन ही कुछ न्यारी होती है। जहाँ पवन और पानीकी भी गति नहीं, यहाँ तक कि जहाँ पर मन भी गति शून्य

और निस्तब्ध हो जाता है वहाँ पर भी कवियों की पहुँच होती है। संसार में नित्य सहस्रशः ऐसी घटनाएँ हुआ करती हैं, जिन्हें जगत की आँखें देखते हुए भी नहीं देखतीं और जनता के कान सुनते हुए भी नहीं सुनते, पर जब उन्हीं घटनाओं के ऊपर किसी सुकवि की लेखनी उठ जाती है, तब उन्हें शक्ति-हीन आँखें भी देखने लगती हैं और बहरे कान भी सुनने लग जाते हैं। सुकवि, मनुष्य के भीतरी सद्-सद् गुणों को बाह्य जगत में सदेह नचा देते हैं। ये सब कवित्व की ही प्रतिभाएँ हैं। मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र जैसे प्रतापी और धार्मिक महाराजा का आज स्यात् नाम तक भी कोई जानता वा नहीं, इसमें भी सन्देह है, यदि उनके अनुकरणीय पावन चरित को महाकवि वाल्मीकि एवं तुलसी, काव्यग्रन्थन न कर गये होते। कोई घटना वा वर्णन यदि दर्पण है तो कविता वहाँ प्रकाश की स्थिति रखती है एवं यदि किसी महापुरुष की जीवनी पाटल-पुष्प है तो निश्चय ही एक सुकवि की रचना सौरभ का काम देती है। किसीके हृदय के सुषुप्त-विचार-अग्नि को किस प्रकार प्रज्वलित करना होता है, इसका पूर्ण ज्ञान सुकवियों को ही होता है। यह बात एक सच्चा कवि ही जानता है कि किसी महापुरुष के जीवन-चरित रूप सेतु की रचना किस ढंग से की जाय, जिस पर साधारण जनतारूपी यात्री चढ़ कर संसार सागर को अल्प आयास से ही पार कर सकें।

कविता ही जन समाज के पतन और उत्थान का कारण होती है। सुतराम् गोस्वामी तुलसीदास जी एक महाकवि और उनके रचित ग्रन्थों में कम से कम राम-चरित-मानस' अवश्य महाकाव्य कहलाने का अधिकारी है। 'तुलसी' में समष्टि रूप से विचार करने पर एक सुकवि के समस्त गुण अवश्यमेव विद्यमान थे।

कहा भी है—

'नरत्वं दुर्लभं लोके विद्या तत्र सुदुर्लभा।
कवित्वं दुर्लभं तत्र शक्तिस्तत्र च दुर्लभा॥
व्युत्पत्तिर्दुर्लभा तत्र विवेकस्तत्र दुर्लभः'

सौभाग्यवशात् हम तुलसी में नरत्व, विद्या, कवित्व, काव्य-शक्ति, व्युत्पत्ति और विवेक का समावेश अधिकाँश रूप में पाते हैं। यों तो 'साहित्यदर्पणकार' के 'सर्वथा निर्दोषस्यैकान्तमसंभवात्' के सिद्धान्तानुसार सर्वथानिर्दोष काव्य का मिलना असम्भव है, तथापि साम्प्रदायिक होते हुए भी जहाँ तक हो सकता है, हमारे कविराज ने उदारता से काम लेते हुए अपनी रचना को यथासंभव निर्दोष बनाने में कोई कसर न रखी है।

निम्नलिखित प्रमाणों से सिद्ध है कि इनका 'राम-चरित-मानस' एक महा-काव्य है।

देखिये साहित्यदर्पण षष्ठ परिच्छेद;—

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः ॥३१५॥
सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः ।
एक वंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा ॥३१६॥
शृङ्गारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते ।
अङ्गानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसंधयः ॥३१७॥
इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम् ।
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत् ॥३१८॥
आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा ।
क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम् ॥३१९॥
एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः ।
नाति स्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह ॥३२०॥
नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते ।
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत् ॥३२१॥
संध्यासूर्येन्दुरजनीप्रदोषध्वान्तवासराः ।
प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवनसागराः ॥३२२॥
संभोगविप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराध्वराः ।
रणप्रयाणोपयममन्त्रपुत्रोदयादयः ॥३२३॥
वर्णनीया यथायोगं साङ्गोपाङ्गा अमी इह ।
कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा ॥३२४॥
नामास्य सर्गोपादेयकथया सर्गनाम तु ।

इन उपर्युक्त श्लोकों में श्रीविश्वनाथ कविराज ने महाकाव्य के जितने लक्षण लिखे हैं, वे प्रायः सभी लक्षण राम-चरित-मानस में संघटित होते हैं।

पहला लक्षण—जो सर्गबन्ध युक्त हो वह महाकाव्य है। गोसाईं तुलसी दास जी ने 'राम-चरितमानस' को सप्त काण्ड में बद्ध किया है, अतः वह महाकाव्य है।

दूसरा लक्षण—काव्य का नायक क्षत्रिय सद्वंशोद्भव देवत्वसम्पन्न धीरोदात्त हो। गोसाईं जी के चरितनायक मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्र उपर्युक्त समस्त शुभ लक्षणों से युक्त थे, इस कारण भी 'राम-चरित-मानस' महाकाव्य कहलाने का उपयुक्त अधिकारी है।

तीसरा लक्षण—शृङ्गार, वीर और शान्त इन तीन रसों में से कोई रस अङ्गीकृत होना चाहिये, अन्य रस भी गौण रूप से आये हों। यद्यपि 'राम-चरित-मानस' में प्रायः नवों रसों का समुपयुक्त समावेश है, तथापि शान्तरस प्रधान होने के कारण भी वह महाकाव्य है।

चौथा लक्षण—महाकाव्य में या तो कोई ऐतिहासिक वृत्त हो अथवा किसी सज्जन का वर्णन हो। ये दोनों लक्षण 'राम-चरित-मानस' में संघटित होते हैं अतः वह महाकाव्य है।

पाचवाँ लक्षण—महाकाव्य के आरम्भ में या तो नमस्कार या आशीर्वाद अथवा किसी वस्तु का निर्देश हो। 'राम-चरित-मानस' को तुलसीदास जी ने 'वर्णानामर्थसंघानां' इस नमस्कार-वाक्य से प्रारम्भ किया है, स्वतः वह महाकाव्य है।

छठा लक्षण—महाकाव्य में कहीं कहीं दुष्टों की निन्दा और सज्जनों का गुण-कीर्तन भी हो। तुलसीदास जी इस अंश में भी एक सिद्ध-हस्त कवि थे। आप सामान्यतया समस्त 'राम-चरित-मानस' में और विशेषरूप से बालकाण्ड के प्रारम्भ में एक प्रकरण ही इसका पावेंगे। इस कारण भी यह सद्ग्रन्थ महाकाव्य का अधिकारी है।

सातवाँ लक्षण—महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग में एक ही छन्द होना चाहिये और सर्ग के अन्त में छन्द बदलना होता है। तुलसीदास जी ने इस नियम को आद्योपान्त निबाहा है। प्रत्येक काण्ड में चौपाइयों और दोहों की प्रधानता रखते हुए अन्त में 'हरिगीतिका' छन्द अवश्य देते गये हैं। इस लक्षण से सुसम्पन्न 'राम-चरित-मानस' निश्चय ही महाकाव्य है।

आठवाँ लक्षण—महाकाव्य में न बहुत छोटे और न बहुत बड़े ८ से अधिक सर्ग होने चाहिये। गोसाईं जी ने अपने 'राम-चरित-मानस' को सप्तकाण्डों में विभक्त किया है। यदि महाकवि वाल्मीकि की नाईं प्रत्येक काण्ड को सर्गों से भी विभक्त करते जाते तो निस्सन्देह शतशः सर्ग होते, जो महाकाव्य कहलाने के लिये पर्याप्त थे।

नवाँ लक्षण—महाकाव्य में कोई सर्ग ऐसा भी होना चाहिये जिसमें अनेक छन्द हों। 'राम-चरित-मानस' के आरण्यकाण्ड में कविराज ने भुजङ्गप्रयात, त्रोटक, नाराच और हरिगीतिकादि छन्द देकर इस मन्तव्य की रक्षा की है।

दसवाँ लक्षण—महाकाव्य के सर्ग के अन्त में अगले सर्ग की कथा की सूचना गुप्त रूप से होनी चाहिये। इसका प्रतिपालन भली भाँति कविराज ने किया है।

ग्यारहवाँ लक्षण—महाकाव्य में सन्ध्याकाल, उषःकाल, सूर्योदय, सूर्यास्त, गोधूलि, चन्द्रोदय, रजनी, प्रातःकाल, मध्याह्न, आखेट, पर्वत, वन, ऋतु, समुद्र, संयोग, वियोग, मुनि, स्वर्ग, पुर, अध्वर, रणप्रस्थान, रणप्रत्यावर्तन, मन्त्र और पुत्र-जन्मोत्सव आदि का वर्णन भी होना चाहिये। इस सिद्धान्त का प्रतिपालन

कविवर तुलसीदास जी ने पूर्ण रीति से किया है। अतः उनका 'राम-चरित-मानस' महाकाव्य है, इसमें सन्देह नहीं।

बारहवाँ लक्षण—महाकाव्य में प्रतिसर्ग काव्यनायक का निर्देश और सर्ग में वर्णन किये विषय के अनुकूल ही सर्ग का नाम होना चाहिये। गोसाईं तुलसीदास जी ने अपने काण्डों के नाम तदनुकूल ही रखे हैं, जिनसे काव्य-नायक का निर्देश भी प्रगट है। इन उल्लिखित द्वादश लक्षणों से समलंकृत 'राम-चरित-मानस' निश्चय ही महाकाव्य है। 'काव्यानुशासन' में भी महाकाव्य के ये ही लक्षण निगदित हैं, केवल एक लक्षण अधिक लिखा गया है, वह यह कि महाकाव्य संक्षिप्त नहीं होना चाहिये, चित्रकाव्य से अलंकृत और सरल होना चाहिये। इन सब लक्षणों के अनुसार 'राम-चरित-मानस' में कसर यही रही कि तुलसीदास जी ने चित्रकाव्य की रचना नहीं की है, परन्तु महाकाव्य कहलाने के लिए यह नियम कोई प्रधानता नहीं रखता। फलतः तुलसीदास जी एक महाकवि और उनका 'राम-चरित-मानस' एक महाकाव्य है।

काव्य-लक्षण

किसी कवि की रचना वा कृति को यथार्थ रूप से समझने के लिये हमें कई विषयों की जानकारी का होना अत्यावश्यक है। सब से पूर्व इस बात का ज्ञान होना चाहिये कि 'काव्य किसको कहते हैं।' 'साहित्य-दर्पण'-कार लिखते हैं:—

'वाक्यं रसात्मकं काव्यं'

अर्थात् रसात्मक वाक्य को काव्य कहते हैं। जिस वाक्य से किसी रस का ज्ञान हो तथा अलौकिक, हृदय-संवेद्य आनन्द का अनुभव हो वह काव्य है। 'रस-गंगाधर' में काव्य के लक्षण इस प्रकार लिखे हैं:—

'रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्'

अर्थात् रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्दों को काव्य कहते हैं। श्री वाग्भट ने काव्य-लक्षण इस प्रकार कथन किया है:—

'शब्दार्थौ निर्दोषौ सगुणौ प्रायः सालङ्कारौ काव्यमित्याह'

श्री मम्मटाचार्य जी लिखते हैं:—

'अदोषौ सगुणौ सर्वत्रसालङ्कारौ क्वचिस्त्वफुटालंकारावपि शब्दार्थौ काव्यमिति'

श्री भोज इस प्रकार कथन करते हैं—

'रसान्वितमलङ्कारैरलङ्कृतं निर्दोषं गुणवत्कवेः कर्मकाव्यमित्याह'।

सर्वाचार्य-प्रतिपादित-सिद्धान्त यह है कि रस से युक्त, अलङ्कारों से समलंकृत, सर्वदूषण-विवर्जित, गुण-सम्पन्न जो कवि-कर्म है, उसे काव्य कहते हैं। इन्हीं

उपर्युक्त भावों की पुष्टि करते हुए हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि 'दत्त' जी काव्य की इस प्रकार व्याख्या करते हैं:—

'गुननि अलंकारनि सहित, दूषन रहित जु होय।
शब्द अर्थजुत हैं जहाँ, कवित कहावत सोय'॥

उल्लिखित सभी लक्षणों पर दृष्टिपात करते हुए यह निःसंकोच भाव से कहना पड़ता है कि गोसाईं तुलसीदास की कृति अवश्यमेव काव्य के समस्त लक्षणों से सुसज्जित, समलंकृत है, अतएव समुपादेय एवं सुपाठ्य है।

वाक्य-लक्षण

शब्दों से पद और पद-समूह से वाक्य बनते हैं। पद-समूह वा पद अथवा शब्द अपनी स्वाभाविक शक्ति से अर्थ की उत्पत्ति करते हैं। वाक्य-रचना योग्यता, आकांक्षा और आसत्ति से संयुक्त होनी चाहिये, जैसा कि 'साहित्य-दर्पण' में कहा गया है:—

'वाक्यं स्याद्योग्यताकाङ्क्षासत्तियुक्तः पदोच्चयः'

योग्यता

प्रत्येक शब्द अपनी यथार्थ योग्यता के अभिव्यंजक हों, उसका सम्बन्ध जिस अन्य शब्द से हो वह भी सम्बद्ध हो, जैसे कहा गया कि 'राम जल से खेत को सींचता है, तो ठीक है। यदि च 'अग्नि से सींचता है' कहता तो असङ्गत हो जाता, क्योंकि अग्नि में सिञ्चन की योग्यता नहीं।

आकांक्षा

वाक्य में कोई ऐसा शब्द भी रहना चाहिये जो सबका नियन्त्रण करनेवाला हो। जैसे कहा कि 'हाथी, गौ, ऊँट चर रहे हैं' तब तो इसके अर्थ में कोई आकांक्षा शेष न रही, अर्थ स्पष्ट हो गया। यदि हाथी, गौ, ऊँट कह कर मौन व्रत साध ले, तब सुनने वाले को आकांक्षा रह जायगी कि हाथी, गौ, ऊँट क्या? चरते हैं, दौड़ते हैं वा मर गये इत्यादि।

आसक्ति

वाक्यस्थ पदों वा शब्दों में काल-सांनिध्य होना चाहिये अर्थात् उनके कथन में समय का व्यवधान न हो। जैसे 'देवदत्त जाता है' इस वाक्य का 'देवदत्त' शब्द आज प्रातःकाल बोल कर 'जाता है' सायंकाल को कहा जाय तो वाक्य नहीं बनता।

सुतराम् गोसाईं जी शब्दशास्त्र के एक पारंगत, सिद्ध-पद, महाकवि थे। इनके शब्द और पद अत्यन्त सुसंगत, उपयुक्त और सम्बद्ध हैं, इसमें ननु नच् का स्थान नहीं। वाक्य-रचना में कहीं भी त्रुटि नहीं दीखती।

शब्द-शक्ति

प्रत्येक सार्थक शब्द अपना कुछ न कुछ अर्थ रखता है, वही उसकी शक्ति है। कहीं कहीं ऐसा भी होता है कि किसी शब्द का वास्तविक अर्थ कुछ अन्य हो, परन्तु वाक्य में प्रयुक्त होने पर कुछ और ही अर्थ लिया जाय। अभिधा, लक्षणा और व्यंजना ये तीन शब्द-शक्तियाँ हैं, जिनके लक्षण और उदाहरण नीचे दिये जाते हैं:—

अभिधा

शब्द-शास्त्र के आदि विद्वानों द्वारा जाति, गुण, द्रव्य और क्रिया के अवबोधार्थ प्रत्येक शब्द का जो नियत अर्थ है उसे अभिधा कहते हैं। जैसे:—

'कोशलेश दशरथ के जाये। हम पितु वचन मानि वन आये'॥

यहाँ सभी शब्द अपने सांकेतिक निश्चितार्थ में आये हैं। जिस स्थान में अभिधा का प्रयोग हो, उस अर्थ को 'वाच्य' कहते हैं।

लक्षणा

जहाँ अभिधावाला अर्थ न लेकर उससे सम्बन्ध रखनेवाला अर्थ ग्रहण किया जाय वहाँ लक्षणा होती है। जैसे:—

चलत दशानन डोलति धरनी। चढ़त मत्त गज जिमि लघु तरनी॥

अर्थ यह है कि जब रावण चलता था तो पृथ्वी काँप उठती थी। इसमें अभिधा के अनुसार अर्थ लेने से पृथिवी का डोलना सुसंगत नहीं प्रतीत होता, अतः इस स्थान पर ऐसा अर्थ करना होगा कि पृथिवी-तलवासी मनुष्य भयभीत हो जाते थे, डर से कम्पायमान हो उठते थे। जहाँ लक्षणा से अर्थ लिया जाय उस अर्थ को 'लक्ष्य' कहते हैं।

व्यञ्जना

जहाँ सांकेतिक अथवा उसका सम्बन्धी अर्थ न लेकर अन्यार्थ लिया जाय वहाँ व्यञ्जना होती है। जैसे:—

'धर्मशीलता तव जग जागी। पावा दरस हमहुँ बड़ भागी॥

अभिधा से तो अर्थ यह हुआ कि हे रावण तुम्हारी धर्मशीलता संसार में प्रसिद्ध है। परन्तु आशय इसके विपरीत है। अंगद के मन का भाव यह है कि तुम्हारी अधार्मिकता को जगत जानता है। यहाँ व्यञ्जना से यथार्थ अर्थ का संघटन हुआ। इस अर्थ को 'व्यंग्य' कहते हैं।

फलतः गोसाईं जी अभिधा, लक्षणा और व्यंजना के प्रयोग करने में कुशल और शब्द-पटु-पण्डित थे, अतः उनके ग्रन्थों के पाठकों को इस बात पर सदा साव-

ध्यान रखना चाहिये कि कविराज ने कहाँ वाच्यार्थ, कहाँ लक्ष्यार्थ और कहाँ व्यंग्यार्थ का प्रयोग किया है। जहाँ जैसा युक्तियुक्त प्रतीत हो वहाँ उसी अर्थ का ग्रहण करें।

काव्य के अङ्ग

काव्य-रसिकों ने काव्य के छ अङ्ग बतलाये हैं। जैसा कहा है:—

छन्द चरण भूषण हृदय, करमुख भावऽनुभाव।
चख थायी श्रुति संचरी, काव्य सुअंग सुभाव॥

इस विषय में साहित्यज्ञों के भिन्न भिन्न मत हैं। सबका निष्कर्ष-सिद्धान्त यह है कि काव्य-भाव, छन्द, अलंकार, और रस ये काव्य के मुख्य अङ्ग हैं। यहाँ केवल भावों और रसों के विषय में ही संक्षिप्त उल्लेख किया जाता है। शेष अन्य अङ्गों पर स्वतन्त्र शीर्षक में विचार किया जायगा।

काव्य-रस

'विधि से कवि सब बिधि बढ़े, या में संशय नाहिं।
षट रस विधि की सृष्टि में, नौ रस कविता माहिं॥'

पूर्व कह आये हैं कि रसात्मक वाक्य को काव्य कहते हैं, अब यह विचार करना है कि 'रस' किसको कहते हैं। साहित्य-दर्पणकार लिखते हैं:—

'रस्यते इति रसः

अर्थात् रस वह वस्तु है जिसका आस्वादन किया जाय। काव्य-शास्त्र में रस अलौकिक आनन्द को कहते हैं, जिसका अनुभव यथार्थ में कवियों वा सहृदय वक्ता-श्रोता को ही होता है। रस ही कविता का आत्मा है, जैसा 'साहित्य-दर्पण' में कहा है:—

'रस एवात्मा साररूपतया जीवनाधायको यस्य।
तेन विना तस्य काव्यत्वाभावस्य प्रतिपादितत्वात्।'

वास्तव में रसों से हीन कविता नीरस कहलाती है। गोस्वामी तुलसीदास की कविता सरस, सजीव और सदेह है, प्रसङ्गानुसार कविराज ने जहाँ जिस रस का वर्णन उठाया है, उसे कुशलता के साथ आद्यन्त निबाहा है। पाठकों के मनो-विनोदार्थ एवं जिज्ञासुजनों के परितोषार्थ प्रत्येक रस के उदाहरण तुलसीकृति से दिये जाते हैं।

शृङ्गार-रस

रसों का राजा शृङ्गार ही समझा जाता है। आधुनिक कवि इस रस की कविता प्रायः नहीं लिखते। हिन्दी के प्राचीन और मध्य-कालीन कवियों ने इस रस का प्रयोग अधिकता और निरंकुशता से किया है, जिससे साहित्यिक मर्यादा तक

का अतिक्रमण हो गया है। हमें इस बात का गर्व है कि गोसाईं जी एक संयत कवि थे। आपकी लेखनी सदा मर्यादा के परदे में रही है। आपने अपने ग्रन्थों में बड़ी ही योग्यता के साथ इस रस का प्रयोग किया है। उदाहरण:—

"सुनि सुन्दर बैन सुधारस साने,
सयानी है जानकी जानी भली।
तिरछे करि नैन दै सैन तिन्हैं,
समुझाय कछू मुसुकाय चली॥
तुलसी तेहि औसर सोहैं सबै,
अवलोकति लोचन लाहु अली।
अनुराग तड़ाग में भानु उदै,
विकसीं मनु मंजुल कंज कली॥"

वीर-रस

वीर-रस, जाति का जीवन है। शोक है कि हिन्दी में 'भूषण' कवि को छोड़ कर कोई वीर रस का कवि नहीं हुआ। गोस्वामी तुलसीदास जी ने जहाँ अपने ग्रन्थ में वीर-रस की कविता की है, वहाँ वीर रस का अच्छा निदर्शन कराया है। 'कवितावली' में कहा है:—

"कोसलराज के काज हौं आज,
त्रिकूट उपारि लै वारिधि बोरौं।
महाभुज दंड द्वै अण्ड कटाह,
चपेट की चोट चटाक दैं फोरौं॥
आयसु भङ्ग ते जो न डरौं,
सब मींजि सभासद सो नित घोरौं!
बालि को बालक तौ तुलसी,
दसहू मुख को रन में रद तोरौं॥"

'राम-चरित-मानस' में कहा है:—

सुनहु भानुकुल पङ्कज भानू। कहौं सुभाव न कछु अभिमानू॥
जो राउर अनुसासन पाऊँ। कन्दुक इव ब्रह्माण्ड उठाऊँ॥
काँचे घट जिमि डारौं फोरी। सकौं मेरु मूलक जिमि तोरी॥
तौ प्रताप महिमा भगवाना। का बापुरो पिनाक पुराना॥

करुण-रस

मरण, शोक, वियोग अथवा प्रिय-प्रवास-जन्य:-दुःख-वर्णन में इस रसका प्रयोग होता है। राजा दशरथ की मृत्यु, लक्ष्मण को शक्ति लगना, राम-वन-गमन और

सीता की जनकपुर से विदाई में कविवर तुलसीदास ने करुण रस का प्रवाह प्रवाहित कर वक्ता और श्रोताओं के भी अश्रुपात करा दिये हैं। उदाहरण:—

शोक बिकल सब रोवहिं रानी। रूप शील बल तेज बखानी॥
करहिं बिलाप अनेक प्रकारा। परहिं भूमि तल बारहिं बारा॥
बिलपहिं बिकल दास अरु दासी। घर घर रुदन करहिं पुरबासी॥

× × × × ×

अर्ध राति गई कपि नहि आवा। राम उठाइ अनुज उर लावा॥
सकेहु न दुखित देखि मोहिं काऊ। बंधु सदा तव मृदुल सुभाऊ॥
मम हित लागि तजे पितु माता। सहेउ बिपिन हिम आतप बाता॥
सो अनुराग कहाँ अब भाई। उठहु बिलोकि मोर बिकलाई॥
जो जनत्यों बन बन्धु बिछोहू। पिता बचन नहिं मनत्यों ओहू॥
सुत बित नारि भवन परिवारा। होहिं जाहिं जग बारहिं बारा॥
अस बिचारि जिय जागहु ताता। मिलहि न जगत सहोदर भ्राता॥
यथा पंख बिनु खगपति दीना। मणि बिनु फणि करिवर करहीना॥
अस मम जियन बन्धु बिनु तोहीं। जो जड़ दैव जियावै मोहीं॥
जैहौं अवध कवन मुहँ लाई। नारि हेतु प्रियबन्धु गवाँई॥
अब अवलोक सोक यह तोरा। सहै कठोर निठुर उर मोरा॥
निज जननी के एक कुमारा। तात तासु तुम प्राण अधारा॥
सौंपेउ मोहिं तुमहिं गहि पानी। सबबिधि सुखद परम हितजानी॥
उतर ताहि देहौं का जाई। उठि किन मोहिं समुझावहु भाई॥
बहुबिधि सोचत सोचबिमोचन। श्रवत सलिल राजिव-दल-लोचन॥

× × × × ×

लागति अवध भयावनि भारी। मानहुँ कालराति अँधियारी॥
घोर जंतु सम पुर-नर-नारी। डरपहिं एकहि एक निहारी॥
घर मसान, परिजन जनुभूता। सुत हित मीत मनहुँ जमदूता॥
बागन्ह बिटप बेलि कुम्हिलाहीं। सरित सरोवर देखि न जाहीं॥
विधि कैकयी किरातिनि कीन्हीं। जेहि दवदुसह दसहु दिसि दीन्हीं॥
सहि न सकै रघुबरबिरहागी। चले लोग सब ब्याकुल भागी॥
करि बिलाप सब रोवहिं रानी। महा बिपति किमि जाय बखानी॥
सुनि बिलाप दुखहू दुख लागा। धीरजहू कर धीरज भागा॥

× × × × ×

शुक सारिक जानकी जियाये। कनक पींजरन राखि पढ़ाये॥
ब्याकुल कहहिं कहाँ बैदेही। सुनि धीरज परिहरै न केही॥
भये बिकल खग मृग यहि भाँती। मनुज दशा कैसे कह जाती॥
बन्धु समेत जनक तब आये। प्रेम उमँगि लोचन जल छाये॥

सीय बिलोकि धीरता भागी। रहे कहावत परम विरागी॥
लीन्ह लाइ उर जनक जानकी। मिटी महामर्याद ज्ञानकी॥

अद्भुत-रस—आश्चर्यमय वर्णन के अवसर पर कविजन अद्भुत रस का प्रयोग करते हैं। गोसाईं तुलसीदास जी ने इस रस में भी अच्छी कविता की है। भानु प्रताप की कथा, और सती पार्वती का राम को सर्वत्र देखने का वर्णन प्रायः अद्भुत रसपूर्ण है। उदाहरण:—

आदि सृष्टि उपजी जबै, तब उतपति भइ मोरि।
नाम एक तनु हेतु तेहि, देह न धरी बहोरि॥

× × × ×

सती दीख कौतुक मगु जाता। आगे राम सहित सिय भ्राता॥
फिरि चितवा पाछे प्रभु देखा। सहित बंधु सिय सुन्दर वेषा॥
जहँ चितवहिं तहँ प्रभु आसीना। सेवहि सिद्ध मुनीश प्रवीना॥
देखे शिव विधि विष्णु अनेका। अमित प्रभाव एक ते एका॥

राम-चरित मानस के अतिरिक्त स्व-रचित अन्य ग्रन्थों में भी कविराज ने इस रस का बड़ी प्रवीणता से प्रयोग किया है। देखिये:—

लीन्हों उखारि पहार विसाल, चल्यो ततकाल विलंब न लायो।
मारुतनंदन मारुत को, मन को खगराज को वेग लजायो॥
तीखी तुरा तुलसी कहतो, पै हिये उपमा को समाउ न आयो।
मानो प्रतच्छ परब्बत की, नभ लीक लसी कपि यों धुकि धायो॥

यह प्रत्यक्ष देखते हैं कि जो वस्तु अत्यन्त वेग के साथ गतिमान है उसकी गति से एक प्रकार की लीक प्रतीत होने लगती है, इसीको कवि ने उत्प्रेक्षा में वर्णन करके अद्भुत रस का निदर्शन कराया है।

हास्य-रस—गोसाईं जी इस रस के वर्णन में भी किसी कवि से पीछे नहीं दीख पड़ते। 'नारद-मोह' और 'परशुराम-राम' संवाद पढ़ने से इनकी हँसोड़ तबीअत का पता चलता है। उदाहरण:—

काहु न लखा सो चरित विसेषा। सो स्वरूप नृप कन्या देखा॥
मर्कट बदन भयंकर देही। देखत हृदय क्रोध भा तेही॥
जेहि दिसि बैठे नारद फूली। तेहि दिसि सो न विलोकेउ भूली॥
पुनि पुनि मुनि उसकहिं अकुलाहीं। देखि दसा हरगन मुसुकाहीं॥

× × × ×

तब हरगन बोले मुसुकाई। निज मुख मुकुर विलोकहु जाई॥
अस कहि दोउ भागे भय भारी। बदन दीख मुनि बारि निहारी॥

× × × ×

वायु कृपा मूरति अनुकूला। बोलत बचन झरत जनु फूला ॥
जौं पै कृपा जरै मुनिगाता। क्रोध भये तन राख बिधाता ॥
इहाँ कुम्हड़ बतिया कोउ नाहीं। जो तर्जनि देखत मरिजाहीं ॥

भयानक-रस—भयप्रद वर्णन में भयानक रस का प्रयोग होता है। उदाहरणः—

डिगति उर्वि अति गुर्वि सर्व पर्व्वै समुद्र सर।
व्याल बधिर तेहि काल बिकल दिगपाल चराचर ॥
दिग्गयन्द लरखरत परत दसकंठ मुक्ख भर।
सुर बिमान हिमवान भानु संघटित परस्पर ॥
चौंके विरंचि संकर सहित कोल कमठ अहि कलमल्यो।
ब्रह्मांड खंड कियो चंड धुनि जबहिं राम शिवधनु दल्यो ॥

× × × ×

भए क्रुद्ध जुद्ध-विरुद्ध रघुपति त्रोन सायक कसमसे।
कोदंड धुनि अतिचंड सुनि मनुजाद सब मारुत ग्रसे ॥
मंदोदरी उर-कंप कंपति कमठ भू भूधर त्रसे।
चिक्करहिं दिग्गज दसन गहि महि देखि कौतुक सुर हँसे ॥

वीभत्स-रस—जहाँ घिन उत्पन्न करने वाला वर्णन होता है वहाँ इस रस का प्रयोग कविजन करते हैं। उदाहरणः—

लागत बाण वीर चिक्करहीं। घूमि घूमि घायल महि परहीं ॥
स्रवहिं सैल जनु निर्झर वारी। सोणित सरि कादर भयकारी ॥

कादर भयङ्कर रुधिर सरिता बाढ़ि परम अपावनी।
दोउ कूल दल रथरेत चक्र अवर्त्त बहति भयावनी ॥
जलजन्तु गज पदचर तुरग रथ बिबिध वाहन को गने।
सर सक्ति तोमर सर्प चाप तरङ्ग चर्म कमठ घने ॥
वीर परे जनु तीर तरु, मज्जा बह जनु फैन।
कादर देखत डरहिं जिय, सुभटन के मन चैन ॥

मज्जहिं भूत पिसाच बेताला। केलि करहिं योगिनी कराला ॥
काक कन्ध धरि भुजा उड़ाहीं। एक ते एक छीनि धरि खाहीं ॥
एक कहहिं ऐसिउ बहुताई। सठ तुम्हार दरिद्र न जाई ॥
कहरत भट घायल तट गिरे। जहँ तहँ मनहुँ अर्द्ध जल परे ॥
खैंचहिं आँत गृध्र तट भये। जनु बंसी खेलत चितदये ॥
बहु भट बहे चढ़े खग जाहीं। जिमि ना वारि खेलहिं सरिमाहीं ॥
योगिनि भरि भरि खप्पर साचहिं। भूत पिसाच बिबिध बिध नाचहिं ॥

भट कपाल करताल बजावहिं। चामुण्डा नाना बिधि गावहिं॥
जम्बुक निकर दन्त कटकटहीं। खाहिं अघाहिं हुआहिं दपटहीं॥
कोटिन रुण्ड मुण्ड बिनु डोलहिं। सीस परे महि जय जय बोलहिं॥

बोलहिं जो जय जय मुण्ड रुण्ड प्रचण्ड सिर बिनु धावहीं।
परिणाम युद्ध अशुद्ध बोलहिं सुभट सुरपुर पावहीं॥
निसिचर बरूथनि मर्दि गर्जहिं भालु कपि दर्पित भये।
संग्राम आँगन सुभट सोचहिं रामरस निकरन हये॥

रौद्र-रस—क्रोध और आवेश के प्रगट करने के अवसर पर जिस रस का प्रयोग किया जाय वही रौद्र रस है। उदाहरण:—

क्षत्रि जाति रघुकुल जनम, राम अनुज जग जान।
लातहु मारे चढ़त सिर, नीच को धूरि समान॥

× × × ×

आजु राम सेवक जस लेऊं। भरतहिं समर सिखावन देऊं॥
जिमि करि निकर दलै मृगराजू। लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू॥
तैसेहि भरतहिं सेन समेता। सानुज निदरि निपातौं खेता॥
जो सहाय कर शंकर आई। तदपि हतौं रन राम दोहाई॥

अति सरोष माषे लखन, लखि सुनि शपथ प्रमान।
सभय लोक सब लोक पति, चाहत भभरि भगान॥

× × × × ×

जो हौं अब अनुशासन पावौं।
तो चन्द्रमहिं निचोरि चैल जिमि आनि सुधा सिर नावौं॥
कै पाताल दलौं व्यालावलि अमृतकुण्ड महि लावौं।
भेदि भुवन करि भानु बाहिरो तुरत राहु दै तावौं॥
विबुधबैद आनौ बरबस धरि तौ प्रभु अनुग कहावौं।
पटकौं नीच मीच मूषक ज्यों सबहि को पापु बहावौं॥
तुम्हरी कृपा प्रताप तिहारेहि नेकु विलम्ब न लावौं।
दीजै सोइ आयसु तुलसी प्रभु जेहि तुम्हरे मन भावौं॥

शान्त-रस—नाम से ही अर्थ प्रगट है। उदाहरण:—

एहि तनु कर फल विषय न भाई। स्वर्गहु स्वल्प अन्त दुख दाई॥
नर तनु पाय विषय मन देहीं। पलटि सुधा ते शठ बिष लेहीं॥

ऊपर नव रसों के काव्यों के उदाहरण दिये गये। आप देखेंगे कि अपनी कविता-कामिनी को सुसज्जित और मनोमोहिनी बनाने में गोस्वामी जी ने कोई

कसर उठा न रखी है। इनकी लेखनी ने अथक श्रम से आकाश-पाताल, गिरिगहर गुफा, गम्भीर सागर एवं सरिता-सरोवर की अव्याहत गति से सैर की और निस्सन्देह उन स्थानों से उपयुक्त उपादान एकत्र किया है। कविता को सजीव बना देने में तो आपकी लेखनी ने कमाल किये हैं। जहाँ जिस रस का वर्णन प्रारम्भ किया वहाँ उस रस का पयोधि प्रवाहित कर दिया है। कथाओं और उपाख्यानों को ऐसा रोचक बनाया है कि उनके पात्र पाठकों के समक्ष संदेह नृत्य करते प्रतीत होते हैं।

काव्य-भाव

काव्य के नवरसों का भाव के साथ अटूट सम्बन्ध है, अतः भाव के विषय में पाठकों को परिचय दिलाना आवश्यक प्रतीत होता है। भाव का लक्षण सरदार कवि ने इस प्रकार लिखा है:—

'रस अनुकूल विकार को, भाव कहत कविराज।
चारि भाँति को होत सो, जानत सुकवि समाज'॥

जिन साधनों वा वस्तुओं की अनुकूलता से हृदय में किसी रस का प्रादुर्भाव हो, उन्हें भाव कहते हैं, यथा:—

'नूपुर कङ्कन किंकिनि धुनि सुनि। कहत लखनसन राम हृदय गुनि॥
मानहुँ मदन दुन्दुभी दीन्हीं। मनसा विश्व विजय कहँ कीन्हीं॥'

यहाँ पर नूपुर, कङ्कन और किङ्किणी की ध्वनि शृङ्गार रस के प्रादुर्भूत होने में सहायता दे रही है, अतः भाव है। भाव के चार भेद हैं—१ विभाव, २ अनुभाव, ३ व्यभिचारी वा संचारी, ४ स्थायी।

(१) विभाव

जहाँ किसी वस्तु को देखकर किसी रस की उत्पत्ति हो अथवा रसास्वादन का अंकुर उत्पन्न हो, उसे विभाव कहते हैं। विभाव के दो भेद हैं—१ आलम्बन, २ उद्दीपन।

आलम्बन

जिसके अवलम्ब से मन में रसोत्पत्ति हो वह आलम्बन है जैसे नायक, नायिका। उदाहरण:—

'अस कहि फिरि चितये तेहि ओरा। सियमुख ससि भये नैन चकोरा॥'

इसमें सियमुख 'आलम्बन' है।

उद्दीपन

जिसे देख कर किसी अन्य का स्मरण हो आवे, वहाँ उद्दीपन होता है, जैसे:—

'प्राची दिसि ससि उयेउ सुहावा। सियमुख सरिस देखि सुख पावा'॥

यहाँ चन्द्रमा को देख कर सियमुख की स्मृति हो आयी, अतः चन्द्र ही रस में उद्दीपन हुआ। उद्दीपन के दो भेद हैं—१ प्राकृतिक, २ मानुषी। प्राकृतिक उद्दीपन का उदाहरण:—

'घन घमंड नभ गरजत घोरा। प्रियाहीन डरपत मन मोरा'॥

यहाँ पर मेघ के गर्जन—जो प्राकृतिक घटना है—को सुनकर रामचन्द्र को सीता का स्मरण हो आया है, अतः घन गर्जन ही प्राकृतिक उद्दीपन है। मानुषी उद्दीपन का उदाहरण:—

'माँगा राम तुरत सो दीन्हा। पट उर लाइ सोच अति कीन्हा'॥

यहाँ सुग्रीव के द्वारा प्राप्त जानकी के पट-जो मानुषी है—को देखकर सीता का स्मरण हुआ, अतः पट ही मानुषी उद्दीपन है।

(२) अनुभाव

जिन बाह्य आकृति वा लक्षणों से हृदयस्थ भाव प्रगट हों, उन्हें अनुभाव कहते हैं। शब्द, वक्र, चितवनि, सात्विक भाव, आलिंगन और चुम्बनादि अनुभाव हैं, जिनके क्रमशः उदाहरण नीचे दिये जाते हैं:—

(१) मानहु मदन दुन्दुभी दीन्ही। मनसा विश्व विजय कह कीन्ही॥

(२) प्रभुहिं चितै पुनि चितै महि, राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिज मीनजुग, जनु विधुमंडल डोल॥

(३) वचन न आव विकल भइ भारी। अहह! नाथ! मोहि निपट बिसारी॥

'सात्विक भाव'

प्रेमवद्धता, स्वरभंग, कम्प, स्वेद, स्तम्भ, आँसू, रोमाञ्च और विवर्णतादि सात्विक-भाव-निदर्शक हैं।

(४) राम सखा ऋषि बरबस भेंटे। जनुमहि लुटत सनेह समेटे॥

आलिंगन

(५) बार बार मुख चुम्बति माता। नयन नीर भरि पुलकित गाता॥

चुम्बन

(३) व्यभिचारी वा संचारी

स्थायीभाव का सहायक हो कर जो अन्य भाव उसकी पुष्टिमात्र करने वाले हैं, वे व्यभिचारी वा संचारीभाव कहलाते हैं। इसके ३३ भेद 'साहित्य-दर्पण' में लिखे हैं, जिनके नाम ये हैं:—

ग्लानि, दीनता, शंका, त्रास, आवेश, गर्व, अमर्ष, उग्रता, औत्सुक्य, चिन्ता, तर्क, प्रीति, हर्ष, कुटिलता, चपलता, मोह, आलस्य, जड़ता, विषाद, मूर्छा, व्याधि, भ्रम, स्वप्न, लज्जा, बोध, निर्वेद (वैराग्य), असूया (छिद्रान्वेषण), मद, श्रम, स्मरण, धृति आवेग और अवहित्था (आकृति-गोपन)। प्रत्येक के उदाहरण नीचे दिये जाते हैं:—

(१) गई गलानि कुटिल कैकेई। मर्हि न बीच, विधि मीच न देई॥
+ × + + +
रघुकुल तिलक चले एहि भांति। देखेऊँ ठाढ़ कुलिस धरि छाती॥
मैं आपन किमि कहौं कलेसू। जियत फिरेऊँ लै राम सँदेसू॥
कहि अस वचन सचिव रहि गयऊ। हानि गलानि सोचवस भयऊ॥

ग्लानि

(२) पाहि नाथ कहि पाहि गोसाई। भूतल परउ लकुट की नाई॥
× × × ×
कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल सब ही बिधि हीना॥
प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा॥

दीनता

(३) राम लखन सिय सुनि मम नाऊँ। उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊँ॥

शङ्का

(४) इहाँ विचारहिं कपि मन माहीं। बीती अवधि काज कछु नाहीं॥
सब मिलि करहिं परस्पर बाता। बिनु सुधि लिये करब का भ्राता॥
कह अंगद लोचन भरि बारी। दुहुँ प्रकार भइ मृत्यु हमारी॥
इहाँ न सुधि सीता की पाई। उहाँ गये मारिहिं कपिराई॥

त्रास

(५) अब जनि कोउ माखै भट मानी। बीरविहीन मही मैं जानी॥

आवेश

(६) भुज विक्रम जानहिं दिगपाला। सठ अजहुँ जिनके उर साला॥
जानहिं दिग्गज उर कठिनाई। जब जब भिरेउँ जाइ बरि आई॥
जिनके दशन कराल न फूटे। उर लागत मूलक इव टूटे॥
जासु चलत डोलत इमि धरनी। चढ़त मत्तगज जिमि लघु तरनी॥
सोइ रावण जग विदित प्रतापी। सुने न श्रवण अलीक प्रलापी॥

गर्व

(७) जीते जो भट संजुग माहीं। सुनु तापस मैं तिन सम नाहीं॥
× × × +
इहाँ कुम्हड़ बतिया कोउ नाहीं। जो तर्जनि देखत मरि जाहीं॥

अमर्ष

(८) जो राउर अनुशासन पाऊँ। कन्दुक इव ब्रह्मांड उठाऊँ॥
काँचे घट जिमि डारौं फोरी। सकौं मेरु मूलक जिमि तोरी॥

उग्रता

(९) निमिख निमिख करुनायतन, जाइ कल्प शत बीति।
बेगि चलिय प्रभु आनिये, भुजबल खल दल जीति॥

औत्सुक्य

(१०) नीके निरखि राम की शोभा। पितु पन सुमिरि बहुरि मन लोभा॥
अहह तात दारुण हठ ठानी। समुझत नहिं कछु लाभ न हानी॥

चिन्ता

(११) राम लखन सिय सुनि नाऊँ। उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊँ॥

× × × ×

फेरति मनहुँ मातु कृत खोरी। चलति भक्ति बल धीरज धोरी॥
जब समुझहिं रघुनाथ सुभाऊ। तब पथ परत उताइल पांऊ॥
भरत दसा तेहि औसर कैसी। जल प्रवाह जल अलि गति जैसी॥

तर्क

(१२) जाना मरम अन्हात प्रयागा। मगन होहिं तुम्हरे अनुरागा॥

प्रीति

(१३) हरखे सब बिलोकि हनुमाना। नूतन जन्म कपिन तब जाना॥

हर्ष

(१४) जारे जोग कपार अभागा। भलो कहत रौरों दुख लागा॥

कुटिलता

(१५) भोजन करत चपल चित, इत उत औसर पाइ।
भागि चलहिं किलकात मुख, दधि ओदन लपटाइ॥

चापल्य

(१६) लिये लाइ उर जनक जानकी। मिटी महामरजाद ज्ञानकी॥

मोह

(१७) उठी सखी हँसि मिसकरि कहि मृदु बैन। सिय रघुबरके भये उनीदे नैन॥

अथवा

रघुबर जाइ शयन तब कीन्हा।

आलस्य

(१८) लछुमन समुझाए बहु भाँती। पूछत चले लतातरुपाँती॥
हे खग मृग हे मधुकरश्रेनी। तुम देखी सीता मृग नैनी॥

जड़ता

(१९) राम राम कहि राम कहि, राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुपति बिरह, राउ गये सुरधाम॥

विषाद

(२०) अस कहि मुरछि परे महि राऊ। राम लखन सिय आनि दिखाऊ॥

मूर्छा

(२१) एहि कुरोग कर औषध नाहीं। सोधेउ सकल विश्व मन माहीं॥

व्याधि

(२२) कहहिं सप्रेम एक एक पाहीं। राम लखन सखि होहिं कि नाहीं॥
वय वपु बरन रूप सोइ आली। सील सनेह सरिस सम चाली॥
वेष न सो सखि सीय न संगा। आगे अनी चली चतुरंगा॥
नहिं प्रसन्नमुख मानस खेदा। सखि सन्देह होत एहि भेदा॥

भ्रम

(२३) सपने बानर लंका जारी। जातुधान सेना सब मारी॥
खर आरूढ़ नगन दससीसा। मुंडित सिर खंडित भुज बीसा॥
एहि विधि सो दक्खिन दिसि जाई। लंका मनहुँ विभीषण पाई॥
यह सपना मैं कहौं बिचारी। होइहिं सत्य गये दिनचारी॥

स्वप्न

(२४) गुरुजन लाज समाज बड़ि, देखि सीय सकुचानि।
लगी बिलोकन सखिन तन, रघुबीरहि उर आनि॥

लज्जा

(२५) प्रात पुनीत काल प्रभु जागे। बोलि सुमंत कहन अस लागे॥

बोध

(२६) अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती। सब तजि तुमहिं भजौं दिन राती॥
× × × ×
जानिय तबहिं जीव जग जागा। जब सब विषय बिलास बिरागा॥

निर्देस

(२७) तब प्रभु नारि बिरह बलहीना। अनुज तासु दुख दुखित मलीना॥
तुम सुग्रीव कूल द्रुम दोऊ। अनुज हमार भीत अति सोऊ॥
जामवंत मंत्री अति बूढ़ा। सो कि होइ एक समर अरूढा॥

असूया

(२८) रणमदमत्त निसाचर दर्पा। मानहुँ विश्व ग्रसन कहँ अर्पा॥

मद

(२९) पुरते निकसी रघुबीर बधू, धीर धीर दये मग में डग द्वै।
झलकी भरि भालकनी जलकी, पुट सूख गये मधुराधर वै॥
फिरि बूझति हैं चलतो अब केतिक, पर्ण कुटी करि हो कित ह्वै।
तिय की लखि आतुरता पियकी, अँखियाँ अति चारु चली जल च्वै॥

अथवा

स्रमित भूप निद्रा अति आई।

श्रम

(३०) जब जब भवन बिलोकति सूनो।

तब तब बिकल होति कौसल्या दिन दिन प्रति दुख दूनो॥
सुमिरत बालबिनोद राम के सुन्दर मुनिमनहारी।
होत हृदय अति सूल समुझि पद पंकज अजिर बिहारी॥

× × × ×

जब जब मातु करहिं सुधि मोरी। होइहिं प्रेम बिकल मतिभोरी॥

स्मरण

(३१) जनक सुतहिं समुझाइ करि, बहुबिधि धीरज दीन्ह।
चरन कमल सिर नाइ कपि, गमन राम पहँ कीन्ह॥

धृति

(३२) लछुमन दीख उमाकृत बेखा। चकित भयेउ भ्रम हृदय बिसेखा॥

आवेग

(३३) देखनमिसु मृग बिहँग तरु, फिरै बहोरि बहोरि।
निरखि निरखि रघुबीर छबि, बाढ़ी प्रीति न थोरि॥

अवहित्थ

(४) स्थायीभाव

रस का मूल स्थायी भाव ही है। जो भाव किसी के टारे न टरै वह स्थायी भाव होता है। उदाहरण:—

बिधि हरिहर तप देखि अपारा। मनु समीप आये बहु बारा॥
माँगहु बर बहु भाँति लुभाए। परम धीर नहिं चलहिं चलाए॥

प्रत्येक रस के भाव-विभाग आप इस चक्र से समझ:—

नामरस	स्थायीभाव	विभाव	अनुभाव	संचारी भाव
शृङ्गार	रति	नायक-नायिका आल० चन्द्रमा, चन्दनादि उद्दी०	कटाक्षादि	श्रम, मद, जाड्यादि
हास्य	हँसी	हँसाने वाले आकार वाक्यादि ।	चक्षुसंकोच मुसकराहट ।	आलस्य निद्रादि ।
करुणा	शोक	शोच्यवस्तु	रोदनादि	मोह, विषाद चिन्ता ।
रौद्र	क्रोध	शत्रु	भ्रूवक्रता, वेग ओष्ठ चाबना ।	मोहादि
वीर	उत्साह	विजित	सहाय ढूँढ़ना	गर्व, धैर्य
भयानक	भय	भयजनक वस्तु,	विवर्णता, गद्गद-स्वरादि	स्वेद कम्प दैन्यादि ।
वीभत्स	निन्दा वा घृणा	दुर्गन्ध, मांस, रुधिर	घिन करना, थूकना आँखें फेरलेना आदि	मोह, श्रम व्याधि ।
अद्भुत	विस्मय	आश्चर्यजनक वस्तु	रोमाञ्चादि	वितर्क भ्रान्ति हर्ष
शान्त	शम वा निर्वेद	जगत की अनित्य वा परमात्म-चिन्तन	तथा	हर्ष, भूत-दयादि

आप देखेंगे कि गोसाईं तुलसीदासजी ने जहाँ जिस रस का वर्णन किया है, वहाँ सभी भावों का समुचित समावेश करके उस रस को जीवित कर दिखलाया है ।

सभी रसों वा भावों के प्रकाशन में कविराज की लेखनी और मनोवृत्तियाँ तन्मय हो गयी हैं ! इसके अतिरिक्त प्राकृतिक शोभा एवं प्रकृति-प्रदर्शन और विविध घटनाओं को तो मानो इनकी लेखनी स्वनेत्र से देखकर लिखती थी । जान पड़ता है कि गोसाईंजी के हृदय में जहाँ किसी भाव की उत्पत्ति हुई, उसके पूर्व से ही उनकी लेखनी तदुपयुक्त शब्दों से सुसज्जित होकर प्रस्तुत रहती थी ।

गोस्वामी जी के ग्रन्थ संसार के साहित्य-भण्डार में चमकते हुए रत्न के सदृश हैं । किसी कविने कहा है:—

'उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम् ।
दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः' ॥

इसमें कोई सन्देह नहीं कि तुलसीदासजी उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा एवं अन्य आलंकारिक रचना की दृष्टि से कालिदास, अर्थ-गौरव की दृष्टि से भारवि, पद-लालित्य की तुलना से दण्डी तथा गुण-समष्टि पर विचार करने से हिन्दी भाषा के माघ थे। यद्यपि नम्रता-प्रदर्शन के भाव से कविराज ने लिखा है:—

कवि न होउँ नहिं बचन प्रवीना। सकलकला सब बिद्याहीना॥
कवि न होउँ नहिं चतुर कहाऊँ। मति अनुरूप राम गुन गाऊँ॥
कवित बिवेक एक नहिं मोरे। सत्य कहौं लिखि कागद कोरे॥

इत्यादि,

तथापि इनमें काव्य-प्रसिद्धि और सुयश-प्राप्ति की भी प्रबल लालसा थी, जिसके प्रमाण में ये पद पर्याप्त हैं:—

होइ प्रसन्न देहु बरदानू। साधु समाज भणिति सनमानू॥
जो प्रबन्ध बुध नहिं आदरहीं। सो श्रम बादि बालकवि करहीं॥

सपने हुँ साचहुँ मोहि पर, जो हर गौरि पसाउ।
तो फुर होउ जो कहेउ सब, भाषा भणिति प्रभाउ॥
सो न होइ बिनु बिमल मति, मोहि महि बल अति थोर।
करहु कृपा हरि यश चहौं, पुनि पुनि करौं निहोर॥

वास्तव में काव्य वही है जिससे जगत का लाभ हो और साहित्य-पटु-पण्डित जिसकी प्रशंसा एवं प्रतिष्ठा करें। हमारे कविराज कुकवि कहलाने से बहुत बचना चाहते थे, जैसा सीता के सौन्दर्य-वर्णन में घबड़ा कर कहा है:—

सिय सोभा नहिं जाय बखानी। जगदम्बिका रूपगुणखानी॥
उपमा सकल मोहि लघु लागी। प्राकृत नारि अंग अनुरागी॥
सीय बरनि केहि उपमा देई। कुकवि कहाइ अजस को लेई॥

अस्तु;

कविराज ही तो ठहरे; पुरानी उपमाओं की अवहेलना करते हुए नयी उपमा का निर्माण कर लिया:—

जो पटतरिय तीय सम सीया। जग अस जुवति कहाँ कमनीया॥
गिरा मुखर तनु अर्ध भवानी। रति अतिदुखितअतनु पतिजानी॥
बिष बारुणी बन्धु प्रिय जेही। कहिय रमा सम किमि बैदेही॥
जो छबि सुधा पयोनिधि होई। परम रूप मय कच्छप सोई॥
शोभा रजु मन्दर सृङ्गारू। मथै पाणि-पंकज निज मारू॥

एहि बिधि उपजे लच्छि जब, सुन्दरता सुख मूल।
तदपि सँकोच समेत कवि, कहहिं सीय सम तूल॥

लीजिये: इतनी क्लिष्ट कल्पना कर के लक्ष्मी भी निकाली तौ भी सीता से उसकी समता करने में कवि-सम्राट संकुचित ही हो रहे हैं !!! कवि जी ने उपमाओं को भी जूठी समझ कर (सब उपमा कवि दियेउ जुठारी। केहि पटतरिय विदेह कुमारी) सीता के लिये नयी उपमा ही ढूंढ़ निकाली! यहाँ तक कौन कवि पहुँचा है?

यहाँ तक पहुँचने में तो कालिदास का भी कलेवर बदल जाय, दण्डी का दण्ड टूट जाय, भारवि भाग चले और माघ बेचारा ठिठुरकर मार्ग ही में रह जाय। चेत् आप मनोवृत्तियों अथच आभ्यन्तरिक-वर्णन की दृष्टि से गोस्वामीजी को शेक्सपिअर एवं विविध भाँति की सदाचार सम्बन्धी सादी शिक्षाओं के विचार से 'सादी' भी कह दें तो यह सादी बात होगी। शेक्सपिअर की कविता से तुलना करना यतः मेरे अधिकार से बाहर की बात है, अतः तत्सम्बन्ध में आँग्ल-भाषा-विद् माननीय मिश्र बन्धुओं की सम्मति अविकल उद्धृत करता हूँ:—"संसार के किसी भी कवि के विषय में यह निश्चयात्मक नहीं कहा जा सकता कि उसने तुलसीदासजी से श्रेष्ठतर कविता की है, अंग्रेजी कविताचूड़ामणि महाकवि शेक्सपिअर की उपमा प्रायः इनसे दी जाती है और कतिपय अँगरेज लेखकों ने ममतावश उसे इन से भी कुछ बड़ा माना है। इसमें सन्देह नहीं कि उसके हैमलेट, मैकबेथ, विंटर्सटेल, आथेलो, किङ्गलियर, जूलियस सीजर, वेनिस का सौदागर इत्यादि नाटक नामी और प्रशंसनीय हैं, परन्तु कुल बातोंपर ध्यान देने से गोस्वामी जी में उससे चमत्कार पाया जाता है। विंटर्सटेल में प्रेम और उसकी जाँच का अच्छा चित्र खींचा गया है; पर सीताजी के प्रेम-वर्णन के सामने वह फीका पड़ जाता है। आथेलो में उसका संदेह एवं आयगो की धूर्ततावाला भाग मुख्यांश है, जो भानुप्रताप कथान्तर्गत कपटी मुनि के वर्णन से पीछे छूट जावेगा। किङ्गलियर में कार्नीलिया का पितृ-प्रेम एवं गानरिल और रीगन की चालाकी तथा लियर पर उनका प्रभाव अच्छा वर्णित हुआ है, पर कैकेयी की कुटिलता पर दशरथ की दशा एवं श्रीराम का पितृ-प्रेम वाले वर्णनों के सामने बरबस कहना पड़ेगा कि किङ्गलियर किसी लड़के की रचना है। जूलियस सीजर का परम पुरुषार्थ ब्रूटस की मूर्खता एवं ऐन्टनी की वक्तृता है, पर इनकी प्रभा अयोध्याकांड के अनेकानेन व्याख्यानों के सामने एकदम मन्द पड़ जाती है।

मर्चेन्ट आफ वेनिस में सन्दूक खोलने में प्रणयी लोगों के विचार एवं न्यायालय का दृश्य अच्छा है। इनके सामने स्वयंवर में राम द्वारा धनुष टूटने के समय सीता व उनकी माता के विचार एवं अन्य अनेक वर्णन कहीं बढ़े चढ़े हैं। हैमलेट और मैकबेथ परम प्रशंसनीय ग्रन्थ हैं; पर रामायण में अयोध्याकांड के वर्णन उनसे कम

कदापि नहीं हो सकते । शेक्सपियर ने कुल मिला कर आकार में गोस्वामी जी से प्रायः ड्योढ़ी कविता की है, जिसमें प्रायः आधा गद्य है । इन ग्रन्थों में मानुषीय प्रकृति और नैसर्गिक पदार्थों के ऐसे २ उत्तम और मनोहर चित्र खींचे गये हैं, कि उन्हें पढ़कर अवाक् रह जाना और उक्त कविकुलमुकुट के सम्मुख शिर नीचा करना पड़ता है । उसने प्रायः सभी प्रकार के मनुष्यों की प्रकृतियों, विवध दशाओं, शृङ्गार एवं हास्यरसों और अन्य कई तरह के चमत्कारी विषयों के चित्ताकर्षक वर्णन किये हैं, तथा कथानक संगठन में अच्छी सफलता पाई है । शांत, वीर और भयानक रसों को छोड़ शेष अन्य रसों के भी बड़े ही उत्तम उदाहरण उसमें पाये जाते हैं । सब से बढ़ कर बात यह है कि मानुषीय प्रकृति का वर्णन शेक्सपियर ने अद्वितीय किया है । पर गोस्वामीजी मानुषीय प्रकृति, का अत्यन्त सच्चा और मनोहर वर्णन करके जो ईश्वरीय प्रकृति, शान्तरस, काव्याङ्गों और भक्ति भाव की अटूट तरंगे प्रवाहित की हैं, जिनमें निमग्न होकर व इस स्वार्थी संसार के बहुत परे उठ गये हैं, उनका स्वाद साधारण संसारी जातियों के विद्वानों तक को पूर्णरीति से अनुभूत नहीं हो सकता । गोस्वामी जी के वर्णन को पढ़ कर मनुष्य नीच और उच्च सभी प्रकार की प्रकृतियों को भली भांति जानकर उत्तम मार्ग की ओर ही प्रवृत्त होगा । भक्तिरस का जो गम्भीर और हृदयद्रावक भाव इनकी रचनाओं में हर स्थान पर वर्तमान रहता है, उसके सामने शेक्सपिअर कुछ भी उपस्थित नहीं कर सकता । वन्दना, विनय, अयोध्याकाण्ड के सभी वर्णन अनेक विनतियाँ, लङ्का-दहन (कवितावली की) बाल-लीला और ज्ञान-भक्ति आदिक जैसे अच्छे गोस्वामी जी ने कहे हैं, उनके जोड़ शेक्सपिअर आदि में नहीं मिलते । भाषा और कविता-शैली में तुलसीदास जी ने पृथक् पृथक् चार प्रकार के कवियों की भाँति रचनायें की हैं, जिनके उदाहरण-स्वरूप रामचरित-मानस, कवितावली, कृष्ण-गीतावली और विनय-पत्रिका कही जा सकती हैं । दोहावली और सतसई आदि में इनकी एक पाँचवीं ही छटा देख पड़ती है । इनके शेष ग्रन्थ इन्हीं पाँच विभागों में आवेंगे ।

अकबरी दरबार के कवि सौर काल से ही दृष्टिगोचर होने लगे थे; परन्तु भाषा-काव्य पर इनका विशेष प्रभाव तुलसी-काल में पड़ा ।"

मिश्रबन्धुविनोद पृ० १२१-१२३

काव्य-गुण

गोस्वामी जी की कविता में काव्य सम्बन्धी माधुर्य और ओज के अतिरिक्त स्थान स्थान पर हम प्रसाद भी पाते हैं । किन्हीं किन्हीं स्थलों की रचना तो ऐसी सरल और सरस है कि साधारण पठित अथवा एकमात्र अपठित दल भी

उत्पन्न मुग्ध है। यद्यपि किन्हीं किन्हीं स्थलों की रचना को तो गोसाईं जी ने जान बूझ कर इस प्रकार क्लिष्ट बनाया है, जिसके अर्थ करने में बड़े बड़े धुरन्धर साहित्य-मर्मियों को भी कुछ सोचना पड़ जाता है। ऐसे स्थलों के विषय में स्वयं कविजी ने कहा है:—

"देश काल गति हीन जे, कर्ता कर्म न ज्ञान।
तेपि अर्थ मगु पगु धरहिं, तुलसी स्वान समान" ॥

तथापि लगभग आधी कविता इनकी ऐसी है जिसे साधारण पढ़े-लिखे लोग भी सुगमतासे समझ लेते हैं। लाखों लोग बात बात में रामयण की चौपाइयों या दोहों के धड़ाधड़ प्रमाण पेश करते हैं, यह उस ग्रन्थ की सरलता का प्रमाण है।

सोने में सुगन्ध

गुण है, जिसको कोई भी सच्चा समालोचक कहे बिना रुक नहीं सकता कि हिन्दी-भाषा के कतिपय अन्य कवियों की नाईं गोसाईं जी ने अश्लील-काव्य-रचना से अपने ग्रन्थों को दूषित नहीं किया। कहीं कहीं बड़ी मार्मिकता से श्रृङ्गार रस का वर्णन तो किया है, परन्तु ऐसे स्थलों के साहित्य को ऐसी चातुर्य भरी भाषा में लपेटा है कि वहाँ साक्षात् श्रृङ्गार रस की गन्ध तक नहीं आती। आप किसी ऐसे ग्रन्थ को उठा कर पढ़ जाइये, जिसमें किसी नायिका के नख-शिख का वर्णन लिखा हो। देखिये, आपके हृदय में किस भाव का उद्रेक होता है, उसके बाद ही 'राम-चरित-मानस' के आरण्यकाण्ड की नीचे लिखी चौपाइयों को पढ़ने का कष्ट उठाइये, जिनमें गोस्वामी जी ने विरही रामचन्द्र के मुख से वियोगिनी सीता की स्मृति में कैसे शिष्ट साहित्य और भव्य भाव को प्रकट कराया है :—

हे खगमृग हे मधुकरस्रेनी। तुम देखी सीता मृग नैनी ॥
खंजन शुक कपोत मृग मीना। मधुप निकर कोकिला प्रवीना ॥
कुन्दकली दाड़िम सुदामिनि। शरद कमल शशि उरग भामिनी ॥
वरुणपाश मनोज धनु हंसा। गज केहरि निज सुनहिं प्रशंसा ॥
श्रीफल कनक कदलि हरखाहीं। नेकुन शंक सकुच मनमाहीं ॥
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू। हरखे सकल पाइ जनु राजू ॥

अन्य कवियों के पद्य-मय ग्रन्थों पर एक बार दृष्टि-पात कीजिये तो उनमें आप कदापि इस प्रकार का गुण नहीं पा सकेंगे। यद्यपि इनकी काव्य-रचना, अलंकार-रचना और अनुप्रासों की लरी मनुष्य के चित्त को बरबस वश कर लेती है, तथापि नवयुवकों के चरित्र बिगाड़ने में इन काव्यों ने बड़ा भाग लिया है। कोई समय था जब कि संस्कृत साहित्य भी आद्योपान्त स्त्रियों के अङ्ग प्रत्यङ्ग वर्णन

से ही भर गया था। ठीक उसी प्रकार हिन्दी के कितने कवियों ने नायिकाभेद और अन्यान्य नख-शिख-वर्णनात्मक पद्यों को लिखकर हिन्दी भाषा की तोंद थल-थला दी। कहना नहीं पड़ेगा कि वह समय विषय-निरत शृङ्गार-प्रेमी यवन सम्राटों का था। भारतवर्ष के होनहार नवयुवकों में नपुंसकत्व, हिजड़ेपन और स्त्रैण का बीज इसी दुरवस्था में वपन किया गया था, जो आज काल पाकर फल-फूल ला रहा है। पुरुषार्थ, ज्ञान, विज्ञान, कला-कौशल, गणित, इतिहास, भूगोल, वनस्पति-शास्त्र, राजनीति तथा अन्यान्य उपयोगी विद्याओं के प्रतिपादक ग्रन्थों की लेखन-प्रणाली का पटाक्षेप हो गया। एक ओर मुसलमान शायरों ने इश्क के गन्दे गज़ल और अशआर लिखकर तूदा तूफान उठाये, जिनके विषय में शमशुल उलेमा मौलाना अलताफ हुसेन (हाली) ने लिखा है :—

बुरा शेर कहने की गर कुछ सज़ा है। अबस झूठ बकना अगर नारवा है॥
तो वह महकमा जिसका काजी खुदा है। मुकर्रर जहाँने को बद की जजा है॥

गुनहगारवाँ छूट जायेंगे सारे।
जहन्नुम को भर देंगे साइर हमारे॥

दूसरी ओर रसिक हिन्दी-कवि योगिराज-श्रीकृष्ण की आड़ में भरपेट गन्दगी उधेड़ते रहे। मुझे इन कविताओं की अधिक चर्चा चलाकर आप का अमूल्य समय नष्ट करना अभीष्ट नहीं। कहना केवल यह है कि ऐसे ग्रन्थ साहित्य की दृष्टि से किञ्चित् उपादेय होते हुए भी चरित्र संगठन की दृष्टि से अत्यन्त हेय हैं। उत्तम से उत्तम साहित्य यदि उसी कक्षा की भाषा और कविता से विभूषित हो तो वह सर्वोत्तम परिगणित होता है, पर गन्दा साहित्य और अश्लील भाव सुभाषा से आभूषित होने पर भी ठीक उसी भाँति अग्राह्य है, जैसा स्वर्णजटित शाल से ढ़का हुआ मल। यवनकालीन हिन्दी और उर्दू के घने कवि इसी ढर्रे के थे, जिन की कविता को पढ़कर किसी गिरे हुए मनुष्य के उठने की आशा तो आकाश-पुष्पवत् ही रही, प्रत्युत सदाचार सम्पन्न मनुष्यों के चरित्र-पात की ही अधिक आशंका की जा सकती है। जहाँ हिन्दी कवियों ने शृङ्गार-रस का विभाव नायिका पर रखा है वहाँ उर्दू के काव्य-देव गिलमों पर ही मरे जा रहे हैं !!! अस्तु,

तुलसीकृत ग्रन्थों को पढ़ कर विषयी और व्यभिचारी मनुष्य सत्पथारूढ़ हो जाते, यह सर्वांश में ठीक हो वा न हो परन्तु संसार में कोई भी माई का लाल यह सिद्ध करने का साहस नहीं कर सकता कि अमुक मनुष्य पूर्व में सदाचारी था परन्तु गोस्वामी कृत ग्रन्थों को पढ़कर विषयी और दुराचारी बन गया, यह बात दूसरी है कि कोई पुराकाल का दुराचारी मनुष्य तुलसी कृत ग्रन्थों को पढ़ने पर भी दुराचार से मुक्त न हुआ हो। जगद्विनोद, इश्कनामा, रसराज, रसिक-प्रिया और

कवि-प्रिया पढ़कर कितने ऐसे हृदय हैं; जिन्हें कुछ स्थायी आनन्द वा शान्ति प्राप्त हुई हो ? चन्द्रकान्ता सन्तति को पढ़कर कितने नवयुवक सुधरे होंगे ? वास्तव में काव्य वही है जो जाति के अन्दर जीवन, सदाचार एवं सद्गुणों की स्थापना करे।

नवरसों में शृङ्गार-रस की प्रधानता को ही कवि समुदाय ने स्वीकार कर एक में दूसरे ने स्वर मिलाया है। महाकवि देव जी लिखते हैं:—

अरथ धर्म ते होइ अरु, काम अरथ ते जानि।
तातें सब सुख को सदा, रस शृङ्गार बखानि॥

यहाँ पर तो देव जी ने "काम" शब्द का दुरुपयोग करते हुए उसका पद धर्म और अर्थ से भी ऊँचा कर दिखाया है, जिससे शृङ्गार रसके महत्वप्रदर्शन में उन्हें बड़ा सहारा मिल गया है। कविराज पद्माकर जी ने बड़ी कृपा की है कि नव-रसों में ही शृङ्गार रसका प्राधान्य कथन किया है:—

"नव रस में जु सिंगार रस, सिरे कहत सब कोय"

विचारना यह है कि संसारी जनों की तो कामिनियों में प्रकृत्या प्रवृत्ति होती ही है। अतः नायिकाओं के वर्णन में जो कविता की जायगी, उसका हृदयभेदी होना भी स्वाभाविक है। हाँ, अलबत्ता; कवियों की लेखनी की प्रतिभा की परख बीर और शान्त रसादि वर्णन में की जा सकती है। मानवीय चित्तवृत्तियों को सन्मार्ग में आरूढ़ कर उनकी पतनशील प्रगति में परिवर्तन प्रस्तुत कर देना ही सच्चे कवि का काम है। प्रवाह में प्रवाहित होते हुए मनुष्य को मध्य धार में डाल देना कुछ विशेषता नहीं रखता।

मैं कदापि यह कहने के लिये समुद्यत नहीं हूँ कि शृङ्गार रस काव्य से उड़ा दिया जाय। शृङ्गार रस कविता का नेत्र है, उसके बिना कविताकामिनी कानी, कुत्सिता और कुरूपा हो जायगी, परन्तु उसे साहित्य के अभ्यन्तर उचित मात्रा में रखने की आवश्यकता है। उसे मर्यादा के भीतर लाइये। स्थान स्थान पर बाजारी औरतों के वर्णन से ठसाठस भर देना शृङ्गार रस नहीं है।

'यहि पाखैं पातिव्रत ताखैं धरो'

अथवा

'यों चित चाहत एरी भटू, मन मोहन लेके कहूँ कढ़ि जैये'।

आदि भावों को जगत् में फैलाने से ग्रन्थकार को क्या लाभ हुआ ? अथवा जनता ने क्या लाभ उठाया ? इत्यादि विषय विचारणीय हैं।

'अमी हलाहल मद भरे, स्वेत स्याम रतनार।
जियत मरत झुकि झुकि परत, जेहि चितवत इकबार॥

इस पद्यको रच कर रचयिता ने अपने 'अमी' से कितनों को अमर बनाया ? 'मरत झुकि-झुकि परत' तो प्रत्यक्ष है !

कविवर बिहारी जी के दोहों की बड़ी प्रशंसा हुई तो कहा गया कि:—

> सतसैया के दोहरे, जनु नायक के तीर।
> देखत में छोटे लगै, घाव करै गम्भीर॥

निस्सन्देह सकल शरीर में बेध कर गम्भीर घाव करने के अतिरिक्त ये दोहे और क्या करेंगे? पर तुलसी की कविता-कामिनी सेवा-समिति की ओर से परिचारिका (Nurse) बन कर मरहम पट्टी द्वारा बाह्य-व्रण-पीड़ा को उन्मूलन कर सदुपदेश का रक्तशोधक रस पिला कर रोगी को एक मात्र चंगा बना देती है। तुलसीदास जी अश्लील साहित्य लिखना कितना हानिकारक समझते थे, इसका पता आप निम्न दोहे से पा सकते हैं। प्रसिद्धि है कि एक संस्कृताभिमानी पण्डित ने गोसाईं जी से पूछा कि आप संस्कृत में न लिखकर अपनी कविता गँवारी भाषा में क्यों लिखते हैं ?

इस पर तुलसीदास जी ने कहा—

> मनि भाजन विष पारई, पूरन अमी निहार।
> का छाड़िय का संग्रहिय, कहहु विवेक विचार॥

संस्कृत भाषा मणि-जटित पात्र है, परन्तु उसमें उद्धत लेखकों ने अश्लील वर्णनरूप विष रख दिया है। हमारी भाषा मृत्तिका पात्र सी गँवारी है, परन्तु उसमें हमने रामचरितामृत रखा है। अब विचारना यह है कि किसका संग्रह और किसका त्याग किया जाय ? जो मनुष्य पात्र के सौन्दर्य पर मोहित होगा उसे विष पान कर अपना अन्त करना होगा। परन्तु जो अमर-पद-प्राप्ति के इच्छुक हैं, उन्हें बर्तन से बहस नहीं। वे हमारी ग्राम्य-भाषा-मिश्रित हरिकथा और सत् शिक्षा को श्रवण कर उससे अपना सुधार कर लेंगे। तुलसीदास इस अंश में कितने सतर्क कवि थे, यह कहा नहीं जा सकता। जहाँ सीता के वर्णन में लिखते हैं:—

> 'सोह नवल तन सुन्दर सारी'

वहीं पर 'जगत जननि अतुलित छबिहारी' पूरक पद देकर ऐसी निपुणता से काम लिया है कि पापी से पापी मनुष्य का प्रथम पद को पढ़कर कालुष्य-प्राप्त अन्तःकरण दूसरे पद-प्रवाह रूप तरल-तरंग-गंगा के मंजुल-जल रूप 'जगत जननि' पद से निर्मल हो उठता है। इसी प्रकार शिव-पार्वती के सहवास का वर्णन करते हुए कविवर कालिदास ने कुमार-संभव में क्या नहीं लिख दिया ! शिव-पार्वती का वन-विहार, जल-विहार लिखते-लिखते जब कविराज थक गये तब अष्टम सर्ग के अन्त में फर्माते हैं:—

> समदिवस निशीथं सङ्गिनस्तत्र शंभोः ।
> गतमगमदृतूनां सार्धमेका निशेव ॥
> न स सुरतसुखेभ्यश्छिन्नतृष्णो बभूव ।
> ज्वलन इव समुद्रान्तर्गतस्तज्जलौघैः ॥

अर्थात् शिवजी पार्वती के साथ १५० ऋतुओं अर्थात् २५ वर्षों तक इन्द्रियों के सुखानुभव में मग्न रहे, तिस पर भी उनका जी न भरा। जैसे दिन रात समुद्र का जल पीते रहने पर भी वड़वानल की प्यास नहीं बुझती, वैसे ही दिन रात सुखोपभोग करते रहने पर भी शिवजी की तृप्ति न हुई।

पाठक देखेंगे कि जहाँ कालिदास की कविता से लज्जा भी लज्जित हो नत-ग्रीव हो जाती है, वहाँ सहृदय सुकवि गोसाईं जी दो ही पद्यों में सारी बातों का समावेश कर कालिदास की कविता को फूँक से उड़ा देते हैं।

> जगत-मातुपितु शंभु भवानी। तेहि शृंगार न कहेउ बखानी ॥
> हरगिरजा-बिहार नित नयऊ। एहिबिधि विपुल काल चलि गयऊ ॥

× × × ×

स्त्री जाति के लिये माता से वढ़कर और क्या सम्मानसूचक पद होगा। संसार के समस्त पवित्र भाव इसी शब्द में समाविष्ट हैं। सहूलियत, सभ्यता और सूझ से काम लेने में गोस्वामीजी ने यहाँ बाजी मार ली है। कहने को तो महाकवि कालिदास ने भी शिव-पार्वती को 'रघुवंश महाकाव्य' के प्रारंभिक श्लोक—

> वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये ।
> जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ॥

में "पितरौ" (माता पिता) पद से स्मरण किया है, पर 'कुमार-संभव' में अपनी तबीयत के मुवाफ़िक़ इनके नाम पर भरपेट गन्दगी उधेड़ी है।

मैं तो समझता हूँ कि गोस्वामी तुलसीदास के 'हर गिरजा बिहार नित नयऊ। एहि बिधि विपुल काल चलि गयऊ ॥' पद पर भी कालिदास के कुमार-संभव के ही छींटे पड़े हैं।

मेरी धारणा है कि कवि-समुदाय में महाकवि कालिदास ही इस कुप्रवृत्ति के प्रवर्तक हैं। अपने आराध्य अथवा इष्ट देव के प्रति ऐसा नग्न शृङ्गार लिखने की प्रथा आपने ही चलायी है। ऐसा शृङ्गार वर्णन रस की सीमा का उल्लंघन कर रसाभास के स्वरूप में परिणत हो जाता है। सूर, बिहारी, देव, पद्माकर, दास और मतिराम इत्यादि हिन्दी के सुकवियों ने इस अंश में कालिदास का ही यथारुचि अनुसरण किया है। कहने के लिये तो उन लोगोंने राधा-कृष्ण को पूज्य और आराध्य देव माना, पर इसी ओट में क्या नहीं लिखा। माता पिता के शृङ्गार और रति-

वर्णन में कितना अनौचित्य है इसका विचार प्रत्येक मर्य्यादा-प्रिय मनुष्य को होना चाहिये। निश्चय ही कुमार-संभव में महाकवि कालिदास ने औचित्य की सीमा का अतिक्रमण किया है। पण्डितराज जगन्नाथ ने स्वरचित 'रस गङ्गाधर' में क्या ही अनुकरणीय लेख लिखा है:—

"यत्र सहृदयानां रसोद्बोधः प्रमाणसिद्धस्तत्रैव साधारणीकरणस्य कल्पनात्, अन्यथा स्वमातृ-विषयक-स्वपितृ-रति-वर्णनेऽपि रसोद्बोधापत्तेः। जयदेवादिभिस्तु गीतगोविन्द-प्रबन्धेषु सकलसहृदयसम्मतोऽयं समयो मदोन्मत्तमतङ्गैरिव भिन्न इति न तन्निदर्शनेनेदानीन्तनेन तथा वर्णयितुं साम्प्रतम्।"

अर्थात् जहाँ सहृदयों का रसोद्बोध प्रमाणसिद्ध हो, वहाँ ही इष्टदेवादिकों की साधारणी-करण की कल्पना इष्ट है, अन्यथा स्वमातृ-विषयक स्वपितृ-युक्त रति-वर्णन और रस के उद्बोधन की भी आपत्ति होगी। जयदेव प्रभृति ने स्वनिर्मित गीतगोविन्दादि प्रबन्धों में समस्त सहृदय-सम्मत इस सिद्धान्त को मदोन्मत्त मतङ्ग की भाँति तोड़ दिया है, अतः ऐसे कवियों के द्वारा निर्दिष्ट पथ का अनुसरण किसी साम्प्रतिक कवि को करना उचित नहीं।

अहा! पण्डितराज का लेख उत्तम प्रशंसनीय और अनुकरणीय है। वास्तव में जयदेवादि ने मदोन्मत्त मतङ्ग की नाईं अकारण ही आदर्श मर्यादा तोड़ दी है। उत्तम साहित्य लिखकर भी काव्य के सर्वाङ्गों का प्रदर्शन किया जा सकता है।

ऊपर के मिलान में कालिदास के साथ तुलसीदासजी की विशेषता दिखलाने का भाव सर्वांश में नहीं, अपितु प्रस्तुत प्रकरण में ही समझना चाहिये, अन्यथा कालिदासजी को महाकवि मानने में किसे सन्देह हो सकता है।

अब इसी अंश में एकाध हिन्दी कवियों के साथ गोस्वामीजी की कविता का मिलान किया जाता है।

कविराज पद्माकर ने अपने प्रसिद्ध 'जगद्विनोद' में नायिका का उदाहरण देते हुए लिखा है:—

'जाहिर जागत सी जमुना, जब बूड़े बहे उमहे वह बेनी।
त्यौं पद्माकर हीरा के हारन, गंग तरंगन की सुख देनी॥
पाँयनके रँग सो रँगि जाति सी, भाँतिहि भाँति सरस्वति सेनी।
पैरे जहाँई जहाँ वह बाल, तहाँ तहाँ ताल में होत त्रिबेनी॥

इसमें कोई सन्देह नहीं कि पद्माकरजी ने इस सवैया में शब्द और अर्थालंकारों का समुचित समावेश करके नायिका के शरीर में त्रिवेनी की कल्पना की है, परन्तु उन्हें भी हीरा के हार और पावों में मेहदी वा महावर के रंग की सहायता लेनी पड़ी, ताल-तलैया की शरण जानी पड़ी। बेचारी नायिका को तैरना पड़ा, तब त्रिवेनी

बनी ; परन्तु गोस्वामीजी कैसे सरल ढंग से अपने चरितनायक रामचन्द्र के चरणों में त्रिवेणी का प्रवाह प्रवाहित करते हैं। देखिये गीतावली उत्तरकाण्ड पद्य संख्या १५ :—

रामचरन अभिराम कामप्रद, तीरथराज विराजै।
शंकरहृदय-भक्ति भूतल पर, प्रेम अक्षयबट भ्राजै॥
स्याम बरन पद पीठ अरुन तल, लसति बिसदनखस्रेनी।
जनु रविसुता सारदा सुरसरि, मिलि चलीं ललित त्रिबेनी॥

× × × ×

पाठक देखेंगे कि तुलसीदास की रचना रूपक और कल्पना में कृत्रिमता का लेश नहीं, स्वाभाविकता भरी पड़ी है।

रसिकशिरोमणि शृंगार रस के अद्वितीय लेखक बिहारीजी स्वकीया नायिका का प्रेमादर्श स्थापित करते हुए लिखते हैं:—

ज्यौं ज्यौं आवत निकट निसि, त्यौं त्यौं खरी उताल।
झमकि झमकि टहलैं करैं, लगी रहँचटे बाल॥
झुकि झुकि झपकौहैं पलनि, फिरि फिरि मुरि जमुहाय।
बींदि पियागम नींद मिस, दीं सब सखी उठाय॥

नायक परदेश से आया है। नायिका प्रसन्नता के मारे फूली नहीं समाती। उकताई हुई रात्रि का आगमन जानकर शीघ्रता से घर के सब कार्य कर रही है। प्रबल अभिलाषा लगी हुई है। सखियाँ सब पास में बैठी हैं। नायिका अपने पति के गृह में आने का समय समझ कर सखियों को बहलावा दे कर उठा देने के लिये झुकती, पलकें छिपाती और बार बार जमुहाई लेती है। अब तुलसीदास की तद्विषयक रचना देखने के लिये बरवै रामायण के पद्य सं० १८ को पढ़िये:—

उठी सखी हँसि मिस करि कहि मृदुबैन। सिय रघुबर के भये उनींदे नैन॥

इस पद्य में सिय-रघुबीर का एकान्त सहवास सिद्ध करने के लिये गोसाईं जी की रचना अत्यन्त विचित्र है। बिहारी की नायिका ही सखी को उठाने के लिये नाना प्रकार के नाट्य करती है, परन्तु गोसाईं जी की सखी इतनी बुद्धिमती है कि स्वयं एकान्त-सेवन-काल समझ कर मृदु वचन से 'सिय रघुबीर के भये उनींदे नैन' कह कर इसी मिस से मुसकरा कर हट जाती है। गोसाईं जी की रचना में स्वाभाविकता है, उच्च भाव है, नायिका को मिस नहीं करना पड़ता, स्वयं चतुर सखी ही मिस करके उठ जाती है। बिहारी ने नायिका से सखियों का निष्कासन कराकर सारा मजा किरकिरा कर दिया है। संसार का कोई भी कवि शृङ्गार रस की बारीकियों को दिखलाते हुए सौजन्य और सभ्यता की इतनी रक्षा नहीं कर सका है

जिस पराकाष्ठा तक तुलसीदास जी ने की है। जहाँ कोई कवि मर्याद-सीमा के अन्तर्गत शृङ्गार लिखने चला है वहाँ रस को ही नीरस बना बैठा है, परन्तु गोसाईं जी सब कुछ लिख कर भी शृङ्गार रस की तल्लीनता में सौजन्य, सभ्यता और सहृदयता को हाथ से नहीं जाने देते। पुनश्च; बिहारी एक ग्वालिन के प्रति श्रीकृष्ण का प्रगाढ़ प्रेम प्रदर्शन करते हुए किस प्रकार पातिव्रत और स्त्रीव्रत धर्म का उत्थापन कराते हैं:—

तू मोहन मन गड़ि रही, गाढ़ी गड़नि गुवालि।
उठै सदा नटसाल * लौं, सौंतिन के उर सालि॥

जब दूसरे पुरुष की स्त्री ग्वालिन श्रीकृष्ण के मन में इस प्रकार गाढ़ी गड़न से गड़ गयी है, तब पातिव्रत और स्त्रीव्रत धर्म कहाँ शरण पावेंगे, यह बिहारी ही विचार सकते हैं। हिन्दी में शृङ्गार रस के आदिआचार्य महाकवि सूरदास समझे जाते हैं, कविवर की लेखनी ने इस विषय में कमाल हासिल किया है, उनकी रचना अभूत पूर्व है। उनके सूरसागर में श्रीकृष्ण के बालचरित की चारुता विचित्र है, ग्रन्थ साद्यन्त शृङ्गारस से परिफ्लुत है, परन्तु सूरदास जी ने धार्मिक मर्यादा की परवाह नहीं की और शोक है कि उनके पश्चाद्वर्ती कवि-प्रवर भी उसी प्रवाह में प्रवाहित हो चले हैं, प्रत्युत कई जगह तो सूरि-सूर-सूर को भी नम्रशिर कर दिया है। एक हिन्दी के कवि जी लिखते हैं:—

अँखियां मटकाइ गोपाल के गाल में, आँगुरि ग्वालिनि गाड़ि दई।

अब आप कृपाकर कवित्त रामायण, अयोध्याकाण्ड कवित्त—संख्या २१-२२ पढ़िये। सीता, राम और लक्ष्मण बन में जाते हैं, उन्हें देखने को ग्राम की बधुएँ आयी हैं और सीता से पूछती हैं:—

'सीस जटा उर बाहु बिसाल, बिलोचन लाल तिरछीसी भौहें।
तूनसरासन बान धरे, तुलसी बन मारग में सुठि सोहें॥
सादर बारहिं बार सुभाय, चितै तुम त्यों हमरो मन मोहें।
पूछति ग्रामबधू सियसों, कहो साँवरो सो सखि रावरो को हैं॥

ग्राम—बधुओं का साहस राम-लक्ष्मण से पूछने का नहीं होता, सीता से पूछती हैं कि ये श्याम-वर्ण वाले तुम्हारे कौन लगते हैं? इनकी वह चितवन हमारे मन में चुभती है जिस प्रेमभरी दृष्टि से ये (रामचन्द्र) तुम्हारी (सीता की) ओर ताकते हैं !!! अहो! कैसा स्त्रीव्रती होने का सुदृढ़ प्रमाण है। क्यों न हो, जब मर्यादापुरुषोत्तम की यह खुली चुनौती थी कि:—

* तीर की नोक जो टूट कर घाव के भीतर रह जाय उसे नटसाल कहते हैं। यह शब्द नष्टशल्य का अपभ्रंश है

मोहि अतिशय प्रतीति जियकेरी। जेहि सपनेहु परनारि न हेरी॥

तब ऐसी दशा में वे—सात्विक भाव से ही सही—परनारी की ओर क्यों निहारने लगे ? अब सीता का उत्तर सुनिये :—

सुनि सुन्दर बैन सुधारससाने, सयानी हैं जानकी जानि भली।
तिरछे करि नैनन देखै तिन्हैं, समुझाइ कछू मुसुकाइ चली॥
तुलसी तेहि औसर सोहैं सबै, अवलोकति लोचन लाहु अली।
अनुराग तड़ाग में भानु उदै, बिकसी मनु मंजुल-कंजकली॥

अहह ! दाम्पत्य-प्रेम की कैसी मनोहर-विशुद्ध-व्यञ्जना है। द्वितीय पद कैसा चातुर्य-चर्चित है, नेत्र के इशारे से और मधुर मुसकान से पति-पत्नी की सुदृढ़ सम्बन्ध-सूचना कैसी अदृष्ट, अश्रुत और अपूर्व है ? 'रामचरित-मानस' में भी गोस्वामी जी ने इस प्रसङ्ग का अच्छे ढंग से चित्रण किया है:—

सीयसमीप ग्रामतिय जाहीं। पूछत अतिसनेह सकुचाहीं॥
बार बार सब लागहिं पाये। कहहिं बचन मृदु सरल सुहाये॥
राजकुमारि विनय हम करहीं। तिय सुभाव कछु पूछत डरहीं॥
स्वामिनि अविनय छमब हमारी। बिलग न मानब जानि गँवारी॥
राज कुँवर दोउ सहज सलोने। इनते लहि दुति मरकत सोने॥

श्यामल गौर किशोर बर, सुन्दर सुखमा ऐन।
शरदशर्वरीनाथमुख , शरदसरोरुह-नैन॥

कोटि मनोज लजावनहारे। सुमुखि कहहु को अहहिं तुम्हारे॥
सुनि सनेहमय मंजुल बानी। सकुचि सीय मनमँह मुसुकानी॥
तिनहि बिलोकि बिलोकति धरणी। दुहुँ सँकोच सकुचति बरबरणी॥
सकुचि सप्रेम बालमृगनैनी। बोली मधुर बचन पिकबैनी॥
सहज सुभाव सुभग तनु गोरे। नाम लखन लघु देवर मोरे॥
बहुरि बचन मृदु अंचल झाँको। पियतन चितै भौंह करि बाँकी॥
खंजन मंजु तिरीछे नैनन। निज पति कह्यो तिनहि करि सैनन॥

कुलवधू सीता की इस विचित्र-व्यञ्जना में जो मर्यादा एवं माधुर्य का मनोरम मिश्रण है, वह बिहारी के उद्धत-प्रेम-प्रलाप में कहां है ? भारतीय कुलवधुओं और कुलीन पुरुषों का अपूर्व अलौकिक प्रेम, अवारागर्द आशिक माशूक का सा नहीं, यह जीवन के गांभीर्य से ग्रन्थित होना चाहिये। परकीया के वर्णन में ही सही, देखिये बिहारी क्या लिखते हैं:—

भौंहनि त्रासति मुख नटति, आँखिन सों लपटाति।
ऐंचि छुड़ावति कर इँची, आगे आवति जाति॥

वहाँ तुलसीदास जी कैसी घृणा दिखा कर लिखते हैं:—

पति प्रतिकूल जनमि जहँ जाई। विधवा होइ पाइ तरुनाई ॥
छन सुख लागि जनम सत कोटी। दुख न समुझ तेहि सम को खोटी ॥

यदपि दोनों कविराज परकीया नायिका का ही उदाहरण उपस्थित करते हैं, परन्तु तुलसीदास जी की रचना विषय की उलझन में पड़े हुए दिल को भी सुलझाने वाली है। तद्विपरीत बिहारी का वर्णन सुलझे चित को भी उलझा देनेवाला है।

संस्कृत के कवियों के साथ मिलान करने में कवि-कुल-कुमुद-कलाप-कला-धर कालिदास का ही पुनः पुनः स्मरण हो आता है। आपने रघुवंश महाकाव्य के १२ वें सर्ग में सीता और जयन्त की कथा इस प्रकार लिखने का कष्ट उठाया है:—

रामोऽपि सह वैदेह्या वने वन्येन वर्तयन् ।
चचार सानुजः शान्तो वृद्धेक्ष्वाकुव्रतं युवा ॥ २० ॥
प्रभावस्तम्भितच्छायमाश्रितः स वनस्पतिम् ।
कदाचिदङ्के सीतायाः शिश्ये किंचिदिव श्रमात् ॥ २१ ॥
ऐन्द्रिः किल नखैस्तस्या विददार स्तनौ द्विजः ।
प्रियोपभोगचिह्नेषु पौरोभाग्यमिवाचरन् ॥ २२ ॥

'कुमार-संभव' में शिव-पार्वती का आदर्श दिखला चुके। अब उक्त श्लोक संख्या २२ के 'विददार स्तनौ द्विजः' पद पर आप विचार करें। जयन्त ने सीता के दोनो स्तनों को विदीर्ण कर रामके उपभोग के चिह्नों में दोष दर्शाते हुए शिक्षा दी है। वानप्रस्थाश्रमी राम और सीता को "रत्नाकरं वीक्ष्य मिथः सजायां रामाभिधानो हरिरित्युवाच" पद में विष्णु और लक्ष्मी का अवतार मानते और जानते हुए भी इस प्रसङ्ग में कालिदास ने अत्यन्त असावधानी एवं ओछेपन से काम लिया है। क्या सीता परिधानहीना थीं ? क्या दम्पति वनमें वानप्रस्थाश्रमी जीवन में ब्रह्मचर्यपूर्वक नहीं रहते थे कि 'प्रियोपभोगचिह्नेषु' पद प्रयुक्त किया।

इस प्रसंग को काव्यकुशल आर्यमर्यादारक्षक गोस्वामी तुलसीदास जी ने इस प्रकार लिखा है:—

एक बार चुनि कुसुम सुहाये। निज कर भूषण राम बनाये ॥
सीतहिं पहिराये प्रभु सादर। बैठे फटिकशिला परभाधर ॥
सुरपति सुत धरि वायसवेखा। शठ चाहत रघुपति बल देखा ॥
सीताचरन चोंच हति भागा। महामन्दमति कारन कागा ॥

इन पद्यों में आपने अपनी भक्ति के साथ साथ सभ्यता और श्लीलता की भी रक्षा की है। सुतराम्: गोस्वामी तुलसीदास जी शृङ्गार रसके भी अद्वितीय सतर्क और सिद्धहस्त कवि थे।

आपकी कविता-कामिनी के संबन्ध में:—सोने में सुगन्ध नाहीं, सुगंध में सुन्यौ री सोनो, सोनो औ सुगंध तोमें दोनों देखियत हैं—कह कर मौन रहना पड़ता है।

कथाओं और उपाख्यानों

की रचना में भी हमारे चरित-नायक को सिद्धियाँ प्राप्त थीं। यद्यपि इन्होंने अपनी कथाएँ पुराकालीन पुस्तकों से ली हैं, तथापि उन सब में रचना-वैचित्र्य इनकी निजी सम्पत्ति है। मदन-दहन, रति-विलाप एवं पार्वती की तपस्या की आख्यायिकाओं को गोसाईं जी ने 'कुमार-संभव' से लेते हुए भी यथाशक्ति नमक-मिर्च मिला कर उन्हें पूरा अपनालिया है। अवतारों की सारी कथाएँ पुराणों से लेते हुए भी महाकवि ने मनु-शतरूपा के वरदान में नवीनता डालकर उसे सजीव बना दिया है। भानुप्रताप की कथा तो इनके मस्तिष्क की नयी उपज है। इस गाथा को गोसाईं जी ने अत्यन्त शिक्षाप्रद और रोचक बनाया है। राम-परशुराम की छायामात्र अध्यात्म और वाल्मीकि रामायण से ली है। इस कथा को कवि-सम्राट ने मौलिक ढंग से लिखा है। उक्त कवियों ने विवाह के अनन्तर बारात की विदाई के पश्चात मार्ग में परशुराम का मिलना लिखा है, परन्तु गोसाईं जी को तो परशुराम की मरम्मत मंजूर थी, इसलिये रास्ते की उजलत में बुलाना उचित न समझ कर इतमीनान से जनक की यज्ञशाला में आह्वान कर उनकी जो फजीहत करायी है कि वही जानेंगे, अथवा स्वर्ग में कहीं तुलसीदास पर परशुराम की दृष्टि पड़ी हो तो वही जानेंगे। नारद-मोह भी हास्यपूर्ण होते हुए शिक्षा-पूर्ण है। अयोध्याकाण्ड की कथाएँ तो इस ढंग से लिखी गयी हैं जिनका कोई सानी नहीं। संवाद-सूचक उपाख्यानों में किस ढंग से एक पक्ष को प्रबल और किसी प्रकार दूसरे को निर्बल कर दिखलाना होता है इसकी शैली भी गोंसाईं जी की निराली है।

सत्य है:—

विपक्षमखिलीकृत्य प्रतिष्ठा खलु दुर्लभा।
अनीत्वा पङ्कतां धूलिमुदकं नावतिष्ठते॥

अंगद और रावण के संवाद को आप पढ़िये। अंगद की वाग्मिता, वीरता, शूरता एवं निर्भीकता को गोसाईं जी ने इतना उच्चस्थान प्रदान किया है कि रावण के दरबार को ही चंडूल कर दिया। इतने बड़े प्रतापी नरेश के मुकुटों को पृथिवी पर पतन कराकर उनमें से चार को अंगद राम के पास भेज देते हैं, पर रावण से कुछ नहीं बन पड़ता!!! उपाख्यानों वा संवाद कथाओं में उत्तर-प्रत्युत्तर की विचित्र शैली देखते हैं। इनके पद्यों को साधारण बात चीत में भी लोग लाया करते हैं। सुतरां हम तुलसीदास को एक

उच्च कवि के आसन

पर आसीन पाते हैं। वे एक महाकाव्यकार हैं; सुकवि हैं, सहृदयता, सभ्यता और सद्गुण के सीमास्वरूप हैं। उनकी महत्ता सर्वप्रकारेण अन्य कवियों की अपेक्षा बढ़ी हुई है। उनकी रचना में जहाँ सदाचार, लोकनीति, राजनीति और आदर्शमर्यादा हम कूट-कूट कर भरी देखते हैं, वहां उसमें ईश्वर-विश्वास का अटूट प्रवाह भी पाते हैं। नास्तिकता, उच्छृङ्खलता, अविश्वास का उसमें लेश नहीं पाते। उनके सद्ग्रन्थ धर्मानुराग, सत्य, धैर्य, साहस, शौर्य, वीरता, सहनशीलता, दयालुता और उदारता की पवित्र शिक्षा प्रदान करनेवाले हैं। फलतः जब तक संसार में सुकवि और सुकविता का समादर रहेगा, तबतक तुलसीदास और उनकी कृति समादृत होगी, इसमें सन्देह का स्थान नहीं।

(२१) अलंकार और तुलसीदास

रचना में चमत्कार का आना ही अलंकार है। चाहे वह चमत्कार शब्दों में हो वा अर्थों में अथवा दोनों ही में। अलंकार कविता की रोचकता को बढ़ा देते हैं। रस के भावों का उद्दीपन करते हैं। वास्तव में गद्यात्मक अथवा पद्यात्मक रचना में जो आनन्ददायक, बुद्धिवर्द्धक, किंवा ललित, शब्द, वाक्य वा भाव हैं जो काव्य के रस को विशेष रूचिकर बना देते हैं, वे ही साहित्य-शास्त्र में अलंकार कहलाते हैं। जिस प्रकार आभूषणों के धारण करने से मानवीय-विग्रह के सौन्दर्य्य और उत्कर्ष की वृद्धि हो जाती है उसी प्रकार कविता-कामिनी अलंकारों से चमत्कृत हो उठती है। जैसा किसी कवि ने कहा है।

> जदपि सुजाति सुलच्छनी, सुबरन सरस सुवित्त।
> भूषन बिन न बिराजई, कविता, बनिता, मित्त॥

यद्यपि अलंकार-रिक्त रचना भी रचना ही है, परन्तु वह हृदयग्राहिणी नहीं हो सकती। वास्तव में अलंकारों के आने से कविता की कान्ति बढ जाती है।

रविकुल-तिलक तुलसीदास की कविता अलंकारों से परिपूर्ण है, ऐसा कथन अत्यन्त सादा कथन है। वास्तव में काव्य के समस्त सद्गुण इन महाकवि के समक्ष सदा करबद्ध प्रस्तुत रहते थे, अथवा यों कहिये कि उनकी लेखनी के खिलौने थे। अलंकारों के प्रयोग में कविराज की रसीली लेखनी अव्याहत गति से गमनशीला रही है। मैं तो देखता हूँ कि कई स्थलों के साहित्यिक वर्णनों में कविसम्राट ने अलंकारों में भी अपने चातुर्य के रत्न जटित कर दिये हैं, जिससे उनकी श्री शतगुणित हो गई है और बहिरन्तर्ज्योति जगमगा उठी है। प्राचीन साहित्यिकों ने,

उपमा कालिदासस्य, भारवेरर्थगौरवम् ।
दण्डिनः पदलालित्यं, माघे सन्ति त्रयो गुणाः ॥

ऐसा कहा है, परन्तु मेरी दृष्टि में तो तुलसीदास की कविता में कालिदास, भारवि और माघ इन तीनों महाकवियों की कविता समाहित हो जाती है, ऐसा प्रतीत होता है ।

हमारे चरितनायक का रूपक, उत्प्रेक्षा और उपमा पर पूर्ण अधिकार दृष्टि-गत होता है ।

सीता के सौन्दर्य्य-वर्णन में

जनु बिरंचि सब निज निपुनाई । बिरचि बिस्व कहँ प्रगटि देखाई ॥
सुन्दरता कहँ सुन्दर करई । छबि गृह दीप शिखा जनु बरई ॥

आप लिख चुके तो प्राचीन उपमाओं से ऊबकर अन्त में निम्नलिखित पद्य लिखकर ही तूष्णीं रह गये ।

सब उपमा कवि रहे जुठारी । केहि पटतरौं बिदेह कुमारी ॥

सीता के मुख की उपमा में चन्द्रमा भी आपकी दृष्टि में छबिहीन, मलीन और सदोष प्रतीत हुआ है, जैसा कि निम्न पद्यों से प्रकट है:—

प्राची दिसि ससि उगेउ सुहावा । सिय-मुख सरिस देखि सुखपावा ॥
बहुरि बिचारि कीन्ह मनमाँही । सीय बदन सम हिमकर नाहीं ॥
जनम-सिन्धु पुनि बन्धु बिष, दिन-मलीन सकलंक ।
सिय मुख समता पाव किमि, चन्द्र बापुरो रंक ॥
घटै बढ़े बिरहिनि दुखदाई । ग्रसे राहु निज सन्धिहिं पाई ॥
कोक सोक-प्रद पंकज द्रोही । अवगुण बहुत चन्द्रमा तोही ॥
वैदेही मुख पटतर दीन्हे । होइ दोष बड़ अनुचित कीन्हे ॥

यहाँ पर कवि ने चतुर्थ प्रतीपालंकार का उत्तम रीत्या निदर्शन कराया है । यों तो नम्रता-प्रदर्शन के निमित्त महाकवि ने 'रामचरित-मानस' के बालकाण्ड की प्रारम्भिक भूमिका में लिखा है:—

आखर अरथ अलंकृत नाना । छन्द प्रबन्ध अनेक विधाना ॥
भाव भेद रस भेद अपारा । कबित दोष गुण बिबिध प्रकारा ॥
कबित बिबेक एक नहिं मोरे । सत्य कहौं लिखि कागद कोरे ॥

आश्चर्य होता है कि ऐसे धुरन्धर कवि भी जब यह कहें कि हमें कविता का कुछ भी ज्ञान नहीं, तब कविता का लक्षण ही क्या होगा ? वास्तव में कवि के हृदय से जो सरस्वती निकली है उसने भी अपना विलक्षण अर्थ रखा है । इस

ग्रन्थ में कविता का विवेक (विवेचन) एक भी मोड़ा नहीं है, अर्थात् सब दिखला दिये हैं, यह सरस्वती कृतार्थ है।

अथवा ऊपर लिखित अक्षरार्थ, अलंकार, छन्द, प्रबन्ध, भाव, रस और कवित्त के गुण और दोषों में हमारी कविता के अन्दर केवल एक दोष नहीं है। शेष सब है यह द्वितीय सरस्वती कृतार्थ है।

फलतः गोस्वामी जी की कविता छन्दों, भावों, रसों, गुणों और अलंकारों से परिपूर्ण है, ऐसा मानने में किसी काव्यविद् को आपत्ति नहीं हो सकती। हम यहाँ महाकवि के काव्य में आगत अलंकारों के लक्षण, नाम एवं उदाहरण देंगे। हमारी तुच्छ बुद्धि के अनुसार स्यात् ही कोई अभागा अलंकार निकल आवे जिसका प्रयोग कविराज की ललित लेखनी ने न किया हो। रह गयी बात हमारी सूझ, समझ और स्मरण-शक्ति की।

विस्तारभय से हम केवल लक्षण और उदाहरण देते हैं, अलंकारों के समझाने में बहुत स्थान आवश्यक होगा।

रेखाङ्कित शब्दों वा पदों में ही अलंकार जानना चाहिये। जिन पद्यों के नीचे रेखाएँ नहीं हैं, वहाँ समझना चाहिये कि समस्त पद में अलंकार है।

अलंकार-भेद

अलंकारों के मुख्यतः तीन भेद हैं—(१) शब्दालंकार, (२) अर्थालंकार और (३) उभयालंकार।

शब्दालंकार

जिस रचना में शब्दों में साहित्यिक चमत्कार हो वहाँ शब्दालंकार होता है। शब्दालंकार के मुख्यतया आठ भेद हैं—

(१) अनुप्रास (२) यमक (३) श्लेष (४) पुनरुक्तिप्रकाश (५) पुनरुक्तवदाभास (६) वीप्सा (७) वक्रोक्ति और (८) प्रहेलिका।

(१) अनुप्रास

जहाँ अक्षरों की समानता हो वहाँ अनुप्रासालंकार होता है। स्वरों में भी समानता हो तब तो सोने में सुगन्ध है, पर व्यञ्जनों में समानता का होना अनिवार्य्य है। कविराज-भूषण ने दो ही भेद अनुप्रास के लिखे हैं। "भाषा-भूषण" के रचयिता ने चार भेद लिखे हैं। अधिकांश हिन्दी साहित्य के मर्मज्ञ इसके पाँच भेद मानते हैं—(१) छेकानुप्रास (२) वृत्यनुप्रास (३) श्रुत्यनुप्रास (४) लाटानुप्रास और (५) अन्त्यानुप्रास

छेकानुप्रास

जहाँ एक या अनेक वर्ण अथवा वर्णों की केवल एक बार आवृत्ति हो वहाँ छेकानुप्रास होता है। उदाहरण:—

(१) कुन्द इन्दु सम देह, उमा रमन करुना अयन।
जाहि दीन पर नेह, करहु कृपा मर्दन मयन॥

(२) कोक शोक प्रद पंकज द्रोही। अवगुन बहुत चन्द्रमा तोही॥
(३) भंजेउ चाप दाप बड़ बाढ़ा। अहमिति मानहुँ जीति जग ठाढ़ा॥
(४) घन घमंड नभ गरजत घोरा। प्रिया हीन डरपत मन मोरा॥

वृत्यनुप्रास

वृत्तिगत अनुप्रास वृत्यनुप्रास कहलाता है। जहाँ एक वर्ण अथवा अनेक वर्णों की अनेक बार समानता हो वहाँ वृत्यनुप्रास होता है।

उदाहरण:—

(१) धर्म धुरीन धीर नयनागर। सील सनेह सत्य सुख सागर॥
(२) काने खोरे कूबरे, कुटिल कुचाली जानि।
(३) अवलोकनि बोलनि मिलनि प्रीति परस्पर हास।
(४) सिद्ध समागम संपदा, सदन शरीर सुपास॥

हिन्दी कविता में वृत्तियां मुख्य कर तीन ही मानी गयी हैं। माधुर्य्यगुण सूचक वर्ण अथवा सानुनासिक वर्ण जिस कविता में विशेष हों, ट वर्ग जैसे कर्ण-कटुवर्णों के प्रयोग न हों, वहाँ उपनागरिका वृत्ति होती है। शृङ्गार, करुणा और हास्यरस की रचना उपनागरिका वृत्ति में अच्छी जँचती है। जिस कविता में ट वर्ग द्वित्ववर्ण, रेफ और श, ष प्रभृति वर्ण विशेष हों और जिसमें संयुक्त वर्ण एवं, दीर्घ समासों के अधिक प्रयग किये गये हों वहाँ पुरुषावृत्ति होती है। रौद्र, वीर, और भयानक रसों के वर्णन इस वृत्ति में श्रुति-प्रिय जान पड़ते हैं। जिस कविता में अन्तस्थ वर्ण, स, ह इत्यादि वर्ण और लघुसमास अथवा असमस्त पदों के विशेष प्रयोग होते हैं वहाँ कोमलावृत्ति होती है। शान्त, अद्भुत और बीभत्स रसों के वर्णन में कोमलावृत्ति का प्रयोग समीचीन है।

श्रुत्यनुप्रास

वृत्यनुप्रास से इसमें थोड़सा ही अन्तर है। जहा कंठ और तात्वादिस्थानों से उच्च-रित होनेवाले व्यञ्जनों की अर्थात् जिनके स्थान और प्रयत्न एक हैं, उन वर्णों की समता हो वहां श्रुत्यनुप्रास होता है

उदाहरण:—

(१) दीन दयाल दिवाकर देवा। कर मुनि मनुज सुरासुर सेवा॥
हिम तम करि केहरि करमाली। दहन दोस दुख दुखित रुजाली॥

इन पद्यों के प्रथम चरण में प्राय: दन्त्य, द्वितीय में सानुनासिक और दन्त्य, तृतीय में सानुनासिक तथा कण्ठ्य और चतुर्थ में अधिकांश दन्त्य वर्ण प्रयुक्त हुए हैं

(२) तुलसिदास सीदत निशिदिन। देखत तुम्हारि निपुनाई॥
इस पद के प्राय: सभी वर्ण दन्त्य हैं।

लाटानुप्रास

जहां एक शब्द वा पद भिन्न भिन्न अभिप्राय से दो बार आवें वहां लाटानुप्रास होता है, उदाहरण:—

राम हृदय जाके बसे, विपति सुमंगल ताहि।
राम हृदय जाके नहीं, विपति सुमंगल ताहि॥

अन्त्यानुप्रास

पदान्त अनुप्रास को अन्त्यानुप्रास कहते हैं। गोस्वामी जी की समस्त रचना अन्त्यानुप्रासयुक्त हैं। केवल बोध के लिये दो उदाहरण पर्याप्त हैं:—

(१) नहिं कोउ अस जनमा जग माही। प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं॥
(२) मोह हठि राज देइहउ जबही। राज रसातल जाइहहिं तबही॥

(२) यमक

जहां भिन्न भिन्न अर्थों में कोई पद, शब्द वा शब्दांश दो वा अनेक बार प्रयुक्त हों वहां यमकालंकार होता है। उदाहरण:—

(१) हरन मोह तम दिन कर-कर से। सेवक सालि पाल जलधर से॥
(२) अस मानस मानस चख चाही। भइ कवि बुद्धि विमल अवगाहीं॥
(३) मूरति मधुर मनोहर देखी। भयेउ विदेह विदेह विलोकी॥
(४) भव भव विभव पराभव करिणी। विश्व विमोहिनि स्ववस विहारिणी॥
(५) बररे बालक एक सुभाऊ। इनहिन विदुष विदूषहिं काऊ॥
(६) भरत प्रान प्रिय पावहि राजू। विधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू॥
(७) बल प्रताप वीरता बड़ाई। नाम पिनाकहिं सङ्ग सिधाई॥
(८) नाथ साथ साथरो सुहाई। मयन सयन सत सम सुखदाई॥

कतिपय साहित्य सेवियों की सम्मति में जहाँ एक ही शब्द अनेक बार आवे, वहाँ पृथक् अर्थ होने पर भी यमकालङ्कार होता है। स्मृति यह है कि अनेक

बार आये हुए शब्दों के सम्बन्ध अनेक प्रकार के हों अर्थ चाहे एक ही हो।
उदाहरण:—

(१) मोहि हठि राज देहिहउ जबही। रसा रसातल जाइहि तबहीं॥
(२) सकल भाँति सब साज समाजू। सम समधी देखा हम आजू॥
(३) पुरी बिराजति राजति रजनी। रानी कहहिं बिलोकहु सजनी॥
(४) प्रात प्रातकृत करि रघुराई। तीरथराज दीख तब जाई॥
(६) मोकहँ तिलक साज सब सोऊ। भा बिधि बिमुख विमुख सब कोऊ॥
(७) झरना झरहिं सुधासम वारी। त्रिबिध ताप हर त्रिबिध बयारी॥
(८) ताते उमा गुप्त करि राखा। खग जाने खगही की भाखा॥
(९) तिनमह द्विज द्विजमहँ स्रुतिधारी। तिन महँ निगम धर्म अनुहारी॥

(३) श्लेष

जहाँ एक शब्द में अनेक अर्थों का सन्निवेश हो वहाँ श्लेषालंकार होता है।
उदाहरण:—

(१) साधु चरित सुभ सरिस कपासू। नीरस बिसद गुनमय फल जासू॥
(२) सोइ जल अनल अनिल संघाता। होइ जलद जग जीवनदाता॥

(३) बन्दौं मुनि पद कंज, रामायन जिन निर्मयऊ।
सखर सकोमल मंजु, दोष रहित दूषण सहित॥

(४) रावन सिर सरोज बनचारी। चलि रघुबीर सिली मुखधारी॥
(५) भरेउ सुमानस सुथल थिराना। सुखद सीतरुचि चारु चिराना॥
(६) द्विज द्रोही न बचहिं मुनिराई। जिमि पङ्कज वन हिम ऋतु आई॥

(४) पुनरुक्तिप्रकाश

जहाँ अभिव्यक्त भाव को अधिक रुचिकर बनाने अथवा विशेष स्पष्ट करने के विचार से एक ही शब्द कई बार लगाया जाय, वहाँ पुनरुक्ति प्रकाश अलङ्कार होता है। उदाहरण:—

(१) तुम माया भगवान सिव, सकल जगत पितु मात।
नाइ चरन सिर मुनि चले, पुनि पुनि पुलकित गात॥

(२) कोउ मुखहीन विपुल मुख काहू। कोउ बिनुपग कोउ बहु पग वाहू॥
(३) कलप कलप लगि प्रभु अवतरहीं। चारु चरित नाना विधि करहीं॥
(४) मोर बचन सबके मन माना। साधु साधु कहि ब्रह्म बखाना॥
(५) बार बार करि दण्ड प्रनामा। मन अस रहन कहहिं मोहि रामा॥
(६) राम बिलोकनि बोलनि चलनी। सुमरि सुमरि सोचत हँसि मिलनी॥

(७) बृन्द बृन्द मिलि चलीं लुगाई। सहज सिंगार किये उठिधाई ॥
(८) भामिनि भयउ तोर मन भावा। घर घर बजत अनन्द बधावा ॥

(५) पुनरुक्तवदाभास

जहाँ दो शब्द एक ही अर्थ के द्योतक प्रतीत हों, परन्तु वास्तव में उनके अर्थ एक न हों वहाँ 'पुनरुक्तवदाभास' अलंकार होता है।

उदाहरण:—

(१) बिधि केहि भांति धरौं उर धीरा। सिरिस सुमन किमि बेधहिं हीरा ॥
(२) तुम्हरे अनुग्रह तात कानन, जात सब सुख पाइ हौं।
प्रतिपालि आयसु कुशल देखव, पाय पुनि फिरि आइ हौं ॥
(३) पुनि फिरि राम निकट सो आई। प्रभु लछुमन यह बहुरि पठाई ॥

(६) वीप्सा

जहां एक ही शब्द आदर-घृणा, आश्चर्य्य, भय और पश्चात्ताप प्रभृति आकस्मिक भावों के प्रदर्शन कराने के लिये उसी अर्थ में कई बार आवे वहां वीप्सा अलंकार होता है। उदाहरण:—

(१) पाहि नाथ! कहि पाहि गोसाईं। भूतल परेउ लकुट की नाईं ॥
(२) बार बार कह राउ, सुमुखि सुलोचनि पिक बचनि।
कारण मोहि सुनाउ, गज गामिनी निज कोप कर ॥
(३) राम राम कहि राम कहि, राम राम हा! राम।
तनु परिहरि रघुबर बिरह, राउ गये सुरधाम ॥
(४) धन्य धन्य छबि मंगलमूला। सुर सराहि तेहि बरसहि फूला ॥
(५) भरत तीसरे पहर कहँ, कीन्ह प्रवेस प्रयाग।
कहत राम सिय राम सिय उमगि उमगि अनुराग ॥
(६) पुनि आयउ प्रभु पहँ बलवाना! जयति जयति जय कृपानिधाना ॥

(७) वक्रोक्ति

जहां प्रयुक्त शब्द के विपरीत अर्थ से अभिप्राय हो अर्थात् श्लेष अथवा काकु से किंवा पाठशैली से वक्र (टेढ़ा) अर्थ निकले, वहां वक्रोक्ति अलंकार होता है। उदाहरण:—

(१) बायस पालिय अति अनुरागा। होइ निरामिष कबहुँ कि कागा।
(२) खोजत सो कि अज्ञ इव नारी। ज्ञान धाम श्रीपति असुरारी ॥
(३) जो ऐसेहिं हिसिका करहिं, नर बिवेक अभिमान।
परहिं कलप भरि नरक मंह, जीव कि ईश समान ॥

(४) प्रिय लागिहिं अति सबहिं मम, भनिति राम जस संग ।
दारु विचार कि करइ कोउ, बन्दिय मलय प्रसंग ॥

(५) सीय विवाहब राम, गरब दूरि करि नृपन को ।
जीति को सक संग्राम, दसरथ के रनबाँकुरे ॥

(६) करहिं कूट नारदहिं सुनाई । नीक दीन्ह हरि सुन्दरताई ॥
(७) एकहिं वार आस सब पूजी । अब कछु कहब जीभ करि दूजी ॥
(८) जो पै कृपा जरै मुनि गाता । क्रोध भये तनु राखु विधाता ॥
(९) धर्म्मशीलता तव जग जागी । पावा दरस हमहुँ बड़भागी ॥
(१०) वायु कृपा मूरति अनुकूला । बोलत वचन झरत जनु फूला ॥
(११) भरत कि राउर पूत न होई । आनहु मोल बेसाहि कि मोहीं ॥
(१२) मैं सुकुमारि नाथ वन जोगू । तुमहिं उचित तप मो कह भोगू ॥
(१३) कह अंगद सलज्ज जगमाहीं । रावन तोहि समान कोउ नाहीं ॥

(८) प्रहेलिका

जहाँ जहाँ शब्दों, पदों वा अक्षरों के हेर-फेर से भाव निकल आवें वहाँ प्रहेलिका अलंकार होता है । कभी कभी प्रश्नोत्तर के ढंग पर भी प्रहेलिका होती है । गोस्वामी तुलसीदास जी ने सतसई के तृतीय सर्गमें दृष्टि कूटक के ढंग के कई दोहे रचे हैं, जिनकी गणना प्रहेलिका के अन्तर्गत हो सकती हैं । उदाहरण :—

(१) उलटे तासी तासुपति, सौ हजार मन सत्य ।
एक सून्य रथ तनय कहँ, भजसि न मन समरत्थ ॥

(२) दुतिय, तृतिय हरकास नहिं, तेहि भजु तुलसीदास ।
का कासब आसन लहे, सासन लहत उपास ॥

(३) कंदिग दून नछत्र हनि, गमी अनुज तेहि कीन ।
जेहि हरिकर मनि मानि तनि, तुलसी तेहि पद लीन ॥

अर्थालंकार

जहाँ शब्दों वा पदों के अर्थों में चमत्कार हो वहाँ अर्थालंकार होता है । अर्थालंकार के बहुतेरे भेद हैं । अलंकारों की पहचान एक साहित्यिक सूझ और सूक्ष्मता की झलक है । यही कारण है कि उनके निर्णय में अलंकार शास्त्रों के मर्मज्ञों में भी कई स्थलों पर मतभेद सा हो जाया करता है । हिन्दी भाषा के प्रायः समस्त अलङ्कार संस्कृत भाषा से लिये गये हैं । अलङ्कार के मूल सरोवर वेद हैं, जहाँ से इसके स्रोत निःसृत हुए हैं । इस प्रकरण के लिखने में कतिपय संस्कृत और हिन्दी ग्रन्थों से सहायता लेते हुए भी समय और स्थानानुसार कुछ नवीन क्रम भी रखना पड़ा है ।

(१) उपमालङ्कार

अलङ्कारों का शिरोमणि और सर्वोच्च आसनासीन उपमालङ्कार ही है। जब दो वस्तुओं में किसी से किसी की तुलना वा समता की जाय वहाँ उपमालङ्कार होता है। तुलना आंशिक होती है। तुलना वा समता में गुण, आकृति और रूप का ही ग्रहण होता है। इस अलङ्कार के चार अंग हैं (१) उपमेय (२) उपमान (३) धर्म्म (४) वाचक।

उपमेय—समता में जिसकी प्रधानता हो उसे उपमेय कहते हैं। जैसे "चरण कमल" कहने में चरण की प्रधानता है अतः 'चरण' उपमेय हुआ।

उपमान—जिससे समता की जाय वह उपमान होता है। जैसे "चरण कमल" में चरण की समता कमल से की गई है अतः 'कमल' उपमान हुआ।

धर्म्म—जिस अंश में समता की जाय वह धर्म होता है। जैसे "चरण कमल के सदृश कोमल हैं" इस उपमा में 'कोमल' धर्म्म है।

वाचक—जिस शब्द के आश्रय से समता का प्रकटीकरण हो वह वाचक कहलाता है। जैसे चरण, कमल के सदृश कोमल है इसमें के "सदृश", वाचक है।

उपमा के भेद

उपमालंकार के मुख्य दो भेद हैं (१) पूर्णोपमा (२) लुप्तोपमा

पूर्णोपमा

जहाँ वाक्य में उपमेय, उपमान, धर्म्म और वाचक सब प्रकट हों वहाँ पूर्णोपमा होती है। उदाहरण:—

(१) साधु चरित सुभ सरिस कपासू। निरस बिसद गुन मय फल जासू॥

(२) सादर कहहिं सुनहिं बुध ताही। मधुकर सरिस संत गुणग्राही॥

(३) राम चरण पंकज मन जासू। लुब्ध मधुप इव तजै न पासू॥

(४) बरनत बरन प्रीति बिलगाती। ब्रह्म जीव इव सहज संघाती॥

(५) रामचरित राकेस कर, सरिस सुखद सब काहु।
सज्जन कुमुद चकोर चित, हित विशेष बड़ लाहु॥

(६) बिरह विकल नर इव रघुराई। खोजत विपिन फिरत दोउ भाई॥

(७) निज अघ समुझि न कछु कहिजाई। तपै अंव इव उर अधिकाई॥

लुप्तोपमा

जहाँ पूर्णोपमा के चारो अंगों में से किसी एक, दो अथवा तीन का लोप हो, वहाँ लुप्तोपमा होती है। लुप्तोपमा के कई भेद हैं। नीचे कुछ भेदों के लक्षण और उदाहरण दिये जाते हैं:—

वाचक लुप्तोपमा

जहाँ पूर्णोपमा के चार अंगों में से केवल वाचक शब्द का लोप हो वह वाचक लुप्तोपमा अलंकार होता है। उदाहरण:—

(१) नील सरोरुह स्याम, तरुन अरुन वारिज नयन।
करो सो मम उर धाम, सदा छीर सागर सयन॥

(२) जेहि सुमिरत सिधि होय, गण नायक करिवर वदन।
करो अनुग्रह सोइ, बुद्धि रासि शुभ गुन सदन॥

(३) कुन्द इन्दु दर गौर शरीरा। भुज प्रलम्ब परिधन मुनि चीरा॥

(४) सरद मयंक वदन छवि सींवा। चारु कपोल चिबुक दर ग्रींवा॥

(५) नव अम्बुज अम्बक छवि नीकी। चितवनि ललित भावती जी की॥

धर्म्म लुप्तोपमा

जहाँ पूर्णोपमा के चार अंगों में से साधारण धर्म्म सूचक शब्द का लोप हो वहाँ धर्म्म लुप्तोपमालंकार होता है। उदाहरण:—

(१) कुन्द इन्दु समदेह, उमारमन करुना अयन।
जाहि दीन पर नेह, करहु कृपा मर्दन मयन॥

(२) करि प्रणाम रामहिं त्रिपुरारी। हरषि सुधासम गिरा उचारी॥

(३) रामसीय जस सलिल सुधा सम। उपमा बीचि विलास मनोरम॥

(४) रामचरित ससि किरन समाना। सन्त चकोर करहिं तेहि पाना॥

(५) ससि कर सम सुनि गिरा तुम्हारी। मिटा मोह सरदातप भारी॥

(६) स्रवन सुधा सम वचन सुनि, पुलक प्रफुल्लित गात।
बोले मनु करि दंडवत, प्रेम न हृदय समात॥

उपमान लुप्तोपमा

जहाँ पूर्णोपमा के चारो अंगों में से उपमान का लोप हो वहाँ उपमान लुप्तोपमालंकार होता है। उदाहरण:—

(१) बाल विभूषण लसत पाँय, मृदु मंजुल अङ्ग विभाग।
दसरथ सुकृत मनोहर विरवनि, रूप करह जनु लाग॥

(२) समर धीर नहिं जाइ बखाना। तेहि सम नहिं प्रतिभट जग आना॥

उपमेय लुप्तोपमा

जहाँ पूर्णोपमा के चारो अंगों में से उपमेय का लोप हो वहाँ उपमेय लुप्तोपमालंकार होता है। उदाहरण:—

(१) कहत सुनत सुमिरत सुठि नीके। राम लखन सम प्रिय तुलसी के॥

(२) नर नारायन सरिस सुभ्राता। जग पालक विशेष जगत्राता॥

(३) सो मायाबस भयऊ गोसाईं। बँधेउ कीर मर्कट की नाईं ॥
(४) हरषि पवन सुत कर गहे, आनि धरे प्रभु पास।
कौतुक देखहिं भालुकपि, दिनकर सरिस कपास ॥

वाचक धर्म लुप्तोपमा

जहाँ पूर्णोपमा के चारो अंगों में से वाचक शब्द और साधारण धर्म्म का लोप हो, वहाँ वाचक धर्म लुप्तोपमा अलंकार होता है। उदाहरण:—

(१) पद राजीव बरनि नहिं जाहीं। मुनि मन मधुप बसहिं जेहि माहीं ॥
(२) अरुन नयन उर बाहु बिशाला। नील जलद तनु श्याम तमाला ॥
(३) वृषभ कन्ध उर बाहु बिशाला। चारु जनेउ माल मृगछाला ॥
(४) केहरि कटि पट पीतधर, सुखमा सील निधान।
देखि भानुकुल भूषणहिं, बिसरा सखिन अपान ॥
(५) संग सखी सुन्दर चतुर, गावहिं मंगलचार।
गवनी बाल मराल गति, सुखमा सील अपार ॥
(६) राम नाम मनि दीप धरु, जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहिरौ, जो चाहहि उजियार ॥

धर्मोपमान लुप्तोपमा

जहाँ पूर्णोपमा के चारो अङ्गों में से धर्म और उपमेय का लोप हो वहाँ धर्मोपमेयलुप्तोपमा अलङ्कार होता है। उदाहरण:—

(१) देव सकल सुरपतिहिं सिहाहीं। आजु पुरन्दर सम कोउ नाहीं ॥
(२) देखेउ खोजि भुवन दश चारी। कहँ अस पुरुष कहाँ असि नारी ॥

धर्मोपमेय लुप्तोपमा

जहाँ पूर्णोपमा के चारो अङ्गों में से धर्म और उपमेय का लोप हो वह धर्मोपमेय लुप्तोपमा अलंकार होता है। उदाहरण:—

(१) अधम निशाचर लीन्हें जाई। जिमि मलेच्छ बस कपिला गाई ॥

समस्त द्वितीय पद में तो उदाहरणालंकार है, परन्तु जिमि को वाचक और कपिला गाई को उपमान समझ कर धर्मोपमेय लुप्तोपमालंकार भी कहा जायगा।

वाचकोपमेय लुप्तोपमा

जहाँ पूर्णोपमा के चारो अङ्गों में से वाचक और उपमेय का लोप हो वहाँ वाचकोपमेय लुप्तोपमा अलङ्कार होता है। उदाहरण:—

(१) नील सरोरुह स्याम, तरुन अरुन बारिज नयन।
करहु सो मम उर धाम सदा छीरसागर शयन ॥
(२) नील तामरस स्याम काम अरि। हृदय कञ्ज मकरन्द मधुप हरि ॥

वाचकोपमान लुप्तोपमा

जहाँ पूर्णोपमा के चारो अङ्गों में से वाचक और उपमान का लोप हो वहाँ वाचकोपमान लुप्तोपमालङ्कार होता है। उदाहरणः—

(१) चितवनि चारु मार मदहरनी। भाव न हृदय जाइ नहिं बरनी॥
(२) मूरति मधुर मनोहर देखी। भयो बिदेह बिदेह बिसेखी॥

वाचक धर्म उपमान लुप्तोपमा

जहाँ केवल उपमेय ही दृष्टिगत हो और उपमान का अध्याहार करके युक्ति से उसका भी लोप समझा जाय, एवं वाचक और धर्म भी अदृष्ट हों वहाँ वाचक धर्म उपमान लुप्तोपमालङ्कार होता है।

उदाहरणः—

(१) रामस्वरूप तुम्हार, बचन अगोचर बुद्धि पर।
अबिगत अलख अपार, नेति नेति नित निगम कर॥
(२) अहै अनूप राम प्रभुताई। बुधि बिवेक बल तरकि न जाई॥

मालोपमा

एक ही उपमेय के जहाँ बहुतेरे उपमान कहे जायँ वहाँ मालोपमा अलंकार होता है। इसके दो भेद हैं।

उदाहरणः—

(१) बन्दौं खल जस सेस सरोषा। सहस बदन बरनै परदोषा॥
(२) पुनि प्रणवौं पृथुराज समाना। पर अघ सुनै सहस दसकाना॥
(३) बहुरि शक्र सम बिनवौं तेही। सन्तत सुरानीक हित जेही॥
(४) हरिहर जस राकेस राहु से। पर अकाज भट सहस बाहु से॥
(५) तेज कृसानु रोष महिषेशा। अघ अवगुन धन धनिक धनेशा॥
(६) उदय केतु सम हित सबहीके। कुम्भकरन सम सोवत नीके॥

इन ऊपर के पद्यों में खलों को उपमेय स्थिर करके, शेष, पृथुराज, शुक, राहु, सहसबाहु, कृशानु, धनेश, केतु और कुम्भकरण को उपमान मान कर भिन्न भिन्न धर्मों की समता की गई है। अतः यहाँ भिन्नधर्मा मालोपमालंकार है। पुनः-

(१) स्वादु तोय सम सुगति सुधाके। कमठ शेष सम धर वसुधाके॥
(२) जन मन मंजु कंज मधुकर से। जीह जसोमति हरि हलधर से॥
(३) नाम काम तरु काम कराला। सुमिरत समन सकल जगजाला॥
(४) नाम काम तरु अभिमत दाता। हित परलोक लोक पितु माता॥
(५) अभिमत दानि देव तरुवर से। सेवत सुलभ सुखद हरिहर से॥
(६) सुकबि सरद नभ मन उडुगन से। राम भगत हित जीवन धन से॥

एकधर्मा मालोपमा

जहाँ उपमेय तो एक हो और उपमान बहुतेरे हों, परन्तु सब उपमानों में एक ही धर्म का कथन किया जाय, वहाँ एकधर्मा मालोपमा होती है। उदाहरण :—

(१) गिरा अर्थ जल बीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न।
बन्दौं सीताराम पद, जिनहिं परम प्रिय खिन्न॥

(२) बैनतेय बलि जिमि—चह कागू। जिमि शस चहै नाग अरि भागू॥
जिमि चह कुसल अकारण कोही। सुख सम्पदा चहै शिव द्रोही॥
लोभी लोलुप कीरति चहई। अकलंकिता कि कामी लहई॥
हरिपद विमुख परम पद चाहा। तस तुम्हार लालच नरनाहा॥

(३) हिमवंत जिमि गिरिजा महेसहिं, हरिहिं श्री सागर दई।
तिमि जनक रामहिं सिय समपि, विश्व कल कीरति नई॥

(४) जिमि भानु बिन दिन, प्रान बिनु तन, चन्द बिनु जिमि यामिनी।
तिमि अवध तुलसी दास प्रभु बिनु, समुझ धौं जिय भामिनी॥

उपमेयोपमा

जहाँ उपमेय और उपमान परस्पर परिवर्तित होकर उपमान और उपमेय हों, वहाँ उपमेयोपमालंकार होता है। उदाहरण :—

(१) राम प्रान ते प्रान तुम्हारे। तुम रघुपतिहिं प्रान सम प्यारे॥

अनन्वयोपमा

जहाँ उपमेय और उपमान अभिन्न कथन किये गये हों अर्थात् उपमान के अभाव के कारण उपमेय को ही उपमान कहा गया हो, वहाँ अनन्वयोपमा होती है। उदाहरण:—

(१) निरवधि गुन निरुपम पुरुष, भरत भरत सम जानि।
कहिय सुमेरु कि सेर सम, कविकुल मति सकुचानि॥

(२) स्वामि गोसाँईहि सरिस गोसाईं। मोहि समान मैं मातु दोहाई॥

(३) करम बचन मानस विमल, तुम समान तुम तात।
गुरु समाज लघु बन्धु गुन, कुसमय किमि कहि जात॥

(४) उपमान कोउ कह दास तुलसी, कतहुँ कवि कोविद कहैं।
बल, बिनय, विद्या, सील, सोभा सिन्धु इन सम येइ अहैं॥

(५) निरुपम न उपमा आन, राम समान राम निगम कहे।
जिमि कोटि सत खद्योत सम रवि, कहत अति लघुता रहै॥

(२) प्रतीपालङ्कार

यह अलंकार भी प्रकारान्तर से उपमालंकार ही है। उपमालंकार में जो उपमेय होता है, वह प्रतीप में उपमान और जो उपमान होता है, वह प्रतीप में उप-

मेय हो जाता है। इस प्रकार उपमान से उपमेय की विशेष उत्कृष्टता हो जाती है। उपमालंकार में "चरण कमल" कहने से चरण उपमेय और कमल उपमान है। इसीको प्रतीप में "कमल चरण" कहेंगे। कमल कैसे सुहावने हैं जैसे रामचन्द्र के चरण। इस में कमल ही उपमेय और चरण उपमान हो गया। ऐसा करने से चरण की कोमलता और सुन्दरता में विशेषता आ गई।

अलंकार शास्त्र के मर्मज्ञों ने इसके पाँच भेद कहे हैं, जिनका नीचे क्रमशः वर्णन किया जाता है।

प्रथम प्रतीप

जहाँ उपमेय को उपमान और उपमान को उपमेय कथन किया जाय, वहाँ प्रथम प्रतीप जानना चाहिये।

उदाहरणः—

(१) सुभग द्वार सब कुलिस कपाटा। भूप भीर भट मागध भाटा॥

(२) राज कुँवर दोउ सहज सलोने। इनते लहि दुति मरकत सोने॥

(३) बिदा किये बहु विनय करि, फिरे पाइ मन काम।
उतरि नहाने जमुन जल, जो सरीर सम स्याम॥

(४) रघुवर वरन विलोकि वर, वारि समेत समाज।
होत मगन वारिधि विरह, चढ़े विवेक जहाज॥

द्वितीय प्रतीप

जहां उपमान के द्वारा उपमेय को हेय प्रदर्शित किया जाय, वहां द्वितीय प्रतीप होता है। उदाहरणः—

(१) नाघहिं खग अनेक बारीसा। सूर न होंहि सुनहु जड़ कीसा॥

(२) निरगुन ते यहि भांति बड़, नाम प्रभाव अपार।
कहेउ नाम बड़ ब्रह्म ते, निज विचार अनुसार॥

(३) गरब करौ रघुनन्दन, जनि जिय माँह।
देखौ आखिन मूरति, सिय कै छाँह॥

तृतीय प्रतीप

जहां उपमेय की अपेक्षा उपमान में लघुता का प्रदर्शन किया गया हो, वहां तृतीय प्रतीप होता है। उदाहरणः—

(१) भूपति भवन सुभाय सुहावा। सुरपति सदन न पटतर पावा॥

(२) कुलिसहुँ चाहि कठोर अति, कोमल कुसुमहुँ चाहि।
चित खगेस रघुनाथ कर, समुझि परै कहु काहि॥

चतुर्थ प्रतीप

जहां उपमेय की समता में उपमान नहीं तुल सके, वहां चतुर्थ प्रतीप होता है। उदाहरण:—

(१) भृकुटि मनोज चाप छबिहारी। तिलक ललाट पटल दुतिकारी ॥
(२) विष्णु चारिभुज विधि मुखचारी। विकट वेश मुख पंच पुरारी ॥
अपर देव अस कोउ न आही। यह छवि सखि पटतरिए जाही ॥
(३) बहुरि बिचार कीन्ह मन माँही। सीय बदन सम हिमकर नाहीं ॥
(४) तरुन तमाल बरन तन सोहा। देखत कोटि मदन मन मोहा ॥
(५) धवल धाम ऊपर नभ चुम्बत। कलस मनहुँ रबिससि दुतिनिंदत ॥

पंचम प्रतीप

जहाँ उपमेय की समता में उपमान व्यर्थ हो जाय, वहाँ पञ्चम प्रतीप होता है। उदाहरण:—

(१) नील सरोरुह नील मनि, नील नीरधर स्याम।
लागहिं तनु सोभा निरखि, कोटि कोटि सतकाम ॥
(२) तड़ित विनिन्दक पीत पट, उदर रेख बर तीनि।
नाभि मनोहर लेति जनु, जमुन भँवर छवि छीनि ॥
(३) जन्म सिन्धु पुनि बन्धु विष, दिन मलीन सकलंक।
सिय मुख समता पाव किमि, चन्द्र बापुरो रंक ॥
(४) सहज मनोहर मूरति दोऊ। कोटि काम उपमा लघु सोऊ ॥
(५) सरद चन्द निन्दक मुख नीके। नीरज नयन भावते जीके ॥
(६) भाल विसाल तिलक झलकाहीं। कच विलोकि अलिअवलि लजाहीं ॥
(७) ठाढ़ भये उठि सहज सुहाये। ठवनि जुवा मृगराज लजाये ॥
(८) रामहिं चितइ रहे थकि लोचन। रूप अपार मार मद मोचन ॥
(९) विधुवदनी मृगसावक लोचनि। निजसरूप रतिमान विमोचनि ॥
(१०) गावहिं मङ्गल मंजुल बानी। सुनि कलरव कलकण्ठ लजानी ॥

(३) रूपकालङ्कार

रूपक भी प्रकारान्तर से उपमालंकार ही है। जहाँ वाचक और धर्म का निर्देश न करके उपमेय और उपमान को एक ही आरोपित किया जाय, अर्थात् जहाँ उपमेय और उपमान एक ही मान लिये जाँय, वहाँ रूपकालङ्कार होता है। रूपकालङ्कार के मुख्यत: तीन भेद हैं। (१) साङ्ग रूपक (२) निरंग रूपक (३) परम्परित रूपक।

जहाँ किसी वस्तु के सर्वाङ्गों का साङ्ग रूपक का दूसरी किसी वस्तु के सर्वाङ्गों से समता दिखलाते हुए रूपक बाँधा जाता है, वहाँ साङ्ग रूपक होता है।

गोस्वामीजी रूपकालङ्कार के राजा थे। जितने बड़े साङ्ग रूपक का आयोजन 'रामचरित-मानस' के बालकाण्ड में आपने किया है, अन्य किसी कवि ने वैसा स्यात् ही अपनी कविता में किया हो। जहाँ राम-कथा का सरयू नदी से रूपक कल्पित किया है, वह पाठकों के परितोषार्थ उद्धृत किया जाता है:—

चली सुभग कविता सरिता सी। राम विमल जस जल भरितासी॥
सरजू नाम सुमंगल मूला। लोक वेदमत मंजुल कूला॥
नदी पुनीत सुमानस नन्दिनि। कलिमल त्रिन तरु मूल निकन्दिनि॥

स्रोता त्रिबिधि समाजपुर, ग्राम नगर दुहुँ कूल।
सन्त-सभा अनुपम अवध, सकल सुमंगल मूल॥

राम भगति सुर सरितहि जाई। मिली सुकीरति सरजु सुहाई॥
सानुज राम समर जस पावन। मिलेउ महानद सोन सुहावन॥
जुग बिच भगति देवधुनि धारा। सोहति सहित सुबिरति बिचारा॥
त्रिविध ताप त्रासक तिमुहानी। राम सरूप सिन्धु समुहानी॥
मानस-मूल मिली सुर-सरिही। सुनत सुजन मन पावन करिही॥
बिच बिच कथा बिचित्र बिभागा। जनु सरि तीर तीर बन बागा॥
उमा-महेस-बिवाह बराती। ते जलचर अगनित बहुभाँती॥
रघुबर-जनम अनन्द बधाई। भँवर तरंग मनोहरताई॥

बाल चरित चहुँ बन्धुके, वनज विपुल बहु रंग।
नृप-रानी-परिजन सुकृत, मधुकर वारि विहंग॥

सीय-स्वयम्बर-कथा सुहाई। सरित सुहावनि सो छबि छाई॥
नदी नाव पटु प्रश्न अनेका। केवट कुसल उतर सविवेका॥
सुनि अनुकथन परस्पर सोई। पथिक-समाज सोह सरि सोई॥
घोर धार भृगुनाथ रिसानी। घाट सुबन्ध राम बरबानी॥
सानुज राम-विवाह-उछाहू। सो सुभ उमग सुखद सब काहू॥
कहत सुनत हरषहिं पुलकाहीं। ते सुकृती मन मुदित नहाहीं॥
राम-तिलक हित मङ्गल साजा। परब-जोग जनु जुरेउ समाजा॥
काई कुमति केकई केरी। परी जासु फल बिपति घनेरी॥

समन अमित उतपात सब, भरत चरित जप-जाग।
कलि-अघ खल-अवगुन कथन, ते जल मल बक काग॥

कीरति सरित छहूँ रितु रूरी। समय सुहावनि पावनि भूरी॥
हिम हिमसैल सुता सिव ब्याहू। सिसिर सुखद प्रभु-जनम उछाहू॥
बरनब राम विवाह-समाजू। सो मुद-मङ्गल-मय रितु राजू॥
ग्रीषम दुसह राम-बन-गवनू। पन्थ-कथा खर-आतप-पवनू॥

बरषा घोर निसाचर रारी। सुर-कुल-सालि सुमङ्गल-कारी॥
राम-राज सुख विनय बड़ाई। विसद सुखद सोइ सरद सुहाई॥
सती-सिरोमनि सिय गुन गाथा। सोइ गुन अमल अनूपम पाथा॥
भरत सुभाउ सुसीतलताई। सदा एकरस बरनि न जाई॥

अवलोकनि बोलनि मिलनि, प्रीति परसपर हास।
भायप भलि चहुँ वन्धु की, जल माधुरी सुवास॥

आरति विनय दीनता मोरी। लघुता ललित सुबारि न खोरी॥
अद्भुत सलिल सुनत गुनकारी। आस पियास मनोमल-हारी॥
राम सुप्रेमहि पोषत पानी। हरत सकल कलि-कलुष-गलानी॥
भव-स्रम-सोषक तोषक-तोषा। समन दुरित-दुख-दारिद-दोषा॥
काम कोह मद मोह नसावन। बिमल विवेक बिराग बढ़ावन॥
सादर मज्जन पान किये ते। मिटहि पाप परिताप हिये ते॥

इसी प्रकार 'तुलसी-सतसई' के चतुर्थ सर्ग में भी कवि-राज ने कविता सरिता का एक छोटासा उपदेश-प्रद साङ्ग रूपक लिखा है:—

प्रेम उमँग कवितावली, चली सरित शुचि धार।
राम बराबर मिलन हित, तुलसी हर्ष अपार॥
तरल तरंग सुछन्द वर, हरत द्वैत तरु मूल।
वैदिक लौकिक बिधि बिमल, लसत विसद बरकूल॥
संत सभा बिमला नगरि, सिगरि सुमंगल खान।
तुलसी उर सुरसर सुता, लसत सुथल अनुमान॥
मुक्त मुमुक्षू वर विषय, श्रोता त्रिविध प्रकार।
ग्राम नगर पुर युग सुतट, तुलसी कहत विचार॥
बारानसी बिराग नहिं, शैलसुता मन होय।
तिमि अवधहिं सरयू न तजै, कहत सुकवि सब कोय॥
कहब सुनब समुझब पुनः, सुनि समुझायब आन।
श्रम हर घाट प्रबन्ध वर, तुलसी परम प्रमान॥

निरंग रूपक

इस रूपक में केवल प्रधान वस्तु का ही वर्णन होता है। उसके अङ्गों का नहीं। निरंग रूपक के दो भेद हैं। (१) तद्रूप रूपक (२) अभेद रूपक।

तद्रूप रूपक

जहाँ उपमान को उपमेय रूप करके वर्णन करे, वहाँ तद्रूप रूपक होता है। इसमें अपर, अन्य और दूसरा इत्यादि शब्द वाचक होकर आते हैं। उदाहरण—

सुनी सकल लोचन यह बाता। कहहिं जोतिषी अपर विधाता॥

हीन, सम, और अधिक विचार से इस रूपक के तीन भेद हैं। विस्तार भय से पृथक् पृथक् उदाहरण नहीं दिये गये हैं।

अभेद रूपक

जहां उपमेय और उपमान की भेद शून्यता का वर्णन किया गया हो, वहां अभेद रूपक होता है। उदाहरणः—

(१) श्री गुरु पद-नख मनि गन जोती। सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती॥
(२) गुरु पद-रज मृदु मंजुल अंजन। नयन अमिय दृग दोष दिभंजन॥
(३) करुणानिधि मन दीख विचारी। उर अकुरेउ गर्वतरु भारी॥
(४) चली सुहावन त्रिविध बयारी। काम कृसानु बढ़ावनि हारी॥
(५) तेहि अवसर सुनि सिव धनु भंगा। आये भृगुकुल कमल पतंगा॥
(६) प्रेम अमिय मन्दर विरह, भरत पयोधि गंभोर।
मथि प्रगटेउ सुर-साधु हित, कृपासिन्धु रघुबीर॥
(७) भूप भरत मुनि साधु समाजू। गे जहं बिबुध कुमुद द्विजराजू॥
(८) राम सिन्धु घन सज्जन धीरा। चन्दनतरु हरि सन्त समीरा॥

हीन, सम और अधिक विचार से इस रूपक के भी तीन भेद होते हैं।

परम्परित रूपक

परम्परित रूपक वहां होता है, जहां मुख्य रूपक किसी अन्य रूपक पर निर्भर करता है। उदाहरणः—

(१) बन्दौं कौसल्या दिसि प्राची। कीरति जासु सकल जग मांची॥
प्रगटेउ जहं रघुपति ससि चारू। बिस्व सुखद खल कमल तुषारू॥
(२) बन्दौं पवनकुमार, खल बन पावक ज्ञान घन।
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर॥
(३) वर्षा ऋतु रघुपति भगति, तुलसी सालि सुदास।
राम नाम वर बरन जुग, सावन भादव मास॥
(४) महा मोह महिषेस बिसाला। रामकथा कालिका कराला॥
(५) नृप भुज बल बिधु सिव धनु राहू। गरुअ कठोर बिदित सब काहू॥
(६ निरखि राम सोभा उर धरहू। निज मन फनि मूरति मनि करहू॥
(७) भानुबंस राकेस कलंकू। निपट निरंकुस अबुध असंकू॥

(४) परिणामालङ्कार

जहाँ उपमेय-द्वारा की जाने वाली क्रिया का उपमान के द्वारा किया जाना वर्णित हो, वहाँ परिणामालङ्कार होता है। उदाहरणः—

(१) सिर पर से प्रभु निज कर कंजा। तुरत उठाये करुणापुंजा ॥
(२) सुभग सोन सरसीरुह लोचन। वदन मयंक ताप त्रय मोचन ॥
(३) मुनि पट कटिन्ह कसे तूनीरा। सोहहिं कर कमलनि धनु तीरा ॥
(४) कर कमलनि धनु सायक फेरत। जिय की जरनि हरनि हंसि हेरत ॥
(५) पुनि पुनि करत प्रनाम उठाये। सिर कर कमल परसि बैठाये ॥
(६) कीन्ह अनुग्रह अमित अति, सब विधि सीतानाथ।
करि प्रनाम बोले भरत, जोरि जलज-युग हाथ ॥

(५) उल्लेखालङ्कार

जहाँ एक व्यक्ति का किसी अभिप्राय से अनेकविध वर्णन किया गया हो, वहाँ उल्लेखालङ्कार होता है। उदाहरण:—

(१) पुलक वाटिका बाग बन, सुख सुविहंग विहारु।
माली सुमन सनेह जल, सींचत लोचन चारु ॥

(२) जिनके रही भावना जैसी। प्रभु मूरति देखी तिन तैसी ॥
देखहिं भूप महारण धीरा। मनहुं वीररस धरे शरीरा ॥
डरे कुटिल नृप प्रभुहिं निहारी। मनहुं भयानक मूरति भारी ॥
रहे असुर छल छोनिप वेषा। तिन प्रभु प्रगट काल सम देखा ॥
पुरबासिन देखेउ दोउ भाई। नर भूषण लोचन सुखदाई ॥
विदुषन प्रभु बिराटमय दीसा। बहु मुख कर पग लोचन सीसा ॥
जनक जाति अवलोकहिं कैसे। सजन सगे प्रिय लागहिं जैसे ॥
सहित विदेह बिलोकहिं रानी। शिशु सम प्रीति न जाय बखानी ॥
योगिन परम तत्व मय भासा। शांत शुद्ध मन सहज प्रकासा ॥
हरि भगतन देखे दोउ भ्राता। इष्टदेव सम सब सुख दाता ॥
रामहि चितव भाव जेहि सीया। सो सनेह सुख नहिं कथनीया ॥
इहि विधि रहा जाहि जस भाऊ। तेहि तस देख्यो कोसलराऊ ॥

(३) यह सुभ शम्भु उमा संवादा। सुख सम्पादक समन विषादा ॥
भव भंजन गंजन संदेहा। जन रञ्जन सज्जन प्रिय एहा ॥

(६) स्मरणालङ्कार

जहाँ किसी वस्तु को देख कर, स्वप्न के द्वारा, कुछ सोचकर अथवा किसी अन्य घटना से किसी अन्य विषय का स्मरण हो आवे, वहाँ स्मरणालङ्कार होता है। उदाहरण:—

(१) सती जाय देखेउ तब जागा। कतहुँ न दीख सम्भु कर भागा ॥
तब चित चढ़ेउ जो सङ्कर कहेउ। प्रभु अपमान समुझि उर दहेऊ ॥

(२) सरल बचन सुनि के नृप काना। बैर संभारि हृदय हरषाना॥
(३) उपरोहितहिं दीख जब राजा। चकित बिलोक सुमिरि सोइ काजा॥
(४) सुमिरि सीय नारद बचन, उपजी प्रीति पुनीत।
चकित बिलोकति सकल दिशि, जनु सिसु मृगी सभीत॥
(५) बिलपत राउ विकल बहु भाँती। भइ जुग सरिस सिराति न राती॥
तापस अन्ध साप सुधि आई। कौसल्यहिं सब कथा सुनाई॥
(६) भयउ कोलाहल नगर मँझारी। आवा कपि लङ्का जेहि जारी॥

(७) भ्रान्ति अलङ्कार

जहाँ भ्रम से किसी वस्तु को अन्य वस्तु मान बैठने का वर्णन किया गया हो, वहाँ भ्रान्ति-अलङ्कार होता है। उदाहरण:—

(१) गूढ़ कपट प्रिय बचन सुनि, तीय अधर बुधि रानि।
सुरमाया बस बैरिनिहिं, सुहृद जानि पतियानि॥
(२) पूछेउ मातु मलिन मन देखी। लखन कही सब कथा बिसेखी॥
गई सहमि सुनि बचन कठोरा। मृगी देखि जनु दव चहुँ ओरा॥
लखन लखेउ भा अनरथ आजू। एहि सनेह बस करब अकाजू॥
(३) आरत गिरा सुनी जब सीता। कह लछमन सन परम सभीता॥
जाहु बेगि संकट अति भ्राता।
(४) कपि करि हृदय बिचारि, दीन मुद्रिका डारि तब।
जनु असोक अंगार, लीन हरषि उठि कर गहेउ॥
(५) देख बिभीषन दच्छिन आसा। घन घमंड दामिनी बिलासा॥
मधुर मधुर गरजत घन घोरा। होइ बृष्टि जनु उपल कठोरा॥
(६) देखा भरत बिसाल अति, निसिचर मन अनुमानि।
बिनु फर सायक मारेउ, चाप स्रवन लगि तानि॥
(७) मोर हंस सारस पारावत। भवननि्ह पर सोभा अतिपावत॥
जहँ तहँ देखहिं निज परिछाहीं। बहु बिधि कूजहिं नृत्य कराहीं॥

(८) सन्देहालंकार

जहाँ किसी वस्तु को देख कर संशय उत्पन्न हो और किसी वस्तु का निश्चय न हो रहा हो, वहाँ सन्देहालंकार होता है।

अथवा, की, कि, किधौं, कीधौं, और धौं इत्यादि सन्देह सूचक शब्दों के आने से सन्देहालंकार का स्पष्टीकरण होता है। उदाहरण:—

(१) काह कहिय कहि जाइ न बाता। जम कर धारि किधौं बरियाता॥
(२) कहहु नाथ सुन्दर दोउ बालक। मुनिकुल तिलक कि नृपकुल पालक॥
ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा। उभय बेष धरि कि सोइ आवा॥

(३) मो कहँ काह कहब रघुनाथा। रखिहहिं भवन कि लेइहहिं साथा॥
(४) आने फेरि कि बनहिं सिधाये। सुनत सचिव लोचन जल छाये॥
(५) की मैनाक कि खगपति होई। मम बल जान सहित पति सोई॥
(६) की तुम्ह हरिदासन महँ होई। मोरे हृदय प्रीति अति होई॥
की तुम राम दीन अनुरागी। आयेउ करन मोहि बड़भागी॥
(७) तुम्हहिं न व्यापत काल, अति कराल कारन कवन।
मोहि सो कहहु कृपाल, ज्ञान प्रभाव की योग बल॥

(६) अपह्नुति अलंकार

जहाँ किसी बात को छिपाकर बहलावे से दूसरी बात कहकर सन्तोष करा दिया जाता है, वहाँ अपह्नुति अलङ्कार होता है। अपह्नुति के छः भेद हैं। (१) शुद्धापह्नुति (२) हेत्वपह्नुति (३) पर्यस्तापह्नुति (४) भ्रान्त्यपह्नुति (५) छेकापह्नुति और (६) कैतवापह्नुति

पूर्ववर्त्ती पाँच अपह्नुतिओं में न, नहिं, अथवा नहीं का प्रयोग अनिवार्य्य है। केवल कैतवापह्नुति में 'मिस' शब्द का प्रयोग किया जाता है।

शुद्धापह्नुति

जहाँ उपमेय को असत्य सिद्ध कर के उपमान की स्थापना की जाय वहाँ शुद्धापह्नुति होती है। उदाहरण:—

(१) मैं जो कहा रघुबीर कृपाला। बन्धु न होइ मोर यह काला॥
(२) तात राम नहिं नर भूपाला। भुवनेश्वर कालहु के काला॥
ब्रह्म अनामय अज भगवन्ता। व्यापक अजित अनादि अनन्ता॥
(३) तुम विज्ञान रूप नहिं मोहा। नाथ कीन्ह मोपर तुम छोहा॥

हेत्वपह्नुति

जहाँ शुद्धापह्नुति में कोई कारण कथित हो वहाँ हेत्वपह्नुति होती है।

उदाहरण:—

(१) तुम्हरेहि भाग राम बन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं॥
सकल सुकृत कर बड़ फल एहू। राम सीय पद सहज सनेहू॥
(२) एक कहहिं ये सहज सुहाये। आपु प्रगट भये विधि न बनाये॥
(३) प्रभु प्रताप बड़वानल भारी। सोखेउ प्रथम पयोनिधि वारी॥
तव रिपु नारि रुदन जलधारा। भरेउ बहोरि भयउ तेहि खारा॥

पर्यस्तापह्नुति

जहाँ किसी वस्तु में जो गुण हो उसका आरोप अन्य वस्तु पर किया जाय, वहाँ पर्यस्तापह्नुति होता है। उदाहरण:—

(१) गिरि सरि सिन्धु भार नहिं मोही। जस मोहि गरुअ एक पर द्रोही॥
(२) मेरे प्रान नाथ सुत दोऊ। तुम्ह मुनि पिता आन नहिं कोऊ॥
(३) मरम बचन सुनि राहु कह, कछुक दोष नहिं तोर।
लागेउ तोहि पिचास जिमि, काल कहावत मोर॥
(४) लाभ-अवधि सुख-अवधि न दूजी। तुम्हरे दरस आस सब पूजी॥
(५) तुम गलानि जिय जनि करहु, समुझि मातु करतूति।
तात कैकइहि दोष नहिं, गई गिरा मति धूति॥
(६) प्रभु प्रिय पूज्य पिता सम आपू। कुल गुरु समहित माय न बापू॥

भ्रान्त्यपह्नुति

जहाँ किसी के मन में भ्रान्ति अथवा शंका उत्पन्न हो और उसका निवारण सत्य कथन के द्वारा किया जाय, वहाँ भ्रान्त्यपह्नुति होती है। उदाहरण:—

(१) रावन बान छुआ नहिं चापा। हारे सकल भूप करि दापा॥
सो धनु राज कुँवर कर देहीं। बाल मराल कि मन्दर लेहीं॥
भूप सयानप सकल सिरानी। सखि विधि गति कछु जाति न जानी।
बोली चतुर सखी मृदुबानी। तेजवन्त लघु गनिय न रानी॥
(२) सिय वेष सती जो कीन्ह तेहि, अपराध शंकर परिहरी।
हरबिरह जाइ बहारि पितु, के जग्य जोगानल जरी॥
अब जनमि तुम्हरे भवन निज पति, लागि दारुन तप किया।
अस जानि संसय तजहु गिरिजा, सर्वदा सङ्करप्रिया॥

छेकापह्नुति

जहाँ किसी सत्य बात को युक्ति से छिपा कर असत्य कथन के द्वारा शंका दूर करने की चेष्टा की जाय, वहाँ छेकापह्नुति होती है। उदाहरण:—

कछु न परीछा लीन्ह गोसाईं। कीन्ह प्रनाम तुम्हारेहि नाईं॥

कैतवापह्नुति

जहाँ किसी कार्य्य का होना अथवा किसी वस्तु का वर्णन किसी बहाने से किया जाय, वहाँ कैतवापह्नुति होती है। छल, व्याज और मिस इत्यादि शब्दों से इसकी पहचान होती है। उदाहरण:—

(१) लखी नरेस बात सब सांची। तिय मिस मीच सीस पर नाची॥
(२) एतना कहत नीति रस भूला। रन रस बिटप पुलक मिस फूला॥
(३) बिधि न सकेउ सहि मोर दुलारा। नीच बीच जननी मिस पारा॥
(४) पठे मोह मिस खगपति तोही। रघुपति दीन्ह बड़ाई मोही॥
(५) रबि निज उदय ब्याज रघुराया। प्रभु प्रताप सब नृपन्ह देखाया॥

(१०) उत्प्रेक्षालंकार

जहाँ किसी उपमेय का भेद ज्ञान पूर्वक कोई उपमान कल्पित किया जाय, वहां उत्प्रेक्षालंकार होता है। मनु मानहु, जनु, मानो, जानो और इव इत्यादि शब्द उत्प्रेक्षा के वाचक हैं। उत्प्रेक्षालंकार के तीन भेद हैं। (१) वस्तूत्प्रेक्षा (२) हेतूत्प्रेक्षा और (३) फलोत्प्रेक्षा

वस्तूत्प्रेक्षा

जहाँ उत्प्रेक्षा के द्वारा किसी उपमेय के तुल्य उपमान कल्पित किया जाय, वहाँ वस्तूत्प्रेक्षा होती है। इस अलंकार के दो भेद साहित्यिकों ने कहे हैं। (क) उक्त विषया वस्तूत्प्रेक्षा (ख) अनुक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा

उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा

जहां उत्प्रेक्षा का विषय पूर्व कथन करके तब उसके अनुरूप कल्पना की जाय, वहां उक्त-विषया वस्तू-प्रेक्षा होती है। उदाहरण:—

(१) भनित मोार सिव कृपा बिभाती। ससि समाज मिलि मनहु सुराती॥
(२) चाहहु सुनै रामगुन गूढ़ा। किन्हेउ प्रस्न मनहु अतिमूढ़ा॥
(३) पुनि २ प्रभुपद कमल गहि, जोरि पंकरुह पानि।
बोली गिरिजा बचन वर, मनहुँ प्रेम रस सानि॥
(४) सुनि अतिविकल मोह मति नाठी। मन मिलि गई छूटि जिमि गांठी॥
(५) हृष्ट पुष्ट बन सहज सुहाये। मानहुँ अबहिं भवन ते आये॥
(६) दसरथ पुत्र जन्म सुनि काना। मानहुँ ब्रह्मानन्द समाना॥
(७) लता भवन ते प्रगट भे, तेइ अवसर दोउ भाय।
निकसे जनु जुग विमल विधु, जलद पटल विलगाय॥

अनुक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा

जहाँ उत्प्रेक्षा का विषय कथन न करके उत्प्रेक्षा की जाय, वहाँ अनुक्त विषया वस्तूत्प्रेक्षा होती है। उदाहरण:—

(१) रिषिन गौरि देखिन्ह तिन्ह तैसी। मूरतिवन्त तपस्या जैसी॥
(२) वन उपवन वापिका तड़ागा। परम सुभग सब दिसा विभागा॥
जहँ तहँ जनु उमगत अनुरागा। देखि मुएहु मन मनसिज जागा॥
(३) बसहिं नगर सुन्दर नर नारी। जनु बहु मनसिज रति तनु धारी॥
(४) पंथ जात सोहहिं मति धीरा। ज्ञान भक्ति जनु धरे सरीरा॥
(५) अरुन चरन पंकज नख जोती। कमल दलन बैठे जनु मोती॥

हेतूत्प्रेक्षा

जहाँ जिस वस्तु का हेतु न हो, वहाँ उस वस्तु के हेतु की कल्पना करना हेतूत्प्रेक्षालंकार है। इसके भी दो भेद हैं। (१) सिद्धास्पद (२) असिद्धास्पद।

सिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा

जहाँ उत्प्रेक्षा का आधार सिद्ध (सम्भव) हो, वहाँ सिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षालंकार होता है। उदाहरणः—

(१) चारु बजार विचित्र अंबारी। मनिमय जनु विधि स्वकर संवारी॥
(२) स्रवन समीप भये सित केसा। मनहुँ जरठपन अस उपदेशा॥
(३) आगे दीख जरत रिस भारी। मनहुँ रोषतरवारि उघारी॥
(४) पढ़हिं भाट गुन गावहिं गायक। सुनत नृपहिं जनु लागत सायक॥

असिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा

जहाँ उत्प्रेक्षा का आधार असिद्ध (असम्भव) हो, वहाँ असिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षालंकार होता है। उदाहरणः—

(१) तड़ित विनिन्दक पीतपट, उदर रेख वर तीनि।
नाभि मनोहर लेति जनु, जमुन भँवर छबि छीनि॥
(२) मंगल मय मन्दिर सब केरे। चित्रित जनु रति नाथ चितेरे॥
(३) होत चकित चित कोट विलोकी। सकल भुवन सोभा जनु रोकी॥
(४) सोहत जनु जुग जलज सनाला। ससिहिं सभीत देत जयमाला॥
(५) रचे रुचिर वर वन्दन वारे। मनहुँ मनोभव फन्द संवारे॥

फलोत्प्रेक्षा

जहाँ अफल को फल मानने की उत्प्रेक्षा की जाय, वहाँ फलोत्प्रेक्षालंकार होता है। उदाहरणः—

(१) मंगलमय कल्यानमय, अभिमत फल दातार।
जनु सब साँचे होन हित, भये सगुन एक बार॥
(२) चारु चरन नख लेखति धरनी। नूपुर मुखर मधुर कवि बरनी॥
मनहुँ प्रेमबस बिनती करहीं। हमहिं सीय पद जनि परिहरिहीं॥

(११) अतिशयोक्ति अलङ्कार

जहाँ पर किसी को अतिशय सराहना की जाय, वहाँ अतिशयोक्ति अलंकार होता है। इस अलंकार के छः भेद हैं (१) भेदकातिशयोक्ति (२) सम्बन्धातिशयोक्ति (३) चपलातिशयोक्ति (४) अक्रमातिशयोक्ति (५) रूपकातिशयोक्ति (६) अत्यन्तातिशयोक्ति।

भेदकातिशयोक्ति

जहाँ अत्यन्त भेद दिखाया जाय, वहाँ भेदकातिशयोक्ति अलंकार होता है
उदाहरण—

(१) देव दनुजगन नाना जाती। सकल जीव तहँ आनहिं भाती॥
(२) महि सरि सागर सर गिरि नाना। सब प्रपंच तहँ आनहि आना॥

सम्बन्धातिशयोक्ति

जहाँ असम्बन्ध में सम्बन्ध दिखलाया जाय, वहाँ सम्बन्धातिशयोक्ति अलंकार होता है। उदाहरण:—

(१) विधि हरिहर कपि कोविद बानी। कहत भन्त महिमा सकुचानी॥
(२) जिनहिं विरञ्चि बड़ भयेऊ विधाता। महिमा अवधि राम पितु माता॥
(३) नदी पुनीत अमित महिमा अति। कहि न सकै सारदा विमल मती॥
(४) पुरसोभा अवलोकि सुहाई। लागै लघु विरंचि निपुनाई॥

चपलातिशयोक्ति

जहाँ किसी कार्य का होना कारण के शीघ्र ही पश्चात प्रदर्शित किया गया हो, वहाँ चपलातिशयोक्ति अलंकार होता है। उदाहरण:—

(१) विमल कथा कर कीन्ह अरम्भा। सुनत नसाहिं काममददंभा।
(२) तब सिव तीसर नयन उघारा। चितवत काम भयेऊ जरिछारा॥

छन में प्रभुके सायकन्हि, काटे विकट पिसाच।
पुनि रघुवीर निषङ्गमहँ प्रविसे सब नाराच॥

अक्रमातिशयोक्ति

जहाँ कारण तथा कार्य साथ ही होते कहे जायँ, वहाँ अक्रमातिशयोक्ति अलंकार होता है। उदाहरण:—

(१) सन्धानेउ प्रभु विसिख कराला। उठी उदधि उर अन्तर ज्वाला॥
(२) दमकेउ दामिनि जिमि जब लयऊ। पुनि धनु नभ मंडल सम भयऊ॥

रूपकातिशयोक्ति

जहाँ केवल उपमान ही के वर्णन में अतिशयोक्ति की जाय, वहाँ रूपकातिशयोक्ति अलंकार होता है। उदाहरण:—

(१) रामसीय सिर सेन्दूर देहीं। उपमा कहि न जात कवि केही॥
अरुन पराग जलज भरि नीके। ससिहि भूष अहि लोभ अमीके॥

अत्यन्तातिशयोक्ति

जहाँ कारण के पूर्व ही कार्य का प्रदर्शन किया जाय, वहाँ अत्यन्तातिशयोक्ति अलंकार होता है। उदाहरण:—

(१) राजन राउर नाम जस, सब अभिमत दातार।
फल अनुगामी महिप-भनि, मन अभिलाष तुम्हार॥

(२) जो मुनीस जेहि आयसु दीन्हा। सो तेहि काज प्रथम जनु कीन्हा॥

(१२) तुल्ययोगिता

जहाँ कई वस्तुओं में एक ही धर्म कथन किया जाय, वहाँ तुल्ययोगिता अलंकार होता है। तुल्ययोगिता चार प्रकार की होती है।

प्रथम

जहाँ अनेक उपमेयों का एक ही धर्म कथन किया जाय, वहाँ प्रथम तुल्य-योगिता होती है। उदाहरण:—

(१) कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरिसम सब कर हित हाई।

(२) कमल कोक मधुकर खग नाना। हरषे सकल निसा अवसाना॥

(३) अस विचारि गवनहु घर भाई। जस प्रताप बल तेज गवाई।

(४) गुरु रघुपति सब मुनि मनमाहीं। मुदित भये पुनि पुनि पुलकाहीं॥

(५) सब कर संसय अरु अज्ञानू। मन्द महीपन कर अभिमानू।
भृगुपति केरि गरब गरुआई। सुर मुनि बरन्ह केरि कदराई॥
सिय कर सोच जनक पछितावा। रानिन्ह कर दारुण दुख दावा।
सम्भु चाप बड़ बोहित पाई। चढ़े जाय सब संग बनाई॥

द्वितीय

जहां अनेक उपमानों का एक ही धर्म कथन किया जाय, वहां द्वितीय तुल्य-योगिता होती है। उदाहरण:—

(१) बोले बिहँसि महेस तब, ज्ञानी मूढ़ न कोय।
जेहि जस रघुपति करहिं जब, सो तस तेहि छन होय॥

(२) दूत बचन रचना प्रिय लागी। प्रेम प्रताप वीररसपागी॥

तृतीय

जहां एक में बहुत धर्म्मों का कथन किया जाय, वहां तृतीय तुल्ययोगिता होती है। उदाहरण—

(१) प्रभु समरथ सर्वज्ञ सिव, सकल कला गुनधाम।
जोग ज्ञान वैराग्यनिधि, प्रनत कल्पतरु नाम॥

(२) तेहि पर राम सपथ करि आई। सुकृत सनेह अवधि रघुराई॥

(३) देव पितर सब तुम्हहिं गोसाईं। राखिहि पलक नयन की नाईं॥

(४) गुरु पितु मातु न जानउ काहू। कहहुँ सुभाउ नाथ पतिआहू॥
जहँ लगि जगत सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निपुनाई॥
मोरे सबै एक तुम्ह स्वामी। दीनबन्धु उर अन्तर्यामी॥

(५) आज सुफल तप तीरथ त्यागू। आज सफल जप जोग बिरागू।
सफल सकल सुभ साधन साजू। राम तुमहिं अवलोकत आजू॥

(६) स्वामि सखा पितु मातु गुरु, जिनके सब तुम तात।
मन मन्दिर तिनके बसहु, सीय सहित दोउ भ्रात॥

चतुर्थ

जहाँ कई विरोधी वस्तुओं के साथ एक धर्म का आरोपण किया जाय, वहाँ चतुर्थ तुल्ययोगिता होती है। उदाहरण:—

(१) उदासीन अरि मीत हित, सुनत जरहिं खल रीति।
जानि पानि जुग जोरि करि, विनती करउं सप्रीति॥

(२) भाव कुभाव अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥

(३) सब के प्रिय सब के हितकारी। दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी॥

(४) देव देव तरु सरिस सुभाऊ। सनमुख बिमुख न काहुहिं काऊ॥

(१३) दीपकालङ्कार

जहाँ प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों का एक ही धर्म कथित हो, वहाँ दीपकालंकार होता है। उदाहरण:—

(१) कसे कनकमनि पारिख पाये। पुरुष परखिये समय सुहाये॥

(२) लखि हिय हंसि कह कृपानिधानू। सरिस स्वान मघवान जुवानू॥

(३) संग ते जती कुमंत्र ते राजा। मान ते ज्ञान पान ते लाजा॥
प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी। नासहिं वेगि नीति असि सुनी॥

(४) सेवक सठ नृप कृपिन कुनारी। कपटी मित्र सूल समचारी॥

(१४) आवृत्ति दीपकालङ्कार

जहाँ क्रियावाचक पदों की आवृत्ति हो, वहाँ आवृत्ति दीपकालंकार होता है। इसके तीन भेद हैं—(१) पदावृत्तिदीपक, (२) अर्थावृत्तिदीपक और (३) पदार्थावृत्तिदीपक।

पदावृत्तिदीपक

जहाँ किसी पद की आवृत्ति हो, परन्तु दोनों पदों के अर्थ भिन्न हों, वहाँ पदावृत्तिदीपकालंकार होता है। उदाहरण:—

जप तप कछु न होइ यहि काला। हे विधि मिलिहिं कवन विधि बाला॥

अर्थावृत्तिदीपक

जहाँ किसी शब्द के स्थान में दूसरे पर्यायवाची शब्द से आवृत्ति की जाय, वहाँ अर्थावृत्तिदीपकालङ्कार होता है। उदाहरण:—

(१) कुसुमित बिबिध बिटप बहुरंगा। कूजहिं कोकिल गूँजहिं भृंगा ॥
(२) पय पयोधि तजि अवध बिहाई। जहँ सिय रामलखन रहे आई ॥

पदार्थावृत्तिदीपक

जहाँ किसी पद की उसी अर्थ में आवृत्ति हो, जिस अर्थ में पहिले आ चुका है, वहाँ पदार्थावृत्तिदीपकालङ्कार होता है। उदाहरण:—

(१) राम साधु तुम साधु सयाने। राम मातु भलि सब पहिचाने ॥
(२) सो जानै जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हहि होइ जाई ॥
(३) देखि प्रभाव सुरेसहिं सोचू। जग भल भलेहिं पोच कह पोचू ॥
(४) जग भल पोच ऊँच अरु नीचू। अमिय अमर पद माहुर मीचू ॥
(५) पुरुष प्रताप सबल सब भावी। अबल अबल सहज जड़ घाती ॥

(१५) कारक दीपकालङ्कार

जहाँ कई क्रियाओं का एक ही कर्त्ता हो, वहाँ कारक दीपकालङ्कार होता है। उदाहरण:—

(१) उयेउ भानु बिनु स्रम तम नासा। दुरे नखत जग तेज प्रकासा ॥
(२) लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े। काहु न लखा देख सब ठाढ़े ॥
(३) देखिय सुनिय गुनिय मन माहीं। मोह मूल परमारथ नाहीं ॥

(१६) माला दीपकालङ्कार

जहाँ दीपक और एकावली का एकत्रीकरण हो अर्थात् जहां पूर्व कथित वस्तु से पिछली कही हुई वस्तु का उत्कर्ष प्रकट हो, वहां माला दीपकालङ्कार होता है। उदाहरण:—

(१) नारद जानेउ नाम प्रतापू। जग प्रिय हरि, हरिहर प्रिय आपू ॥
(२) भरित सरिस को राम सनेही। जग जप राम, राम जप जेही ॥

(१७) देहरी दीपकालङ्कार

जहाँ मध्यस्थित कोई पद पूर्व और पर पदों के साथ अर्थों का द्योतन करे, वहाँ देहरी दीपकालङ्कार होता है। उदाहरण:—

(१) नख दसन सैल महाद्रुमायुध, सबल संक न मानहिं।

इसमें 'महा' शब्द 'शैल' और 'द्रुम' दोनों शब्दों के साथ अर्थ का प्रकाशन करता है।

(२) पुनि प्रभु आइ त्रिवेनी, हरषित मज्जन कीन्ह।
कपिन्ह सहित विप्रन कहँ, दान विविध विधि दीन्ह॥

इसमें 'कपिन्ह सहित' पद 'मज्जन और 'दान' दोनों के साथ व्यवहृत हुआ है।

(१८) प्रति वस्तूपमालङ्कार

जहाँ उपमान और उपमेय वाक्यों का पृथक् पृथक् शब्द द्वारा एक ही धर्म-कथन किया जाय, वहाँ प्रति वस्तूपमालङ्कार होता है। उदाहरण:—

(१) तिन्हहिं सुहाय न अवध बधावा। चोरहिं चाँदनि राति न भावा॥
(२) सो मैं कहउँ कवन बिधि बरनी। भूमि नाग सिर धरै कि धरनी॥
(३) सो मैं बरनि कहउँ बिधि केहीं। डाबर कमठ कि मन्दर लेहीं॥
(४) सो मैं कुमति कहउँ केहि भाँती। बाज सुराग की गाडर ताँती॥
(५) राम नाम बिनु गिरा न सोहा। देखु विचारि त्यागि मद मोहा॥
वसन हीन नहिं सोह सुरारी। सब भूषन भूषित बर नारी॥
(६) फूलै फलै न बेंत, यदपि सुधा बरषहिं जलद।
मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिले विरंचि सम॥

(१९) दृष्टान्तालङ्कार

जहाँ उपमेय वाक्य और उपमान वाक्य पृथक् पृथक् वर्णित हों और दोनों वाक्यों के धर्म भी पृथक् पृथक् कथित हों, वहाँ दृष्टान्तालङ्कार होता है। उदाहरण:—

(१) स्याम सुरभि पय विसद अति, गुनद करहिं ते प्रान।
गिरा ग्राम्य सिय राम जस, गावहिं सुनहि सुजान॥
(२) जो विवाह संकर सन होई। दोषउ गुन सम कह सब कोई॥
जो अहि सेज सयन हरि करिहीं। बुध कछु तिनकर दोष न धरहीं॥
भानु कृसानु सर्व रस खाहीं। तिन कह मन्द कहत कोउ नाहीं॥
(३) टेढ़ जानि संका सब काहू। वक्र चन्द्रमहिं ग्रसै न राहू॥
(४) को न कुसंगति पाइ नसाई। रहै न नीच मते चतुराई॥
(५) स्वामि धरम स्वारथहिं विरोधू। बधिर अन्ध प्रेमहिं न प्रबोधू॥

(२०) निदर्शनाऽलङ्कार

जहाँ दो वाक्यों के अर्थों में विभिन्नता रहते हुए भी समता दिखलाई जाय, वहाँ निदर्शनाऽलंकार होता है। इसके चार भेद हैं।

प्रथम निदर्शना

जहाँ दो असम वाक्यों के अर्थों की एकता, जो, सो, जे, ते शब्दों द्वारा दिखलाई जाय, वहाँ प्रथम निदर्शना होती है। उदाहरण: —

(१) जो अति सुभट सराहेउ रावन। सो सुग्रीव केर लघु धावन॥

(२) सुनु खगेस हरि भक्ति बिहाई। जे सुख चाहहिं आन उपाई॥
ते सठ महा सिन्धु बिन तरनी। पैरि पार चाहत जड़ करनी॥

(३) अति विचित्र रघुपति चरित, जानहिं परम सुजान।
जे मतिमन्द विमोह बस, हृदय धरहिं कछु आन॥

(४) जो न जाउँ बन ऐसेहु काजा। प्रथम गनिय मोहि मूढ़ समाजा॥

द्वितीय निदर्शना

जहाँ उपमान के गुण को उपमेय धारण करे, वहाँ द्वितीय निदर्शना होती है। उदाहरण :—

(१) पूछेउ रघुपति कथा प्रसंगा। सकल लोक जगपावनि गंगा॥

(२) लोचन चातक जिन करि राखे। रहहिं दरस जलधर अभिलाखे॥

(३) अस कहि फिरि चितये तेहि ओरा। सियमुख ससि भये नैन चकोरा॥

(४) कौल काम बस कृपण बिमूढा। अति दरिद्र अजसी अतिबूढ़ा॥
सदा रोग बस सन्तत क्रोधी। विष्णु बिमुख श्रुति संत विरोधी॥
तनु पोषक निन्दक अघ खानी। जीवत सवसम चौदह प्रानी॥

तृतीय निदर्शना

जहाँ उपमेय के गुण को उपमान धारण करे, वहाँ तृतीय निदर्शना होती है। उदाहरण:—

(१) तुम्ह कहं वन सब भांति सुपासू। संग पितु मातु राम सिय जासू॥

(२) मंगल मूल बिप्र परितोषू। दहै कोटि कुल भूसुर रोषू॥

(३) कह मारुत सुत सुनहु प्रभु, ससि तुम्हार प्रिय दास।
तव मूरति बिधु उर बसति, सोई स्यामताभास॥

चतुर्थ निदर्शना

जहां अपने अनुभव से दूसरों को उपदेश किया जाय, वहां चतुर्थ निदर्शना होती है। उदाहरण:—

(१) कठिन काल मम कोष, धरम न ज्ञान न जोग जप।
परिहरि सकल भरोस, राम भजहिं ते चतुर नर॥

(२) विनती करउ जोरि कर रावन। सुनहु मान तजि मोर सिखावन॥
देखहु तुम्ह निज कुलहिं बिचारी। भ्रम तजि भजहु भक्तभयहारी॥
(३) दुइ सुत मारेउ दहेउ पुर, अजँहु सीय, पिय देहु।
कृपासिन्धु रघुनाथ भजि, नाथ विमल जस लेहु॥

(२१) व्यतिरेकालङ्कार

जहां उपमान की अपेक्षा उपमेय में कुछ विशेषता अथवा न्यूनता का प्रदर्शन किया जाय, वहां व्यतिरेकालंकार होता है। उदाहरण:—

(१) विरचेउ मग महं नगर तेहि, सत जोजन बिस्तार।
श्री निवासपुर ते अधिक, रचना विविध प्रकार॥
(२) भोगवति जसि अहिकुल वासा। अमरावति जसि सक्र निवासा॥
तिन्ह ते अधिक रम्य अति बंका। जग विख्यात नाम तेहि लंका॥
(३) गिरा मुखर तनु अर्द्ध भवानी। रति अति दुखित अतनुपति जानी।
विष वारुणी बन्धु प्रिय जेही। कहिय रमा सम किमि वैदेही॥
(४) कोटि कुलिश सम वचन तुम्हारा। वृथा धरहु धनु बाण कुठारा॥
(५) जिनके जस प्रताप के आगे। ससि मलीन रवि सीतल लागे॥
(६) वचन विचित्र पाँवड़े परहीं। देखि धनद धनमद परिहरहीं॥
(७) जन्म सिन्धु पुनि बन्धु विष, दिन मलीन सकलंक।
सियमुखसमता पाव किमि, चन्द बापुरो रंक॥

(२२) सहोक्ति अलङ्कार

जहाँ मनोरंजन के अभिप्राय से एक साथ कई बातें कही जाँय, वहाँ सहोक्ति अलंकार होता है। उदाहरण :—

(१) त्रिविधि दोष दुख दारिद दावन। कलिकुचालि कुलिकलुष नशावन॥
(२) बोली सती मनोहर बानी। भय संकोच प्रेमरससानी॥
(३) प्रभु तोषेउ सुनि संकरवचना। भगति विवेक धरमयुतरचना॥
(४) ब्रह्मचर्य व्रत संयम नाना। धीरज धरम ज्ञान विज्ञाना॥
सदाचार तप योग विरागा। समय विवेक कटक सब भागा॥
(५) बल प्रताप वीरता बड़ाई। नाक पिनाकहि संग सिधाई॥

(२३) विनोक्ति अलङ्कार

जहाँ पर प्रस्तुत वस्तु किसी के विना हीन वा रम्य प्रतीत हो, वहाँ विनोक्ति अलंकार होता है। उदाहरण :—

(१) इच्छित फल बिनु शिव आराधे। लहिय न कोटि जोग जप साधे॥
(२) कहउँ सुभाउ न छल मन माँहीं। जीवन मोर राम बिनु नाहीं॥

(३) बिन रघुपति पदपदुमपरागा । मोहिं कोउ सपनेहुँ सुखद न लागा ॥
(४) जिय बिनु देह नदी बिनु बारी । तैसइ नाथ पुरुष बिनु नारी ॥
(५) अस जिय जानि भजहिं जे आना । ते नर पशु बिनु पूँछ विषाना ॥
(६) साधु समाज न जाकर लेखा । राम भगत महं जासु न रेखा ॥
(७) जाय जियत जग सो महि भारू । जननी जौवन विटप कुठारू ॥

(२४) समासोक्ति अलङ्कार

जहाँ कहीं प्रस्तुत वर्णन में अप्रस्तुत वृत्तान्त का भान हो, वहाँ समासोक्ति अलंकार होता है । उदाहरण:—

(१) लोचन मगु रामहिं उर आनी । दीन्हें पलक कपाट सयानी ॥
(२) राम तुम्हहिं प्रिय तुम प्रिय रामहिं । तुम निर्दोष, दोष विधि वामहिं ॥
(३) भरि भरि वारि विलोचन लेहीं । वाम विधातहिं दूषन देहीं ॥

(२५) परिकरालङ्कार

जहां क्रिया से सम्बन्ध रखनेवाला कोई विशेषण प्रयुक्त हो, वहाँ परिकरालंकार होता है । उदाहरण:—

(१) तब रिषि निज नाथहिं जिय चीन्हीं । विद्यानिधि कर विद्या दीन्हीं ॥
(२) अस्थि समूह देखि रघुराया । पूछा मुनिन्ह लागि अतिदाया ॥
(३) भगत कलपतरु प्रनत हित, कृपासिन्धु सुखधाम ।
सोइ निज भगति मोहि प्रभु, देहु दया करि राम ॥

(२६) परिकरांकुरालङ्कार

जहाँ साभिप्राय विशेषणों के द्वारा विशेष्य का कथन हो, वहाँ परिकरांकुरालंकार होता है । उदाहरण:—

(१) सती कपट जानेउ सुरस्वामी । सब दरसी सब अन्तर्यामी ॥
(२) साप अनुग्रह करहु कृपाला । बोले नारद दीन दयाला ॥
(३) अस कहि गहे नरेस पद, स्वामी होहु कृपाल ।
मोहि लागि दुख सहिय प्रभु, सज्जन दीन दयाल ॥
(४) हृषीकेस सुनि नाउं जाउं बलि, असि भरोस जिय मोरे ।
तुलसिदास इन्द्रिय संभव दुख, हरे बनिहिं प्रभु तोरे ॥
(५) मैं अपराध सिन्धु करुनाकर ! जानत अन्तरयामी ।
तुलसिदास भवव्याल ग्रसिततव सरन उरग रिपुगामी ॥
(६) सुनहु विनय मम विटप असोका । सत्य नाम करु हरु मम सोका ॥

(७) रघुपति प्रजा प्रेमबस देखी। सदय हृदय दुख भयेहु विसेखी॥
(८) कैकयनन्दनि मन्द मति, कठिन कुटिल पन कीन्ह।
जेहि रघुनन्दन जानकिहिं, सुख अवसर दुख दीन्ह॥

(२७) अप्रस्तुत प्रशंसालङ्कार

जहां प्रस्तुत विषय का स्पष्टीकरण अप्रस्तुत विषय के वर्णन द्वारा किया जाय, वहां अप्रस्तुत प्रशंसालंकार होता है। उदाहरण:—

(१) कुपथ मागु रुज व्याकुल रोगी। वैद्य न देय सुनहु मुनि योगी॥
यहि विधि हित तुम्हार मैं ठयेऊ। कहि अस अन्तरहित प्रभु भयेऊ॥
(२) मातु पितहि जनु सोचबस, करसि महीपकिसोर।
गर्भन के अर्भक दलन, परसु मोर अतिघोर॥
(३) सेवहि अरंड कलपतरु त्यागी। परिहरि अमृत लेहिं विषमांगी॥
तेउ न पाइ अस समउ चुकाहीं। देखु विचारि मातु मन माहीं॥
(४) प्रभु करुनामय परम विवेकी। तनु तजि छांह रहत किमि छेकी॥
प्रभा जाय कहं भानु बिहाई। कंह चन्द्रिका चन्द्र तजि धाई॥
(५) सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा। कबहुँ कि नलिनी करहिं विकासा॥
(६) बार बार अस कहेउ कृपाला। नहिं गजारि जस बधे शृगाला॥

(२८) प्रस्तुतांकुरालङ्कार।

जहाँ प्रस्तुत विषय के वर्णन में अन्य किसी प्रस्तुत विषय का भी आभास हो, वहां प्रस्तुतांकुरालंकार होता है। उदाहरण:—

(१) भल न कीन्ह तैं निसिचरनाहा। अब मोहि आइ जगायेहि काहा॥
अजहूँ तात त्यागि अभिमाना। भजहु राम होइहि कल्याना॥

यहां पर कुम्भकरण ने रावण को शिक्षा दी है, वह एक प्रस्तुत विषय है, परन्तु इससे राक्षस वंश का कुशल चाहना भी आभासित होता है।

(२९) पर्यायोक्त अलङ्कार

जहाँ कोई बात सीधे शब्दों में न कहकर हेरफेर से अथवा व्यंग से कही जाय या किसी बहाने से काम साधा जाय, वहाँ पर्यायोक्त अलङ्कार होता है। उदाहरण:—

(१) नाथ लखन पुर देखन चहहीं। प्रभु संकोच डर प्रगट न कहहीं॥
(२) सब सिसु यहि मिस प्रेम बस, परसि मनोहर गात।
तन पुलकहिं अतिहरष हिय, देखि देखि दोउ भ्रात॥
(३) देखत मिस मृग विहँग तरु, फिरइ बहोरि बहोरि।
निरखि निरखि रघुबीर छबि, बाढ़इ प्रीति न थोरि॥

(४) रवि निज उदय ब्याज रघुराया। प्रभु प्रताप सब नृपन देखाया॥
तव भुजबल महिमा उद्घाटी। प्रगटी धनु विघटन परिपाटी॥

(५) सीता हरन तात जनि, कहेहु पिता सन जाइ।
जो मैं राम तो कुल सहित, कहिहिं दसानन आइ॥

(६) जाके बल लवलेस तें, जितेहु चराचर झारि।
तासु दूत मैं जाहि की, हरि आनेहु प्रिय नारि॥

(३०) व्याजस्तुति अलङ्कार

जहाँ प्रत्यक्ष वर्णन से तो निन्दा की प्रतीति हो, परन्तु परोक्षरूप से स्तुति अभिप्रेत हो, वहाँ व्याजस्तुति अलङ्कार होता है। उदाहरण:—

(१) नारद सिख जे सुनहिं नरनारी। अवसि होंहिं तजि भवन भिखारी॥
मन कपटी तन सज्जन चीन्हा। आपु सरिस सबहीं चह कीन्हा॥

बहुतेरे साहित्यिकों ने जहाँ अन्य की स्तुति से किसी अन्य की स्तुति का प्रदर्शन हो, वहाँ भी व्याजस्तुति अलङ्कार माना है।

उदाहरण :—

(१) जासु दूत बल बरनिन जाई। तेहि आये पुर कवन भलाई॥
(२) समुझत जासु दूत की करनी। स्रवहिं गर्भ रजनीचरघरनी॥
तासु नारि निज सचिव बुलाई। पठवहु कन्त जो चहहु भलाई॥
(३) प्रिय तुम ताहि जितब संग्रामा। जाके दूत केर अस कामा॥
कौतुक सिन्धु नाम तव लंका। आयेउ कपिकेहरी असंका॥
रखवारे हति बिपिन उजारा। देखत तोहि अच्छ जिन मारा॥
जारि नगर सब कीन्हेसि छारा। कहां रहा बलगर्व तुम्हारा॥

(३१) व्याजनिन्दाऽलङ्कार

जहां पर स्तुति करने पर भी वास्तव में निन्दा का ही प्रदर्शन हो, वहां व्याज-निन्दाऽलंकार होता है।

(१) विहंसि लखन बोले मृदु वानी। अहो मुनीस महाभट मानी॥
(२) भरत कीन यह उचित उपाउ। रिपु रिन रंच न राखव काऊ॥
(३) जानेउ मैं तुम्हारि प्रभुताई। सहसबाहुसन परी लराई॥
समर बालिसन करि जस पावा। सुनि कपिबचन बिहसि बहलावा॥
(४) राम साधु तुम साधु सुजाना। राम मातु भलि तुम पहिचाना॥
(५) धन्य कीस जो निज प्रभु काजा। जहं तहं नाचहिं परिहरि लाजा॥
नाचि कूदि करि लोग रिझाई। पति हित करहिं धर्म निपुनाई॥
(६) नाक कान बिनु भगिनि निहारी। छमा कीन्ह तुम धर्म बिचारी॥

(३२) आक्षेपालङ्कार

जहां किसी कार्य्य में दोषारोपण कर वाधा उपस्थित की जाय, वहां आक्षेपालंकार होता है। इसके तीन भेद हैं—(१) उक्ताक्षेप, (२) निषेधाक्षेप और (३) व्यक्ताक्षेप

उक्ताक्षेप

जहां पूर्व कही हुई बात का निषेध कर के दूसरी बात कही जाय, वहां उक्ताक्षेपालंकार होता है।

उदाहरण:—

(१) कहेउ नीक मोरे मन भावा। यह अनुचित नहिं नेवत पठावा॥
(२) दुराराध्य पै अहहि महेसू। आसुतोष पुनि किये कलेसू॥
(३) उमा प्रश्न तव सहज सुहाई। सुखद सन्त सम्मत मोहि भाई॥
एक बात नहिं मोहिं सुहानी। यदपि मोहबस कहेउ भवानी॥
(४) सानुज पठइय मोहि वन, कीजिय सबहिं सनाथ।
नतरु फेरिय बन्धु दोऊ, नाथ चलौं मैं साथ॥

निषेधाक्षेप

जहाँ पहिले के किये हुए निषेध को फिर स्वीकार किया जाय, वहां निषेधाक्षेपालंकार होता है।

(१) भनित मोरि सब गुन रहित, विश्व विदित गुन एक।
सो विचारि सुनिहहिं सुमति, जिनके विमल विवेक॥
(२) यदपि कबित रस एको नाहीं। राम प्रताप प्रगट यहि माहीं॥
(३) कवि न होउँ नहिं चतुर कहाऊँ। मति अनुरूप राम गुन गाऊँ॥
(४) दसमुख मैं न बसीठी आयेउ। अस बिचारि रघुबीर पठायेउ॥
(५) नाथ देखि पद कमल तुम्हारे। अब पूजे सब काम हमारे॥
एक लालसा बड़ि मन माहीं। सुगम अगम कहि जाति सो नाहीं॥

व्यक्ताक्षेप

जहाँ प्रगट रूप से आज्ञा तो दी जाय, परन्तु वह अभिमत न हो, वहाँ व्यक्ताक्षेपालंकार होता है। उदाहरण :—

(१) जाहु सुखेन वनहिं बलि जाऊँ। करि अनाथ पुर परिजन गाऊँ॥
(२) राज देन कहि दीन वन, मोहि न सोच लवलेस।
तुम बिनु भरतहिं भूपतिहि, प्रजहिं प्रचण्ड कलेस॥

(३३) विरोधाभास अलङ्कार

जहाँ द्रव्य, क्रिया, गुण अथवा जाति में विरोध की प्रतीति हो, वहाँ वि धाभास अलंकार होता है।

उदाहरणः—

(१) कबहूँ जोग वियोग न जाके। देखा विरह प्रगट दुख ताके॥
(२) गरल कंठ उर नरसिर माला। असिववेस सिवधाम कृपाला॥
(३) अजा अनादि सक्ति अविनासिनि। सदा संभु अरधंग निवासिनि॥
जग संभव पालन लय कारिनि। निज इच्छा लीला वपु धारिनि॥
(४) भरद्वाज सुनु जाहि जग, होत विधाता वाम।
धूरि मेरु सम, जनक जम, ताहि ब्यालसम दाम॥
(५) गरल सुधा रिपु करै मिताई। गोपद सिन्धु अनल सितलाई॥
(६) गरुअ सुमेरु रेनुसम ताही। राम कृपा करि चितवहिं जाही॥

(३४) विभावनाऽलंकार

जहां किसी घटना के कारण के सम्बन्ध में कोई विलक्षण कल्पना की हो, वहां विभावनाऽलंकार होता है। इस के छः भेद हैं।

प्रथम विभावना

जहां विना कारण के ही कार्य्य की सिद्धि हो, वहां पहिली विभावना ह है। उदाहरणः—

(१) मुनि तापस जिन ते दुख लहहीं। ते नरेस विनु पावक दहहीं॥
(२) भरत वचन सुनि मांझ त्रिवेनी। भई मृदिवानि सुमंगल देनी॥
(३) विनुपद चलै सुनै विनु काना। करविनु कर्म करै विधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। विनु बानी वक्ता बड़ जोगी॥

द्वितीय विभावना

जहां अपूर्ण कारण से ही कार्य्य की पूर्णता होती हो, वहां दूसरी विभा होती है। उदाहरणः—

(१) काम कुसुम धनु सायक लीन्हे। सकल भुवन अपने बस कीन्हे॥
(२) मंत्र परम लघु जासु बस, विधि हरिहर सुर सर्ब्ब।
महामत्त गजराज कहँ, बस कर अंकुस खर्ब्ब॥
(३) सुर बानर देखे विकल, हंसे कोसलाधीस।
सज़ि सारंग एक सर, हते सकल दससीस॥

तृतीय विभावना

जहाँ किसी कार्य्य का प्रतिबन्ध होते हुए भी कार्य्य की सिद्धि हो जाय, वहाँ तीसरी विभावना होती है। उदाहरण—

(१) रखवारे हति विपिन उजारा। देखत तोहि अछय जिन मारा॥

(२) सुनासीर सत सरिस सो, सन्तत काइ विलास।
परम प्रबल रिपु सीस पर, तदपि न मन कछु त्रास॥

चतुर्थ विभावना

जहाँ अकारण से कार्य्य की उत्पत्ति लिखी गई हो, अथवा कारण रहते हुए भी उससे विपरीत कार्य्य की उत्पत्ति हो, वहाँ चौथी विभावना होती है। उदाहरण:—

(१) बाल्मीकि नारद घट योनी। निज निज मुखनि कही निज होनी॥

इसमें वाल्मीकि मुनि की उत्पत्ति बल्मीक से, और अगस्त जी की उत्पत्ति घट से वर्णित है, अतः अकारण से कार्य की उत्पत्ति में चौथी विभावना है।

उदाहरण:—

(१) बन्दउँ सबके चरन सुहाये। अधम सरीर राम जिन्ह पाये॥

(२) सो नर क्यों दसकन्ध, बालि बधेउ जेहि एक सर।
बीसहु लोचन अन्ध, धिक तव जन्म कुजाति जड़॥

(३) पुनि रघुपति सन जूझइ लागा। सर छाड़इ होइ लागहि नागा॥

पंचम विभावना

जहाँ विरुद्ध कारण से कार्य्य की उत्पत्ति लिखी हो, वहाँ पाँचवीं विभावना होती है। उदाहरण:—

(१) सेष सहस्र सीस जग कारन। जो अवतरेउ भूमि भय टारन॥

(२) विप्र वंस कै अस प्रभुताई। अभय होइ जो तुम्हहिं डेराई॥

(३) कुवलय विपिन कुन्त वन सरिसा। बारिद तप्त तेल जनु बरिसा॥
जेहि तरु रहत करत सोइ पीरा। उरग स्वास सम त्रिबिध समीरा॥

(४) नवतरु किसलय मनहु कृसानू। काल निसा सम निसि ससि भानू॥

(५) देखन कहँ प्रभु करुना कन्दा। प्रगट भये सब जलचर वृन्दा॥

(६) काटत ही पुनि भये नवीने। राम बहोरि भुजा सिर छीने॥

षष्ठ विभावना

जहाँ कार्य्य से कारण की उत्पत्ति लिखी हो, वहाँ छठवीं विभावना होती है। इसका उदाहरण गोस्वामी जी कृत ग्रन्थों में मुझे नहीं मिला। भूषण कवि ने यों लिखा है:—

अचरज भूषण मन बढ़यो श्री सिवराज खुमान।
तव कृपानु धुव धूम से भयो प्रताप कृसानु॥

(३५) विशेषोक्ति अलंकार

जहाँ कारण की विद्यमानता में भी कार्य्य की उत्पत्ति न हो, वहाँ विशेषोक्ति अलंकार होता है। उदाहरण:—

(१) काम कला कछु मुनिहिं न व्यापी। निज भय डरेउ मनोभव पापी॥
(२) राम लखन सिय बनहिं सिधाये। गइउँ न संग न प्रान पठाये॥
यह सब भा इन्ह आखिन्ह आगे। तउ न तजा तनु जीव अभागे॥
(३) देह दिनहुँ दिन दूबरि होई। घटै न तेज मुखबल छबि सोई॥
(४) मरत न मूढ़ कटेउ भुज सीसा। धाये कोपि भालु भट कीसा॥

(३६) असंभवालंकार

जहाँ अनहोनी बात का होना लिखा जाय, वहाँ असंभवालंकार होता है। उदाहरण:—

(१) मन हठि परा न सुनै सिखावा। चहत वारि पर भीति उठावा॥
(२) नारद कहा सत्य सोइ जाना। बिनु पंखन हम चहौं उड़ाना॥
(३) कैकइ सुअन कुटिल मति, राम विमुख गत लाज।
तुम चाहत सुख मोह बस, मोहिं से अधम के राज॥
(४) द्रवहिं वचन सुनि कुलिस पखाना। पुरजन प्रेम न जाइ बखाना॥
(५) सील सनेह सकल दुहुँ ओरा। द्रवहिं देखि सुनि कुलिस कठोरा॥

(३७) असंगति अलंकार

जहाँ कारण और कार्य्य में प्रतिकूलता की प्रतीति हो, वहाँ असंगति अलंकार होता है। इसके तीन भेद हैं।

प्रथम असंगति

जहाँ कारण कुछ हो और कार्य्य कुछ हो, वहाँ प्रथम असंगति होती है।

(१) रीझत राम सनेह निसोते। को जग मन्द मलिन मति मोते॥
(२) जिन वीथिन्ह बिहरहिं सब भाई। थकित होहिं सब लोग लुगाई॥
(३) और करै अपराध कोउ, और पाव फल भोग।
अति विचित्र भगवन्त गति, को जग जानइ जोग॥

द्वितीय असंगति

जहाँ कहीं करने योग्य कार्य्य कहीं किया जाय, वहाँ द्वितीय असंगति होती है। उदाहरण:—

(१) ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन पठये वन बालक ऐसे॥
(२) अस्तुति करि न जाय भय माना। जगतपिता मय सुत करि जाना॥
(३) फिरत नारि नर अति पछिताहीं। दैवहिं दोष देहिं मनमाहीं॥
(४) सुख सरूप रघुवंस मनि, मङ्गल मोद निधान।
ते सोवत कुस डासि महि, विधि गति अति बलवान॥
(५) तुलसी कृपा रघुवंस मनि की। लोह लै लौका तिरा॥

तृतीय असंगति

जहाँ जो काम करना अभीष्ट हो, वहाँ उसके विरुद्ध कार्य्य किया जाय, तो तीसरी असंगति होगी। उदाहरण:—

(१) राज देन कहँ सुभ दिन साधा। कहेउ जान बन केहि अपराधा।
(२) धरम हेतु अवतरेउ गोसाईं। मारेउ मोंहि व्याध की नाईं॥

(३८) विषमालंकार

जहाँ बेमेल वस्तुओं वा घटनाओं का वर्णन हो, वहाँ विषमालंकार होता है। तीन प्रकार की विषमता साहित्यिकों ने मानीं है।

प्रथम विषम

जहाँ अमिल वस्तुओं का एकत्रीकरण हो, वहाँ प्रथम विषम होता है।

उदाहरण:—

(१) राम सुस्वामि कुसेवक मोंसो। निज दिसि देखि दयानिधि पोसों।
(२) सुर समाज सब भाँति अनूपा। नहिं बरात दूलह अनुरूपा॥
(३) कोउ मुखहीन विपुल मुख काहू। बिनु पद कर कोउ बहु पद बाहू॥
विपुल नयन कोउ नयन विहीना। रिष्ट पुष्ट कोउ अतितनखीना॥
(४) भलेहिं मन्द मन्दहिं भल करहू। विस्मय हर्ष न कछु हिय धरहू॥
(५) कोउ कह संकर चाप कठोरा। ये स्यामल मृदु गात किसोरा॥

द्वितीय विषम

जहाँ कारण के विपरीत कार्य्य की उत्पत्ति हो, वहाँ द्वितीय विषम होता है।

उदाहरण:—

(१) सुनि मृदु वचन कुमति अति जरई। मनहुँ अनल आहुति घृत परई॥

(२) उपजे यदपि पुलस्त्य कुल, पावन अनल अनूप।
तदपि महीसुरस्रापबस, भये सकल अघरूप ॥
(३) स्याम सुरभि पय विसद अति, गुनद करहिं ते पान ॥
(४) बड़े समाज विलोकेउ भागू। बड़ी चूक साहिब अनुरागू ॥

तृतीय विषम

जहां भला उद्यम करने पर भी बुरे फल की प्राप्ति हो, वहां तृतीय विषम होता है। उदाहरण:—

(१) सीतल सिख दाहक भइ कैसे। चकइहिं सरद चांदनी जैसे ॥
(२) जारै जोग कपार अभागा। भलो कहत रौरहुँ दुख लागा ॥

(३९) समालंकार

जहां वस्तुओं का यथायोग्य संगत वर्णन हो, वहां समालंकार होता है। इसके भी तीन भेद हैं।

प्रथम सम

जहां कार्य्य और कारण अथवा किन्हीं वस्तुओं का ठीक ठीक सम्बन्ध बतलाकर दोनों का यथायोग्य वर्णन किया जाय, वहां प्रथम समालंकार होता है। उदाहरण:—

भल अनभल निज निज करतूती। लहहिं सुयस अपलोक विभूती ॥
सो फल मोहि विधाता दीन्हा। जो कछु उचित रहा सोइ कीन्हा ॥
जस दूलह तस बनी बराता। कौतुक विविध होंहि मग जाता ॥
गहि गिरीस कुस कन्या पानी। भवहिं समर्पी जानि भवानी ॥
तन अनुहरत सुचन्दन खोरी। स्यामल गौर मनोहर जोरी ॥
जेहि विरंचि रचि सीय संवारी। तेइ स्यामल वर रचेउ विचारी ॥

तू दयाल दीन हौं, तू दानि हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पापपुंजहारी ॥
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसो।
मो समान आरत, नहिं आरत-हर तोसो ॥

द्वितीय सम

जहां कार्य्य और कारण की समता का वर्णन हो, वहां द्वितीय समालंकार होता है। उदाहरण:—

थाती राखि न माँगेउ काऊ। बिसरि गयउ मोहि भोर सुभाऊ ॥
तात भरत अस काहे न कहहू। प्रान समान राम प्रिय अहहू ॥
यह तुम्हार आचरज न ताता। दसरथ सुअन राम प्रिय भ्राता ॥

ते रघुनन्दन लखन सिय, अनहित लागे जाहि।
तासु तनय तजि दुसह दुख, दैव सहावै काहि॥

तृतीय सम

जहाँ विना श्रम के ही उद्यम करते ही कार्य्य की सिद्धि हो जाय, वहाँ तृतीय समालंकार होता है। उदाहरण:—

छुअत टूट रघुपतिहिं न दोषू। मुनि बिनु काज करिय कत रोषू॥
छुअतहिं टूट पिनाक पुराना। मैं केहि हेतु करब अभिमाना॥
दुंदुभि अस्थि ताल दिखराये। बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाये॥
तुरत वैद्य तब कीन्ह उपाई। उठि बैठे लछुमन हरखाई॥

(४०) विचित्रालंकार

जहाँ किसी फल-प्राप्ति की इच्छा से उसके विपरीत प्रयत्न किया जाय, वहाँ विचित्रालंकार होता है। उदाहरण:—

निज कर नैन काढ़ि चह दीखा। डारि सुधा विष चाहत चीखा॥

(४१) अधिकालंकार

जहाँ आधार और आधेय के उत्कर्ष का वर्णन हो, वहाँ अधिकालंका होता है। इसके दो भेद हैं।

प्रथम अधिक

जहाँ आधार की अपेक्षा आधेय की उत्कृष्टता कही जाय, वहाँ प्रथम अधिक होता है। उदाहरण:—

भुवन चारि दस भरा उछाहू। जनक सुता रघुवीर विवाहू॥
नाऊ बारी भाट नट, राम निछावरि पाइ।
मुदित असीसहिं नाइ सिर, हरख न हृदय समाइ॥
राम सीय पथि कथा सुहाई। रही सकल मग कानन छाई॥

द्वितीय अधिक

जहाँ अत्यन्त लघु आधार में विस्तृत आधेय की कल्पना हो वहाँ द्वितीय अधिक होता है। उदाहरण:—

ब्रह्माण्ड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति वेद कहै।
व्यापक ब्रह्म निरञ्जन, निर्गुन विगत विनोद।
सो अज प्रेम-भगति बस, कौसल्या के गोद॥

(४२) अल्पालंकार

जहाँ आधेय की सूक्ष्मता से आधार की सूक्ष्मता दर्शायी जाय अथवा जहाँ आधार आधेय से छोटा सिद्ध हो, वहाँ अल्पालंकार होता है। उदाहरण:—

बरनि न जाइ मनोहर जोरी। सोभा बहुत मोर मति थोरी॥

(४३) अन्योन्यालंकार

जहाँ एक से दूसरे की मर्यादा अथवा शोभा की वृद्धि हो, वहाँ अन्योन्यालंकार होता है। उदाहरण:—

(१) भाइहिं भाइहिं परम समीती। सकल दोष छल बरजित प्रीती॥
(२) अगवानन्ह जब दीख बराता। उर आनंद पुलक भर गाता॥
देखि बनाव सहित अगवाना। मुदित बराती हने निसाना॥
(३) जानि कठिन सिव चाप बिसूरति। चली राखि उर स्यामल मूरति॥
प्रभु जब जात जानकी जानी। सुख सनेह सोभा गुन खानी॥
परम प्रेममय मृदु मसि कीन्ही। चारु चित्र भीतर लिखि लीन्ही॥
(४) पुनि वसिष्ठ पद तिन सिर नाये। प्रेम मुदित मुनिवर उर लाये॥
(५) बाल सखा सुनि हिय हरषाहीं। मिलि दस पांच राम पह जाहीं॥
प्रभु आदरहिं प्रेम पहिचानी। पूछहिं कुसल छेम मृदुबानी॥

(४४) विशेषालंकार

जहाँ एक वस्तु की अपेक्षा दूसरी में कुछ विशेषता कही जाय, वहाँ विशेषालंकार होता है। इस अलंकार के तीन भेद हैं।

प्रथम विशेष

जहाँ आधेय विना आधार के हो, वहाँ प्रथम विशेष होता है। उदाहरण:—

सुनि सिय विनय प्रेम रस सानी। भइ तब बिमल बारि बर बानी॥
भरत बचन सुनि माँझि त्रिबेनी। भइ मृदु बानि सुमंगल देनी॥
मूँदहु नैन विवर तजि जाहू। पैहहु सीतहिं जनि पछिताहू॥
नख आयुध गिरि पादप धारी। चले गगन महि इच्छा चारी॥
सर निवारि रिपु के सिर काटे। ते दिसि विदिसि गगन महँ पाटे॥

द्वितीय विशेष

जब अल्प आरम्भ की बहुत फलसिद्धि हो, वहाँ द्वितीय विशेष होता है। उदाहरण:—

नाथ देखि पद कमल तुम्हारे। अब पूजे सब काम हमारे॥

राम राम कहि तनु तजहिं, पावहिं तनु निर्वान।
करि उपाय रिपु मारेउ, छन महँ कृपानिधान॥
राम नारि जस पावन, गावहिं सुनहिं जे लोग।
राम भगति दृढ़ पावहिं, बिनु विराग जप जोग॥
कपि तब दरस भयेउ निष्पापा। मिटा तात मुनिवर कर सापा॥
सुनु खगपति यह कथा पावनी। त्रिबिध ताप भव भय दावनी॥
महाराज कर सुभ अभिषेका। सुनत लहहिं नर विरति विवेका॥

तृतीय विशेष

जहाँ एक ही वस्तु का कई स्थानों पर होना कथित हो, वहाँ तृतीय विशेष होता है। उदाहरण :—

(१) सती दीख कौतुक मग जाता। आगे राम सहित सिय भ्राता॥
फिरि चितवा पाछे प्रभु देखा। सहित बन्धु सिय सुन्दर वेखा॥
जहँ चितवहिं तहँ प्रभु आसीना। सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रवीना॥
(२) बहुरि मातु तहवाँ चलि आई। भोजन करत दीख सुत जाई॥
गइ जननी सिसु पहँ भयभीता। देखा बाल तहाँ पुनि सूता॥
बहुरि आइ देखा सुत सोई। हृदय कम्प मन धीर न होई॥
(३) सीय सासु प्रति वेस बनाई। सादर करइ सरिस सेवकाई॥
(४) मुनि समूह महँ बैठे, सन्मुख सब की ओर।
सरद इन्दु तन चितवत, मानहुँ निकर चकोर॥
(५) अस कपि एक न सेना माहीं। राम कुसल पूछी जेहिं नाहीं॥
यह कछु नहिं प्रभु की अधिकाई। विस्वरूप व्यापक रघुराई॥

(४५) व्याघातालंकार

जहाँ एक ही वर्णन में परस्पर विरोध पाया जाय वहाँ व्याघातालंकार होता है। इसके दो भेद हैं:—

प्रथम व्याघात

जहाँ एक ही वस्तु कई विरुद्ध कार्य्य करे, वहाँ प्रथम व्याघात होता है। उदाहरण:—

(१) नाम प्रभाव जान सिव नीके। कालकूट फल दीन्ह अमीके॥
(२) गिरिजा सुनहु राम की लीला। सुर हित दनुज बिमोहन सीला॥
(३) लखन सकोप बचन जब बोले। डगमगानि महि दिग्गज डोले॥
सकल लोक सब भूप डराने। सिय हिय हरष जनक सकुचाने॥
(४) राम चलत अति भयउ बिषादू। सुनि न जाय पुर आरत नादू॥
कुसगुन लंक अवध अति सोकू। हरष विषाद विवस सुर लोकू॥

(५) सुनत जनक आगवन सब, हरषेहु अवध समाज।
रघुनन्दनहिं सकोच बड़, सोच विवस सुर राज॥

द्वितीय व्याघात

जहाँ कई विरुद्ध क्रियाओं के हाथ, एक ही प्रकार के फल की प्राप्ति हो, वहाँ द्वितीय व्याघात होता है। उदाहरण:—

मिलत एक दारुण दुख देहीं। बिछुड़त एक प्रान हरि लेहीं॥

(४६) कारणमालाऽलंकार

जहाँ किसी कारण से कार्य्य की उत्पत्ति बतला कर, फिर उस कार्य्य को कारण मान कर उससे अन्य कार्य्य की उत्पत्ति बताई जाय, वहाँ कारणमालाऽलंकार होता है। इसीको 'गुम्फ' भी कहते हैं। उदाहरण:—

धर्म तें विरति योग तें ज्ञाना। ज्ञान मोक्ष-प्रद वेद बखाना॥
बिनु सत्संग न हरि कथा, तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गये बिनु राम पद, होय न दृढ़ अनुराग॥
बिनु विश्वास भगति नहिं, तेहि बिनु द्रवहिं न राम।
राम कृपा बिनु सपनेहुँ, जीव न लह बिस्राम॥

(४७) एकावली अलङ्कार

जहाँ कई पदों में परस्पर एक से दूसरे का और दूसरे से तीसरे का और तीसरे से चौथे का इसी क्रम से अनेक शब्दों का सम्बन्ध दिखलाया जाय, वहाँ एकावली अलंकार होता है। उदाहरण:—

विषय करन सुर जीव समेता। सकल एक तें एक सचेता॥
सब कर परम प्रकाशक जोई। राम अनादि अवधपति सोई॥

(४८) सारालंकार

जहाँ वर्णित वस्तुओं का उत्तरोत्तर उत्कर्ष अथवा अपकर्ष कथित हो, वहाँ सारालंकार होता है। उदाहरण:—

उत्कर्ष

सब मम प्रिय सब मम उपजाये। सबते अधिक मनुज मोहि भाये॥
तिन महँ द्विज द्विजमहँ श्रुतिधारी। तिन महँ निगम नीति अनुसारी॥
तिन महँ पुनि विरक्त पुनि ज्ञानी। ज्ञानिहुते अति प्रिय विज्ञानी॥
तिनतें मोहि अति प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा॥

अपकर्ष

कुटिल कठोर कुबुद्धि अभागी। भइ रघुबंस बेनु बन आगी॥
हम जड़ जीव जीव-गन घाती। कुटिल कुचाली कुमति कुजाती॥
अधम तें अधम अधम अति नारी। तिन मह मैं मतिमन्द अघारी॥
अवगुन मूल सूल प्रद, प्रमदा सब दुख खानि।
तातें कीन्ह निवारन, मुनि मैं यह जिय जानि॥

(४९) क्रमालंकार

जहाँ कई वस्तुओं का उल्लेख कर के क्रमशः उनके गुण, क्रिया आदि का वर्णन किया जाय, वहाँ क्रमालंकार होता है। इसीको 'यथासंख्य' भी कहते हैं। उदाहरण:—

जनि जल्पना करि सुजस नासहि नीति सुनहिं करहिं छमा।
संसार महँ पूरुष त्रिविध पाटल, रसाल, पनस समा॥
इक सुमनप्रद, इक सुमन फल, इक फलहिं केवल लागहीं।
इक कहहिं, कहहिं करहिं अपर, इक करहिं, कहत न बागहीं॥

कहीं कहीं इस 'क्रम' का भङ्ग भी होता है। जैसे:—

सचिव वैद्य गुरु तीनि जो, प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तनु तीन कर, होय वेगही नास॥

जहाँ वर्णन का क्रम ठीक उलट दिया गया हो, वहाँ विपरीत क्रम होता है। जैसे:—

राज नीति बिनु धन बिनु धर्मा। हरिहिं समर्पे बिनु सत कर्मा॥
बिद्या बिनु बिवेक उपजाये। स्रम फल किये पढ़े अरु पाये॥

(५०) पर्यायालंकार

जहाँ एक वस्तु का अनेक स्थानों में आश्रय ग्रहण करना लिखा जाय वहां पर्यायालंकार होता है। उदाहरण:—

मनि मानिक मुकता छबि जैसी। अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी॥
नृप किरीट तरुनी तनु पाई। लहहिं सकल सोभा अधिकाई॥

(५१) परिवृत्तालंकार

जहाँ किसी वस्तु के बदले में दूसरी वस्तु का लेन देन वर्णन किया जाय, वहां परिवृत्तालंकार होता है। इसीको 'विनिमय' भी कहते हैं। उदाहरण:—

(१) सेवा सुमिरन पूजिबो पाथ आखत थोरे।
दिये सबै जहँ लौं जगत सुख गज रथ घोरे॥

(२) तारा बिकल देखि रघुराया। दीन्ह ग्यान हरि लीन्हीं माया॥

(३) मातु मोहि दीजै कछु चीन्हा। जैसे रघुनायक मोहि दीन्हा॥
चूड़ामनि उतारि तिनि दयेऊ। हरष समेत पवन सुत लयेऊ॥

(५२) परिसंख्यालंकार

जहाँ किसी वस्तु का धर्म अथवा गुण उसके उपयुक्त स्थान से हटा कर, उसी शब्द को दूसरे अर्थ में प्रयुक्त कर उसके गुण का अन्य स्थान में कथन किया जाय, वहां परिसंख्यालंकार होता है। उदाहरण—

दण्ड जतिन्ह कर भेद जहँ, नर्त्तक नृत्य समाज।
जीतौ मनसिज सुनिय अस, रामचन्द्र के राज॥

(५३) विकल्पालंकार

जहाँ किसी एक प्रकार का वर्णन करके ऐसा कथन किया जाय कि यह न होगा तो ऐसा होगा, वहाँ विकल्पालंकार होता है। उदाहरण:—

जनम कोटि लगि रगरि हमारी। बरउं सम्भु नतु रहउं कुमारी॥
देइहउं साप कि मरिहउं जाई। जगत मोरि उपहास कराई॥
यह प्रगटे अथवा द्विज सापा। नास तोर सुनु भानु प्रतापा॥
करु परितोष मोर संग्रामा। नाहित छाडु कहाउब रामा॥
देहु कि लेहु अजस करि नाहीं। मोहि न अधिक प्रपंच सुहाहीं॥

(५४) समुच्चयालंकार

जहाँ बहुत भावों का एक साथ ही प्रकटीकरण हो, वहाँ समुच्चयालंकार होता है। इसके दो भेद हैं।

प्रथम समुच्चय

जहाँ एक साथ ही बहुत भावों का उद्दीपन हो, वहाँ प्रथम समुच्चय होता है। उदाहरण:—

चकित चितै मुदरी पहिचानी। हरष विषाद हृदय अकुलानी॥
तेहि अवसर कर हरष विषादू। किमि कवि कहइ मूक जिमि स्वादू॥

द्वितीय समुच्चय

जहाँ किसी कार्य्य के एक हेतु की विद्यमानता में अन्य अनेक हेतु आनकर उपस्थित हो जायँ, वहाँ द्वितीय समुच्चय होता है। उदाहरण:—

खेद खिन्न छुद्धित तृषित, राजा बाजि समेत।
खोजत ब्याकुल सरित सर, जल बिनु भयेउ अचेत॥
ग्रह ग्रहीत पुनि बात बस, तापर बीछी मार।
ताहि पियाइये बारुणी, कहहु कवन उपचार॥
मुनिगन मिलन बिसेष बन, सबहिं भांति हित मोर।
तेहि मँह पितु आयसु बहुरि, सम्मत जननी तोर॥

(५५) समाधि-अलंकार

जहाँ किसी कार्य के करने में संयोगवश कोई अन्य अनुकूल कारण उपस्थित हो जाय, जिससे कार्यसम्पादन में सुगमता हो, वहाँ समाधि-अलंकार होता है। उदाहरण:—

(१) भूप भरत पुनि लिये बोलाई। हय गज स्यन्दन साजहु जाई॥
चलहु बेगि रघुबीर बराता। सुनत पुलक पूरे दोउ भ्राता॥
(२) सुमिरि गजानन कीन्ह पयाना। मंगल मूल सगुन भये नाना॥
(३) लोग सोग स्रम बस गये सोई। कछुक देव माया मति मोई॥
(४) बचन सुनत कपि मन हरषाना। भइ सहाय सारद मैं जाना॥

(५६) प्रत्यनीकालंकार

जहाँ शत्रुपक्ष से विरोध और मित्र पक्ष से प्रीति करने का वर्णन किया जाय, वहाँ प्रत्यनीकालङ्कार होता है। उदाहरण:—

रावन दूत हमहिं सुनि काना। कपिन्ह बान्हि दीन्हें दुख नाना॥
हरिजन जानि प्रीति अति बाढ़ी। सजल नयन पुलकावलि ठाढ़ी॥
चलत मोहि चूड़ामनि दीन्हीं। रघुपति हृदय लाय सोइ लीन्हीं॥

(५७) काव्य अर्थापत्ति-अलङ्कार

जहाँ काव्य में अर्थापत्ति के द्वारा अकथित अर्थ का अध्याहार किया जाय, वहाँ काव्य अर्थापत्ति-अलङ्कार होता है। उदाहरण:—

जेहि मारुत गिरि मेरु उड़ाहीं। कहहु तूल केहि लेखे माहीं॥
उर अनुभव तिन कहि सक सोऊ। कवन प्रकार कहै कवि कोऊ॥
तव प्रताप महिमा भगवाना। का बापुरो पिनाक पुराना॥
पसु खग मृगन्ह न कीन्ह अहारा। प्रिय परिजन कर कवन बिचारा॥
जितेहु सुरासुर तब श्रम नाहीं। नर बानर केहि लेखे माहीं॥
सब सुर जिते एक दसकन्धर। अब बहु भये तकहु गिरि कन्दर॥

(५८) काव्यलिंगालंकार

जहाँ किसी कही हुई बात का स्पष्ट हेतु अथवा प्रमाण देकर समर्थन किया जाय, वहाँ काव्यलिंगालंकार होता है। उदाहरण:—

(१) एक छत्र एक मुकुट मनि, सब बरनन पर जोउ।
तुलसी रघुवर नाम के, वरन विराजत दोउ॥

(२) रचि महेस निज मानस राखा। पाय सुसमउ सिवासन भाखा॥
ताते रामचरित मानस वर। धरेउ नाम हिय हेरि हरषि हर॥

(३) आदि सृष्टि उपजी जबहिं, तब उत्पति भइ मोरि।
नाम एक तनु हेतु तेहि, देह न धरी बहोरि॥

(४) बाग तड़ाग बिलोकि प्रभु, हरषे बन्धु समेत।
परम रम्य आराम यह, जो रामहिं सुख देत॥

(५) मन तहँ जहँ रघुवर बैदेही। बिनु मनतन दुख सुख सुधि केही॥

(५९) अर्थान्तरन्यासालंकार

जहाँ किसी सामान्य बात का विशेष बात कह कर समर्थन किया जाय अथवा किसी विशेष बात का सामान्य बात कह कर समर्थन किया जाय, वहाँ अर्थान्तरन्यास-अलंकार होता है। उदाहरण:—

(१) सठ सेवक की प्रीति रुचि, रखिहहिं राम कृपालु।
उपल किये जलजान जेहि, सचिव सुमति कपि भालु॥

(२) प्रभु तरुतर कपि डारपर, ते किय आपु समान।
तुलसी कहीं न राम से, साहब सील निधान॥

(३) बड़ अधिकार दच्छ जब पावा। अति अभिमान हृदय तब आवा॥
नहिं कोउ अस जनमा जग मांहीं। प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं॥

(४) पाछिल दुख न हृदय अस ब्यापा। जस यह भयेउ महा परितापा॥
यद्यपि जग दारुण दुख नाना। सबते कठिन जाति अपमाना॥

(५) तदपि करब मैं काज तुम्हारा। स्रुति कह परम धरम उपकारा॥
परहित लागि तजै जो देही। सन्तत सन्त प्रसंसहिं तेही॥

(६) सुनु नृप जासु विमुख पछिताहीं। जासु भजन बिनु जरनि न जाहीं॥
भयेउ तुम्हार तनय सोइ स्वामी। राम पुनीत प्रेम अनुगामी॥

(६०) विकस्वरालङ्कार

जहाँ कोई विशेष बात कह कर उसके समर्थन के निमित्त साधारण बात कही जाय और पुनः उसका समर्थन भी विशेष उदाहरण के द्वारा किया जाय, वहाँ विकस्वरा अलंकार होता है। उदाहरण:—

(१) भानु कमल कुल पोषनि हारा। बिनु जल जारि करइ सोइ छारा॥
जरि तुम्हारि चह सवति उखारी। रूंधहु करि उपाय बड़ बारी॥
(२) गुरु पितु मातु बन्धु सुरसाईं। सेइये सकल प्रान की नाईं॥
राम प्रान प्रिय जीवन जीके। स्वारथ रहित सखा सबही के॥
पूजनीय प्रिय परम जहाँ ते। मानिय सबहिं राम के नाते॥
अस जिय जानि संग बन जाहू। लेहु तात जग जीवन लाहू॥
(३) प्रभु भल कीन्ह मोहि सिख दीन्हीं। मरजादा पुनि तुम्हरिय कीन्हीं॥
ढ़ोल गँवार सुद्र पसु नारी। ये सब ताड़न के अधिकारी॥
(४) सब मम प्रिय नहिं तुमहिं समाना। मृषा न कहहुँ मोर यह बाना॥
सबके प्रिय सेवक यह नीती। मोरे अधिक दास पर प्रीती॥

(६१) प्रौढ़ोक्ति-अलङ्कार

जहाँ उत्कर्ष का ऐसा हेतु कल्पित किया जाय जो वास्तव में उसका कारण नहीं है, वहाँ प्रौढ़ोक्ति-अलंकार होता है। उदाहरण—

(१) उर मनि माल कंबु कल ग्रीवा। काम कलभ कर भुजबल सींवा।
(२) कंकन किंकिनि नूपुर बाजहिं। चाल बिलोकि काम गज लाजहि॥
(३) चन्द चवइ बरु अनल कन, सुधा होय विष तूल।
सपनेहुँ कबहुँ कि करहिं कछु, भरत राम प्रतिकूल॥

(६२) संभावनाऽलङ्कार

जहाँ कहीं संभावनामय वर्णन हो—अर्थात् यदि ऐसा हो तो इस प्रकार की घटना हो सकती है—कहा जाय, वहाँ संभावनाऽलंकार होता है। उदाहरण:—

(१) सब सन कहा बुझाइ बिधि, दनुज निधन तब होइ।
सम्भु-शुक्र-सम्भूत सुत, येहि जीते रन सोइ॥
(२) जो छबि सुधा पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छप सोई॥
सोभा रजु मन्दर सिंगारू। मथै पानि पंकज निज मारू॥
येहि बिधि उपजै लच्छि जब, सुन्दरता सुख मूल।
तदपि सकोच समेत कवि, कहहिं सीय सम तूल॥
(३) जो तुम अवतेहु मुनि की नाईं। पद रज सिर सिसु धरत गुसाईं॥
(४) रामहिं तिलक काल्हि जो भयेऊ। तुम कहँ विपति बीज बिधि बयेऊ॥
(५) होत प्रात मुनि वेस धरि, जौ न राम बन जाहिं।
मोर मरन राउर अजस, नृप समुझिय मन माहिं॥

(६३) मिथ्याध्यवसितालङ्कार

जहाँ मिथ्या बात को भी सत्य मान लिया जाय, वहाँ मिथ्याध्यवसितालंकार होता है। उदाहरण:—

परी न राजहिं नींद निसि, हेतु जान जगदीस।
राम राम रटि भोर किय, कहइ न मरम महीस॥

(६४) ललितालङ्कार

जहाँ वर्ण्य विषय को स्पष्ट न कह कर उसका प्रतिबिम्ब मात्र कथन किया जाय, वहाँ ललितालङ्कार होता है। उदाहरण:—

सोचहिं दूषन दैवहिं देहीं। विरचत हंस काक किय जेही॥
पुनि पुनि मोहि देखाव कुठारू। चहत उड़ावन फूँकि पहारू॥
तिन्ह कहँ कहिय नाथ किमि चीन्हे। देखिय रवि कि दीप कर लीन्हे॥
सुनि सुर विनय ठाढ़ि पछिताती। भयेउ सरोज विपिन हिम राती॥
रेखा खैंचि कहौं बल भाखी। भामिनि भइहु दूध की माखी॥
प्रभु करुनामय परम विवेकी। तनु तजि छाँह रहत किमि छेकी॥

(६५) प्रहर्षणालङ्कार

जहाँ ईप्सित आनन्द की प्राप्ति का वर्णन हो, वहाँ प्रहर्षण-अलङ्कार होता है। इसके तीन भेद हैं।

प्रथम प्रहर्षण

जहाँ विना यत्न के ही मनोरथ की सिद्धि हो, वहाँ प्रथम प्रहर्षण होता है। उदाहरण:—

(१) यहि भाँति सिधारी गौतम नारी बार बार हरि चरन परी।
जो अति मन भावा सो वर पावा गइ पति लोक अनन्द भरी॥
(२) कहेउ भूप जिमि भयेउ विवाहू। सुनि सुनि हरष होय सब काहू॥
(३) नाथ सकल मैं साधन हीना। कीन्हीं कृपा जानि जन दीना॥
(४) सोचत पन्थ रहेउ दिन राती। अब प्रभु देखि जुड़ानी छाती॥

द्वितीय प्रहर्षण

जहाँ इच्छा से भी अधिक फल की प्राप्ति हो, वहाँ द्वितीय प्रहर्षण होता है। उदाहरण:—

(१) इच्छा मय नर वेष सँवारे। होइहउँ प्रगट निकेत तुम्हारे॥
अंसन्ह सहित देह धरि ताता। करिहउँ चरित भगत सुख दाता॥

(२) धरहु धीर होइहहिं सुत चारी । त्रिभुवन विदित भगत भय हारी ॥
(३) सुनत बचन बिसरे सब दूषा । तृषावन्त जिमि पाइ पियूषा ॥

तृतीय प्रहर्षण

जहाँ यत्न के विचार करते ही पूर्ण फल की प्राप्ति हो जाय, वहाँ तृतीय प्रहर्षण होता है । उदाहरण:—

यहि बिधि मन विचार कर राजा । आय गये कपि सहित समाजा ॥

(६६) विषादनालङ्कार

जहाँ इच्छा के विरुद्ध फल की प्राप्ति हो, वहाँ विषादनालंकार होता है । उदाहरण:—

एक विधातहिं दूषन देहीं । सुधा दिखाय दीन्ह बिष जेहीं ॥
लिखत सुधाकर लिखिगा राहू । बिधि गति वाम सदा सब काहू ॥
कहहिं परस्पर पुर नरनारी । भलि बनाइ बिधि बात बिगारी ॥

(६७) उल्लासालङ्कार

जहाँ किसी के गुण और दोष का आविर्भाव दूसरे में हो, वहाँ उल्लासालंकार होता है । इसके चार भेद हैं ।

प्रथमोल्लास

जहाँ एक के गुण से दूसरा गुणवान हो, वहाँ प्रथमोल्लास होता है । उदाहरण:—

मज्जन फल देखिय तत्काला । काक होहिं पिक बकहु मराला ॥
नाम जीह जपि जागहिं जोगी । बिरति बिरंचि प्रपंच बियोगी ॥
नाथ कुशल पद पंकज देखे । भयउँ भाग्य भाजन जन लेखे ॥
जब ते आय रहे रघुनायक । तब ते भा बन मंगल दायक ॥
सठ सुधरहिं सत्संगति पाई । पारस परसि कुधातु सुहाई ॥

द्वितीय उल्लास

जहाँ एक के दोष से दूसरा दोषयुक्त हो, वहाँ दूसरा उल्लास होता है । उदाहरण:—

चलत दसानन डोलत अवनी । गरजत गर्भ स्रवहिं सुर रवनी ॥
राम भगत परहित निरत, पर दुख दुखी दयाल ।
भगत सिरोमनि भरत ते, जनि डरपहु सुरपाल ॥
सीता के विलाप सुनि भारी । भयेउ चराचर जीव दुखारी ॥

निज पद नयन दिये मन, राम चरन महँ लीन।
परम दुखी भा पवन सुत, देखि जानकी दीन॥

तृतीय उल्लास

जहाँ एक के गुण से दूसरे में दोष का आगमन दिखलाया जाय, वहाँ तृतीय उल्लास होता है। उदाहरण :—

(१) दीख मन्थरा नगर बनावा। मंजुल मंगल बाज बधावा॥
पूछेसि लोगन्ह काह उछाहू। राम तिलक सुनि भा उर दाहू॥
(२) सब कोउ राम प्रेम मय देखा। भये अलेख सोच बस लेखा॥
(३) काटे सिर भुज बार बहु, मरत न भट लंकेस।
प्रभु क्रीड़त सुर सिद्ध मुनि, व्याकुल देखि कलेस॥
(४) आक जवास पात बिनु भयेऊ। जस सुराज खल उद्यम गयेऊ॥

चतुर्थ उल्लास

जहाँ एक के अवगुण से दूसरे में गुण का आगमन दिखलाया जाय, वहाँ चतुर्थ उल्लास होता है। उदाहरण :—

(१) खल परिहास होय हित मोरा। काक कहहिं कल कण्ठ कठोरा॥
(२) पर हित हानि लाभ जिन केरे। उजरे हर्ष बिषाद बसेरे॥
(३) खलन हृदय अति ताप बिसेखी। जरहिं सदा पर सम्पति देखी॥

(६८) अवज्ञाऽलङ्कार

जहाँ एक के गुण और दोष का प्रभाव दूसरे पर न हो, वहाँ अवज्ञाऽलंकार होता है। यह अलंकार उल्लासालंकार के विपरीत है। इसके दो भेद हैं।

प्रथम अवज्ञा

जहाँ एक के गुण का प्रभाव दूसरे पर न हो, वहाँ प्रथम अवज्ञा होती है। उदाहरण:—

निज गुन घटत न नाग नग, हरषि न पहिरत कोल।
तुलसी प्रभु भूषण धरे, गुञ्जा बढ़त न मोल॥

द्वितीय-अवज्ञा

जहाँ एक के दोष का प्रभाव दूसरे पर न हो, वहाँ द्वितीय अवज्ञा होती है। उदाहरण:—

तुलसी देवल देव को, लागै लाख करोर।
काग अभागे हगि भरे, महिमा होति न थोर॥

(६९) अनुज्ञाऽलङ्कार

जहाँ नहीं स्वीकार करने योग्य बात का स्वीकरण प्रदर्शित किया जाय, वहाँ अनुज्ञाऽलंकार होता है। उदाहरण:—

(१) फिरत अहेरे परेउ भुलाई। बड़े भाग देखेउ पद आई॥
(२) मुनि साप जो दीन्हा, अति भल कीन्हा, परम अनुग्रह मैं माना॥
देखेउ भरि लोचन, हरि भव मोचन, इहइ लाभ संकर जाना॥
(३) रामहिं चितव सुरेस सुजाना। गौतम साप परम हित माना॥
(४) सब दुख दुसह सहावहु मोहीं। लोचन ओट राम जनि होहीं॥
(५) कोल किरात कुरङ्ग बिहंगा। मोहि सब सुखद प्रानपति संगा॥
(६) बरु भल बास नरक कर ताता। दुष्ट संग जनि देहि विधाता॥

(७०) तिरस्कारालङ्कार

जहाँ दोषविशेष का अवलोकन कर आदरणीय का भी परित्याग किया जाय, वहाँ तिरस्कारालंकार होता है। उदाहरण:—

मैं पां परउँ कहइ जगदम्बा। तुम गृह गवनहु भयउ बिलम्बा॥
अब तोहि नीक लाग करु सोई। लोचन ओट बैठु मुँह गोई॥
सो सुख धर्म कर्म जरि जाऊ। जहँ न राम पद पंकज भाऊ॥
भयेउ विकल बरनत इतिहासा। राम रहित धिक जीवन आसा॥
तुम बिनु राम सकल सुख साजा। नरक सरिस दुहुं राज समाजा॥

(७१) लेशालङ्कार

जहाँ दोष को गुण अथवा गुण को दोष माना जाय, वहाँ लेशालंकार होता है। उदाहरण:—

जो बिवाह संकर सन होई। दोषउ गुन सम कह सब कोई॥
गुनहु लखन कर हम पर रोषू। कतहुं सुधाइहुँ ते बड दोषू॥
जियत राम बिधु बदन निहारी। राम बिरह मरि मरन सँवारी॥
कृपा भलाई आपनी, नाथ कीन्ह भल मोर।
दूषन भे भूषन सरिस, सुजस चारु चहुं ओर॥

(७२) मुद्राऽलङ्कार

जहाँ पदों से प्रस्तुत अर्थ के अतिरिक्त अन्य अर्थ का भी द्योतन हो, वहाँ मुद्राऽलंकार होता है। उदाहरण:—

सहस नाम मुनि भनित सुनि, तुलसी वल्लभ नाम।
सकुचति हिय हंसि निरखि सिय, धर्म धुरंधर राम॥

(७३) रत्नावली-अलङ्कार

जहाँ कोई शब्द प्रकरणानुकूल प्रस्तुतार्थ के अतिरिक्त और किसी नाम का द्योतन करे, वहाँ रत्नावली-अलंकार होता है। उदाहरण:—

तुलसीदास जी कृत ग्रन्थों में मुझे कोई उदाहरण इस अलंकार का स्मरण नहीं आया।

"रसिक चतुरमुख लच्छिपति, सकल ज्ञान के धाम"

यहाँ किसी रसिक की प्रशंसा में कहा गया है कि आप चतुरों में मुख्य और लक्ष्मीवान हैं। इसके अतिरिक्त इस पद्य में चतुर्मुख शब्द से ब्रह्मा और लच्छिपति से विष्णु के भी नाम निकलते हैं।

(७४) तद्गुणालङ्कार

जहाँ अपने गुण का परित्याग और संसर्गी के गुण का ग्रहण दिखलाया जाय, वहाँ तद्गुणालंकार होता है। उदाहरण:—

धूमउ तजै सरस करुआई। अगर प्रसंग सुगंध बसाई॥

(७५) अतद्गुणालङ्कार

जहाँ संसर्गी के गुणों का ग्रहण न होकर अपने ही गुणों में पूर्ण रहना दिखलाया जाय, वहाँ अतद्गुणालंकार होता है। उदाहरण:—

बिधि बस सुजन कुसंगति परहीं। फनिमनि सम निज गुन अनुसरहीं॥
अहि अघ अवगुन नहिं मनि गहई। हरै गरल दुख दारिद दहई॥
तुलसी चन्दन बिटप बसि, बिष नहिं तजत भुजंग।

(७६) पूर्वरूपालङ्कार

जहाँ संसर्ग से किसी में संसर्गी का गुण क्षणिक रूप से आवे और फिर उसका तिरोभाव हो जाय, वहाँ पूर्व-रूपालंकार होता है। उदाहरण:—

खलउ करहिं भल पाइ सुसंगू। मिटइ न मलिन सुभाउ अभंगू॥
केस मुकुत सखि मरकत मनि मय होत।
हाथ लेत पुनि मुकता करत उदोत॥

(७७) अनुगुणालङ्कार

जहाँ संसर्ग से अपने गुण की और भी वृद्धि हो जाय, वहाँ अनुगुणालंकार होता है। उदाहरण:—

मनि मानिक मुकता छबि जैसी। अहिगिरि गजसिरसोह न तैसी॥

नृप किरीट तरुनी तनु पाई। लहहिं सकल सोभा अधिकाई॥
चंपक हरबा अँग मिलि अधिक सुहाय।
जानि परै सिय हियरे जब कुम्हलाय॥

(७८) मीलितालङ्कार

जहाँ दो वस्तुओं के मिलने से परस्पर एक रूप हो जाय और भेद नहीं जाना जाय, वहाँ मीलितालंकार होता है। उदाहरण:—

(१) सुनि मुनि गिरा सत्य जिय जानी। दुख दम्पतिहिं उमा हरखानी॥
नारदहूँ यह भेद न जाना। दसा एक समुझत बिलगाना॥
(२) बेनु हरित मनिमय सब कीन्हें। सरल सपरन परहिं नहिं चीन्हें॥
कनक कलित अहिबेलि बनाई। लखि नहिं परइ सपरन सुहाई॥

(७९) उन्मीलितालङ्कार

जहाँ मीलित में कुछ कारण पाकर किञ्चित् भेद कथन किया जाय, वहाँ उन्मीलितालंकार होता है। उदाहरण:—

सम प्रकास तम पाख दुहुँ, नाम भेद विधि कीन्ह।
ससि सोषक पोषक समुझि, जग जस अपजस दीन्ह॥
चंपक हरबा अंग मिलि अधिक सोहाय।
जानि परै सिय हियरे जब कुम्हलाय॥
सम सुबरन सुखमा कर सुखद न थोर।
सीय अंग सखि कोमल, कनक कठोर॥

(८०) सामान्यालङ्कार

जहाँ दो वस्तुओं का एक आकार होने से दोनों में भेद नहीं जान पड़े, वहाँ सामान्यालंकार होता है। उदाहरण:—

भरत राम एकै अनुहारी। सहसा लखि न सकैं नर नारी॥
लखन सत्रुसूदन एक रूपा। नख सिख तें सब अंग अनूपा॥
बय बपु बरन रूप सोइ आली। सील सनेह सरिस सम चाली॥
निज प्रतिबिम्ब राखि तहँ सीता। तैसइ सील रूप सुबिनीता॥

(८१) विशेषालङ्कार

जहाँ सामान्य में किसी कारण से कुछ भेद बतलाया जाय, वहाँ विशेषालंकार होता है। उदाहरण:—

(१) सत्यनाथ पद गहि नृप भाखा। द्विज गुरु कोप कहहु को राखा॥

राखइ गुरु जौं कोप बिधाता। गुरु बिरोध नहिं कोउ जग त्राता॥
(२) चारिउ सील रूप गुन धामा। तदपि अधिक सुख सागर रामा॥
(३) सब सुत प्रिय मोहि प्रान कि नाईं। राम देत नहिं बनइ गुसाईं॥

(८२) विशेषकोन्मीलित-अलङ्कार

जहाँ विशेषक और उन्मीलित दोनों का मेल पाया जाय, वहाँ विशेष कोन्मीलित अलंकार होता है। उदाहरण:—

बय बपु बरन रूप सोइ आली। सील सनेह सरिस सम चाली॥
बेष न सो सखि तीय न संगा। आगे अनी चली चतुरंगा॥

(८३) गूढ़ोत्तरालङ्कार

जहाँ कुछ गूढ़ अभिप्राय के साथ उत्तर का वर्णन किया जाय, वहाँ गूढ़ोत्तरालंकार होता है। कहीं तो पद्य में ही प्रश्न उपस्थित रहता है। और कहीं केवल उत्तर रहनेसे प्रश्न की कल्पना अध्याहार रूपेण की जाती है।

(१) सहज सुभाय सुभग तनु गोरे। नाम लखन लघु देवर मोरे॥
(२) मुनि पूछब कछु यह बड़ सोचू। बोले रिषि लखि सील सकोचू॥
सुनहु भरत हम सब सुधि पाई। बिधि करतब पर कछु न बसाई॥
(३) यहाँ हरी निसिचर बैदेही। विप्र फिरहिं हम खोजत तेही॥
आपन चरित कहा हम गाई। कहहु विप्र निज कथा बुझाई॥
(४) विकल होसि तैं कपि के मारे। तब जानेसु निसिचर संहारे॥
(५) नर बानरहिं संग कहु कैसे। कही कथा भइ संगति जैसे॥

(८४) चित्रोत्तरालङ्कार

जहाँ किसी प्रश्न का उत्तर प्रश्न अथवा उसी पद्य में हो वहाँ चित्रोत्तरालङ्कार होता है। उदाहरण:—

पूछेहु मोहि कि रहउँ कहँ, मैं पूछत सकुचाउँ।
जहँ न होहु तहँ देहु कहि, तुम्हहिं देखावहु ठाउँ॥
भेंटि कुसल बूझी मुनि राया। हमरी कुशल तुम्हारहिं दाया॥

(८५) सूक्ष्मालङ्कार

जहाँ इङ्गित करने से ही अभिप्राय जाना जाय, वहाँ सूक्ष्मालङ्कार होता है। उदाहरण:—

(१) सीतहिं सभय देखि रघुराई। कहा अनुज सन सैन बुझाई॥

लछिमन अति लाघव सों, नाक कान बिनु कीन्ह।
ताके कर रावन कहँ, मनहुँ चुनौती दीन्ह॥
(२) गौतम तिय गति सुरति करि, नहिं परसति पद पानि।
मन बिहँसे रघुबंस मनि, प्रीति अलौकिक जानि॥
(३) सुनि केवट के बैन, प्रेम लपेटे अटपटे।
बिहँसे करुना अयन, चितइ जानकी लखन तन॥

(८६) पिहितालङ्कार

जहाँ कोई अपना वृत्त छिपाना चाहे, परन्तु उसके प्रकट हो जाने का वर्णन किया जाय, वहाँ पिहितालंकार होता है। उदाहरण:—

(१) कहेउ बहोरि कहाँ वृष केतू। बिपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू॥
(२) तब संकर देखेउ धरि ध्याना। सती जो कीन्ह चरित सब जाना॥
(३) कहति न सीय सकुचि मनमाँही। यहाँ बसब रजनी भल नाहीं॥
लखि रुख रानि जनायेउ राऊ। हृदय सराहत सील स्वभाऊ॥

(८७) व्याजोक्ति-अलङ्कार

जहाँ कोई बात स्पष्ट न कह कर किसी बहाने से कही जाय वहाँ व्याजोक्ति-अलंकार होता है। उदाहरण:—

(१) धरि धीरज इक सखी सयानी। सीता सन बोली मृदु बानी॥
बहुरि गौरि कर ध्यान धरेहू। भूप किसोर देखि किन लेहू॥
(२) सिय मुख छबि बिधु व्याज बखानी। गुरु पहँ चले निसा बड़ि जानी॥
(३) कपि बल देखि सकल हिय हारे। उठा आपु कपि के परचारे॥
गहत चरन कह बालि कुमारा। मम पद गहे न तोर उबारा॥

(८८) गूढोक्ति-अलङ्कार

जो बात किसी अन्य की सूचना के उद्देश्य से किसी अन्य से कही जाय, वहाँ गूढोक्ति-अलंकार होता है। उदाहरण:—

(१) पर बस सखिन्ह लखी जब सीता। भयेउ गहरु सब कहहिं सभीता॥
पुनि आउब यहि बिरियां काली। अस कहि मन बिहँसी इक आली॥
(२) अंगद नाम बालि कर बेटा। तासन तोहि भई रहि भेंटा॥

(८९) विवृतोक्ति-अलङ्कार

जहाँ किसी गुप्त अर्थ को कवि स्वयं अपने कथन से उद्घाटित कर दे, वहाँ विवृतोक्ति-अलंकार होता है। विशेष कर यह अलंकार श्लिष्ट शब्दों द्वारा प्रकट किया जाता है, परन्तु यह नियम कोई अनिवार्य नहीं है। उदाहरण:—

जानि प्रिया अति आदर कीन्हा। वाम भाग आसन हर दीन्हा।
कपट बोरि बानी मृदुल, बोलेउ जुगुति समेत।
नाम हमार भिखारि अब, निरधन रहित निकेत॥
बिप्र साप बिनु सुनु महिपाला। तोर नास नहिं कवनेहु काला॥
वेगि बिलम्ब न करिय नृप, साजिय सबै समाज।
सुदिन सुमंगल तबहिं जब, राम होहिं युवराज॥

(९०) युक्ति-अलङ्कार

जहाँ युक्ति द्वारा किसी मर्म की बात को छिपाने वा जतलाने के अभिप्राय से कोई क्रिया की जाय, वहाँ युक्ति-अलंकार होता है। उदाहरण:—

(१) वेद नाम कहि अंगुरिन खंडि अकास।
पठयो सूपनखाहिं लखन के पास॥
(२) पुनि पुनि हृदय बिचार करि, धरि सीता कर रूप।
आगे होइ चलि पन्थ तेहि, जेहि आवत नर भूप॥
(३) बहुरि बदन बिधु अंचल ढाँकी। पिय तन चितै भौंह करि बाँकी॥
खंजन मञ्जु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहिं सिय सयननि॥
(४) मेली कंठ सुमन कै माला। पठवा पुनि बल देइ बिसाला॥

(९१) लोकोक्ति-अलङ्कार

जहाँ किसी प्रसंग के कथन में उसके स्पष्टीकरण के निमित्त लोकप्रचलित बात कही जाय, वहाँ लोकोक्ति-अलङ्कार होता है। उदाहरण:—

मति अति नीच ऊंचि रुचि आछी। चहिय अमिय जग जुरइ न छाछी॥
कह मुनीस हिमवन्त सुनु, जो बिधि लिखा लिलार।
देव दनुज नरनाग मुनि, कोउ नहिं मेटनिहार॥
महादेव अवगुन भवन, विष्णु सकल गुन धाम।
जेहिकर मन रम जाहि सन, तेहि तेही सन काम॥
भले भवन अब बायन दीन्हा। पावहुगे फल आपन कीन्हा॥
तजहु आस निज निज गृह जाहू। लिखा न बिधि बैदेहि बिबाहू॥
इहाँ कुम्हड़-बतिया कोउ नाहीं। जे तरजनी देखि मरि जाहीं॥
तजउँ प्रान रघुनाथ निहोरे। दुहूं हाथ मुद मोदक मोरे॥
करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फल चाखा॥
सकुचउँ तात कहत इक बाता। अरध तजहिं बुध सरबस जाता॥
बिनय न मानत जलधि जड़, गये तीनि दिन बीति।
बोले राम सकोप तब, भय बिनु होय न प्रीति॥
रे कपि अधम मरन अब चहसी। छोटे बदन बात बड़ि कहसी॥

(६२) छेकोक्ति-अलङ्कार

जहाँ लोकोक्ति का प्रयोग अभिप्राय युक्त किया जाय, वहाँ छेकोक्ति-अलंकार होता है। उदाहरण:—

(१) सूर समर करनी करहिं, करहि न जनावहिं आपु।
विद्यमान रन पाइरिपु, कायर करहिं प्रलापु॥
(२) सत्य सराहि कहेउ बर देना। जानेहु लेइहि माँगि चबेना॥
(३) जो नहिं मानहु बचन हमारे। नहिं लागिहिं कछु हाथ तुम्हारे॥
(४) कछु तेहिते पुनि मैं नहिं राखा। खग जानै खगही की भाखा॥

(६३) स्वभावोक्ति-अलङ्कार

जहाँ किसी के स्वाभाविक गुण, दशा, व्यवहार और प्राकृतिक कृत्य अथवा क्रिया इत्यादि का स्वाभाविक वर्णन हो, वहाँ स्वभावोक्ति-अलंकार होता है। कोई स्वभावोक्ति सहज और कोई प्रतिज्ञाबद्ध होती है। दोनों के उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

सहज

सासति करि पुनि करहिं पसाऊ। नाथ प्रभुन कर सहज सुभाऊ॥
सुमिरत हरिहिं साप गति बाधी। सहज विमल मन लाग समाधी॥
धूसर धूरि भरे तनु आये। भूपति बिहँसि गोद बैठाये॥
भोजन करत चपल चित, इत उत अवसर पाय।
भाजि चलहिं किलकात मुख, दधि ओदन लपटाय॥

प्रतिज्ञा-बद्ध

एहि तन सतिहिं भेंट मोहि नाहीं। सिव संकल्प कीन्ह मन माहीं॥
बेगि सो मैं डारिहौं उपारी। मन हमार सेवक हितकारी॥
तोरउं छत्रक दंड जिमि, तव प्रताप बल नाथ।
जौ न करउं प्रभु पद सपथ, कर न धरउं धनु भाथ॥
कहउं सुभाउ सपथ सत मोही। सुमुखि मातु हित राखौं तोहीं॥

(६४) भाविक-अलङ्कार

जहाँ भूत अथवा भविष्य का वर्तमान जैसा वर्णन हो, वहाँ भाविक-अलंकार होता है। उदाहरण:—

इन सम कोउ न भयउ जग माहीं। है नहिं कतहूँ होनेउ नाहीं॥
सुबस बसिहिं फिरि अवध सुहाई। सबगुनधाम राम प्रभुताई॥
करिहहिं भाइ सकल सेवकाई। होइहिं तिहुँ पुर राम बड़ाई॥

(९५) उदात्त-अलङ्कार

जहाँ सम्पत्ति सम्बन्धी अत्युक्ति का वर्णन हो अथवा किसी अर्थ में बड़ों का महत्त्व प्रदर्शित किया जाय, वहाँ उदात्त-अलंकार होता है। उदाहरणः—

जेहि तिरहुति तेहि समय निहारी। तेहि लघु लाग भुवन दस चारी॥
जो सम्पदा नीच गृह सोहा। सो बिलोकि सुर नायक मोहा॥
कहि न जाय कछु दाइज भूरी। रहा कनक मनि मंडप पूरी॥
लोकप होहिं बिलोकत तोरे। तोहि सेवहिं सब सिधिकर जोरे॥

(९६) अत्युक्ति-अलङ्कार

जहाँ किसी योग्य व्यक्ति की योग्यता, सुन्दरता, सूरता, उदारता अथवा अन्य किसी भी गुण का अति-वर्णन हो, वहाँ अत्युक्ति-अलङ्कार होता है। उदाहरणः—

मोरि सुधारिहिं सो सब भाँती। जासु कृपा नहिं कृपा अघाती॥
भव स्रम सोषक तोषक तोषा। समन दुरित दुख दारिद दोषा॥
जब प्रताप रवि भयेउ नृप, फिरी दुहाई देस।
प्रजापाल अति बेद बिधि, कतहुँ नहीं अघलेस॥
सरबस दान दीन्ह सब काहू। जो पावा राखा नहिं ताहू॥
सुन्दरता कहँ सुन्दर करई। छबि गृह-दीप सिखा जनु बरई॥
सुनि बिलाप दुखहूँ दुख लागा। धीरजहूँ कर धीरज भागा॥
सुनि मुनि बचन जनक अनुरागे। लखि गति ज्ञान बिराग बिरागे॥

(९७) प्रतिषेधालङ्कार

जहाँ प्रसिद्ध वस्तु का निषेध किया जाय, वहाँ प्रतिषेधालंकार होता है। उदाहरणः—

निपटहिं द्विज करि जानसि मोही। मैं जस बिप्र सुनावौं तोही॥
राम मनुज कस रे सठ बंगा। धन्वी-काम नदी पुनि गंगा॥
पसु सुर धेनु कल्प तरु रूखा। अन्न दान अरु रस पीयूषा॥
बैनतेय खग अहि सहसानन। चिन्तामनि नहिं उपल दसानन॥
सुनु मतिमन्द लोक बैकुंठा। लाभकि रघुपति भगति अकुंठा॥
जीतेहुँ जे भट संजुग माहीं। सुनु तापस मैं तिन सम नाहीं॥

(९८) विधि-अलङ्कार

जहाँ किसी सिद्ध अर्थ का विधान किया जाय, वहाँ विधि-अलङ्कार होता है। उदाहरणः—

(१) जो आनन्द सिन्धु सुख रासी। सीकर ते त्रयलोक सुपासी॥
सो सुख धाम राम अस नामा। अखिल लोकदायक बिस्रामा॥
(२) बिस्वभरन पोषन कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई॥
(३) सेवक सो जो करै सेवकाई। अरि करनी कर करिय लराई॥
(४) करहिं जोग जोगी जेहि लागी। कोह मोह ममता मद त्यागी॥

(६६) प्रमाणालङ्कार

जहाँ किसी बात का सत्य वर्णन किया जाय, वहाँ प्रमाणालङ्कार होता है। यद्यपि यह विषय दार्शनिक है, तथापि साहित्यिकों ने भी इसका व्यवहार किया है। प्रमाण आठ प्रकार के होते हैं। जिनमें प्रत्येक के उदाहरण नीचे लिखे जाते हैं—

प्रत्यक्ष-प्रमाण

सो दससीस स्वान की नाईं। इत उत चितइ चला भड़िहाईं॥
इमि कुपन्थ पग देत खगेसा। रह न तेज तनु बुधि बल लेसा॥
भंजि धनुष जानकिहिं बिआहो। तब संग्राम जितेहु किन ताही॥

अनुमान-प्रमाण

चलत मार अस हृदय बिचारा। सिव बिरोध ध्रुव मरन हमारा॥
अस प्रतीति सब के मनमाहीं। राम चाप तोरब सक नाहीं॥
चलेउ सुमंत्र राय रुख जानी। लखी कुचालि कीन्ह कछु रानी॥

उपमान-प्रमाण

सुद्ध सो भयेउ साधु संमत अस। तीरथ आवाहन सुरसरि जस॥
तब मारीच हृदय अनुमाना। नवहिं बिरोधे नहिं कल्याना॥
सस्त्री मर्मी प्रभु सठ धनी। बैद बन्दि कबि मानस गुनी॥

शब्द-प्रमाण

बेद पुरान संत अस गावा। जो जस करै सो तस फल पावा॥
कहहिं बेद इतिहास पुराना। बिधि प्रपंच गुन अवगुन साना॥
स्रुति पुरान बहु कहेउ उपाई। छूट न अधिक अधिक अरुझाई॥

आत्मतुष्टि-प्रमाण

पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि, प्रकट परावर नाथ।
रघुकुल मनि मम स्वामि सोइ, कहि सिव नायउ माथ॥
सहज बिराग रूप मन मोरा। थकित हात जिमि चन्द चकोरा॥
मोहि अतिसय प्रतीति जिय केरी। जेहि सपने परनारि न हेरी॥

अनुपलब्धि-प्रमाण

और करै अपराध कोउ, और पाव फल भोग।
अति बिचित्र भगवंत गति, को जग जानै जोग॥

संभव-प्रमाण

यह अलंकार एक प्रकार से संभावना के अन्तर्गत है। इसका वर्णन पीछे हो चुका है।

अर्थापत्ति-प्रमाण

राम बिरोधी हृदय ते, प्रकट कीन्ह बिधि मोहि।
मो समान को पातकी, वादि कहहु कछु तोहि॥

(१००) हेतु-अलङ्कार

जहाँ कार्य्य और कारण का साथ ही वर्णन हो, वहाँ हेतु-अलंकार होता है। उदाहरण:—

उयो अरुण अवलोकहु ताता। पंकज लोक कोक सुख दाता॥
जासु बिलोकि अलौकिक सोभा। सहज पुनीत मोर मन छोभा॥
"अरुण उदय सकुचे कुमुद, उडुगण ज्योति मलीन"।
उयो भानु बिन स्रम तम नासा। दुरे नखत जग तेज प्रकासा॥
आपुहि सुनि खद्योत सम, रामहिं भानु समान।
परुष बचन सुनि काढ़ि असि, बोला अति खिसियान॥

उभयालंकार

जहाँ एक से अधिक अलंकारों का प्रयोग हो, वहाँ उभयालंकार होता है। इसके दो भेद हैं—(१) संसृष्टि, (२) संकर।

संसृष्टि

जहाँ कई अलंकार पृथक् पृथक् अपने स्वरूप में आभासित होते हुए, एक दूसरे की अपेक्षा न करके तिल-तण्डुल की भाँति एकत्रित हों, वहाँ संसृष्टि होती है। संसृष्टि का संमिश्रण तीन प्रकार का होता है।

[१] शब्दालंकार + शब्दालंकार

जहाँ दो शब्दालंकार एकत्रित हों, वहाँ पहली संसृष्टि होती है। उदाहरण:—

भंजेउ राम आप भव चापू। भव भय भंजन नाम प्रतापू॥

इस पद्य में 'आप' और 'चाप' में छेकानुप्रास तथा 'भव' 'भय' 'भंजन' में वृत्यनुप्रास की संसृष्टि है। 'भव' शब्द में यमक भी पाया जाता है।

[२] शब्दालंकार + अर्थालंकार

जहाँ शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों एकत्रित हों, वहाँ दूसरी संसृष्टि होती है। उदाहरण :—

लसत मंजु मुनि मंडली, मध्य सीय रघुनन्द।
ज्ञान सभा जनु तनु धरे, भक्ति सच्चिदानन्द॥

इस पद्य में मकार का अनुप्रास, जनु शब्द से उत्प्रेक्षा और 'मुनि-मंडली,' सीय, रघुनन्द इन शब्दों के साथ ज्ञान-सभा, भक्ति और सच्चिदानन्द की तुलना में यथा-संख्यालंकार की संसृष्टि है।

[३] अर्थालंकार + अर्थालंकार

जहाँ दो वा अधिक अर्थालंकार एकत्रित हों, वहाँ तीसरी संसृष्टि होती है। उदाहरण:—

नील सरोरुह स्याम, तरुण अरुण बारिज नयन।
करौ सो मम उरधाम, सदा क्षीर सागर सयन॥

इस पद्य के 'सरोरुह-स्याम' और 'बारिज-नयन' में लुप्तोपमा और 'क्षीर-सागर-सयन' में पर्यायोक्ति की संसृष्टि है। तरुण-अरुण में अनुप्रास भी पाया जाता है।

संकर

जहाँ एक से अधिक अलंकार स्वस्वरूप को परित्यागकर क्षीर-नीर की भाँति संमिश्रित हो जाँय, उस मिश्रण को 'संकर' कहते हैं। इसके चार भेद हैं—

[१] अंगांगीभाव

जहाँ बीज-वृक्ष के न्याय से अलंकार मिले हुए हों, वहाँ अंगांगीभाव होता है। उदाहरण:—

साधु चरित सुभ सरिस कपासू। निरस बिसद गुनमय फल जासू॥
जो सहि दुख पर छिद्र दुरावा। बन्दनीय जेहि जग यस पावा॥

'साधुचरित' की उपमा कपास से दी है। नीरस होना, फल का विशद और गुणमय होना और दुःख सहकर पराये छिद्रों का छिपाना इस उपमा के साधारण धर्म हैं। सभी विशेष गुण श्लिष्ट हैं। जो 'साधुचरित' और 'कपास' उभय पक्षों में संघटित होते हैं। 'छिद्र' शब्द भी श्लिष्ट है। इस प्रकार यहाँ श्लेष और उपमा का अंगागि-भाव-संकर है।

[२] समप्राधान्य

जहाँ दिन और सूर्य की भाँति साथ ही कई अलङ्कारों का प्रकटीकरण हो, वहाँ समप्राधान्य–संकर होता है। उदाहरण:—

रघुपति कीरति कामिनी, इव कह तुलसीदास।
सरद प्रकास अकास छबि, चारु चिबुक तिलजास॥

इसमें अनुप्रास, प्रतीप और रूपक का संमिश्रण होने के कारण सम-प्राधान्य-संकर है।

[३] संदेह

जहाँ दो वा अधिक अलङ्कार इस प्रकार एकत्रित हो जाँय कि पढ़ने वालों को यह निश्चय न हो कि किस का ग्रहण और किस का त्याग करें अथवा किस की प्रधानता दें, वहाँ सन्देह–संकर होता है। उदाहरण:—

सुनि मृदु बचन मनोहर पिय के। लोचन नलिन भरे जल सिय के॥

इसमें 'लोचन-नलिन' में उपमा और रूपक का सन्देह है। मृदु वचनों से दुःख का होना विषमालङ्कार और नेत्र में जल भर आने के मिस सीता के दुःख का कथन अप्रस्तुत-प्रशंसा है। यहाँ कई अलंकारों का सन्देह होने से सन्देह-संकर है।

[४] एकवाचकानुप्रवेश

जहाँ नृसिंहाकार न्याय से एक ही पद में शब्द और अर्थ दोनों अलंकारों का संमिश्रण हो, वहाँ एकवाचकानुप्रवेश वा एकपद-संकर कहलाता है। उदाहरण:—

सोइ जल अनल अनिल संघाता। होइ जलद जग जीवन दाता॥

यहाँ 'जलद' 'जग' 'जीवन' में अनुप्रास और 'जीवन' शब्द में श्लेष होने से एक वाचकानु-प्रवेश संकर है।

२२ वर्णन-वैचित्र्य और तुलसीदास

किसी विषय का वर्णन करते हुए भाषा में विचित्रता का व्यवहार करना ही 'वर्णन-वैचित्र्य' कहलाता है। भाषा का व्यवहार लेखक की क्षमता पर निर्भर करता है और इसीसे कवियों की सरस्वती की परीक्षा की जा सकती है। प्राञ्जल और स्पष्ट भावों को ओजस्विनी, अलंकृत, चमत्कृत एवं विचित्र भाषा में व्यक्त करना ही 'वर्णन-वैचित्र्य' है। यह एक अद्भुत कला है जो समान स्वरूप में सब को सम्प्राप्त नहीं होती। इस कला का विशेष व्यवहार साहित्य-शास्त्र में ही किया जा सकता है। इसे तर्क एवं विज्ञान के निकष पर कसना उचित नहीं है।

वैज्ञानिक दल चाहे चन्द्रमा की उत्पत्ति किसी प्रकार कथन करे, वह हमारे प्रकृत विषय से सुदूरतर है, परन्तु साहित्य-रसिक उसे आकाशोदधि का प्यारा पुत्र ही कहते रहेंगे। साहित्यिकों की दृष्टि में समुद्र का ज्वार, वास्तव में ज्वार नहीं अपितु अपने प्रियतम पुत्र प्यारे चन्द्र की पूर्ण कला अथच अभ्युदय को अवलोकन कर उछलना और आनन्द की उत्तुङ्ग तरंगों से लहराना मात्र है। ऋजु-कथन कविता नहीं, प्रत्युत केवल भाषा है। "आप इस समय कहाँ से आ रहे हैं?" यह एक प्रश्न है जिसकी भाषा अत्यन्त सीधी सादी है। इसी भाव को "सम्प्रति श्रीमान् जीने किस नगर के निवासियों को अपने विरह-पयोधि में निमग्न कर हम लोगों को सौभाग्यशाली बनाने की दया दर्शायी है?"—इस वाक्य द्वारा अभिव्यक्त करने में वर्णन के अन्दर एक प्रकार की विचित्रता का सञ्चार प्रतीत होता है। हमारे चरितनायक महाकवि तुलसीदास जी इस अंश में भी एक सिद्धहस्त सुकवि थे। इनके ग्रन्थों में स्थान स्थान पर 'वर्णन-वैचित्र्य' चित्रित है, जिसे पढ़ कर बहुतेरे अर्द्धदग्ध साहित्यप्रेमी सहसा सोचने लग जाते हैं कि वास्तव में यह लेख सत्य है वा असत्य! इनके कई विचित्र वर्णनों को अधुना सहस्रशः साहित्यानभिज्ञ सत्य, एवं कई तर्कप्रेमी असत्य सिद्ध करने में अनवरत श्रम करते पाये जाते हैं, जो एक साहित्यविद् के समक्ष मनोविनोद के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है। अब यहाँ पर हम इस विषय का संक्षिप्त दिग्दर्शन कराना चाहते हैं कि किन किन कारणों से वर्णन में विचित्रता आती है।

[१] रस

किसी घटना वा वर्णनविशेष के देखने, सुनने किंवा मनन करने के उपरान्त मनुष्य के अन्तःकरण-चतुष्टय के अन्तर्गत मन में जो कुछ परिवर्तन वा विकार उत्पन्न हो, उसे भाव कहते हैं। भावों का अविच्छिन्न प्रवाह ही रस है। भावों की विभिन्नता और पारस्परिक भेद को समझ कर ही रसों का विवेचन किया जाता है। भाव और रस के सम्बन्ध में 'कवित्व और तुलसीदास' शीर्षक लेख में बहुत कुछ लिखा जा चुका है। यहाँ हम केवल इस बात का उल्लेख करेंगे कि साधारणतः सब रसों और विशेष कर

अद्भुत रस

के वर्णन में कविजन 'वैचित्र्य' का प्रदर्शन करते हैं। इस रस के आश्चर्य्य वा विस्मय स्थायी भाव, आश्चर्य्यजनक वस्तु विभाव, रोमाञ्चादि अनुभाव, एवं वितर्क, भ्रान्ति और हर्ष सञ्चारी भाव हैं। इस रस में लोकोत्तर बात कही जाती है, क्योंकि लोकविरुद्ध वा अलौकिक बात को श्रवण कर ही मनुष्य के मन में विस्मय और आश्चर्य्य

का उद्रेक होता है। साधुवाद, दृगोल्लास, गतिरोध और रोमाञ्चादि ही अद्‌भुत रस की विशेषताएँ हैं। इस रस के आविर्भाव में अत्यन्त द्रुतगति से मानसिक क्रियाएँ होती हैं। इसी कारण इस रस का रंग 'पीत' कहा गया है। 'अद्भुत रस' वास्तव में अद्भुत ही है। 'रामचरितमानस' में महाकवि ने कई स्थलों पर इस रस का प्रयोग किया है, जो 'वर्णन-वैचित्र्य' के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है। नीचे केवल दो घटनाओं का उल्लेख किया जाता है।

पार्वती मोह-वर्णन

जाना राम सती दुख पावा। निज प्रभाउ कछु प्रकटि जनावा॥
सती दीख कौतुक मग जाता। आगे राम सहित सिय भ्राता॥
फिरि चितवा पाछे प्रभु देखा। सहित बन्धु सिय सुन्दर बेखा॥
जहँ चितवहिं तहँ प्रभु आसीना। सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रवीना॥
देखे सिव बिधि विष्णु अनेका। अमित प्रभाउ एक तें एका॥
बन्दत चरन करत प्रभु सेवा। बिबिध बेष देखे सब देवा॥

सची बिधात्री इन्दिरा, देखी अमित अनूप।
जेहि जेहि बेष अजादि सुर, तेहि तेहि तनु अनुरूप॥

देखे जहँ तहँ रघुपति जेते। सक्तिन्ह सहित सकल सुर तेते॥
जीव चराचर जे संसारा। देखे सकल अनेक प्रकारा॥
पूजहिं प्रभुहिं देव बहु बेखा। राम रूप दूसर नहिं देखा॥
अवलोके रघुपति बहुतेरे। सीता सहित न बेष घनेरे॥
सोइ रघुबर सोइ लछिमन सीता। देखि सती अति भई सभीता॥
हृदय कम्प तन सुधि कछु नाहीं। नयन मूँदि बैठी मग माहीं॥
बहुरि बिलोकेउ नयन उघारी। कछु न दीख कहँ दच्छ कुमारी॥
पुनि पुनि नाइ राम-पद सीसा। चली तहाँ जहँ रहे गिरीसा॥

राम की अद्भुत लीला

एक बार जननी अन्हवाये। करि सिंगार पलना पौढ़ाये॥
निज कुल इष्ट देव भगवाना। पूजा हेतु कीन्ह अस्नाना॥
करि पूजा नैवेद्य चढ़ावा। आपु गई जहँ पाक बनावा॥
बहुरि मातु तहवाँ चलि आई। भोजन करत देख सुत जाई॥
गइ जननी सिसु पहँ भयभीता। देखा बाल तहाँ पुनि सूता॥
बहुरि आइ देखा सुत सोई। हृदय कम्प मन धीर न होई॥
इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा। मति भ्रम मोर कि आन बिसेखा॥
देखि राम जननी अकुलानी। प्रभु हँसि दीन्ह मधुर मुसुकानी॥

दिखरावा मातहिं निज, अद्‌भुत रूप अखण्ड।
रोम रोम प्रति लागे, कोटि कोटि ब्रह्मण्ड॥

अगनित रबि ससि सिव चतुरानन। बहु गिरि सरित सिन्धु महि कानन॥
काल करम गुन ज्ञान सुभाऊ। सोउ देखा जो सुना न काऊ॥
देखी माया सब बिधि गाढ़ी। अति सभीत जोरे कर ठाढ़ी॥
देखा जीव नचावइ जाही। देखी भगति जो छोरइ ताही॥
तन पुलकित मुख बचन न आवा। नयन मूँदि चरननि सिर नावा॥
बिस्मयवन्त देखि महतारी। भये बहुरि सिसुरूप खरारी॥

पाठक विचारपूर्वक अवलोकन करें तो [illegible] 'वर्णन-वैचित्र्य' का प्रशंसनीय प्रयोग किया है। [illegible] आश्चर्य और विस्मय का उत्थान होता है। [illegible] कछु नाहीं। नयन मूँदि बैठी मधु नाहीं [illegible] महतारी' पदों को देखकर महाकवि ने अद्भुत [illegible]

रौद्र और वीर रसों

की कविता में भी 'वर्णन-वैचित्र्य' का प्रयोग प्रायः पाया जाता है। महाराज जनक की यज्ञशाला में जहाँ श्री लक्ष्मण जी के रोष का वर्णन है, उसे देखिये:—

'माखे लखन कुटिल भइ भौंहें। रद पट फरकत नयन रिसौंहें॥
कहि न सकत रघुबीर डर, लगे बचन जनु बान।
नाइ राम पद कमल सिर, बोले गिरा प्रमान॥
रघुबंसिन महँ जहँ कोउ होई। तेहि समाज अस कहै न कोई॥
कही जनक जस अनुचित बानी। बिद्यमान रबिकुलमनि जानी॥
सुनहु भानुकुल पंकज भानू। कहौं सुभाव न कछु अभिमानू॥
जो राउर अनुसासन पाऊँ। कन्दुक इव ब्रह्माण्ड उठाऊँ॥
काँचे घट जिमि डारौं फोरी। सकौं मेरु मूलक जिमि तोरी॥
तव प्रताप महिमा भगवाना। का बापुरो पिनाक पुराना॥
नाथ जानि अस आयसु होऊ। कौतुक करौं बिलोकिय सोऊ॥
कमल नाल जिमि चाप चढ़ावौं। सत जोजन प्रमान लै धावौं॥
तोरौं छत्रक दण्ड जिमि, तव प्रताप बल नाथ।
जो न करौं प्रभु पद सपथ, पुनि न धरौं धनु हाथ॥
लखन सकोप बचन जब बोले। डगमगानि महि दिग्गज डोले॥

इस वर्णन में ब्रह्माण्ड को कन्दुक इव उठाना, मेरु को मूलकवत तोड़ना और पृथिवी का डगमगाना इत्यादि कवि ने जो कुछ लिखा है, एक प्रकार का 'वर्णन वैचित्र्य' मात्र है; घटनात्मक सत्य नहीं। इसी प्रकार

मनोवाञ्छित फल देने वाले की कल्पवृक्ष किंवा कल्पलता से उपमा दी जाती है। कामधेनु का व्यवहार भी ऐसे ही स्थलों पर होता है। गोस्वामी तुलसीदास जी के ग्रन्थ भी इन कल्पनाओं से पूर्ण हैं।

'स्वर्ग नरक अनुराग बिरागा। निगमागम गुन दोष बिभागा ॥
पशु सुर धेनु कल्पतरु रूखा। अन्न दान अरु रस पीयूखा ॥

इन पद्यों के अतिरिक्त सहस्रशः स्थलों पर स्वर्ग-नरक, अमृत, कामधेनु एवं कल्पवृक्ष के उल्लेख आते हैं जो काल्पनिक होने के कारण 'वर्णन-वैचित्र्य' के अन्तर्गत हैं।

आकाशवाणी

आकाशवाणी क्या है? इसके निर्णय में भी सामान्य जनता हैरान है। वास्तव में यह वाणी अन्तरिक्ष लोक की वाणी से संबन्ध नहीं रखती अपितु यह अकस्मात् हृदयाकाश से उठे हुए विचार-तरङ्गों से संबद्ध है। नाटकों के अन्तर्गत कथनोपकथन की शैली यह है कि उसके पात्रों के द्वारा ही प्रायः भाव अभिव्यक्त कराये जाते हैं। परन्तु कतिपय विचार ऐसे होते हैं जो किसी पात्र-विशेष के द्वारा न प्रकट कर 'नेपथ्य' से कहलाये जाते हैं। कविता में यही नेपथ्य-कथन 'आकाश-वाणी' के स्वरूप में परिणत हो जाता है। यह 'आकाशवाणी' निम्न स्थलों पर व्यवहृत होती है।

[१] हृदय में जब किसी बात का दृढ़ निश्चय हो जाता है तब लोक में विश्वास का प्रवाह प्रवाहित करने के विचार से उस निश्चय को कविजन आकाश-वाणी के मिस लेखबद्ध करते हैं। 'रामचरित-मानस' में पार्वती की तपस्या में यही आकाशवाणी आती है:—

देखि उमहिं तप खिन्न सरीरा। ब्रह्म गिरा भइ गगन गंभीरा ॥
भयउ मनोरथ सफल तव, सुनु गिरिराज कुमारि।
परिहरु दुसह कलेस सब, अब मिलिहहिं त्रिपुरारि ॥
अस तप काहुन कीन्ह भवानी। भये अनेक धीर मुनि ज्ञानी ॥
अब उर धरहु ब्रह्म बर बानी। सत्य सदा सन्तत सुचि जानी ॥
आवहिं पिता बुलावन जबहीं। हठ परिहरि घर जायहु तबहीं ॥
मिलहिं तुम्हहिं जब सप्त रिषीसा। जानेहु तब प्रमाण बागीसा ॥
सुनत गिरा बिधि गगन बखानी। पुलक गात गिरिजा हरषानी ॥

इसी प्रकार मनुशतरूपा की तपस्या के अनन्तर:—

मांगु मांगु वर भइ नभवानी। परम गंभीर कृपामृत सानी ॥
मृतक जिआवनि गिरा सुहाई। स्रवन रन्ध्र होइ उर जब आई ॥
हृष्ट पुष्ट तन भये सुहाये। मानहु अबहिं भवन ते आये ॥

स्रवन सुधा सम बचन सुनि, पुलक प्रफुल्लित गात।
बोले मनु करि दण्डवत, प्रेम न हृदय समात॥

इन वाक्यों का आकाशवाणी द्वारा प्रकट होना 'वर्णन-वैचित्र्य' मात्र है। वास्तव में ये मनु और शतरूपा के हृदयाकाश के शब्द हैं, जिसका अभिव्यञ्जन कवि ने आकाशवाणी के मिस किया है।

[२] किसी अनर्थकारी षड्यन्त्र के भेद को प्रकट करने के स्थान में भी कवियों ने आकाशवाणी की शरण ली है। राम-चरित-मानस में भानुप्रताप के महानस का भण्डाफोर महाकविने इस प्रकार किया है:—

मायामय तेहि कीन्ह रसोई। बिंजन बहु गनि सकइ न कोई॥
बिबिध मृगन्ह कर आमिष राँधा। तेहि महँ बिप्र मांसु खल साँधा॥
भोजन कहँ सब बिप्र बोलाये। पग पखारि सादर बैठाये॥
परसन जबहिं लाग महिपाला। भइ अकासबानी तेहि काला॥
बिप्रबृन्द उठि उठि गृह जाहू। है बड़ि हानि अन्न जनि खाहू॥
भयउ रसोईं भूसुर-मासू। सब द्विज उठे मानि बिस्वासू॥

आकाशवाणी के अतिरिक्त कवियों ने कहीं कहीं जड़ पदार्थों के द्वारा भी शब्द होना लिखा है। रामचरितमानस के अयोध्याकाण्ड में राम-बन-गमन के समय गङ्गापार उतरने के अनन्तर सीता के प्रणाम करने पर—

गङ्गा का वचन

और आशीर्वाद लिखा है, वह भी एक प्रकार से 'वर्णन-वैचित्र्य' मात्र है। अन्यथा जल से सार्थक शब्द की उत्पत्ति असम्भव है।

सिय सुरसरिहिं कहेउ कर जोरी। मातु मनोरथ पुरउबि मोरी॥
पति देवर सँग कुसल बहोरी। आइ करउँ जेहि पूजा तोरी॥
सुनि सिय बचन प्रेम रस सानी। भइ तब बिमल बारिबर बानी॥
सुनु रघुबीर प्रिया बैदेही। तव प्रभाउ जग बिदित न केही॥
लोकप होहिं बिलोकत तोरे। तोहि सेवहिं सब बिधि कर जोरे॥
तुम्ह जो हमहिं बड़ि बिनय सुनाई। कृपा कीन्हि मोहि दीन्हि बड़ाई॥
तदपि देबि मैं देबि असीसा। सफल होन हित निज बागीसा॥
प्राननाथ देवर सहित, कुसल कोसला आइ।
पूजिहि सब मन कामना, सुजस रहिहि जग छाइ॥
गंग बचन सुनि मंगल मूला। मुदित सीय सुरसरि अनुकूला॥

इस प्रकरण को कवि ने सीता की दृढ़ता और भावी सुयश-प्रसार-प्रदर्शन के विचार से लिखा है, जो सर्वथा संगत है।

[५] आख्यायिका

कविता में निगदित भाव को साधारण जनसमुदाय के मस्तिष्क में स्थूल रूप से अभिव्यञ्जित करने के विचार से कविजन आख्यायिका की सृजना करते हैं। आख्यायिका एक प्रकार की काल्पनिक कथा है। इतिहास और आख्यायिका में आकाश-पाताल का अन्तर होता है। मनोरञ्जक गाथा के द्वारा सूक्ष्म विषय को भी कविसमुदाय अत्यन्त स्थूल रूप से जनता के मस्तिष्क में स्थित कर देता है। साहित्य शास्त्र में आख्यायिका की सृष्टि भी अनिवार्य्य सी हो गयी है। अष्टादश पुराणों में आख्यायिकाओं के द्वारा प्रायः वर्णन वर्णित हैं। इस प्रथा से जहाँ अनेक लाभ है वहाँ जनता की साहित्यानभिज्ञता के कारण किञ्चित् हानि भी हुई है। आये दिन रामचरितमानस की कितनी आख्यायिकाओं ने भ्रम उत्पन्न कर दिया है। आगे उनका यत्किञ्चित् वर्णन करते हुए यथासाध्य उनका रहस्य प्रदर्शन भी किया जायगा।

अवतार-वाद

यद्यपि अवतार-वाद शास्त्र-सम्मत है अथवा शास्त्र-विरुद्ध, इसका विवेचन हमारा प्रकृत विषय नहीं, तथापि

> 'ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज, अकल अनीह अभेद।
> सो कि देह धरि होइ नर, जाहि न जानत वेद' ॥

इत्यादि बातें हमारे चरित-नायक जैसे अवतार-वादियों को भी समय समय खटकती रही हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी अवतार-वादी थे। आपने इसे युक्ति और प्रमाण से सिद्ध करने का भगीरथप्रयत्न किया है।

मुझे तो यहां इस बात का निदर्शन करना है कि अवतार-वाद की सिद्धि में महाकविने ५ आख्यायिकाएँ लिखी हैं जिनमें प्रथम, द्वितीय और चतुर्थ आख्यायिका तो श्रीमद्भागवत से ली हैं और शेष तृतीय एवं पञ्चम आख्यायिका की रनी ॥ की है। इन आख्यायिकाओं के लिखने में आपने साधारणतः सबमें और विशेषत. स्वनिर्मित रचना में 'वर्णन-वैचित्र्य' का पूर्ण आश्रय लिया है। कविवर स्पष्ट कहते हैं:—

> सो सब हेतु कहब मैं गाई। कथा प्रबन्ध विचित्र बनाई ॥

पाठक अन्तिम अर्द्धाली पर विशेष ध्यान दें। इसमें गोस्वामी जी ने स्वयं कहा है कि मैं प्रबन्ध को विचित्र रीति से बनाकर लिखूंगा। पाठकों के मनोविनोदार्थ पांचो आख्यायिकाएं 'राम चरित-मानस' से अविकल उद्धृत की जाती हैं।

(पहली आख्यायिका)

द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ। जय अरु बिजय जान सब कोऊ॥
बिप्र सापते दूनउँ भाई। तामस असुर देह तिन्ह पाई॥
कनक कसिपु अरु हाटक लोचन। जगत विदित सुरपति मद मोचन॥
बिजई समर बीर बिख्याता। धरि बराह बपु एक निपाता॥
होइ नरहरि पुनि दूसर मारा। जन प्रहलाद सुजस बिस्तारा॥

भये निसाचर जाइ तेइ, महाबीर बलवान।
कुम्भकरन रावन सुभट, सुर-बिजई जगजान॥

मुकुत न भये हते भगवाना। तीनि जन्म द्विज बचन प्रमाना॥
एक बार तिन्ह के हित लागा। धरेउ सरीर भगत-अनुरागी॥
कस्यप अदिति तहाँ पितु माता। दसरथ कौसल्या बिख्याता॥
एक कलप यहि बिधि अवतारा। चरित पवित्र किए संसारा॥

इस आख्यायिका में महाकवि ने जय और विजय के शाप और उनका हिरण्यकश्यप और हिरण्याक्ष के जीवन में प्रकट होना और पुनः उनका कुम्भकर्ण और रावण होकर अवतीर्ण होना लिखा है। इस क्रम से इसमें ईश्वर के नृसिंहावतार और रामावतार की आख्यायिका सन्निहित है।

(दूसरी आख्यायिका)

एक कलप सुर देखि दुखारे। समर जलंधर सन सब हारे॥
संभु कीन्ह संग्राम अपारा। दनुज महाबल मरइ न मारा॥
परम सती असुराधिप नारी। तेहि बल ताहि न जितहिं पुरारी॥

छल करि टारेउ तासु ब्रत, प्रभु सुर कारज कीन्ह।
जब तेहि जानेउ मरम सब, साप कोप करि दीन्ह॥

तासु साप हरि कीन्ह प्रमाना। कौतुक निधि कृपाल भगवाना॥
तहाँ जलंधर रावन भयऊ। रन हति राम परम पद दयऊ॥
एक जनम कर कारन एहा। जेहि लगि राम धरी नर-देहा॥

इस आख्यायिका में जलन्धर को मारने के लिये विष्णु का अवतार लेना तथा जलंधर का रावण होना लिखा है।

(तीसरी आख्यायिका)

नारद साप दीन्ह एक बारा। कलप एक लगि तेहि अवतारा॥
गिरिजा चकित भई सुनि बानी। नारद विष्णु भगत पुनि ज्ञानी॥
कारन कवन साप मुनि दीन्हा। का अपराध रमापति कीन्हा॥
यह प्रसङ्ग मोहिं कहहु पुरारी। मुनि मन मोह आचरज भारी॥

बोले बिहँसि महेस तब, ज्ञानी मूढ़ न कोइ।
जेहि जस रघुपति करहिं जब, सो तस तेहि छन होइ॥
कहउँ राम गुन गाथ, भरद्वाज सादर सुनहु।
भवभंजन रघुनाथ, भजु तुलसी तजु मंद मति॥

हिमगिरि गुहा एक अति पावनि। बह समीप सुरसरी सुहावनि॥
आस्रम परम पुनीत सुहावा। देखि देवरिषि मन अति भावा॥
निरखि सैल सरि बिपिन बिभागा। भयउ रमापति पद अनुरागा॥
सुमिरत हरिहिं सापगति बाधी। सहज बिमल मन लागि समाधी॥
मुनिगति देखि सुरेस डराना। कामहिं बोलि कीन्ह सनमाना॥
सहित सहाय जाहु मम हेतू। चलेउ हरषि हिय जलचर केतू॥
सुनासीर मन महँ अति त्रासा। चहत देवरिषि ममपुर बासा॥
जे कामी लोलुप जग माहीं। कुटिल काक इव सबहिं डराहीं॥

सूख हाड़ लेइ भाग सठ, स्वान निरखि मृगराज।
छीनि लेइ जनि जानि जड़, तिमि सुरपतिहिं न लाज॥

तेहि आस्रमहिं मदन जब गयऊ। निज माया बसंत निरमयऊ॥
कुसुमित विविध बिटप बहुरंगा। कूजहिं कोकिल गूँजहिं भृंगा॥
चली सुहावनि त्रिबिध बयारी। काम कृसानु बढ़ावनि हारी॥
रंभादिक सुरनारि नवीना। सकल असम सर कला प्रवीना॥
करहिं गान बहु तान तरंगा। बहु बिधि क्रीड़हिं पानि पतंगा॥
देखि सहाय मदन हरषाना। कीन्हेसि पुनि प्रपंच बिधि नाना॥
काम कला कछु मुनिहिं न ब्यापी। निज भय डरेउ मनोभव पापी॥
सीम कि चाँपि सकइ कोउ तासू। बड़ रखवार रमापति जासू॥

सहित सहाय सभीत अति, मानि हारि मन मैन।
गहेसि जाइ मुनि चरन तब, कहि सुठि आरत बैन॥

भयउ न नारद मन कछु रोषा। कहि प्रिय बचन काम परितोषा॥
नाइ चरन सिर आयसु पाई। गयउ मदन तब सहित सहाई॥
मुनि सुसीलता आपनि करनी। सुरपति सभा जाइ सब बरनी॥
सुनि सबके मन अचरज आवा। मुनिहिं प्रसंसि हरिहिं सिरनावा॥
तब नारद गवने सिव पाहीं। जीति काम अहमिति मनमाहीं॥
मार चरित संकरहिं सुनाये। अति प्रिय जानि महेस सिखाये॥
बार बार बिनवउँ मुनि तोही। जिमि यह कथा सुनायहु मोही॥
तिमि जनि हरिहिं सुनायहु कबहूँ। चलेउ प्रसंग दुरायहु तबहूँ॥

संभु दीन्ह उपदेस हित, नहिं नारदहिं सुहान।
भरद्वाज कौतुक सुनहु, हरि इच्छा बलवान॥

राम कीन्ह चाहहिं सोइ होई। करइ अन्यथा अस नहिं कोई॥
संभु बचन मुनि मन नहिं भाये। तब बिरंचि के लोक सिधाये॥
एक बार करतल बर बीना। गावत हरि गुन गान प्रबीना॥
छीर सिन्धु गवने मुनि नाथा। जहँ बस श्रीनिवास स्रुति माथा॥
हरखि मिले उठि रमानिकेता। बैठे आसन रिषिहिं समेता॥
बोले बिहँसि चराचर राया। बहुत दिनन्ह कीन्ह मुनि दाया॥
काम चरित नारद सब भाखे। यद्यपि प्रथम बरजि सिव राखे॥
अति प्रचण्ड रघुपति कै माया। जेहि न मोह अस को जग जाया॥

रूख बदन करि बचन मृदु, बोले श्री भगवान।
तुम्हरे सुमिरन ते मिटहिं, मोह मार मद मान॥

सुनि मुनि मोह होइ मन ताके। ज्ञान बिराग हृदय नहिं जाके॥
ब्रह्मचरज ब्रत रत मुनि धीरा। तुम्हहिं कि करइ मनोभव पीरा॥
नारद कहेउ सहित अभिमाना। कृपा तुम्हारि सकल भगवाना॥
करुनानिधि मन दीख बिचारी। उर अंकुरेउ गर्व तरु भारी॥
बेगि सो मैं डारिहउँ उखारी। पन हमार सेवक हितकारी॥
मुनिकर हित मम कौतुक होई। अवसि उपाय करबि मैं सोई॥
तब नारद हरि पद सिर नाई। चले हृदय अहमिति अधिकाई॥
श्रीपति निजमाया तब प्रेरी। सुनहु कठिन करनी तेहि केरी॥

बिरचेउ मगमहँ नगर तेहि, सतजोजन बिस्तार।
श्रीनिवास पुर ते अधिक, रचना बिबिध प्रकार॥

बसहिं नगर सुन्दर नर नारी। जनु बहु मनसिज रति तनु धारी॥
तेहि पुर बसइ सीलनिधि राजा। अगनित हय गय सेन समाजा॥
सत सुरेस सम बिभव बिलासा। रूप तेज बल नीति निवासा॥
बिस्व मोहिनी तासु कुमारी। श्री बिमोह जेहि रूप निहारी॥
सोइ हरि माया सब गुन खानी। सोभा तासु कि जाइ बखानी॥
करइ स्वयंबर सो नृप बाला। आये तहँ अगनित महिपाला॥
मुनि कौतुकी नगर तेहि गयऊ। पुर बासिन्ह सन पूछत भयऊ॥
सुनि सब चरित भूप गृह आये। करि पूजा नृप मुनि बैठाये॥

आनि देखाई नारदहिं, भूपति राजकुमारि।
कहहु नाथ गुन दोष सब, एहि के हृदय बिचारि॥

देखि रूप मुनि बिरति बिसारी। बड़ी बार लगि रहे निहारी॥
लच्छन तासु बिलोकि भुलाने। हृदय हरष नहिं प्रकट बखाने॥
जो एहि बरइ अमर सोइ होई। समर भूमि तेहि जीत न कोई॥
सेवहिं सकल चराचर ताही। बरइ सीलनिधि कन्या जाही॥
लच्छन सब बिचारि उर राखे। कछुक बनाइ भूप सन भाखे॥

सुता सुलच्छन कहि नृप पाहीं। नारद चले सोच मन माहीं ॥
करउँ जाइ सोइ जतन बिचारी। जेहि प्रकार मोहि बरइ कुमारी ॥
जप तप कछु न होइ एहि काला। हे बिधि मिलइ कवन बिधि बाला ॥

एहि अवसर चाहिय परम, सोभा रूप बिसाल।
जो बिलोकि रीझइ कुवँरि, तब मेलइ जयमाल ॥

हरि सन माँगउँ सुन्दरताई। होइहिं जात गहरु अति भाई ॥
मोरे हित हरि सम नहिं कोऊ। एहि अवसर सहाय सोइ होऊ ॥
बहु बिधि बिनय कीन्ह तेहि काला। प्रकटेउ प्रभु कौतुकी कृपाला ॥
प्रभु बिलोकि मुनि नयन जुड़ाने। होइहिं काज हिये हरषाने ॥
अति आरत कहि कथा सुनाई। करहु कृपा हरि होहु सहाई ॥
आपन रूप देहु प्रभु मोही। आन भाँति नहिं पावउं ओही ॥
जेहि बिधि नाथ होइ हित मोरा। करहु सो बेगि दास मैं तोरा ॥
निज मायाबल देखि बिसाला। हिय हँसि बोले दीनदयाला ॥

जेहि बिधि होइहि परम हित, नारद सुनहु तुम्हार।
सोइ हम करब न आन कछु, बचन न मृषा हमार ॥

कुपथ माँग रुज व्याकुल रोगी। बैद न देहिं सुनहु मुनि जोगी ॥
एहि बिधि हित तुम्हार मैं ठयऊ। कहि अस अंतरहित प्रभु भयऊ ॥
माया बिबस भये मुनि मूढ़ा। समुझी नहिं हरि गिरा निगूढ़ा ॥
गवने तुरत तहाँ रिषिराई। जहाँ स्वयम्बर भूमि बनाई ॥
निज निज आसन बैठे राजा। बहु बनाव करि सहित समाजा ॥
मुनि मन हरष रूप अति मोरे। मोहि तजि आनहिं बरहिं न भोरे ॥
मुनि हित कारन कृपानिधाना। दीन्ह कुरूप न जाइ बखाना ॥
सो चरित्र लखि काहु न पावा। नारद जान सबन सिर नावा ॥

रहे तहाँ दुइ रुद्र-गन, ते जानहिं सब भेउ।
बिप्र बेष देखत फिरहिं, परम कौतुकी तेउ ॥

जेहि समाज बैठे मुनि जाई। हृदय रूप अहमिति अधिकाई ॥
तहँ बैठे महेस गन दोऊ। बिप्र बेस गति लखइ न कोऊ ॥
करहिं कूटि नारदहिं सुनाई। नीकि दीन्ह हरि सुन्दरताई ॥
रीझिहिं राज कुँवरि छबि देखी। इनहिं बरिहिं हरि जानि बिसेखी ॥
मुनिहिं मोह मन हाथ पराये। हँसहिं संभुगन अति सचुपाये ॥
जदपि सुनहिं मुनि अटपटि बानी। समुझि न परइ बुद्धि भ्रम सानी ॥
काहु न लखा सो चरित बिसेखा। सो सरूप नृप कन्या देखा ॥
मर्कट बदन भयंकर देही। देखत हृदय क्रोध भा तेही ॥

सखी संग लेइ कुँवरि तब, चलि जनु राज मराल।
देखत फिरइ महीप सब, कर सरोज जयमाल ॥

जेहि दिसि बैठे नारद फूली। सो दिसि तेहि न बिलोकी भूली॥
पुनि पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं। देखि दसा हरगन मुसुकाहीं॥
धरि नृप तनु तहँ गयउ कृपाला। कुअँरि हरषि मेलेउ जयमाला॥
दुलहिन लेइ गे लच्छि निवासा। नृप समाज सब भयउ निरासा॥
मुनि अति बिकल मोह मति नाँठी। मनि गिरि गई छूटि जनु गाँठी॥
तब हरगन बोले मुसुकाई। निज मुख मुकुर बिलोकहु जाई॥
अस कहि दोउ भागे भय भारी। बदन दीख मुनि बारि निहारी॥
बेष बिलोकि क्रोध अति बाढ़ा। तिन्हहिं सराप दीन्ह अति गाढ़ा॥

होहु निसाचर जाइ तुम्ह, कपटी पापी दोउ।
हँसेउ हमहिं सो लेहु फल, बहुरि हँसेउ मुनि कोउ॥

पुनि जल दीख रूप निज पावा। तदपि हृदय परितोष न आवा॥
फरकत अधर कोप मनमाहीं। सपदि चले कमलापति पाहीं॥
देइहउँ साप कि मरिहउँ जाई। जगत मोरि उपहास कराई॥
बीचहिं पंथ मिले दनुजारी। संग रमा सोइ राजकुमारी॥
बोले मधुर बचन सुरसाईं। मुनि कहँ चले बिकल की नाईं॥
सुनत बचन उपजा अति क्रोधा। माया बस न रहा मन बोधा॥
पर संपदा सकहु नहिं देखी। तुम्हरे इरिषा कपट बिसेखी॥
मथत सिंधु रुद्रहिं बौरायहु। सुरन्ह प्रेरि बिष पान करायहु॥

असुर सुरा बिष संकरहिं, आपु रमा मनि चारु।
स्वारथ साधक कुटिल तुम्ह, सदा कपट व्यवहारु॥

परम स्वतन्त्र न सिर पर कोई। भावइ मनहिं करहु तुम्ह सोई॥
भलेहि मंद मंदहि भल करहु। बिसमय हरष न हिय कछु धरहू॥
डहँकि डहँकि परिचेहु सब काहू। अति असंक मन सदा उछाहू॥
करम सुभासुभ तुम्हहिं न बाधा। अब लगि तुम्हहिं न काहू साधा॥
भले भवन अब बायन दीन्हा। पावहुगे फल आपन कीन्हा॥
बंचेहु मोहि जवनि धरि देहा। सोइ तन धरहु साप मम एहा॥
कपि आकृति तुम्ह कीन्हि हमारी। करिहहिं कीस सहाय तुम्हारी॥
मम अपकार कीन्ह तुम्ह भारी। नारि बिरह तुम्ह होब दुखारी॥

साप सीस धरि हरषि हिय, प्रभु बहु बिनती कीन्हि।
निज माया कै प्रबलता, करषि कृपानिधि लीन्हि॥

जब हरि माया दूरि निवारी। नहिं तहँ रमा न राजकुमारी॥
तब मुनि अति सभीत हरि चरना। गहे पाहि प्रनतारति हरना॥
मृषा होउ मम साप कृपाला। मम इच्छा कह दीनदयाला॥
मैं दुर्बचन कहे बहुतेरे। कह मुनि पाप मिटिहिं किमि मेरे॥
जपहु जाइ संकर सत नामा। होइहि हृदय तुरत बिस्रामा॥

कोउ नहिं सिव समान प्रिय मोरे। असि परतीति तजहु जनि भोरे॥
जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी। सो न पाव मुनि भगति हमारी॥
अस उर धरि महि बिचरहु जाई। अब न तुम्हहिं माया निअराई॥

बहु बिधि मुनिहिं प्रबोधि प्रभु, तब भये अन्तरधान।
सत्य लोक नारद चले, करत राम गुन गान॥

हर गन मुनिहिं जात पथ देखी। बिगत मोह मन हरष बिसेखी॥
अति सभीत नारद पहिं आये। गहि पद आरत बचन सुनाये॥
हरगन हम न बिप्र मुनिराया। बड़ अपराध कीन्ह फल पाया॥
साप-अनुग्रह करहु कृपाला। बोले नारद दीनदयाला॥
निसिचर जाइ होहु तुम दोऊ। बैभव बिपुल तेज बल होऊ॥
भुज बल बिस्व जितब तुम जहिआ। धरिहहिं बिष्णु मनुज तनु तहिआ॥
समर मरन हरि हाथ तुम्हारा। होइहहु मुकुत न पुनि संसारा॥
चले जुगल मुनि पद सिर नाई। भये निसाचर कालहिं पाई॥

एक कलप एहि हेतु प्रभु, लीन्ह मनुज-अवतार।
सुर-रंजन सज्जन-सुखद, हरि भंजन-भुवि-भार॥

जहाँ तक मैंने पुराणों को देखा है उसके आधार पर ही मेरी धारणा है कि गोस्वामी जी ही इस आख्यायिका के निर्म्माता हैं। नगर की रचना, शीलनिधि राजा की कन्या का स्वयंवर, नारद का व्यामोह और विष्णु का शाप पाना इत्यादि विषयक लेख सब कुछ 'वर्णन-वैचित्र्य' के अभ्यन्तर ही निहित हैं।

(चौथी आख्यायिका)

स्वायंभू मनु अरु सतरूपा। जिन्ह तें भइ नर सृष्टि अनूपा॥
दम्पति धरम आचरन नीका। अजहुँ गाव स्रुति जिन्ह के लीका॥
नृप उत्तानपाद सुत तासू। ध्रुव हरि भगत भयउ सुत जासू॥
लघु सुत नाम प्रियब्रत ताही। बेद पुरान प्रसंसहिं जाही॥
देवहूति पुनि तासु कुमारी। जो मुनि कर्दम कै प्रिय नारी॥
आदि देव प्रभु दीन दयाला। जठर धरेउ जेहि कपिल कृपाला॥
सांख्यसास्त्र जिन्ह प्रकट बखाना। तत्व बिचार निपुन भगवाना॥
तेहि मनु राज कीन्ह बहु काला। प्रभु आयसु सब बिधि प्रतिपाला॥

होइ न बिषय बिराग, भवन बसत भा चौथ पन।
हृदय बहुत दुख लाग, जनम गयउ हरि भगति बिन॥

बरबस राज सुतहिं तब दीन्हा। नारिसमेत गवन बन कीन्हा॥
तीरथ बर नैमिष बिख्याता। अति पुनीत साधक सिधि दाता॥
बसहिं तहाँ मुनि सिद्ध समाजा। तहँ हिय हरषि चलेउ मनु राजा॥
पंथ जात सोहहिं मति धीरा। ज्ञान भगति जनु धरे सरीरा॥

पहुँचे जाइ धेनुमति तीरा। हरषि नहाने निरमल नीरा॥
आये मिलन सिद्ध मुनि ज्ञानी। धरम धुरंधर नृपरिषि जानी॥
जहँ जहँ तीरथ रहे सुहाये। मुनिन्ह सकल सादर करवाये॥
कृस सरीर मुनिपट परिधाना। सत समाज नित सुनहिं पुराना॥

द्वादस अच्छर मंत्र पुनि, जपहिं सहित अनुराग।
बासुदेव पद पंकरुह, दम्पति मन अति लाग॥

करहिं अहार साक फल कन्दा। सुमिरहिं ब्रह्म सच्चिदानन्दा॥
पुनि हरि हेतु करन तप लागे। बारि अधार मूल फल त्यागे॥
उर अभिलाष निरंतर होई। देखिय नयन परम प्रभु सोई॥
अगुन अखंड अनंत अनादी। जेहि चिंतहिं परमारथ बादी॥
नेति नेति जेहि बेद निरूपा। चिदानन्द निरुपाधि अनूपा॥
शंभु बिरंचि बिष्णु भगवाना। उपजहिं जासु अंस ते नाना॥
ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई। भगत हेतु लीला तनु गहई॥
जो यह बचन सत्य स्नुति भाषा। तो हमार पूजिहिं अभिलाषा॥

एहि बिधि बीते बरष षट, सहस बारि-आहार।
संबत सप्त सहस्त्र पुनि, रहे समीर अधार॥

बरष सहस दस त्यागेउ सोऊ। ठाढ़े रहे एक पग दोऊ॥
बिधि हरिहर तप देखि अपारा। मनु समीप आये बहु बारा॥
माँगहु बर बहु भाँति लोभाये। परम धीर नहिं चलहिं चलाये॥
अस्थि मात्र होइ रहे सरीरा। तदपि मनागम नहिं कछु पीरा॥
प्रभु सर्वज्ञ दास निज जानी। गति अनन्य तापस नृप रानी॥
माँगु माँगु बर भइ नभवानी। परम गंभीर कृपामृत सानी॥
मृतक जिआवनि गिरा सुहाई। स्रवन रंध्र होइ उर जब आई॥
हृष्ट पुष्ट तन भये सुहाये। मानहुँ अबहिं भवन तें आये॥

स्रवन सुधा सम बचन सुनि, पुलक प्रफुल्लित गात।
बोले मनु करि दण्डवत, प्रेम न हृदय समात॥

सुनु सेवक सुरतरु सुर धेनू। बिधि हरि हर वंदित पद रेनू॥
सेवक सुलभ सकल सुखदायक। प्रनतपाल सचराचर नायक॥
जो अनाथ हित हमपर नेहू। तौ प्रसन्न होइ यह बर देहू॥
जो स्वरूप बस सिव मन माहीं। जेहि कारन मुनि जतन कराहीं॥
जो भुसुंडि मन मानस हंसा। सगुन अगुन जेहि निगम प्रसंसा॥
देखहिं हम सो रूप भरि लोचन। कृपा करहु प्रनतारति मोचन॥
दंपति बचन परम प्रिय लागे। मृदुल बिनीत प्रेमरस पागे॥
भगत बछल प्रभु कृपानिधाना। बिस्व बास प्रकटे भगवाना॥

नील सरोरुह नील मनि, नील नीरधर स्याम।
लाजहिं तन सोभा निरखि, कोटि कोटि सत काम॥

सरद मयंक बदन छबि सींवा। चारु कपोल चिबुक दर ग्रीवां॥
अधर अरुन रद सुंदर नासा। बिधु कर निकर बिनिंदक हासा॥
नव अंबुज अंबक छबि नीकी। चितवनि ललित भावती जीकी॥
भृकुटि मनोज चाप छबिहारी। तिलक ललाट पटल दुतिकारी॥
कुण्डल मकर मुकुट सिर भ्राजा। कुटिल केस जनु मधुप समाजा॥
उर श्रीवत्स रुचिर बनमाला। फटिक हार भूषन मनि माला॥
केहरि कंधर चारु जनेऊ। बाहु बिभूषन सुन्दर तेऊ॥
करि कर सरिस सुभग भुज दण्डा। कटि निषंग कर सर कोदंडा॥

तड़ित बिनिन्दक पीत पट, उदर रेख बर तीनि।
नाभि मनोहर लेति जनु, जमुन भँवर छबि छीनि॥

पद राजीव बरनि नहिं जाहीं। मुनि मन मधुप बसहिं जिन्हमाहीं॥
बाम भाग सोभति अनुकूला। आदि सक्ति छबिनिधि जगमूला॥
जासु अंस उपजहिं गुन खानी। अगिनित लच्छि उमा ब्रह्मानी॥
भृकुटि बिलास जासु जग होई। राम बाम दिसि सीता सोई॥
छबि समुद्र हरिरूप बिलोकी। एक टक रहे नयन पट रोकी॥
चितवहिं सादर रूप अनूपा। तृप्ति न मानहिं मनु सतरूपा॥
हरष बिबस तन दसा भुलानी। परे दंड इव गहिपद पानी॥
सिर परसे प्रभु निज पद कंजा। तुरत उठाये करुना पुंजा॥

बोले कृपानिधान पुनि, अति प्रसन्न मोहि जानि।
माँगहु बर जोइ भाव मन, महादानि अनुमानि॥

सुनि प्रभु बचन जोरि जुग पानी। धरि धीरज बोले मृदुबानी॥
नाथ देखि पद कमल तुम्हारे। अब पूरे सब काम हमारे॥
एक लालसा बड़ि उर माहीं। सुगम अगम कहि जात सो नाहीं॥
तुम्हहिं देत अति सुगम गोसाईं। अगम लागि मोहि निज कृपिनाईं॥
जथा दरिद्र बिबुध तरु पाई। बहु सम्पति माँगत सकुचाई॥
तासु प्रभाउ जान नहिं सोई। तथा हृदय मम संसय होई॥
सो तुम्ह जानहु अंतरजामी। पुरवहु मोर मनोरथ स्वामी॥
सकुच बिहाइ मांगु नृप मोही। मोरे नहिं अदेय कछु तोही॥

दानि सिरोमनि कृपानिधि, नाथ कहउँ सत भाउ।
चाहउँ तुम्हहि समान सुत, प्रभु सन कवन दुराउ॥

देखि प्रीति सुनि बचन अमोले। एवमस्तु करुनानिधि बोले॥
आपु सरिस खोजउँ कहँ जाई। नृप तब तनय होब मैं आई॥
सतरूपहि बिलोकि कर जोरे। देवि माँगु बर जो रुचि तोरे॥

जो बर नाथ चतुर नृप माँगा। सोइ कृपाल मोहि अति प्रिय लागा॥
प्रभु परन्तु सुठि होति ढिठाई। जदपि भगत हित तुम्हहिं सोहाई॥
तुम्ह ब्रह्मादि जनक जग स्वामी। ब्रह्म सकल उर अंतरजामी॥
अस समुझत मन संसय होई। कहा जो प्रभु प्रमान पुनि सोई॥
जे निज भगत नाथ तव अहहीं। जो सुख पावहिं जो गति लहहीं॥

सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति, सोइ निज चरन सनेहु।
सोइ विवेक सोइ रहनि प्रभु, हमहिं कृपा करि देहु॥

सुनि मृदु गूढ़ रुचिर बच रचना। कृपासिन्धु बोले मृदु वचना॥
जो कछु रुचि तुम्हरे मन माहीं। मैं सो दीन्ह सब संसय नाहीं॥
मातु विवेक अलौकिक तोरे। कबहुँ न मिटिहिं अनुग्रह मोरे॥
बन्दि चरन मनु कहेउ बहोरी। अउर एक विनती प्रभु मोरी॥
सुत विषइक तव पद रति होऊ। मोहि बड़ मूढ़ कहइ किन कोऊ॥
मनिबिनु फनि जिमि जलबिनु मीना। मम जीवन तिमि तुमहिं अधीना॥
अस बर माँगि चरन गहि रहेऊ। एवमस्तु करुनानिधि कहेऊ॥
अब तुम मम अनुसासन मानी। बसहु जाइ सुरपति रजधानी॥

तहँ करि भोग बिलास, तात गये कुछ काल पुनि।
होइहहु अवध भुआल, तव मैं होब तुम्हार सुत॥

इच्छामय नर बेष सँवारे। होइहउँ प्रकट निकेत तुम्हारे॥
अंसन्ह सहित देह धरि ताता। करिहउँ चरित भगत सुखदाता॥
जेहि सुनि सादर नर बड़ भागी। भव तरिहहिं ममता मद त्यागी॥
आदि सक्ति जेहि जग उपजाया। सोउ अवतरिहिं मोरि यह माया॥
पुरउब मैं अभिलाष तुम्हारा। सत्य सत्य पन सत्य हमारा॥
पुनि पुनि अस कहि कृपानिधाना। अंतरधान भये भगवाना॥
दंपति उर धरि भगति कृपाला। तेहि आश्रम निबसे कछु काला॥
समय पाइ तन तजि अनयासा। जाइ कीन्ह अमरावति बासा॥

यह इतिहास पुनीत अति, उमहिं कहा वृषकेतु।

× × × ×

इस आख्यायिका का मूल ऐतिहासिक शैली पर श्रीमद्भागवत में पाया जाता है। उसी आधार पर गोस्वामीजी ने उक्त विस्तार किया है। विचारशील पाठक रचना-क्रम से ही 'वर्णन-वैचित्र्य' का अनुमान कर सकते हैं।

(पाँचवीं आख्यायिका)

बिस्व बिदित एक कैकय देसू। सत्यकेतु तहँ बसइ नरेसू॥
धर्म धुरन्धर नीति निधाना। तेज प्रताप सील बलवाना॥

तेहि के भये जुगल सुत बीरा। सब गुन धाम महा रनधीरा॥
राजधनी जो जेठ सुत आही। नाम प्रतापभानु अस ताही॥
अपर सुतहिं अरिमर्दन नामा। भुज बल अतुल अचल संग्रामा॥
भाइहिं भाइहिं परम समीती। सकल दोष छल बरजित प्रीती॥
जेठे सुतहिं राज नृप दीन्हा। हरि हित आपु गवन बन कीन्हा॥

जब प्रताप रवि भयउ नृप, फिरी दोहाई देस।
प्रजा पाल अति बेद बिधि, कतहुँ नहीं अघलेस॥

नृप हितकारक सचिव सयाना। नाम धरमरुचि सुक्र समाना॥
सचिव सयान बन्धु बल बीरा। आपु प्रताप पुंज रनधीरा॥
सेन संग चतुरंग अपारा। अमित सुभट सब समर जुझारा॥
सेन बिलोकि राउ हरषाना। अरु बाजे गहगहे निसाना॥
बिजय हेतु कटकई बनाई। सुदिन साधि नृप चलेउ बजाई॥
जहँ तहँ परी अनेक लराईं। जीते सकल भूप बरिआईं॥
सप्त दीप भुजबल बस कीन्हे। लेइ लेइ दगड छांडि नृप दीन्हे॥
सकल अवनि मण्डल तेहि काला। एक प्रतापभानु महिपाला॥

स्वबस बिस्वकरि बाहुबल, निज पुर कीन्ह प्रवेस।
अरथ धरम कामादि सुख, सेवइ समय नरेस॥

भूप प्रतापभानु बल पाई। कामधेनु भइ भूमि सुहाई॥
सब दुख बरजित प्रजा सुखारी। धरमसील सुन्दर नरनारी॥
सचिव धरमरुचि हरि पद प्रीती। नृप हित हेतु सिखव नित नीती॥
गुरु सुर सन्त पितर महिदेवा। करइ सदा नृप सेवक सेवा॥
भूप धरम जे बेद बखाने। सकल करइ सादर सुख माने॥
दिन प्रति देइ बिबिध बिधि दाना। सुनइ सास्त्र बर बेद पुराना॥
नाना वापी कूप तड़ागा। सुमन वाटिका सुंदर बागा॥
विप्र भवन सुर भवन सुहाये। सब तीरथन्ह बिचित्र बनाये॥

जहँ लगि कहे पुरान स्नुति, एक एक सब जाग।
बार सहस्र सहस्र नृप, किये सहित अनुराग॥

हृदय न कछु फल अनुसन्धाना। भूप बिबेकी परम सुजाना॥
करइ जे धरम करम मन बानी। वासुदेव अरपित नृप ज्ञानी॥
चढ़ि बर बाजि बार एक राजा। मृगया कर सब साजि समाजा॥
बिंध्याचल गँभीर बन गयऊ। मृग पुनीत बहु मारत भयऊ॥
फिरत बिपिन नृप दीख बराहू। जनु बन दुरेउ ससिहिं ग्रसि राहू॥
बड़ बिधु नहिं समान मुख माहीं। मनहुँ क्रोध बस उगिलत नाहीं॥
कोल कराल दसन छबि गाई। तनु बिसाल पीवर अधिकाई॥
घुरघुरात हय आरव पाये। चकित बिलोकत कान उठाये॥

नील महीधर सिखर सम, देखि बिसाल बराह।
चपरि चलेउ हय सुटुकि नृप, हाँकि न होइ निबाह॥

आवत देखि अधिक रव बाजी। चलेउ बराह मरुत गति भाजी॥
तुरत कीन्ह नृप सर सन्धाना। महि मिलि गयउ बिलोकत बाना॥
तकि तकि तीर महीस चलावा। करि छल सुअर सरीर बचावा॥
प्रगटत दुरत जाइ मृग भागा। रिस बस भूप चलेउ सँग लागा॥
गयउ दूरि बन गहन बराहू। जहँ नाहिन गज बाजि निबाहू॥
अति अकेल बन बिपुल कलेसू। तदपि न मृग मग तजइ नरेसू॥
कोल बिलोकि भूप बड़ धीरा। भागि पैठ गिरि गुहा गँभीरा॥
अगम देखि नृप अति पछिताई। फिरेउ महा बन परेउ भुलाई॥

खेद खिन्न छुद्धित तृषित, राजा बाजि समेत।
खोजत ब्याकुल सरित सर, जल बिनु भयउ अचेत॥

फिरत बिपिन आश्रम एक देखा। तहँ बस नृपति कपट मुनि बेखा॥
जासु देस नृप लीन्ह छुड़ाई। समर सेन तजि गयउ पराई॥
समय प्रतापभानु कर जानी। आपन अति असमय अनुमानी॥
गयउ न गृह मन बहुत गलानी। मिला न राजहिं नृप अभिमानी॥
रिस उर मारि रंक जिमि राजा। बिपिन बसइ तापस के साजा॥
तासु समीप गवन नृप कीन्हा। यह प्रताप रबि तेहि तब चीन्हा॥
राउ तृषित नहिं सो पहिचाना। देखि सुबेष महामुनि जाना॥
उतरि तुरग ते कीन्ह प्रनामा। परम चतुर न कहेउ निजनामा॥

भूपति तृषित बिलोकि तेहि, सरवर दीन्ह देखाइ।
मज्जन पान समेत हिय, कीन्ह नृपति हरषाइ॥

गै स्रम सकल सुखी नृप भयऊ। निज आस्रम तापस लै गयऊ॥
आसन दीन्ह अस्त रबि जानी। पुनि तापस बोलेउ मृदुबानी॥
को तुम कस बन फिरहु अकेले। सुन्दर जुवा जीव पर हेले॥
चक्रवर्ति के लच्छन तोरे। देखत दया लागि अति मोरे॥
नाम प्रतापभानु अवनीसा। तासु सचिव मैं सुनहु मुनीसा॥
फिरत अहेरे परेउँ भुलाई। बड़े भाग देखेउँ पद आई॥
हम कहँ दुरलभ दरस तुम्हारा। जानत हौं कछु भल होनिहारा॥
कह मुनि तात भयउ अँधिआरा। जोजन सत्तरि नगर तुम्हारा॥

निसा घोर गंभीर बन, पंथ न सूझ सुजान।
बसहु आज अस जानि तुम्ह, जायहु होत बिहान॥

तुलसी जस भवितव्यता, तैसी मिलइ सहाइ।
आपु न आवइ ताहि पहँ, ताहि तहाँ लेइ जाइ॥

भलेहि नाथ आयसु धरि सीसा। बाँधि तुरग तरु बैठ महीसा ॥
नृप बहुभाँति प्रसंसेउ ताही। चरन बन्दि निज भाग्य सराही ॥
पुनि बोलेउ मृदु गिरा सुहाई। जानि पिता प्रभु करउँ ढिठाई ॥
मोहि मुनीस सुतसेवक जानी। नाम नाथ निज कहहु बखानी ॥
तेहि न जान नृप नृपहिं सो जाना। भूप सुहृद सो कपट सयाना ॥
बैरी पुनि छत्री पुनि राजा। छल बल कीन्ह चहइ निज काजा ॥
समुझि राज सुख दुखित अराती। अवाँ अनल इव सुलगइ छाती ॥
सरल बचन नृप के सुनि काना। बयर सँभारि हृदय हरखाना ॥

कपट बोरि बानी मृदुल, बोलेउ जुगुति समेत।
नाम हमार भिखारि अब, निर्धन रहित निकेत ॥

कह नृप जे विज्ञान निधाना। तुम्ह सारिखे गलित अभिमाना ॥
रहहिं अपन पौ सदा दुराये। सब बिधि कुशल कुवेष बनाये ॥
तेहितें कहहिं संत स्रुति टेरे। परम अकिंचन प्रिय हरिकेरे ॥
तुम्ह सम अधन भिखारि अगेहा। होत बिरंचि सिवहिं संदेहा ॥
जोऽसि सोऽसि तव चरन नमामी। मोपर कृपा करिय अब स्वामी ॥
सहज प्रीति भूपति कै देखी। आप विषय विश्वास विसेखी ॥
सब प्रकार राजहिं अपनाई। बोलेउ अधिक सनेह जनाई ॥
सुनु सतिभाउ कहउँ महिपाला। इहाँ बसत बीते बहुकाला ॥

अब लगि मोहि न मिलेउ कोउ, मैं न जनायेउँ काहु।
लोक मान्यता अनल सम, कर तपकानन दाहु ॥

तुलसी देखि सुबेखु, भूलहिं मूढ़ न चतुर नर।
सुन्दर केकिहिं पेखु, वचन सुधासम असन अहि ॥

तातें गुपुत रहउँ जग माहीं। हरि तजि किमपि प्रयोजन नाहीं ॥
प्रभु जानत सब बिनहिं जनाये। कहहु कवन सिधि लोक रिझाये ॥
तुम्ह सुचि सुमति परम प्रिय मोरे। प्रीति प्रतीति मोहि पर तोरे ॥
अब जो तात दुरावउँ तोही। दारुन दोष घटइ अति मोही ॥
जिमि जिमि तापस कथइ उदासा। तिमि तिमि नृपहिं उपज बिस्वासा ॥
देखा स्वबस करम मन बानी। तब बोला तापस। बक ध्यानी ॥
नाम हमार एकतनु भाई। सुनि नृप बोलेउ पुनि सिर नाई ॥
कहहु नाम कर अरथ बखानी। मोहि सेवक अति आपन जानी ॥

आदि सृष्टि उपजी जबहिं, तब उपजति भइ मोरि।
नाम एकतनु हेतु तेहि, देह न धरी बहोरि ॥

जनि आचरज करहु मनमाहीं। सुत तप ते दुर्लभ कछु नाहीं ॥
तप बल ते जग सृजइ बिधाता। तप बल विष्णु भये परित्राता ॥
तप बल संभु करहिं संहारा। तप ते अगम न कछु संसारा ॥

भयउ नृपहिं सुनि अति अनुरागा। कथा पुरातन कहइ सो लागा॥
करम धरम इतिहास अनेका। करइ निरूपन बिरति बिबेका॥
उद्भव पालन प्रलय कहानी। कहेसि अमित आचरज बखानी॥
सुनि महीप तापस बस भयऊ। आपन नाम कहन तब लयऊ॥
कह तापस नृप जानउँ तोही। कीन्हेउ कपट लाग भल मोही॥

सुनु महीस असि नीति, जहँ तहँ नाम न कहहिं नृप।
मोहि तोहि पर अति प्रीति, सोइ चतुरता बिचारि तव॥

नाम तुम्हार प्रताप दिनेसा। सत्यकेतु तव पिता नरेसा॥
गुरुप्रसाद सब जानिय राजा। कहिय न आपनि जानि अकाजा॥
देखि तात सब सहज सुधाई। प्रीति प्रतीत नीति निपुनाई॥
उपजि परी ममता मन मोरे। कहउँ कथा बिन पूछे तोरे॥
अब प्रसन्न मैं संसय नाहीं। माँगु जो भूप भाव मनमाहीं॥
सुनि सुवचन भूपति हरषाना। गहि पद बिनय कीन्ह बिधि नाना॥
कृपासिन्धु मुनि दरसन तोरे। चारि पदारथ करतल मोरे॥
प्रभुहिं तथापि प्रसन्न बिलोकी। माँगि अगम बर होउँ बिसोकी॥

जरामरन दुख रहित तनु, समर जितइ जनि कोउ।
एक छत्र रिपुहीन महि, राज कलप सत होउ॥

कह तापस नृप ऐसेइ होऊ। कारन एक कठिन सुनु सोऊ॥
कालउ तुव पद नाइहिं सीसा। एक बिप्रकुल छाँड़ि महीसा॥
तप बल बिप्र सदा बरिआरा। तिन्हके कोप न कोउ रखवारा॥
जौं बिप्रन्ह बस करहु नरेसा। तौ तुव बस बिधि बिष्णु महेसा॥
चल न ब्रह्मकुल सन बरिआई। सत्य कहउँ दोउ भुजा उठाई॥
बिप्र स्राप बिनु सुनु महिपाला। तोर नास नहिं कवनेहुँ काला॥
हरखेउ राउ बचन सुनि तासू। नाथ न होइ मोर अब नासू॥
तव प्रसाद प्रभु कृपानिधाना। मोकहँ सर्व काल कल्याना॥

एवमस्तु कहि कपट मुनि, बोला कुटिल बहोरि।
मिलब हमार भुलाब निज, कहहु न हमहिं न खोरि॥

ताते मैं तोहि बरजउँ राजा। कहे कथा तव परम अकाजा॥
छठें स्रवन यह परत कहानी। नास तुम्हार सत्य मम बानी॥
यह प्रगटे अथवा द्विज सापा। नास तोर सुनु भानुप्रतापा॥
आन उपाय निधन तब नाहीं। जौं हरिहर कोपहिं मनमाहीं॥
सत्य नाथ पद गहि नृप भाखा। द्विज गुरु कोप कहहु को राखा॥
राखइ गुरु जो कोप बिधाता। गुरु बिरोध नहिं कोउ जग त्राता॥
जो न चलब हम कहे तुम्हारे। होउ नास नहिं सोच हमारे॥
एकहि उर डरपत मन मोरा। प्रभु महिदेव साप अति घोरा॥

होहिं विप्र बस कवन बिधि, कहहु कृपा करि सोउ ।
तुम्ह तजि दीन दयाल निज, हितू न देखउँ कोउ ॥

सुनु नृप बिबिध जतन जग माहीं । कष्ट साध्य पुनि होहिं कि नाहीं ॥
अहइ एक अति सुगम उपाई । तहाँ परन्तु एक कठिनाई ॥
मम आधीन जुगुति नृप सोई । मोर जाब तव नगर न होई ।
आजु लगे अरु जब तें भयऊँ । काहू के गृह ग्राम न गयऊँ ॥
जौं न जाउँ तो होय अकाजू । बना आइ असमंजस आजू ॥
सुनि महीस बोलेउ मृदुबानी । नाथ निगम अस नीति बखानी ॥
बड़े सनेह लघुन पर करहीं । गिरि निज सिरन्ह सदा तृन धरहीं ॥
जलधि अगाध मौलि बह फेनू । संतत धरनि धरत सिर रेनू ॥

अस कहि गहे नरेस पद, स्वामी होहु कृपाल ।
मोहि लागि दुख सहिय प्रभु, सज्जन दीनदयाल ॥

जानि नृपहिं आपन आधीना । बोला तापस कपट प्रवीना ॥
सत्य कहउँ भूपति सुनि तोही । जग नाहिंन दुर्लभ कछु मोही ॥
अवसि काज मैं करिहउं तोरा । मन तन बचन भगत तैं मोरा ॥
जोग जुगुति तप मंत्र प्रभाऊ । फलइ तबहिं जब करिअ दुराऊ ॥
जौं नरेस मैं करउं रसोई । तुम्ह परसहु मोहि जान न कोई ॥
अन्न सो जोइ जोइ भोजन करई । सोइ सोइ तव आयसु अनुसरई ॥
पुनि तिन्हके गृह जेंवइ जोऊ । तव बस होइं भूप सुनु सोऊ ॥
जाइ उपाय रचहु नृप एहू । संवत भरि संकलप करेहू ॥

नित नूतन द्विज सहस सत, बरेउ सहित परिवार ।
मैं तुम्हरे संकलप लगि, दिनहिं करब जेवनार ॥

यहि बिधि भूप कष्ट अति थोरे । होइहहिं सकल विप्र बस तोरे ॥
करिहहिं विप्र होम मख सेवा । तेहि प्रसंग सहजहिं बस देवा ॥
अउर एक तोहि कहउँ लखाऊ । मैं यहि बेष न आउब काऊ ॥
तुम्हरे उपरोहित कहँ राया । हरि आनब मैं निज करि माया ॥
तपबल तेहि करि आपु समाना । रखिहउं इहाँ बरष परमाना ॥
मैं धरि तासु बेष सुनु राजा । सब बिधि तोर संवारब काजा ॥
गइ निसि बहुत सयन अब कीजे । मोहि तोहि भूप भेंट दिन तीजे ॥
मैं तप बल तोहि तुरग समेता । पहुँचइहउँ सोवतहिं निकेता ॥

मैं आउब सोइ वेष धरि, पहिचानउ तब मोहि ।
जब एकांत बुलाइ सब, कथा सुनावउँ तोहि ॥

सयन कीन्ह नृप आयसु मानी । आसन जाइ बैठ छल ज्ञानी ॥
स्रमित भूप निद्रा अति आई । सो किमि सोव सोच अधिकाई ॥
कालकेतु निसिचर तहँ आवा । जेइ सूकर होइ नृपहिं भुलावा ॥

परम मित्र तापस नृप केरा। जानइ सो अति कपट बनेरा॥
तेहि के सत सुत अरु दस भाई। खल अति अजय देव दुखदाई॥
प्रथमहिं भूप समर सब मारे। विप्र सन्त सुर देखि दुखारे॥
तेहि खल पाछिल बयरु संभारा। तापस नृप मिलि मंत्र विचारा॥
जेहि रिपु छय सोइ रचेहि उपाऊ। भावी बस न जान कछु राऊ॥

रिपु तेजसी अकेल अपि, लघु करि गनिय न ताहु।
अजहुँ देत दुख रवि ससिहिं, सिर अवसेषित राहु॥

तापस नृप निज सखहिं निहारी। हरखि मिलेउ उठि भयउ सुखारी।
मित्रहिं कहि सब कथा सुनाई। जातुधान बोला सुख पाई॥
अब साधेउ रिपु सुनहु नरेसा। जौं तुम्ह कीन्ह मोर उपदेसा॥
परिहरि सोच रहहु तुम सोई। बिन औषध बिआधि विधि खोई॥
कुल समेत रिपु मूल बहाई। चौथे दिवस मिलब मैं आई॥
तापस नृपहिं बहुत परितोषी। चला महा कपटी अति रोषी॥
भानुप्रतापहिं बाजि समेता। पहुँचायसि छन माँझ निकेता॥
नृपहिं नारिपहिं सयन कराई। हय गृह बाँधेसि बाजि बनाई॥

राजा के उपरोहितहिं, हरि लेइ गयउ बहोरि।
लेइ राखेसि गिरि खोह महँ, माया करि मति भोरि॥

आपु विरचि उपरोहित रूपा। परेउ जाइ तेहि सेज अनूपा॥
जागेउ नृप अन भये बिहाना। देखि भवन अति अचरज माना॥
मुनि महिमा मन महँ अनुमानी। उठेउ गवहिं जेहि जान न रानी॥
कानन गयउ बाजि चढ़ि तेही। पुर नरनारि न जानेउ केही॥
गये जाम जुग भूपति आवा। घर घर उत्सव बाज बधावा॥
उपरोहितहिं देख जब राजा। चकित बिलोकसुमिरिसोइ काजा॥
जुग सम नृपहिं गये दिन तीनी। कपटी मुनि पद रहि मति लीनी॥
समय जानि उपरोहित आवा। नृपहिं मते सब कहि समुझावा॥

नृप हरखेउ पहिचानि गुरु, भ्रम बस रहा न चेत।
बरे तुरत सत सहस बर, विप्र कुटुम्ब समेत॥

उपरोहित जेवनार बनाई। छरस चारिविधि जसस्रुति गाई॥
माया मय तेहि कीन्ह रसोई। बिंजन बहु गनि सकइ न कोई॥
विविध मृगन्ह कर आमिष राँधा। तेहि महँ विप्र मांस खल साँधा॥
भोजन कहँ सब विप्र बोलाये। पग पखारि सादर बैठाये॥
परुसन जबहिं लाग महिपाला। भइ अकास बानी तेहि काला॥
विप्र वृन्द उठि उठि गृह जाहू। है बड़ि हानि अन्न जनि खाहू॥
भयउ रसोईं भूसुर मांसू। सब द्विज उठे मानि विस्वासू॥
भूप विकल मति मोह भुलानी। भावी बस न आव मुख बानी॥

बोले विप्र सकोप तब, नहिं कछु कीन्ह विचार।
जाइ निसाचर होइ नृप, मूढ़ सहित परिवार॥

इस कथा के अनन्तर भानुप्रताप राजा का रावण के स्वरूप में प्रकट होना लिखा गया है। उसका अरिमर्दन नामक अनुज कुम्भकर्ण हुआ था और धर्म-रुचि नाम का मंत्री बिभीषण के रूप में अवतीर्ण हुआ। इसके अतिरिक्त राजा के पुत्रों और सेवकों का घोर निशाचर के स्वरूप में प्रकट होना लिखा गया है। इन्हीं राक्षसों के अत्याचार का अन्त करने के निमित्त रामावतार हुआ था। [illegible] आख्यायिका महाकवि के मस्तिष्क की मौलिकता का पूर्ण निदर्शन कराती है। मेरी धारणा है कि साधारण जनता में अवतारवादके प्रति विश्वास दिलाने के विचार से गोस्वामीजी ने उपरि लिखित पाँचों आख्यायिकाओं की रचना की है। इन गाथाओं और उपाख्यानों में कविराज ने वर्णन-वैचित्र्य की पूरी शक्ति लगा दी है।

मदन-दहन

रामचरितमानस में मदन-दहन की कथा बड़े ही विस्तार से लिखी है। गोस्वामीजी ने इस गाथा को कवि-कुल-कुमुद-कलाप-कलाधर कालिदास जी के 'कुमारसम्भव' से लिया है। संसार जानता है कि 'काम' कोई शरीरधारी व्यक्ति नहीं, अपितु मनोविकार मात्र है। मनसिज, मनोज, और मनोभव इत्यादि शब्द ही इस कथन की पर्याप्त रूप से पुष्टि करते हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने इस कामदेव का कुतूहल बहुत ही ओजस्विनी और सजीव भाषा में लिख कर इसके विशाल विग्रह का भस्मीभूत होना लिखा है। कविराज को वास्तव में शिव जी की प्रभुता एवं जितेन्द्रियता का उल्लेख अभीष्ट था। पाठक आगे की कथा पर विचार-पूर्वक मनन करें तो वे इस आख्यायिका के तथ्य तक पहुँच सकेंगे।

कोपेउ जबहिं बारिचर केतू। छन महँ मिटेउ सकल श्रुति सेतू॥

यह सत्य है कि जब मनुष्य के चित्त में काम के उद्वेग का उत्साह होता है तो उस समय धर्म की मर्यादा चलायमान हो जाती है। कवि ने स्पष्ट लिखा है—

ब्रह्मचर्य ब्रत संयम नाना। धीरजधर्म ज्ञान विज्ञाना॥
सदाचार जप जोग बिरागा। सभय विवेक कटक सब भागा॥

आगे की आख्यायिका में अत्यन्त विशद रीति से चराचर जगत का कामदेव के वश में होना दिखलाया है, जो वास्तव में अतिशयोक्ति अलंकार मात्र है। आगे के

तब शिव तीसर नैन उघारा। चितवत मार भयउ जरि छारा॥

इस पद्य में गोस्वामी जी ने तृतीय नेत्र के उद्घाटन से काम का भस्म-सात् होना लिखा है। वास्तव में यह तीसरा नेत्र भौतिक नहीं; अपितु ज्ञान का है, जिससे प्रत्येक विचारशील अभ्यासी मनुष्य काम-वेग का उपशमन कर सकता है।

तुम्हरे जान काम अब जारा। अब लगि शंभु रहे सविकारा॥

यह चौपाई ही सिद्ध करती है कि निर्विकार होने को ही काम का जलाना वा दमन करना जानना चाहिये। पाठकों के मनो-विनोदार्थ हम इस उपाख्यान को अविकल उद्धृत करते हैं:—

तारक असुर भयउ तेहि काला। भुज प्रताप बल तेज बिसाला॥
तेइ सब लोक लोकपति जीते। भये देव सुख संपति रीते॥
अजर अमर सो जीति न जाई। हारे सुर करि बिबिध लराई॥
तब बिरंचि पहँ जाइ पुकारे। देखे बिधि सब देव दुखारे॥

सब सन कहा बुझाइ बिधि, दनुज निधन तब होइ।
संभु सुक्र संभूत सुत, एहि जीतै रन सोइ॥

मोर कहा सुनि करहु उपाई। होइहि ईस्वर करिहि सहाई॥
सती जो तजी दच्छ मख देहा। जनमी जाइ हिमाचल गेहा॥
तेहि तप कीन्ह संभुपति लागी। सिव समाधि बैठे सब त्यागी॥
जदपि अहइ असमंजस भारी। तदपि बात इक सुनहु हमारी॥
पठवहु काम जाइ सिव पाहीं। करइ छोभ संकर मन माहीं॥
तब हम जाइ सिवहि सिरनाई। करवाउब बिवाह बरिआई॥
एहि बिधि भलेहि देवहित होई। मत अति नीक कहै सब कोई॥
अस्तुति सुरन्ह कीन्ह अति हेतू। प्रगटेउ बिषमबान झषकेतू॥

सुरन्ह कही निज बिपति सब, सुनि मन कीन्ह बिचार।
संभु बिरोध न कुसल मोहि, बिहँसि कहेउ अस मार॥

तदपि करब मैं काज तुम्हारा। स्रुति कह परम धरम उपकारा॥
परहित लागि तजइ जो देही। संतत संत प्रसंसहिं तेही॥
अस कहि चलेउ सबहि सिर नाई। सुमन धनुष कर सहित सहाई॥
चलत मार अस हृदय बिचारा। सिव बिरोध ध्रुव मरन हमारा॥
तब आपन प्रभाउ बिस्तारा। निज बस कीन्ह सकल संसारा॥
कोपेउ जबहिं बारिचर केतू। छन महँ मिटे सकल स्रुति सेतू॥
ब्रह्मचर्य ब्रत संजम नाना। धीरज धरम ज्ञान बिज्ञाना॥
सदाचार जप जोग बिरागा। सभय बिबेक कटक सब भागा॥

भागेउ बिबेक सहाइ सहित सो सुभट संजुग महि मुरे।
सद्ग्रन्थ पर्वत कन्दरन्हि महँ जाइ तेहि अवसर दुरे॥
होनिहार का करतार को रखवार जग खरभर परा।
दुइ माथ केहि रतिनाथ जेहि कहँ कोपि कर धनु सर धरा॥

जे सजीव जग चर-अचर, नारि पुरुष अस नाम।
ते निज निज मरजाद तजि, भये सकल बस काम॥

सब के हृदय मदन अभिलाखा। लता निहारि नवहिं तरु साखा॥
नदी उमगि अंबुधि कहँ धाई। संगम करहिं तलाब तलाई॥
जहँ असि दसा जड़न की बरनी। को कहि सकइ सचेतन्ह करनी॥
पसु पच्छी नभ जल थल चारी। भये काम बस समय बिसारी॥
मदन अन्ध व्याकुल सब लोका। निस दिन नहिं अवलोकहि कोका॥
देव दनुज नर किन्नर व्याला। प्रेत पिसाच भूत बैताला॥
इन्ह कै दसा न कहेउ बखानी। सदा काम के चेरे जानी॥
सिद्ध विरक्त महामुनि जोगी। तेपि काम बस भये बियोगी॥

भये कामबस जोगीस तापस पामरन की को कहै।
देखहिं चराचर नारिमय जे ब्रह्ममय देखत रहै॥
अबला बिलोकहिं पुरुषमय जग पुरुष सब अबलामयं।
दुइ दण्ड भरि ब्रह्माण्ड भीतर काम कृत कौतुक अयं॥

धरा न काहू धीर, सब के मन मनसिज हरे।
जेहि राखे रघुबीर, ते उबरे तेहि काल महँ॥

उभय घरी अस कौतुक भयऊ। जब लगि काम संभु पहँ गयऊ॥
सिवहिं बिलोकि ससंकेउ मारू। भयउ जथाथिति सब संसारू॥
भये तुरत जग जीव सुखारे। जिमि मद उतरि गये मतवारे॥
रुद्रहिं देखि मदन भय माना। दुराधर्ष दुर्गम भगवाना॥
फिरत लाज कछु करि नहिं जाई। मरन ठानि मन रचेसि उपाई॥
प्रगटेसि तुरत रुचिर रितुराजा। कुसुमित नव तरु राजि बिराजा॥
बन उपवन वापिका तड़ागा। परम सुभग सब दिसा बिभागा॥
जहँ तहँ तनु उमगत अनुरागा। देखि मुएहु मन मनसिज जागा॥

जागइ मनोभव मुएहु मन बन सुभगता न परै कही।
सीतल सुगन्ध सुमन्द मारुत मदन अनल सखा सही॥
बिकसे सरन्हि बहु कञ्ज गुञ्जत पुंज मंजुल मधुकरा।
कल हंस पिक सुक सरस रव करि गान नाचहिं अपछरा॥

सकल कला करि कोटि विधि, हारेउ सेन समेत।
चली न अचल समाधि सिव, कोपेउ हृदय निकेत॥

देखि रसाल बिटप वर साखा। तेहि पर चढ़ेउ मदन मन माखा॥
सुमन चाप निज सर सन्धाने। अति रिस ताकि स्रवन लगिताने॥
छाँड़ेउ विषम बान उर लागे। छूटि समाधि संभु तब जागे॥
भयउ ईस मन छोभ बिसेखी। नयन उघारि सकल दिसि देखी॥
सौरभ पल्लव मदन बिलोका। भयउ कोप कंपेउ त्रय लोका॥
तब सिव तीसर नयन उघारा। चितवत काम भयउ जरि छारा॥

हाहाकार भयउ जग भारी। डरपे सुर भये असुर सुखारी॥
समुझि काम सुख सोचहिं भोगी। भये अकंटक साधक जोगी॥

जोगी अकण्टक भये पति-गति सुनत रति मुरछित भई।
रोदति बदति बहु भांति करुना करति संकर पहँ गई॥
अतिप्रेम करि बिनती बिबिध विधि जोरि कर सनमुख रही।
प्रभु आसुतोष कृपाल सिव अबला निरखि बोले सही॥

अब तें रति तव नाथ कर, होइहिं नाम अनंग।
बिनु बपु व्यापहिं सबहिं पुनि, सुनु निज मिलन प्रसंग॥

जब जदुबंश कृष्ण अवतारा। होइहिं हरन महा महि भारा॥
कृष्ण तनय होइहिं पति तोरा। बचन अन्यथा होइ न मोरा॥

रति गवनी सुनि संकर बानी"

ऊपर की आख्यायिका में महाकविने जो कुछ लिखा है वह सब 'वर्णन-वैचित्र्य' की बानगी मात्र है।

पार्वती की उत्पत्ति

साधारण जनता की धारणा है कि पार्वती का पिता हिमाचल पर्वत है। परन्तु आजकल की शिक्षित जनता का एक बड़ा भाग इसे मानने को तैयार नहीं है। हाँ, हिमाचल नाम का कोई व्यक्तिविशेष हो, अथवा हिमालय पर्वत का कोई राजा हो उसका भी सहचारी अर्थ में हिमाचल ही नाम लिखा गया हो तो संगति लग सकती है। पार्वती पूर्व जन्म में दक्षप्रजापति की कन्या थी, जिसका वर्णन 'राम-चरित-मानस' में विस्तार के साथ आया है। उस जन्म में सती का विवाह शिव जी के साथ हुआ था। दक्षप्रजापति के यज्ञ में शिव जी का अपमान न सहन कर सती ने मखाग्नि में अपने शरीर को भस्मसात् कर दिया। दूसरे जन्म में वही सती हिमाचल पर्वत के अधिष्ठाता के गृह में अवतीर्ण हुई और इस जीवन में भी शिवजी के साथ विवाह होने के निमित्त घोर तपस्या की। तपस्या के अनन्तर वरदान मिलने पर

पार्वती का विवाह

शिवजी के साथ हुआ। गोस्वामीजीने 'राम-चरित-मानस' में इस विवाह की कथा लिखते हुए 'वर्णन-वैचित्र्य' से बहुत कुछ काम लिया है। कविराज ने लिखा है:—

इहाँ हिमाचल रचेउ बिताना। अति विचित्र नहिं जाइ बखाना॥
सैल सकल जहँ लगि जग माहीं। लघु बिसाल नहिं बरनि सिराहीं॥
वन सागर नद नदी तलावा। हिमगिरि सब कहँ नेवति पठावा॥

काम रूप सुन्दर तनु धारी। सहित समाज सोह बर नारी॥
आये सकल हिमाचल गेहा। गावहिं मंगल सहित सनेहा॥

ऊपर के पद्यों पर पाठक विचार-दृष्टिपात करें। पर्वत, वन, समुद्र, नद, नदी और तालाब सब के सब सुन्दर शरीर धारण कर अपनी २ स्त्रियों के साथ हिमाचल पर्वत के गृह पर निमन्त्रण में आये, यह बात सीधे अर्थ में असम्भव है। क्योंकि (१) पर्वतादि स्थावर पदार्थ हैं (२) इनकी स्त्रियाँ नहीं हुआ करतीं (३) नदी की स्त्री कौन होगी ? और (४) पर्वत और समुद्रादि किसी के गृह पर पधारें तो इनके लिये पर्याप्त स्थान चाहिये, इत्यादि। इन पद्यों की संगति अथवा समन्वय तो यह है कि इनके अधिष्ठाता (राजा) आये थे। स्पष्ट देख लीजिये, विवाहोपरान्त हिमाचल ने सब आमन्त्रितों को यथायोग्य सादर विदा किया है:—

तुरत भवन आये गिरिराई। सकल सैल सर लिये बुलाई॥
आदर दान विनय बहु माना। सब कर बिदा कीन्ह हिमवाना॥

विचारशील पाठक इस 'वर्णन-वैचित्र्य' को अवश्य समझ गये होंगे। 'राम-चरित-मानस' के अयोध्याकाण्ड में लिखित

राम-बन-गमन

का कारण भी विचारणीय स्थल है। हम पीछे 'देवता और तुलसीदास' शीर्षक में देवता क्या है ? इस पर सविस्तर विवेचन कर चुके हैं। देवताओं की सृष्टि यदि किसी लोक विशेष में मानी भी जाय तो भी उनके आचार-विचार को आदर्श एवं अनुकरणीय मानना पड़ेगा। ऐसे देवताओं के संबन्ध में गोस्वामी जी

'विघ्न मनावहिं देव कुचाली'

इत्यादि शब्दों का प्रयोग नहीं कर सकते। दूसरी बात यह है कि देवताओं ने सरस्वती को मन्थरा के पास भेजा, ऐसा लेख 'राम-चरित-मानस' में प्रस्तुत है। यह सरस्वती शरीर धारी स्त्री थी, इस बात को मानने के लिये आज की शिक्षित जनता का एक बड़ा भाग तैयार नहीं है।

ऐसी दशा में जब कि देवता और सरस्वती की बात असत्य मानी जाय तो मर्यादापुरुषोत्तम भगवान रामचन्द्र जी महाराज के बनगमन का इतिहास ही निर्मूलक और आधार शून्य हो जाता है। इस संबन्ध में मैंने जो कुछ विचारा है वह लेखनी के द्वारा पाठकों की सेवा में सादर समर्पित करता हूं।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने स्वरचित सतसई में एक निम्न लिखित दोहा लिखा है:—

तुलसी खल बानी विमल, सुनि समुझब हिय हेरि।
राम राज बाधक भई, मन्द मंथरा चेरि॥

इस दोहे पर पूर्ण विचार करते हुए आप प्रकृत प्रसङ्ग पर आवें। मन्थरा जैसी तुच्छ और दुष्टा दासी ने अपनी

'देति मनहुँ माहुर मधु बोरी'

के समान विमल वाणी से कैकेयी के हृदय पर अपनी हित-चिन्तकता का प्रभाव उत्पन्न कर राम के अभिषेक में बाधा डाल दी। इसी कथा को अत्यन्त रोचक बना कर 'राम-चरित-मानस' में गोस्वामी जी ने अत्यन्त विस्तार के साथ लिखा है। वास्तव में बात यह है कि मन्थरा, महारानी कैकेयी की दासी थी जिसका मन अत्यन्त दुष्ट भावाविष्ट था। महर्षि वाल्मीकि ने लिखा है कि यह दासी कैकेयी के साथ उसके नैहर से ही अयोध्या आई थी। उसके हृदय में यह बात आयी कि यदि राम को अभिषेक हो गया तो कौशल्या की बन पड़ेगी और कैकेयी की उतनी प्रतिष्ठा नहीं होगी, अतः मेरी भी स्थिति अच्छी नहीं रहेगी। आप समझिये कि स्वार्थ तत्परा दुष्टा मन्थरा का मन ही कुटिल देवता है जिसने उसकी बुद्धि को प्रेरित किया। इस रूपक में मन्थरा की मेधा ही सरस्वती है। सरस्वती (वाणी) की सहायता से वाक्य-रचना द्वारा मन्थरा ने राम को वनवास दिलाने का पूर्ण प्रबन्ध कर लिया और कैकेयी के पास चली। 'राम-चरित-मानस' में गोस्वामी जी ने मन्थरा-कैकेयी संवाद को बड़े विस्तार के साथ लिखा है, जिसे मनोयोगपूर्वक पाठ करने से पाठकों को इस बात का निश्चय हो जायगा कि मन्थरा की दुष्टा सरस्वती (दुर्बुद्धि) की प्रेरणा से ही अयोध्या का साम्राज्य आपद्ग्रस्त हो गया। इसी शनैश्चरी की कुदृष्टि से १४ वर्षों तक अयोध्या की प्रजाओं और राज्य-परिवार को घोर विपत्तियों का सामना करना पड़ा। इस इतिहास को महाकविने सालंकार और वर्णन-वैचित्र्य-युक्त लिखा है।

ऋद्धि-सिद्धि

योगदर्शन के विभूतिपाद में पतंजलि मुनिजी ने योग की विभूतियों का वर्णन करते हुए

'ततोऽणिमादि प्रादुर्भावः कायसंपत्तद्धर्मानभिघातश्च'

सूत्र ४४ वें में अणिमादि सिद्धियों का उल्लेख किया है। सिद्धियाँ आठ हैं। १—अणिमा (देह को सूक्ष्म करना), २—लघिमा (देह के बोझ को अत्यन्त हलका कर देना), ३—महिमा (देह को विस्तार में बड़ा करना), ४—गरिमा (देह के बोझ को गुरु अर्थात् भारी कर देना), ५—प्राप्ति (इष्ट पदार्थ को अपने समीप मँगा लेना), ६—प्राकाम्य (इच्छा की पूर्ति में विलम्ब न होना), ७—वशित्व (सबको वशीभूत करना) और ८—ईशत्व (भौतिक पदार्थों को उत्पन्न एवं नष्ट कर सकने का अधिकार)।

ये सिद्धियाँ योगियों को नाना विध के संयमों से स्वयमेव उपलब्ध होती है परन्तु योगीजन इन पर भी विजय प्राप्त कर समाधि के सम्मुख संलग्न होते हैं। गोस्वामीजी ने भी

'ऋद्धि सिद्धि प्रेरे बहु भाई। बुद्धिहिं लोभ दिखावे जाई' ॥

में इन सिद्धियों को योग-पथ में बाधक ही लिखा है। 'राम-चरित-मानस' में जहाँ भरतजी भरद्वाज ऋषि के आश्रम में गये हैं वहाँ सिद्धियों का वर्णन करते हुए गोस्वामीजी ने 'वर्णन-वैचित्र्य' से भी काम लिया है:—

करि प्रबोध मुनिवर कहेउ, अतिथि प्रान प्रिय होहु।
कन्द मूल फल फूल हम, देहिं लेहु करि छोहु ॥

सुनि मुनि बचन भरत हिय सोचू। भयेउ कुअवसर कठिन सँकोचू ॥
जानि गरुइ गुरु गिरा बहोरी। चरन बन्दि बोले कर जोरी ॥
सिर धरि आयसु करिय तुम्हारा। परम धरम यह नाथ हमारा ॥
भरत बचन मुनिवर मन भाये। सुचि सेवक सिष निकट बोलाये ॥
चाहिय कीन्ह भरत पहुनाई। कंद मूल फल आनहु जाई ॥
भलेहि नाथ कहि तिन्ह सिर नाये। प्रमुदित निज निज काज सिधाये ॥
मुनिहिं सोच पाहुन बड़ नेवता। तसि पूजा चाहिय जस देवता ॥
सुनि रिधि सिधि अणिमादिक आईं। आयसु होइ सो करों गोसाईं ॥

राम बिरह व्याकुल भरत, सानुज सहित समाज।
पहुनाई करि हरहु स्रम, कहा मुदित मुनिराज ॥

ऋधिसिधिसिरधरि मुनिवरबानी। बड़ि भागिनि आपुहि अनुमानी ॥
कहहिं परस्पर सिधि समुदाई। अतुलित अतिथि राम लघु भाई ॥
मुनि पद बन्दि करिय सोइ आजू। होइ सुखी सब राज समाजू ॥
अस कहि रचेउ रुचिर गृह नाना। जेहि बिलोकि बिलखाहिं बिमाना ॥
योग बिभूति भूरि भरि राखे। देखत जिनहिं अमर अभिलाखे ॥
दासी दास साज सब लीन्हें। जोगवत रहहिं मनहिं मन दीन्हें ॥
सब समाज सजि सिधि पल माहीं। जे सुख सुरपुर सपनेहुँ नाहीं ॥
प्रथमहिं बास दिये सब केही। सुन्दर सुखद जथा रुचि जेही ॥

बहुरि सपरिजन भरत कहँ, ऋषि अस आयसु दीन्ह।
बिधि बिस्मयदायक बिभव, मुनिवर तप बल कीन्ह ॥

मुनि प्रभाव जब भरत बिलोका। सब लघु लगे लोकपति लोका ॥
सुख समाज नहिं जाइ बखानी। देखत बिरति बिसारद ज्ञानी ॥
आसन सयन सुबसन बिताना। बन बाटिका बिहँग मृग नाना ॥
सुरभि फूल फल अमिय समाना। बिमल जलासय बिबिध बिधाना ॥
असन पान सुचि अमिय अमीसे। देखि लोग सकुचात जमीसे ॥

सुर सुरभी सुरतरु सब ही के। लखि अभिलाष सुरेस सची के ॥
ऋतु बसन्त बह बिबिध बयारी। सब कहँ सुलभ पदारथ चारी ॥
स्रक चन्दन बनितादिक भोगा। देखि हरष बिस्मय बस लोगा ॥
संपति चकई भरत चक, मुनि आयसु खेलवार।
तेहि निसि आस्रम पींजरा, राखे भा भिनुसार ॥

ऊपर के उद्धरण में महाकवि ने महर्षि भरद्वाज की सिद्धि में 'प्राप्ति' एवं 'प्राकाम्य' का वर्णन करते हुए 'वर्णन-वैचित्र्य' का भी संमिश्रण करदिया। सिद्धियों का सशरीर आना, उनसे ऋषिराज का वार्तालाप एवं उन सिद्धियों की अतिथि-सेवा इत्यादि सभी वर्णनशैली की विचित्रता मात्र है।

'रामचरित-मानस' सुन्दरकाण्ड में जब हनुमानजी सीता का पता लेने समुद्र पार जाने लगे हैं वहाँ हनुमान की अणिमा, महिमा, लघिमा तथा गरिमादि सिद्धियों का वर्णन करते हुए गोस्वामी जी ने 'वर्णन-वैचित्र्य' भी चित्रित किया है। देखिये:—

अस कहि नाइ सबन कहँ माथा। चलेउ हरषि हिय धरि रघुनाथा ॥
सिंधु तीर एक सुन्दर भूधर। कौतुक कूदि चढ़ेउ ता ऊपर ॥
बार बार रघुबीर सँभारी। तरकेउ पवनतनय बल भारी ॥
जेहि गिरि चरन देत हनुमंता। सो चलिगा पाताल तुरंता ॥
जिमि अमोघ रघुपति कर बाना। ताही भाँति चले हनुमाना ॥
जलनिधि रघुपति दूत बिचारी। तै मैनाक होहि स्रमहारी ॥
सिंधु बचन सुनि कान, तुरत उठेउ मैनाक तब।
कपि कहँ कीन्ह प्रनाम, बार बार कर जोरिकै ॥

जात पवनसुत देवन्ह देखा। जाना चह बल बुद्धि बिसेखा ॥
सुरसा नाम अहिन की माता। पठइन्हि आइ कही तेहि बाता ॥
आजु सुरन्ह मोहि दीन्ह अहारा। सुनत बचन कह पवन कुमारा ॥
राम काज करि फिरि मैं आवौं। सीता को सुधि प्रभुहिं सुनावौं ॥
तब तव बदन पैठिहौं आई। सत्य कहौं मोहि जान दै माई ॥
कवनेहु जतन देइ नहिं जाना। ग्रससि न मोहि कहेउ हनुमाना ॥
जोजन भरि तेहि बदन पसारा। कपितन कीन्ह दुगुन बिस्तारा ॥
सोरह जोजन मुख तेहि ठयऊ। तुरत पवनसुत बत्तिस भयऊ ॥
जस जस सुरसा बदन बढ़ावा। तासु दून कपि रूप दिखावा ॥
सतजोजन तेहि आनन कीन्हा। अति लघु रूप पवनसुत लीन्हा ॥
बदन पैठि पुनि बाहिर आवा। मांगी बिदा ताहि सिर नावा ॥
मोहि सुरन्ह जेहि लागि पठावा। बुधि बल मरम तोर मैं पावा ॥
राम काज सब करिहहु, तुम बल बुद्धि-निधान।
आसिष दै सुरसा चली, हरषि चले हनुमान ॥

निसिचरि एक सिंधु महँ रहई। करि माया नभके खग गहई॥
जीव जन्तु जे गगन उड़ाहीं। जल बिलोकि तिनकी परछाहीं॥
गहै छाँह सक सो न उड़ाई। एहि बिधि सदा गगनचर खाई॥
सोइ छल हनूमान तें कीन्हा। तासु कपट कपि तुरतहिं चीन्हा॥
ताहि मारि मारुत सुत बीरा। बारिधिपार गयउ मतिधीरा॥

इन ऊपर के उद्धरणों में समुद्र का मैनाक को भेज कर हनुमान का सत्कार कराना, सुरसा-हनुमान की कथा एवं राक्षसी वध इन सब उपाख्यानों में 'वर्णन-वैचित्र्य' से काम लिया गया है। वाल्मीकिजीने लिखा है कि हनुमान जी तैर कर समुद्र पार गये थे। मार्ग में तैरते तैरते थक जाने पर समुद्रस्थ मैनाक पर किञ्चिद् विश्राम कर लिया। सुरसा तथा राक्षसी की कथा गोस्वामी जी की विरचित आख्यायिका है। इसी प्रकार

'मसक समान रूप कपि धरी। लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी॥'

पद्य में हनुमान की अणिमा सिद्धि का वर्णन किया है।

'राम चरित-मानस' के सुन्दरकाण्ड के अन्त में जो

सेतु-बन्ध

की भूमिका है वह तो 'वर्णन-वैचित्र्य' से ही ओत-प्रोत है। मर्यादापुरुषोत्तम जब सीता का समाचार हनुमान के द्वारा पा चुके तब लङ्का पर चढ़ाई करने के विचार से ससैन्य समुद्र-तट पर आ डटे। समुद्र की अगाधता को देख कर उसके पार जाने का सहसा कोई सुलभ मार्ग नहीं सूझा। तीन दिनों तक मन्त्रियों तथा सेना के साथ विचार करते रहे। समुद्र के अधिष्ठाता (राजा) ने पहले इनकी उपेक्षा की, अर्थात भेंट तक न की। अन्त में महाराज ने अपने पराक्रम से उसे भयभीत कर दिया और वह सादर मणि-माणिक भेंट लेकर इनकी शरण आया और उसने सेतु बाँधने का परामर्श देकर नल-नील के गुणों का परिचय दिलाया है। आप इन पद्यों पर विचार करें:—

विनय न मानत जलधि जड़, गये तीनि दिन बीति।
बोले राम सकोप तब, भय बिनु होइ न प्रीति॥

लछिमन बान सरासन आनू। सोखउँ बारिधि बिसिख कृसानू॥
सठ सन विनय कुटिल सन प्रीती। सहज कृपिन सन सुन्दर नीती॥
ममतारत सन ज्ञान कहानी। अति लोभी सन बिरति बखानी॥
क्रोधिहिं सम कामिहिं हरि कथा। ऊसर बीज बये फल जथा॥
अस कहि रघुपति चाप चढ़ावा। यह मत लछिमन के मन भावा॥
संधानेउ प्रभु बिसिख कराला। उठी उदधि उर अन्तर ज्वाला॥

मकर-उरग-झष-गन-अकुलाने । जरत जन्तु जल-निधि जब जाने ॥
कनकथार भरि अनिगन नाना । बिप्र-रूप आयउ तजि माना ॥

काटेहि पै कदली फरइ, कोटि जतन कोउ सींच ।
विनय न मान खगेस सुनु, डाँटेहि पै नव नीच ॥

सभय सिंधु गहि पद प्रभु केरे । छमहु नाथ सब अवगुन मेरे ॥
गगन समीर अनल जल धरनी । इन्ह कइ नाथ सहज जड़ करनी ॥
तब प्रेरित माया उपजाये । सृष्टि हेतु सब ग्रन्थन्हि गाये ॥
प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहई । सो तेहि भाँति रहे सुख लहई ॥
प्रभु भल कीन्ह मोहि सिख दीन्ही । मरजादा पुनि तुम्हरिअ कीन्ही ॥
ढोल गँवार सूद्र पसु नारी । सकल ताडना के अधिकारी ॥
प्रभु प्रताप मैं जाब सुखाई । उतरिहिं कटक न मोरि बड़ाई ॥
प्रभु आज्ञा अपेल स्रुति गाई । करउँ सो वेगि जो तुम्हहिं सुहाई ॥

सुनत बिनीत बचन अति, कह कृपाल मुसुकाइ ।
जेहि बिधि उतरइ कपि-कटक, तात सो कहहु उपाइ ॥

नाथ नील नल कपि दोउ भाई । लरिकाईं रिषि आसिष पाई ॥
तिन्हके परस किये गिरि भारे । तरिहहिं जलधि प्रताप तुम्हारे ॥
मैं पुनि उर धरि प्रभु प्रभुताई । करिहउँ बल अनुमान सहाई ॥
एहिबिधि नाथ पयोधि बँधाइय । जेहि यह सुजस लोक तिहुँ गाइय ॥
एहि सर मम उत्तर तट वासी । हतहु नाथ खल नर अघरासी ॥
सुनि कृपाल सागर मन पीरा । तुरतहिं हरी राम रनधीरा ॥
देखि राम-बल पौरुष भारी । हरषि पयोनिधि भयउ सुखारी ॥
सकल चरित कहि प्रभुहिं सुनावा । चरन बन्दि पाथोधि सिधावा ॥

'निज भवन गवनेउ सिन्धु श्री रघुपतिहिं यह मत भायऊ' ।

* * * *

वास्तव में समुद्र के अधिपति राजा ने सागर पर सेतु बाँधने का उपाय बतलाया । नल नील इन दोनों इञ्जीनियरों ने सैनिकों की सहायता से पुल बनाया । स्पष्ट देख लीजिये ऊपर के पद्यों में समुद्र का आना, जाना और वार्त्तालाप इत्यादि लिखा गया है जिससे पता लगता है समुद्र से वहाँ जलराशि का ग्रहण नहीं, प्रत्युत राजाविशेष का बोध होता है ।

गोस्वामी तुलसीदासजी द्वारा विरचित समस्त ग्रंथों में कलियुग का विचित्र रीति से वर्णन आया है जिससे जनता में नाना-प्रकार से भ्रम फैल गया है, वह केवल 'वर्णन-वैचित्र्य' मात्र है । वास्तव में सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग का काल-विभाग परम्परया सृष्टि के प्रारम्भ से ही चला आता है । चाहे कोई भी युग हो सब में आर्य-अनार्य, सज्जन-दुष्ट, पुण्यात्मा-पापी एवं भले-बुरे होते आये हैं और

होते रहेंगे। समय समय पर सर्वथा और सर्वदा महात्माजन जनता को धर्म की ओर अभिमुख करते रहते हैं।

पुराणों के यत्र-तत्र के लेखों से विस्पष्ट होता है कि कलियुग कोई शरीरधारी व्यक्ति है, जो मनुष्यों को धर्म की ओर से हटाकर अधर्म में प्रवृत्त कराता है। चाहे एतद्विषयक लेख आलंकारिक ही मान लिये जायँ परन्तु जन-समुदाय में वैसे लेखों के प्रचार से ऐसा विचार फैल गया है कि कलियुग में योग, जप, पूजापाठ, यज्ञ और अन्यान्य वैदिक कर्मों का अनुष्ठान हो ही नहीं सकता। कलियुग में तो केवल पाप का ही आधिक्य और बाहुल्य रहेगा, इत्यादि। ऐसे विचारों के आने से लोक की सत्कर्मों की ओर से उपेक्षा वा उपरति हो गयी।

गोसाईंजी महाराज ने भी कलियुग की अनर्गल गाथा गायी है, जिससे जनता में महान भ्रम फैला हुआ है।

कलियुग का वर्णन साधारणतः रामायणादि सभी ग्रंथों और विशेष कर विनय-पत्रिका में कवि ने इस ढंग पर किया है जिससे अपठित वा अर्द्धपठित हिन्दू-जनता के हृदयों पर यह बात मुहर कर गयी है कि कलियुग कोई शरीरधारी व्यक्ति है जो अपने राजत्व-काल में शुभ कर्म नहीं होने देता। वह मनुष्यों को बलात् अशुभ कर्मों की ओर प्रेरित करता है।

वास्तव में कवियों की यह एक काव्यशैली है कि वे प्रायः जड़ और शरीर-रहित पदार्थों को भी चेतनता से युक्त शरीरधारी अभिव्यक्त करते हैं और इस शैली की अमिट छाप पड़ती है। संसार जानता है कि काम कोई शरीरधारी शक्ति नहीं, अपितु मनोविकार मात्र है जिस की सिद्धि मनसिज, मनोज, और मनोभव, इत्यादि शब्द ही पर्याप्त रूप से करते हैं तथापि सारे सुकवि-समुदाय ने इसका बड़े विस्तार से शरीरधारी और चेतनवत् वर्णन किया है। गोस्वामी जी ने तो कामदेव और शङ्कर का महासंग्राम ही रच दिया। इसी प्रकार कवियों ने क्रोध, शान्ति और लोभ आदि का भी मूर्त्तिमान ही जैसा वर्णन किया है। इस लेखनशैली की यहां तक उन्नति हुई की आयुर्वेद में ज्वरादि रोगों के भी भयङ्कर स्वरूप का वर्णन किया गया है। आज कल भी कई रोगों के भयावह चित्र छापे जाते हैं, परन्तु वे सब चित्र जनता के बोध मात्र के लिये हैं। उसी प्रकार कलियुग भी कोई साकार व्यक्ति नहीं, समयविभाग मात्र है। गोस्वामी जी के समय में जनता आचार-विचार और धर्मादि से च्युत हो चुकी थी, अतः उस काल का वर्णन इस प्रकार किया है जिससे अशिक्षित वा अल्प शिक्षित समुदाय कलियुग को शरीर-धारी व्यक्ति समझ गया है। देखिये 'विनय-पत्रिका' भजनसंख्या १३९:—

दीन दयालु दुरित दारिद दुख दुनी दुसह तिहुँताप तई है।
देव-दुआर पुकारत आरत सब की सब सुख हानि भई है॥

प्रभु के बचन बेद बुध सम्मत मम मूरति महि देव-मई है।
तिन्ह की मति रिस, राग, मोह, मद, लोभ लालची लीलि लई है॥
राज-समाज कुसाज कोटि कटु कल्पत कलुष कुचाल नई है।
नीति प्रतीति प्रीति परमिति पति हेतु-बाद हठि हेरि हई है॥
आस्रम बरन-धरम-बिरहित जग लोक-बेद-मरजाद गई है।
प्रजा पतित पाखण्ड पापरत, अपने अपने रंग रई है॥
सांति सत्य सुभ रीति गई घटि, बढ़ी कुरीति कपट-कलई है।
सीदत साधु, साधुता सोचति, खल बिलसत, हुलसति खलई है॥
परमारथ स्वारथ-साधन भए अफल सकल, नहिं सिद्धि सई है।
कामधेनु-धरनी-कलि-गोमर-बिवस बिकल, जामति न बई है॥
कलि करनी बरनिए कहाँ लौं करत फिरत बिनु टहल टई है।
तापर दाँत पीसि कर मींजत, को जानै चित कहा ठई है॥
त्यों त्यों नीच चढ़त सिर ऊपर ज्यों ज्यों लीलबस ढील दई है।
सरुष बरजि तरजिए तरजनी, कुम्हिलै है कुम्हड़े की जई है॥
दीजै दादि देखि नातो बलि, मही-मोद-मंगल-रितई है।
भरे भाग अनुराग लोग कहैं राम अवध चितवनि चितई है॥
बिनती सुनि सानंद हेरि हँसि करुना-बारि-भूमि भिजई है।
राम राज भयो काज सगुन सुभ, राजा राम जगत-बिजई है॥
समरथ बड़ो सुजान सुसाहिब सुकृत सेन हारत जितई है।
सुजन सुभाव सराहत सादर अनायास साँसति बितई है॥
उथये-थपन, उजार-बसावन, गई-बहोर बिरद सदई है।
तुलसी प्रभु आरत-आरति हर अभय-बाँह केहि केहि न दई है॥ १३९॥

ऊपर के पद्यों में महाकविने कलियुग का हाथ मलना, दाँत पीसना, सिर पर चढ़ना, राम का उसे बुलाना और डाटंना इत्यादि लिखा है जिससे उसका शरीर-धारी होना प्रतीत होता है, पर यह सब 'वर्णन-वैचित्र्य' मात्र है। इसी प्रकार 'राम-चरित-मानस' के

काग भुसुण्डि और गरुड़

क्या हैं, यह भी एक विचारणीय विषय है। महाकविने इस ग्रन्थको षट्मुखी वार्ता के रूप में जनता के सम्मुख रखा है। (१) शिव-पार्वती-संवाद, (२) याज्ञवल्क्य-भरद्वाज-संवाद और (३) कागभुसुण्डि एवं गरुड़-संवाद। अब विचारना केवल यही है कि काग भुसुण्डि और गरुड़ कौन थे ? गोस्वामीजी के ग्रन्थों से विस्पष्ट है कि ये दोनों पक्षी थे। 'राम-चरित-मानस' में

सकल कथा मैं तुमहिं सुनाई। काग देह जेहि कारन पाई॥

इत्यादि पद्यों के द्वारा उक्त कथन की पर्याप्त पुष्टि हो जाती है। गरुड़ जी के संबन्ध में शिव जी पार्वती से कहते हैं कि

तातें उमा गुप्त करि राखा। खग जानै खग ही की भाषा॥

इससे दोनों का पक्षी होना सिद्ध है। अब प्रश्न यह है कि पक्षी किस प्रकार मनुष्य की भाषा में ऐसे २ गूढ़ातिगूढ़ प्रश्नोत्तर कर सके होंगे जैसे रामायण में लिखे हैं, और दूसरा प्रश्न यह है कि जब शिवजी महाराज खग-भाषा नहीं जानते थे तो गोस्वामीजी ने उन प्रश्नोत्तरों को कैसे समझा, इत्यादि।

सत्य समाधान तो यही हो सकता है कि ये दोनों महानुभाव या तो मनुष्य होंगे अथवा कथा के रहस्य को जनता के समक्ष सरलता पूर्वक बुद्धिगत कराने के सद्भाव से गोस्वामीजी ने उसे काल्पनिक पक्षियों के मुख से कथन कराया हो। आपने विष्णु शर्मा विरचित 'हितोपदेश' पढ़ा होगा। उस ग्रन्थरत्न में नीति संबन्धी बड़े महत्वमय सदुपदेश कपोत, व्याल और मूषक के मुख से कहलवाये गये हैं। शर्मा जी ने ग्रन्थ के आरम्भ में ही अपनी इस शैली का उद्देश निर्देशित कर दिया है:—

'यन्नवे भाजने लग्नः संस्कारो नान्यथा भवेत्।
कथाच्छलेन बालानां नीतिस्तदिह कथ्यते'॥

अर्थात् जिस प्रकार नये मृत्तिका-पात्र पर जो कुछ चित्रकारी की जाती है वह अमिट हो जाती है, इस कारण कई कथनोपकथन के व्याज से इस ग्रन्थ में बालकों को नीतिमार्गका सदुपदेश दिया गया है। तदनुसार श्री गोस्वामी जी ने भी सामान्य जनों के हितार्थ कागभुसुण्डी और गरुड़-संवाद के मिस राम-चरितामृत का पान कराया है।

उपसंहार

सहृदय साहित्य-प्रेमी पाठकों की सेवा में विचार-स्वातन्त्र्य के साथ 'वर्णन-वैचित्र्य' सादर समर्पित है। वर्णन में विचित्रता किन २ स्थलोंपर आती है और गोस्वामी जी की अनुपम रचना में कहां २ आयी है, उसका उल्लेख एवं उद्धरण पर्याप्त रूप से किया गया है। हमारे कविता-कानन-केशरी का उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, काकु, पर्यायोक्ति वक्रोक्ति, माधुर्य, ओज, अभिधा, लक्षणा और व्यञ्जनादि पर पूर्ण अधिकार तो प्राप्त था ही इसके अतिरिक्त उक्ति एवं वर्णन-वैचित्र्य के आप ज्ञाता ही नहीं अपितु निर्माता भी थे। महाकवि की लेखनी-रूप गंगोत्री से जिस कविता-रूप भगीरथी का प्रवाह प्रवाहित हुआ है उसके एक शब्द-रूप जलकण में अमृत-का सा स्वाभाविक स्वाद भरा पड़ा है। कविराज ने भगवान राम के बालपन का सौन्दर्य वर्णन करते हुए लिखा है कि 'मनहुँ उमगि अँग अँग छवि छलकै'। यहां मैं इनकी कविता-कामिनी के संबन्ध में

'मनहुँ उमगि पद पद छवि छलकै'

पद कह कर नत शिर हो मौन रह जाना ही मङ्गल मय मानता हूँ।

[२३] लोकादर्श और तुलसीदास

संसार का कोई मनुष्य आस्तिक हो किंवा नास्तिक अथच परलोक एवं पुनर्जन्म के सिद्धान्त का विश्वासी हो अथवा अविश्वासी, उसे 'लोक' का मानना अनिवार्य है। चाहे आप शाङ्कर मतानुसार प्रकृति की सत्ता को परमार्थ दशा में भले ही स्वीकार न करें, परन्तु व्यावहारिक अवस्था में लोक-पथ प्रशस्त करना ही पड़ेगा। इसी क्रम से जिनका विश्वास 'इह' एवं 'पर' दोनों लोकों पर है उन्हें भी उभय-सिद्धि के सद्विचार से लोक-मर्यादा का निर्माण ध्रुव है। तदनुसार ही उक्त सिद्धान्त-द्वय के विपरीत जो परलोक के अविश्वासी हैं वे भी स्वमतानुसार किसी न किसी लोकादर्श की स्थापना करते हैं। कई विद्वानों का मत है कि जो लोग परलोक के सिद्धान्त में अटल विश्वास रखने वाले हैं उनके लिये भी परलोक की अपेक्षा लोक-चिन्तन ही मुख्यतर है। अथवा यों कहिये कि लोक-सुधार पर ही परलोक-सुधार नितान्त निर्भर करता है। जिस प्रकार चारपाई एक ओर बुनने से दूसरी ओर स्वयमेव बुनती जाती है उसी प्रकार लोक ठीक होने से परलोक का ठीक होना अवश्यम्भावी है। हमारे चरित-नायक श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदास जी लोक-शास्त्र के एक प्रकाण्ड पण्डित ही नहीं अपितु लोकादर्श के इने गिने संस्थापक महाकवियों में से एक सिद्धहस्त सुकवि थे।

कवि-सम्राट लोक की एक छोटी मोटी बात से लेकर गूढ़ातिगूढ़ तथ्य और लोक-रहस्य के ज्ञाता थे। महाकवि द्वारा विरचित 'राम-चरित–मानस' लोक-जलधि का सुदृढ़ जलयान अथवा सुघर सेतु है। इस अद्भुत ग्रन्थ-रत्न को कविता-कानन-केसरी ने धार्मिक, साहित्यिक एवं नैतिक विचारों के अतिरिक्त लौकिक-दृष्टि से भी सर्वथा समुपादेय बनाया है। इनका 'राम-चरित–मानस' कर्म, उपासना और ज्ञान की सङ्गम स्वरूपा त्रिवेणी है। जैसा कहा भी है:—

> राम भक्ति जहँ सुरसरि धारा। सरस्वति ब्रह्म बिचार प्रचारा॥
> बिधि निषेध मय कलिमल हरनी। कर्म कथा रविनन्दिनि बरनी॥
> हरिहर कथा बिराजति बेनी। सुनत सकल मुद मङ्गल देनी॥

यहाँ कवि ने गंगा में उपासना, सरस्वती में ज्ञान एवं यमुना में कर्म कथा की कल्पना की है। वास्तव में लोक के निमित्त इनका सामञ्जस्य अनिवार्य है। हमारे पूर्वज महर्षि कर्म, उपासना और ज्ञान का यथार्थ समन्वय जानते थे और लोकोपयोग में तीनों को यथायोग्य स्थान देते थे। पर महाभारत-युद्ध के उत्तर-काल में तीनों की समुचित सीमा का लोप हो गया। काल पाकर कभी एक की प्रबलता अपनी मर्यादा का अतिक्रमण कर जाती और शेष की अवहेलना। कभी याज्ञिकों ने कर्मकाण्ड की इतनी उन्नति की कि अध्वर (हिंसा हीन)

यज्ञ ने हिंसात्मक भयङ्कर स्वरूप धारण कर लिया और वेदों की ओट में पवित्र यज्ञशालाएँ पशु-सँहार की निमित्त बन गयीं। कर्मकाण्ड के इस प्रबल एवं विकृत काल में ज्ञान तथा उपासना का पूर्ण रूप से उत्थापन हो चुका था। इस अनर्थकारी प्रथा का सदय हृदय महात्मा गौतम बुद्ध प्रबल खण्डन कर पुनः सामञ्जस्य संस्थापन करना चाहते थे परन्तु उनके आन्दोलन से वैदिक संस्कारों का भी लोप हो गया और सर्वत्र ज्ञान-वैराग्य का प्रवाह प्रवाहित होने लगा। सहस्रों नारि-नर गृह त्याग कर भिक्षु हो संसार को अपने वैराग्य मिश्रित धर्म की ओर आकर्षित करने लगे। जहाँ बुद्ध के तप और त्याग का जनता पर अमिट प्रभाव पड़ा वहाँ उपासना का भाव न रहने के कारण लोक में नास्तिकता फैली, शास्त्रों तथा वेदों की ओर से पूर्ण उपेक्षा का आविर्भाव हो गया। इस विकट परिस्थिति में भगवान शङ्कराचार्य आते हैं और समस्त देश को अपने शुष्क अद्वैत ज्ञान के अग्निदाह से भस्मीभूत करके उपासना और भक्ति के सुधा-स्रोत को सुखा देते हैं। इधर माध्वाचार्य उठ खड़े होते हैं तो अपनी अनन्य भक्ति की पैनी कुल्हाड़ी से कर्म की जड़ काटने लग जाते हैं। इन नवीन मतप्रवर्त्तकों वा सुधारकों ने अपनी सारी शक्ति स्वमत के संस्थापन और विरुद्ध मत के उत्थापन में लगा दी। किसी महात्मा ने सामञ्जस्य-स्थापन की चेष्टा न की। इन सब आन्दोलनों का इतना कुपरिणाम हुआ कि भारतवर्ष मतमतान्तरों का अजायबघर हो गया और परस्पर एक मत की दूसरे मतों से मुठभेड़ होने लगी। शैवों और वैष्णवों में घोर विरोध उठ खड़ा हुआ, वाममार्ग शाक्त सम्प्रदाय के स्वरूप में पुनरुज्जीवित हुआ, शङ्कर-मत ने विकृत रूप धारण कर शुष्क अद्वैत-वाद का स्वरूप धारण किया और स्थान स्थान पर महात्मा नानक, कबीर और गोरखनाथजी के भी कुछ लोग अनुयायी बन गये। मतमतान्तरों के इस विकरालकाल में महात्मा तुलसीदासजी का आविर्भाव हुआ। आपने अपनी विद्या, अनुभव, अनुशीलन, स्वाध्याय और तपश्चर्या के आधार पर ही अपनी समस्त साहित्य-सेवा को इसी धर्म-समन्वय एवं भजनोपासन में समर्पित किया। वास्तव में हमारा प्राचीन साहित्य इन्हीं तीन मार्गों का तत्व और रहस्य बतलाता है। सारी गीता, समस्त वेदान्त और साङ्गोपाङ्ग वेद इन्हीं कर्मोपासन-ज्ञान का यथावत् मण्डन करते हैं। मानवीय मेधा की इन्हीं तीन अवस्थाओं को पश्चिमी मनस्तत्व-विद्या-विशारद Knowing, Feeling और Willing के नाम से पुकारते हैं। संसार में पूर्ण मनुष्यत्व-प्राप्ति के निमित्त इन तीनों की ही परिमित मात्रा में आवश्यकता है। अनधिकारी के लिये एक का सङ्ग्रह एवं अन्यों की उपेक्षा विडम्बनामात्र है। इस त्रिवेणी पर जो महाभाग निवास तथा निमज्जन करते हैं उन्हीं को ऐहिक सुख और पारलौकिक शाश्वती शान्ति की उपलब्धि होती है। गोस्वामी तुलसीदासजी के समय में इन तीनों मार्गों में परम वैषम्य उपस्थित था।

आपने साम्य-स्थापन के सद्भाव से प्रशस्तपथों का अवलम्बन किया। महात्मा तुलसीदासजी यतः धार्मिक कवि और अपने समय के धर्माचार्य थे अतः आपने

उपासना वा भक्ति

को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया है। 'राम-भक्ति' ही इनकी सर्वस्व थी जिसके ऊपर आप संसार को न्यौछावर कर सकते थे। आप 'कवित्त-रामायण' के निम्न पद्यों पर विचार-दृष्टिपात करें:—

सो सुकृती, सुचिमंत, सुसंत, सुजान सुसील-सिरोमनि, स्वै।
सुर तीरथ तासु मनावत आवत, पावन होत हैं तात न छ्वै॥
गुन गेह, सनेह को भाजन सो, सब ही सों उठाइ कहौं भुज द्वै।
सति भाय सदा छल छाड़ि सबै, तुलसी जो रहै रघुबीर को ह्वै॥ ३४॥
सो जननी, सो पिता, सोइ भाइ, सो भामिनि, सो सुत, सो हित मेरो।
सोई सगो, सो सखा, सोइ सेवक, सो गुरु, सो सुर साहिब चेरो॥
सो तुलसी प्रिय प्रान समान, कहाँ लौं बनाइ कहौं बहु तेरो।
जौ तजि देह को गेह को नेह, सनेह सों राम को होइ सबेरो॥ ३५॥
राम हैं मातु पिता गुरु बन्धु, औ संगी सखा सुत स्वामि सनेही।
राम की सौंह भरोसो है राम को, राम रँग्यो रुचि राच्यो न केही॥
जीयत राम, मुये पुनि राम, सदा रघुनाथहिं की गति जेही।
सोई जियै जग में तुलसी, नतु डोलत और मुये धरि देही॥ ३६॥
सियराम-सरूप अगाध अनूप, बिलोचन-मीनन को जलु है।
श्रुति राम कथा, मुख राम को नाम, हिये पुनि रामहिं को थलु है॥
मति रामहिं सो, गति रामहिं सो, रति राम सों, रामहिं को बलु है।
सब को न कहैं, तुलसी के मते, इतनो जग जीवन को फलु है॥ ३७॥
दसरत्थ के दानि शिरोमनि राम, पुरान-प्रसिद्ध सुन्यो जसु मैं।
नर नाग सुरासुर जाचक जो, तुम सों मन भावत पायो न कै॥
तुलसी कर जोरि करै बिनती, जो कृपा करि दीनदयालु सुनैं।
जेहि देह सनेह न रावरे सों, असि देह धराइ कै जाय जियैं॥ ३८॥
'झूठो है, झूठो है, झूठो सदा जग,' संत कहंत जे अंत लहा है।
ताको सहै सठ संकट कोटिक, काढ़त दंत, करंत हहा है॥
जान पनी को गुमान बड़ो, तुलसी के बिचार गँवार महा है।
जानकी जीवन जान न जान्यो, तौ जान कहावत जान्यो कहा है॥ ३९॥
तिन्ह ते खर सूकर स्वान भले, जड़ता बस ते न कहैं कछु वै।
तुलसी जेहि राम सों नेह नहीं, सो सही पसु पूँछ विखान न द्वै॥
जननी कत भार मुई दस मास, भई किन बाँझ, गई किन च्वै।
जरि जाउ सो जीवन, जानकी नाथ! जियै जग में तुम्हरो बिन ह्वै॥ ४०॥

गज-बाजि-घटा, भले भूरि भटा, बनिता सुत भौंह तकैं सब वै।
धरनी धन धाम सरीर भलो, सुरलोकहु चाहि इहै सुख स्वै॥
सब फोकट साटक है तुलसी, अपनो न कछू सपनो दिन द्वै।
जरि जाउ सो जीवन जानकी नाथ! जियै जग में तुम्हरो बिनु ह्वै॥ ४१॥
सुरराज सो, राज-समाज, समृद्धि, बिरंचि, धनाधिप सो धन भो।
पवमान सो, पावक सो, जस सोम सो, पूषन सो, भवभूषन भो॥
करि जोग, समीरन साधि, समाधि कै, धीर बड़ो, बसहू मन भो।
सब जाय सुभाय कहै तुलसी, जो न जानकी जीवन को जन भो॥ ४२॥
काम से रूप, प्रताप दिनेस से, सोम से सील, गनेस से माने।
हरिचंद्र से साँचे, बड़े बिधि से, मघवा से महीप बिषै सुख साने॥
सुक से मुनि, सारद से बकता, चिरजीवन लोमस तें अधिकाने।
ऐसे भये तो कहा तुलसी, जु पै राजिवलोचन राम न जाने॥ ४३॥
झूमत द्वार अनेक मतंग, जँजीर जरे मद अंबु चुचाते।
तीखे तुरंग मनोगति चंचल, पौन के गौनहुँ तें बढ़ि जाते॥
भीतर चंद्रमुखी अवलोकति, बाहर भूप खरे न समाते।
ऐसे भये तो कहा तुलसी, जु पै जानकी नाथ के रंग न राते॥ ४४॥
राज सुरेस पचासक को, बिधि के कर को जो पटो लिखि पाए।
पूत सपूत, पुनीत प्रिया, निज सुन्दरता रति को मद नाए॥
संपति सिद्धि सबै तुलसी, मन की मनसा चितवैं चित लाए।
जानकी जीवन जाने बिना, जग ऐसऊ जीव न जीव कहाए॥ ४५॥

ऊपर के पद्यों से आप महाकवि की भक्ति संबन्धी दृढ़ता का अन्दाजा लगा सकते हैं। आप 'रामभक्ति' से बिहीन अपने सगे को भी इस प्रकार तुच्छ बतलाते है:—

जाके प्रिय न राम वैदेही।
सो छाँड़िए कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही॥
तज्यो पिता प्रहलाद, बिभीषन बन्धु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यों, कंत ब्रज-बनितनि भए मुद मंगल कारी॥
नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेब्य जहाँ लौं।
अंजन कहा आँखि जेहि फूटै बहुतक कहौं कहाँ लौं।
तुलसी सो सब भाँति परमहित, पूज्य प्रान ते प्यारो।
जासों होय सनेह राम पद, एतो मतो हमारो॥
जो पै रहनि राम सों नाहीं।
तौ नर सूकर कूकर कर से, जाय जियत जग माहीं॥
काम, क्रोध, मद, लोभ, नींद, भय, भूख, प्यास सबही के।
मनुज देह सुर साधु सराहत, सो सनेह सिय-पी के॥

सूर, सुजान, सपूत सुलच्छन, गनियत गुन गरुआई।
बिनु हरिभजन इँनारुन के फल, तजत नहीं करुआई॥
कीरति, कुल, करतूति, भूति भलि, सील, सरूप सलोने।
तुलसी प्रभु-अनुराग-रहित जस सालन साग अलोने॥

रामभक्ति-सरोज के मधुप गोस्वामीजी को समस्त संसार ही शुष्क और निर्गन्ध प्रतीत होता था। इतने पर भी आप को सन्तोष न हुआ, तो लिखते हैं:—

जो मोहि राम लागते मीठे।
तौ नवरस, षटरस-रस अनरस, ह्वै जाते सब सीठे॥
वंचक विषय विविध तनु धरि, अनुभवे सुने अरु डीठे।
यह जानत हौं हृदय आपने सपने न अघाइ उबीठे॥
तुलसिदास प्रभु सों एकहि बल, वचन कहत अति ढीठे।
नामकी लाज राम करुनाकर, केहि न दिये करि चीठे॥

अहा! भक्तराज के हृदय में भक्ति-सुधा का कैसा स्रोत उमड़ रहा था!! इस रस के सम्मुख सत्य ही उनकी दृष्टि में संसार का सुस्वाद पदार्थ अत्यन्त फीका प्रतीत होता था। भक्ति और प्रेम की पराकाष्ठा का आप नीचे के दोहे से पूरा पता पा सकते हैं:—

हिय फाटे फूटे नयन, जरै सो तन केहि काम।
द्रवहिं स्रवहिं पुलकहिं नहीं, तुलसी सुमिरत राम॥

गोस्वामीजी अपने रोम रोम से राम की सेवा करने में ही उसकी उपादेयता समझते थे। वह पाहन हृदय टुकड़े टुकड़े कर देने योग्य है, जो राम ऐसे पवित्र नाम के उच्चारण करने से द्रवीभूत नहीं होता। वे नेत्र किस काम के जिनसे-भगवन्नामोच्चारण करने पर अश्रुधारा निःसृत नहीं होती। आपकी समझ में वह शरीर जला देने योग्य है जो परमेश्वर का स्मरण कर पुलकित नहीं हो जाता!!! भक्तराज ने 'विनय-पत्रिका' के निम्न भजन में भगवद्भक्तों के लिये क्या ही अनुकरणीय आदर्श उपस्थित किया है:—

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ-कृपालु-कृपा ते, संत सुभाव गहौंगो॥
यथालाभ संतोष सदा, काहू सों कछु न चहौंगो।
परहित-निरत निरंतर, मन क्रम बचन नेम निवहौंगो॥
परुष वचन अति दुसह स्रवन सुनि, तेहि पावक न दहौंगो।
विगत मान, सम सीतल मन, पर-गुन, नहिं दोष कहौंगो॥
परिहरि देह जनित चिंता, दुख सुख सम बुद्धि सहौंगो।
तुलसि दास प्रभु यहि पथ रहि, अविचल हरि भक्ति लहौंगो॥

वास्तव में जो महाभाग अपने वर्णाश्रमधर्मानुसार जीवन व्यतीत हुए यथा-लाभ सन्तुष्ट रहते, किसी सांसारिक मनुष्य के समक्ष कभी कुछ याचना नहीं करते, जो निरन्तर मन-कर्म-वचन से परहित में निरत रहते, जो कभी क्रोधाग्नि से विदग्ध नहीं होते, जो मानापमान से परे होकर समता धारण कर चुके हैं, जो शारीरिक आधि-व्याधियों की सीमा का अतिक्रमण कर गये हैं और जो हर्ष, शोक एवं सुख-दुःख के अनुभव से विगत मन होकर भगवद्भक्ति में लीन हैं वेही सच्चे उपासक हैं। वेही विशुद्ध हरिभक्त हैं। वेही ऐहिक एवं पारलौकिक सुखों के अवस्थाता हैं। संसार में वेही महापुरुष अभ्यर्थनीय, अर्चनीय और वन्दनीय हैं। सावधान पूर्वक आप उनके पवित्र जीवन पर ध्यान दें तो आपको स्पष्ट प्रतीत हो जायगा कि ऐसे उपासक शनैः शनैः अपने उपास्यदेव की छोटी मोटी प्रतिमूर्ति बन जाते हैं। जो उपासना का परिणाम है।

'जानत तुमहिं तुमहिं होइ जाई'

का सिद्धान्त उस उपासक वा भक्त की दिनचर्या में साक्षात् चरितार्थ होने लग जाता है। इस प्रकार की आराधना में तल्लीन आराधक अपने आराध्यदेव का सुदृढ़ वात्सल्य-भाजन बन कर जीवमुक्त हो जगत में विचरण करते हैं। वास्तव में जो महाभाग काम, क्रोध, मद और लोभ के पाश से मुक्त हो चुके हैं, वेही सच्चे हरि-भक्त हैं। भक्त-प्रवर स्वयं 'कवित्त-रामायण' में कहते हैं:—

भौंह कमान सँधान सुठान, जे नारि-बिलोकनि-बान ते बाँचे।
कोप-कृसानु गुमान-अँवा घट, ज्यों जिनके मन आँच न आँचे॥
लोभ सबै नट के बस ह्वै, कपि ज्यों जग में बहु नाच न नाचे।
नीके हैं सन्त सबै तुलसी, पै तेई रघुबीर के सेवक साँचे॥

अहह ! कैसी उत्तम भावना है !! संसार में 'जननी सम जानहिं पर नारी' का सिद्धान्त जिन महापुरुषों ने अपने पवित्र आचरण से सिद्ध कर दिखाया है, क्रोध और मद की अग्नि से जो विदग्ध नहीं हुए अथच लोभ के वशीभूत होकर कभी नट-मर्कट-नृत्य नहीं किया, वेही आदर्श उपासक हैं। षड्-विकार और षड्-र्मियों पर विजय-प्राप्ति के अनन्तर ही उपासना का प्रारम्भ होता है।

सुतराम् गोस्वामीजी अपने इष्टदेव के ऐसे ही अनन्य भक्त थे, जो जीवन के एक एक पल को राम की भक्ति, रामोपासन और भगवद्चर्चा में ही व्यतीत करते थे।

'विनय-पत्रिका' में आप अपनी चित्त-वृत्ति का इस प्रकार चित्रण करते हैं:—

जानकी जीवन की बलि जैहों।
चित्त कहै राम सीय पद परि हरि, अब न कहूँ चलि जैहों॥
उपजी उर प्रतीति, सपनेहुँ सुख, प्रभुपद विमुख न पैहों।
मन समेत या तनके बासिन, इहै सिखावन दैहों॥

स्रवननि और कथा नहिं सुनि हौं, रसना और न गैहौं।
रोकिहौं नैन बिलोकत औरहिं, सीस ईस ही नैहौं॥
नातो नेह नाथ सों करि, सब नातो नेह बहैहौं।
यह छरभार ताहि तुलसी, जग जाको दास कहैहौं॥

यह बिनती रघुबीर गुसाईं।
और आस विस्वास भरोसो, हरो जीव जड़ताई॥
चहौं न सुगति सुमति, संपति, कछु रिधि सिधि, बिपुल बड़ाई।
हेतु रहित अनुराग रामपद, बढ़ौ अनुदिन अधिकाई॥
कुटिल करम लै जाय मोहि, जहँ जहँ अपनी बरिआईं।
तहँ तहँ जिनि छिन छोह छाँड़िए, कमठ अंड की नाईं॥
यहि जग में जहँ लग या तनु की, प्रीति प्रतीति सगाईं।
ते सब तुलसिदास प्रभु ही सों होहु सिमिटि एक ठाईं॥

हमारे सुहृद् पाठक ऊपर के पद्यों में गीता, वेदान्त और उपनिषद् का तत्व पावेंगे। निष्काम कर्म, उपासना और ज्ञान का एकत्रीकरण इससे अधिक विशद कहाँ मिलेगा? गोस्वामी जी संसार की समस्त प्रीति, प्रतीति और सगाईं केवल राम से निबाहना चाहते हैं।

आप इससे बढ़कर उपास्य में उपासक की तल्लीनता कहाँ पावेंगे? वास्तव में किसी भक्त के हृदय की इसी कृति को योग-दर्शन वाले धारणा, ध्यान और समाधि कहते हैं। यही समर्पण सच्चा ईश्वर-प्रणिधान है। वास्तव में अन्तःकरण की शुद्धि ही उपासना वा भक्ति का तात्विक उपदेश है, जिसकी सिद्धि केवल भगवत्प्रार्थना से ही हो सकती है। सच्चा उपासक अपने अन्तःकरण का चित्र प्रस्तुत करता है—

सकुचत हौं अति रामकृपानिधि, क्यों करि बिनय सुनावौं।
सकल कर्म बिपरीत करत, केहि भाँति नाथ मन भावौं॥
जानत हूँ हरि रूप चराचर, मैं हठि नयन न लावौं।
अंजन केस सिखा जुवती तहँ, लोचन सलभ पठावौं॥
स्रवननि को फल कथा तिहारी, यह समुझौं समुझावौं।
तिन स्रवननि पर दोष निरन्तर, सुनि सुनि भरि भरि तावौं॥
जेहि रसना गुन गाइ तिहारे, बिनु प्रयास सुख पावौं।
तेहि मुख पर अपवाद भेक ज्यों, रटि रटि जनम नसावौं॥
'करहु हृदय अति बिमल बसहिं हरि', कहि कहि सबहिं सिखावौं।
हौं निज उर अभिमान मोह मद, खल मंडली बसावौं॥
जो तनुधरि हरिपद साधहिं जन, सो बिनुकाज गवावौं।
हाटक घट भरि धर्यौ सुधा गृह, तजि नभकूप खनावौं॥

मन क्रम बचन लाइ लीन्हें अघ, ते करि जतन दुरावौं।
पर प्रेरित इरषा बस कबहुँक, कियौं कछु सुभ सो जनावौं॥
बिप्र द्रोह जनु बाँट पर्यो, हठि सबसों बैर बढ़ावौं।
ताहू पर निज मति बिलास, सब सन्तन मांझ गनावौं॥
निगम शेष सारद निहोरि जो, अपने दोष कहावौं।
तौ न सिराहि कल्प सत लगि, प्रभु कहा एक मुख गावौं॥
जो करनी आपनी विचारौं, तौ कि सरन हौं आवौं।
मृदुल सुभाव सील रघुपति को, सो बल मनहिं दिखावौं॥
तुलसिदास प्रभु सो गुन नहिं, जेहि सपनेहु तुमहिं रिझावौं।
नाथ कृपा भवसिंधु धेनु पद सम जिय जानि सिरावौं॥

और भी अपनी मलिनता बतलाते हैं:—

नयन मलिन परनारि निरखि, मन मलिन विषय संग लागे।
हृदय मलिन बासना मानमद, जीव सहज सुख त्यागे॥
पर निंदा सुनि स्रवन मलिन भये, बदन दोष पर गाये।
सब प्रकार मल भार लाग, निज नाथ चरन बिसराये॥
तुलसिदास व्रत ज्ञान दान तप, सुद्धि हेतु स्रुति गावैं।
रामचरन अनुराग नीर बिनु, मल अति नास न पावैं॥

ऊपर के पद्यों में भक्तराज ने मानवीय अन्तःकरण के मल-विक्षेप और आवरण का वर्णन करते हुए भगवद्भक्ति एवं उपासना से ही उसका विनाश बतलाया है। प्रबुद्ध उपासक इस प्रकार प्रमाथी मनको वशीभूत करके अपने पवित्र अन्तःकरण को उपास्य मय बनाकर परमगति की प्राप्ति करते हैं।

ज्ञान-मार्ग

पृथिवी से लेकर परमेश्वर पर्यन्त के यथावत् बोध को 'ज्ञान' कहते हैं। भक्ति अथवा उपासना के पथ का पथिक कदापि ज्ञान की अवहेलना नहीं करता। यदि सच पूछिये तो ये दोनों कई अंश में अभिन्नप्राय हैं। श्री योगिराज कृष्ण भगवान ने गीता में अर्जुन को एतद्विषयक उपदेश देते हुए बतलाया है कि:—

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः।
एक मप्यास्थितः सम्यगुभयो र्विन्दतेफलम्॥
यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति॥

अर्थात् सांख्य का प्रतिपादित विषय 'ज्ञान' और योगशास्त्र का 'उपासना' है। हे अर्जुन! उपासना के द्वारा उपासक को जिस पद की प्राप्ति होती है उसी पद की उपलब्धि ज्ञानी पुरुष ज्ञान के द्वारा करता है अतः ज्ञान और उपासना

दोनों एक ही हैं। इसी उपर्युक्त आशय को गोस्वामी जी ने 'राम-चरित-मानस' में इस प्रकार कहा है :—

ज्ञानहिं भगतिहिं नहिं कछु भेदा।
उभय हरहिं भव संभव खेदा॥

यतः उपासना और ज्ञान दोनों का उद्देश्य त्रिविध दुःखों की निवृत्ति और परमपद की प्राप्ति ही है, अतः साध्य के ऐक्य होने से साधन में एकता लिखी गई है। गोस्वामी जीने विनयपत्रिका में जिस प्रकार भक्ति-सुधा का प्रवाह प्रवाहित किया है, उसी प्रकार स्वरचित सतसई में आपने वेदान्त प्रतिपादित ब्रह्म का वर्णन अत्युत्तमरीत्या किया है। आप लिखते हैं:—

सदा प्रकाश स्वरूप वर, अस्त न अपर न आन।
अप्रमेय अद्वैत अज, याते दुरत न ज्ञान॥

अर्थात् ब्रह्म सदा प्रकाश स्वरूप है। सूर्य, चन्द्र, अग्नि और विद्युत् इत्यादि प्रकाशमय पदार्थ उसी ब्रह्म के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं। प्रलय काल में प्राकृतिक प्रकाशमय पदार्थ तो प्रकाशहीन हो जाते हैं, परन्तु ब्रह्म सदा प्रकाशमय रहता है। वह अप्रमेय, अद्वैत (एक) और अज है। उसके ज्ञानका कभी लोप नहीं होता।

शीत उष्ण कर रूप युग, निशिदिन कर करतार।
तुलसी तिन महँ एक नहिं, निरखहु करि निरधार॥

अर्थात् वह परमात्मा शीत-उष्ण और दिन-रात सब से परे है। उस पर इन परिवर्त्तनों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वह सांसारिक शीतोष्ण तथा प्रकाशान्धकार से परे और निर्लेप है।

नहिं नैनन काहू लख्यो, धरत नाम सब कोइ।
ताते साँचो ९ समुझु, झूठ कबहूँ नहिं होइ॥

अर्थात् उस व्यापक ब्रह्म को अद्यावधि किसी ने नेत्रों से नहीं देखा, परन्तु कोई कार्य्य बिना कर्त्ता के नहीं हो सकता, अतः जगत् का कर्त्ता कोई अवश्य है, इस कारण उस ब्रह्म को अनेक नामों से लोग स्मरण करते हैं। ब्रह्म सदा सत्य है। वह कदापि मिथ्या नहीं है।

वेद कहत सब को विदित, तुलसी अमिय स्वभाव।
करत पान अपि रुज हरत, अविरल अमल प्रभाव॥

अर्थात्—वेद कहता है और जगत भी इस बात को जानता है कि अमृत में यह स्वाभाविक गुण है कि जो कोई उसे पान करता है, उसके समस्त रोगों को वह (अमृत) नष्ट कर देता है। तदनुसार ही 'यस्यच्छायाऽमृतं' इत्यादि वाक्यों द्वारा

वेद ने ब्रह्म के संबन्ध में भी यही बतलाया है कि वह जीवों को विशुद्धता प्रदान कर शाश्वत सुख की प्राप्ति कराता है । पुनश्चः—

गंध शीत अपि उष्णता, सबहिं विदित जग जान ।
महि बन अनल सो अनिलगत, बिन देखे परमान ॥

गोस्वामी तुलसी दास जी ने ब्रह्म के निराकारत्व को सिद्ध करने में बड़ी बड़ी सुदृढ़ युक्तियाँ दी हैं । आप कहते हैं कि गन्ध, शीतता एवं उष्णता का ज्ञान संसार मात्र को होता तो है और ये गुण पृथिवी, जल, अग्नि और वायु में प्रस्तुत भी हैं परन्तु इनका ज्ञान नेत्र से न होने पर भी प्रामाणिक माना जाता है, क्योंकि नासिका और त्वचादि से ही इनका ज्ञान होता है । तदनुसार ही निराकार निर्गुण ब्रह्म का ज्ञान किसी भौतिक इन्द्रिय से न होने पर भी उसका अनस्तित्व नहीं सिद्ध होता क्योंकि योगियों के अन्तरात्मा (दृश्यते त्वग्रया बुद्ध्या सूक्ष्म्या सूक्ष्मदर्शिभिः) उसके दर्शन करते हैं ।

इन महँ चेतन अमल अज, बिलखत तुलसी दास ।
सो पद गुरु उपदेश सुनि, सहज होत परकास ॥

इन पृथिव्यादि पञ्च भूतों में व्यापक, चेतन, निर्मल, और अज ब्रह्म को तुलसी दास देखते हैं—इस ब्रह्म पद को सद्गुरुओं के उपदेश सुनकर ही लोग जान सकते हैं और उसकी स्वाभाविक ज्योति का प्रकाश उनके अन्तरात्मा में हो सकता है ।

हमारे विचारशील पाठक ऊपर के उद्धरणों से सुगमतया यह समझ सकते हैं कि गोस्वामी जी का आध्यात्मिक ज्ञान कितना व्यापक, विस्तृत एवं रहस्यपूर्ण था । इस प्रकार के शतशः प्रमाण इस प्रकरण की पुष्टि के लिये उनके ग्रन्थों में विद्यमान हैं । हम यहाँ विस्तारभय से सबको उद्धृत कर उनकी व्याख्या लिखने में असमर्थ हैं । गोस्वामी जी परम ज्ञानी होते हुए भी ज्ञान से भक्ति का पद उच्च समझते थे, और इस तत्व को स्वरचित 'रामचरित-मानस' के उत्तर काण्ड में आपने बड़े लम्बे रूपक में दर्शाया है । इस प्रकरण को हम 'उपनिषद् और तुलसी दास' शीर्षक में उद्धृत कर चुके हैं । इस रूपक में महाकवि ने जो ज्ञान का दीपक प्रज्वलित किया है, उसमें निम्न बाधाएँ और आशंकाएँ उपस्थित की हैं:—

छोरत ग्रंथि जान खगराया । बिघ्न अनेक करै तब माया ॥
रिद्धि सिद्धि प्रेरे बहु भाई । बुद्धिहिं लोभ दिखावहिं जाई ॥
कल बल छल करि जाइ समीपा । अंचल बात बुझावहिं दीपा ॥
होइ बुद्धि जो परम सयानी । तिन्ह तन चितवन अनहित जानी ॥
जो तेहि बिघन बुद्धि नहिं बाधी । तो बहोरि सुरकरहिं उपाधी ॥

इन्द्रीद्वार झरोखा नाना। तहँ तहँ सुर बैठे करि थाना॥
आवत देखहिं विषय बयारी। ते हठि देहिं कपाट उघारी॥
जब सो प्रभंजन उर गृह-जाई। तबहिं दीप विज्ञान बुझाई॥
ग्रन्थि न छूटि मिटा सो प्रकासा। बुद्धि बिकल भइ विषय बतासा॥
इन्द्रिय सुरन न ज्ञान सोहाई। विषय भोगपर प्रीति सदाई॥
विषय समीर बुद्धिकृत भोरी। तेहि विधि दीप को बार बहोरी॥

तब फिरि जीव बिबिध विधि, पावहिं संसृत क्लेस।
हरि माया अति दुस्तर, तरि न जाइ बिहँगेस॥
कहत कठिन समुझत कठिन, साधन कठिन बिवेक।
होइ घुनाच्छर न्याय जो, पुनि प्रत्यूह अनेक॥

पाठक इन ऊपर के पद्यों पर दृष्टि डालें तो पता चलेगा कि ज्ञान-मार्गको कविने कितना सङ्कीर्ण बतलाया है। जिस प्रकार प्रज्वलित दीपक अत्यल्प वायु-वेग से भी प्रशान्त हो जाता है, उसी प्रकार प्रबल प्रयत्नों से प्रदीप्त किया हुआ ज्ञान-दीपक सांसारिक वासनाओं, इन्द्रियोंकी दुष्प्रवृत्तियों और कुतर्कके झकोरोंसे बुझ जाता है। पुनः ज्ञान-मार्ग की दुरूहता दिखलाते हैं:—

ज्ञान के पन्थ कृपान कै धारा।
परत खगेस होइ नहिं बारा॥

इस पद्य को कवि ने कठोपनिषद् की निम्न श्रुति से लेकर लिखा है:—

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गम पथस्तत्कवयो वदन्ति॥

वास्तव में ज्ञान का मार्ग अत्यगम और विकट है। यही कारण है कि अनन्य रामोपासक गोस्वामी जी ने ज्ञान की दीपक और भक्ति की मणि से उपमा दी है। मणि में जो ज्योति है वह स्वाभाविक है और प्रबल से प्रबल पवन-प्रवाह उसे निष्प्रभ नहीं कर सकता। गोस्वामी जी कहते हैं:—

कहेउं ज्ञान सिद्धान्त बुझाई। सुनहु भगति मनिकी प्रभुताई॥
राम भगति चिंतामनि सुन्दर। बसै गरुड़ जाके उर अन्तर॥
परम प्रकास रूप दिनराती। नहिं तहं चहिय दिया घृत बाती॥
मोह दरिद्र निकट नहिं आवा। लोभ बात नहिं ताहि बुझावा॥
प्रबल अविद्या तम मिटि जाई। हारहिं सकल सलभ समुदाई॥
खल कामादि निकट नहिं जाहीं। बसै भगति जाके उर माहीं॥
गरल सुधासम अरिहित होई। तेहि मनि बिनु सुख पाव न कोई॥
व्यापहिं मानस रोग न भारी। जिनके बस सब जीव दुखारी॥
राम भगति मनि उर बस जाके। दुख लवलेस न सपनेहुँ ताके॥
चतुर सिरोमनि तेइ जग माहीं। जे मनिलागि सुजतन कराहीं॥

सोमनि जदपि प्रगट जग अहई। राम कृपा बिनु नहिं कोउ लहई॥
सुगम उपाइ पाइबे केरे। नर हत भाग्य देहिं भट भेरे॥
पावन पर्वत वेद पुराना। राम कथा रुचिराकर नाना॥
मर्मी सज्जन सुमति कुदारी। ज्ञान विराग नयन उरगारी॥
भाव सहित खोदै जो प्रानी। पाव भगति मणि सो सुख खानी॥

अर्थात् राम-भक्ति सुन्दर अनुपम चिन्तामणि के तुल्य है। जिस महाभाग के हृदय में इस मणि का निवास है उसके अन्तःकरण में रात्रिन्दिवा परम ज्योति बनी रहती है। यह ज्योति स्वाभाविक है अतः इसको प्रज्वलित करने के लिये दीप, घृत और बत्ती इत्यादि किसी बाह्य उपकरण की आवश्यकता नहीं पड़ती। न तो इस मणि के समीप अज्ञान रूप दारिद्र्य कभी आ सकता है और न सांसारिक प्रलोभनों का पवन-प्रवाह ही इसे बुझा सकता है। आगे महा कवि ने इस ज्योति की बहुतेरी बातें बतलाकर ज्ञान-ज्योति से इसकी विशेषता का निदर्शन कराया है। वास्तव में ज्ञान की अपेक्षा भक्ति-मार्ग सुगम एवं सुदृढ़ है। ज्ञानी पुरुष मर्कट-न्याय से ईश्वर में इस प्रकार सँलग्न रहते हैं जैसे मर्कटी के उदर में उसका बच्चा सटा रहता है। परन्तु भक्तजन भगवान के भरोसे मार्जार-न्याय से ऐसे बेसुध रहते हैं जैसे मार्जारी अपने बच्चे को अत्यन्त अवधानता पूर्वक दाँतों के मध्य दबाये फिरती है। जो हो; ज्ञान और उपासना परस्पर एक दूसरे की अपेक्षा करने वाली सत्ताएँ हैं। ज्ञानहीन उपासना अथवा उपासनाहीन ज्ञान इन दोनों का ही कुछ अर्थ नहीं होता और न संसार में पृथक् पृथक् प्रत्येक की कोई सार्थकता ही है। परन्तु इन दोनों के अतिरिक्त

कर्मकाण्ड

भी अनिवार्य अस्तित्व रखता है। समस्त संसार कर्म-सिद्धान्त पर ही स्थित है। ज्ञानपूर्वक कर्म की महत्ता विश्व के एक एक कण से प्रकट हो रही है। यदि कर्म नहीं होता तो आज अखिल ब्रह्माण्ड अव्यक्तावस्था में ही विलीन और निस्पन्द पाया जाता। अगत्या हमें कर्मकाण्ड का महत्व मानना ही पड़ता है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी जीवात्माके साथ कर्म का समवाय सम्बन्ध माना है। आप सतसई में इस प्रकार लिखते हैं:—

कर्म मिटाये मिटत नहिं, तुलसी किये विचार।
करतब ही को फेर है, या विधि सार असार॥
एक कियो हो दूसरो, बहुरि तीसरो अंग।
तुलसी कैसहु ना नसै, अतिसय कर्म तरंग॥
इन दोउन ते रहित भो, कोउ न राम तजि आन।
तुलसी यह गति जानि हैं, कोउ कोउ संत सुजान॥

अर्थात् जीवों का कर्म कभी नष्ट नहीं होता। जीव सदा कर्म के बन्धन में रहते हैं। परमात्मा अखिल कर्म करता हुआ भी उससे सदा निर्लेप रहता है और जीव कर्म द्वारा बन्धन में पड़ते हैं। जिस प्रकार वायु के झकोरे से जल में एक लहर उठी, उसने धक्के देकर दूसरी लहर उठायी और उससे पुनः तीसरी, चौथी और पाँचवीं ऊर्मिया उठती चली जाती हैं, उसी प्रकार कर्म-प्रवाह के भी सञ्चित, क्रियमाण और प्रारब्धवशात् नित्य नवीन अङ्ग बनते रहते हैं। महान से महान आत्मा भी सकाम न सही तो निष्काम कर्म के बन्धन में तो अवश्य हैं। एक विभु और असङ्ग परमात्मा ही कर्म के बन्धन से काल-त्रय में पृथक रहता है। पुनः गोस्वामी जी इस कर्म के सम्बन्ध में लिखते हैं:—

कर्म कोष सँग लै गयो, तुलसी अपनी बानि।
जहाँ जाय बिलसै तहाँ, परै कहाँ पहिचानि॥

अर्थात् जीवात्मा के साथ कर्म का कोष अनादि काल से चला आता है। यह अपने स्वाभाविक अभ्यास से सदा कर्म में तत्पर रहता है और कर्मानुसार ही सुख दुःख का भोक्ता बनता है।

विचारशील पाठक कर्म की इस अव्याहत गति को समझ गये होंगे। विधि और निषेध कर्म के दो पहलू मात्र हैं। विवेकी पुरुष अपने विशुद्ध विवेचन से निषेधात्मक कर्म-पथ का परित्याग कर विधि मार्ग का अनुगमन करते हैं। सकाम और निष्काम ये दोनों भेद इसी विधि-मार्ग के माने गये हैं। साधारण जनों की सकाम भाव से ही विधि-पथ में प्रवृत्ति होती है। निष्काम भाव का उदय उन महापुरुषों के अन्तःकरण में होता है, जिनकी गणना मनुष्य में नहीं, अपितु देव-कोटि में की जाती है। हमारे कतिपय प्राच्य दर्शनकार तो मुक्तावस्था में भी जीवों के साथ इस कर्मकोष का अत्यन्ताभाव नहीं मानते।

सुतराम् ज्ञान और उपासना के अतिरिक्त कर्म की गति और उसकी महत्ता को समझ कर उसमें यथोचित प्रवृत्ति मानव-समाज के निमित्त अत्यन्त आवश्यक है। योग, जप, पूजा, पाठ, यजन और भजन सभी कर्म-काण्ड के अन्तर्गत हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी का आविर्भाव उस काल में हुआ था, जब कर्मकाण्ड का क्षुण्ण और विकृत विकराल रूप हिन्दू जनता के सम्मुख प्रस्तुत था।

तुलसीकाल में आर्यजाति

का अधःपात शारीरिक, सामाजिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक सभी विचारों से हो चुका था। महाकवि ने स्वरचित 'रामचरितमानस' के उत्तरकाण्ड में जो तत्का-लीन चित्र चित्रित किया है उसपर दृष्टिपात करते ही प्रत्येक जात्यभिमानी के नेत्रों से अश्रुपात होने लगता है। संसारकी सर्व प्राचीन समुन्नत आर्य जाति अधोगति

की चरमसीमा पर पहुँच गयी। हमारी पुराकालीन वैदिक वर्ण-व्यवस्था नष्ट हो चुकी। चतुराश्रमी नाम मात्र के लिये भी स्व-पथ में स्थित न रहकर विपरीत पथानुगामी बन गये। गोस्वामीजी लिखते हैं—

कलिमल ग्रसे धर्म सब, गुप्त भये सद्ग्रन्थ।
दंभिन्ह निजमति कल्पकरि, प्रगट किये बहुपंथ॥
भये लोग सब मोह बस, लोभ ग्रसे शुभ कर्म।
सुनु हरिजान ज्ञाननिधि, कहउँ कछुक कलि-धर्म॥

बरन धरम नहिं आश्रम चारी। श्रुति-विरोध-रत सब नर-नारी॥
द्विज श्रुतिबंचक भूप प्रजासन। कोउ नहिं मान निगम अनुसासन॥
मारग सोइ जा कहँ जोइ भावा। पंडित सोइ जो गाल बजावा॥
मिथ्यारंभ दंभ-रत जोई। ताकहँ सन्त कहहिं सब कोई॥
सोइ सयान जो पर-धन हारी। जो कर दंभ सो बड़ आचारी॥
जो कह झूठ मसखरी जाना। कलिजुग सोइ गुनवन्त बखाना॥
निराचार जो श्रुति पथ त्यागी। कलियुग सोइ ज्ञानी वैरागी॥
जाके नख अरु जटा बिसाला। सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला॥

दो०—असुभ बेष भूषन धरे, भच्छाभच्छ जे खाहिं।
तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर, पूज्य ते कलिजुग माहिं॥
सो०—जे अपकारी-चार, तिन्हकर गौरव मान्य तेइ।
मन क्रम बचन लबार, ते बकता कलिकाल महँ॥

नारि बिबस नर सकल गोसाईं। नाचहिं नर मरकट की नाईं॥
सूद्र द्विजन्ह उपदेसहिं ज्ञाना। मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना॥
सब नर काम लोभ रत क्रोधी। देव-बिप्र-स्रुति-संत बिरोधी॥
गुनमन्दिर सुन्दर पति त्यागी। भजहिं नारि पर पुरुष अभागी॥
सौभागिनी बिभूषन हीना। बिधवन्ह के शृङ्गार नवीना॥
गुरु सिष बधिर अन्ध कर लेखा। एक न सुनहिं एक नहिं देखा॥
हरइ सिष्य धन सोक न हरई। सो गुरु घोर नरक महँ परई॥
मातु पिता बालकन्ह बोलावहिं। उदर भरइ सोइ धरम सिखावहिं॥

दो०—ब्रह्म ज्ञान बिनु नारि नर, कहहिं न दूसरि बात।
कौड़ी लागि लोभ-बस, करहिं बिप्र गुरु घात॥
बादहिं सूद्र द्विजन्ह सन, हम तुम्ह ते कछु घाटि।
जानइ ब्रह्म सो बिप्रवर, आँखि देखावहिं डाटि॥

पर तिय लंपट कपट सयाने। मोह द्रोह ममता लपटाने॥
तेइ अभेद वादी ज्ञानी नर। देखेउँ मैं चरित्र कलियुग कर॥
आप गये अरु औरनि घालहिं। जो कहुँ सत मारग प्रतिपालहिं॥
कल्प कल्प भरि एक एक नरका। परहिं जे दूखहिं स्रुतिकरि तरका॥

जे बरनाधम तेलि कुम्हारा। स्वपच किरात कोल कलवारा॥
नारि मुई गृह संपति नासी। मूँड़ मुड़ाइ होहिं संन्यासी॥
ते विप्रन्ह सन पाँव पुजावहिं। उभय लोक निज हाथ नसावहिं॥
बिप्र निरच्छर लोलुप कामी। निराचार सठ बृषली स्वामी॥
सूद्र करहिं जप तप ब्रत दाना। बैठि बरासन कहहिं पुराना॥
सब नर कल्पित करहिं अचारा। जाइ न बरनि अनीति अपारा॥

दोहा—भये बरन-संकर सकल, भिन्न सेतु सब लोग।
करहिं पाप दुख पावहिं, भय रुज सोक बियोग॥
स्रुति संमत हरि भक्ति-पथ, संजुत बिरति बिबेक।
तेहि न चलहिं नर मोहबस, कल्पहिं पंथ अनेक॥

तोटक—बहु दाम सवारहिं धाम जती। विषया हरि लीन्ह नहीं बिरती॥
तपसी धनवंत दरिद्र गृही। कलि कौतुक तात न जात कही॥
कुलवंत निकारहिं नारिसती। गृह आनहिं चेरि निबेरि गती॥
सुत मानहिं मातु पिता तबलौं। अबलानन दीख नहीं जब लौं॥
ससुरारि पियारि लगी जबतें। रिपु-रूप कुटुंब भये तबतें॥
नृप पाप-परायन धर्म नहीं। करि दंड बिडंब प्रजा नितहीं॥
धनवंत कुलीन मलीन अपी। द्विज चिह्न जनेउ उघार तपी॥
नहिं मान पुरानन्ह बेदहिं जो। हरि सेवक संत सही कलिसो॥
कबि बृंद उदार दुनी न सुनी। गुन दूषन-व्रात न कोपि गुनी॥
कलि बारहिं बार दुकाल परै। बिनु अन्न दुखी सब लोग मरै॥

दो०—सुनु खगेस कलि कपट हठ, दंभ द्वेष पाखंड।
मान मोह मारादि मद, व्यापि रहे ब्रह्मंड॥
तामस धर्म करहिं सब, जप तप मख ब्रत दान।
देव न बरषहिं धरनि पर, बये न जामहिं धान॥

तोटक—अबला कच भूषन भूरि छुधा। धनहीन दुखी ममता बहुधा॥
सुख चाहहिं मूढ़ न धर्म रता। मति थोरि कठोरि न कोमलता॥
नर पीड़ित रोग न भोग कहीं। अभिमान विरोध अकारनहीं॥
लघु जीवन संबत पंच दसा। कलपांत न नास गुमान असा॥
कलिकाल बिहाल किये मनुजा। नहिं मानत कोउ अनुजा तनुजा॥
नहिं तोष विचार न सीतलता। सब जाति कुजाति भये मँगता॥
इरषा परषाच्छर लोलुपता। भरि पूरि रही समता बिगता॥
सब लोग वियोग विसोक हये। बरनास्रम-धर्म अचार गये॥
दम दान दया नहिं जानपनो। जड़ता पर बंचनताऽति-घनी॥
तन पोषक नारि नरा सगरे। पर निंदक ते जग माँ बगरे॥

× × × × ×

तुलसीकाल में आर्यजाति के वर्णाश्रम की मर्यादा का कितना पतन हुआ था, इसका नग्न चित्र प्रवीण पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। ब्राह्मण और संन्यासी ही हमारी जाति के प्रशस्त पथ-प्रदर्शक थे, जब वे ही निरक्षर, लोलुप, कामी, अनाचारी, शठ और विषयासक्त होगये तो अन्य वर्णों अथवा आश्रमों का कहना ही क्या रहा ? जिसके चित्त में जो आया, वह उसीको धर्म कहकर मानने लगा !! इस प्रकार सारा भारतवर्ष धर्मों, मतों, जातियों एवं कल्पित उपजातियों की प्रदर्शिनी बन गया। कोई गृही, परिवार अथवा समाज किंवा संसार का सन्तप्त मनुष्य यदि तीर्थस्थानों और देवालयों में शान्ति की लिप्सा से जाता तो वहाँ कलियुग का अनुपम ताण्डव-नृत्य पाता था। महाकवि सतसई में लिखते हैं:—

चोर चतुर बट पार भट, प्रभु प्रिय भंडुआ भंड।
सब भक्षी परमारथी, कलिहिं सुपथ पाखंड॥
सुर सदनन तीरथ पुरिन, निपट कुचाल कुसाज।
मनहुँ मवासे मारि कलि, करत अकंटक राज॥

हिन्दू समाज की इस दीन, हीन और शोच्य दशा में हमारे चरित्रनायक ने अपनी लेखनी से अद्भुत सेवा की। गोस्वामी जी ने मन-वचन-कर्म से निर्भयता पूर्वक इन पाखण्डों का यथाशक्ति प्रबल खण्डन किया, पर इस विषय में सबसे अपूर्व सेवा आपने अपने अमर साहित्य के द्वारा की है।

ज्ञान, कर्म और उपासना की ऐसी विकृत और विषमावस्था में सांसारिक आधि-व्याधियों के कविराज, कविराज गोस्वामी जी ने आर्य-जनता के समक्ष ज्ञान, कर्म और उपासना का समन्वय स्वरूप मर्य्यादापुरुषोत्तम भगवान रामचन्द्र का जीवित, जागृत और जाज्वल्यमान जीवन समुपस्थित किया।

गोस्वामी जी के राम

साक्षात् धर्म के अवतार थे। जनता ने उनके जीवन में धैर्य, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय-निग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध (शान्ति) को सदेह देखा और उनके पवित्र आचारों को श्रुतिगोचर कर, कर्ण और अन्तःकरण को पवित्र किया। राम की अलौकिक प्रतिभा, दया, दाक्षिण्य, सत्यनिष्ठा, उदारता, धर्म-परायणता, सुशीलता, प्रजावात्सल्य, निर्भीकता, गुरुभक्ति, पितृभक्ति, भ्रातृ-स्नेह, स्त्रीव्रत, कार्य्यपटुता तथा नम्रता एवं क्षमाशीलता की कथाओं को पढ़ कर आज लक्षों वर्ष के अनन्तर भी प्रत्येक सहृदय का हृदय-सर प्रेम-सुधा से आप्लावित और ओत-प्रोत हो जाता है।

गोस्वामी जी के समय में हिन्दू समाज अविद्या, निर्धनता, कायरता और अशिष्टता से जर्ज्जरीभूत हो रहा था। सर्वत्र कलह, दम्भ, पाखण्ड, विद्वेष और

अनैक्य की अग्नि प्रज्वलित हो रही थी। ऐसे विकराल काल में महाकवि ने अपनी कविता में राम, सीता, भरत, कौशल्या, हनुमान और लक्ष्मण प्रभृति आदर्श नर-नारियों के पावन चरित्र लिख कर हमारे सामने सुधा-सरोवर समुपस्थित कर दिया है। परन्तु हमें क्या, कवि को स्वयं इस बात का शोक है कि हिन्दू-समाज ने इन महापुरुषों के जीवन से उतना लाभ नहीं उठाया, जितना लाभ उठाना चाहिये था। आप सतसई में एक स्थल पर लिखते हैं—

> रामायण सिख अनुहरत, जग भो भारत रीति।
> तुलसी सठ की को सुनै, कलि कुचाल पर प्रीति॥

हम रामायण में भ्रातृ-स्नेह का अगाध स्रोत बहता हुआ पाते हैं, परन्तु हमारे आचरण में महाभारतकालीन भाई भाई का कलह विद्यमान है। हम रामायण में देखते हैं कि पिता की आज्ञा का प्रतिपालन कर, मर्यादापुरुषोत्तम राम चक्रवर्ती राज्य पर भी लात मारते हैं, परन्तु महाभारतकाल में राजा धृतराष्ट्र के बहुत समझाने पर भी, दुर्योधन एक इञ्च भूमि पाण्डवों को देने पर राजी नहीं होता है! जिसका प्रतिफल स्वरूप आज सारा भारतवर्ष पराधीनता की जंजीर में जकड़ा हुआ है। सम्प्रति हिन्दू समाज में पिता की आज्ञा की अवहेलना ठीक उसी प्रकार हो रही है, जैसी महाभारतकाल में हुई थी। कहाँ तक गिनाया जाय, विद्या, विनय, विवेक धर्म, कर्म, सौजन्य और शिष्टता प्रभृति सभी अभिनयों का पटाक्षेप हो गया। आज हम रामायण का केवल मौखिक पाठ करते हैं, परन्तु हम आचरण से महाभारत-कालीन दुर्गुणों के अक्षरशः अनुयायी बने हुए हैं। ग्रन्थों का पाठ करना अत्यावश्यक है, परन्तु उस पाठ का उद्देश्य पाठमात्र ही बना लेना समय का दुरुपयोग और जीवन को नष्ट करना है। जबतक महापुरुषों के जीवन को पढ़ कर हम अपना आचरण तदनुकूल नहीं बनाते, तबतक हमारे पाठ की कोई सार्थकता नहीं और न उस कवि की कविता की ही कुछ सफलता कही जा सकती है।

गोस्वामी जी का "रामचरित-मानस" कविता और भक्ति की दृष्टि से उपादेय होने के अतिरिक्त रचना, संगठन और लोकादर्श-संस्थापन के विचार से भी अत्यन्त आदरणीय है। इस ग्रन्थ-रत्न में जिन आदर्शों का निरूपण और चित्रण किया गया है, उनका संक्षिप्त दिग्दर्शन हम अपने पाठकों को कराना चाहते हैं, जिसके अनुसार चलने से हिन्दू-समाज ही नहीं, अपितु मानव-समाज का परम कल्याण हो सकता है।

आस्तिकता

एक समुन्नत मनुष्य के जितने भी विशिष्ट गुण हो सकते हैं, उनमें 'आस्तिकता' अथवा ईश्वरोपासना अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। आस्तिकता इह

लोक की सजीवन बूटी और परलोक की सुधा है। नास्तिक नर 'इतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्ट' होकर उभय लोकों को नष्ट कर बैठते हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने जिन महापुरुषों किंवा देवियों के पावन जीवनचरित का संग्रन्थन किया है, उनमें पग पग पर आस्तिकता का प्रदर्शन कराया है। अपने 'राम' को भगवान का अवतार लिखते हुए भी सर्वत्र उनकी अशेष आस्तिकता का उल्लेख सगर्व करते गये हैं। महर्षि विश्वामित्र की यज्ञ-समाप्ति के अनन्तर राम और लक्ष्मण महर्षि के साथ जनकपुर की यात्रा में अभिनिविष्ट हुए हैं, उस काल का वर्णन करते हुए गोस्वामी जी लिखते हैं:—

प्रात समय ऋषि आयसु पाई। संध्या करन चले दोउ भाई॥

'सन्ध्या' का अर्थ है 'सन्ध्यायन्ति सन्ध्यायते वा परब्रह्म यस्यां सा सन्ध्या' अर्थात् जिस कर्म में परब्रह्म परमात्मा का ध्यान किया जाय। महर्षि वाल्मीकि ने तो शतशः स्थलों पर इन महापुरुषों के सन्ध्योपासन का वर्णन किया है। पुनः गोसाईंजी लिखते हैं:—

प्रात प्रातकृत करि रघुराई। तीरथराज दीख तब जाई॥
प्रातक्रिया करि गे गुरु पाहीं। महा प्रमोद प्रेम मनमाहीं॥

प्रात क्रिया करि मातु पद, बन्दि गुरुहिं सिरनाइ।
आगे किये निषाद जन, दीन्हें कटक चलाइ॥
कीन्ह सौच सब सहज सुचि, सरित पुनीत नहाय।
प्रात क्रिया करि तात पहँ, आये चारिउ भाय॥

ऊपर के पद्यों में राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न चारों भ्राताओं की प्रातः-क्रिया अर्थात् उपासना का वर्णन किया गया है। इसी प्रकार 'तजी समाधि संभु अविनासी' इत्यादि पद्यों से शिवजी का समाधिस्थ होकर ईश्वरोपासन में परायण होने का कथन किया है। इसी क्रम से ऋषियों, मुनियों और महान से महान व्यक्तियों का वर्णन करते हुए महाकवि ने उनकी अगाढ़ आस्तिकता का प्रदर्शन किया है। बहुत ही दुःख का विषय है कि आज हिन्दू समाज में उस वेद-प्रतिपादित सनातन सन्ध्योपासन की प्रथा लुप्तप्राय हो गयी है। यदि हम इस अंश में पूर्वजों का अनुसरण करें तो हमारा परम कल्याण हो सकता है।

मातृ-भक्ति

इस संसार में परमात्मा को छोड़ कर 'माता' का पद सर्वोपरि है। मनु भगवान ने अपने धर्मशास्त्र में कहा है:—

उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता।
सहस्रन्तु पितॄन्माता गौरवेणातिरिच्यते॥ अ० २—१३८

अर्थात् उपाध्याय की अपेक्षा आचार्य का दश गुना, आचार्य की अपेक्षा पिता का शत गुना और पिता की अपेक्षा माता का सहस्र गुना गौरव कथन किया है।

क्यों न हो! जिस माता ने गर्भाधान से लेकर जातकर्म तक अपने उदर में हमें धारण किया, पांच वर्ष तक नाना प्रकार हमारा प्रतिपालन कर पुनः विविध भांति की सुशिक्षा देकर आजीवन हमारा मङ्गल मनाया उससे बढ़ कर हमारे लिये संसार का कोई संबन्धी कैसे पूज्य हो सकता है? गोस्वामी तुलसीदास जीने भी कौशल्या देवी के मुख से इसी भाव को अभिव्यक्त कराया है। जिस समय रामचन्द्र जी अपनी माता से वन जाने की आज्ञा माँगने गये हैं उस समय माता ने कहा है:—

जो केवल पितु आयसु ताता। तो जनि जाहु जानि बड़ि माता॥

तुलसी कृत ग्रन्थों में 'माता' की मर्यादा अत्यन्त ऊँची रखी गयी है।

प्रात काल उठिके रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिं माथा॥

इत्यादि पद्यों के द्वारा गोस्वामी जी ने माता और पुत्र के भावोंका आदर्श प्रकट किया है। रामजी अपनी माता का बड़ा ही आदर करते थे। पिता की आज्ञा प्राप्त कर भी वन-गमन के लिये माता का आदेश और आशीर्वाद लेनेको जाते हैं:—

धरम धुरीन धरम गति जानी। कहेउ मातु सन अति मृदु बानी॥
पिता दीन्ह मोहि कानन राजू। जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू॥
आयसु देहु मुदित मन माता। जेहि मुद मंगल कानन जाता॥

पुनः माता को धैर्य बँधाते हैं:—

जनि सनेह बस डरपसि मोरे। आनँद अंब अनुग्रह तोरे॥
बरस चारि दस बिपिन बसि, करि पितु बचन प्रमान।
आइ पाँइ पुनि देखिहौं, मन जनि करसि मलान॥

रामके इन वचनों को सुनकर माता कौशल्या का पुनीत कोमल हृदय डाँवाडोल हो उठा:—

बचन बिनीत मधुर रघुबर के। सर सम लगे मातु उर करके॥
सहमि सूख सुनि सीतल बानी। जिमि जवास पर पावस पानी॥
कहि न जाय कछु हृदय बिषादू। मनहुँ मृगी सुनि केहरि नादू॥
नयन सजल तन थर थर काँपी। माँजा मनहुँ मीन कहँ मापी॥

अधीर होकर माता अपने प्यारे पुत्र से पूछती है:

राम! हौं कवन जतन घर रहिहौं?
बार बार भरि अंक गोद लै, ललन कौन सों कहिहौं॥

इहि आँगन बिहरत मेरे बारे! तुम जो संग सिसु लीन्हें।
कैसे प्रान रहत सुमिरत सुत, बहु विनोद तुम कीन्हें॥
जिन्ह स्रवननि कल बचन तिहारे, सुनि सुनि हौं अनुरागी।
तिन्ह स्रवननि बनगवन सुनति हौं, मोतें कौन अभागी॥
जुग सम निमिष जाहिं रघुनन्दन, वदन-कमल बिनु देखे।
जौं तनु रहै बरस बीते, बलि, कहा प्रीति एहि लेखे॥
तुलसीदास प्रेम बस श्रीहरि, देखि बिकल महतारी।
गद गद कंठ, नयन जल, फिरि फिरि आवन कह्यो मुरारी॥

इस प्रकार प्रेम-विह्वल धर्मशीला कौशल्या देवी धर्म के तत्वों पर ध्यान देकर बोलती हैं:—

जो केवल पितु आयसु ताता। तो जनि जाहु जानि बड़ि माता॥
जो पितु मातु कहेउ बन जाना। तो कानन सत अवध समाना॥

गोस्वामी जी ने ऊपर की दूसरी चौपाई लिखकर कौशल्या के विशाल हृदय एवं उन्नत विचारों का परिचय दिया है। वह 'विमाता' कैकेयी को भी माता ही समझने का आदेश कर कहती हैं कि हे पुत्र! जब पिता और माता (कैकेयी) इन दोनों की ही आज्ञा तुम्हें वन जाने के लिये मिल चुकी है, तब क्या? प्रसन्नता पूर्वक जाव!!! इस प्रकार महात्मा राम अपनी माता की आज्ञा पाकर बन चले। अब लक्ष्मण अपनी माता से राम के साथ जाने की आज्ञा लेने के निमित्त जाते हैं:—

जाइ जननि पग नायउ माथा। मन रघुनन्दन जानकि साथा॥
पूछेउ मातु मलिन मन देखी। लषन कही सब कथा बिसेखी॥
गई सहमि सुनि बचन कठोरा। मृगी देखि दव जनु चहुँओरा॥
लषन लखेउ भा अनरथ आजू। एहि सनेह बस करब अकाजू॥
माँगत बिदा सभय सकुचाहीं। जाइ संग बिधि कहहि कि नाहीं॥

दो०—समुझि सुमित्रा राम सिय, रूप सुसील सुभाउ।
नृप सनेह लखि धुनेउ सिर, पापिनि दीन्ह कुदाउ॥

धीरज धरेउ कुअवसर जानी। सहज सुहृद बोली मृदुबानी॥
तात तुम्हारि मातु वैदेही। पिता राम सब भाँति सनेही॥
अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहँइ दिवस जहँ भानु प्रकासू॥
जौं पै सीय राम बन जाहीं। अवध तुम्हार काज कछु नाहीं॥
गुरु पितु मातु बन्धु सुरसाईं। सेइअहि सकल प्रान की नाईं॥
राम प्रान प्रिय जीवन जी के। स्वारथ रहित सखा सबही के॥
पूजनीय प्रिय परम जहांते। सब मानिअहि रामके नाते॥
अस जिय जानि संग बनजाहू। लेहु तात जग जीवन लाहू॥

दो०—भूरि भाग भाजन भयहु, मोहि समेत बलि जाउँ।
जौं तुम्हरे मन छाँड़ि छल, कीन्ह राम पद ठाउँ॥
पुत्रवती जुवती जग सोई। रघुपति भगत जासु सुत होई॥
न तरु बाँझ भलि बादि बिआनी। राम बिमुख सुतते हित हानी॥
तुम्हरेहि भाग राम बन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं॥
सकल सुकृत कर बड़ फल एहू। राम सीय पद सहज सनेहू॥
राग दोष इरिषा मद मोहू। जनि सपनेहुँ इन्हके बस होहू॥
सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई॥
तुम्ह कहँ बन सब भाँति सुपासू। सँग पितु मातु राम सिय जासू॥
जेहि न राम बन लहहिं कलेसू। सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू॥
छन्द—उपदेस यह जेहि जात तुम्हरे राम सिय सुख पावहीं॥
पितु मातु प्रिय परिवार पुर सुख सुरति बन बिसरावहीं॥
तुलसी सुनहि सिख देइ आयसु दीन्ह पुनि आसिष दई।
रति होउ अविरल अमल सिय रघुबीर पद नित नित नई॥

सो०—मातु चरन सिर नाइ, लषन चले संकित हिये।
बागुर विषम तोराइ, मनहुँ भाग मृग भाग बस॥

हमारे विचारशील पाठक ऊपर के पद्यों को पूर्ण मनन करें तब उन्हें सुमित्रा देवी के उच्च व्यक्तित्व का पता चलेगा। अपने प्यारे पुत्र को इस कुल देवी ने किस उदारता और महान हृदयता से राम की सेवा में समर्पित कर दिया है यह प्रत्येक माता और पुत्र के निमित्त आदर्श पाठ हो सकता है। कौशल्या और सुमित्रा ने चारों पुत्रों में भिन्न दृष्टि कभी न रखी। यों तो कुटिला मन्थरा के बहकाने के पूर्व कैकेयी का भाव भी रामादि के प्रति ठीक वैसा ही था जैसा कौशल्या और सुमित्रा का। कैकेयी ने दुष्ट मन्थरा को खूब फटकारा:—

पुनि अस कबहुँ कहसि घर फोरी। तौ धरि जीभ कढ़ाउब तोरी॥
काने खोरे कूबरे, कुटिल कुचाली जानि।
तिय विशेष पुनि चेरि कहि, भरत मातु मुसुकानि॥
प्रिय बादिनि सिख दीन्हेउँ तोही। सपनेहुँ तोपर कोप न मोही॥
सुदिन सुमंगल दायक सोई। तोर कहा फुर जा दिन होई॥
जेठ स्वामि सेवक लघु भाई। यह दिनकर कुलरीति सदाई॥
राम तिलक जो साँचहु काली। देउँ माँगु मन भावत आली॥
कौसल्या सम सब महतारी। रामहिं सहज सुभाव पिआरी॥
मोपर करहिं सनेह बिसेखी। मैं करि प्रीति परीच्छा देखी॥
जो विधि जनम देइ करि छोहू। होहिं राम सिय पूत पतोहू॥
प्रानते अधिक राम प्रिय मोरे। तिनके तिलक छोभ कस तोरे॥

× × × ×

हमारे सुहृद पाठक इन पद्यों से कैकेयी के उस हार्दिक-स्नेह का परिचय पा सकते हैं जो वरदान के पूर्व उसके हृदय में अवस्थित था। खलों की खलता भी जादू का काम कर जाती है। तभी तो गोस्वामी जी लिखते हैं :—

तुलसी खल बानी बिमल, सुनि समुझब हिय हेरि।
राम राज बाधक भई, मन्द मंथरा चेरि॥

मन्थरा के बहकावे में आकर उसी कैकेयी ने समस्त रघु-वंश को ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण साम्राज्य को विपत्तिवारिधि में डुबो दिया !!! राम बन जाने के लिये तैयार होकर लक्ष्मण और सीता के साथ अपने पूज्य पिता जी को प्रणाम करने गये हैं। इसी अवसर पर मुमुर्षु दशरथ उठ बैठे और सीता को घर रहने के संबन्ध में शिक्षा देने लगे। सीता ने संकोचवश उत्तर न दिया और मौन रह गयी। इतने में ही कैकेयी ने समझा कि ऐसा न हो कि पिता के प्रेम-पाश से बद्ध होकर राम अपनी बनयात्रा ही स्थगित करदें। इसपर कैकेयी की करनी देखिये:—

सीय सकुच बस उतरु न देई। सो सुनि तमकि उठी कैकेई॥
मुनि पट भूषन भाजन आनी। आगे धरि बोली मृदुबानी॥
नृपहिं प्रान प्रिय तुम रघुबीरा। सील सनेह न छांड़िहिं भीरा॥
सुकृत सुजस परलोक नसाऊ। तुम्हहिं जान बन कहिहिं न काऊ॥
अस बिचारि सोइ करहु जो भावा। राम जननि-सिख सुनि सुख पावा॥

ऐसी विकट परिस्थिति में भी वह अपनी निर्दयता प्रदर्शन में तनिक नहीं चूकती। पाठक ऊपर के पद्यों पर विचार करें कि कैसे चुभने वाले वाक्य हैं ? परन्तु ऐसे शूलोत्पादक वाक्यों को भी सुन धर्मात्मा राम उन्हें शिक्षा-प्रद समझकर प्रसन्न ही होते हैं। कैकेयी पर तनिक अप्रसन्नता का भाव तक नहीं आने देते। कैकेयी ने राम का इतना अहित किया, जिसका वर्णन करना हमारी लेखनी की शक्ति के बाहर की बात है, परन्तु महात्मा राम की भक्ति कैकेयी के प्रति वैसी ही दृढ़ रही, जैसी कौशल्या और सुमित्रा के चरणों में थी। चित्रकूट में जहाँ रामसे मिलने के लिये समस्त साम्राज्य की महान व्यक्तियाँ गयी हैं, वहाँ माताओंसे मिलने के अवसर ज्ञाननिधान राम सब से पूर्व कैकेयी से ही मिले हैं:—

प्रथम राम भेंटी कैकेई। सरल सुभाय भगति मति भेंई॥
पगपरि कीन्ह प्रबोध बहोरी। काल करम बिधि सिर धरि खोरी॥

मर्यादापुरुषोत्तम की इस उदारता और सहृदयता की जितनी भी प्रशंसा की जाय, थोड़ी ही है। बनवास की अवधि समाप्त कर जब राम अयोध्या लौटे हैं तब भी माताओं में सबसे पूर्व कैकेयी से ही मिले हैं:—

प्रभु जानी कैकई लजानी। प्रथम तासु गृह गये भवानी॥

राम ने अपने मन, वचन और कर्म से कभी भी कैकेयी का अनादर नहीं किया, प्रत्युत सर्वदा सब माताओं का समान सम्मान किया। जिस समय वनवास की आज्ञा कैकेयी ने राम को सुनायी, उस समय अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक श्री रघुनाथ जी कहते हैं:—

सुनु जननी सोइ सुत बड़ भागी। जौ पितु मातु वचन अनुरागी॥
तनय मातु पितु पोषन हारा। दुर्लभ जननी एहि संसारा॥
मुनिगन मिलन विसेषबन, सबहिं भाँति हित मोर।
तेहि महँ पितु आयसु बहुरि, सम्मत जननी तोर॥

देखा आपने कैसे उच्च भाव हैं!! महाराज के हृदय में कैकेयी के प्रति विमाता का तनिक भाव नहीं!!!

भरत ने तो कैकेयी से यावज्जीवन सम्बन्ध-विच्छेद और असहयोग ही रखा, पर राम सर्वदा उसे अपनी माता से भी बढ़कर मानते रहे। गोसाईं जी 'गीतावली' में लिखते हैं:—

कैकेयी जौलों जियति रही।
तौलों बात मात सों मुख भरि, भरत न भूलि कही॥
मानी राम अधिक जननी ते, जननिहुँ गँस न गही।
सीय लखन रिपु दवन राम-रुख, लखि सबकी निबही॥

× × × ×

राम के रुख को देखकर सीता, लक्ष्मण और शत्रुघ्नादि सभी कैकेयी से सद्भाव रखते थे और कौशल्या भी उसका प्यार ही करती थी।

देखें, भगवान इस भारतवर्ष में पुनः कब कौशल्या और सुमित्रा सी माताओं अथच राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न से सुपुत्रों को उत्पन्न कर देश की काया पलटते हैं!

पितृ-भक्ति

समस्त 'राम-चरित-मानस' अथवा रामायण कालीन इतिहास के प्रासाद की आधारशिला यही पितृ-भक्ति है। यदि मर्यादापुरुषोत्तम राम में पितृ-भक्ति विशिष्ट किंवा अति मात्रा में विद्यमान न होती तो वनगमन, सीताहरण और लङ्का-विध्वंस तो आकाश-पुष्प होता ही; वस्तुतः पिता की आज्ञा का प्रतिपालन, भाई भाई का स्नेह, पातिव्रत एवं स्त्रीव्रत-धर्म का आदर्श, समुचित संगठन, निःस्वार्थ सेवा और दुष्ट दलन के जो कुछ उल्लेख पाये जाते हैं, हम उनसे वञ्चित रह जाते। हमारी आर्य जाति को राम की पितृ-भक्ति का गर्व है। हमें संसार के समक्ष इस इतिहास को रखने में वह गौरव प्राप्त होता है जो जगती की अन्य

किसी जाति को नहीं हो सकता। आज हम भले ही इतने पतित हो गये हैं कि पिता की आज्ञा का प्रतिपालन तो दूर रहा, हम उनकी साधारण सेवा करने में भी हिचकते हैं, पर महापुरुष रामचन्द्र ने पिता को केवल धर्म-प्रेम-पाश में बद्ध देखकर ही चक्रवर्त्ती राज्य के सुख को लात से ठुकरा दिया।

महाराज दशरथ तो अपने मुख से राम को वनवास जैसी कठोर बात को कहना भी नहीं चाहते, पर राम ही सारी परिस्थिति पर विचार कर अपने पिता से कहते हैं:—

तात कहहुँ कछु करउँ ढिठाई। अनुचित छमब जानि लरिकाई॥
अति लघु बात लागि दुख पावा। काहु न मोहि कहि प्रथम जनावा॥

उस चौदह वर्ष के वनवास की आज्ञा को धर्मात्मा राम अत्यन्त तुच्छ समझते हैं। बापरे बाप! इतना धैर्य!! ऐसी उग्र पितृभक्ति!!! पुनः कहते हैं:—

धन्य जनम जगतीतल तासू। पितहिं प्रमोद चरित सुनि जासू॥
चारि पदारथ करतल ताके। प्रिय पितु मातु प्रान सम जाके॥
आयसु पालि जनम फल पाई। ऐहौं बेगिहि होउ रजाई॥

पिता की ऐसी कठोर आज्ञा के प्रतिपालन में ही महात्मा राम अपने जीवन की सफलता और सार्थकता समझते हैं। राम बन जाते हैं सही; पर उनका चित्त महाराज की सेवा में ही निहित है। गुरु, पुरोहित, बन्धु-बान्धव, दास-दासी और नागरिक जनों को एकत्रित करके करबद्ध प्रार्थना करते हैं:—

बारहिं बार जोरि जुग पानी। कहत राम सब सन मृदुबानी॥
सोई सब भाँति मोर हितकारी। जेहि ते रहैं भुआल सुखारी॥

अर्थात् हमारा सबसे बढ़कर प्यारा और शुभचिन्तक वही समझा जायगा जिसकी सेवा-सुश्रूषा एवं आचार-व्यवहार से हमारे पूज्य पिता सुखी रहें। वास्तव में महापुरुष ने इन वाक्यों से समस्त साम्राज्य को महाराज की सेवा करने का संकेत कर दिया। इस प्रकार पिता की आज्ञा के प्रतिपालनार्थ राम अपने लघु भ्राता और धर्मपत्नी के साथ बन को चल पड़े। महाराज दशरथ के आदेश से वृद्ध सचिव सुमन्त भी साथ हो लेते हैं। बन में चार दिन जब व्यतीत हो गये तब सुमन्त ने राम को समझाना प्रारम्भ किया। हे तात! अब अयोध्या वापस चलो क्योंकि आप के वियोग से आप के पिता बड़े ही दुःखी हैं। इस पर उग्र स्वभावधारी लक्ष्मण ने पिता के कृत्य पर कुछ कटूक्ति की। लक्ष्मण के इन वचनों को सुनकर महात्मा राम बड़े आतुर हो उठे क्योंकि पिता की प्रतिष्ठा के विरुद्ध वह एक अक्षर भी सुनना नहीं चाहते थे। इधर लक्ष्मण को तो आप ने डाँट बतलायी और उधर सुमन्त से निहोरा करते हैं कि हे तात सुमन्त! लक्ष्मण ने लड़कपन के कारण जो

किञ्चित् कटु-भाषण कर दिया है, उसे भूल कर भी पिता जी से नहीं कहना, नहीं तो उन्हें महान् कष्ट होगा ! गोसाईं जी ने इस प्रसङ्ग को इस प्रकार लिखा है:—

पुनि कछु लषन कही कटु बानी। प्रभु बरजेउ बड़ अनुचित जानी ॥
बरजि राम निज सपथ दिवाई। कहब न तात लषन लरिकाई ॥

राम का हृदय बड़ा ही विशाल था। वे संसार के समस्त तत्वों और रहस्यों को भलीभाँति जानते थे। उसके साथ ही धर्म के गूढ़ातिगूढ़ मर्मों के भी पूर्ण ज्ञाता थे। पिता की इस कठिन से कठिन आज्ञा को भी उन्होंने लीलावत् निबाह दिया। महाराज दशरथ भी देहावसान समय राम के इन्हीं गुणों का स्मरण करते हैं:—

राज सुनाइ दियेउँ बनबासू। सुनि मन भयउ न हरष हरासू ॥
सो सुत बिछुरत गयउ न प्राना। अधम कवन जग मोहिं समाना ॥

भगवान करें कि दशरथ और राम के समान अटूट भक्ति—प्रेम का प्रवाह संसार के पिता-पुत्रों के हृदय में पुनः प्रवाहित हो। राम तो बन से भी सुमन्त के द्वारा संवाद भेजते हैं:—

पितु पद गहि कहि कोटिनति, विनय करब कर जोरि।
चिन्ता कवनिहुँ बात की, तात करबि जनि मोरि ॥

तात प्रनाम तात सन कहेऊ। बार बार पद पंकज गहेऊ ॥
करब पाँय परि बिनय बहोरी। तात करिय जनि चिंता मोरी ॥
बन मग मङ्गल कुसल हमारे। कृपा अनुग्रह पुन्य तुम्हारे ॥

तुम्हरे अनुग्रह तात कानन जात सब सुख पाइहौं।
प्रनिपालि आयसु कुसल देखन पाँय पुनि फिरि आइहौं ॥
जननी सकल परितोषि परि परि पाँय करि बिनती घनी।
तुलसी करेहु सोइ जतन जेहि कुसली रहहिं कोसल धनी ॥

सो०—गुरु सन कहब सँदेस, बार बार पद पदुम गहि।
करब सोइ उपदेस, जेहि न सोच मोहि अवधपति ॥

और इधर महाराज दशरथ यह कह कर अन्तिम श्वास लेते हैं:—

हा रघुनन्दन प्रान पिरीते। तुम बिन जियत बहुत दिन बीते ॥
हा जानकी लषन हा रघुबर। हा पितु चितहित चातक जलधर ॥

राम राम कहि राम कहि, राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबर बिरह, राउ गये सुरधाम ॥

गुरु-भक्ति

माता-पिता के अनन्तर हमारे प्राच्य ग्रन्थकारों के मत से गुरु अथवा आचार्य का स्थान सर्वोच्च माना गया है। माता-पिता तो संसार में हमारे जन्मदाता

मात्र हैं; परन्तु गुरु तो समस्त संसार और परमात्मा का साक्षात् ज्ञानदाता होता है। गुरु हमारे समस्त अज्ञानान्धकार का विनाशक और उभय लोकों का वास्तविक पथ-प्रदर्शक होकर हमारे सुख एवं शान्ति का प्रदाता है। यही कारण है कि गोस्वामी तुलसीदास जी ने स्वरचित 'राम-चरित-मानस' में गुरु-गरिमा का अटूट प्रवाह प्रवाहित किया है। आप लिखते हैं:—

बन्दौं गुरुपद पदुम परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा॥
अमिय मूरिमय चूरन चारू। समन सकल भव रुज परिवारू॥
सुकृत संभु तन बिमल बिभूती। मंजुल मंगल मोद प्रसूती॥
जन मन मंजु मुकुर मल हरनी। किये तिलक गुनगन बस करनी॥
श्री गुरु पद नख मनिगन जोती। सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती॥
दलन मोह तम सोसु प्रकासू। बड़े भाग उर आवहिं जासू॥
उघरहिं बिमल बिलोचन ही के। मिटहिं दोष दुख भव रजनीके॥
सूझहिं रामचरित मनि मानिक। गुप्त प्रगट जहँ जो जेहि खानिक॥

यथा सुअंजन अंजि दृग, साधक सिद्ध सुजान।
कौतुक देखहिं सैल बन, भूतल भूरि निधान॥

गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन। नयन अमिय-दृग-दोष बिभंजन॥
तेहि करि विमल बिबेक विलोचन। बरनउ राम चरित भवमोचन॥

और भी

जे गुरु चरण रेणु सिर धरहीं। ते जनु सकल विभव बस करहीं॥

गोस्वामी जी केवल मौखिक रूप से गुरु की महिमा गाकर तूष्णीं नहीं रह गये, अपितु इतिहासों के द्वारा महापुरुषों के आचरण से भी गुरु-भक्ति की पर्याप्त पुष्टि की है। राज्याभिषेक के पूर्व राजराजेश्वर दशरथ, वशिष्ठ जी महाराज को राम के पास शिक्षा देने के अभिप्राय से भेजते हैं। वहाँ युवराज राम ने अपने गुरु के साथ किस प्रकार शिष्टाचार किया है, उसका वर्णन सुनिये:—

तव नरनाह वसिष्ठ बुलाए। राम धाम सिख देन पठाए॥
गुरु आगमन सुनत रघुनाथा। द्वार आइ पद नायउ माथा॥
सादर अरघ देइ घर आने। सोरह भाँति पूजि सनमाने॥
गहे चरन सिय सहित बहोरी। बोले राम कमल कर जोरी॥
सेवक सदन स्वामि आगमनू। मंगल मूल अमंगल दमनू॥
तदपि उचित अस बोलि सप्रीती। पठइय काज नाथ अस नीती॥
प्रभुता तजि प्रभु कीन्ह सनेहू। भयेउ पुनीत आजु यह गेहू॥
आयसु होइ सो करउं गोसाईं। सेवक लहइ स्वामि सेवकाई॥

स्वयं दशरथ वशिष्ठ जी से कहते हैं:—

मोहि सम यह अनुभयेउ न दूजे। सब पायउँ रज पावन पूजे॥

इसी प्रकार ब्रह्मर्षि विश्वामित्र जी की राज्य-गृह से बिदाई के समय का वर्णन कवि ने इस प्रकार लिखा है !—

मांगत बिदा राउ अनुरागे। सुतन्ह समेत ठाढ़ भये आगे॥
नाथ सकल संपदा तुम्हारी। मैं सेवक समेत सुत नारी॥
करबि सदा लरिकन्ह पर छोहू। दरसन देत रहब मुनि मोहू॥
अस कहि राउ सहित सुत रानी। परेउ चरन मुख आवन बानी॥
दीन्ह असीस बिप्र बहुभाँती। चले न प्रीति रीति कहि जाती॥

राम आदि चारो भाइयों के विवाह के अनन्तर महाराज दशरथ ने महर्षियों और ब्राह्मणों का इस प्रकार पूजन किया है:—

प्रात क्रिया करि गे गुरु पाँही। महाप्रमोद प्रेम मन माँही॥
करि प्रनाम पूजा कर जोरी। बोले गिरा अमिय जनु बोरी॥
तुम्हरी कृपा सुनहु मुनि राजा। भयउ आज मैं पूरन काजा॥
अब सब बिप्र बोलाइ गोसांई। देहु धेनु सब भाँति बनाई॥

बामदेव अरु देवरिषि, बाल्मीकि जाबालि।
आये मुनिवर निकर तब, कौसिकादि तपसालि॥

दण्ड प्रनाम सबहिं नृप कीन्हें। पूजि सप्रेम बरासन दीन्हें॥
चारि लच्छ बर धेनु मंगाई। काम सुरभि सम सील सुहाई॥
सब बिधि सकल अलंकृत कीन्हीं। मुदित महिप महिदेवन्ह दीन्ही॥
करत बिनय बहु बिधि नर नाहू। लहउँ आजु जग जीवन लाहू॥

बार बार कौसिक चरन, सीस नाइ कह राउ।
यह सब सुख मुनिराज तब, कृपा कटाच्छ प्रभाउ॥

गोस्वामी जी ने इस प्रकार गुरु-शिष्य परम्परा और शास्त्रीय मर्यादा का पूर्ण रूप से निर्वाह कराया है।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने जहाँ राम की बन-यात्रा लिखी है वहाँ मार्ग में जितने ऋषि और मुनि अथवा तपस्वी मिले हैं, उन सबों को मर्यादापुरुषोत्तम राम ने निरभिमानता पूर्वक सादर दण्ड-प्रणाम किये हैं। हम नीचे कतिपय पद्य मात्र उद्धृत कर देना अपने कथन की पुष्टिमें पर्याप्त समझते हैं। देखिये:—

तब प्रभु भरद्वाज पहँ आये। करत दण्डवत मुनि उर लाये॥

× × × ×

देखत बन सर सैल सुहाए। बालमीक आश्रम प्रभु आए॥
मुनि कहँ राम दण्डवत कीन्हा। आसिरबाद बिप्रवर दीन्हा॥

× × × ×

अत्री के आश्रम प्रभु गयऊ। सुनत महा मुनि हरषित भयऊ॥
पुलकित गात अत्रि उठि धाये। देखि राम आतुर चलि आये॥

करत दण्डवत मुनि उर लाये। प्रेम बारि दोउ जन अन्हवाये॥

× × × ×

अनुसूया के पद गहि सीता। मिली बहोरि सुसील बिनीता॥

× × × ×

महर्षि अत्रि को राम-लक्ष्मण ने दण्डवत किया है और ऋषि-पत्नी के चरणों में सीता देवी ने सिर झुकाये हैं। बहुत कुछ उपदेश पाकर जब रामचन्द्र चलने लगे हैं तो पुनः ऋषि-परिवार का अभिवादन किया है:—

मुनि पद कमल नाइ करि सीसा। चले बनहिं सुरनर मुनि ईसा॥

× × × ×

एवमस्तु कहि रमा निवासा। हरषि चले कुंभज रिषि पासा॥
सुनत अगस्त तुरत उठि धाये। हरि बिलोकि लोचन जलछाये॥
मुनि पद कमल परे दोउ भाई। रिषि अति प्रीति लिये उर लाई॥

× × × ×

अहह! वह समय भी क्या ही अपूर्व था, जब भारत का एक सम्राट, तपोधन पाणि-पात्र महर्षियों के कुटीरों में भ्रमण कर उनके चरणों का पूजन करता और वे सर्वस्व त्यागी ब्राह्मण सादर अपने हृदय-सम्राट को हृदय से लगा कर आह्लादित और गद्‌गद् होते थे। गोस्वामी तुलसीदासजी ने इन कथाओं और वर्णनों को जनता के सम्मुख रख कर प्राचीनकाल की मर्यादा और आदर्श का हमें परिचय दिलाया है। एक स्थल तो आपने

हृदय सुमिरि निज प्रभु रघुराई। बैठे शिव बिप्रन सिर नाई॥

लिख कर शिवजी को भी ब्राह्मणों के समक्ष झुका दिया। वास्तव में पूर्व काल के ब्राह्मणों और ऋषियों का त्याग, तप और विद्या ऐसी बढ़ी चढ़ी थी, जिसके सम्मुख समस्त संसार सिर झुकाता था। आज न तो वैसे गुरु हैं, न वैसे शिष्य ही रहे, न वह गुरुभक्ति ही रही। कहीं कहीं अन्धपरम्परावश दुर्वर्त्मानुवर्ती नर आडम्बर धारण कर गुरु बने हुए ईश्वर से भी बढ़ कर अपनी पूजा-प्रतिष्ठा करा रहे हैं और कहीं सच्चे प्रतिष्ठापात्र पुरुष ठोकर खा रहे हैं। मनु भगवान कहते हैं:—

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते, पूज्या याश्च व्यतिक्रमम्।
त्रीणि तत्र भविष्यन्ति, दुर्भिक्षं मरणं भयम्॥

अर्थात् जहाँ प्रतिष्ठा के अनधिकारियों का सत्कार और अधिकारियों का असत्कार होता है, वहाँ सर्वदा दुर्भिक्ष, मरण और भय उपस्थित रहते हैं। अतः सब मनुष्यों को उचित है कि सम्मानार्ह पुरुषों की पूजा और अपूज्यों का सर्वथा तिरस्कार अथवा उपेक्षा करें।

अतिथि-सेवा

हमारे वैदिक सनातनधर्म में ईश्वरोपासना के अतिरिक्त प्रत्येक गृहस्थ के लिये पञ्चदेव-पूजा अत्यावश्यक है—(१) माता, (२) पिता, (३) आचार्य, (४) अतिथि और (५) दम्पति अर्थात् स्त्री के लिये पति एवं पति के लिये स्त्री, ये पञ्च-देव कहे गये हैं। वेदों में अतिथि-सेवा का महत्व बहुत कुछ कहा गया है। पूर्ण विद्वान्, परोपकारी, जितेन्द्रिय, धार्मिक, सत्यवादी और सदा भ्रमण करने वाले महात्मा अकस्मात् किसी गृही के द्वार पर पहुँच जायँ तो उन्हीं को अतिथि कहा जाता है। ऐसे अतिथियों का सत्कार करना प्राचीन आर्यों के परिवार में परमधर्म माना जाता था। मनु भगवान स्वनिर्मित मानवधर्मशास्त्र में बतलाते हैं:—

कृत्वैतद्बलिकर्मैवमतिथिं पूर्वमाशयेत्।
भिक्षां च भिक्षवे दद्यात् विधिवद् ब्रह्मचारिणे ॥ अ० ३।८०

इस श्लोक में स्पष्ट आदेश है कि 'पूर्वं अतिथिं आशयेत्' अर्थात् प्रथम अतिथि को भोजन करावे। अथर्ववेद में अत्यन्त विशद रीति से अतिथि-सेवा का विधान करते हुए लिखा है कि 'तत्पूर्वं नाश्नीयात्' अर्थात् अतिथि को बिना भोजन कराये गृही को उसके पूर्व स्वयं भोजन करना उचित नहीं। मानवधर्मशास्त्र के प्रणेता तो यहाँ तक विधि करते हैं:—

अप्रणोद्योऽतिथिः सायं सूर्योढो गृहमेधिना।
कालेप्राप्तस्त्वकाले वा नास्यानश्नन् गृहे वसन् ॥
न वै स्वयं तदश्नीयादतिथिं यन्न भोजयेत्।
धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं चातिथिपूजनम् ॥ अ० ३। ९२-७२

अर्थात् सूर्यास्त होने पर सायंकाल में भोजन के समय अथवा असमय में आये हुए अतिथि का तिरस्कार न करे और उस अतिथि को बिना भोजन कराये घर में न ठहरावे किन्तु अवश्यमेव भोजनादि द्वारा सेवा करके सत्कार पूर्वक ठहरावे। गृही को उचित है कि जो पदार्थ अतिथि को न खिला सका है उसे आप भी न खाय क्योंकि अतिथि-सत्कार से धन, यश, आयु और स्वर्ग की प्राप्ति होती है।

हमारे यहां तो पञ्चमहायज्ञान्तर्गत बलिवैश्वदेव कर्म में प्रत्येक गृही के गृह में अतिथि का भाग ही निकाला जाता था और अतिथि के अभाव में वह अग्नि-देव की सेवा में सादर समर्पित कर दिया जाता था।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने उस पुरातन अतिथि-पूजन का स्थान स्थान पर विधान और महत्व-प्रदर्शन किया है। 'राम' नाम की महिमा दर्शाते हुए आप लिखते हैं:—

अतिथि पूज्य प्रीतम पुरारि के। कामद घन दारिद दवारि के ॥

अर्थात् यह 'राम' नाम महादेव को ऐसा प्यारा है जैसा 'अतिथि' पूज्य और प्रियतम होता है। गोस्वामीजी प्रसङ्गानुसार प्रत्येक कथा में अतिथि-सेवा का वर्णन अत्यन्त महत्वपूर्वक लिखते गये हैं। हम यहां कतिपय प्रकरण उद्धृत करके उनमें अतिथि-सत्कार का निदर्शन करेंगे।

(१) नारदजी जब हिमवान राजा के गृह गये, वहां लिखा है:—

"शैलराज बड़ आदर कीन्हा। पद पखारि बर आसन दीन्हा॥
नारि सहित मुनिपद सिर नावा। चरन सलिल सब भवन सिंचावा॥
निज सौभाग्य बहुत गिरि बरना। सुता बोलि मेली मुनि चरना॥"

\+ \+ \+ \+

(२) मर्यादापुरुषोत्तम राम जब वानप्रस्थी रूप में मुनिवेश धारण कर महर्षि भरद्वाज के आश्रम में गये हैं, वहां भरद्वाज ने उनका परमादर किया है:—

"मुनि मन मोद न कछु कहि जाई। ब्रह्मानन्द रासि जनु पाई॥
दीन्ह असीस मुनीस उर, अति अनन्द अस जानि।
लोचन गोचर सुकृत फल, मनहुँ किये विधि आनि॥
कुसल प्रस्न करि आसन दीन्हें। पूजि प्रेम परिपूरन कीन्हें॥
कन्द मूल फल अंकुर नीके। दिये आनि मुनि मनहुँ अमीके॥
सीय लषन जन सहित सुहाये। अति रुचि राम मूलफल खाये॥
भये विगत स्रम राम सुखारे। भरद्वाज मृदु बचन उचारे॥
आजु सफल तप तीरथ त्यागू। आजु सफल जप जोग बिरागू॥
सुफल सकल सुभ साधन साजू। राम तुम्हहिं अवलोकत आजू॥

ऊपर के पद्यों में कन्द, मूल, फल, जल और विनम्र शीतल वचन से मुनिराज का अतिथि-सत्कार करना लिखा गया है।

(३) महात्मा वाल्मीकि के आश्रम में जब महात्मा राम पहुंचे हैं, वहाँ भी उनका यथायोग्य सत्कार हुआ है:—

'देखि राम छबि नयन जुड़ाने। करि सनमान आस्रमहिं आने॥
मुनिवर अतिथि प्रानप्रिय पाये। कन्द मूल फल मधुर मँगाये॥
सिय सौमित्रि राम फल खाये। तब मुनि आसन दिये सुहाये॥
बालमीकि मन आनँद भारी। मंगल मूरति नयन निहारी॥

(४) अत्रि के आश्रम में जहाँ राम अपने भाई और स्त्री के साथ गये हैं, वहाँ ऋषि ने राम-लक्ष्मण का अतिथि-सत्कार तो किया ही है, ऋषिराज की धर्मपत्नी अनुसूया ने सम्राज्ञी सीता का भोजनादि के अतिरिक्त इस प्रकार आदर किया है:—

'रिषि पतनी मन सुख अधिकाई। आसिष देइ निकट बैठाई॥
दिव्य बसन भूषन पहिराये। जे नित नूतन अमल सुहाये॥
ऐसे बसन विचित्र सुठि, दिये सीय कहँ आनि।
सनमानी प्रिय बचन कहि, प्रीति न जाइ बखानि॥

(५) अत्रि के आश्रम से आगे बढ़ने पर एक उत्तम मनोहर स्थान मिला है, जहाँ अनेक मुनियों के आश्रम थे, वहाँ सब ऋषियों ने रामादि का सम्मिलित सत्कार किया है:—

आश्रम बिपुल देखि मन माहीं। देव सदन तेहि पटतर नाहीं॥
बहु तड़ाग सुन्दर अँबराई। भाँति भाँति सब मुनिन्ह लगाई॥
तेहि दिन तहँ प्रभु कीन्ह निवासा। सकल मुनिन्ह मिलि कीन्ह सुवासा॥
आनि सुआसन मुदित मन, पूजि पहुनई कीन्ह।
कन्द मूल फल अमिय सम, आनि राम कहँ दीन्ह॥

× × × ×

(६) इसी प्रकार मर्यादापुरुषोत्तम का सत्कार बनवासी कोल, भील और किरातों ने भी अत्यन्त प्रेम के साथ किया है जिसका सविस्तर वर्णन 'पतितोद्धारण' प्रकरण में किया जायगा।

फलतः 'अतिथि-सेवा' प्रत्येक गृहस्थ का कर्त्तव्य है। परन्तु यदि कोई अनाचारी या अनधिकारी आवे तो मनुजी उसके सत्कार का निषेध करते हैं:—

न वार्यपि प्रयच्छेत्तु वैडालव्रतिके द्विजे।
न बकवृत्तिके विप्रे नावेदविदि धर्मवित्॥ अ० ४।१९४॥

अर्थात् धर्म के तत्वों का जानने वाला गृहस्थ, बिल्ली और बक की वृत्ति रखने वाले अथवा वेद के न जानने वाले ब्राह्मण कहने वाले का जल से भी सत्कार न करे।

दाम्पत्य-भाव

एक भारतीय ललना के हृदय में अपने पति के प्रति और एक कुलपुरुष के उर में अपनी धर्मपत्नी के प्रति जो भाव विद्यमान रहते हैं वे वर्णनातीत और अलौकिक हैं। पति-पत्नी के इन्हीं पारस्परिक भावों को 'दाम्पत्य-भाव' कहते हैं। हमारे प्राचीन धर्मशास्त्रों में पातिव्रत और स्त्रीव्रत धर्म की बड़ी ही प्रशंसा लिखी गयी है। 'रामचरित-मानस' में सीता-राम, पार्वती-शिव, अनुसूया-अत्रि और अनेक स्त्री, पुरुषों के पावन जीवन अत्यन्त उच्च एवं आदरणीय भाव-पूर्ण लिखे गये हैं। महाराज दशरथ का बहुविवाह संसार मात्र के निमित्त स्पष्ट 'पंजा सिकन्दरी' है। इस सत्यानाशी प्रथा ने दशरथ के परिवार को ही नहीं, अपितु समस्त साम्राज्य को

चिरकाल के लिये महदापत्ति में डाल दिया। दशरथ की जीवनी अत्यन्त उच्चस्वर से आघोषित करती है कि यदि गृहस्थी अपना समस्त जीवन सुख-शान्ति से व्यतीत करना चाहे तो कदापि एक से अधिक विवाह न करे। इस अंश में मर्यादापुरुषोत्तम राम और सती शिरोमणि सीता के आदर्श नरनारी के निमित्त अनुकरणीय हैं।

मोहि अतिशय प्रतीति जियकेरी। जेहि सपनेहुँ परनारि न हेरी॥

यह राम-जीवन का आदर्श था। राम का हृदय कितना विशाल था, सदाचार-मूर्ति धर्मावतार ने बड़ी दृढ़ता के साथ कहा है कि मुझे अपने मन पर इतना अधिकार प्राप्त है कि वह अन्य स्त्री में आसक्त होना तो दूर रहा स्वप्न में भी परनारी की ओर दृष्टि तक नहीं डाल सकता। मर्यादापुरुष अपने अनुज से कहते हैं कि हे लक्ष्मण! सीता के सौन्दर्य को देख कर हमारा मन मुग्ध हो गया है अतएव हमें इस बात का निश्चय हो रहा है कि वह हमारी धर्मपत्नी होने वाली है! इधर सीता के हृदय में राम को वरण करने की इतनी उतावली हो रही है कि धनुष तोड़ने में एक निमेष का विलम्ब भी कल्प के सदृश असह्य हो रहा है। तुलसीदासजी लिखते हैं:—

"तब रामहिं बिलोकि बैदेही। सभय हृदय बिनवति जेहि तेही॥
मनहीं मन मनाव अकुलानी। होहु प्रसन्न महेस भवानी॥
करहु सफल आपनि सेवकाई। करि हित हरहु चाप गरुआई॥
गननायक बरदायक देवा। आजुहि लगि कीन्हीं तव सेवा॥
बार बार बिनती सुनि मोरी। करहु चाप गुरुता अति थोरी॥"

इन ऊपर के पद्यों से आप सीता के हार्दिक प्रेम का कुछ अन्दाज लगा सकते हैं। विवाह हो जाने के उपरान्त सीता-राम ने यावज्जीवन दाम्पत्य-प्रेम और आदर्श का निर्वाह किया है। मनुष्य के प्रेम की अग्नि-परीक्षा आपत्तिकाल में ही होती है। कहा भी है:—

धीरज धर्म मित्र अरु नारी।
आपद्काल परखिये चारी॥

नरोत्तम राम जब पिता की आज्ञा पाकर वन को चले हैं, तब सतीशिरोमणि सीता भी साथ चलने का आग्रह करने लगी है, इस पर राम ने जंगल के भयावन दृश्य को सीता के सम्मुख रख कर भयभीत करके घर रहने का आदेश किया। पर सीता कहती हैं:—

दीन्ह प्रानपति मोहि सिख सोई। जेहि बिधि मोर परम हित होई॥
मैं पुनि समुझि दीख मनमाहीं। पियवियोग सम दुख जग नाहीं॥

प्राननाथ करुनायतन, सुन्दर सुखद सुजान।
तुम बिनु रघुकुल कुमुद बिधु, सुरपुर नरक समान ॥*

× × × ×

सीता के हृदय में अपने पति के चरणों में कितना प्रगाढ़ प्रेम है कि पति-वियोग में वह स्वर्ग को भी नरक के समान तुच्छ और हेय समझती हैं। सीता ने वन के समस्त कष्टों को अपने पतिदेव के साथ झेला, पर मन पर तनिक कष्ट का भाव भी नहीं आने दिया। अपने पूज्य पति की प्रतिष्ठा तो इतनी की कि जिसकी सीमा नहीं। मार्ग में महाराज रामचन्द्र जाते हैं, पृथिवी पर उनके चरणों के चिन्ह अङ्कित हो जाते हैं, अब पतिव्रता सीता भगवान के उन चरणचिन्हों पर अपने पैर धरने को धृष्टता समझ

जुग पद रेख बीच बिच सीता।
धरति चरन मग चलति सभीता॥

दोनों चरणचिन्हों के मध्य जो स्थान शून्य है उसी पर अपने पाँवों को रखती हैं, तिस पर भी सशंकित! क्या आप संसार के इतिहास में इस प्रकार के दाम्पत्य-भाव का उदाहरण कहीं भारतेतर प्रदेशों में पा सकते हैं? नहीं, कदापि नहीं। सीताजी राम के संबन्ध से ही अपने सासु-ससुर का भी परमादर करती थीं। बन जाने के समय महारानी कौशल्या से सीता कहती हैं:—

"तब जानकी सासु पग लागी। सुनिय मातु मैं परम अभागी॥
सेवा समय दैव बन दीन्हा। मोर मनोरथ सफल न कीन्हा॥
तजब छोभ जनि छाड़ब छोहू। कर्म कठिन कछु दोष न मोहू"॥

× × × ×

चित्रकूट में तो अवसर पाकर सीता ने

"सीय सासु प्रतिवेष बनाई।
सादर करति सरिस सेवकाई॥

सब सासुओं की समानभाव से सेवा की है। सीता के हृदय में कैसा उत्कृष्ट धर्म-भाव था, इसकी परीक्षा का अवसर अब आता है। नीच निशाचर रावण धोखा देकर बन के बीच से अकेली सीता को चुराकर ले गया और अपनी अशोक-वाटिका में कड़े पहरे के मध्य रख दिया। नराधम और नरपिशाच रावण चाहता था कि सीता उसकी पटरानी बनना प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार कर ले, परन्तु सूर्य्य का शीतल होना सम्भव होने पर भी सीता के लिये वह असम्भव था।

---

* इस प्रकरण को हम पृष्ठ ७१—७४ में सविस्तर उद्धृत कर चुके हैं, अतः यहां दिग्दर्शन मात्र कर दिया है।

अगत्या रावण स्वयं अशोकवाटिका में जाकर विविध प्रयत्नों से सीता को समझाता है:—

तेहि अवसर रावन तहँ आवा। संग नारि बहु किये बनावा॥
बहु बिधि खल सीतहिं समुझावा। साम दाम भय भेद दिखावा॥
कह रावन, सुनु सुमुखि! सयानी। मंदोदरी आदि सब रानी॥
तव अनुचरी करौं पन मोरा। एक बार बिलोकु मम ओरा॥

पाठक! देखा, कितना बड़ा प्रलोभन है!! रावण के इन प्रलोभनों ने सीता के हृदय पर तृण भर भी प्रभाव न डाला। उस कुलबधू ने

तृण धरि ओट कहति बैदेही।
सुमिरि अवधपति परम सनेही॥

तृण की ओट में उत्तर दिया। तृण उठाकर उसकी ओर ताक कर सीता के कथन के तीन मुख्य आशय थे—(१) भारतीय कुलवधुएं एकान्त में किसी अन्य पुरुष से वार्तालाप तक नहीं करतीं, यदि किसी संकट-काल में वार्तालाप अनिवार्यतः करना ही पड़े तो तृण की ओर ताक कर बातचीत कर लेती हैं, (२) दूसरा भाव यह था कि लंका में जिस पटरानी के पद का तू मुझे प्रलोभन देता है उसे मैं तृण-वत् तुच्छ समझती हूँ और (३) अवधपति रामचन्द्र के समक्ष तुम स्वयं तृणतुल्य हो। सीता ने उस नीच को मुँहतोड़ उत्तर दिया:—

सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा। कबहुं कि नलिनी करहिं बिकासा॥
अस मन समुझु कहति जानकी। खल सुधि नहिं रघुबीर बान की॥
सठ सूने हरि आनेसि मोही। अधम निलज्ज लाज नहिं तोही॥

सीता के ये वचन रावण के हृदय में बाण से बिध गये। वह अपने शत्रु राम का उत्कर्ष और अपना इस प्रकार का अपकर्ष भला कब सुनकर सहन कर सकता था?

आपुहिं सुनि खद्योत सम, रामहिं भानु समान।
परुष बचन सुनि काढ़ि असि, बोला अति रिसिआन॥

सीता तैं मम कृत अपमाना। काटउँ तव सिर कठिन कृपाना॥
नाहिं त सपदि मानु मम बानी। सुमुखि होत न तु जीवन हानी॥

× × × × ×

इसपर सीता कहती हैं:—

स्याम सरोज दाम सम सुन्दर। प्रभु भुज करि कर सम दसकंधर॥
सो भुजकण्ठ कि तव असि घोरा। सुनु सठ अस प्रमान यह मोरा॥
चन्द्रहास हरु मम परितापा। रघुपति बिरह अनल संतापा॥

× × × ×

अन्त में रावण एक मास की अवधि देता है:—

मास दिवस महँ कहा न माना। तो मैं मारब कठिन कृपाना॥

परन्तु सीता के अन्तःकरण पर इन सब गीदड़ भभकियों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह राम के स्मरण में तत्पर है, शरीर कृश हो गया है सिर के बाल तपस्विनी मुनिपत्नियों से हो गये हैं। सीता स्वयं हनुमान से कहती हैं:—

'बिरह आगि उर ऊपर जब अधिकाइ।
ए अँखियाँ दोउ बैरिनि देहिं बुझाइ॥
डहकत है उजियरिया निसि नहिं घाम।
जगत जरत अस लाग मोहिं बिनु राम॥
अब जीवन के है कपि आस न कोइ।
कनगुरिया की मुदरी कंकन होइ॥

× × × ×

हनुमान ने आश्वासन दिया और सीता के वियोग में राम की जो दशा हो गयी है, उसे सुनाते हैं:—

कहेउ राम बियोग तव सीता। मो कँह सकल भये विपरीता॥
नवतरु किसलय मनहुँ कृसानू। काल निसा सम निसि ससि भानू॥
कुबलय बिपिन कुन्त-बन सरिसा। वारिद तपत तेल जनु बरिसा॥
जेहि तरु रहे करत तेइ पीरा। उरग स्वास सम त्रिविध समीरा॥
कहेहू ते कछु दुख घटि होई। काहि कहउँ यह जान न कोई॥
तत्त्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एक मन मोरा॥
सो मन सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रस एतनेहिं माहीं॥

× + × × ×

हनुमान द्वारा राम के इस प्रेममय सन्देश को सुनकर सीता के आनन्द का ठिकाना न रहा।

'प्रभु संदेस सुनत बैदेही। मगन प्रम तनु सुधि नहिं तेही'

सीता के हृदय में इस बात को सुनकर क्यों आनन्द न हो कि जिस रामके वियोग में वह इतना दुःख उठा रही है, वह राम भी सीता की ओर से बेसुध नहीं, प्रत्युत हनुमान के शब्दों में

'जननी जनि मानसि मन ऊना। तुमते प्रेम राम कर दूना॥'

सीता की अपेक्षा दूने दुःखी भी हैं।

+ + + +

सच पूछिये तो सीता की इस दुःखमयी दशा को देख कर दयामूर्त्ति पवन-पुत्र के हृदय में बड़ी दया आयी और उनने राम से सारी करुण-कथा सुनाकर उन्हें लङ्का पर चढ़ाई करने पर बाध्य किया।

हनुमान राम से कहते हैं:—

रघुकुल तिलक वियोग तिहारे।
मैं देखी जब जाइ जानकी मनहु बिरह-मूरति मन मारे॥
चित्र से नयन अरु गढ़े से चरन कर, मढ़े से स्रवन नहिं सुनति पुकारे।
रसना रटति नाम, कर सिर चिर रहै, नित निज पद कमल तिहारे॥
दरसन आस लालसा मन महँ राखे प्रभु ध्यान प्रान रखवारे।
तुलसिदास पूजति त्रिजटा नीके रावरे गुन गन सुमन सँवारे॥

अतिहि अधिक दरसन की आरति।
राम बियोग असोक बिटप तर सीय निमेष कलप सम टारति॥
बार बार बर बारिज लोचन भरि भरि बरत बारि उर ढारति।
मनहुँ बिरह के सद्य घाय हिये लखि तकि तकि धरि धीरज तारति॥
तुलसिदास जदपि निसि बासर छिन छिन प्रभु मूरतिहिं निहारति।
मिटति न दुसह ताप तउ तनु की, यह बिचारि अन्तर्गति हारति॥

तुम्हरे बिरह भई गति जौन।
चित दै सुनहु, राम करुनानिधि! जानौं कछु पै सकौं कहिहौं न॥
लोचन-नीर कृपिन के धन ज्यों रहत निरंतर लोचनन-कोन।
'हा धुनि' खगी लाज पिंजरी महँ राखे हिये बधिक हठि मौन॥
जेहि बाटिका बसति तहँ खग मृग तजि तजि भजे पुरातन भौन।
स्वास समीर भेंट भइ भोरेहुँ तेहि मग पगु न धर्यो तिहुँ पौन॥
तुलसिदास प्रभु! दसा सीय की मुख करि कहत होति अति गौन।
दीजै दरस दूरि कीजै दुख हौ तुम्ह आरत आरति-दौन॥

× × × ×

राम-चरित-मानस' की तो एक चौपाई
'सीता की अति बिपति बिसाला। बिनहिं कहे भल दीन दयाला'॥
ही इस प्रकरण की पुष्टि के लिये पर्याप्त है।

हनुमान के इन मर्मभेदी बचनों को सुनकर राम के हृदय में अत्यन्त क्लेश हुआ। गोस्वामीजी लिखते हैं:—

कपि के सुनि कल कोमल बैन।
प्रेम पुलकि सब गात सिथिल भए, भरे सलिल सरसीरुह नैन॥
सिय बियोग सागर नागर मनु बूड़न लग्यो सहित चित चैन।
लहो नाव पवनज प्रसन्नता, बरबर तहाँ गह्यो गुन मैन॥
सकत न बूझि कुसल, बूझे बिन गिरा बिपुल व्याकुल उर ऐन।
ज्यों कुलीन सुचि सुमति बियोगिनि सनमुख सहै बिरह सर पैन॥
धरि धरि धीर बीर कोसलपति किए जतन सके उत्तरु दैन।
तुलसिदास प्रभु सखा अनुज सों सैनहिं कह्यो चलहु सजि सैन॥

इस प्रकार लङ्का पर चढ़ाई कर के महाराज ने रावण को समूल नष्ट किया और अपनी धर्मपत्नी को वापस लाये।

भगवान करे भारत की ललनाओं के हृदयों में सीता के समान और कुल-पुरुषों के हृदयोंमें राम के समान पत्नी एवं पति के पवित्र भावों का पुनरुद्दीपन हो और प्रत्येक गृहस्थ का गृह ऐसी देवियों और ऐसे देवों से परिपूर्ण पाया जाय।

भ्रातृ-स्नेह

'रामचरित-मानस' में वर्णित 'भ्रातृ-स्नेह' वास्तव में अथाह सागर है, जिसकी गहराई और द्रवता का वर्णन करना कवि-कुल-तिलक तुलसीदास का ही काम था।

यद्यपि रामायण के नायक राम और उनके भाइयों की पारस्परिक प्रीति तथा राम में भ्रातृ-त्रय की भक्ति अलौकिक और असीम थी, तथापि राम के सुख-दुःख के साथी और सहायक लक्ष्मण ही थे। लक्ष्मण का लक्ष्य था:—

गुरु पितु मातु न जानौं काहू। कहौं सुभाव नाथ पतिआहू॥
जहँ लगि जगत सनेह सगाई। प्रीत प्रतीति निगम निज गाई॥
मोरे सबै एक तुम स्वामी। करुनानिधि उर अन्तरजामी॥

जगत के सब नातेदारों से सर्वोपरि वे राम को ही जानते और मानते थे। क्या मजाल कि कोई माई का लाल लक्ष्मण की विद्यमानता में राम की प्रतिष्ठा के विरुद्ध साँस लेकर कुशलपूर्वक निभ जाय। बेचारे जनक ने धनुष न टूटने पर निराश होकर कहा था:—

देस देस के भूपति नाना। आये सुनि हम जो प्रन ठाना॥
देव दनुज धरि मनुज सरीरा। बिपुल बीर आये रनधीरा॥

कुँअरि मनोहरि बिजय बड़ि, कीरति अति कमनीय।
पावन हार बिरंचि जनु, रचेउ न धनु दमनीय॥

कहहु काह यह लाभ न भावा। काहु न संकर चाप चढ़ावा॥
रहेउ उठाइब तोरब भाई। तिल भरि भूमि न सकेउ हटाई॥
अब जनि कोउ माषै भटमानी। बीर बिहीन मही मैं जानी॥

× × × ×

वीराग्रगण्य राम की उपस्थिति में 'बीर बिहीन मही मैं जानी' इस वाक्य को सुनकर लक्ष्मण कब मौन रहने वाले थे? बात की बात में बड़वानल का अग्नि धधक उठा, पृथिवी के स्तरों को तोड़ता हुआ मानो सुषुप्त ज्वालामुखी प्रचलित हो पड़ा! गोस्वामी जी लिखते हैं:—

माषे लषन कुटिल भइ भौंहें। रद पट फरकत नयन रिसौंहें॥

कहि न सकत रघुबीर डर, लगे बचन जनु बान।
नाइ राम पद कमल सिर, बोले गिरा प्रमान॥

रघुबंसिन्ह महँ जहँ कोउ होई। तेहि समाज अस कहै न कोई॥
कही जनक जसि अनुचित बानी। बिद्यमान रघुकुल मनि जानी॥
सुनहु भानु कुल पंकज भानू। कहौं सुभाव न कछु अभिमानू॥
जो राउर अनुसासन पावौं। कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं॥
कांचे घट जिमि डारौं फोरी। सकौं मेरु मूलक जिमि तोरी॥
तव प्रताप महिमा भगवाना। का बापुरो पिनाक पुराना॥
कमल नाल जिमि चाप चढ़ावौं। सत जोजन प्रमान लै धावौं॥

तोरौं छत्रक दंड जिमि, तव प्रताप बल नाथ।
जौ न करौं प्रभुपद सपथ, पुनि न धरौं धनु हाथ॥

× × × ×

इस प्रकार राम की अप्रतिष्ठा का विचार कर के लक्ष्मण के क्रोध का पारावार न रहा। वसुन्धरा कम्पित और भयभीत हो गयी। समस्त समागत राजा डर गये। परन्तु ऐसे भीषण क्रोध की शान्ति किस प्रकार हुई?

'सैनहिं रघुपति लषन निवारे'

राम का नेत्र-संकेत हुआ, और वह कोप-निवारण के लिये पर्याप्त था। इसी प्रकार धनुष टूटने के उपरान्त परशुराम बड़े आवेश में आये और राम पर बेतरह टूट पड़े। वहाँ लक्ष्मण ने हँसी मज़ाक में ही वीर-शिरोमणि की वह धज्जी उड़ायी कि वही जानेंगे। जिस परशुराम ने अनेक प्रसिद्ध वीर पुरुषों की नाकों में दम कर रखे थे, वे सहसा राम-लक्ष्मण के सम्मुख नम्र शिर होकर अपना सा मुख लिये वापस गये।

महाराज दशरथ ने कैकेयी के मायाजाल में आकर राम को १४ वर्षों के हेतु बनवास दिया। भला यह कब सम्भव था कि राम अकेले बन जायँ और लक्ष्मण राज्य-सुख भोगें? वे राम से प्रेमपूर्वक आग्रह करके साथ चल पड़े सही, पर दशरथ का यह कृत्य उन्हें तनिक पसन्द न आया। ऐसी दशा में जब कि राम ही सहर्ष बन जा रहे हैं, करते ही क्या?

परन्तु समय पाकर सुमन्त के छेड़ने पर भीतरी आग धधक उठी और पिता को कुछ जली कटी सुना बैठे।

वहाँ शील-निधान राम ने बड़ी नम्रता से सुमन्त को मना किया कि हे तात! लक्ष्मण के लड़कपन का संवाद पिता जी से नहीं कहना।

जिस भरत को राज्य देने के लिये कैकेयी ने समस्त षड्यन्त्र रचा, भला उस भरत को लक्ष्मण कब भली दृष्टि से देख सकते थे! समय पाकर भरत के प्रति

जो भाव था, वह भी प्रकट ही हो गया। जिस समय भरत समस्त दल-बल के साथ राम को वापस लाने के सद्भाव से चित्रकूट को जा रहे थे कि उनके आगमन का संवाद दूर से ही पाकर राम अत्यन्त दुखी हो गये। श्री रघुवंशविभूषण इस कारण चिन्तासागर में निमग्न हुए कि मैं तो १४ वर्षों के लिये वन में आया हूँ, अब भरत आ रहे हैं, उनका प्रेम इतना बड़ा है कि मैं उन्हें भी दुःखी नहीं करना चाहता, अब क्या समन्वय अथवा समञ्जस होगा सो समझ में नहीं आता। इन सब बातों को महात्मा राम मन ही मन सोच रहे थे कि चेहरे पर कुछ चिन्ता और उद्वेग की झलक प्रतीत हुई। भाई की इस चिन्ता को देख कर लक्ष्मण मौन नहीं रह सके। उन्हें परिस्थिति का ठीक पता न मिला, सहसा क्षुब्ध हो कर बोल उठे—

बिनु पूछे कछु कहउं गुसांई। सेवक समय न ढीठ ढिठाई॥
तुम सर्वज्ञ सिरोमनि स्वामी। आपनि समुझि कहउं अनुगामी॥
नाथ सुहृद सुठि सरल चित, सील सनेह निधान।
सब पर प्रीति प्रतीति जिय जानिय आपु समान॥
विषयी जीव पाइ प्रभुताई। मूढ़ मोह बस होहिं जनाई॥
भरत नीति रत साधु सुजाना। प्रभु-पद प्रेम सकल जग जाना॥
तेऊ आज राजपद पाई। चले धरम मरजाद मिटाई॥
कुटिल कुबंधु कुअवसर ताकी। जानि राम बनवास एकाकी॥
करि कुमंत्र मन साजि समाजू। आये करइ अकंटक राजू॥
कोटि प्रकार कलपि कुटिलाई। आये दल बटोरि दोउ भाई॥
जौ जिय होति न कपट कुचाली। केहि सुहाति रथ-बाजि गजाली॥
भरतहि दोष देइ को जाये। जग बौराइ राजपद पाये॥
ससि गुरु-तिय-गामी नहुष, चढ़ेउ भूमि-सुर यान।
लोक बेद ते बिमुख भा, अधम न बेन समान॥
सहसबाहु सुर नाथ त्रिसंकू। केहिन राजमद दीन्ह कलंकू॥
भरत कीन्ह यह उचित उपाऊ। रिपु रिन रंच न राखब काऊ॥
एक कीन्ह नहिं भरत भलाई। निदरे राम जानि असहाई॥
समुझि परिहिं सोउ आजु बिसेखी। समर सरोष राम मुख पेखी॥
इतना कहत नीति रस भूला। रन-रस-बिटप पुलक मिस फूला॥
प्रभुपद बंदि सीस रज राखी। बोले सत्य सहज बल भाखी॥
अनुचित नाथ न मानब मोरा। भरत हमहिं उपचार न थोरा॥
कह लगि सहिय रहिय मन मारे। नाथ साथ धनु हाथ हमारे॥
छत्रि जाति रघुकुल-जनम, राम अनुज जग जान।
लातहुँ मारे चढ़ति सिर, नीच को धूरि समान॥
उठि करजोरि रजायसु मांगा। मनहुँ वीर रस सोवत जागा॥
बांधि जटा सिर कसि कटि भाथा। साजि सरासन सायक हाथा॥

आजु राम सेवक जस लेऊं। भरतहिं समर सिखावन देऊं॥
राम निरादर कर फल पाई। सोवहु समर सेज दोउ भाई॥
आइ बना भल सकल समाजू। प्रगट करउं रिस पाछिल आजू॥
जिमि करि निकर दलइ मृग राजू। लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू॥
तैसेहिं भरतहिं सेन समेता। सानुज निदरि निपातउं खेता॥
जौं सहाय कर संकर आई। तौं मारउं रन राम दोहाई॥

× × × × ×

पाठक ऊपर के पद्यों पर विचार-दृष्टिपात करें तो उन्हें भी स्पष्ट झलक जायगा कि लक्ष्मण का राम के प्रति कितना अनुराग था कि उन्हें तनिक चिन्तित अवलोकन करते ही वह भरत की कौन चलावे, अपने सहोदर बन्धु शत्रुघ्न तक को मार डालने पर उतारू हो जाते हैं !! पर धन्य है शीलनिधान की शालीनता !!! महात्मा राम ने इधर लक्ष्मण की वीरता की सराहना भी कर दी।

'तात प्रताप प्रभाव तुम्हारा। को कहि सकै को जाननि हारा॥

ताकि वह युवक हतोत्साह न हो जाय। पुनः उनकी कही बातों का किञ्चित् अनुमोदन भी कर दिया।

कही तात तुम नीति सुहाई। सब ते कठिन राजमद भाई॥
जो अँचवत मातहिं नृपतेई। नाहिंन साधु सभा जिन सेई॥

अब आगे आप भरत के शील स्वभाव और विशुद्ध भाईपनका स्वर्णाक्षरों में समर्थन करते हैं:—

सुनहु लखन भल भरत खरीखा। विधि प्रपंच महँ सुना न दीखा॥
भरतहिं होइ न राजमद, बिधि-हरि-हर-पद पाइ।
कबहुँ की काँजी सीकरनि, छीर सिंधु बिनसाइ॥
तिमिर तरुन तरनिहिं मकु गिलई। गगन मगन मकु मेघहिं मिलई॥
गोपद जल बूड़हिं घट जोनी। सहज छमा बरु छाड़इ छोनी॥
मसक फूँक मकु मेरु उड़ाई। होइ न नृपमद भरतहिं भाई॥
लखन तुम्हार सपथ पितु आना। सुचि सुबन्धु नहिं भरत समाना॥
सगुन छीरु अवगुण जल ताता। मिलइ रचइ परपंच विधाता॥
भरत हंस-रबि बंस-तड़ागा। जनमि कीन्ह गुन-दोष-विभागा॥
गहि गुन पय तजि अवगुन वारी। निज जस जगत कीन्हि उजियारी॥

गोस्वामी तुलसीदासजी ने लक्ष्मण तथा भरत का जो कुछ चरित्र-चित्रण किया है वह अपनी दृष्टि से दोनों ही सराहनीय है। वीरेन्द्र लक्ष्मण अपने पूज्य भ्राता 'राम' के सच्चे सहायक और साथी थे, घोराति-घोरतर आपत्ति में भी अव्यग्र मन से उनकी सहायता करते जाते थे। सीता-हरण के उपरान्त राम अत्यन्त कातर और अधीर हो उठे, पर महर्षि वाल्मीकि लिखते हैं कि—

तं मत्तमातङ्गविलासगामी
गच्छन्तमव्यग्रमनो महात्मा ।
स लक्ष्मणो राघवमप्रमत्तो
ररक्ष धर्मेण बलेन चैव ॥

अर्थात् मतवाले हाथी के सदृश विलासयुक्त गमन करने वाले, खेदहीन मनवाले महात्मा लक्ष्मण स्वस्थचित्त होकर राम की रक्षा धर्म और बल से करते जाते थे। यह है सच्चा भाईपन। कहा भी है 'बन्धु वही जो विपत्ति बँटावै।' ऐसे अनन्य बन्धु के प्रति राम का बन्धु-वात्सल्य भी अनन्य ही था। जो राम बनवास के कठिन दुःख को हँसते हँसते सहन करते जाते थे एवं पिता का स्वर्ग-वास और सीता हरण भी जिनके लिये सह्य था वही महात्मा रामचन्द्र युद्ध में लक्ष्मण को 'शक्ति' लगने पर अधीर होकर सुग्रीव से बोल उठे :—

मो पै तौ न कछू ह्वै आई।
और निबाहि भली बिधि भायप, चल्यौ लषन सो भाई॥
पुर पितु मातु सकल सुख परिहरि, जेहि बन बिपति बँटाई।
ता सँग हौं सुर लोक सोक तजि, सक्यौं न प्रान पठाई॥
जानत हौं या उर कठोर ते, कुलिस कठिनता पाई।
सुमिरि सनेह सुमित्रा सुतको, दर कि दरार न जाई।
तात मरन सिय हरन गीधबध, भुज दाहिनी गँवाई।
तुलसी मैं सब भांति आपने, कुलहिं कालिमा लाई॥

और भी

मेरो सब पुरुषारथ थाको।
बिपति बँटावन बंधु बाहु बिनु करौं भरोसो काको॥
सुनु सुग्रीव साँचेहूँ मोपर, फेर्‌यो बदन बिधाता।
ऐसे समय समर-संकट हौं, तज्यो लषन सो भ्राता॥

× × × × ×

हमारे सहृदय पाठकों को ऊपर के पद्यों से पूर्णतया पता चल जायगा कि महापुरुष राम अपने अनुज पर कितना दृढ़ भरोसा रखते थे। भाई, वास्तव में भाई ही है। विपत्ति-काल में भाई पर जितना भरोसा किया जाता है उतना अन्य पर नहीं किया जा सकता।

'रामचरित-मानस' में लक्ष्मण की शक्ति के समय का जो वर्णन गोस्वामी जी ने किया है वह भ्रातृ-स्नेह के उद्गार का पूर्ण परिचायक है। आप लिखते हैं:—

उहाँ राम लछिमनहिं निहारी। बोले बचन मनुज अनुहारी॥
अर्धरात गइ कपि नहिं आयउ। राम उठाइ अनुज उर लायउ॥

सकहु न दुखित देखि मोहिं काऊ। बन्धु सदा तव मृदुल सुभाऊ॥
मम हित लागि तजेहु पितु माता। सहेउ बिपिन हिम आतप बाता॥
सो अनुराग कहाँ अब भाई। उठहु न सुनि मम बचन बिकलाई॥
जो जनतेउँ बन बन्धु बिछोहू। पिता बचन मनतेउँ नहिं ओहू॥
सुत वित नारि भवन परिवारा। होहिं जाहिं जग बारहिं बारा॥
अस बिचारि जिय जागहु ताता। मिलइ न जगत सहोदर भ्राता॥
यथा पंख बिनु खग अति दीना। मनि बिनु फनि करिवर करहीना॥
अस मम जिवन बन्धु बिनु तोही। जौं जड़ दैव जियावइ मोही॥
जैहउ अवध कवन मुह लाई। नारि हेतु प्रिय भाइ गँवाई॥
बरु अपजस सहतेउँ जग माहीं। नारि-हानि विसेष छति नाहीं॥
अब अपलोकि सोक यह तोरा। सहिहि कठोर निठुर उर मोरा॥
निज जननी के एक कुमारा। तात तासु तुम्ह प्रान अधारा॥
सौंपेसि मोहिं तुम्हहिं गहिपानी। सब विधि सुखद परमहित जानी॥
उतर काह देहउँ तेहि जाई। उठि किन मोहि सिखावहु भाई॥
बहु बिधि सोचत सोच बिमोचन। स्रवत सलिल राजिवदल-लोचन॥

अहह! कैसे भ्रातृ-स्नेह और वात्सल्य भरे वचन हैं जिन्हें पढ़ कर रोमाञ्च हो आता है। तुलसी-कृति को अवलोकन कर कोई पाठक इस बात का अन्दाजा नहीं लगा सकता कि राम में लक्ष्मण की भक्ति विशेष थी अथवा लक्ष्मण के प्रति राम की बन्धु-वत्सलता अधिक थी। लक्ष्मण वास्तव में आज्ञानुवर्त्तन की मूर्त्ति थे। राम की आज्ञा में वह ननु, नच अथवा अगर-मगर जानते ही नहीं थे। जंगल में मारीच-वध करने के लिये राम दौड़ पड़ते हैं, परन्तु लक्ष्मण को आदेश दिये जाते हैं:—

सीता केरि करहु रखवारी। बुधि विवेकबल समय विचारी॥

मारीच मरते समय कपट पूर्वक आर्त्तस्वर से लक्ष्मण का नाम पुकारता है, जिसे सुनकर सीता ने समझा कि राम ही सङ्कटापन्न दशा में लक्ष्मण को पुकारते हैं। सीता व्यग्र हो लक्ष्मण से कहती हैं।

'जाहु बेगि संकट अति भ्राता'

इस बात को लक्ष्मण ने सुन तो लिया पर उनका राम की वीरता पर अटल विश्वास था, गम्भीरता पूर्वक

लछिमन बिहँसि कहा सुनु माता॥
भृकुटि विलास सृष्टि लय होई। सपनेहुँ संकट परै कि सोई॥

इत्यादि महत्व पूर्ण शब्दों में उत्तर दिया। आगे कहते हैं:—

सौंपि गये मोहि रघुपति थाती। जो तजि जाउँ तोष नहिं छाती॥
यह जिय जानि सुनहु मम माता। पूछत कहब कवन मैं बाता॥

लक्ष्मण के ये वचन सीता को सन्तोषप्रद प्रतीत न हुए। उतावली में कुछ कटूक्ति कर बैठीं। वीर लक्ष्मण बड़े ही उग्र स्वभाव के थे, पर करते क्या? सीता को माता तुल्य समझते थे। उनके मर्मभेदी वचनों को सुनकर साँस भी नहीं ले सके, आदेश सिर पर धर कर

चहुँ दिसि रेख खँचाइ अहीसा। बारहिं बार नाइ पद सीसा॥
बन दिसि देव सौंपि सब काहू। चले जहां रावन ससि राहू॥

राम की खोज में चले ही भर जा रहे हैं, पर उनका चित्त सीता की रक्षा में ही लगा हुआ है। ऐसे कठोर वचन को सुन कर भी माता सीता के चरणों में उनकी वही श्रद्धा, वही मान, वही आदर-भाव है जो पूर्व था। गोस्वामी जी लिखते हैं:—

चितवहिं लषन सियहिं फिरि कैसे। तजत वत्स निजबलि पसु जैसे॥

उधर मारीच को मारकर महापुरुष राम वापस आ रहे हैं, लक्ष्मण को आते देख सहसा बोल बैठे:—

जनक सुतहिं परिहरेउ अकेली। आयेउ तात बचन मम पेली॥

ऐसी दुतर्फी फटकार को सुनकर भी सेवा धर्म पर ध्यान देकर लक्ष्मण संक्षिप्त घटना सुना कर केवल

'नाथ मोरि कछु नाहिं न खोरी'

कह कर ही मौन रह जाते हैं। बड़े भाई का ऐसा आज्ञाकारी स्यात् ही कोई छोटा भाई इस संसार में हुआ हो, जैसे लक्ष्मण थे।

आगे लक्ष्मण की भ्रातृ-भक्ति की अग्नि-परीक्षा का समय समुपस्थित होता है। लङ्काविजयोपरान्त अयोध्याप्रत्यावर्तन पर राम ने अपने गुप्तचरों के द्वारा एक रजक के मुख से सीता के सम्बन्ध में कुछ उलटी पुलटी बातें सुनीं। प्रजा-रञ्जन भाव की अवधि का अति भ्रमण कर के रामने सीता-परित्याग का प्रण ठान कर लक्ष्मण को आज्ञा दी:—

तात तुरतहि साजि स्यन्दन सीय लेहु चढ़ाइ।
बालमीकि मुनीस आस्रम आइयहु पहुँचाइ॥

पाठक, अनुमान कर सकते हैं कि इस घोरतर अप्रिय आज्ञा को सुन कर लक्ष्मण के चित्त में कैसा उद्वेग उत्पन्न हुआ होगा। परन्तु करते क्या? 'सब ते सेवक धर्म कठोरा'।

'भलेहि नाथ' सुहाथ माथे राखि राम रजाइ।
चले तुलसी पालि सेवक-धरम-अवधि अघाइ॥

श्रेष्ठ स्वामी की आज्ञा का प्रतिपालन करना ही लक्ष्मण का दृढ़ व्रत था। कहते हैं कि 'भलेहि नाथ' अर्थात् आप की जो आज्ञा हुई वह मान्य है।

परन्तु माथे पर हाथ रख कर परम शोकग्रस्त हो गये, पुनः सेवक-धर्म विचार कर राम के आदेश को सिर पर रख कर उसके पूर्त्यर्थ चल पड़े। यहाँ पर 'माथे राखि' पद को रख कर महाकवि ने देहरी दीपक प्रज्वलित कर उभय पार्श्वस्थ पदों में अनुपम अर्थ-गौरव की प्रभा का प्रदर्शन कराया है। सीता को वाल्मीकि के आश्रम में रख कर लौटते समय सीता-विलाप को सुनकर आगे के पद्य में गोस्वामी जी लक्ष्मण की दशा का चित्र-चित्रण इस प्रकार करते हैं:—

सुनि ब्याकुल भये उतरु कछु कह्यौ न जाइ।
जानि जिय विधि बाम दीन्ह्यौं मोहि सरुष सजाइ॥
कहत हिय मेरी कठिनई लखि गई प्रीति लजाइ।
आजु औसर ऐसे हूँ जौ न चले प्रान बजाइ॥
इतहिं सीय-सनेह-संकट उतहिं राम-रजाइ।
मौनहीं गहि चरन गौने सिख सुआसिष पाइ॥
प्रेम निधि पितु को कहे मैं परुष-वचन अघाइ।
पाय तेहि परिताप तुलसी उचित सहे सिराइ॥

प्रेमी पाठक इन पदों से लक्ष्मण के अन्तःकरण का कुछ अनुमान कर सकते हैं कि उसकी क्या अवस्था हुई होगी। पिता को जो परुष-वचन कहा था उसका भी पश्चात्तापपूर्वक प्रायश्चित्त अन्तिम उभय पदों में प्रकट है। आगे के पद्य में महाकवि लक्ष्मण के दारुण दुःख का उल्लेख करते हैं:—

गौने मौन ही बारहिं बार परि परि पाय।
जात जनु रथ चोर कर लछिमन मगन पछिताय॥
असन दिनु वन, बरम बिनु रन, बच्यौ कठिन कुघाय।
दुसह साँसति सहन को हनुमान ज्यायो जाय॥
हेतु हौं सिय हरन को तब, अबहुँ भयो सहाय।
होत हठि मोहिं दाहिनो दिन दैव दारुन दाय॥
तज्यौ तनु संग्राम जेहि लगि गीध जसी जटाय।
ताहि हौं पहुँचाइ कानन चल्यौ अवध सुभाय॥
घोर हृदय कठोर करतब सृज्यौं हौं बिधि बाँय।
दास तुलसी जानि राख्यौ कृपानिधि रघुराय॥

× × × ×

इतना विलाप करते हुए भी लक्ष्मण सीता को बाल्मीकि के आश्रम में पहुँचा ही आये। इसका एक मात्र कारण यही था कि अपने प्रियतम पूज्य भ्राता की आज्ञा का सब प्रकार प्रतिपालन करना ही उनका दृढ़ व्रत था। यही उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य था। लक्ष्मण ने अपने समस्त कर्त्तव्यों से अपनी पूर्व प्रतिज्ञा

गुरु पितु मातु न जानौं काहू। कहौं सुभाव नाथ पतिआहू॥

की पूर्त्ति कर दिखलायी। चाहे घर हो वा बन, सागर हो किंवा पर्वत, सुख का समय हो अथवा दुःख का सभी दशाओं में राम का साथ देना और उनकी सेवा करना ही लक्ष्मण ने अपना परमधर्म बना लिया था। पारस्परिक भ्रातृ-स्नेह का हृदयद्रावक वर्णन तुलसीकृत ग्रन्थोंमें यत्र तत्र भरा पड़ा है। यह तो राम-लक्ष्मण के प्रेम का संक्षिप्त दिग्दर्शन कराया गया है। महात्मा भरत की भातृ-भक्ति और भी गम्भीर है। यों तो भरत की महिमा के कथन करनेमें गोसाईं जी ने

भरत महा महिमा जल रासी। मुनि मति तीर ठाढ़ि अबला सी॥
गा चह पार जतन हिय हेरा। पावति नाव न बोहित बेरा॥

इत्यादि पद्यों को लिख कर महामुनि वसिष्ठ जी की बुद्धि को भी समुद्रतट पर अबला बना कर खड़ी कर दिया और अपने विषय में तो स्पष्टतया लिख दिया कि

सो मैं कुमति कहौं केहि भाँती। बाजु सुराग कि गाडर ताँती॥

परन्तु मैं समझता हूँ कि अन्यान्य वर्णनों की भाँति महाकवि की लेखनी भरत के शील-निरूपण, भ्रातृ-भक्ति-कथन एवं चरित्र-चित्रण में अत्यन्त कृतकार्य हुई है।

भरत के लोक-विश्रुत शील, सौजन्य और निर्मल चरित्र को गोस्वामीजीने अत्यन्त विशद रीतिसे लिखकर अपनी ललित लेखनी की प्रतिभा का प्रदर्शन किया है। राम-बनयात्रा कालमें भरत अपने भाई शत्रुघ्न के साथ नानिहाल में थे। महाराज दशरथके स्वर्गवास होनेपर कुल-गुरु वसिष्ठने उन्हें अयोध्या बुलाया। उस समय अवध नगरी श्रीहत हो चुकी थी, वहाँकी समस्त परिस्थित परिवर्त्तित स्वरूप में दृष्टिगत हुई। भरत ने सारे परिवार को शोकसमुद्र में विह्वल देखा। केवल कुल-कलंकिनी कैकेयी प्रसन्न वदन होकर आरती उतारने दौड़ी। भरत के पूछने पर उसने समस्त घटना का वर्णन किया। पहले तो पिता के स्वर्गवास का समाचार पाकर ही भरत व्याकुल हो उठे। गोस्वामीजी लिखते हैं:—

ताक तात हा तात पुकारी। परेउ भूमि तल व्याकुल भारी॥
चलत न देखन पायेउँ तोही। तात न रामहिं सौंपेहु मोहीं॥

इन सब बातोंको कहते हुए उन्होंने हार्दिक वेदना प्रकट की, परन्तु जब राम, सीता और लक्ष्मण के बनवास की बात सुनी तब उनके दारुण दुःख का पारावार न रहा। ऊर्ध्व श्वास लेकर कहते हैं:—

पापिनि सबहिं भाँति कुल नासा।
जो पै कुमति रही अति तोही। जनमत काहे न मारेसि मोही॥
पेड़ काटि तैं पालव सींचा। मीन जिअन हित बारि उलीचा॥
हंस बंस दसरथ जनक, राम लषन ते भाइ।
जननी तू जननी भई, विधि सन कछु न बसाइ॥

जबतें कुमति कुमति उर ठयऊ। खण्ड खण्ड होइ हृदय न गयऊ॥
बर माँगत मन भइ नहिं पीरा। गरि न जीह मुँह परेउ न कीरा॥

× × × × ×

अस को जीव जन्तु जग माहीं। जेहि रघुनाथ प्रान प्रिय नाहीं॥
राम बिरोधी हृदय ते, प्रगट कीन्ह बिधि मोहि।
मो समान को पातकी, बादि कहौं कछु तोहि॥

इस प्रकार अपनी माता के इस असह्य दुर्व्यवहार से परम दुखी भरत, माता कौशल्या के पास जाकर विलाप करने लगे। भरत ने कठिन शपथों से उनके समक्ष कैकेयी के कुचक्रों से अपने को पृथक सिद्ध किया। कहते हैं:—

जे अघ मातु पिता गुरु मारे। गाइ गोठ महि सुर पुर जारे॥
जे अघ तिय बालक बध कीन्हें। मीत महीपति माहुर दीन्हें॥
जे पातक उप पातक अहहीं। करम बचन मन भव कवि कहहीं॥
ते पातक मोहिं देहु बिधाता। जो यह होइ मोर मत माता॥
जे परिहरि हरिहर चरन, भजहिं भूत घनघोर।
तिनकी गति मोहिं देहु बिधि, जो जननी मत मोर॥

बेचहिं बेद धरम दुहि लेहीं। पिसुन पराय पाप कहि देहीं॥
कपटी कुटिल कलह प्रिय क्रोधी। वेद विदूषक बिस्व बिरोधी॥
लोभी लम्पट लोल लबारा। जे ताकहिं परधन परदारा॥
पावों मैं तिनकी गति घोरा। जौं जननी यह सम्मत मोरा॥
जे नहिं साधु-संग अनुरागे। परमारथ पथ बिमुख अभागे॥
जे न भजहिं हरि नर तनु पाई। जिनहिं न हरिहर सुजस सुहाई॥
तजि स्रुति पन्थ बाम पथ चलहीं। बञ्चक बिरचि वेष जग छलहीं॥
तिनकी गति मोहिं संकर देऊ। जननी जो यह जानउँ भेऊ॥

× × × × ×

इससे बढ़कर किन प्रभावशाली शब्दोंमें कोई अपनी निर्दोषिता प्रमाणित कर सकता है! भरत के इन वचनों को सुनकर माता कौशल्या ने निम्न शब्दोंमें आश्वासन दिलाते हुए भरतपर अपना एवं रामका पूर्ण विश्वास प्रकट किया है:—

मातु भरतके बचन सुनि, साँचे सरल सुभाय।
कहति राम प्रिय तात तुम, सदा बचन मन काय॥

राम प्रान ते प्रान तुम्हारे। तुम रघुपतिहिं प्रान ते प्यारे॥
बिधु बिष चवै स्रवै हिम आगी। होइ बारिचर बारि बिरागी॥
भये ज्ञान बरु मिटै न मोहू। तुम रामहिं प्रतिकूल न होहू॥
मत तुम्हार अस जे जग कहहीं। सो सपनेहुँ सुख सुगति न लहहीं॥

× × × × ×

माता के इस प्रकार अपने हार्दिक विचार प्रकट करने के उपरान्त भरत के अन्तःकरण में किञ्चित् शान्ति का सञ्चार हुआ। महाराज दशरथ के शव की वेदविधि से अन्त्येष्टि और उदक क्रिया करके भरत जब निवृत्त हुए तब वसिष्ठ ने एक समिति का आयोजन किया और सर्वसम्मतिसे निश्चय करके भरतके समक्ष यह प्रस्ताव रखा गया कि राम की अनुपस्थिति में आप राज्य करो। इसपर भरत ने जो कुछ कहा है उसे उपयोगी समझकर आगे अविकल उद्धृत किया जाता है:—

भरत कमल कर जोरि, धीर धुरन्धर धीर धरि।
बचन अमिय जनु बोरि, देत उचित उत्तर सबहिं॥

मोहि उपदेस दीन्ह गुरु नीका। प्रजा सचिव संमत सबहीका॥
मातु उचित मोहि आयसु दीन्हा। अवसि सीसधरि चाहउँ कीन्हा॥
गुरु पितु मातु स्वामि हित बानी। सुनि मन मुदित करिअ भल जानी॥
उचित कि अनुचित किये बिचारू। धरम जाइ सिर पातक भारू॥
तुम्ह तउ देहु सरल सिख सोई। जो आचरत मोर भल होई॥
जद्यपि यह समुझतहउँ नीके। तदपि होत परितोष न जीके॥
अब तुम्ह बिनय मोरि सुनि लेहू। मोहि अनुहरत सिखावन देहू॥
उत्तर देउँ छमब अपराधू। दुखित दोष गुन गनहिं न साधू॥

दो०—पितु सुरपुर सिय राम बन, करन कहहु मोहि राज।
एहि ते जानहु मोर हित, कै आपन बड़ काज॥

हित हमार सियपति सेवकाई। सो हरि लीन्ह मातु कुटिलाई॥
मैं अनुमानि दीख मन माहीं। आन उपाय मोर हित नाहीं॥
सोक समाज राज केहि लेखे। लखन राम सिय पद बिनु देखे॥
बादि बसन बिनु भूषन भारू। बादि बिरति बिनु ब्रह्म बिचारू॥
सरुज सरीर बादि बहु भोगा। बिन हरि भगति जाय जप जोगा॥
जाय जीव बिनु देह सुहाई। बादि मोर सब बिनु रघुराई॥
जाउँ रामपहिं आयसु देहू। एकहि आँक मोर हित एहू॥
मोहि नृप करि भल आपन चहहू। सोउ सनेह-जड़ता-बस कहहू॥

दो०—कैकइ-सुअन कुटिल मति, राम-बिमुख गतलाज।
तुम्ह चाहत सुख मोह बस, मोहिसे अधम के राज॥

कहउँ साँच सब सुनि पतिआहू। चाहिअ धरम सील नर नाहू॥
मोहि राज हठि देइहहु जबहीं। रसा रसातल जाइहि तबहीं॥
मोहि समान को पाप निवासू। जेहि लगि सीय-राम बनबासू॥
राउ राम कहँ कानन दीन्हा। बिछुरत गमन अमरपुर कीन्हा॥
मैं सठ सब अनरथ कर हेतू। बैठि बात सब सुनहुँ सचेतू॥
बिनु रघुबीर बिलोकि अवासू। रहे प्रान सहि जग उपहासू॥

राम पुनीत बिषय-रस-रूखे। लोलुप भूमि-भोग के भूखे॥
कहँ लगि कहउँ हृदय-कठिनाई। निदरि कुलिस जेहि लही बड़ाई॥

दो०—कारन तें कारज कठिन, होइ दोष नहिं मोर।
कुलिस अस्थि तें उपलतें, लोह कराल कठोर॥

कैकेई-भव तनु अनुरागे। पाँवर प्रान अघाइ अभागे॥
जौं प्रिय-बिरह प्रान प्रिय लागे। देखब सुनब बहुत अब आगे॥
लषन-राम-सिय कहँ बन दीन्हा। पठइ अमरपुर पति हित कीन्हा॥
लीन्ह बिधवपन अपजस आपू। दीन्हेउ प्रजहिं सोक संतापू॥
मोहि दीन्ह सुख सुजस सुराजू। कीन्ह कैकई सब कर काजू॥
एहितें मोर काह अब नीका। तेहि परदेन कहहु तुम्ह टीका॥
कैकइ जठर जनमि जगमाहीं। यह मोहि कहँ कछु अनुचित नाहीं॥
मोरि बात सब बिधि हिँ बनाई। प्रजा पाँच कत करहु सहाई॥

ग्रह ग्रहीत पुनि बात-बस, तेहि पुनि बीछी मार।
तेहि पियाइअ बारुनी, कहहु कवन उपचार॥

कैकइ-सुअन जोग जग जोई। चतुर बिरंचि रचा मोहि सोई॥
दसरथ तनय राम लघु भाई। दीन्हि मोहि बिधि बादि बड़ाई॥
तुम्ह सब कहहु कढ़ावन टीका। राय रजायसु सब कहँ नीका॥
उतर देउँ केहि बिधि केहि केही। कहहु सुखेन जथा रुचि जेही॥
मोहि कुमातु समेत बिहाई। कहहु कहहि के कीन्ह भलाई॥
मो बिनु को सचराचर माहीं। जेहि सिय राम प्रान प्रिय नाहीं॥
परम हानि सब कहँ बड़ लाहू। अदिन मोर नहिं दूषण काहू॥
संसय सील प्रेम बस अहहू। सबइ उचित सब जो कछु कहहू॥

राम मातु सुठि सरलचित, मोपर प्रेम बिसेखि।
कहइ सुभाय सनेह-बस, मोरि दीनता देखि॥

गुरु बिबेक सागर जग जाना। जिन्हहिं बिस्वकर-बदर समाना॥
मोकहुँ तिलक-साज सब सोऊ। भये बिधि बिमुख बिमुख सब कोऊ॥
परिहरि राम-सीय जग माहीं। कोउ न कहिहिं मोर मत नाहीं॥
सो मैं सुनब सहब सुख मानी। अंतहु कीच तहाँ जहँ पानी॥
डर न मोहिं जग कहहिं कि पोचू। परलोकहु कर नाहिं न सोचू॥
एकै उर बस दुसह दवारी। मोहि लगि भे सिय राम दुखारी॥
जीवन लाहु लखन भल पावा। सब तजि राम चरन मन लावा॥
मोर जनम रघुबर बन लागी। झूठ काह पछिताउँ अभागी॥

आपनि दारुन दीनता, कहेउँ सबहिं सिर नाइ।
देखे बिन रघुनाथ पद, जियकी जरनि न जाइ॥

आन उपाय मोहिं नहिं सूझा। को जिय कै रघुबर बिनु बूझा॥
एकहिं आँक इहइ मन माहीं। प्रातकाल चलिहउँ प्रभु पाहीं॥
यद्यपि मैं अनभल अपराधी। भइ मोहि कारन सकल उपाधी॥
तदपि सरन सनमुख मोहि देखी। छमि सब करिहहिं कृपा बिसेखी॥
सील सकुचि सुठि सरल सुभाऊ। कृपा-सनेह-सदन रघुराऊ॥
अरिहुक अनभल कीन्ह न रामा। मैं सिसु सेवक यद्यपि बामा॥
तुम्हपै पाँच मोर भल मानी। आयसु आसिष देहु सुबानी॥
जेहि सुनि बिनय मोहि जन जानी। आवहिं बहुरि राम रजधानी॥

दो०—यद्यपि जनम कुमातुते, मैं सठ सदा सदोस।
आपन जानि न त्यागिहहिं, मोहि रघुबीर भरोस॥

× × × ×

ऊपर के पद्यों से भरत के हृदय के विशुद्ध भाव, आत्मगौरव, सच्ची आत्म-ग्लानि और राम के प्रति प्रगाढ़ प्रेम का परिचय मिलता है। वे चक्रवर्त्ती राज्य को भी राम बिना तुच्छ, हेय और अभोग्य समझते हैं। उनका एकमात्र लक्ष्य अपने पूज्य भ्राता की शरण में जाने का देखकर सब के सब प्रसन्न हो उठे। भरत के हृदय में इस बात का आन्तरिक सन्ताप था कि ये सब दुर्घटनाएं केवल उनके कारण ही संघटित हुईं। यद्यपि उनका अन्तःकरण कैकेयी के कुचक्रों से सर्वदा और सर्वथा निर्लेप था और उन्हें यह अटल विश्वास था कि मर्यादमूर्त्ति राम भी उनको निर्दोष समझते हैं, तौ भी जगत के समाधान की आवश्यकता का अनुभव करके उन्होंने बहुत कुछ कहा और किया। भरत के विचारों को सुनकर सारी अयोध्या प्रसन्न होकर साधु! साधु!! कह कर सराहना करने लगी।

भरत ने दल-बल सहित राम को वापस लाने के सद्भाव से चित्रकूट प्रस्थान किया। हम इस ग्रन्थ के मध्य-खण्ड में पृष्ठ ८१ से लेकर पृष्ठ ११० तक अयोध्या काण्ड के मार्मिक पद्यों को उद्धृत कर भरत के विशाल चरित्र का उल्लेख कर चुके हैं। हमारे प्रेमी पाठक उसे अवलोकन करने की कृपा करें। चित्रकूट में पहुँचने पर बड़ी भारी सभा लगी और भरत ने राम को वापस चलने का प्रस्ताव प्रस्तुत किया। वसिष्ठ ने राम को सम्मति दी:—

भरत विनय सादर सुनिय, करिय विचार बहोरि।
करब साधु मत लोक मत, नृप नय निगम निचोरि॥

अन्ततोगत्वा सब प्रकार सोच विचार कर राम ने भरत से प्रेम पूर्वक कहा:—

पितु आयसु पालिय दुहुँ भाई। लोक वेद भल भूप भलाई॥
गुरु पितु मातु स्वामि सिख पालें। चलेहु कुमगु पगु परै न खालें॥

अस विचारि सब सोच बिहाई। पालहु अवध अवधि भरिजाई ॥
देस कोष पुरजन परिवारू। गुरुपद रजहिं लाग छरु भारू ॥
तुम मुनि मातु सचिव सिखमानी। पालहु पुहुमि प्रजा रजधानी ॥

मुखिया मुख सो चाहिये, खान पान कहँ एक।
पालै पोषै सकल अँग, तुलसी सहित विवेक ॥

ऊपर के इने गिने पद्यों में महात्मा राम ने धर्म और नीति के निगूढ़ तत्वों को अत्यन्त विशद रीति से वर्णन कर डाला है। पिता की आज्ञा का प्रतिपालन करना मुख्य धर्म है अतः तुम अयोध्या की प्रजाओं का पालन करो। इस कार्य में तुम्हें गुरु वसिष्ठ, अन्यान्य मंत्री तथा माता जो कुछ आज्ञा दें तदनुसार ही कार्य करते जाना। अन्तिम दोहे में समस्त राजनीति शास्त्र का सार सञ्चित है। मुखिया वही हो सकता है जो मुख के सदृश गुण रखने वाला हो। मुख के द्वारा ही मनुष्य उत्तम से उत्तम पदार्थ खा जाता है, परन्तु उन पदार्थों में से अणु मात्र भी मुख निज निमित्त न रखकर सब कुछ उदर को दे देता है। वहाँ से रस, रक्त और उपधातु तथा धातुओं की सृजना होकर समस्त शरीर की रक्षा और वृद्धि होती है। उसी प्रकार मुखिया को परिवार, परिजन, पुरजन और प्रजा वर्ग का प्रेम पूर्वक प्रतिपालन करना चाहिये। भगवान राम ने भरत का प्रबोध किया। परन्तु;

बँधु प्रबोध कीन्ह सब भाँती। बिनु अधार मन तोष न शांती ॥

भरत को बिना भाई की ओर से कुछ आधार पाये शान्ति न आयी।

अन्त में

प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्हीं। सादर भरत बाँह गहि लीन्हीं ॥

भगवान ने अपनी पादुका भरत को दी। उस पादुका को पाकर भरत इस प्रकार प्रसन्न होकर अयोध्या लौट आये मानो उनके साथ सीता और राम ही फिर आये। भरत आकर राज्यसिंहासन पर पादुका को स्थापित कर नन्दिग्राम में पर्ण-कुटी बनाकर तपस्वी वेश में तपश्चर्या पूर्वक राम के प्रत्यावर्त्तन की प्रतीक्षा करने लगे। लंका-विजय के अनन्तर जब राम अयोध्या लौटने लगे हैं और १४ वर्षों की अवधि में केवल एक दिन अवशिष्ट रह गया, तब भरत की उद्विग्नता का पारावार न रहा। गोस्वामी जी लिखते हैं—

भरत नयन भुज दच्छिन, फरकहिं बारहिं बार।
जानि सगुन मन हरष अति, लागे करन विचार ॥

रहा एक दिन अवधि अधारा। समुझत मन दुख भयउ अपारा ॥
कारन कवन नाथ नहिं आये। जानि कुटिल प्रभु मोहि बिसराये ॥
अहह धन्य लछिमन बड़ भागी। राम-पदार-विन्द अनुरागी ॥
कपटी कुटिल मोहि प्रभु चीन्हा। ताते नाथ संग नहिं लीन्हा ॥

जो करनी समुझहिं प्रभु मोरी। नहिं निस्तार कल्प सत कोरी॥
जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीन बन्धु अति मृदुल स्वभाऊ॥
मोरे जिय भरोस दृढ़ सोई। मिलिहहिं राम सकुन सुभ होई॥
बीते अवधि रहे जो प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना॥

राम बिरह सागर महँ, भरत मगन मन होत।
विप्र रूप धरि पवन सुत, आइ गये जिमि पोत॥

ऊपर के पद्यों से भरत के हृदय का उद्वेग प्रकट होता है। अब एक दिन उनके लिये एक कल्प के समान बीत रहा है। इसी बीच में हनुमान द्वारा रामागमन की शुभ सूचना पाकर वे फड़क उठे। उनके आन्तरिक आल्हाद की अवधि न रही। भरत दौड़कर राम के चरणों पर गिर पड़े। गोस्वामी जी लिखते हैं:—

गहे भरत पुनि प्रभु पद पंकज। नमत जिनहिं सुर मुनि संकर अज॥
परे भूमि नहिं उठत उठाये। बल करि कृपासिंधु उर लाये॥
स्यामल गात रोम भये ठाढ़े। नव राजीव नयन जल बाढ़े॥

बूझत कृपानिधि कुशल भरतहिं बचन बेगि न आवई।
सुन सिवा सो सुख बचन मनते भिन्न जान जो पावई॥
अब कुशल कोसल नाथ आरत जानि जन दरसन दियो।
बूड़त बिरह बारीस कृपा निधान मोहि कर गहि लियो॥

× × × ×

इस प्रकार अपने प्रियतम पूज्य भ्राताको पाकर भरत की तपश्चर्या पूर्ण हुई। अयोध्या की समस्त अवरेब और उलझनों को अकेले भरत ने सम्हाल लिया। हमारी निर्बल लेखनी में वह शक्ति नहीं जो भरत के हृदय का विश्लेषण कर सके। उनका हृदय अगाध समुद्र है, उसका पार अथवा थाह पाना हमसे तुच्छ लेखकों का काम नहीं। महाकवि गोस्वामी तुलसीदास से प्रौढ़ सुकवि भी जब इस विषय में अपनी असमर्थता ही प्रकट करते रहे तब अस्मदादि को कौन पूछता है। उनका हृदय लोकभीरु, स्नेहमय, आर्द्र, धर्मपूर्ण और आदर्श एवं उन्नत था। मर्यादापुरुषोत्तम भगवान रामचन्द्र भी उनके सम्बन्ध में 'भरत भूमि रह राउर राखी' ही कहा करते थे।

हमने अपने सहृय पाठकों के समक्ष 'भ्रातृ-स्नेह' के प्रकरणों को तुलसीकृत से संग्रह कर के यथा शक्ति उनपर समुचित प्रकाश डालने का भी प्रयत्न किया है। आज हमारे हिन्दू समाज में भ्रातृ-स्नेह का अभाव सा है यदि हम 'रामचरित-मानस' का मनोयोगपूर्वक पाठकरें तो इस अंश में भी हमें पूर्ण लाभ की सम्भावना है।

भरत राम अरु लषन की, प्रीति लिखी नहिं जाइ।
तेहि मग पग अनुगमन करि, जग मुद मंगल पाइ॥

सेवा-धर्म

मौनान्मूकः प्रवचनपटुश्चाटुलो जल्पको वा
धृष्टः पार्श्वे वसति च तदा दूरतश्च प्रगल्भः ।
क्षान्त्या भीरुर्यदि न सहते प्रायशो नाभिजातः
सेवाधर्मः परम गहनो योगिनामप्यगम्यः ॥

वास्तव में सेवा-धर्म बड़ा ही कठिन तप है । सेवक को किसी भी दशा में सुख अथवा सुयश का प्रलोभन नहीं होना चाहिये । यदि मौन रह कर सेवा करो तो लोक गूंगा कहता है । सेवक यदि वक्ता होतो वाचाल, समीप रहे तो धृष्ट, दूर रहे तो दम्भी, क्षमाशील हो तो कायर, और असहिष्णु हो तो कुलहीन समझा जाता है । सुतराम् सेवा धर्म ऐसा गहन है जो योगियों के लिये भी अगम्य है । गोस्वामीजी ने 'राम चरित-मानस' में कहा है:—

आगम निगम प्रसिद्ध पुराना । सेवा धर्म कठिन जग जाना ॥

जिस समय राजकुमार भरत अयोध्या से चित्रकूट जा रहे हैं उस समय उनके भावों का वर्णन करते हुए महाकवि लिखते हैं:—

गवने भरत पयादहि पाये । कोतल संग जाहिं डोरिआये ॥
कहहिं सुसेवक बारहिं बारा । होइय नाथ अश्व असवारा ॥
राम पयादहि पाँय सिधाये । हम कहँ गज रथ बाजि बनाये ॥
सिर भर जाउँ उचित अस मोरा । सबते सेवक धर्म कठोरा ॥

× × × ×

यह अक्षरशः सत्य है कि सेवक का कर्त्तव्य अत्यन्त विस्तृत पर सेवामार्ग अत्यन्त संकुचित है । सेवक को किसी भी दशा में सुख-प्राप्ति की लालसा नहीं होनी चाहिये । तुलसीकृत ग्रन्थों में 'सेवा-धर्म का कथन बड़े ही महत्व पूर्ण पद्यों में किया गया है । हम 'भ्रातृ-स्नेह' शीर्षक में लक्ष्मण और भरत के भाईपन और सेवा-भाव का दिग्दर्शन करा आये हैं । यहां विभीषण, जामवन्त, नल-नील, सुग्रीव, अङ्गद और हनुमान की सेवाओं के भिन्न भिन्न अङ्गों पर यत्किञ्चित् प्रकाश डाला जायगा ।

विभीषण—यह लङ्का के राजा रावण के विमातृबन्धु थे । इनकी मनोवृत्ति राक्षसी न थी, अपितु ये अपने पूर्वजों की भाँति सतोगुण-प्रधान वृत्ति के थे । गृह नीति और देश नीति की दृष्टि से देखने पर विभीषण भारतीय जयचन्द्र से दृष्टिगत होते हैं, परन्तु विस्तृत विचारक्षेत्र में लाकर इनके चरित्रों पर दृष्टिपात करने से इनकी कलुषता नगण्य हो जाती है । रावण सरासर अनीति पर तुला हुआ था, बिभीषण ने बहुतेरा यत्न किया कि सीता को राम की सेवा में सौंप कर वह सन्धि करले, पर रावण ने एक न सुनी । उलटे बिभीषण पर चरण-प्रहार किया । इस पर बिभीषण ने वही किया जो करना स्वभाव-सिद्ध था:—

रहिमन अँसुवा बाहिरो, निकसि जनावत हेय।
जाको घर ले काढ़िये, क्यों न भेद कहि देय॥

बिभीषण ने रावण की उपस्थिति में ही कह दिया:—

तुम पितु सरिस भलेहि मोहि मारा। राम भजे हित नाथ तुम्हारा॥
राम सत्य संकल्प प्रभु, सभा काल बस तोरि।
मैं रघुबीर सरन अब, जाउँ देहु जनि खोरि॥

बिभीषण के ऐसा कहने पर रावण को उचित था कि वह उसे सम्हाल कर रख लेता, पर उस अभिमान-मूर्त्ति ने ऐसा करने में अपना अपमान समझ कर उस शुभचिन्तक भ्राताको ठुकरा दिया। बिभीषणने जाकर रामसे सन्धि की और लंका-विजय के कार्य में उन्हें पूरी सहायता देकर अपने कुलका नाश कराया और राज्य पाकर शान्त हुआ। बिभीषणके राजा होनेपर लङ्काकी शासन-पद्धति परिवर्त्तित हुई और धर्म-राज्यकी दुहाई फिरी। बिभीषण रामके साथ अयोध्यातक गये थे, पुनः वहाँसे अत्यन्त सम्मानित होकर लङ्का आये और राज्य-कार्यमें प्रवृत्त हुए। राम के सौहार्द्र, शील, सौजन्य, दयालुता, भक्त-वात्सल्य और सत्य निष्ठा एवं वीरता पर मुग्ध होकर बिभीषण आजीवन राम के आज्ञानुवर्त्ती और सेवक बने रहे।

जामवन्त—राम के अत्यन्त वृद्ध समरमंत्री थे। बड़े ही रण-कुशल और कुशाग्रबुद्धि थे। राम भी इनकी बड़ी प्रतिष्ठा करते और कठिन काल में इनकी सम्मति माँगते थे।

नल-नील—ये दोनों भाई किष्किन्धा के प्रमुख विश्वकर्मा (Engineer) थे। इन्होंने समुद्र में पुल बाँधकर समर की समस्त कठिनाइयों को सुलझाकर बड़ी सेवा की और युद्धमें भी बड़ी वीरता एवं गम्भीरता पूर्वक लड़ते रहे।

सुग्रीव—यह किष्किन्धाके राजा बालि का छोटा भाई था। इसको भी बिभीषणकी नाईं अपने भाईसे परम बैर था, और राम को भी सीता के अन्वेषण के लिये चरों और सहायकों की आवश्यकता थी अतः हनुमान के द्वारा सुग्रीव और राम में परस्पर सहायता की दृष्टि से मैत्री की स्थापना हुई। गोस्वामीजी ने हनुमान के मुख से ये पद्य कहवाये हैं:—

नाथ सैल पर कपिपति रहई। सो सुग्रीव दास तव अहई॥
तासन नाथ मैत्री कीजै। दीन जानि तेहि अभय करीजै॥
सो सीता कर खोज कराइहिं। जहँ तहँ मरकट कोटि पठाइहिं॥

निदान राम और सुग्रीव का साक्षात् हुआ। सुग्रीव ने अपने बड़े भाई का समस्त अत्याचार वर्णन किया। राम ने प्रतिज्ञा की:—

सुनु सुग्रीव मारिहउँ, बालिहिं एकहि बान।
ब्रह्म रुद्र सरनागतउ, गये न उबरिहिं प्रान॥

इसके आगे राम ने सुग्रीव से संक्षिप्त रूप से मैत्रीधर्म का कथन किया है, जिसे उपयोगी समझकर नीचे उद्धृत किया जाता है:—

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिनहिं बिलोकत पातक भारी॥
निज दुख गिरि सम रज करि जाना। मित्र के दुख रज मेरु समाना॥
जिन्ह के असिमति सहज न आई। ते सठ कत हठि करत मिताई॥
कुपथ निवारि सुपन्थ चलावा। गुन प्रगटै अवगुनहिं दुरावा॥
देत लेत मन सङ्क न धरहीं। बल अनुसार सदा हित करहीं॥
बिपति काल कर सतगुन नेहा। स्रुति कह सन्त मित्र गुन एहा॥
आगे कह मृदु बचन बनाई। पाछे अनहित मन कुटिलाई॥
जाकर चित अहि गति सम भाई। अस कुमित्र परिहरे भलाई॥
सेवक सठ अरु कृपन कुनारी। कपटी मित्र सूल सम चारी॥

× × × ×

अन्ततः राम ने बालि को मारकर सुग्रीव को किष्किन्धा का राजा बनाया। सुग्रीव ने सीता की खोज कराने की प्रतिज्ञा की थी, पर राज्य-सुख पाकर विलासिता में बद्ध होकर कर्त्तव्य-च्युत हो बैठा। कुछ काल प्रतीक्षा करने के उपरान्त राम ने क्रुद्ध होकर अपने भ्राता लक्ष्मण को भेजा कि भय दिखाकर सुग्रीव को मेरे समक्ष लावो। लक्ष्मण के जाने पर सुग्रीव अत्यन्त भयभीत होकर विनम्रता पूर्वक राम के पास आया। राम के परामर्श से चारों दिशाओं में सीताकी खोज के लिये सहस्रों दूत भेजे, जिनमें महावीर हनुमान के द्वारा सीता का पता मिला। उसके अनन्तर सुग्रीव ने राम के आदेशानुसार एक बृहत् सेना का आयोजन किया। लंकापर चढ़ाई हुई, जिसमें सुग्रीव स्वयं बड़ी कुशलता से युद्ध में भाग लेता रहा। लंका-विजय के उपरान्त अयोध्या तक सुग्रीव आये और रामके अभिषेक के अनन्तर किष्किन्धा जाकर सुख पूर्वक राज्य करते हुए राम के आज्ञानुवर्त्ती बने रहे। लंका-विजय का अधिक श्रेय सुग्रीव को है जिसने हनुमानादि महावीरों के साथ, साथ दिया था।

अङ्गद—बालि के पुत्र थे। सुग्रीव के राज्याभिषेक के साथ ही अङ्गद युवराज बनाये गये, तभी से इनको रामकी सेवाका सुअवसर प्राप्त हुआ। ये बड़े ही वीर, साहसी, निर्भीक और सेवा-भाव से सम्पन्न थे। सीता की खोज के लिये सुग्रीव-नल, नील, जामवन्त और हनुमान प्रभृति के साथ ही अङ्गद को भी भेजा था, पर सर्वसम्मति से समुद्र पार तो हनुमान ही गये। रावण के दरबार में समझाने के विचार से राम ने अङ्गद को भेजा था, जहाँ जाकर अपनी वाक्पटुता और वीरता का अच्छा परिचय दिया था। लंका-युद्ध में अङ्गद एक दल के नायक बनाये गये

थे। इस लोमहर्षण रण में अङ्गद ने बड़ी वीरता से राक्षसों का निपात किया। यह भी राम के परम प्रेमी थे। लंका से अयोध्या तक साथ आये, पुनः किष्किन्धा लौट गये और आजीवन राम के हार्दिक भक्त बने रहे।

हनुमान—वीराग्रगण्य महावीर की वीरता, गम्भीरता, विद्या, रणकुशलता और निःस्वार्थ सेवा का वर्णन करना हमारी लघ्वी लेखनी की शक्ति तथा सामर्थ्य से बाहर की बात है। गोस्वामीजी ने स्थान स्थान पर इनके पावन, विशाल और उदार चरित का वर्णन अत्यन्त विशद रीति पर किया है। राम के सेवकों में सर्वोपरि गणना हनुमान कीही की जासकती है। बिभीषण और सुग्रीव ने राज्य-प्रलोभन और गृह-कलह के कारण तथा अङ्गद ने युवराज-पद पाने से राम के साथ मैत्री की और उन्हीं प्रेरणाओं के वशीभूत होकर बदले के भाव से उनका सेवा एवं सहायता की, पर हनुमान की समस्त सेवाएँ निष्काम भाव से हुआ करती थीं। राम के साथ सुग्रीव का परिचय और प्रेम हनुमान के ही द्वारा हुआ था।

इसी परिचय में हनुमानके सभी सद्गुणों का पता राम को मिल गया। हनुमान की शक्ति और कुशलता देख कर राम को यह दृढ़ भरोसा हो गया कि इसी वीर के द्वारा सीता का निश्चित पता चलेगा, अतः जिस समय सुग्रीव के यहाँ से सभी दूत सीता का पता लेने चले हैं, उस समय राम ने हनुमान को ही अपनी मुद्रिका दी। गोस्वामी जी लिखते हैं:—

पाछे पवन तनय सिर नावा। जानि काज प्रभु निकट बुलावा॥
परसा सीस सरोरुह पानी। कर मुद्रिका दीन्ह जन जानी॥
बहु प्रकार सीतहिं समुझायहु। कहि बल बिरह बेगि तुम आयहु॥
हनुमत जनम सफल करि माना। चले हृदय धरि कृपा-निधाना॥

समुद्रतट जाने पर उसकी असीमता, गम्भीरता और अप्रमेयता देखकर सभी भयभीत हो गये, पर साहसी समीरसुत अल्पायास से ही समुद्र तैर सीता का पता लेकर लङ्का दहन करते हुए राम के सम्मुख समुपस्थित हुए। सर्व-सद्गुणों के अतिरिक्त हनुमान दूत-कर्म में भी निपुण थे। राम की व्याकुलता का अनुमान कर के प्रत्यक्ष होते ही 'दृष्टा सीतां समागतः, पद का प्रयोग किया, अर्थात् देख कर सीता को लौटा। राम-रावण-युद्ध में भी हनुमान प्रधान सेनापति होकर बड़ी वीरता से लड़ते रहे। लक्ष्मण की शक्ति लड़ने पर राम व्याकुल हो उठे, पर हनुमान ने आश्वासन दिया:—

जो हौं अब अनुसासन पावौं।
तौ चन्द्रमहिं निचोरि चैल ज्यों, आनि सुधा सिर नावौं॥
कै पाताल दलौं ब्यालावलि, अमृत कुण्ड महि लावौं।
भेदि भुवन करि भानु बाहिरो, तुरत राहु दैतावौं॥

बिबुध बैद बरबस आनौं धरि, तौ प्रभु अनुग कहावौं।
पटकौं मीच नीच मूषक ज्यौं, सबको पाप बहावौं॥
तुमरिहि कृपा प्रताप तिहारेहि, नेकु बिलम्ब न लावौं।
दीजै सोइ आयसु तुलसी प्रभु, जेहि तुम्हरे मन भावौं॥

हनुमान के इन वीरतापूर्ण वचनों को सुन कर राम को बहुत कुछ भरोसा हुआ। गोस्वामी जी लिखते हैं:—

सुनि हनुमन्त-बचन रघुबीर।
सत्य समीर-सुवन सब लायक, कह्यो राम धरि धीर॥
चाहिए बैद, ईस-आयसु धरि सीस कीस बल ऐन।
आन्यो सदन-सहित सोवत ही जौलौं पलक परै न॥
जियै कुंअर निसि मिलै मूलिका, कीन्हीं बिनय सुषेन।
उठ्यो कपीस सुमिरि सीतापति चल्यो सजीवनि लेन॥
कालनेमि दलि बेगि बिलोक्यो द्रोनाचल जिय जानि।
देखी दिव्य ओषधी जहँ तहँ जरी न परि पहिचानि॥
लियो उठाय कुधर कंदुक ज्यौं, बेग न जाइ बखानि।
ज्यौं धाए गजराज उधारन सपदि सुदरसनपानि॥
आनि पहार ओहारे प्रभु, कियो बैदराज उपचार।
करुनासिंधु बन्धु भेट्यो, मिटि गयो सकल दुख भार॥

× × × × ×

इस प्रकार हनुमान के उद्योग से राम ने अपने अनुज को जीवित पाया। इनकी सहायता से लङ्का पर विजय प्राप्त कर चिर बिरह सन्तप्ता सीता को पाकर राम अयोध्या वापस आये 'बिभीषण, जामवन्त, नल-नील, सुग्रीव, अङ्गद और हनुमानादि सब के सब अयोध्या नगरी में राम के साथ सुख-पूर्वक जीवन व्यतीत करते रहे। गोस्वामी जी लिखते हैं:—

ब्रह्मानन्द मगन कपि, सब के प्रभु पद प्रीति।
जात न जाने दिवस तिन्ह, गये मास षट बीति॥

बिसरे गृह सपनेहुँ सुधि नाहीं। जिमि पर द्रोह सन्त मन माहीं॥
तब रघुपति सब सखा बुलाये। आइ सबन सादर सिर नाये॥
परम प्रीति समीप बैठारे। भगत सुखद मृदु बचन उचारे॥
तुम अति कीन्हि मोरि सेवकाई। मुख पर केहि बिधि करौं बड़ाई॥
ताते मोहि तुम अति प्रिय लागे। मम हित लागि भवन सुख त्यागे॥
अनुज राज संपति वैदेही। देह गेह परिवार सनेही॥
सब मम प्रिय नहिं तुमहिं समाना। मृषा न कहौं मोर यह बाना॥
सबके प्रिय सेवक यह नीती। मोरे अधिक दास पर प्रीती॥

अब गृह जाहु सखा सब, भजेहु मोहि दृढ़ नेम।
सदा सर्वगत सर्वहित, जानि करेहु अति प्रेम॥

इस प्रकार प्रेमालाप से महापुरुष ने सब सेवकों की बिदाई का समारोह पूर्वक आयोजन किया। सारी सभा एकत्रित हुई। सब के मन ही मन यह प्रश्न उठ रहा था कि देखें सब से प्रथम किसकी बिदाई होती है? सबकी धारणा थी कि अपने सेवकों में राम जिसे सब की अपेक्षा प्रतिष्ठित समझेंगे उसी को सर्व-प्रथम उपहार समर्पित होगा।

हनुमान की निःस्वार्थ सेवाओं और सङ्कट समय की सहायताओं को स्मरण कर सीता के हृदय में यह दृढ़ विश्वास था कि पहला समर्पण हनुमान को ही होगा, पर यहाँ बिदाई का कार्य इस क्रम से सम्पादित हुआ:—

तब प्रभु भूषन बसन मँगाये। नाना रङ्ग अनूप सुहाये॥
सुग्रीवहिं प्रथमहिं पहिराये। भरत बसन निज हाथ बनाये॥
प्रभु प्रेरित लछिमन पहिराये। लङ्कापति रघुपति मन भाये॥
अङ्गद बैठि रहा नहिं डोला। प्रीति देखि प्रभु ताहि न बोला॥

जामवन्त नीलादि सब, पहिराये रघुनाथ।
हिय धरि राम रूप सब, चले नाइ पद माथ॥

× × × × ×

अङ्गद वचन बिनीत सुनि, रघुपति करुना सींव।
प्रभु उठाइ उर लायउ, सजल नयन राजीव॥
निज उर माल बसन मनि, बालि तनय पहिराइ।
बिदा कीन्ह भगवान तब, बहु प्रकार समुझाइ॥

इसके उपरान्त भी हनुमान के समक्ष कोई समर्पण वा प्रेमोपहार न देख कर सीता की उदासी की सीमा न रही। अधीर होकर बोल उठी। स्वामिन्! आश्चर्य है कि आप हनुमान की सारी सेवाओं से सहसा विस्मृत हो बैठे। जिस दिन हनुमान ने अपनी प्यारी जान को जोखिम में डाल कर समुद्र पार जाकर मेरा सन्देशा आपको सुनाया एवं आपके प्राणप्रिय अनुज लक्ष्मण को सजीवनी बूटी लाकर प्राण दान दिया, उस दिन तो आपके आनन्द का ठिकाना न रहा, पर आज हनुमान का सम्मान करना ही आप भूल गये!! सीता की इस प्रेम-वाणी को सुनकर महाराज ने बड़ी गम्भीरता से पवन-तनय के सिर पर हाथ फेरते हुए उत्तर दिया कि हे प्रिये! हमारे पास कोई ऐसी सम्पत्ति नहीं जिसे देकर हम हनुमान की बिदाई कर सकें। यदि अयोध्या की समस्त राज्य-लक्ष्मी भी इनके समक्ष उपहार में रख दी जाय तो वह भी इनके किये हुए उपकारों की समकक्षता में तुच्छातितुच्छ होगी। हनुमान का निःस्वार्थ सेवाकी समता संसार की सम्पत्ति भी

नहीं कर सकती। यदि हम यह कहें जैसे संकट-काल में हनुमान ने हमारा साथ दिया है, वैसे हम भी साथ देंगे, तो इसका सीधा अर्थ यही है कि हम हृदय से चाहते हैं कि हनुमान पर भी वैसा ही संकट संघटित हो। अत:

कपि सेवा-बस भयो कनौड़े, कह्यो, पवन सुत आउ।
देवे को न कछू, रिनियो हौं, धनिक तू, पत्र लिखाउ॥

जब तक यह वसुन्धरा स्थित रहे तब तक हम चाहते हैं कि सदा इतिहासों में यही लिखा जाय कि हनुमान के उपकारों से राम उऋण न हुए। प्रिय पाठको! यह है हनुमान की निःस्वार्थ सेवाओंका मूल्य !!!

बुधि विद्या निधान, महा गुणवान, प्रताप महान, बड़ो उपकारी।
अति पूरन काम, सबैगुणधाम, जितेन्द्रिय वीरबली ब्रह्मचारी॥
तप तेज अगाध, सुसामुक्ति साध, अचार विचार महा अघहारी।
सब स्वारथ हीन, अदीन, बियो हनुमान समान नहीं तनुधारी॥

भगवान भारत के नव युवकों और स्वयं सेवकों में हनुमान की सेवा-पद्धति पर विचार कर उसे अपने आचरण में संघटित करने का बल-प्रदान करें।

पतितोद्धारण

जहाँ सहस्रश: सद्गुण मर्यादापुरुषोत्तम के आभूषणवत् आश्रित थे, वहाँ पतितोद्धारण महाराज के विशाल भाल का सौरमित श्रीखण्ड था। राम का अवतार ही दुष्ट-दल-दलन, पतितोद्धारण और प्रेम-प्रसारण के निमित्त प्रसिद्ध है। गोस्वामी जी ने कहा है:—

रामहिं केवल प्रेम पियारा। जानि लेहु जो जाननिहारा॥

तुलसी-कृति से उपर्युक्त कथन की सर्वदा और सर्वथा पुष्टि हुई है। राम ने अपने जीवन में अगणित पतितों का उद्धार किया। जिन व्यक्तियों वा जातियों से साधारण लोक घृणा का भाव रखता था उनके साथ महात्मा राम बड़े आदर और स्नेह-भाव से मिले-जुले और उनका आतिथ्य तक स्वीकार किया। ऐसा करनेसे महापुरुष राम के जीवन रूप स्वर्णमें सुगन्ध का आविर्भाव हो गया। आज शिक्षित-अशिक्षित और धनशाली एवं निर्धन समुदाय में भगवान की पतितोद्धारणी कथा सगर्व और सप्रेम पढ़ी जाती है। वास्तव में वही मनुष्य समुन्नत है जो अवनतों का उत्थान करता है। राम का व्यवहार अशिक्षित और जङ्गली जातियों के साथ ऐसा प्रेममय होता था कि वे सब भी इनके लिये तन, मन और धन को तृणवत् समझते थे। अयोध्या से बन के निमित्त यात्रा कर के पार होने के लिये जिस समय गङ्गातट पर पहुँचे हैं, वहाँ केवटों ने इनके साथ कैसा व्यवहार किया है और

राम ने उनका कैसा आदर किया है, इसका वर्णन गोस्वामीजी 'रामचरित-मानस' में इस प्रकार कहते हैं:—

यह सुधि गुह निषाद जब पाई। मुदित लिये प्रिय बन्धु बुलाई ॥
लिय फल फूल भेंट भरि भारा। मिलन चलेउ हिय हरष अपारा ॥
करि दण्डवत भेंट धरि आगे। प्रभुहिं बिलोकत अति अनुरागे ॥
सहज सनेह बिबस रघुराई। पूछी कुशल निकट बैठाई ॥
नाथ कुसल पद पंकज देखे। भयेउ भाग-भाजन जन लेखे ॥
देव धरनि धन धाम तुम्हारा। मैं जन नीच सहित परिवारा ॥
कृपा करिय पुर धारिय पाऊँ। थापिय जन सब लोग सिहाऊँ ॥
कहेउ सत्य सब सखा सुजाना। मोहि दीन्ह पितु आयसु आना ॥

बरस चारि दस बास बन, मुनि ब्रत बेष अहार।
ग्राम बास नहिं उचित सुनि, गुहहिं भयउ दुख भार ॥

निषादनाथ भगवान को अपने घर पर ले जाना चाहता था और यदि पिता का आदेश बाधक न होता तो आपको जाने में भी कोई आपत्ति न थी। अगत्या केवटराजने मार्ग में ही उनका यथोचित सत्कार किया।

गुह सँवारि साथरी डसाई। कुश किसलय मय मृदुल सुहाई ॥
सुचिफल मूल मधुर मृदुबानी। दोना भरि भरि राखेसि आनी ॥

सिय सुमन्त भ्राता सहित, कन्द मूल फल खाइ।
सयन कीन्ह रघुबंस मनि, पाय पलोटत भाइ ॥

प्रातःकाल उठकर भगवान शौच सन्ध्यादि से निवृत्त होकर गङ्गा पार जाने के लिये घाट पर आये और केवट से नौका माँगने लगे। वह केवट भी प्रेम का स्वरूप ही था। उसने राम के सदृश पूज्यतम अतिथि का चरणप्रक्षालन करना चाहा। वह कहता है:—

जो प्रभु अवसि पार गा चहहू। तो पद पदुम पखारन कहहू ॥

पद कमल धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं।
मोहि राम राउरि आन दसरथ सपथ सब साँची कहौं ॥
बरु तीर मारहिं लषन पै जब लगि न पांय पखारि हौं।
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपाल पार उतारिहौं ॥

भला यह कब सम्भव था कि प्रेममूर्ति करुणावारिधि महात्मा राम ऐसे प्रेमी की प्रार्थना को अस्वीकार करें।

सुनि केवट के बैन, प्रेम लपेटे अटपटे।
बिहँसे करुन ऐन, चितै जानकी लषन तन ॥

कृपा सिंधु बोले मुसुकाई। सोइ करु जेहि तव नाव न जाई ॥
वेगि आनु जल चरन पखारू। होत बिलंब उतारहु पारू ॥

× × × ×

केवट राम-रजायसु पावा। पानि कठौता भरि लेइ आवा ॥
अति आनन्द उमगि अनुरागा। चरन सरोज पखारन लागा ॥

इस प्रकार चरण पखार कर केवट ने अपना स्थान सपरिवार इतिहास में अचल कर मर्यादापुरुषोत्तम को गंगा पार उतार दिया। इसके अनन्तर की कथा को गोस्वामी जी ने अत्यन्त प्रेममयी रसीली लेखनी से लिखा है जिसे अविकल उद्धृत किया जाता है:—

उतरि ठाढ़ भये सुरसरि रेता। सीय राम गुह लखन समेता ॥
केवट उतरि दंडवत कीन्हा। प्रभुहिं सकुच एहि कछु नहिं दीन्हा ॥
पिय हिय की सिय जाननिहारी। मनि मुदरी मन मुदित उतारी ॥
कहेउ कृपालु लेहु उतराई। केवट चरन गहेउ अकुलाई ॥
नाथ आजु मैं काह न पावा। मिटे दोष दुख दारिद दावा ॥
बहुत काल मैं कीन्ह मजूरी। आज दीन्ह बिधि बनि भलि भूरी ॥
अब कछु नाथ न चाहिय मोरे। दीन दयालु अनुग्रह तोरे ॥
फिरती बार नाथ जो देवा। सो प्रसाद मैं सिर धरि लेवा ॥

बहुत कहे प्रभु लखन सिय, नहिं कछु केवट लेइ।
बिदा कीन्ह करुनायतन, भगति बिमल बर देइ ॥

ऊपर के वर्णन पर कोई टीका टिप्पणी चढ़ाने की तनिक आवश्यकता नहीं। गोस्वामीजीकी छोटी चौपाइयों ने ही कमाल कर डाला है। यह है हमारे चक्रवर्ती वसुधाधिप और एक तुच्छ जलजन्तु मल्लाह का प्रेम-मय व्यवहार! क्या आजकल के अकड़बेग बाबू इस आदर्श आचार से कुछ शिक्षा ग्रहण करेंगे? वास्तव में बड़ा वही है जो छोटों का प्यार करता है।

जिस समय महाराज रामचन्द्र अपने भ्राता लक्ष्मण और अपनी पतिव्रता प्रेयसी सीता के साथ चित्रकूट पहुँचे हैं, वहाँ उनसे मिलने के लिये ऋषि और मुनि आये। दूसरी ओर प्रकृति माता के सुहृदपुत्र शुद्धान्तःकरण वाले वे भाई भी अपने परममान्य अतिथि के सत्कारार्थ पहुँचे हैं, जिन्हें आज जंगली नाम से पुकारा जाता है। गोस्वामी जी लिखते हैं:—

यह सुधि कोल किरातन पाई। हरखे जनु नवनिधि घर आई ॥
कन्द मूल फल भरि भरि दोना। चले रंक जनु लूटन सोना ॥
करहिं जोहार भेंट धरि आगे। प्रभुहिं बिलोकहिं अति अनुरागे ॥
चित्र लिखे जनु तहँ तहँ ठाढ़े। पुलक सरीर नयन जल बाढ़े ॥

राम सनेह मगन सब जाने। कहि प्रिय बचन सकल सनमाने॥
प्रभुहिं जोहारि बहोरि बहोरी। बचन बिनीत कहहिं कर जोरी॥

अब हम नाथ सनाथ सब, भये देखि प्रभु पाय।
भाग हमारे आगमन, राउर कोसल राय॥

धन्य भूमि बन पंथ पहारा। जहँ जहँ नाथ पाउँ तुम्ह धारा॥
धन्य बिहँग मृग कानन चारी। सफल जनम भये तुम्हहिं निहारी॥
हम सब धन्य सहित परिवारा। दीख दरस भरि नयन तुम्हारा॥
कीन्ह बास भल ठाउँ बिचारी। इहाँ सकल रितु रहब सुखारी॥
हम सब भाँति करबि सेवकाई। करि-कहेरि-अहि-बाघ बराई॥
बन बीहड़ गिरि कंदर-खोहा। सब हमार प्रभु पग पग जोहा॥
जहँ तहँ तुम्हहिं अहेर खेलाउब। सर निरझर भल ठाउ देखाउब॥
हम सेवक परिवार समेता। नाथ न सकुचब आयसु देता॥

बेद बचन-मुनिमन-अगम; ते प्रभु करुना अयन ऐन।
बचन किरातन्ह के सुनत-जिमि पितु बालक बैन॥

रामहिं केवल प्रेम पियारा। जानि लेउ जो-जाननिहारा॥
राम सकल बन-चर तब तोषे। कहि मृदु बचन प्रेम परिपोषे॥
बिदा किये सिर नाइ सिधाये। प्रभु गुन कहत सुनत घर आये॥

अहह! इन कोल भीलों के प्रेमालाप, प्रेमोपहार और परिशुद्ध प्रणय के सम्मुख संसार की सभ्यता नतग्रीव हो जाती है!! महापुरुष राम ने भी बड़े ही आदर-भाव से प्रेमपूर्वक मिलकर आर्यमर्यादा का आदर्श दिखलाया है। राम के प्रेममय व्यवहार ने असभ्य और जंगली जातियों को भी दास बना लिया। वे बनबासी रामके लिये प्राण समर्पण को भी समुद्यत हो जाते थे। जिस समय भरत चित्रकूट को जा रहे थे, उस समय भ्रमवश निषादों ने समझ लिया कि वह रामसे युद्ध करने के लिये जाते हैं। बस क्या था, निषादों ने भरत के साथ लोहा लेने की ठान ली। पीछे एक वृद्ध निषाद के कहने पर सादर भेंट और उपहार लेकर भरत के अन्तःकरण का अन्दाज लेने के भावसे कुछ निषाद चले। इस कथा को गोस्वामी जी इस प्रकार लिखते हैं:—

मिलन-साज सजि मिलन सिधाये। मंगल-मूल सगुन सुभ पाये॥
देखि दूरि ते कहि निज नामू। कीन्ह मुनीसहिं दण्ड-प्रनामू॥
जानि राम प्रिय दीन्हि असीसा। भरतहिं कहेउ बुझाइ मुनीसा॥
राम-सखा सुनि स्यंदन त्यागा। चले उतरि उमगत अनुरागा॥
गाउँ-जाति गुह नाउँ सुनाई। कीन्ह जोहार भाल महि लाई॥

करत दंडवत देखि तेहि, भरत लीन्ह उर लाइ।
मनहुँ लषन सन भेंट भइ, प्रेम न हृदय समाइ॥

भेंटत भरत ताहिं अति प्रीती। लोग सिहाहिं प्रेम कै रीती॥
धन्य धन्य धुनि मंगल-मूला। सुर सराहिं तेहि बरिसहिं फूला॥
लोक बेद सब भाँतिहि नीचा। जासु छाँह छुइ लेइअ सींचा॥
तेहि भरि अंक राम-लघु भ्राता। मिलत पुलक-परिपूरित गाता॥
राम राम कहि जे जमुहाहीं। तिन्हहिं न पाप-पुंज समुहाहीं॥
एहि तौ राम लाइ उर लीन्हा। कुल समेत जग पावन कीन्हा॥
करमनास जल सुरसरि परई। तेहि को कहहु सीस नहिं धरई॥
उलटा नाम जपत जग जाना। बालमीकि भये ब्रह्म-समाना॥

स्वपच सबर खस जमन जड़, पाँवर कोल किरात।
राम कहत पावन परम, होत भुवन-विख्यात॥

नहिं अचरज जुग जुग चलि आई। केहि न दीन्ह रघुबीर बड़ाई॥
राम-नाम महिमा सुर कहहीं। सुनि सुनि अवध लोग सुख लहहीं॥
राम सखहिं मिलि भरत सप्रेमा। पूछी कुसल सुमंगल छेमा॥
देखि भरत कर सील सनेहू। भा निषाद तेहि समय विदेहू॥
सकुच सनेह मोद मन बाढ़ा। भरतहिं चितवत एक टक ठाढ़ा॥
धरि धीरज पद बंदि बहोरी। विनय सप्रेम करत कर जोरी॥
कुसल-मूल पद-पंकज पेखी। मैं तिहुँ काल कुसल निज लेखी॥
अब प्रभु परम अनुग्रह तोरे। सहित कोटि कुल मंगल मोरे॥

समुझि मोरि करतूति कुल, प्रभु महिमा जिय जोइ।
जो न भजइ रघुबीर पद, जग विधि बंचित सोइ॥

कपटी कायर कुमति कुजाती। लोक बेद बाहर सब भाँती॥
राम कीन्ह आपन जबहीतें। भयउँ भुवन-भूषन तबहीतें॥
देखि प्रीति सुनि विनय सुहाई। मिलेउँ बहोरि भरत लघुभाई॥
कहि निषाद निज नाम सुबानी। सादर सकल जोहारी रानी॥
जानि लषन-सम देहिं असीसा। जिअहु सुखी सइ लाख बरीसा॥
निरखि निषाद नगर-नर-नारी। भये सुखी जनु लषन निहारी॥
कहहिं लहेउ एहि जीवन लाहू। भेंटेउ राम-भद्र भरि बाहू॥
सुनि निषाद निज भाग-बड़ाई। प्रमुदित मन लै चलेउ लेवाई॥

× × × ×

हमारे सहृदय पाठक ऊपर के पद्यों पर विचार-दृष्टि-पात करें। निषाद के समान एक तुच्छ जाति की व्यक्ति के साथ महाकुल राम इस प्रेम के साथ मिले कि कविकुल-तिलक गोस्वामी जी ने उस निषाद को 'राम-सखा' की उपाधि प्रदान कर दी है। उस राम-सखा को आते हुए देख कर महा पुरुष भरत अपना रथ परित्याग कर भूमि पर उतर पड़ते हैं। उभय-दल किस प्रकार प्रेम-पूर्वक परस्पर मिला है, इसका

वर्णन गोस्वामी जी ने अत्यन्त हृदयग्राहिणी भाषा में किया है। रानियों ने निषादको लक्ष्मण के समान प्यार किया, यह कितना उच्च आदर्श पतितोद्धार का है? हमारे इतिहास में पद पद पर इन जातियों के साथ सद्व्यवहार की कथा भरी पड़ी है। पुराकाल में आर्य जाति के कुलीन जन असभ्य एवं जंगली जातियों के साथ प्रेम पूर्वक मिलते जुलते और उनसे भ्रातृ-भाव रखते थे। हम आजकल के पतित साहित्य में उन्हें 'पतित' नाम से पुकारते हैं, नहीं तो प्राचीन काल में उनको कोई पतित नहीं कहा करता था। 'गुह' निषाद तो राम का परिवार सा प्रियतम हो गया था। भरत के साथ जब चित्रकूट पहुँचा तो पुनः राम और लक्ष्मण इससे परम प्रेम से मिले:—

मिलि सप्रेम रिपु सूदनहिं, केवट भेंटेउ राम।
भूरि भाव भेंटे भरत, लछिमन करत प्रनाम॥
भेंटेउ लखन ललकि लघु भाई। बहुरि निषाद लीन्ह उरलाई॥

× × × ×

राम के साथ चित्रकूट में भरत और अयोध्यानिवासी कई दिनों तक ठहरे हुए थे. वहां कोल और भीलों ने अत्यन्त प्रेम के साथ कन्द, मूल, फल और जल से सभी का सत्कार और अतिथि-सेवा की है। गोस्वामी जी लिखते हैं:—

कोल किरात भिल्ल बनबासी। मधु सुचि सुंदर स्वाद सुधा सी॥
भरि भरि परन-पुरी रचि रूरी। कंद मूल फल अंकुर जूरी॥
सबहिं देहिं करि बिनय प्रनामा। कहि कहि स्वाद भेद गुन नामा॥
देहिं लोग बहु मोल न लेहीं। फेरत राम दोहाई देहीं॥
कहहिं सनेह-मगन मृदु बानी। मानत साधु प्रेम पहिचानी॥
तुम्ह सुकृती हम नीच निषादा। पावा दरसन राम-प्रसादा॥
हमहिं अगम अति दरस तुम्हारा। जस मरू-धरनि देव धुनि-धारा॥
राम-कृपाल निषाद नेवाजा। परिजन प्रजउ चहिअ जस राजा॥

यह जिय जानि सकोच तजि, करिअ छोह लखि नेहु।
हमहिं कृतारथ करन लगि, फल-तृन-अंकुर लेहु॥

तुम्ह प्रिय पाहुन बन पग धारे। सेवा जोग न भाग हमारे॥
देव काह हम तुमहिं गोसाँई। ईंधन पात किरात मिताई॥
यह हमारि अति बड़ि सेवकाई। लेहिं न बासन बसन चोराई॥
हम जड़-जीव जीवगन-घाती। कुटिल कुचाली कुमति कुजाती॥
पाप करत निसि बासर जाहीं। नहिं पट कटि नहिं पेट अघाहीं॥
सपनेहुँ धरम-बुद्धि कस काऊ। यह रघुनन्दन-दरस-प्रभाऊ॥

जबतें प्रभु-पद-पदुम निहारे। मिटे दुसह-दुख-दोष हमारे॥
बचन सुनत पुरजन अनुरागे। तिन्हके भाग सराहन लागे॥
लागे सराहन भाग सब अनुराग बचन सुनावहीं।
बोलनि मिलनि सिय-राम-चरन सनेह लखि सुख पावहीं॥
नर नारि निदरहिं नेह निज सुनि कोल भिल्लनि की गिरा।
तुलसी कृपा रघुबंस-मनि की लोह लेइ लौका तिरा॥

अहह ! वह दिन हमारा कैसा पवित्र था जब हमारा सम्राट अपने परिवार और कुलगुरु के साथ ऐसी जातियों का भी आतिथ्य स्वीकार करता था जिन्हें आज हम जंगली और असभ्य कहते हुए 'हिन्दू' भी मानने को तैयार नहीं हैं। मर्यादापुरुषोत्तम राम और उनके कुलाचार्य महर्षि वसिष्ठ कोल, भील और किरातों का लाया हुआ कन्द-मूल-फल एवं जल सादर स्वीकार करते हैं। इन प्रेम-प्रतिम वनचरों ने इन महापुरुषों की बिदाई के समय भी अपना प्रेमोपहार सादर समर्पित किया—

तेहि अवसर फल फूल दल, मूल अनेक प्रकार।
लेइ आये बनचर बिपुल, भरि भरि काँवरि भार॥

× × × ×

महात्मा राम जब सीता की खोज में इतस्ततः वनमें भ्रमण कर रहे थे उस यात्रा में पतित-पावन महाराज 'शबरी' नाम्नी भीलनी के पर्णकुटीर में भी जा पहुँचे थे। शबरी प्रेम की प्रतिमा थी। वह बहुत देर से राम-लक्ष्मणके शुभागमन की प्रतीक्षा कर रही थी। गोस्वामीजी ने गीतावली में शबरी के प्रेमका अच्छा चित्र-चित्रण किया है:—

राग सूहो

सबरी सोइ उठी, फरकत बाम बिलोचन बाहु।
सगुन सुहावने सूचत मुनि-मन-अगम उछाहु॥
मुनि-अगम उर आनंद, लोचन सजल, तनु पुलकावली।
तृन-पर्नसाल बनाइ, जल भरि कलस, फल चाहन चली॥
मंजुल मनोरथ करति, सुमिरति विप्र-बरबानी भली।
ज्यों कल्प-बेलि सकेलि सुकृत सुफूल-फूली सुख फली॥ १॥
प्रानप्रिय पाहुने ऐहैं राम लषन मेरे आजु।
जानत जन-जिय की मृदु चित राम गरीब निवाजु॥
मृदु चित गरीब निवाज आजु बिराजिहैं गृह आइ कै।
ब्रह्मादि संकर गौरि पूजित पूजिहौं अब जाइ कै॥
लहि नाथ हौं रघुनाथ-बानो पतित पावन पाइ कै।
दुहुँ ओर लाहु अघाइ तुलसी तीसरेहु गुन गाइ कै॥ २॥

दोना रुचिर रचे पूरन कंद मूल फल फूल।
अनुपम अमियहु तें अंबक अवलोकत अनुकूल॥
अनुकूल अंबक ज्यों निज डिंभ हित सब आनिकै।
सुंदर सनेह सुधा सहस जनु सरस राखे सानिकै॥
छन भवन, छन बाहर बिलोकति पंथ भू पर पानिकै।
दोउ भाइ आये शबरिका के प्रेम-पन पहचानिकै॥ ३॥
स्रवन सुनत चली आवत देखि लषन रघुराउ।
सिथिल सनेह कहै, है सपना बिधि कैधौंसति भाउ॥
सति भाउ कै सपनो? निहारि कुमार कोसलराय के।
गहे चरन जे अघहरन नत-जन-बचन-मानस-कोम के॥
लघु-भाग-भाजन-उदधि उमग्यो लाभ सुख चित चाय के।
सो जननि ज्यों आदरी सानुज, राम भूखे भाय के॥ ४॥
प्रेम पट पाँवड़े देत सुअरघ बिलोचन-बारि।
आस्रम लै दिय आसन पंकज पाँय पखारि॥
पद-पंकजात पखारि पूजे पंथ स्रम-बिरहित भये।
फल फूल अंकुर मूल धरे सुधारि भरि दोना नये॥
प्रभु खात पुलकित गात, स्वाद सराहि आदर जनुजये।
फल चारिहू फल चारि दहि परचारि फल सबरी दये॥ ५॥
सुमन बरषि हरषे सुर, मुनि मुदित सराहि सिहात।
केहि रुचि केहि छुधा सानुज माँगि माँगि प्रभु खात॥
प्रभु खात माँगत, देति साबरी राम भोगी जाग के।
पुलकत प्रसंसत सिद्ध सिव सनकादि भाजन-भाग के॥
बालक सुमित्रा कौसिला के पाहुने फल साग के।
सुनु समुझि तुलसी जानु रामहिं बस अमल अनुराग के॥ ६॥
रघुवर अँचइ उठे सबरी करि प्रनाम कर जोरि।
हौं बलि बलि गई पुरई मंजु मनोरथ मोरि॥
पुरई मनोरथ स्वारथहु परमारथहु पूरन करी।
अघ अवगुनन्हि की कोठरी करि कृपा मुदमंगल भरी॥
तापस किरातिनि कोल मृदु मूरति मनोहर मन धरी।
सिर नाइ आयसु पाइ गवने परमनिधि पाले परी॥ ७॥
सिय-सुधि सब कही नख सिख निरखि २ दोउ भाइ।
दै दै प्रदच्छिना करति प्रनाम न प्रेम अघाइ॥
मति प्रीति मानस राखि रामहि, राम-धामहिं सो गई।
तेहि मातु ज्यों रघुनाथ अपने हाथ जल अंजलि दई॥
तुलसी-भनित सबरी-प्रनति, रघुबर प्रकृति करुनामई।
गावत, सुनत, समुझत भगति हिय होय प्रभु पद नित नई॥ ८॥१७॥

प्रिय सहृदय पाठक ! हमारी लघु लेखनी में ऐसी शक्ति नहीं है जो गोस्वामी जी के सरस लेख पर कुछ टीका और टिप्पणी चढ़ा सके। प्रथम पद्य के 'जल भरि कलस' पद से सिद्ध होता है कि कन्द-मूल के साथ ही राम-लक्ष्मण ने शबरी के घड़े का जल भी ग्रहण किया था। शबरी राम की प्रतीक्षा में बावली हो रही थी, विलम्ब के एक एक पल उसके लिये एक २ कल्प से बीत रहे थे। वह किसी क्षण घर में जाती और दूसरे क्षण बाहर आकर भौंहों पर हाथ धर कर राम की बाट जोहती थी। उसकी पर्णकुटी में राम-लक्ष्मण क्या आये ? उसके भाग्य और पुरापुराय का उदधि उमड़ पड़ा !! राम-लक्ष्मण ने उसका आदर माता के समान किया। 'जननि ज्यों आदरी सानुज' पद देकर गोसाईं जी ने आर्य-मर्यादा का उच्चतम आदर्श प्रकट किया है। 'रामचरित-मानस' में शबरी-सम्मेलन इस प्रकार लिखा है:—

सबरी देख राम गृह आये। मुनि के बचन समुझि जिय भाये ॥
सरसिज लोचन बाहु बिसाला। जटा-मुकुट-सिर उर बनमाला ॥
स्याम गौर सुंदर दोउ भाई। सबरी परी चरन लपटाई ॥
प्रेम-मगन मुख बचन न आवा। पुनि पुनि पद-सरोज सिर नावा ॥
सादर जल लेइ चरन पखारे। पुनि सुन्दर आसन बैठारे ॥

कंद मूल फल सुरस अति, दिये राम कहँ आनि।
प्रेम सहित प्रभु खाये, बाम्बार बखानि ॥

पानि जोरि आगे भइ ठाढ़ी। प्रभुहिं बिलोकि प्रीति अति बाढ़ी ॥
केहि बिधि अस्तुति करउँ तुम्हारी। अधम जाति मैं जड़ मति भारी ॥
अधम ते अधम अधम अति नारी। तिन्ह महँ मैं मतिमन्द अघारी ॥
कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानउँ एक भगति कर नाता ॥
जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिजन गुन चतुराई ॥
भगति-हीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल बारिद देखिअ जैसा ॥
नवधा भगति कहउँ तोहि पाहीं। सावधान सुनु धरु मन माहीं ॥
प्रथम भगति संतन्ह का संगा। दूसरि रति मम कथा-प्रसंगा ॥

गुरु-पद-पंकज सेवा, तीसरि भगति अमान।
चौथि भगति मम गुनगन, करइ कपट तजिगान ॥

मंत्र-जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा ॥
छठ दम-सील बिरति बहु कर्मा। निरत निरतन्र सज्जन-धर्मा ॥
सातवँ सम मोहि-मय जग देखा। मोतें संत अधिक करि लेखा ॥
आठवँ जथालाभ संतोषा। सपनेहुँ नहिं देखइ पर-दोषा ॥
नवम सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हिम हरष न दीना ॥

नव महँ एकहु जिन्हके होई। नारि पुरुष सचराचर कोई॥
सोइ अतिसय प्रियभामिनि मोरे। सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरे॥
जोगि बृन्द दुर्लभ-गति जोई। तो कहँ आजु सुलभ भइ सोई॥
मम दरसन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा॥

इस प्रकार की शिक्षा और आश्वासन प्रदान कर प्रेम-पूर्वक राम-लक्ष्मण ने उसका आतिथ्य स्वीकार कर उसे स्वर्गधाम प्रदान किया।

शबरी के बेर राम को ऐसे मीठे लगे कि 'रसिक बिहारी, कवि लिखते हैं:—

बेर बेर बेर लै सराहैं बेर बेर बहु, रसिक बिहारी देत बंधु कहं फेर फेर।
चाखि चाखि भाखैं ये तो बहुतो महान मीठे, लेहु तो लषन यों बखानत हैं हेर हेर॥
बेर बेर देति बेर सबरी सुबेर बेर, तऊ रघुबीर बेर बेर तेहि टेर टेर।
बेर जनि लावो बेर बेर जनि लावो, बेर बेर जनि लावो बेर लावो कहैं बेर बेर॥

यह है प्रेमका एक सच्चा चित्र। यही है पतितोद्धार का आदर्श उदाहरण!! आज भीलनी शबरी कौशल्या और सुमित्रा के समान आनन्द-सरिता में अवगाहन कर रही है!!!

राम के रोम २ में प्रेम का आवास था। उनका समस्त जीवन ही प्रेम से परिपूरित था। लंका-विजय के उपरान्त अयोध्या प्रत्यावर्त्तन के अनन्तर राज्याभिषेक के पश्चात् जहाँ सुग्रीव, बिभीषण, अंगद, जामवन्त और नल नीलादि की सादर बिहाई राम ने की वहाँ निषाद-राज्य को इस प्रकार बिदा करते हैं:—

पुनि कृपालु लियो बोलि निषादा। दीन्हें भूषन बसन प्रसादा॥
जाहु भवन मम सुमिरन करेहू। मन क्रम बचन धर्म अनुसरेहू॥
तुम मम सखा भरत सम भ्राता। सदा रहेहु पुर आवत जाता॥
बचन सुनत उपजा सुख भारी। परेउ चरन भरिलोचन बारी॥
कमल चरन उर धरि गृह आवा। प्रभु सुभाउ परिजनहिं सुनावा॥

× × × ×

इस निषाद की बिदाई भी भूषण, वस्त्र और प्रसाद से हुई। राम कहते हैं कि हे मित्र निषाद! अब तुम भी अपने घर जावो, मुझे भूलना नहीं, सदा धर्म-पथ का अनुसरण करना। तुम भरत के समान मेरे प्यारे हो, हमारा तुम्हारा प्रेम सामयिक और क्षणिक नहीं है, सदा अयोध्या आते जाते रहना। मर्यादापुरुषोत्तम नर-रत्न राम के मुख से इन आदरसूचक शब्दों को सुन कर निषाद का सजल नयन होकर चरण पर गिरना स्वभावसिद्ध था।

अन्त में हम हिन्दुओं के धनाभिमानी, जात्यभिमानी और धर्माभिमानी महानुभावों से अपील करते हैं कि वे कृपाकर नेत्र खोलें और गोस्वामी तुलसीदास जी के इन लेखों से शिक्षा लेते हुए महापुरुष राम के अनुयायी बन कर अपने

दलित भाइयोंको गले लगावें। आज दुर्दैव की प्रेरणा से लगभग ७ करोड़ हिन्दू भाई अछूत, पतित, अन्त्यज अथवा दलित नाम से पुकारे जाते हैं। वे भारतमाता के सच्चे सपूत शिर पर शिखा रहते, राम का नाम लेते और गो-भक्ति का भाव रखते हैं, तौभी उनके साथ उत्तम व्यवहार न करना अमानुषता और बर्बरता है।

'स्वपच सबर खस जवन जड़, पावर कोल किरात।
राम कहत पावन परम, होत भुवन विख्यात॥'

शुद्धि

आज शुद्धि की कितनी आवश्यकता है उसका अनुभव प्रायः सभी विचार शील हिन्दू करने लगे हैं। हमारे प्राचीन शास्त्रों में इसी शुद्धि को प्रायश्चित्त नाम से पुकारा गया है। हम यहाँ उन ग्रन्थों के प्रमाण देकर प्रस्तुत ग्रन्थ को भीमकाय बनाना नहीं चाहते। केवल गोस्वामी जी के ग्रन्थों से दो एक उद्धरण देकर इस विषय को सिद्ध करेंगे

(१) हमारे पाठक गोस्वामी जी के जीवनचरित्र में पढ़ चुके है कि आपने एक ब्रह्महत्यारे को केवल उसके मुख से राम नाम का उच्चारण कराकर शुद्ध कर लिया था, और उसके हाथ का बनाया हुआ भोजन भी पाया था।

(२) गोस्वामी जी ने रामनाम की महिमा का वर्णन करते हुए सर्वत्र इस बात को दिखलाया है कि इस नाम के उच्चारण मात्र से परम पापी से पापी भी शुद्ध हो जाते है। जैसेः—

चौ०-सन मुख होइ जीव मोहि जब हीं। जनम कोटि अघ नासौं तब हीं॥
कोटि बिप्र अघ लागे जाही। आये सरन तज्यों नहि ताही॥

दो०—स्वपत्र सबर खस जवन जड़, पावर काल किरात।
राम कहत पावन परम, होत भुवन बिख्यात॥

ऊपर के दोहे में स्वपचादि जातियों के अतिरिक्त यवन (मुसलमान ईसाई और यहूदी इत्यादि) का शुद्ध होना भी गोस्वामी जी ने माना है।

'कवितावली रामायण' में तो आपने एक कवित्त में ऐसा दर्शाया है कि किसी बूढ़े यवन को एक शूकर ने मारा। यवन ने मरते समय चिल्लाकर कहा कि मुझे हराम (शूकर) ने मारा है। यतः 'हराम' शब्द के अन्त में 'राम' शब्द आता है अतः मुख से राम शब्दोंचारण करेने के पुण्य से वह यवन स्वर्ग सिधारा।

आँधरो अधम जड़ जाजरो जरा जवन, सूकर के सावक ठका ठकेले मग में।
गिर्यो हिय हहरि हराम को हाराम हन्यौ, हाइ हाइ करत परीगा काल फग में॥
तुलसी बिसोक है त्रिलोकपति लोक गयो, नाम के प्रताप बात विदित है जग में।
सोइ राम नाम जो सनेह सो जपत जन, ताकी कैसी महिमा कही है जात अगमें॥

इस प्रकार रामचरित-मानस के अन्त केः—

पाई न केहि गति पतित-पावन राम भजि सुनु सठ मना।
गनिका अजामिल व्याध गीध गजादि खल तारे घना॥
आभीर जवन किरात खस स्वपचादि अति अघरूप जे।
कहि नाम बारक तेऽपि पावन होहिं राम नमामि ते॥

पद्य में गोस्वामी जी ने एक बार रामनामोच्चारण करने से ही यवनों का शुद्ध होना और मुक्ति पाना लिखा है। तुलसी-साहित्य-प्रेमियों को इन पद्यों पर पूर्ण विचार कर के शुद्धि का फाटक खोल देना चाहिये।

राम-राज्य

धन्य वह देश है जहाँ ब्रह्मवर्चस्वी, सत्योपदेष्टा, ब्रह्मज्ञानी, ब्रह्मवादी और अध्यात्मवित् ब्राह्मण विद्यमान हों। जिस भूमि पर साम, दाम और दण्ड का विधाता राजा प्रस्तुत हो वह भूमि भी धन्य है। वह वसुन्धरा भाग्यशीला है जहाँ की गायें नदियों के सदृश दूध की धारा बहाने वाली, बैल भार वाहक और अश्व आशु गतिशील हों। उसी देश में सुख, शान्ति एवं समृद्धि का स्थायी निवास होता है जिस देश की देवियाँ सर्वगुण सम्पन्न एवं गृह कार्य में कुशल हों। जिस महि-खण्ड की प्रजा शत्रुजित् और वीर हो, जहाँ समय समय पर आवश्यकता नुसार पर्जन्य जल प्रदान करते हों, औषधियाँ सुचारु रूप से फल-फूल देती हों और जहाँ की जनता योग-क्षेम की व्यवस्था जानती अर्थात् धन के उपार्जन, सञ्चय और व्यय की विधि जानती है वह धरातल भी धन्य है। महाकवि गोस्वामी तुलसीदास जी ने राम-राज्य का जो कुछ वर्णन किया है वह हमारे लिये आदर्श है। भारत की आर्य-जनता को राम के सुराज्य और सुप्रबन्ध पर गर्व हो सकता है। उस समय ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र एवं संन्यासी, वानप्रस्थी, गृही और ब्रह्मचारी सभी अपने अपने धर्म पर निरत थे। देश में अभ्युदय और निःश्रेयस का मार्ग प्रशस्त था। गोस्वामी जी 'राम चरित-मानस' के उत्तरकाण्ड में रामराज्य का वर्णन इस प्रकार करते हैंः—

बरनाश्रम निज निज धरम, निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुख, नहिं भय सोक न रोग॥

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम-राज काहुहिं नहिं व्यापा॥
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति रीती॥
चारिहु चरन धरम जगमाहीं। पूरि रहा सपनेहुँ अघनाहीं॥
रामभगतिरत नर अरु नारी। सकल परम गति के अधिकारी॥
अल्प मृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब सुन्दर सब निरुज सरीरा॥
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना॥

सब निर्दंभ धर्मरत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी॥
सब गुनज्ञ पंडित सब ज्ञानी। सब कृतज्ञ नहिं कपट सयानी॥

राम राज नभगेस सुनु, सचराचर जगमाहिं।
काल कर्म सुभाव गुन, कृत दुख सपनेहु नाहिं॥

एक नारि व्रतरत सब झारी। ते मन बच क्रम पति हितकारी॥

दंड यतिन्ह कर भेद जहँ, नर्तक नृत्य समाज।
जीतेउ मन जग सुनिय अस, रामचन्द्र के राज॥

फूलहिं फलहिं सदा तरु कानन। रहहिं एक सँग गज पंचानन॥
खग मृग सहज बैर बिसराई। सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई॥
कूजहिं खग मृग नाना वृन्दा। अभय चरहिं बन करहिं अनन्दा॥
सीतल सुरभि पवन बह मन्दा। गूंजत अलि लेइ चलि मकरंदा॥
लता बिटप माँगे मधु चवहीं। मन भावतो धेनु पय स्रवहीं॥
सस सम्पन्न सदा रह धरनी। त्रेता भइ कृत युग कै करनी॥
प्रगटो गिरिन्ह बिबिध बिधखानी। जगदातमा भूप जग जानी॥
सरिता सकल बहहिं वर बारी। सीतल अमल स्वादु सुख कारी॥
सरसिज संकुल सकल तड़ागा। अति प्रसन्न दस दिसा बिभागा॥

बिधु महि पूरि मयूखन्ह, रवि तप जेतनेहि काज।
मांगे बारिद देहिं जल, राजचन्द्र के राज॥

× × × ×

हमारे सुविचार शील पाठक ऊपर के वर्णन पर पूर्ण ध्यान दें तो उन्हें स्पष्ट प्रतीत होगा कि राम-राज्य में प्रजावर्ग किस प्रकार सुखी और समुन्नत था। आज कल जहां प्रजा-तन्त्र-शासन-प्रणाली प्रचलित है वहां भी इस प्रकार का आदर्श हम नहीं पाते। भारत वर्ष के पुरा कालीन राजा प्रजा-पालन ही अपना एकमात्र कर्त्तव्य समझते थे, यही कारण है कि प्रजा भी ऐसे राजाओं को ईश्वर का प्रतिनिधि समझती थी। भगवान करे भारत की प्रजा को पुनः राम-राज्य के दर्शन हों।

धर्म-बल

इस संसार में मनुष्य के निमित्त शरीर-बल, धन-बल, बुद्धि-बल और सङ्घ-बल की अपेक्षा धर्म-बल अत्यावश्यक है। जिस मनुष्य के आचरण तथा जीवन में धर्म-बल नहीं वह साँस लेता हुआ लोहार की धौंकनी से, बोलता हुआ ग्रामोफोन से और चलता हुआ पशुओं से कोई विशेषता नहीं रखता। मानव-जीवन को सरल और पवित्र बनाना ही इसकी उपलब्धि की सार्थकता है। हमें 'रामचरित-मानस' से पग पग पर धर्म-बल की शिक्षा मिलती है। मर्यादा पुरुषोत्तम ने इस संसार में जो कुछ आचरण किया, वह तो धर्ममय था ही, पर समर-काल में आप ने बिभी-

षण को जो शिक्षा दी है वह मनुष्य मात्र के लिये आदर्श है। देखिये स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य पद हैं:—

रावण रथी बिरथ रघुबीरा। देखि बिभीषन भयेउ अधीरा॥
अधिक प्रीति मन भा सन्देहा। बन्दि चरन कह सहित सनेहा॥
नाथ न रथ नहिं पग पद त्राना। किहि बिधि जितव बीर बलवाना॥
सुनहु सखा कह कृपानिधाना। जेहि जय होय सो स्यन्दन आना॥
सौरज धीरज जेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका॥
बल बिवेक दम परहित घोरे। छमा दया समता रजु जोरे॥
ईस भजन सारथी सुजाना। बिरति चर्म सन्तोष कृपाना॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। बर बिज्ञान कठिन कोदंडा॥
अमल अचल मन त्रोन समाना। सम जम नियम सिलीमुख नाना॥
कवच अभेद बिप्र-गुरु-पूजा। एहि सम बिजय उपाय न दूजा॥
सखा धर्ममय अस रथ जाके। जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताके॥

दोहा—महा अजय संसार रिपु, जीति सकै सो बीर।
जाके रथ अस होइ दृढ़, सुनहु सखा मतिधीर॥

× × × ×

अहह! धन्य वह मनुष्य है जो ऐसे धर्म-मय रथ पर आसीन है!! वास्तव में संसार के अन्दर उसकी कहीं भी पराजय नहीं हो सकती। वह प्रत्येक स्थल पर विजयी होगा। धृति, क्षमा, दम, सत्य, आस्तिकता, विरति, सन्तोष, दानशीलता, सद्बुद्धि, विज्ञान, विशुद्ध-भाव, यम, नियम और नम्रता का अधिष्ठाता हो कर मनुष्य अवश्य विश्व-विजयी बन जायगा, इसमें सन्देह नहीं। यदि हम संसार-समर में विजेता बनना चाहें तो धर्म का आश्रय लें।

अन्यान्य लोकादर्श

वेद-शास्त्र-प्रतिपादित समाज का आदर्श ही गोस्वामी जी का लोकादर्श था। महाकवि ने 'रामचरित-मानस' में जिस समाजादर्श की संस्थापना की है वह वास्तव में संसार सागर का सुदृढ़ सेतु है। सत्य के प्रतिपालन को सम्मुख रखते हुए राजा दशरथ ने अपने प्रियतम पुत्रको बनवास दिया और पुत्र ने सत्वर उस आदेश को शिरोधार्य कर वन-यात्रा की। गोस्वामी जी लिखते हैं:—

कीरके कागर ज्यौं नृपचीर, विभूषन उप्पम अंगनि पाई।
औध तजी मग बास के रूख ज्यौं, पंथ के साथी ज्यौं लोग लुगाई॥
सङ्ग सुबन्धु पुनीत प्रिया, मानो धर्म क्रिया धरि देह सुहाई।
राजिवलोचन रामचले तजि, बाप को राज बटाऊ की नाईं॥
कागर कीर ज्यौं भूषन चीर, सरीर लस्यौ तजि नीर ज्यौं काई।
मातु पिता प्रिय लोग सबै, सनमानि सुभाव सनेह सगाई॥

सङ्ग सुभामिनि भाइ भलो, दिन द्वै जनु औधहुते पहुनाई।
राजिवलोचन राम चले, तजि बाप को राज बटाऊ की नाई॥

× × × × ×

अहह ! जिस राज्य-प्रलोभनवशात् साम्प्रतिक संसार रक्त की नदी प्रवाहित कर रहा है उसे महाकुल राम ने इस प्रकार प्रसन्नता पूर्वक त्याग दिया जिस प्रकार पींजड़े में बन्द सुग्गा पीजड़े को प्रसन्न होकर छोड़ दे। 'प्राण जाय तो जाय पर धर्म न जाने पावे' यही रघुवंश का आदर्श था। महापुरुष राम में धर्म के उच्चतम भाव कूट कूट कर भरे थे। शिशुपन के खेल में-तमाशे में, हँसी में, राग-रङ्ग में, क्रीडा में, घोर संग्राम में, सुख में, दुःख में, सङ्कट में, विकट परिस्थिति में, सम्पति में, विपत्ति में, राज-प्रासाद में किंवा दुर्गम वन में राम ने कहीं भी धर्म का आश्रय नहीं छोड़ा। राम की पवित्र कथाओं को पढ़ पढ़ कर ही आज करोड़ों हिन्दू, हिन्दू-जाति की गोद में आमोद प्रमोद से जीवन व्यतीत कर रहे हैं। राम की धर्मनिष्ठा, उनका स्त्रीव्रत, ब्रह्मचर्य, सत्यपरायणता, पितृभक्ति, भ्रातृ-स्नेह, पतितोद्धारण, और प्रजा-वात्सल्य आज हमारा पथ-प्रदर्शन कर रहा है। राम में संगठन-शक्ति भी बड़े ऊँचे दर्जे की थी। उनके अर्द्धाङ्ग-पर रावण ने प्रहार किया, अनीति से उनकी प्रियतमा का दुरुपहरण किया। राम के पास अपने अनुज लक्ष्मण के अतिरिक्त कोई नहीं था, पर संगठन शक्ति की बदौलत आप ने सुग्रीव, जामवन्त, अंगद, हनुमान, और नल-नीलादि जैसे उद्भटों से सन्धि स्थापित कर सुरक्षित स्वर्णमयी लङ्का को धूल में मिला कर सवंश रावण को स्वर्ग का यात्री बना दिया। सत्य है:—

खग मृग मीत पुनीत किय, बनहुँ राम नयपाल।
कुमति बालि दसकंठ गृह, सुहृद बन्धु किय काल॥

राम ने जिस सद्भाव और सचाईसे बिभीषण की बांह पकड़ी थी उसका आद्योपान्त निर्वाह किया। भाई लक्ष्मण को जिस समय शक्ति लगी थी उस समय राम के हृदय में राज्य-पाट, धन-धाम, प्रिय-परिवार और बंधु-बांधव किसी की चिन्ता नहीं थी। उनके अन्तःकरण में केवल इसी बात की व्यथा थी कि 'बिभीषण की क्या गति होगी'। गोस्वामी तुलसीदास जी इस भाव को इस प्रकार व्यक्त करते हैं:—

मेरो सब पुरुषारथ थाको।
बिपति बटावन बधु बाहु बिन, करौं भरोसो काको॥
सुनु सुग्रीव साँचेहूँ मोपर, फेर्‌यौ बदन बिधाता।
ऐसे समय समर संकट हौं, तज्यों लखन सो भ्राता॥
गिरि कानन जैहैं शाखा मृग, हौं पुनि अनुज संघाती।
ह्वैहैं कहा बिभीषन की गति, रहै सोच भरि छाती॥

× × × ×

इसी आशय को लेकर हिन्दी के एक कवि ने निम्नलिखित मार्मिक पद्यों की रचना की हैं:—

राज छुटे कर सोच नहीं, नहिं सोच पिता सुरधाम गये को।
औध अनाथ को सोच नहीं, नहिं सोच कछू बनबास भये को॥
सीय हरे कर सोच नहीं, नहिं सोच दसानन रारि ठये को।
सक्ति लगे कर सोच नहीं, इक सोच बिभीषन बाँह गहे को॥ १॥
तू तो चल्यौ सुरधाम सहोदर, प्रान हमार तोही संग जैहैं।
देवर कंत की मृत्यु सुने, सिय व्याकुल होइ समुद्र समैहैं॥
धीरज धारि के धीर धुरंधर, बानन ते सब सैन बुझैहैं।
व्याकुल होइ कहै रघुनन्दन, कौन के भौन बिभीषन जैहैं॥ २॥

अहह! यह है शीलनिधान की शालीनता!! प्रतिज्ञा-पालन और सत्य-सन्धत्व इसका नाम है!!!

राम के इन्हीं पावन गुणों को स्मरण कर और रामनामामृत का पान कर आज हिन्दू जाति जीवित है। इस सुधारस को राज-प्रासाद से लेकर पर्ण कुटीर पर्यन्त पहुँचाने वाला तुलसीदास का अमर सरस-साहित्य है। गोस्वामीजी के संवन्ध में जितना भी लिखा जाय थोड़ा ही होगा। जिस महापुरुष ने अपनी सरस समुज्वल रचना रूपी जाह्नवी के जल से मानव समाज के अन्तःकरणस्थ कालुष्य को धोकर निर्मल एवं पवित्र बनादिया, जिसने दशो दिशाओं में अपनी प्रतिभा की पताका फहरादी, जिसके अमर साहित्य ने करोड़ों मनुष्यों का मङ्गल किया, कर रहा है और करेगा उसके समान अन्य कोई सुकवि न था और न है। भविष्य में होगा अथवा नहीं इसको समुचित रूपेण नहीं कहा जा सकता। महाकवि तुलसीदास ज और उनकी रचना को स्मरण कर सहसा कवि कुल-तिलक भवभूति की रचना व स्मरण हो आता है:—

व्यति करित दिगन्ताः श्वेतमानै र्यशोभिः
सुकृत विलसितानां स्थानमूर्जस्वलानाम्।
अगणित महिमानः केतनं मङ्गलानां
कथमपि भुवनेऽस्मिंस्तादृशाः सम्भवन्ति॥

(२४) ग्रन्थोपसंहार

"कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कर हित होई" ॥

वास्तव में उत्कृष्ट कविता की उपमा देवसरि से ही दी जा सकती है। यह अखिल विश्व, सत्य का अभिहित आवास है। अखिलेश्वर ने मानव जीवन के उपयुक्त समस्त निगूढ़ तत्वों को इसी ब्रह्माण्ड में निहित कर रखा है। महाकवि उस अव्यक्त और रहस्य मय अशेष विचार-प्रवाह को जीवन की प्रत्येक दशा के निमित्त उपयोगी बनाने के स्तुत्य-सद्भाव से संप्रेरित होकर एक महापुरुष की जीवनी रूप सरिता के स्वरूप में प्रवाहित अथवा उसी अव्यक्त सत्य को सर्वश्रेष्ठ साधु एवं प्राञ्जल भाषा में प्रस्फुटित और व्यक्त दशा में परिणत कर देता है तो हम उसे कविता कहते हैं। काल विशेष के विशुद्ध भाव जब प्रभावशाली शैली से हृदयग्राही बना दिये जाते हैं तब उसी भाषा को संसार के रसिक, काव्य कहते हैं। बुधजनों के मध्य वही कविता समादरणीय होती है जो बहिः एवं अन्तर्जगत के सौन्दर्य को उत्तम रीत्या सुन्दर शब्दों से चित्रित कर संसार के सम्मुख रखी गयी हो। सुकवि, मानव जीवन की प्रत्येक घटना को जनता के समक्ष सदेह नचा देता है। धर्म के समष्टि विग्रह का विरल विश्लेष ही किसी महापुरुष के पावन जीवन का पूत पार्श्व प्रतीत होता है इसी धर्म के तत्वों को प्रचलित भाषा में सर्वप्रिय वा बहुप्रिय, सरल और सरस बना देना ही सत्काव्य है। तत्वतः कविता वही है जिससे अपेक्षा कृत अत्यधिक जनसमुदाय का उपकार हो। सचमुच पदलालित्य, माधुर्य, ओज, प्रसाद, शब्द-सौष्ठव, वाक्य रचना, छन्दःशास्त्र और अलंकारों पर जिनका स्वभावतः अधिकार हो वे ही सुकवि वा महाकवि कहलाने के अधिकारी हैं।

सुतराम् हमारे चरितनायक कवि कुल तिलक गोस्वामी तुलसीदास जी प्रत्येक दृष्टि से सुकवि किंवा महाकवि थे, इसमें किसी प्रकार कहीं पर ननु नच का स्थान नहीं। तुलसीदास की रचना के सम्मुख न्यूनातिन्यून समस्त भारत वर्ष के कवियों की सूझ, सहूलियत, शब्द-योजना, उक्ति और ऊहा नतग्रीव हो जाती है। सूर, बिहारी, केशव, देव, भूषण और मतिराम ही की कौन कहे कवि-कुल-कुमुद-कलाप-कलाधर श्री कालिदास, भवभूति, दण्डी और माघ भी किसी न किसी अंश में तुलनात्मक दृष्टि से ओछे उतरते हैं।

यह तुलसीदास का सौभाग्य था कि उन्होंने मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र जैसा आदर्श नायक चुन लिया और राम का भी पुरापुण्य था कि उन्हें वाल्मीकि के लक्षावधि वर्षों के अनन्तर तुलसी सा सुकवि मिल गया जिसने उनके पावन चरित्रों को उत्कृष्ट एवं प्रभावोत्पादक भाषा में संग्रन्थित कर अजर अमर बना

दिया। तुलसीदास जी की रचना आज समस्त देश की सम्पत्ति हो रही है। आज गोस्वामी जी का आदर भारतेतर प्रदेशों में व्याप्त हो रहा है। युरोपियन विद्वान डा० सर जार्ज ग्रियर्सन तथा रेवरेण्ड एड्विन ग्रीव्स महोदय तुलसी काव्य-कमल के भ्रमर हो रहे हैं। यह सत्य है कि विलायत में जितना वाइबिल का प्रचार है उससे कहीं अधिक बिहार, यू. पी., पञ्जाब, राजपुताना और मध्यप्रदेश में राम चरित-मानस प्रचलित है। भारत के कई कोटि मनुष्य इसी ग्रन्थ पर अपना धर्म अवलम्बित किये बैठे हैं। तुलसीदास की कविता-लता कोटिशः भव तपन-ताप से संतप्त नर नारियों को सुखच्छाया एवं आश्रय प्रदान कर रही है। सम्प्रति गोस्वामी जी की कविता रूप सुरसरिता की पावन धारा प्रखर गति से प्रवाहित हो रही है जिससे अपनी अपनी शक्ति, रुचि और सामर्थ्य के अनुसार विद्वान से लेकर मूर्ख तक, और राजा से रङ्क पर्य्यन्त सभी कुछ न कुछ अवश्य-मेव लाभ उठा रहे हैं। तुलसीदास जी की कविता का कितना बड़ा महत्व है, यह मापा नहीं जा सकता और न उसकी तुलना ही की जा सकती है। इनकी रचना में मानव जीवन का आदर्श, उसकी उत्कृष्टता, मनोच्चभाव, और महान से महान हृदय का नमूना धरा पड़ा है। सन्तों की महिमा और खलों के खलत्व की पराकाष्ठा प्रस्तुत है। मनुष्य कितना पतित हो सकता है यहां से लेकर उच्चाति उच्च आदर्श तथा मानवीय स्वार्थपरता और उत्सर्ग के उदाहरण "रामचरितमानस" में विद्यमान हैं यह ग्रन्थ सद्धर्म निरूपण और उपदेश-रत्न की खान है। इसकी अभि-नय वेदी ऐसी पवित्र और आदर्श है कि इस पर आने वाले सभी पात्र आर्यत्व, सत्य, न्याय, दम, इन्द्रिय निग्रह, औदार्य, क्षमा, क्षमता, उत्कृष्टता, सहनशीलता, वीरता, गम्भीरता, और दयालुता की प्रतिमूर्त्ति ही दृष्टि गत होते हैं। दुष्ट दल-दलन भी 'रामचरितमानस' की मुख्य शिक्षाओं में से एक है। इस प्रकरण को गोस्वामी जी ने अत्यन्त विस्तृत एवं विशद रीति से लिखा है। इस ग्रन्थ में निगदित भाव और धर्म रूप जिस प्रकार जागृत हैं वैसा प्रभावशाली धर्म-समन्वित ग्रन्थ स्यात् ही अन्यत्र पाया जाय। आत्मोत्सर्ग, आत्मगरिमा, शील-सौजन्य, कर्त्तव्यपरायणता, धर्मनिष्ठा, सदाचार, पवित्रता, उदारता और श्लाघ्य सेवाभाव का अनुकरणीय उदाहरण इस महाकविने संसार के सम्मुख रख कर जैसी सफलता उपलब्ध की है वैसी सफलता ससांर का अन्य कोई कवि नहीं प्राप्त कर सका। तुलसी के भावों में औदार्य था, मानसमें ओज और प्रतिभा थी, उनकी लेखनी में अश्रुत पूर्व माधुर्य तथा प्रसाद था। तुलसीदास की कविता, प्रभाकर की प्रभा के समान साहित्य रसिकों के अन्तःकरण रूप कमल वन को विकसित एवं मानवीय मोह तम-तोम को विदीर्ण करने वाली है।

हमारा दृढ़ विश्वास है कि यावत् भारत वर्ष में धर्म रूप हिमालय निष्पन्द भाव से अस्तित्व में रहेगा तावत् पुण्य प्रदेश रूप आर्य जनता के अन्तःकरण पर

राम सुयश रूप कलकलनिनादिनिकालिन्दी के प्रवाह से संमिश्रित तुलसीदास जी की रचना रूप भगवती भागीरथी की धवल धारा धाय मान रहेगी ।

धन्य हो तुलसीदास !!!

"जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः ।
नास्ति येषां यशः काये जरामरणजं भयम् ॥
ते धन्यास्ते महात्मानस्तेषां लोके स्थिरं यशः ।
यैर्निबद्धानि काव्यानि ये च काव्येषु कीर्तिताः ॥"

(२५) तुलसी प्रेम-पञ्चक

सवैया

गति कीरति भूति को संगम रूप, प्रयाग पुरी जग में बिलसी की।
सरदातप ताप तिहूँ हरिबे हित, है सुखदा बर रश्मि ससी को॥
भव सागर की बरनी तरनी, बहु कर्म-उपासन-ज्ञान गली की।
अति मोहतमी तम की हरनी, सविता कर सी कविता तुलसी की॥ १॥
बर बेदन को जग मान रखे, उपखान पुरानन को मित भाखे।
बहु दर्शन को परमान लखे, इतिहास लिखे जग के अभिलाखे॥
सब सत्य सनातन रीति रखी, बहु नीति लिखी, सत पंथन राखे।
तुलसी कृत 'मानस' सार सुधारस, लाखन मुक्त भये जिन चाखे॥ २॥
शुभ राम चरित्र पवित्र लिखे, अरु धर्म स्वरूप प्रतच्छ दिखाये।
दम दान दया छमता समता, ध्रुव धैर्य छमा व्रत सत्य सिखाये॥
गुरु मातु पिता बर भक्ति, सुभायप, दम्पति-नेह सदेह लखाये।
जग केतिक ज्ञान कथा कहिके, तुलसी तब अन्त द्युलोक सिधाये॥ ३॥
कहिहैं सुनिहैं, जे कथा नर नारि, सुपावन जीवन ते लहिहैं।
लहिहैं मुद मंगल जंगल हू, त्रय तापन ते न कदा दहिहैं॥
दहिहैं अघ ओघ अघी जनहू, जब सन्त सुमारग को गहिहैं।
गहिहैं हरि के पद पंकज को, शुभ ज्ञान गथा जग जे कहिहैं॥ ४॥
जिनके हिय मानसरोवर ते, निकसी कविता सरिता अधिकाई।
अस राम अगाध भर्यो जल निर्मल, बेदन लोकहु कूल बँधाई॥
करिहैं सुकृती जन सादर मज्जन, पान किये सुख शान्ति दृढ़ाई।
गुण राम को गाइ तरे तुलसी, भयो 'राम' सुखी तुलसी गुण गाई॥ ५॥

तुलसी का ऋणी
'रामचन्द्र'
शमित्योऽम्